अ० भा० दि० जैन शास्त्र-परिषद् का पुष्प नं० १००

विद्वत् अभिनन्दन-ग्रन्थ

सम्पादक मण्डल

पंडितरत्न डा० लालबहादुर शास्त्री

एम० ए०, साहित्याचार्य

पंडितरत्न बाबूलाल जैन जमादार

साहित्यरत्न

पंडित विमलकुमार जैन सोंरया

एम० ए०, शास्त्री

बाबूलाल जैन फागुल्ल

●

सह सम्पादक

निहालचन्द जैन

एम० एस-सी०

प्रकाशक

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद् के लिए

चाँदमल सरावगी चैरिटेबल ट्रस्ट

गौहाटी (आसाम)

प्रकाशक :
अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद् के लिए
चाँदमल सरावगी चैरिटेबल ट्रस्ट
गौहाटी (आसाम)

□

ग्रंथ प्राप्तिस्थान
पण्डितरत्न बाबूलाल जी जैन जमादार
मंत्री, अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्
हाथीखाना, बडौत (मेरठ)

चाँदमल सरावगी चैरिटेबल ट्रस्ट
गौहाटी (आसाम)

□

प्रथमावृत्ति १०००
१९७६ वी० नि० २५०३

□

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी–१
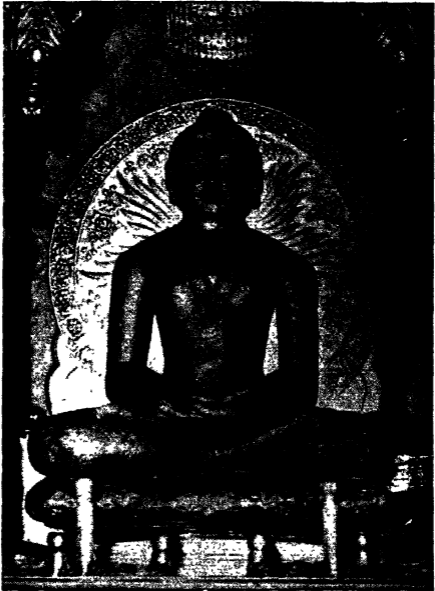
तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर
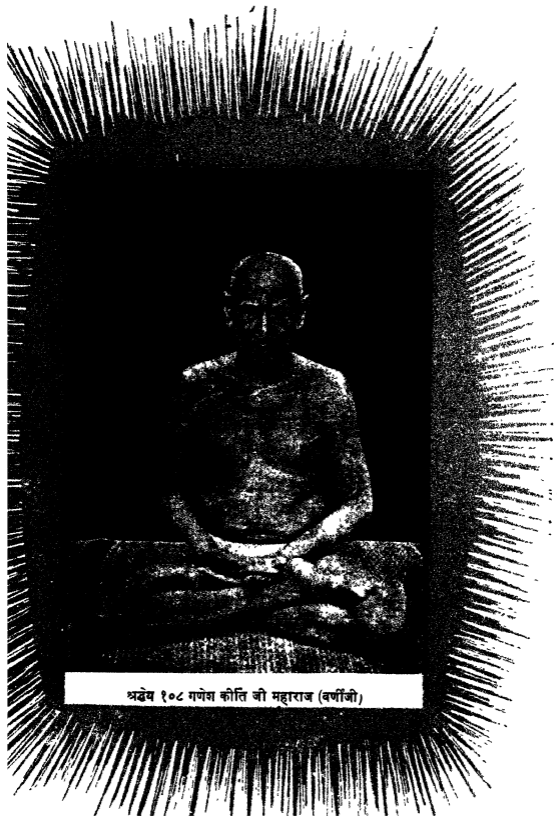
श्रद्धेय १०८ गणेश कीर्ति जी महाराज (वर्णीजी)

समर्पण

जिस स्वयं बुद्धने सत्य की शोध, सतत साधना,
सर्वजनीन सेवा, परदुःख कातरता तथा
बहुमुखी विद्वत्ता द्वारा अज्ञान-
तिमिरान्ध जैन समाज का
ज्ञान-लोचन उन्मीलित करके,
लोकोत्तर उपकार किया है
उन्हीं
श्री १०८ मुनि गणेश कीर्ति जी (वर्णीजी)
की पावन स्मृति में
सविनय सादर समर्पित
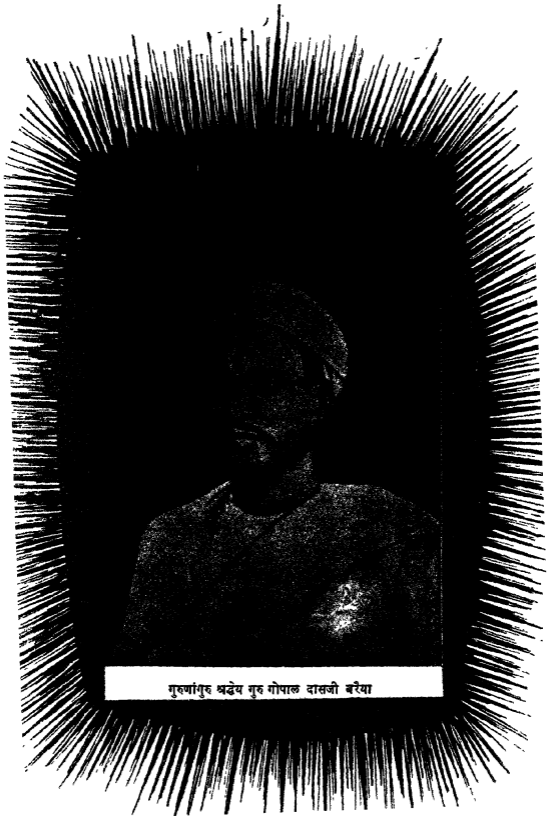
गुरुणांगुरु श्रद्धेय गुरु गोपाल दासजी बरैया

उदारता के धनी युगल-दम्पति

स्वर्गीय सेठ चाँदमल जी पाण्ड्या

जैन महिलारत्न श्रीमती भँवरी देवी जी

सरल, उदार और निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी दानवीर जैनरत्न
स्व० श्री चांदमलजी सरावगी : एक परिचय

●

खादीकी धोती और कुर्तेसे तनको ढाँके, गौ रक्षक जूते पहने, हाथमें छड़ी तथा सौम्य मुख पर चश्मा लगाये हुए अनेक उपाधियों, पदों, सम्मानसूचक अलंकारोंसे विभूषित दानवीर रायसाहब सेठ श्री चांदमलजी सरावगी, गौहाटी निवासी थे। श्री सरावगी साहब ऊपरसे नीचे तक तथा बाहरसे अन्दर तक सरलता, सौम्यता, उदारता और निरभिमानतासे पगे हुए थे। धनी समाजमें इस प्रकारका सीधा सादा परन्तु परदुःखकातर व्यक्तित्व बहुत कम देखनेको मिला है।

(मरु प्रदेश) राजस्थानके लालगढ़ कस्बेमें स्वनाम-धन्य स्वर्गीय श्री मूलचन्दजी सरावगीके घर मातुश्री जंवरीबाईकी कुक्षिसे ३ जनवरी, १९१२ को सेठ चांदमलजीका जन्म हुआ था। श्री सरावगीजी का बचपन तथा छात्रकाल कलकत्तामें बीता। जहाँकि विश्वविद्यालयसे उन्होंने १९३० में मैट्रिक्युलेशन किया। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' कहावतके अनुसार नेतृत्व और समाज-सेवाके गुणोंका प्रदर्शन उनमें तभीसे होने लगा था जब कि वे स्कूल जीवनमें ही छात्र आन्दोलनोंमें भाग लेने लगे और ब्रिटिश झण्डे-यूनियन जैकका अपमान करने पर गिरफ्तार किये गये। मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद श्री सरावगीजीने तत्कालीन विख्यात फर्म सालिगराम राय चुन्नीलाल बहादुर एण्ड कम्पनीमें व्यवसायिक जीवन आरम्भ किया और अल्पकालमें ही उसके मैनेजिंग पार्टनर तथा गौहाटी डिवीजनके प्रबन्धक बन गये। श्री सरावगीजीने धर्म तथा समाजके कार्योंमें आस्था तथा रुचि रखते हुए अपने उद्यमसे खूब धनोपार्जन किया और उनकी गणना असमके प्रमुख उद्योगपतियोंमें होने लगी थी।

उनकी समाजके प्रति भावनाको शीघ्र ही मान्यता मिलने लगी जब कि उन्हें अनेक बार गौहाटी नगर परिषद्का पार्षद निर्वाचित किया गया और ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। स्वतंत्रतासे पूर्व ब्रिटिश सरकारने उन्हे यद्यपि कारोनेशन तथा सिल्वर जुबली मेडिल्स प्रदान किए और रायसाहबकी उपाधि-से विभूषित किया किन्तु वे देशकी स्वतन्त्रताके लिए लड़े जा रहे स्वतन्त्रता सग्रामके प्रति बेखबर नही थे और ब्रिटिश सरकारके सामीप्य व्यापारिक सम्बन्ध होनेके उपरान्त भी काग्रेस को बराबर विपुल आर्थिक सहायता देते रहते थे। १९३४ में नौगावमें आई प्रलयङ्कारी बाढके समय श्री सरावगीजीने निस्वार्थभावसे पीड़ितोंकी सेवाके लिये जो कार्य किया उसकी सभी वर्गके लोगो द्वारा मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की गई। द्वितीय महायुद्धके समय जापानी आक्रमणसे भयभीत होकर जब अधिकाश व्यापारी आसामसे भागने लगे तो श्री सरावगीजीने ऊँचा मनोबल रखकर जनताको साज सामानकी सप्लाईकी गति यथावत् बनाए रखी। १९४२ के भारत छोडो आन्दोलनके समय काग्रेसको विपुल सहायता देकर उन्होंने राष्ट्र-भक्तिका परिचय दिया। यद्यपि ब्रिटिश सरकारसे सीधा व्यापारिक सम्बन्ध होनेसे उन्हें इसमें भारी जोखिम हो सकती थी परन्तु उन्होंने उसकी रंचमात्र चिन्ता नही की।

शिक्षाके अनुरागी

भारत स्वतन्त्र होनेसे पूर्व ही ११-८-४७ को ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रदत्त सभी उपाधियोंको लौटा-

कर श्री सरावगीजीने अपनी निःस्पृहताका परिचय दिया। स्वतन्त्रताके बाद जहाँ श्री सरावगीजीने अनेक व्यावसायिक प्रतिष्ठानोंके प्रबन्धक और स्वामी होनेके नाते असमके औद्योगीकरणमें योग दिया वहाँ वे समाजके निर्माण कार्योंमें सदा तत्पर रहे और गौहाटी विश्वविद्यालयके निर्माणमें उन्होंने सक्रिय रूपसे भाग लिया। लोकप्रिय स्वर्गीय गोपीनाथ बारदोलोईके अध्यक्ष कालमें वे गौहाटी विश्वविद्यालयके संयुक्त कोषाध्यक्ष रहे। उन्होंने गौहाटी, सिल्चर, शिलांग तथा असमके अन्य महत्त्वपूर्ण कस्बोंमें कांग्रेस भवन बनानेमें दिल खोलकर आर्थिक सहायता प्रदान की। उदार, निर्धनोंकी सहायताको सदा तत्पर श्री सरावगी-जी जरूरतमन्दोंके मित्रोंके रूपमें सर्वत्र जाने जाते थे। उन्होंने अपनी पत्नी श्रीमती सेठानी भँवरीदेवीजीके नाम पर गौहाटीमें मूक बधिरोंका स्कूल स्थापित किया है जो सारे असम प्रान्तमें अपने ढंगकी एकमात्र संस्था है।

सुजानगढ़में एक सार्वजनिक स्कूलकी स्थापना की है तथा गौहाटीमें एक मोन्टेसरी स्कूल भी अपनी धर्मपत्नीके नामसे स्थापित किया है।

दरिद्रनारायणके हिमायती

श्री सरावगीजी सामाजिक, सास्कृतिक और शैक्षणिक संस्थाओंको सदा ही मुक्तहस्तसे दान देनेमे अग्रणी रहे हैं। डॉ० बी बरुआ कैंसर इन्स्टीट्यूट गौहाटी, कुष्ठरोग चिकित्सालय, यक्ष्मा चिकित्सालय शिलांग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली, गुरुकुल कुम्भोज (महाराष्ट्र), बरद्रावा स्मृति समिति नौगाँव, मिर्जा कॉलिज, बोको कॉलिज, मंगलदई कॉलिज, कामाख्या स्कूल, माल्गीगाव सेवा आश्रम तथा विभिन्न स्थानों पर चल रहे मारवाड़ी विद्यालय आदि कुछ सस्थाएँ है जिनकी स्थापना तथा बादमे संचालनमें श्री सरावगीजीका उल्लेखनीय योगदान रहा। आत्म शक्तिमें अटूट विश्वास रखनेवाले तथा धार्मिक आस्थाओसे युक्त श्री सरावगीजीने अपने जीवनमें अनेक विधवाओं तथा निर्धन छात्र-छात्राओंको सदैव सहायता प्रदान की है।

दिगम्बर जैन समाजके अग्रणी नेता

जैन आगम और कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत जैन दर्शनमें असीम श्रद्धा रखनेवाले श्री सरावगीजी अपने चिन्तन, समयके योगदान और विपुल औदार्य दानके कारण जैन समाजके अग्रणी नेताके रूपमें उदित हुए और सम्पूर्ण भारतकी जैन समाज उन्हे सम्मानकी दृष्टिसे तो देखती थी, समाजके सक्षम नेतृत्वके लिए उनपर अपनी दृष्टि गड़ाए थी। वे समाजकी सबसे पुरानी संस्था अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाके वर्षोंसे निरन्तर अध्यक्ष रहे और उनकी सेवाओंको मान्यता प्रदान करते हुए समाजके श्रावक तथा विद्वद्वर्ग ने उन्हें समय समयपर जैनरत्न, धर्मवीर, दानवीर, श्रावक शिरोमणि तथा आचार्य संघ भक्त दिवाकर, गुरुभक्त शिरोमणि आदि उपाधियोंसे सम्मानित किया था। आपकी गुरुभक्ति श्लाघनीय और अनुकर-णीय थी। मुनि संघोंकी परिचर्या तथा उनके सान्निध्यमें रहकर धर्म साधना करनेमें आप सपत्नीक दत्त चित्त रहते थे। व्यापारिक गतिविधियोंसे सम्बद्ध रहते हुए भी श्री सरावगीजीका अधिकांश समय धार्मिक संस्थाओं और संगठनोंके कार्यको सुचारु करने, उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत बनाने और उन्हें सुदृढ़ स्वरूप प्रदान करनेके उपायोंमें ही बीतता था। जैन जनगणनाके व्यापक उद्देश्यकी सम्पूर्तिके लिये आप निरन्तर सचेष्ट रहे और इन कार्योंकी पूर्ति हेतु आपने भारी आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया।

आप श्री १००८ भगवान् महावीर स्वामीके २५०० सौ वें निर्वाण महोत्सवके कार्यक्रमोंकी प्रगतिके लिये विशेष रूपसे क्रियाशील रहे। आप इस सम्बन्धमें श्रीमती इन्दिरा गाँधीकी अध्यक्षतामें गठित राष्ट्रीय समितिके भी सदस्य तथा उक्त समितिकी कार्यकारिणीके भी सदस्य थे।

इसी भाँति आसाम सरकार द्वारा गठित ऑल आसाम २५०० वी निर्वाण समितिके भी आप सदस्य रहे। ऑल इण्डिया दिगम्बर भगवान् महावीर २५०० वी निर्वाण महोत्सव सोसायटी, देहलीके आप वर्किंग प्रेसीडेन्ट थे।

मन्दिरोंके निर्माता एवं संरक्षक

श्री सरावगीजी मन्दिरोंके निर्माण, मानस्तम्भोंकी स्थापना तथा धार्मिक अनुष्ठानोंमें श्रद्धापूर्वक भाग लेते थे। गौहाटी, मरसलगंज तथा शान्तिवीरनगर श्रीमहावीरजीमें सम्पन्न पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सवोंमें आपका मुक्त हस्तसे सहयोग सर्वविदित है। आपने स्वअर्जित चंचला लक्ष्मीका सदुपयोग विभिन्न तीर्थोंपर लाखों रुपयोंका दान देकर किया है। श्री सरावगीजी ने सुजानगढ़में मानस्तम्भका निर्माण कराया तथा शान्तिवीर नगर श्रीमहावीरजी में ६१ फीट ऊँचे संगमरमरके मानस्तम्भका निर्माण कार्य आपके द्वारा हुआ। श्री सरावगीजी तीन बार सम्पूर्ण भारतके जैन तीर्थोंकी वंदना कर चुके और सन् ६६ से प्रतिवर्ष पर्यूषण पर्व तथा अष्टाह्निका पर्वमें उपवास करते थे।

भरा पूरा सुखी परिवार

सरावगीजीका विवाह १-५-१९३० को श्रीमती भँवरीदेवीजीके साथ सम्पन्न हुआ जो स्वयं सरल स्वभावकी धर्मपरायणा विदुषी महिला रत्न हैं और अपने अतिथियोंको स्वजनोंसे भी अधिक मान सत्कार देती हैं। श्री सरावगीजीके सर्वश्री गणपतरायजी, रतनलालजी व भागचन्दजी सुयोग्य पुत्र है, तथा गिनिया-देवी, सुशीलादेवी, किरणदेवी, विमलादेवी तथा सरलादेवी नामक पाँच पुत्रियाँ धर्मप्राण, सुसंस्कृत और सम्पन्न परिवारोंमें विवाहिता हैं। अभी पिछले वर्षों ही आपके दो पुत्रों तथा एक पुत्रवधूने जापान आदि देशोंका भ्रमणकर वैदेशिक अनुभव लाभ लिया है।

स्वयंमें संस्थाओंका समूह

दानवीर सेठ श्री चांदमलजी सरावगी स्वयंमें अनेक संस्थाओंका समूह थे। कितनी ही संस्थाओंके संस्थापक, जन्मदाता, संरक्षक, सभापति और कार्यशील नेता वे रहे हैं, वे असम प्रदेश कांग्रेसके सदस्य तथा असम चेम्बर आफ कामर्सके अध्यक्ष पदको सुशोभित कर चुके हैं। अनेक संस्थाओंका आजीवन संरक्षक बननेका गौरव भी श्री सरावगीजीको प्राप्त था।

सौभाग्यवती, दानशीला, जैन-महिलारत्न
श्रीमती भँवरीदेवी जी पांड्या : एक परिचय

●

श्रीमती सौभाग्यवती दानशीला जैन महिलारत्न धर्मचन्द्रिका सेठानी श्री भँवरीदेवीजी पांड्या सुजानगढ़ निवासीसे कोई अपरिचित नही है। आप अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभाके अध्यक्ष एवं कई उच्च पदोंपर प्रतिष्ठित श्रीमान् जैनरत्न, श्रावक शिरोमणि, धर्मवीर आचार्य-संघ-भक्त दिवाकर, गुरु-भक्त-शिरोमणि, दानवीर, राय साहिब सेठ चाँदमलजी सरावगी पांड्या सुजानगढ़ निवासीकी धर्मपत्नी हैं। आप जैनमहिलादर्श पत्रकी संरक्षिका हैं।

आपका जन्म मारवाड प्रान्तके अन्तर्गत मैनसर ग्राममें स्वर्गीय सेठ मन्नालालजी गंगवालकी धर्म-पत्नी श्रीमती बालोदेवीकी वाम कुक्षिसे हुआ। सच ही कहा है कि पुण्यात्मा जीवके घरमे आते ही लक्ष्मी स्वतः ही आने लगती है। पिता मन्नालालजीके चारों ओरसे लाभ ही लाभ होने लगा। आपका बाल्यकाल बडे आमोद-प्रमोदके साथ व्यतीत हुआ। श्रीमान् मदनलालजी, मालचन्दजी, चम्पालालजी इन तीन भ्राताओंमें आप मध्यवर्ती बहिन हैं। आप इकलौती होनेके कारण घरमें बहुत लाड प्यारसे पाली गईं। १३ वर्षकी अवस्थामें लालगढ़ निवासी स्वर्गीय सेठ मूलचन्दजीके पुत्र रत्न श्रीमान् रा. सा. चादमलजी पांड्याके साथ आपका शुभ पाणिग्रहण संस्कार दिनांक १ मई सन् १९३० को सानन्द सम्पन्न हुआ।

विवाहके पहले श्रीमान् चादमलजी पांड्याकी स्थिति आज जैसी नही थी। इस नारी रत्नके आते ही चारों ओरसे प्रकाशकी किरणें प्रस्फुटित होने लगी और श्री चादमलजीकी ख्याति तथा यश-मान दिन दूना रात चौगुना वृद्धिगत होने लगा। आप उच्च आदर्श विचारधाराकी एक सुशीला नारी हैं। आपका परिवार पूर्णरूपसे हरा भरा है। आपके तीन पुत्र रत्न एवं पाँच पुत्रियाँ तथा नाती पोतोंका ठाट है।

१. श्रीमान् गणपतरायजी साहब आपके ज्येष्ठ पुत्र है। उनका विवाह लाडनूं निवासी श्रीमान् दीपचन्दजी पहाडियाकी सुपुत्री नवरत्न देवीके साथ हुआ है। श्रीमान् गणपतरायजी भी अपने पिताकी तरह गुणवान एवं कुशल सामाजिक कार्यकर्त्ताओंमें से एक हैं। इस समय आप व्यापारिक क्षेत्रमें जुटे हुए हैं तथा अपने व्यापारकी उन्नतिके लिये संलग्न हैं। अभी हाल ही में आप व्यापारिक पहलुओंको लेकर जापान यात्रा पर गये थे, साथमें अपने लघु भ्राता श्री भागचन्दजी एवं अपनी धर्मपत्नीको भी ले गये थे। आपके एक पुत्र तथा दो पुत्रियाँ हैं। श्री नरेन्द्रकुमार आपका पुत्र है।

२. आपके मँझले पुत्र श्री रतनलालजी हैं। इनका विवाह लाडनूं निवासी श्रीमान् नथमलजी सेठी-की सुपुत्री श्रीमती सरितादेवीके साथ हुआ। शिक्षाके क्षेत्रमें आपकी प्रबल इच्छा आरम्भसे ही रही है। अतः आपने जयपुर इन्जीनियरिंग कॉलेजसे पोस्ट ग्रेज्युएशन प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण किया है। आपके एक पुत्र है जिसका नाम विमलकुमार है।

३. श्री भागचन्दजी साहब आपके कनिष्ठ पुत्र हैं। अभी आप अध्ययनमें संलग्न हैं। आप एक कुशल टेबिलटेनिस खिलाड़ी हैं। इसकी विशेष योग्यताके कारण आपके पास जगह जगहसे आमन्त्रण आते

रहते हैं। इसके साथ साथ आपकी भावी प्रबल इच्छा एक कुशल संगीतकारके रूपमें आनेकी है। गौहाटी विश्व विद्यालयसे B. Com. की परीक्षामें फर्स्ट क्लास फर्स्ट उत्तीर्ण हुए है। वस्तुत. यह एक सुसयोग ही है कि इस धार्मिक परिवारमें लक्ष्मी सरस्वतीका पूर्ण वरदहस्त है।

आपकी पाँचों पुत्रियाँ सुन्दर तथा गृह कार्यमें निपुण हैं। सभीके विवाह सुसम्पन्न घरानोंमें हुए हैं।

धार्मिक क्षेत्रमें भी आपकी रुचि अनूठी व अनुकरणीय है। आपका अधिकाश समय धार्मिक कार्योंमें ही व्यतीत होता है। आपकी रुचि सदैव श्रावक एवं त्यागी वर्गकी सेवामें निमग्न रहती है। आप नश्वर ससारकी असारताको देखते हुए पूर्ण रूपसे सादगीमें रहती है। सादा जीवन एवं उच्च विचार आपका लक्ष्य बना हुआ है, इसी आधारपर आपने अपने जीवनका अधिकांश भाग आत्मकल्याणके मार्गमें ही लगा रखा है। आपके हृदयमें कोमलता एवं करुणा भाव सदैव विद्यमान रहते हैं। इन सब उच्च आदर्श विचारोंके कारण आपने दिगम्बर जैन महिला समाजमें ख्याति प्राप्त की है। प्रत्येक धार्मिक क्षेत्रमें आगे आना तथा धार्मिक कार्यमें अग्रसर रहना आपकी विशेषता है। आपकी मृदु वाणी सुनकर महिला समाजने भूरि-भूरि प्रशसा की है। आपकी प्रबल इच्छा रहती है कि वे सदैव १०८ मुनिराजोंकी सेवामें रत रहे तथा उनके उपदेशोंकी झलक आपके दैनिक जीवनमें दिखाई देती रहे।

इस धार्मिक रुचिके कारण आप समय समयपर तीर्थ-धामोंकी यात्रा अपने पतिके साथ की है। तीर्थ क्षेत्रोकी सहायता करना एवं आवश्यकताओंकी पूर्ति करना आपका एक विशेष गुण है। मुनियोके दर्शनार्थ समय समयपर बाहर जाना तथा मुनियोंको आहारदान देना एवं उनके सत् उपदेशोको सुनना आपकी जीवनचर्याका प्रमुख अङ्ग है। आपने मुनिराजोंके सद्-उपदेशोसे प्रेरित होकर अपने पतिदेवके द्वारा मरसल्गजमें पचकल्याणक प्रतिष्ठा करवाई और अपनी चंचला लक्ष्मीका सदुपयोग किया। श्री शान्तिवीरनगर श्री महावीरजी एवं गोहाटीके पञ्चकल्याणकोंमें आपका सराहनीय योगदान रहा। आपके पतिदेव द्वारा श्री शान्तिवीरनगर, श्री महावीरजीमें मानस्तम्भकी स्वीकारता दिलाने-में आप ही की सत्प्रेरणा है।

धर्मकी लगनके कारण तथा अपने बच्चोंमें धार्मिक संस्कार लानेके लिये सुजानगढ एवं गौहाटीमें आपने अपने निवासस्थान पर चैत्यालयोंका निर्माण करवाया है। इस धार्मिक रुचिके कारण गत वर्ष आप १०८ आचार्यकल्प मुनिराज श्रुतसागरजीके दर्शनार्थ भिंडर ग्राम गई थी। वहाँकी जैन समाजने आपका हृदयसे स्वागत किया। वहीं पर आपने भाद्रपदमें सदाकी भाँति अपने पतिदेवके साथ दशलक्षण व्रत किये और मुनिराजोंके सद्उपदेशोंका लाभ उठाया। आपकी पतिव्रत परायणताको देखकर वहाँकी समाजने आपकी भूरि भूरि प्रशंसा की। वास्तवमें यह सत्य ही है कि अपने पतिदेवको सच्चरित्र बनानेमें आपने चेलना जैसा कार्य किया है। जो कि सचमुच ही आजकी महिला समाजके लिये अनुकरणीय है।

आपकी शालीनताको देखकर भिंडरकी समाजने आपको मान-पत्र भेंट किया। भिंडरकी समाजने आपकी भूरि भूरि प्रशंसा की तथा आपकी मिलनसारिता व आत्मीयता वहाँकी समाजमें कूट कूट कर भर गयी जो भुलाये नहीं भूल पाती है। इससे पहले आप मागीतुंगी तीर्थक्षेत्र और १०८ आचार्य महावीर-कीर्तिजीके दर्शनार्थ गई थी। वहाँ पर आचार्य श्री के उपदेशोंसे प्रेरित होकर श्री आदिचन्द्रप्रभु आचार्य महावीरकीर्ति सरस्वती प्रकाशन मालाकी स्थापना की। जिसका प्रथम पुष्प श्री देवता मंडल विधान पूजाके नामसे प्रकाशित हुआ तथा दूसरा आत्मान्वेषण पुष्प प्रकाशित हुआ है। इसकी लेखिका, सम्पादिका पूज्य १०५ श्री आर्यिका विजयमतिजी माताजी हैं। यह पुस्तक आध्यात्मिक विकासके लिये अत्यन्त उपयोगी है। तीसरा पुष्प पंचाध्यायी है जिसके टीकाकार न्यायालंकार श्री पं० मक्खनलालजी शास्त्री हैं। यह

महान् धार्मिक ग्रन्थ है। चतुर्थ सागार धर्मामृत है जिसकी अनुवादिका सुप्रसिद्ध आर्यिका विदुषीरत्न श्री १०५ सुपार्श्वमतीजी माताजी हैं। छठा पुष्प स्व० श्री १०८ आचार्य शिवसागरजी स्मृति ग्रन्थ है जो श्रद्धाञ्जलि समर्थक विशाल ग्रन्थ है। और भी कई बड़े-बड़े ग्रन्थ छपानेकी इनकी हार्दिक इच्छा है।

आपने सामाजिक क्षेत्रमें भी बहुत सराहनीय कदम बढ़ाया है। आपने जीवनमें लाखोंका दान दिया है, सच ही है कि लक्ष्मीका पासमें आ जाना फिर भी सरल काम हो सकता है, लेकिन उसका सुकार्य एवं सुपात्रमें लगाना अपनी एक अलग विशेषता रखता है। आपके नामसे अनेक सस्थाएं चल रही हैं। आपने इस चंचला लक्ष्मीको हमेशा सन्मार्गमें लगाया है। गौहाटीमें मूक बधिर बच्चोंका एक स्कूल चल रहा है जिसमें अनेक गूंगे और बहरे बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह स्कूल आसाम भरमें अपनी विशेषता रखता है। इसके अतिरिक्त एक अन्य मोन्टेसरी पद्धति पर आधारित छोटे बच्चोंका स्कूल भी हाल ही में निर्माण करवाया है। समय समय पर खुलने वाली बहुत-सी संस्थाएं ऐसी हैं जो इनकी दानशीलताको भुलाये नहीं भूलतीं। आपके द्वारको जिस जिसने भी खटखटाया है सबको आशाकी झलक मिली है। आये हुए को निराश लौटाना आपने सीखा ही नहीं, गरीबोंको दान वस्त्रादि देना नित्यप्रतिका कार्य है।

आपकी विचारधारा धार्मिक एवं उच्च भावनामय है। समय किसी की भी नहीं सुनता है, इस सिद्धान्तको लेकर कोई भी कार्य धार्मिक हो या सामाजिक, उसमें आप कभी भी आलस्य या प्रमाद नहीं करती हैं। इतना करते हुए भी आप अपनेमें अहङ्कारकी बू तक नहीं आने देती हैं। आये हुए अतिथि व मेहमानका स्वागत करना, आवभगत करना आपका सचमुच अनुकरणीय गुण है। आपका हँसमुख चेहरा एक बार देखने मात्रसे कभी विस्मृत नहीं हो सकता।

अ० भा० दि० जैन शास्त्रि-परिषद् के युगल स्तम्भ
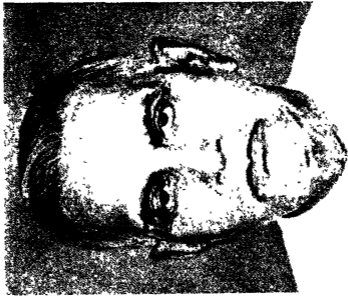
डॉ० लालबहादुर जी जैन, शास्त्री, एम० ए०, साहित्याचार्य

प० बाबूलाल जी जैन जमादार, साहित्यरत्न

अपनी बात

विज्ञ पाठको ! आज अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्का पुष्प नं० १०० (एक सौ) आपकी सेवामें समर्पित है। शास्त्रि परिषद्ने जो दृढ निश्चय किया साहित्य प्रकाशनका वह शनैः शनैः अपनी गतिसे आगे बढ रहा है। भगवान् महावीर स्वामीके २५०० वें निर्वाण वर्षमें इस ग्रन्थका निर्णय किया था अब छपकर आपके हाथोमें है। स्वीकार करें।

स्व०रा०सा० सेठ चाँदमल जी पांड्या भविष्यवक्ता थे, या समाजद्रष्टा थे क्या थे यह तो अनुभवी जानते हैं। मुझसे जब अनाईजामवाद (पुरलिया)में वेदी प्रतिष्ठाके शुभावसरपर सन् १९७३ ई० में मिले और सराक जातिके उत्थानके विषयमें अपने सहयोग बावत वचन दिया तब एक बात उन्होंने हमें अलग ले जाकर बडी गम्भीरतासे बताई। जिसे सुनकर हमने उस समय पूरी तरह विश्वास नहीं किया था, लेकिन समयने व उन व्यक्तियोंके कूटनीतिक कार्योंने उनकी बात अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दी और हम आज पाँड्याजीको भविष्यवक्ताके रूपमें माननेको तो तैयार है ही, समाजद्रष्टाके रूपमें भी मानने लगे हैं। उन्होंने वर्तमान दिगम्बर मुनियो व आचार्योंकी अवहेलनाकी चर्चा भी बडे दुःखके साथ की थी और कहा था कि वह समय शीघ्र आनेवाला है जब बडे-बडे धनपति अपने पदका दुरुपयोग करेंगे, मुनिनिंदापर उतरेंगे और उनकी आलोचना प्लेटफार्मोंसे करेंगे तब समाजमें चेतना जागेगी और समाज अपने मार्गदर्शकोंको सही दिशामें पहचान सकेगी तब आचार्यपरम्पराकी रक्षा होगी।

आज वह हमारे मध्य नही है, यदि होते तो दोनों भविष्यवाणियां सही उतर गई। उन्हें देखते सुनते ! पर' '। जैन जनगणनाका कार्य जब स्व० जैनरत्न सेठ शीतलप्रसादजी मेरठने हमसे पूर्ण परामर्श करके अ० भा० जैन परिषद्को सौपा और हमने कोई भी एतराज न किया तब भी रा० सा० सेठ चाँदमलजीने कहा था कि बडी भूल की जो ऐसे हाथोंमें कार्य सौंपा जो उसे पूरा क्या आधा भी न कर सकेंगे। लेकिन परिषद्ने शीघ्र ही अ० भा० जैन जनगणना समितिका रूप धारण करके विशाल कमेटीका गठन किया और जो भी कार्य वह कर सकी किया पर हमारे किये तक वह न पहुँच सकी और उसे भी आधा सिद्ध करा दिया, यहाँ भी रा० सा० पाड्याजीका अनुमान सत्य निकला।

विद्वानोंका सम्मान भ० महावीरका २५०० वें निर्वाण वर्षमें रंचमात्र ही सफल होगा क्योंकि जो निर्वाण कमेटी अ० भारतीय बनी है उसका लक्ष्य विद्वानोंकी ओर नही है मात्र अपनी प्रशंसाके लिए विद्वान् दो-चार कमेटीमें रखे है उन्हींको थोड़ा-बहुत सम्मान उपाध्याय श्रीमुनि विद्यानन्दजी करा देंगे बाकीका स्मरण भी नही होगा! इस वाक्यसे हमें बहुत बडी वेदना पैदा हुई और हमारा लक्ष्य बन गया कि हम अपने विद्वानोंका जीवन परिचय (विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ) ग्रन्थ अवश्य छपवावेंगे और उनका फिर स्थायी स्मरण समाजके सामने रखेंगे। यह दृढता जब हमने रा०सा० सेठ चाँदमलजी सा० के सामने रखी तो वह बहुत प्रसन्न हुए। बोले हमें विश्वास है कि 'तुम अपनी प्रतिज्ञा निभाओगे।' यदि ग्रन्थ बना तो छपवा हम देंगे चाहे कितना ही खर्च क्यों न आवे। पर, ध्यान रखना विद्वानोंमें भेदभाव न करना, किसी भी धाराके विद्वान् हों परिचय सभी का छापना। हाँ, साथमें मुनिराजों, आर्यिकाओं, व्रतियोंका भी परिचय छापना ताकि आनेवाली

पीढी जान सके कि हमारे देशमें कौन-कौन आचार्य, मुनि, क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिकायें, विद्वान् थे व है। श्रीमंतोंके तो रोज ही परिचय छपते हैं। भगवान् महावीरके उपासकों व संरक्षको और प्रचारकोंके परिचय कब कब छपते है आदि। बाते करते करते उनकी आँखोंसे अश्रुकण टपक पडे। मैं भी भावविभोर हो उठा और सेठजीको पक्का वचन दिया कि ऐसा ही ग्रन्थ आपके द्रव्यसे हम छपवावेंगे और समाजको समर्पित करेंगे।

इस विशाल कार्यको हमारे साथी और मार्गदर्शक स्व० पं० बाबूलालजी जैन शास्त्री नई सडक देहलीको हमने सुपुर्द किया। उन्होंने बडी लग्नसे कार्यका सञ्चालन व सग्रह शुरु किया। कुछ ही पग वह चले थे कि मौतने उन्हें धर दबोचा। सन् १९६९ ई० में वह स्वर्गवासी हुए भादों सुदी ५ का वह दिन साथी विहीन हो गया। हम निराश्रितसे सोचमें पडे थे कि यकायक हमारे पास जैन जगत्के उदीयमान नवयुवक विद्वान् श्री प० विमलकुमारजी जैन सोंरया एम० ए० शास्त्री मडावराका पत्र आया कि यदि हमें आज्ञा दी जावे तो हम विद्वत् अभिनंदन ग्रन्थका कार्य शास्त्रिपरिषद्के माध्यमसे आगे बढावें, क्योंकि इन्होने भी विद्वानोंका परिचय इकट्ठा किया था। हमें प्रसन्नता हुई और सारा काम भाई सोंरयाजीको सौप दिया। सोंरयाजीमें प्रतिभा देखी उन्हे अ० भा० दि० जैन शास्त्रिपरिषद्का स० मत्री भी सलुम्बर अधिवेशनमें बना दिया। अब हम निश्चिन्त थे।

विद्वानोंका परिचय प्राप्त करनेमें ही कई वर्ष लग गये। कई स्वर्गवासी भी हो गये, कई नवीन विद्वान् बनकर आ गये। कोई परिचय भेजनेमे आनाकानी करे, कोई मात्र इसे हमारा प्रचार प्रोपेगैंडा समझे, कोई भुलावा या मजाक समझे। बेचारे सोंरयाजी सभीको समुचित उत्तर देते और परिचय मांगते। हजारो रुपया इसीमें बिगडा। **फिर जैसा पूज्यवर्णीजी कहा करते थे कि 'ऋषियोंने ७२ कलाये बताई हैं लेकिन जैनियोंमें ७४ हैं। दो कलायें विशेष यह हैं—कि एक तो स्वयं कार्य करें नहीं। दूसरी जो कार्य करें उसमे विघ्न पैदा करें।** सो अक्षरश: समाजमें सिद्ध होती है वही स्थिति हमारे ग्रन्थके लिए पैदा हुई।

बीच बीचमें जब अंधा बाँटे रेवडी''''वाली कहावत पुरस्कारो सम्मानोकी हुई और अपना एकाती पक्षका निर्माण जैन समाजमें बनने लगा जिससे सभी देवशास्त्रगुरुभक्त समाज चिन्तित हुई तब रा० सा० सेठ चाँदमलजी सा० ने प्रेरणा की कि आप अपना ग्रन्थ शीघ्र छपवाओ अन्यथा यह ग्रन्थ हवामें न रह जावे और आपकी व हमारी बदनामी हो आदि।

हम मजबूर थे, क्योंकि ग्रन्थकी पाडुलिपि एक विद्वान्के पास भेजी थी उसने ही हमें अधरमे लटका दिया। भाई सोंरयाजीको जो यातना उससे ग्रन्थ लेनेमें हुई उसे लेखनीबद्ध नही कर सकते फिर भी विद्वान्ने उपकार करके ग्रन्थकी पाडुलिपि लौटा दी और हम सकटसे उबर गये।

हमारा दुर्भाग्य कि इसी बीच–रा० सा० सेठ पाण्डयाका स्वर्गवास होगया और जैन जगत्में एक अँधेरा सा छा गया। ग्रथका कार्य बीचमें रुका रहा 'किंकर्त्तव्य विमूढ थे कि पूर्वांचल धर्मचक्रका सचालन भार मुझे सौंपा गया और समस्त पूर्वांचलमें धर्मचक्रकी धूम मची। सन् १९७४-७५ वर्ष पूर्वांचलके चप्पे-चप्पेपर घूमा। जैन जगत्के महान् कार्यकर्त्ता समाजभूषण जैनरत्न सेठ लखमीचन्द्रजी छावडाने जो अ० भा० दि० जैन महासभाके अध्यक्ष हैं—जिन्हे स्व० रा० सा० सेठ चादमलजी पाड्या सदैव गर्वसे अपना उत्तराधिकारी कहा करते थे। वह सदैव सामाजिक कार्योंमें छावडाजीको साथ रखते थे। होनेवाला महासभाका अध्यक्ष वह जब कहते तब छावडाजी नतमस्तक हो जाते थे। विधिको यही मंजूर था आप वर्तमानमें अध्यक्ष है।

तो एक दिन छावडाजीने पूंछ लिया कि रा० सा० सेठ चादमलजीके विद्वत् अभिनन्दन ग्रंथका प्रकाशन हुआ है या नही? हमने कहा कि नही? वह चौंके, क्या बात! हमने कहा कि अभी सेठ गनपतरायजी

पांड्यासे (रा० सा० के बडे सुपुत्रसे) मिले नहीं हैं। उनसे स्वीकृति मिले तब ही ग्रंथ प्रकाशित हो आदि बातें हमने गोहाटीमें की। विजयनगर पंच कल्याणक प्रतिष्ठामें पुन. चर्चा हुई और आखिरमें जैन-जगत्की पूर्ण आशाओंके केन्द्र उदीयमान नवयुवक श्री सेठ गनपतरायजी पांड्यासे जब हम उनके घर पर मिले। दानशीला मुनिभक्त जिनवाणी उपासिका श्रीमती भंवरीदेवीजी (ध० प० रा० सेठ चांदमलजी पाड्या)ने ग्रंथ बाबत सुना और सभी घटना बताई तभी हमें प्रकाशनकी शीघ्र अनुमति मिल गई। फौरन वाराणसी कागज, ब्लाक आदिके लिये रुपया भिजवा दिये गये और कार्य प्रारम्भ हुआ। हम पांड्याजीके धर्मज्ञ पुत्रोंके आभारी हैं साथ ही मान्य छावड़ाजीके जिन्होंने पुनः प्रेरणा की।

महावीर प्रेसके मालिक भाई बाबूलालजी फागुल्ल, वाराणसीने जिस तत्परतासे तथा सुन्दरतासे ग्रन्थका प्रकाशन किया उसके लिये हम उनके आभारी है। वह तो आज भारतवर्षमें विशाल ग्रन्थोंके प्रकाशनके लिये प्रसिद्ध हैं। उन्हीकी विशेष सूझ-बूझ इस ग्रन्थमें चमकी है।

अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्के अध्यक्ष अनेक पदविभूषित पंडितरत्न डा० लालबहादुरजी जैन शास्त्री एम० ए०, पी० एच-डी० का विशेष आभारी हूँ जिन्होंने हमें समय-समयपर सुझाव दिये। इससे अधिक आभारी हम उन उच्चकोटिके लेखक विद्वानों कवियोंके है जिनकी रचनायें हमें गौरवके साथ इस ग्रन्थमें प्रकाशन हेतु मिली है। हमारी तुच्छ प्रार्थनापर उन्होंने अपने अमूल्य लेख भेजकर जो जिनवाणी सरस्वती मांका गौरव बढ़ाया है उसे इतिहास सदैव स्मरण रखेगा।

श्री भाई विमलकुमारजी सोंरयासे हमें बडी-बडी आशायें है। समाजको इन्ही जैसी प्रतिभाकी आवश्यकता है। यह हमारे स्तम्भ हैं, सहारे हैं इन्हींसे हम सुखी होंगे, समाज फलेगी फूलेगी। ग्रन्थमें जो अच्छाई है वह सब पाठकोंकी है और बुराई सब हमारी है। अशुद्धियों और कमियोंके लिये क्षमा प्रार्थी हूँ। अल्पज्ञ-जान क्षमा करना।

बडौत (मेरठ)
१५-१२-१९७६ ई०

बाबूलाल जैन जमादार
महामंत्री
अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्

●

प्राक्कथन

एक लम्बी प्रतीक्षाके बाद विद्वदभिनंदन ग्रन्थ मुझे पाठकोंके हाथमें देते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। विद्वानोंके अभिनंदनकी परम्परा नयी नहीं है। जबसे विद्याका आदर है तभीसे विद्वानोंका भी अभिनदन होता आ रहा है। प्राचीन जमानेमें राजपंडित हुआ करते थे जो राजदरबारकी शोभा बढाते थे। उनकी प्रतिष्ठा वैभव और राजसमादर देखकर यह लोकोक्ति बनी 'विनाश्रया न शोभन्ते पण्डिता वनिता लता' यहाँ आश्रयका अर्थ राज्याश्रय ही है। नगर सेठकी तरह ये राजदरबारी विद्वान् भी नगरकी श्रद्धाके पात्र होते थे। सुना है आजसे १०० वर्ष पहले तक सभवत टीकमगढ स्टेटमें धोती परीक्षा हुआ करती थी। उसका अभिप्राय इतना ही था कि कोई नया विद्वान् जब राज्यमें आता था तब राजदरबारके पडित उसकी परीक्षा लिया करते थे। और परीक्षामें कुछ भी पूछा जा सकता था। वहाँ किसी विषय या पुस्तकका बन्धन नही था कि अमुक सम्बन्धमें हो प्रश्न पूछे जा सकते है। उस परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर विद्वान्की पालकी निकाली जाती थी और प्रारभमें स्वयं टीकमगढ नरेश उस पालकीमें कंधा लगाते थे।

नीतिकारोने तो राजासे भी अधिक विद्वानोंका अभिनन्दन किया है और यहाँ तक लिखा है—

'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' अर्थात् राजाका समादर तो अपने राज्यमें ही होता है किन्तु विद्वानोंका समादर सर्वत्र होता है। इस तरह विद्वानोंके अभिनन्दनकी परम्परा यद्यपि नवीन नहो है फिर भी विद्वानोंका यह सामूहिक अभिनन्दन जो किसी सभा मंचपर ही नही किन्तु स्थायी साहित्यिक मञ्चपर भी स्थान ले रहा है अपने आपमें सर्वथा नया और गरिमापूर्ण है।

विद्वानोंके अभिनन्दनकी आवश्यकता क्यों हुई इसका उत्तर इतना ही है कि विद्वान् समाज और संस्कृतिकी रक्षा करते है। समाजको गारुडी प्रवाहसे सावधान करना होता है, संस्कृतिको अन्य मिश्रणसे बचाना होता है यह कार्य विद्वान् ही कर सकते है। मार्गदर्शनकी तरह उनका कार्य अत्यन्त लोकोपकारी होता है। दर्शनोंकी अभिव्यक्ति किन्ही विशिष्ट महापुरुषोंसे होती है। दार्शनिक क्षेत्रमें उन महापुरुषोकी प्रतिष्ठाओंको बचा रखना विद्वानोंका काम है। कहा जाता है कि पुरीमें कभी एक विद्वान् जगन्नाथजीके दर्शनार्थ गये। वहाँ उन्हें मन्दिरके कपाट बन्द मिले। उन कपाटोंको उन्होंने खोलना चाहा पर पर्याप्त प्रयासके बाद भी जब कपाट न खुले तो उनके मुखसे सहसा निकल पड़ा—

ऐश्वर्यमदमत्तोऽसि, मामवज्ञायसे यत.।
सौगते हि समायाते, मदधीना तव स्थिति.॥

अर्थात् हे जगन्नाथ! तुम ऐश्वर्य मदसे मत्त हो रहे तो इसीलिये मेरा अपमान कर रहे हो, लेकिन जब बौद्ध विद्वान् शास्त्रार्थको आयेगा तब तुम्हारी स्थितिको मैं ही बचा सकूंगा।

इसमें यद्यपि उस विद्वान्की गर्वोक्ति अवश्य प्रतीत होती है फिर भी समझनेकी बात इतनी ही है कि विद्वान् उस भगवान्की स्थितिको भी सम्हालता है जिसकी अन्य जनता पूजा उपासना करती है।

अतः संस्कृति और उसके प्रणेताओंके प्रहरी होनेके कारण विद्वानोंका अभिनन्दन अत्यन्त आवश्यक है। प्रश्न हो सकता है कि विद्वानोंका अभिनन्दन तो जरूरी है पर विद्वानोंकी प्रशंसा विद्वान् ही करें यह

कहाँ तक उचित है ? इस सम्बन्धमें निवेदन है कि किसी वर्गके गुणदोषोंको उसका वर्ग ही जानता है दूसरा नही। विद्वान् ही विद्वान्को पहचानता है अविद्वान् नही। अतः विद्वान्के अभिनन्दनमें वास्तविकता तभी आती है जब विद्वानोंका उसमें सहयोग हो। इस आशयकी एक सूक्ति भी इस प्रकार है—

विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ।
न हि बन्ध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम् ॥

विद्वान्के परिश्रमको विद्वान् ही पहचानते हैं अविद्वान् नही। प्रसवकी पोडाको प्रसूता स्त्री ही जानती है बांझ महिला नही। इसलिये विद्वानों द्वारा ही विद्वदभिनंदनकी उपयुक्तता है।

विद्वदभिनदन ग्रन्थकी आवश्यकताको एक लम्बे अर्सेसे महसूस किया जा रहा था। पर वह केवल पारस्परिक बात-चीत तक ही सीमित रह जाती थी। उसके मूर्तरूप देनेको विधाओंपर कभी किसीने नहीं सोचा। श्री पण्डित विमलकुमारजी सोंरया शास्त्री, एम० ए० मडावराने स्वत ही व्यक्तिगत रूपसे इस कार्यको मनमें संजोया और उसी क्षणसे इसको मूर्तरूप देनेमें लग गये। इसके लिये कहाँसे कैसे अर्थसंग्रह होगा, विद्वानोका परिचय कैसे और कहाँसे प्राप्त होगा; दिवंगत विद्वानोंका इतिहास कैसे मिलेगा ? इस सबके सोचनेमें समय न लगाकर उन्होंने कार्य करना प्रारंभ कर दिया। और अपने अथक प्रयत्नोंसे उन्होंने काफी सामग्री इकट्ठी कर ली। प्रसङ्गानुसार आप शास्त्रि परिषद्के सदस्य बने। आपकी सक्रियता और कार्य निष्ठाको देखकर आपको भा० व० दि० जैन शास्त्रि परिषद्का संयुक्त मंत्री चुन लिया गया। एक दिन आपने मुझसे इच्छा प्रकट की कि शास्त्रिपरिषद्की तरफसे विद्वानोंका एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकट होना चाहिये। मैंने मनमें कहा कि कैसी शेखचिल्ली जैसी बातें करते है ? मैंने पूछा इसमें कौन श्रम करेगा और प्रकाशनके लिये कहाँसे पैसा आवेगा ? बोले आप श्रमकी बात करते है मेरे पास बहुत-सा मैटर इकट्ठा है और पैसा भी कही न कहीसे आ ही जायगा, आप क्यों चिन्ता करते हैं। मैं सुनकर हैरान हो गया। समय आया शास्त्रिपरिषद्ने इस सम्बन्धमें प्रस्ताव पास किया। विमलकुमारजी सौंरया जी-जानसे कार्यमें जुट गये। अपना पैसा भी खर्च किया। सम्पादक मण्डलकी भी नियुक्ति हो गई। रायसाहब दानवीर सेठ चादमलजीने प्रकाशन व्ययका उत्तरदायित्व लिया। और वह ग्रन्थ जो कभी स्वप्न बना हुआ था आज पूर्ण होकर पाठकोंके हाथमें पहुँच गया। वास्तवमें इस सबका श्रेय प० विमलकुमारजी सोंरया शास्त्री एम० ए० को है।

ग्रन्थमें बीसवी शतीके उन सभी छोटे-बडे विद्वानोंका परिचय है जिन्होंने अपने-अपने ढगसे समाज और संस्कृतिकी सेवा की है। परिचय प्रायः विद्वानोंके अपने ही लिखे हुए हैं। कही-कही उन्हे संशोधित कर दिया गया, जो परिचय आवश्यकतासे अधिक लम्बे थे उन्हें थोडा सक्षिप्त कर दिया गया है। परिचय किस क्रमसे लिखे जायँ ? इसके लिये यह उचित समझा गया कि नामके अकारादि अक्षरोके क्रमसे विद्वानोंके परिचय ग्रन्थमें दिये जायं। जो विद्वान् दिवंगत हो गये है उनके परिचयोंका यथाशक्य सङ्कलन किया गया है। हो सकता है इसमें कुछ विद्वानोंके परिचय छूट गये हो पर वे हमारे प्रमादसे नही किन्तु बार-बार व्यक्तिगत तथा समाचारपत्रों द्वारा सूचना देनेपर भी वे हमें प्राप्त नही हुए। विद्वानोंके पारस्परिक मतभेदोंकी भी सपादकोंने उपेक्षा की है। अत. किसके क्या विचार हैं इसको महत्त्व न देकर मात्र उनके परिचयोंको ही महत्त्व दिया गया है। विद्वानोंके परिचयके साथ उन साधु और त्यागी वर्गोंके भी परिचय दिये गये हैं जिन्होंने अपने त्याग और तपोमय जीवनसे न केवल साधारण जनतामें अपितु विद्वानोंमें भी श्रद्धा और चारित्रके बीज वपन किये हैं। पं० नन्दनलालजी, पं० भूरामलजी, पं० महेन्द्रकुमारजी विद्वान् ही थे जो साधुओंका आशीर्वाद प्राप्तकर क्रमशः सुधर्मसागरजी, ज्ञानसागरजी, महावीरकीर्तिजी बने और अपनी त्याग

एवं विद्वत्तासे एक संस्कृतिका इतिहास निर्माण कर गये। इसलिये हमने इन संस्कृतिके निर्माताओंका भी सङ्कलन किया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषयोपर विद्वानोंके लेख भी प्रकाशित किये है। चित्र भी हमने प्राय सभी विद्वानोंके प्रकाशित किये हैं। बार-बार लिखनेपर भी कुछ विद्वानोंने हमें चित्रादि नही भेजे अत उनके न छपनेका हमें खेद है।

ग्रन्थके प्रकाशनमें शास्त्रिपरिषद्के मंत्री पं० बाबूलालजी जमादारने अत्यधिक दौड़-धूप की है। शास्त्रिपरिषद्के मंत्रित्त्व कार्यके अतिरिक्त उनपर सामाजिक कार्योंका भार भी अत्यधिक रहता है। भ्रमण करनेमें यदि उन्हें रेलकायका जीव कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही है। यह सब कुछ होते हुए भी सम्पादकोंको प्रेरित कर ग्रन्थ तैयार करना, छपाई आदिकी व्यवस्था करना, अर्थ संग्रहका प्रबन्ध करना ग्रन्थको बनारस भिजवाने आदिमें आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। मैं इस ग्रन्थके प्रकाशनमें अपने सहयोगियोंको धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस दुरूह कार्यको प्रसन्नताके साथ सम्पन्न किया।

इसी प्रसङ्गमें ग्रन्थके मुद्रक श्री बाबूलालजी फागुल्लको भी धन्यवाद देता हूँ। जिन्होंने थोडेसे दिनों-में इस विशालकाय ग्रन्थको कलापूर्ण ढंगसे मुद्रित किया है। प्रेसकी अपनी कुछ असुविधाए रहती हैं तथा वायदेके अनुसार अन्य मुद्रण कार्य भी करने होते है उन सबसे समय निकालकर इस ग्रन्थको समयपर उन्होंने प्रकाशित किया और हमारी प्रतिष्ठाको बढाया।

इस ग्रन्थके प्रकाशनका कार्य पूर्ण होने पर मुझे स्वर्गीय सेठ चादमलजीका बार-बार स्मरण आता ह जिनकी उदारता और वदान्यतासे यह ग्रंथ प्रकाशित हो सका है। स्वर्गीय सेठ चादमलजीके जैन समाजपर अनन्त उपकार है। उन उपकारोंमें से एक यह ग्रन्थका प्रकाशन भी उपकार है। वे अपने आपमें एक चलती-फिरती सस्था थे जिसकी बहुमुखी प्रवृत्तियाँ रहती थी। 'सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूला'की नीतिके अनुसार यदि आप इसके प्रकाशनमें एकमुश्त हजारोंकी सहायता प्रदान न करते तो सम्भवत ग्रन्थका प्रकाशन न होता या विलम्बसे होता। आज आप होते तो इस ग्रन्थको देखकर कितने प्रसन्न होते। आप न तो "आचार्य कुन्दकुन्द और उनका समयसार" शोध ग्रन्थको देख सके और न इस विद्वदभिनदन ग्रन्थको देख सके, जब कि दोनों ही ग्रन्थोंके मूलमें आपका हार्दिक सहयोग रहा। फिर भी हमें प्रसन्नता है कि उनके सुयोग्य पुत्र श्री गणपतरायजी पाण्ड्याने जो अपने पूज्य पिताके अनुरूप ही उदार हैं इस ग्रन्थके प्रकाशनमें प्रारम्भसे अन्त तक सहयोग दिया। इसके लिये मैं श्री गणपतरायजीका आभार प्रकट करता हूँ।

ग्रन्थ जैसा जिस रूपमें प्रकाशित है वह पाठकोंके हाथमें है। उसमें बहुत-सी त्रुटियाँ रही होंगी आशा है उसके लिये पाठकगण क्षमा करेंगे।

शास्त्रिपरिषद्का यह ग्रन्थ प्रकाशनका कार्य आप सबके साहाय्यसे हुआ है अत परिषद्के अध्यक्षके नाते मैं आप सबका साधुवाद करता हूँ और भविष्यमें भी इसी प्रकार शास्त्रिपरिषद्से सहयोग करनेकी कामना करता हूँ।

ग्रन्थ सम्पादनका काम बडा दुरूह है, नही कह सकता कि मैं इसमें कहाँ तक सफल हुआ हूँ। यदि इसमें कही कोई अच्छाई है तो उस सबका श्रेय मेरे सहयोगी सम्पादकों का है।

लालबहादुर शास्त्री

●

स्व० पं० बाबूलालजी जैन शास्त्री

[आपने इस विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ को प्रारम्भ किया था। शास्त्रि-परिषद् को पूर्ण सहयोग देते थे। आप आर्ष मार्ग के पोषक विद्वान् थे। जैनगजट साप्ताहिक के व्यवस्थापक व सम्पादक बहुत समय तक रहे हैं। आपने सामाजिक कार्यों, आन्दोलनों को सफलतापूर्वक पूर्ण किया है। श्री जमादार जी के परम हितैषी तथा साथी रहे।]

विद्वत् अभिनन्दन-ग्रन्थ के प्रधान सम्पादक

पं० विमलकुमार जी जैन सोरया

एम० ए०, शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य

मंत्री	संयुक्त मंत्री
श्री बुन्देलखण्ड स्याद्वाद-परिषद्	अ० भा० दि० जैन शास्त्रि-परिषद्

प्रधान सम्पादकीय

विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थके समायोजनकी मूल प्रेरणा इस विचार बिन्दुसे प्राप्त हुई कि हर व्यक्तिके अन्दर कुछ अपनी मौलिक प्रतिभा और वैशिष्ट्य होता है। भले ही उसकी अभिव्यक्तीकरण किन्ही विशेष परिस्थितियों वश न हो पाया हो, फिर एक ऐसा व्यक्ति जिसने अपनी विद्या, विनय और विवेकसे जन मानसको उद्वेलित कर उन्हें अल्पाधिक जैसा भी बन पडा, दिया ही दिया हो, लेनेकी वाञ्छासे निस्पृह रहकर समर्पित जीवनकी साधनाका साथी हो निश्चित ही अभिनन्दनका पात्र है। भले ही उसका अभिनन्दन ग्रन्थ न निकले उसे रजत पत्र या ताम्रपत्र भेंट न किया जाये। परन्तु ऐसे लोग मूक सेवाभावी होकर समाज और राष्ट्रको अपना आंशिक योगदान अवश्य करते हैं।

अत. भारतवर्षके जैनधर्म और दर्शनके मनीषी, अधिकारी विद्वान् आचरण और चारित्रके धनी आचार्य और मुनिराज, सेवाभावी व्यक्ति तथा ऐसे व्यक्तित्व, जिन्हे भले ही मुखरता प्राप्त न हो पायी हो परन्तु जिनकी प्रवृत्तियाँ साहित्य और अध्यात्मकी ओर निरन्तर अग्रसर रही हों, को समष्टि रूपसे उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्वको जगत्-पटलपर उभारनेके लिए तथा कृतज्ञता ज्ञापनरूप एक विवेचनात्मक परिचय देकर ही अभिनन्दन करनेकी बात अन्तःकरणसे उठी।

अपनी बात—एक सुव्यवस्थित रूपरेखा लेकर अपने अनुज चि० निहालचन्द जैन एम० एस-सी० बी० एड० से उचित परामर्श एवं राय जानने हेतु रखी। वह अपेक्षाकृत यथार्थभोगी रहा इसलिए इस क्षेत्रमें पुराने सन्दर्भोंको दुहराते हुए उन्होंने हमें मना किया—कि बहुत लोगोंने लम्बी चौड़ी भूमिकाएँ विज्ञापित कर परिचयात्मक ग्रन्थ प्रणयनकी योजना बनायी, परन्तु न जाने बीचमें क्या आ जाता है—कि 'खोदा पहाड निकली चुहिया' वाली बात चरितार्थ होकर रह जाती रही। तथा दूसरी बात जो उन्होंने हमें संकेत की वह आर्थिक-सौजन्यकी थी—वस्तुत: यह दोनों विकट समस्यायें थी कि इस योजनाको साकारता देनेके लिये इतनी धनराशि कहाँसे लायी जाये। ग्रन्थ तैयार हो जानेपर तो प्रकाशन व्यवस्था उतनी टेडी खीर नही रह जाती जितना उसके निर्माणमें आनेवाले प्रारम्भिक आर्थिक अनुदानकी—चूँकि मेरा संकल्प गहरा था, अतः शिक्षक पेशाके अल्पबचतका पूरा द्रव्य स्वाहा कर 'अपने घर आग लगाकर तमाशा देखने' वाली बात कर बैठा और परिचय किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा इस दृष्टिसे पूरी सांगोपाग एक प्रश्नावलीरूप परिचय-पत्रावलीका मुद्रण करवाकर उन्हें विद्वानोंके पास भेजना आरम्भ किया, तथा जिन विद्वानोंको परिचय-पत्रावली भेजी गई उनसे यह प्रार्थना की गई कि वह समीपस्थ स्वर्गीय एवं वर्तमान सभी विद्वानोंके नाम व पते भेजें जिससे हम उनके समीप भी यह पत्रावली भेज कर जीवन परिचय प्राप्त कर सकें।

विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थकी प्रारम्भिक रूपरेखा सन् १९६४ में जैन जगत्के प्रसिद्ध पत्रकार जैन गजटके प्रबन्ध सम्पादक प्रकाशक एवं शास्त्री परिषद्के सदस्य श्री पं० बाबूलालजी जैन शास्त्री नई सडक देहलीने बनाई थी जिसे अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्के महामंत्री जैनरत्न पं० बाबूलालजी जमादारने उस कार्यको आगे बढानेका प्रोत्साहन दिया लेकिन असमयमें उनका स्वर्गवास होजाने से कार्य रुक गया। लेकिन सन् १९६८ में इस विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थकी योजनाका कार्य श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बँधाजीसे साकार करनेका प्रस्ताव कमेटीमें रखा उस समय मैं उक्त तीर्थ क्षेत्रका महामत्री था। अत मेरे इस आयोजनका कमेटीने सादर सत्कार किया—इस प्रस्तावके अन्तर्गत विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थके अलावा स्व० पं० ठाकुरदास स्मृति ग्रन्थके प्रकाशनकी भी योजना थी।

परन्तु हमारे भूतपूर्व सहयोगी पदाधिकारी मित्रने इस योजनाको कार्यान्वित हुए लगातार ६ माह ही नहीं बीत पाए कि जबरदस्त एक विरोधात्मक प्रस्ताव कमेटीमें रखा कि इतना विशाल कार्य क्षेत्रसे न किया जाए—इस कार्यमें अर्थव्यय भी होगा, सफलता भी नही मिलेगी ?' मित्र की इस दुर्भावनाको मैंने समझा और इन दोनों ग्रन्थोंकी योजनाको क्षेत्र कमेटीसे पृथक् कर दिया।

विद्वत् परिचय योजनाको व्यक्तिगत रूपसे कार्यान्वित किये कोई एक वर्ष ही बीत पाया था, कि भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद्के मान्य अध्यक्ष श्री मान् डा० लालबहादुर शास्त्रीजी एम० ए, पी-एच० डी० दिल्ली एवं पण्डितरत्न श्री मान् वाणीभूषण बाबूलालजी जमादार मंत्री शास्त्रि परिषद्ने सराहा तथा शास्त्रि परिषद्के माध्यमसे इसे साकार करनेकी अनुमति प्रदान की—दोनों मान्य विद्वानोंका आशीर्वाद लेकर मैंने द्विगुणित उत्साहसे इसे साकार करने की प्रक्रिया आरम्भ की।

यद्यपि आरम्भमें मैंने जैन समाजके चारों सम्प्रदायों (दिगम्बर-श्वेताम्बर-स्थानकवासी-तेरहपंथी) के विद्वानों, साधु महात्माओं एवं साहित्यकारोंके जीवन परिचय संकलित किए जानेका कृतसंकल्प बनाया था। और चारों सम्प्रदायोंके विद्वानोंसे तथा सम्बन्धित सभाओं एवं संस्थाओंसे सम्पर्क भी साधा था, परन्तु शास्त्रि-परिषद्की निर्णायक समितिने इतने व्यापक कार्यको समयावधिमें पूरा न कर सकनेकी स्थितिपर विचार करते हुए केवल दिगम्बर जैन विद्वानों, साहित्यकारों एवं पूज्य महाव्रती जनोंके जीवन वृत्त ही संकलित करनेका निर्णय स्वीकार किया।

जिन-जिन विद्वानोंतक परिचय पत्रावलियाँ और पत्रादि भेजे गये थे उन्हें स्मरणपत्र, प्रतिस्मरणपत्र, आग्रहपत्र और बार-बार विनयपत्र लिख-लिखकर भेजे। समाजके दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक अखबारोंमें अनेक बार विज्ञप्तियाँ और सूचनाएं प्रकाशित कराईं, फिर भी अनेक विद्वानोंसे परिचय पत्रावलियाँ अप्राप्त रही—कितने श्रमसाध्य प्रयासोंसे हमें परिचय प्राप्त हुए यदि उनका जिकर करनेके लिए कलम चलाऊं तो ग्रन्थके २०-३० पृष्ठ आसानीसे भरे जा सकेंगे। अतः व्यावहारिक कठिनाइयोंका श्रीगणेश हमें यहीसे शुरू हो गया। कुछ विद्वान् तो इस बातसे शंकित रहे कि क्या सोंरयाजी भी पूर्ववर्ती परिचयात्मक ग्रन्थोंके लेखकोंके अनुगामी तो नही बने रहेंगे—कुछ विद्वानोंने उपेक्षात्मक पत्र लिखकर मेरे प्रयत्नको कोशा कि ग्रन्थका प्रकाशन समयपर नही हुआ मात्र ढिंढोरा पीटना था क्या? अनेक विद्वानोंने तो परिचयपत्र तब-तक भेजे जब ग्रन्थका मुद्रण कार्य आरम्भ हो गया, कुछ विद्वानोंने स्वयं परिचय लिख भेजनेकी आत्मश्लाघाको पसन्द नही किया परन्तु फिर भी अधिकतर विद्वानोने इस योजनाका स्वागत सम्मान कर अनेक महत्त्वपूर्ण सुझावोंके साथ हर दृष्टिसे सहयोग देनेकी बात कही। इस प्रकार लगभग २००० महत्त्वपूर्ण विद्वानोंके पत्रोंको हम आदर श्रद्धाके साथ संग्रहीत किए हैं।

किन्ही-किन्हीं विद्वानोंने तो ५०-८० पेज तकके लम्बे परिचय भेजकर तथा कुछेकने २-४ लाइनोंमें मात्र परिचय लिखकर भेजनेका सहयोग हमें भेंट किया। लेकिन उन सभीको माथे लगाकर हमने उन्हें धन्यवाद पत्र भेजा।

मुख्य कठिनाई हमें दिगम्बर जैन साधुओंके परिचय प्राप्त करनेमें हुईं। साक्षात्कार करके परिचय जुटानेकी योजना बडी महंगी जान पडी। अतः मात्र पत्राचारके माध्यममें ही भटकता रहा—सौभाग्यसे हमें पूज्य १०५ क्षुल्लक शीतलसागरजी महाराजका परम आशीर्वाद प्राप्त हुआ तथा स्वयं पूज्य क्षुल्लकजी महाराजने अनेक साधु-महात्माओंके जीवनवृत्त लिखकर हमारे पास भेजे। उनकी महान् कृपापूर्ण वृत्तिके हम ऋणी रहेंगे। आचार्यों और मुनिराजोंके अलावा आर्यिका माताओं एवं ऐलक, क्षुल्लक महाराजोंके परिचय भेजकर हमारे कार्यको बहुत कुछ हल्का बनाया है।

लगभग ५५० विद्वानोंने तो परिचयपत्रावलि भरकर भेजी और इस ग्रन्थके लिए अपनी शुभकामनाएं महत्त्वपूर्ण सुझावोंके साथ परिचयपत्रोंके साथ संलग्न कर भेजी। हम उन विद्वानोंके भी हृदयसे आभारी हैं जिन्होंने अपने सम्पर्कीय या परिचित विद्वानोंके जीवन परिचय लिखकर या पत्राचारके पते लिखकर परिचय मंगानेके लिए हमें संकेत दिया। अथवा जिन साहित्यकारों या सम्पादकोंकी कृतियोंसे विद्वानों एवं महामुनियोंके परिचय प्राप्त किए, उन सबके प्रति हम कृतज्ञतापूर्वक आभार व्यक्त करते है।

अधिकांश विद्वानों एवं श्रीमानोंने हमारी इस योजनासे प्रभावित होकर ग्रन्थ निर्माणके कार्यमें जो अर्थ सहयोग दिया उनके भी हम बहुत आभारी हैं। सही मायनेमें उनका यह सहयोग अवश्य ही हमारे श्रम रथको खीचनेमें सहकारी हुआ। जिन विद्वानोंने आत्मविश्वासके साथ बराबर पत्राचार द्वारा हमें इस कार्यमें निरन्तर बढ़ते रहनेका साहस दिया, उनके भी हम हृदयसे आभारी हैं—हमें गौरव है कि देशके ऐसे ८० प्रतिशत विद्वानों द्वारा स्वयंके द्वारा भरी परिचय पत्रावलियाँ एवं दिए गए महत्त्वपूर्ण पत्र आज ऐतिहासिक अमूल्यनिधिके रूपमें हमारे पास मौजूद हैं। संकलित इस सामग्रीसे भविष्यमें हम अनेक शोधात्मक सन्दर्भ प्राप्त कर सकते है।

यद्यपि परिचय पत्रावलियोंमें ऐसी कोई भी जीवन सन्दर्भ विषयक जानकारी नही रहने पाई, जो पत्रावलीमें पूछनेसे रह गई हो। परन्तु परिचय पत्रावलीके आधारपर हमने उन्ही अंशोंको लिया जिनसे

जीवन परिचय लेखनमें हमें महत्ता एवं आवश्यकता प्रतीत हुई—हमें खेद है कि प्रत्येक विद्वान्‌का जीवन परिचय हम उस विद्वान्‌के कृतित्व एवं व्यक्तित्वके अनुरूप नही संजो पाये। आशा है हमें हमारी इस अल्पज्ञताके प्रति विद्वत्‌जन क्षमा करेंगे।

विद्वानों द्वारा पूर्ति कर भेजी गई परिचय पत्रावलियोंके आधारपर गद्यात्मक लेखन करनेमें हमें कठोर श्रम और अधिक समय व्यय करना पडा—एक विद्वान्‌के परिचयको पत्रावलीके आधारपर पढ़ना-अंकित संकेतोंको क्रमबद्ध लगाकर गद्यात्मक रूपमें लिखना पुन आवश्यक संशोधन परिवर्द्धन करके प्रेस कापी तैयार करना, इस प्रकार प्रत्येक परिचयको तीन-तीन बार लिखा गया—मेरा अनुभव है जितने श्रम और साधना तथा समयमें यह मात्र परिचय ग्रन्थ तैयार हुआ उतने ही श्रम व समयमें सम्भव है इतने ही विशालकायके लगभग १ दर्जन ग्रन्थोंका अनुवाद कर लेता। ग्रन्थ लेखनके इस कार्यमें हमारे अनुज चिरंजीव निहालचन्द्र जैन एम० एस-सी०, बी० एड० व्याख्याता नौगाँवने जिस अथक श्रमसे अहर्निश कार्य कर हमारी पूरी मदद की उसके लिए हम अपना साधुवाद देते हैं। श्रीभाई लक्ष्मीचन्दजी सरोज जावराके सहयोगको नही भुलाया जा सकता जिन्होंने शताधिक जीवन परिचयों या पत्रावलियोके आधारपर गद्यात्मक रूप देकर हमें सहयोग दिया। प्रिय मित्र चिरंजीव रामचरण शुक्ल 'राही' बी० ए०, बी० एड० ने लगभग अर्द्धशतक परिचयोंको अपनी शैलीमें गद्यात्मकरूप देकर सजोया—प्रिय पुत्री चिरंजीव अरुण जैनने प्रेसकापी करनेमें हमें अधिकाश अपना समय दिया अतएव यह दोनो व्यक्ति साधुवादके पात्र है।

कुछ जीवन परिचयोका संकलन देशके विभिन्न विद्वानो द्वारा लिखी गई कृतियो अथवा सम्पादित मासिक सामाहिक पत्र-पत्रिकाओंसे किया गया है हम उन सभी विद्वान् साहित्यकारोंके प्रति आभार व्यक्त करते हैं। जिन ग्रन्थो या पत्र-पत्रिकाओंका हमें सहयोग मिला उनकी सूची परिशिष्ट एकमें समाहार की गई है। हम उन कृपालु लेखकोंके अत्यन्त आभारी है, जिन्होंने अपना एव अन्य मान्य विद्वानोका जीवनवृत्त लिखकर हमारे कार्यमें सहयोग दिया है।

जिन विद्वानोके साहित्यिक लेख इस ग्रन्थमें प्रकाशित किए गये है, उनके साहित्यश्रमकी हम वन्दना करते हैं। जिन श्रीमानोंने ग्रन्थ निर्माणके समय हमें अपना स्तुत्य अर्थसहयोग दिया उनकी सूची परिशिष्ट दोके रूपमें ग्रन्थमें प्रकाशित की गई है।

कृतज्ञताके सर्वोत्कृष्ट भाजन समाजरत्न श्रावक शिरोमणि जैन जगत्‌के कीर्तिमान दिवाकर स्व० रायसाहब सेठ चाँदमलजी पाण्ड्या और उनकी धर्मपत्नी दानशीला सेठानी श्रीमती भँवरी देवी व उनके यशस्वी तीन पुत्र है। जिनके अर्थ सहयोगसे इस विशालतम ग्रन्थका प्रकाशन सम्भव हो सका, ग्रन्थ योजनाका श्रीगणेश सन् १९६९ में किया गया था और आज ७ वर्ष बाद इसको ग्रन्थरूपमें प्रकाशित कर पानेका सौभाग्य देख पा रहा हूँ। मेरी आन्तरिक अभिलाषा रही थी कि भगवान् महावीर स्वामीके २५सौवे निर्वाण महोत्सवपर इस ग्रन्थका प्रकाशन कर उस पावन वर्षमें विद्वानोंको सगौरव अभिनन्दित इस हेतुसे कर पाता। परन्तु हम लोगोंके दुर्भाग्यसे असमयमें ही हमारे ग्रन्थ प्रकाशक माननीय समाजरत्न रायसाहब सेठ चाँदमलजी पाण्ड्याके निधन हो जानेसे हमें तथा हमारी प्रकाशन योजनाको जो एक गहरा आघात लगा जैसे सबकुछ अधूरी रह जानेकी नियति भोगनेको कहा जा रहा हो। चूंकि अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्‌के कीर्ति-मान स्तम्भ श्रीमान् पण्डितरत्न डॉ० लालबहादुरजी शास्त्री एम० ए०, पी-एच० डी०, साहित्याचार्य अध्यक्ष एवं श्रीमान् वाणीभूषण विद्वत्‌रत्न श्रीमान् पं० बाबूलालजी जैन जमादार मन्त्रीका संकल्प विशेष रूपसे इस ग्रन्थके निर्माण और उसके प्रकाशनसे जुडा था अत उनके ही सतत प्रयत्नोंका सुपरिणाम ही यह साकार रूपमें सम्पन्न हो सका। स्व० पं० बाबूलालजी शास्त्रीका स्मरण बराबर आता है उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि।

श्रीमान् सेठ गणपतरायजी पाड्या गोहाटीने अपने पूज्य पिताश्रीके ग्रन्थप्रकाशन संकल्पको यथाशीघ्र पूरा करनेके निश्चयको दुहराया परिणामतः भारतके दिगम्बर जैन विद्वानोंका यह प्रेरणापूर्ण जीवन परिचयोंका अनुपलब्ध संग्रह प्रकाशित होकर आपके हाथों तक आया जिसकी हमें प्रसन्नता है। विद्वानोंके सम्मानमें उनके ही गौरवमय जीवन वृत्तोंसे अलंकृत इस ग्रन्थको जिस गरिमाके साथ विशुद्धतापूर्वक सुन्दर और आकर्षक रूपमे महान् प्रकाशक श्रीमान् प० बाबूलालजी फागुल्लने अपने लोकप्रिय मुद्रणसे महावीर प्रेस द्वारा मुद्रित किया उसके लिए शास्त्रिपरिषद् अपने इस लोकप्रिय मुद्रकके प्रति सगौरव आभार व्यक्त करती है।

विमलकुमार जैन सोंरया
प्रतिष्ठाचार्य, एम० ए०, शास्त्री
प्रधान सम्पादक विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थ
संयुक्त मन्त्री—अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्

●

विद्वदभिनन्दनम्

पण्डितरत्न डॉ० लालबहादुर शास्त्री

[१]

सम्यक् श्रुतं समधिगम्य गुरोः सकाशात्
ये नाम नित्यमुपदेशमुदीरयन्ति ।
वाग्देवताचरणयोः समुपासकास्ते
विद्वज्जनाः सुकृतिनो वितरन्तु भद्रम् ॥

[२]

मायाप्रपञ्चपरवञ्चनचञ्चुलक्ष्मीः
येषां निरादरभयादिव नैति पार्श्वम् ।
तस्मादपापपरिपूरितमानसास्ते
लोभादकुण्ठितनिधयः सुधियो जयन्तु ॥

[३]

अद्यावधिः प्रचलितं नयदृष्टिपूतं
यच्छासनं भगवतस्त्रिशलासुतस्य ।
नूनं त्वमेव बुधवृन्द ! तदत्र हेतुः
कार्यं न यद्भवति कारणमन्तरेण ॥

[४]

सम्यक्त्वमुद्भवति दर्शनतो जिनस्य
सज्ज्ञानमुद्वमति सम्यगधीतशास्त्रम् ।
चारित्रमुच्छलति साधुसमर्चनेन
सम्प्राप्यते त्रयमिदं विदुषा सकाशात् ॥

[५]

आप्तो न चात्र न चतुर्दशपूर्वधारी
शास्त्राणि सन्ति न वदन्ति स्वकीयमर्थम् ।
सत्साधवोऽपि विरलाः कथमार्षमार्गः
स्याद् द्योतितो यदि न नाम बुधा भवेयुः ॥

[६]

धर्मं हि रक्षति, निरीक्षति वस्तुतत्त्व
विद्यां प्रयच्छति न वेच्छति किंचिदन्यम् ।
दैन्यं न गच्छति न मानमपेक्षते यो
स्तुत्यः स कोऽपि विदुषामिह पुण्यसर्गः ॥

[१]

गुरुके समीप समीचीन शास्त्रोंका अध्ययन कर जो नित्य उपदेश प्रदान करते हैं, माता जिनवाणीके चरणोंके उपासक वे पुण्यात्मा विद्वज्जन सबका कल्याण करें।

[२]

मायाचार, प्रपञ्च और दूसरोंके प्रतारणमें चतुर यह लक्ष्मी अपने अनादरके भयसे ही मानों विद्वानोंके पास नही आती, अतः निष्पाप हृदय, लोभसे आकुण्ठित बुद्धि वाले ये विद्वान् जयवन्त हों।

[३]

हे विद्वत्समूह, नय दृष्टिसे पवित्र भगवान् महावीरका यह शासन जो आज तक चला आ रहा है उसमें एक आप ही कारण है क्योंकि बिना कारणके कार्य नही होता।

[४]

भगवान् जिनेन्द्रके दर्शनसे सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, समीचीन शास्त्रोंके अध्ययनसे सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है। साधु सेवासे सम्यक्चारित्र मिलता है, किन्तु विद्वानोंके पाससे उक्त तीनों ही प्राप्त होते है।

[५]

इस कलिकालमें आप्त भगवान् तो हैं ही नहीं, चतुर्दश पूर्वके पाठी भी नही रहे, शास्त्र उपलब्ध है परन्तु वे स्वयं अपना अभिप्राय नहीं प्रकट कर सकते। अच्छे साधु विरल ही हैं। तब भला यदि विद्वान् न होते तो यह परम्परागत आर्ष मार्ग कैसे प्रकाशित होता।

[६]

विद्वान् धर्मकी रक्षा करता है, वस्तु तत्त्वका निरीक्षण करता है, विद्या प्रदान करता है, अन्य कुछ नहीं चाहता, न दीनताको प्राप्त होता है और न मानकी अपेक्षा करता है। विद्वानोंकी यह कोई अपूर्व ही सृष्टि है जो वदनीय है।

[७]

पाता भवानिह जिनोदितशासनस्य
त्राता पथः च्युतजनस्य नरक्षरस्य ।
ज्ञाता नयोपनयसंग्रथितश्रुतस्य
दाता हिताहितविवेकमनोरथस्य ॥

[८]

वंशानुमोदित-जनानुमतश्च कश्चित्
राजा जडोऽपि भवतीह विना प्रयत्नम् ।
विद्वांस्तु वृद्धिविभवेन महच्छ्रमेण
सञ्जायते तदुभयोर्न समत्वमस्ति ॥

[९]

विद्वत्सु सन्ति बहवो विहितापराधा
उत्सूत्रभाषणपरा धनमीहमानाः ।
न क्षीयते तदपि सद्विदुषा प्रभाव·
विद्योतते किल कलङ्कयुतोऽपि चन्द्रः ॥

[१०]

जातिर्न जीवति सुसंस्कृतिमन्तरेण
साहित्यमेव परिरक्षति संस्कृतिं ताम् ।
विद्वांश्च तं सृजति तेन बुधः स एकः
नूनं सदैव विदधाति जगत् समग्रम् ॥

[११]

केचिद् घुणोपमजन· परमान्नतुल्यं
प्राणोपकारि जिनशासनमुच्छिदन्ति ।
क्षुद्रा निरस्तगतयो ननु ते कथं स्युः
सद्दृष्टयो यदि न तत्त्वविदो भवेयुः ॥

[१२]

शुक्ला तनुर्भवति यच्छ्रुतदेवताया
नूनं स एष न गुण. सहजस्तदीयः ।
किन्त्वच्छचेतसि बुधस्य निवासयोगात्
प्राप्तस्तया जगति शुक्लगुणप्रवादः ॥

[१३]

निर्वाणवर्षमिदमन्त्यजिनेश्वरस्य
भूयादचिन्त्यसुखशान्तिकरं बुधानाम् ।
विद्वज्जना अपि विवेकबलादिवार्काः
सम्मार्जयन्तु जगतस्तमसां समूहम् ॥

●

[७]

हे विद्वज्जन ! सर्वज्ञ प्रतिपादित जिन शासनके आप रक्षक हैं, मार्गभ्रष्ट अज्ञानी जनोंके हितैषी हैं, नय उपनयसे ग्रथित शास्त्रके ज्ञाता हैं, और हिताहित रूप विवेक मनोरथ के प्रदाता हैं ।

[८]

राजवंशकी परम्परामें जन्म लेने वाला अथवा प्रजा की अनुमतिसे चुना जाने वाला जड बुद्धि पुरुष भी राजा बन जाता है । परन्तु विद्वान् तो महान् श्रमसे बुद्धिकी प्रखरताके कारण ही विद्वान् बनता है अत. राजा और विद्वान्की कोई तुलना नही है ।

[९]

विद्वानोमे बहुतसे ऐसे भी विद्वान् है जो धनकी लालसासे आगम परम्पराके विरुद्ध बोलकर जघन्य अपराध करते है पर इससे विद्वानोंका प्रभाव क्षीण नही होता । पूर्ण चन्द्रमें कलङ्क स्पष्ट दिखाई देता है फिर भी क्या वह अपनी सोलह कलाओंके साथ प्रकाशित नही होता ?

[१०]

संस्कृतिके बिना कोई जाति जीवित नही रहती और सस्कृति साहित्यके बिना सुरक्षित नही रहती और साहित्यका सर्जन करने वाले विद्वान् ही होते हैं अत एक विद्वान् ही वस्तुतः समग्र जगत्को धारण करता है ।

[११]

यहाँ कुछ ऐसे भी लोग है जो प्राणोपकारी जिनशासनको उसी तरह विनाश कर रहे है जिस तरह घुन प्राणोपकारी परम अन्नका विनाश करते हैं । अगर समीचीन दृष्टिवाले (घुनके पक्षमें—अच्छी तरह कार्यका शोधन करने वाले, विद्वान्के पक्षमें—सम्यग्दृष्टि-श्रद्धालु) ये विद्वान् न होते तो उन क्षुद्रोंकी गतिविधियोंका निराकरण कैसे होता ।

[१२]

श्रुत देवताका शरीर शुक्ल होता है यह ठीक है पर उसकी यह शुक्लता अपनी निजी नही है किन्तु विद्वानोंके स्वच्छ हृदयमें निवास करनेके कारण सङ्गतिके प्रभावसे उसे शुक्ल कहा जाता है ।

[१३]

भगवान् महावीरका यह पच्चीस सौवा निर्वाण वर्ष विद्वानोंको अचिन्त्य सुख शान्ति देने वाला हो, और विद्वान् भी अपने विवेक बलसे सूर्यकी तरह जगत्के अज्ञानान्धकार को मिटावें ।

विषयक्रम

प्रथम खण्ड : आचार्य, मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, एवं ब्रह्मचारी श्राविका जीवन परिचय

द्वितीय खण्ड : परम्परागत संस्कृतिके वर्तमान साहित्यिक विशिष्ट जैन विद्वानोंका जीवन परिचय

तृतीय खण्ड : जैन विद्वानों, जैन निष्णातों, जैन साहित्यकारों एवं कवियोंका वर्णमाला क्रमानुसार परिचय

खण्ड ४ : साहित्य एवं संस्कृति

●

परिशिष्ट

प्रथम खण्ड

आचार्य, मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका एवं ब्रह्मचारी आदिका जीवन परिचय

चारित्रचक्रवर्ती योगिसम्राट् आचार्यवर शान्तिसागरजी महाराज

●

भोजगाँव (दक्षिण) में वि० संवत् १९२९के आषाढ़ वदीमें श्रीभीमगौडा पाटील की सहधर्मिणी श्रीसरस्वती देवीने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम सातगौडा रक्खा गया। सातगौडाके दो ज्येष्ठ भ्राता, एक कनिष्ठ भ्राता तथा एक कृष्णाबाई नामक बहिन उत्पन्न हुई। माता-पिता जैन क्षत्रिय कुलोत्पन्न एवं धार्मिक विचारोंके थे अत उनके बीज एवं संस्कार होनहार पुत्र में वटवृक्ष की तरह विशाल रूपसे अंकुरित हुए। सातगौडाने मराठी भाषा, कनडी भाषा तथा हिन्दी भाषाका ज्ञान प्राप्त किया।

प्रचलित प्रथाके अनुसार माता-पिताने सुपुत्र सातगौडाका विवाह ९ वर्षकी अवस्थामें ही एक ६ वर्षकी कन्यामे कर दिया, किन्तु ६ वर्षकी लडकी अपने माता-पिताके यहाँ ६-७ मास बाद ही परलोककी यात्रा कर गयी। उसके बाद माता-पिताने पुनः सातगौडासे विवाहके लिए अनेक आग्रह किये लेकिन उसने विवाह बन्धन स्वीकार नही किया और समीपवर्ती एक सिद्धसागर नामके दिगम्बर साधुसे ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया। इस तरह सातगौडाने अपना जीवन अखंड ब्रह्मचर्यसे तेजस्वी बनाया। अब सातगौडा बालब्रह्मचारी बन गया। इस ब्रह्मचर्यके कारण उनके शरीरमें शारीरिक बल महान् था। वे उछलकर १२ हाथ लम्बा पैतरा मारते थे। अनाजके बोरोंको दोनों बगलोंमें दबाकर अनायास चलते थे। इनका निशाना भी अचूक थी। ये बंदूकसे गोली चलाकर एक ही वारमें नारियल गिरा देते थे।

सातगौडाके खेतकी सिंचाई मोटर द्वारा होती थी। चौडे कुएँसे बैलोंकी सहायतासे पानी खींचकर नालों के जरिये खेतको सीचा जाता था। एक दिन इस तरह पानी सीचते-सीचते सातगौडाने सोचा कि ये दोनों बैल मिलकर पानीसे भरे मोटको खीचते हैं। इसका मतलब यह है कि भरा हुआ मोट और बैल ये दोनो करीब-करीब समान शक्तिके हैं। अब देखना है कि मैं इन दोनोंसे शक्तिशाली हूँ या नही। युवा अवस्था थी, शरीरमें शक्ति और मनमें साहस था जब भरे हुए मोटको बैल आधी दूरतक खीच चुके थे तब सातगौडाने ठीक बीच में मोटकी रस्सी व बैलोंको बीचकी तरफ खीचा। पूरी शक्तिसे खीचनेपर जहाँ एक ओर पानीसे भरा मोट ऊपर आ गया वहाँ दूसरी ओर बैल भी पीछेकी ओर खिंचकर आ गये इनसे इनका शारीरिक बल महान् था यह स्पष्ट ही माना जाता है।

एक बारकी बात है। जब वे प्रसिद्ध जैन तीर्थ सम्मेदशिखरकी यात्रा करने गये थे। तो स्वयंने तो उस कठिन शिखरपर चढ़कर अनायास दर्शन किये ही। बादमें ऐसे आदमियोंको जो कमजोरीके कारण ऊपर चढ़नेमें कष्टका अनुभव कर रहे थे। एक-एककर अपनी पीठपर चढाकर ऊपर ले गये और दर्शन कराके वापिस लाये।

ऐसा विशिष्ट शारीरिक बलको धारण करनेवाले युवक सातगौड़ा सासारिक विषयों में अत्यन्त अनासक्त रहता था। माता-पिताने पहले इससे खेती-बाड़ीका काम कराया। इसके बाद अनाजका व्यापार

तथा कपड़ेके व्यापारमें इसको लगाया लेकिन इसका मन व्यापारमें नहीं लगा। आध्यात्मिक व्यापारमें जो इसको आनन्द आता था।

ये निरन्तर स्वाध्याय तथा आत्म-चिंतवनमें निमग्न रहते थे। इनके हृदयमें विरक्त होनेकी इच्छा बलवती हो उठी। उन्होंने मुनिव्रत धारण करनेके लिए माता-पितासे आज्ञा माँगी लेकिन माता-पिताने इनसे यह वचन ले लिया कि मैं माता-पिताके देहावसानके बाद ही मुनिव्रत धारण करूँगा। पिताको वचन देनेके कारण ये मुनि तो न बन सके लेकिन आदि गुरु श्रीसिद्धसागरजीके पास जाकर कुछ अधिक व्रत नियम धारणकर वापिस चले आये। बत्तीस वर्षकी अवस्थामें वे सम्मेदशिखरजी गये तथा उसी समय पार्श्वनाथ टोंक पर उन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं आजसे अन्न, घी व तेलका त्याग करता हूँ।

इसके बाद इकतालीस वर्षकी अवस्थामें श्रीस्वामी देवेन्द्रकीर्तिजीके समक्ष आपने ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशीके दिन क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। क्षुल्लक अवस्थामें आप चार वर्ष रहे। इसके बाद गिरनार सिद्ध क्षेत्रपर आप ऐलक बने, ऐलक अवस्थामें रहते हुए आप सं० १९७७में पचकल्याणक प्रतिष्ठाके समय यरनाल पधारे। उस समय आपने उन्ही सिद्धसागर मुनिराजसे फागुन वदी तेरसको हजारों नर-नारियोंके बीच मुनि दीक्षा ली जिनसे आपने ब्रह्मचर्यव्रत लिया था। उसी समय आपका दीक्षा नाम शांतिसागर रखा गया। यही आपका यशस्वी जनोपयोगी जीवन प्रारम्भ हुआ। १९६२में आपको चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्यपद प्रतिष्ठित किया गया। उस समय आपके संघमें दिगम्बर मुनि १० क्षुल्लक, ऐलक, आर्यिकायें और ब्रह्मचारी थे।

इसके बाद आप ससंघ सम्मेदशिखरजीकी यात्रार्थ पधारे। सघके विहारकी व्यवस्था श्रीसेठ पूनमचन्द्र घासीलालने की थी। संघ सानन्द शिखरजी पहुँच गया। उस समयमें पंचकल्याणक महोत्सव था। यही पर सेठ घासीलालजीको उपस्थित हजारों जन-समूहके बीच संघसंपक्ति की पदवी दी गई।

तत्पश्चात् तीर्थराज सम्मेद शिखरकी वन्दना कर संघ सं० १७८५में भारतकी राजधानी दिल्लीमें आया। इसके बाद कटनी, जबलपुर, सागर, ललितपुर होता हुआ संघ सोनागिर सिद्धक्षेत्रपर आया जहाँपर सुप्रसिद्ध स्वर्गीय आचार्य कल्प श्रीचन्द्रसागरजो तथा आचार्य श्रीकुंथुसागरजीको मुनि दीक्षा दी।

आपके स्वच्छ आचारसे आकर्षित होकर अनेक मुमुक्षुओंने आपकी शिष्यता स्वीकार करके जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। श्री पू० स्व० आचार्य वीरसागरजी, पू० स्व० आचार्य कुंथुसागरजी, आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी, आचार्य सुधर्मसागरजी, आचार्य पायसागरजी, आचार्य नमिसागरजी, मुनिराज समंतभद्रजी, मुनिराज वर्धमानसागरजी आदि महाव्रती आपके शिष्य है। तथा और भी अनेक दिवंगत एवं वर्तमान मुनिराज आपके शिष्य हैं। इनके अलावा अनेक क्षुल्लक, ऐलक, ब्रह्मचारी, आर्यिका, क्षुल्लिका, ब्रह्मचारिणी आदि व्रती स्त्री-पुरुषोंने भी अपने-अपने पदका चारित्र ग्रहण किया। लगभग ७०० त्यागी, व्रती आपके शिष्य बने। वैसे हजारों लाखों व्यक्तियोंने आपसे मांस, मदिरा, रात्रि-भोजन त्यागकी प्रतिज्ञा कर ली।

इस तरह आपने ३५ वर्षके मुनि जीवनमें हजारों मील पैदल विहार किया तथा अन्तमें कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्रपर ३६ दिनकी सल्लेखना धारणकर सं० २०१२ भाद्रपद कृष्णा द्वितीयाको प्रातः ६-५०पर णमोकार मन्त्रका स्मरण करते हुए समाधिपूर्वक दिवंगत हुए।

●

आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज

इस भारतवर्षमें हैदराबाद नामक राज्य है। उसमें औरंगाबाद जिलेके ईरगाँवमें सेठ रामस्वरूपजी गंगवालकी सहधर्मिणी भाग्यवतीके वि० सं० १९३३ की आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमाके दिन पूज्यश्रीका जन्म हुआ। आपका नाम हीरालाल था। आपके ज्येष्ठ भ्राताका नाम गुलाबचन्द्र था। कुछ दिनों बाद आपके मातापिताका स्वर्गवास हो गया। आप इस प्रकार जन्म-मरणको देख कर इनसे छूटने के लिये तड़फड़ाने लगे। आप उदासीन होकर शास्त्रोंका अध्ययन करने लगे। सं० १९७८ की आषाढ़ शुक्ला ११ को ऐलक पन्नालालजीसे सातवी प्रतिमा (ब्रह्मचर्य व्रत) ग्रहण किया और आप बालब्रह्मचारी कहाने लगे।

संवत १९७९ में आचार्य श्री शांतिसागरजीके दर्शनार्थ कोहनूर ग्राम आये। आचार्यश्रीका उपदेश सुनकर आपने मुनि दीक्षाकी विचारी और वापिस गाँवमें आकर परिवार जनोंसे क्षमा याचना कर आचार्यश्रीसे निर्ग्रन्थ दीक्षाके लिए प्रार्थना की परन्तु आचार्यश्रीने निर्ग्रन्थ दीक्षा न देकर आपको संवत् १९८० की फागुन सुदी सप्तमीके दिन क्षुल्लक दीक्षा दे दी। सं० १९८१ की आश्विन शुक्ला ११ को क्षुल्लक दीक्षाके सात मासके बाद निर्ग्रन्थ दीक्षा ले ली। आपने आचार्यश्रीके साथ-साथ समस्त भारतका भ्रमण किया।

आचार्यश्रीने धर्म प्रचारार्थ अपने विशाल संघको विभाजित किया। तब पूज्यश्रीने पहला चौमासा ईडर (गुजरात) मे किया। एवं आपने आचार्यश्रीसे अलग बिहार कर जगह-जगह भ्रमण करते हुए जैनधर्मका प्रचार किया तथा अनेक स्त्री पुरुषोंको मोक्षमार्गका उपदेश देकर मोक्षमार्गी बनाया।

संवत् २०१२ में पूज्यश्री शांतिसागरजीने कुन्थलगिरिमें यम सल्लेखना ग्रहण की। आचार्य पट्ट चलता रहे इसलिए आपने योग्यतम शिष्य पूज्यश्री वीरसागरजीको आचार्य पट्ट देनेका विचार किया तथा उसी समय एक आज्ञापत्र जयपुर समाजको लिखवाया जिसमें पूज्यश्रीको आचार्य पद देनेकी घोषणा एवं सभी समाजको इन्हे ही आचार्य मानकर इनकी आज्ञामें चलना चाहिए इस आशयका पत्र लिखवाकर जयपुर समाजको भेजा गया और सं० २०१२ को भाद्रपद कृष्ण सप्तमीको हजारों जनसमूहके बीच आपको आचार्य पद दे दिया।

आपने एक विशाल संघका संचालन किया फिर भी पूज्य गुरुदेवके रहते हुए आपने अपने नामके आगे 'आचार्य' शब्द नहीं लगवाया जो कि आपकी गुरु भक्तिका उदाहरण है।

इस तरह आप हजारों नर-नारियोंको मोक्षमार्गमें लगाकर सं० २०१४ की कुवार बदी अमावस्याको णमोकार मंत्रका चिंतन करते हुए जयपुरसे स्वर्गलोक पधार गये।

तपोनिधि आचार्य कुन्थसागरजी महाराज

●

श्री वीर शासनके परम प्रभावक, अनेक ग्रन्थकार, साहित्यकार व विश्ववंद्य महापुरुष हुए हैं। उनमेंसे विद्वान्, तपस्वी आचार्य श्री कुन्थसागरजी महाराजकी विद्वत्ताने जनसाधारण व विद्वत् समाजमें एक क्रान्ति पैदा कर दी है। उनकी विद्वत्ता, गम्भीरता, निस्पृहता, सर्वजीव समभावना, लोक हितैषिता, विश्व-बंधुता आदि गुण लोक-विश्रुत है।

अलौकिक प्रभाव

पूज्य आचार्यश्रीकी वीतराग वृत्तिका लोकमें अलौकिक प्रभाव है। यह दर्शनार्थी प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। आचार्यश्रीने अपने दिव्य विहारसे असंख्यात आत्माओंका उद्धार किया। लोग किसी सम्प्रदाय या धर्मके हों, आपकी निर्मोह वृत्तिपर मुग्ध हो जाते है। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या क्रिश्चियन सभी लोग आपका धर्मामृत पानेको उपस्थित होते हैं। आपने जहाँ-जहाँ पुण्य बिहार किया आपसके मतभेद और द्वेषाग्नि बुझ गयी।

नरेन्द्र वंद्यत्व

आचार्यश्रीकी तपोनिष्ठाका, ज्ञानमंडिताका सर्वसाधारण जनतापर ही प्रभाव नही अपितु अनेक राज्य शासकोंके हृदयोंपर भी अमिट प्रभाव छोडा है। बडौदाके न्याय-मन्दिरमें खास बडौदाके राज्यके दीवान एवं हजारों श्रोताओंके बीच पूज्यश्रीका जो तत्त्वोपदेश हुआ था वह दृश्य अविस्मरणीय है। आचार्य-श्रीकी जन्म जयन्ती कई राज्योंमें सार्वजनिक रूपसे मनायी जाती है एव वह दिन 'अहिंसा दिवस'के रूपमें घोषित हो जाता है। इस प्रकार धर्मोद्योतका ठोस कार्य जो पूज्यश्रीके द्वारा किया गया वह सैकडों विद्वान् भी कई वर्षों तक नही कर सके।

साहित्य सेवा

अपनी मौन वेलामें ग्रन्थ निर्माणके कार्यमें संलग्न रहते हैं। आपने पूर्वाचार्य परम्पराको कायम रखते हुए साहित्य-निर्माण प्रणालीमें आश्चर्यकारक उन्नति की है। आपके द्वारा रचित ग्रन्थ इतने लोकप्रिय हुए कि बहुधा उनका स्वाध्याय होते देखा जाता है। जिनमें वस्तुत: विश्वकल्याणकी भावना ओतप्रोत है। वर्णन शैली अत्यन्त सुगम व सुबोध। जीवनके अल्प समयमें लगभग चालीस ग्रन्थोंका प्रणयन, आचार्यश्रीके कठोर श्रम, संकल्प और धर्म एवं साहित्य सेवाका सजीव उदाहरण है—लगता है प्रमाद छू तक न गया।

आपके अनेक ग्रन्थोंका विदेशोंमें प्रचार हुआ। आपके ग्रन्थोंका प्रकाशन हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नडी और अंग्रेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद होकर हुआ ताकि देशके सभी प्रान्तोंमें उनका समुचित उपयोग हो सके।

आचार्यश्री प्रणीत ग्रन्थ

१. चतुर्विंशति जिन स्तुति (हिन्दी गुजराती)
२ शान्तिसागर चरित्र
३. बोधामृत सार
४. निजात्मविशुद्धि भावना (हिन्दी, गुजराती)
५ मोक्षमार्ग प्रदीप
६. ज्ञानामृत सार
७ लघुबोधामृतसार(हिन्दी, गुजराती, कन्नडी)
८. स्वरूप दर्शन सूर्य

९ वरेदाधर्मदर्पण आदि चालीस ग्रन्थोंका प्रणयन, आचार्यश्रीके कठोर श्रम, संकल्प और धर्म एवं साहित्य सेवाका सजीव उदाहरण है—लगता है प्रमाद छू तक न गया।

आपके अनेक ग्रन्थोंका विदेशोंमें प्रचार हुआ। आपके ग्रन्थोंका प्रकाशन हिन्दी, मराठी, गुजराती, कन्नडी और अग्रेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद हुआ ताकि देशके सभी प्रान्तोंमें उनका उपयोग हो सके।

●

स्व० आचार्य नमिसागरजी महाराज

●

पूज्य आचार्यश्रीका जन्म विक्रम १९४५ ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्थी मगलवार तदनुसार ता० २९ मई सन् १८८८ को दक्षिण प्रान्तके शिवपुर नगर जिला बेलगावमें हुआ था। इनके पिताजी-का नाम श्री यादवराय तथा मातेश्वरीका नाम श्रीमती कालादेवी था। ये दक्षिण प्रान्तीय प्रसिद्ध जैन क्षत्रिय पंचम जातिके व्यापारी थे। श्री यादवरायजीके कुल तीन संतान उत्पन्न हुई, जिनमें पहली संतान कुछ दिन जीवित रह कर चिर निद्रित हो गई। द्वितीय पूज्य आचार्य महाराज हैं, जिनका तत्कालीन नाम होनप्पा रखा गया। इनके पीछे प्राय: दो ढाई वर्ष बाद इनका एक छोटा भाई और हुआ। ये दो वर्षके भी पूर्ण न होने पाये थे कि इनके पिताजी दिवंगत हो गये और उनकी छत्र-छाया इनके ऊपरसे सदैवके लिये उठ गई। उस समय इनके छोटे भाईकी अवस्था प्राय. ३ मास-की थी। इनकी विदुषी माताने दोनोंका लालन-पालन किया तथा शिक्षित बनानेके लिये उसी गांवकी राज-कीय शालामें बैठा दिया। दो तीन कक्षा तक ही प्रारम्भिक शिक्षा ले पाये थे कि अभाग्यवशात् विपत्तिका पहाड टूट पडा और इनकी माताजीका भी स्वर्गवास हो गया। उस समय इनकी आयु १२ वर्ष की होगी, घरमें कोई बडा न होनेसे खर्चका सारा बोझ इन्हीके ऊपर आ पडा, समस्या बडी विकट थी, आजीविकाका और कोई उपाय न था, अत इच्छा न होते हुए भी पढाईका काम छोडना पडा। फिर भी अपने भाईको पढानेका पूरा ध्यान रखा।

इनका पैतृक व्यापार बर्तनोंकी दुकानका था। अपने पूर्वजोंकी छोडी हुई पर्याप्त जमीन भी थी। कुछ समय तक तो अभ्यासके न होनेसे कुछ कष्ट रहा, पर बादमें अपनी कुशलतासे उन दोनों कार्योंको बडी सावधानीसे संभाल लिया।

२६ वर्षकी आयु अर्थात् सन् १९१४ में आपका विवाह हो गया। चार वर्ष बाद द्विरागमन (गौना) हुआ। उससे आपके एक पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु तीन महीने बाद ही वह काल कवलित हो गया। इस दु:खको भूल भी न पाये थे कि उसके तीन मास पीछे ही आपकी धर्मपत्नीका भी सदैव के लिये वियोग हो गया। इस प्रकार प्राय: डेढ़ वर्ष तक ही आपको स्त्रीका संयोग रहा अब आपने दूसरा विवाह न करनेका निश्चय कर लिया।

गृह त्यागका कारण

हम यह पहिले ही लिख चुके हैं कि ये व्यापारमें बड़े कुशल थे तथा समय-समयपर अन्य व्यापार भी करते रहते थे। एक बार कपास (रुई) के व्यापार निमित्त आपको तेरदाड राज्यान्तर्गत जाम्बगी नामक गांवमें जाना पडा। वहाँपर इनको व्यापार सम्बन्धी कार्याधिक्यसे दिनमें भोजन बनानेका अवकाश न मिला। दक्षिण प्रान्तमें अपने ही हाथसे भोजन बनाकर खाने की प्रथा है। अतः रात्रिमें ही इन्होंने अपने हाथसे भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। उन दिनों तक जैन कुलमें उत्पन्न होते हुए भी शिक्षाके अभावसे धार्मिक भावना जागृत नहीं हुई थी, अतः रात्रिमें भी भोजन कर लेते थे। इन्होंने भात बनानेके लिये उबलते हुए पानीमें चावल डाले। स्मृति-दोषसे उसका ढक्कन न रख पाये। दूध, दही, मीठा लेनेके लिये नौकरको बाजार भेज दिया, उधर न मालूम कब दो बडे-बडे कीडे उसमें गिर पडे। जब भोजन करने बैठे तब भात परोसनेके साथ वे दोनों कीडे भी उस थालमें परस गये। उनको देखकर इनके मनमें बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई। विचारने लगे कि अपने पेट भरनेके लिये मेरे द्वारा इन दो जीवोंका व्यर्थमें ही वध हो गया, अगर मैं रात्रिको भोजन न करता तो यह आज दो जीवोंकी हिंसा न होती। बहुत पश्चाताप किया तथा आत्मनिन्दा और गर्हा भी की। उस समय तो भोजन किया ही नही बल्कि रात्रि-भोजन करनेको महान् हिंसाका कारण जान जन्म पर्यन्तके लिये त्याग कर दिया।

इस घटनासे ही इनके जीवनमें परिवर्तन हो गया। कार्यभार अपने छोटे भाईको सौंप दिया और आप गृहसे उदास हो गये। तीन वर्ष तक सवेगी श्रावक दशामें रहे, आपका यह समय तीर्थ-यात्रा और सत्संगतिमें ही व्यतीत हुआ। सन् १९२३ में आपने बोर गांव जिला बेलगावमें श्री १०८ पूज्य आदि सागर-मुनिराजसे विधिवत् क्षुल्लक दीक्षा ले ली और नाम श्री पायसागर रखा गया।

१९२५ में सम्मेद शिखरजीकी यात्रामें जाने वाले आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके विशाल संघमें शामिल होकर आपने इन्हीसे विधिपूर्ण ऐलक दीक्षा ले ली। उस समय आपका नाम नमिसागर रखा गया। ऐलक अवस्थामें आप पाँच वर्ष रहे। और सघके साथ १९२६ से १९२९ तक जयपुर, कटनी (मध्यप्रान्त), ललितपुर (उत्तर प्रान्त) में आपने चातुर्मास किये। इसी मध्यमें संघने तीर्थराजकी वंदना की।

सन् १९२९ में पूज्य आचार्य चारित्र चक्रवर्ति शान्तिसागर महाराजसे मार्गशीर्ष सुदी १५ स० १९८६ में सोनागिर पहाडके ऊपर मुनि दीक्षा ली।

सन् १९३८ से आप आचार्य कुन्थुसागरजी महाराजके संघमें रहने लगे और उनकी अंत अवस्था जानकर उसकी वैयावृत्ति की। आचार्य श्रीने अपना अन्त समय जानकर आचार्य पदके लिये समस्त संघके मुनियोको आज्ञा दी कि नमिसागरजीको अपना आचार्य मानना। सन् १९४५ में आप आचार्य पदपर आसीन हुए उसके बाद अनेक स्थानोंपर भ्रमण करके जनताको सही मार्ग दर्शन दिया।

ध्यान

आप जब ध्यानमें लीन होते हैं उस समय आपकी मुद्रा दर्शनीय है। आये हुए बडेसे बडे उपसर्गोको आप बडी आसानीसे सहन कर लेते हैं, कभी-कभी तो ऐसे भी अवसर आ गये हैं जबकि उपवासादिकोंके दिनोंमें अशक्तताके कारण आप गिर भी गये हैं पर फिर भी ध्यानसे विचलित नही हुए। बागपत (मेरठ) में जब आप डेढ़ मास रहे तो वहाँ शीतकालमें जमनाके किनारे चार-चार घन्टे तक ध्यानमें लीन रहे। बड़े गांव मेरठमें भी शीत ऋतुमें आपने अनेक रात्रियोंमें मकानोंकी छतपर बैठकर ध्यान लगाया। ग्रीष्म ऋतुमें तारंगा तथा पावागढ़ (बड़ौदा) के पहाड़ोंपर जाकर चार-चार घन्टे तक समाधिमें रहे।

ज्ञान

यह हम पहिले ही लिख चुके हैं कि आपकी प्रारम्भिक शिक्षा न कुछके बराबर थी किन्तु साधु दीक्षा-के बादसे आपने इतना अच्छा शास्त्र ज्ञान प्राप्त कर लिया था कि सूक्ष्मसे सूक्ष्म विषयको न केवल भली भांति समझ ही लेते थे अपितु दूसरोंको भी बहुत अच्छी तरह समझा देते थे। आपने अनेक उच्चकोटिके दार्शनिक सिद्धान्त ग्रन्थोंका स्वाध्याय किया था जिस समय आप आध्यात्मिक विषयपर व्याख्यान देते हैं तब ऐसा मालूम होता था कि मानों आपकी अन्तरात्मा ही बोल रही है।

उपदेश

आपके उपदेश सार्वजनिक भी होते थे। हरिजन समस्याके विषयमें आपने अपने भाषणोंमें अनेक बार कहा था —मैं हरिजनोंको उतना ही उन्नत देखना चाहता हूँ जितना कि और जातियाँ हैं। उनकी भोजन, वस्त्र, स्थान आदिकी समस्या हल होनी चाहिये, पठन पाठनकी व्यवस्था भी ठीक होनी चाहिए, जिस से ये शिक्षित हो जायें और खोटे कर्मोंसे बच कर अच्छे कार्य करने लग जायें। इनके अन्दरकी बुराइयाँ मसलन मद्य, मास सेवन, जुआ, शिकार, जीव हिंसा आदि कर्म तथा मैला-कुचैला रहना आदि पहिले दूर करना चाहिए। आपका ज्वलंत प्रभाव तब प्रकट हुआ, जब भारत सरकारने एक बिल पार्लियामेंटमें रखा, जिसमें जैन धर्मको हिन्दू धर्म स्वीकार किया जा रहा था। इस बिलपर भारतवर्षकी जैन सस्थायें चिन्तित हो उठी। परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ति श्री १०८ आचार्य शातिसागरजी महाराजकी दृष्टि पूज्य नमिसागरजी महाराजपर गयी। उन्हें आदेश दिया कि दिल्लीमें शासनको प्रभावित कर जैन धर्मको हिन्दू धर्मसे पृथक् रखवायें। महाराजने ऐसा प्रयत्न किया कि उन्हे सफलता मिली और गुरु-आदेशका पालन किया।

अगस्त १९५५ में पूज्य आचार्य शान्तिसागरजीके कुथलगिरिमें समाधिमरण लेनेके समाचार ज्ञात होते ही आपने फल व मीठाका आजन्म त्याग कर दिया। एक वर्ष तक अन्नका त्याग कर दिया और जो उद्गार आचार्य श्रीने अपने गुरुके प्रति प्रकट किये वह चिरस्मरणीय व स्वर्णाक्षरोंमें अंकित होने योग्य है।

आचार्यश्रीका स्वभाव नारियल जैसा था ऊपरसे कठोर और अंतरंगमें नर्म था। धर्मके प्रति व धर्मात्मा-के प्रति इतने उदार थे कि कभी भी उनका ह्रास देखना पसद नही करते थे। वह कभी भी संघमें शिथिला-चार नही देख सकते और सदैव संघपर कडी दृष्टि आचरण पालनकी ओर रखते। शिक्षा-सस्थाओंसे उन्हें अनुराग काफी प्यार था। गरीबोंके हितू आपके चरणोंमें सभी जातिके स्त्री पुरुष भेद भाव भूल कर आते थे।

आचार्य श्री १९५१ में जब दिल्ली पधारे, तब वे एक संकल्प लेकर आये थे। हरिजन-मन्दिर-प्रवेशको लेकर पूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराजने अनशन कर दिया था। उनके अनशनको तुड़ाना और जैन मन्दिरोंको हिन्दू मन्दिरोंसे पृथक् कराना यह संकल्प न्यायाचार्य पं० दरबारीलालजी कोठियाके सम्पर्कसे पूज्य श्री १०५ गणेश प्रसादजीवर्णीको आचार्य श्रीने अपने संकल्पका साधक माना। फलतः आचार्य श्री अपने मिशनमें सफल हुए और पूज्य वर्णीजीके प्रति अनन्य समादर करने लगे। वे कहा करते थे कि वर्णीजी भावलिंगी मुनि हैं, मैं तो द्रव्यलिंगी हूँ। अन्तमें आचार्य श्री वर्णीजीके सान्निध्यमें बडौत (मेरठ) से प्रस्थान कर ईसरी (सम्मेदशिखर) पहुँचे और इन्हींके निकट सन् १९५७ में समाधि पूर्वक देहत्याग किया।

●

स्व० आचार्य सुधर्मसागरजी महाराज

●

जीवन-परिचय

श्री १०८ आचार्य सुधर्मसागरजी महाराजका गृहस्थ अवस्थाका नाम नन्दलालजी था। आपका जन्म चावली (आगरा) वि० सं० १९४२ में भाद्रपद शुक्ला दशमी यानी सुगन्ध दशमीके दिन हुआ था।

शिक्षा और विवाह

आपकी आरम्भिक शिक्षा अपने गाँवमें ही हुई। इसके बाद आपने दिगम्बर जैन महाविद्यालय मथुरा और सेठ हीराचन्द्र गुमानचन्द्र जैन बोडिंग हाउस बम्बईमें रहकर शास्त्री (सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, साहित्य) का अध्ययन किया और जैन महासभा तथा बम्बई परीक्षालयसे परीक्षा देकर शास्त्री उपाधि प्राप्त की। आप आरम्भसे ही उदार, सरल, सभ्य, शिक्षित धर्मरुचि थे।

सामाजिक-धार्मिक कार्य

आपने अपने अमित अध्ययन, अनुभव, अभ्यास, अध्यवसायसे हिन्दी, संस्कृत, अँगरेजी, मराठी, गुजराती भाषाओंका ज्ञान प्राप्त किया। आप श्रेष्ठ वक्ता और सुयोग्य लेखक तथा टीकाकार एवं सम्पादक थे। सामाजिक-धार्मिक विषयोंपर आपने सुरुचिपूर्ण लघु पुस्तकें भी लिखी। आप कवि थे, आपकी कतिपय पूजनें आज भी समाजमें अतीव चावसे पढ़ी जाती हैं। आपने ईडर और बम्बईमें रहकर वहाँके शास्त्र भण्डारोंको सम्हाला। आपने ज्ञानका लाभ समाजको दिया। आपने अनेक भीलोंसे मांसाहार छुड़ाया, शिकार खेलना बन्द करवाया। ठाकुर कूरसिंहको ही जैन ही नहीं बनाया बल्कि उनके द्वारा जैनमन्दिर भी बनवाया।

आपने ईडर तारंगामें मनोज्ञ मूर्तियाँ विराजमान कराईं। आप महासभाके सर्वदा सहायक रहे। समाजरत्न संघभक्त सुप्रसिद्ध श्रेष्ठि पूनमचन्द्र घासीलाल जवेरी परिवारको धार्मिक बनानेका श्रेय आपको ही है। आपने चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजसे द्वितीय प्रतिमा ली थी। आपके ही प्रयत्नसे सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रपर आचार्यश्रीका ससंघ विहार हुआ था और संघपति सेठ पूनमचन्दजी घासीलालजी द्वारा अतीव समारोहपूर्वक पंचकल्याणक महोत्सव भी हुआ था। वि० सं० १९८४ में सम्मेद-शिखरमें आपने आचार्य शान्तिसागरजीसे ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत ले लिये। अब आपका नाम ब्रह्मचारी ज्ञान-चन्द्र हो गया। इस समय आपने दो घण्टेतक जैनधर्मका धारावाहिक तात्त्विक विवेचन भी किया था।

कुण्डलपुर क्षेत्रमें आपने दशम प्रतिमाके व्रत स्वीकार किये और कुछ काल बाद आचार्यश्रीसे ही क्षुल्लक दीक्षा ले ली और आपका नाम क्षुल्लक ज्ञानसागर हो गया। आत्मकल्याणके साथ ही आपने कुछ ग्रन्थोंकी टीकायें लिखी, जिनमें रयणसार, पुरुषार्थानुशासन, रत्नमाला, उमास्वामि श्रावकाचारके नाम उल्लेखनीय हैं। आपने गुजरातीमें जो ग्रन्थ लिखे उनमें जीव-विचार, कर्म-विचार, दान-विचार प्रमुख हैं। आपके ही आदेशमें आपके भाइयोंने पंचपरमेष्ठियोंके स्वरूपकी बोधक ३ फीट ऊँची प्रतिमायें गजपन्थामें विराजमान कराईं तथा देहलीके धर्मपुरा मन्दिरमें भी अष्ट प्रतिहार्ययुक्त ३ फीट ऊँची प्रतिमा आपकी प्रेरणासे भाइयोंने विराजमान कराई।

संघ-हित श्रेष्ठ कार्य

क्षुल्लक ज्ञानसागरजीने संघ-हित एक श्रेष्ठ कार्य यह किया कि उन्होंने सभी मुनिराजोंको संस्कृतका अध्ययन कराया, क्षुल्लक व ऐलकोंको भी संस्कृत शिक्षण लेनेके लिए कहा। आचार्य शान्तिसागरजी आपके इस सत्कार्यकी सराहना करते थे। तपोनिधि आचार्य कुन्थसागरने जो संस्कृतमें ग्रन्थ लिखे उसकी पृष्ठभूमिमें आपकी मनोभावना थी। अध्यापनके साथ संघके हितमें आपने अनुभवी वैद्यका भी कार्य वैसे ही किया जैसे आपके पिताजी पड़ौसियोंके लिए सहज भावसे करते थे।

मुनि और आचार्य

जब प्रतापगढ़में सेठ पूनमचन्द घासीलालजीने पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराई तब केवलज्ञान कल्याणक के समय आपने फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी वीर निर्वाण संवत् २४६०में श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजीसे मुक्तिदायी मुनि दीक्षा ले ली। आचार्यश्रीने आपको सुधर्मसागर कहकर सम्बोधित किया। आपके साथ ही क्षुल्लक नेमिकीर्तिजी मुनि आदिसागर बने और ब्र० सालिगरामजी क्षुल्लक अजितकीर्तिजी बने थे। यह कार्य लगभग चालीस हजार मानवमेदिनीके समक्ष हुआ। अब आप समन्तभद्र आचार्यके शब्दोंमें विषयवासनासे परे ज्ञान-ध्यान, तप-रत साधु हो गये थे।

संघके समस्त कार्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी ने आपको सौप ही रखे थे, अतएव उन्होंने आपकी अनिच्छापूर्वक भी आचार्य पद सौंप दिया, आपने बहुत अनुनय-विनय की और पदसे मुक्ति चाही पर आचार्यश्रीने आपको ही अपना उत्तराधिकारी बनाया। पौष शुक्ला दशमी रविवारको आपके अनेक मुनिराजों, व्रतियों तथा अनेक स्थानोंकी समाजके समक्ष आचार्य घोषित किये गये। इस समय अनेक विद्वान् श्रेष्ठ राज्याधिकारी उपस्थित थे। सभीने ताली बजाकर नामकी जय बोलकर आपको अपना आचार्य मान लिया। कुशलगढ़ जैनसमाजके इस कुशलतादायी कार्यकी सभीने सराहना की।

समाधिमरण व शोभायात्रा

आपने आचार्य पदपर आसीन रहते संघको अनुशासनबद्ध किया। झाबुआ निवासियोंसे आचार्यश्रीके रूपमें आपने दो माह पहले ही कह दिया था कि अब मेरा शरीर अधिकसे अधिक दो माहतक टिकेगा। आप सर्वदा धार्मिक कार्योंमें सावधान रहते थे। समाधिमरणके लिए तैयारी कर रहे थे। पौष शुक्ला द्वादशी सोमवार वि० सं० १९९५मे, जब दोपहरको संघके साधु आहारचर्यासे आये तब उन्होंने आचार्यश्रीकी समाधि बेला समीप देखी, आपको क्षय रोग था पर दो दिनसे वह था भी; इसमे सन्देह होने लगा था। तीन दिन पहलेसे आपने खान-पान प्रमादजनित क्रियाओंको त्याग दिया था। अन्तिम समयमें आपने जिनेन्द्र-दर्शनकी इच्छा प्रकट की तो भट्टारक यशकीर्तिने भगवान् आदिनाथके दर्शन कराये। आपने गद्‌गद हो भक्तिके भाव लिये कहा—हे प्रभो! मेरे आठों कर्म नष्ट हों और मुझे मुक्तिश्री मिले। इसी दिन संध्याके समय अत्यन्त सावधानीके साथ आपने समाधिमरणका लाभ लिया।

श्री १०८ आचार्य सुधर्मसागरजीके स्वर्गवासका समाचार क्षण भरमें दाहौद, इन्दौर, रतलाम, थादला, झाबुआ आदि स्थानोंपर पहुँचा। अतीव साज-सज्जाके साथ पद्मासनमें आचार्यका दिव्य शरीर नगरके प्रमुख मार्गोंमेंसे निकला। सद्यःस्नात पं० लालारामजी जलधारा देते विमानके सबसे आगे थे। मुनि और आर्यिका, श्रावक और श्राविकाका चतुर्विध संघ साथ था। एक ब्राह्मणने आचार्यश्रीकी पूजा की, शंखनाद कर उनको स्वर्गवासी घोषित किया। शास्त्रोक्त-पद्धतिसे दाह-संस्कार हुआ। शोक-सभामें पं० लालारामजीने भाषण ही नहीं दिया बल्कि उनके पदचिह्नोंपर चलनेके लिए द्वितीय प्रतिमाके व्रत भी लिये। जहाँ आपका अन्तिम-संस्कार हुआ था वहाँ तीन दिनतक बाजे बजे, जागरण भजन-कीर्तन हुए, महाराजकी पूजा हुई।

घोषणा

राज्यकी ओरसे घोषणा हुई, आचार्य सुधर्मसागरजीका स्मृति-दिवस मनानेके लिए अवकाश रहेगा, हिंसा नहीं होगी। संघकी ओरसे घोषणा हुई, आचार्यश्रीके स्मृति-दिवसपर प्रतिवर्ष रथोत्सव होगा। मुनि-संघने स्वेच्छासे आचार्य सुधर्मसागर संघकी स्थापना करनेका भाव प्रकट किया।

●

आचार्य शिवसागरजी महाराज

प्राकृतिक सुषमा और दिगम्बर मुनि धर्मकी अविच्छिन्न धारासे विभूषित दक्षिण भारतके औरंगाबाद जिलेके अन्तर्गत अड-गाँव आपकी जन्मभूमि है। राँवका गोत्रीय श्री नेमीचन्द्रजीके घर दगडाबाईकी कुक्षिसे आपका जन्म हुआ था। आपने अपने जन्मसे खण्डेलवाल जातिको गौरवान्वित किया था। आपका जन्म नाम हीरालाल था। पिताकी आर्थिक स्थिति साधारण थी। आपके दो भाई और दो बहिनें थी। बुद्धिके तीक्ष्ण थे परन्तु परिस्थितिके अनुसार शिक्षाके उपलब्ध साधनोंसे आप पूरा लाभ नही उठा सके।

औरंगाबाद जिलेके ईरगाँव निवासी ब्र० हीरालालजी पीछे चलकर आचार्य वीरसागर नाममे प्रसिद्ध हुए, अतिशय क्षेत्र कचनेरमें नि.शुल्क विद्याध्ययन करते थे, उन्हीके पास आपने 'ओंनम. सिद्धेभ्य.' से अध्ययन प्रारम्भ किया। हिन्दीकी तीन कक्षाओं और धर्मशास्त्रके साधा-रण ज्ञान तक ही आपका अध्ययन हो पाया था कि इसी बीचमें प्लेगकी बीमारीके कारण आपके माता पिता-का एक ही दिन स्वर्गवास हो गया और इस तरह आप माता पिताकी वात्सल्य पूर्ण छायासे सदाके लिए वञ्चित हो गये। बडे भाईका विवाह हो चुका था परन्तु विवाहके कुछ समय बाद उनका भी देहान्त हो गया। फल यह हुआ कि १३ वर्षकी अल्प अवस्थामें ही आपके शिर पर गृहस्थीके संचालनका भार आ पडा जिसे आपने अच्छी तरह सँभाला।

माता पिता तथा बडे भाईके आकस्मिक वियोगने आपके हृदयको संसारकी स्थितिसे सुपरिचित करा दिया इसलिए आपने गृहस्थीके दलदलमें पडनेका विचार भी नही किया। विवाहके अवसर आये पर आप उनसे बचते रहे। निकट भव्य जीवोंको जो भी निमित्त मिलते हैं उनसे वे लाभ उठाते है। संकटापूर्ण गृह-स्थीमें रहते हुए भी आपका चित्त संसारसे सदा विरक्त रहता था। जब आप २८ वर्षके थे तब आपको दिवंगत आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराजके दर्शन करनेका पुण्य अवसर प्राप्त हुआ। उनसे आपने यज्ञो-पवीत धारण कर व्रत प्रतिमा ग्रहण की। स्वाध्यायके द्वारा अपने ज्ञानवर्धनमें सदा तत्पर रहते थे।

मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र पर विक्रम संवत् १९९९ में आपने उनसे सप्तम प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। अब आप संघके साथ ब्रह्मचारीके रूपमें रहने लगे। शास्त्र स्वाध्याय तथा जैन ग्रन्थोंके अध्ययनकी रुचि पहलेसे ही थी अब वह अवसर पाकर अत्यधिक वृद्धिको प्राप्त हुई। 'ज्ञानं भारः क्रिया बिना' क्रियाके बिना ज्ञान भार स्वरूप ही है। इस सिद्धान्तको हृदयंगत कर वे चारित्रके क्षेत्रमें अग्रसर होनेके लिए सदा उत्सुक रहते थे। उसीके फल स्वरूप उन्होंने सिद्धवरकूट क्षेत्रपर आचार्य वीरसागरसे ही क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आचार्य वीरसागरजीका इन पर पुत्रवत् धर्मस्नेह था। वे इनकी प्रकृतिको अच्छी तरह जानते थे। इसलिए क्षुल्लक दीक्षाके समय इनका नाम शिवसागर रख दिया।

क्षुल्लक शिवसागरजीकी अन्तरात्मामें वैराग्य रसकी उज्ज्वल धारा प्रवाहित होती रहती थी अतः आषाढ़ शुक्ला एकादशी वि०सं० २००६ को नागौरमें आपने दिगम्बर दीक्षा धारण कर ली। मुनि शिवसागरजी

को १४ वर्ष तक उनके सन्निधानमें रहनेका अवसर प्राप्त हुआ और इस लम्बी अवधिमें उन्होंने चारों अनु-योगोंका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। संस्कृत-प्राकृतका भी अच्छा ज्ञान उन्हें प्राप्त था। आपको नाटक समयसार कलश, स्वयंभूस्तोत्र तथा प्रतिक्रमण आदिके संस्कृत प्राकृत पाठ कण्ठस्थ थे। यद्यपि मातृ भाषा मराठी थी तो भी हिन्दीमें अच्छी तरह भाषण करते थे। प्रतिक्रमण और स्वाध्यायसे जब भी आपको समय मिलता तब आप माला लेकर णमोकार मन्त्रका जाप करने लगते थे।

विक्रम संवत् २०१४ में आचार्य वीरसागर महाराजकी समाधि हो जानेके बाद आपने आचार्य पद ग्रहण किया। समस्त संघको साथ लेकर आपने श्री गिरनारजी सिद्धक्षेत्रकी यात्रा की।

●

आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज

●

आचार्य देशभूषणजी महाराज एक शान्त वीतरागी साधु हैं। निरंतर ध्यान स्वाध्याय में रत रहते हैं। संस्कृत, अंग्रेजी भाषाके अलावा कन्नडी और मराठी भाषाके भी महान् विद्वान् हैं भरतेश वैभव, रत्नाकर-शतक, परमात्म प्रकाश, धर्मामृत, निर्वाण लक्ष्मी पति स्तुति, निरंजन स्तुति आदि कन्नडी भाषाके महान् ग्रन्थों का हिन्दी-गुजराती-मराठी भाषा में अनुवाद किया है। गुरु शिष्य सवाद, चिन्मय चिन्तामणि आदि स्वतंत्र रचनायें तथा अहिंसा का दिव्य संदेश, महावीर दिव्य सदेश आदि अनेक ग्रन्थ लिखकर भव्य जीवोका कल्याण किया है। कुछ वर्ष से चतुर्मासके समय जो आप प्रवचन करते हैं उनके पुस्तककार बन जानेसे वे भी माननीय शास्त्र सम बन गए हैं। आपका शान्त स्वभाव अमृतमय धर्मोपदेश बड़ा ही सुन्दर होता है।

आपने बेलगाँव जिलेके कोथलपुर गाँवमें जन्म लिया है। आपके पिताका नाम श्री सत्यगौडा और माताजीका नाम श्रीमती अक्कावती था। वे दोनों ही धर्मपरायण थे। आपका जन्म संवत् १९६५ में हुआ था और जन्मका नाम बालगौड़ा था। आपकी माता आपको तीन मासकी अवस्थामें ही छोड़कर स्वर्गस्थ हो गई और पिता के भी ७ वर्षकी अवस्थामें ही स्वर्गस्थ हो जानेसे आपकी नानीने आपका पालन पोषण किया और संपत्तिकी भी संभाल की।

१६ वर्षकी अवस्था तक आपने कन्नडी और मराठी भाषामें अच्छी शिक्षा प्राप्त की परन्तु धर्ममें रुचि न थी। आप सदैव कुसंगतिमें रहने लगे। देवशास्त्र गुरु जैन मन्दिर सभीसे पराङ्मुख थे। एक समय ऐसा आया कि वहाँ श्री १०८ जयकीर्ति आचार्य पहुँच गये। थोडे दिन तो आप उनके पास ही न गये। जाते भी कैसे ? रुचि तो उधर थी ही नही परन्तु एक दिन उनके उपदेश सुननेका प्रसंग आ ही गया। बस उसी उप-देशने आपके हृदयमें धर्मका बीज डालनेका काम किया फिर तो रोज जाने लगे। उधर आपके विवाह करनेकी नानाने चर्चा की। उनके प्रबल अनुरोध और चारों तरफसे दबाव पड़ने पर भी विवाहके प्रस्तावको स्वीकार न कर ठुकरा दिया और उक्त महा मुनिके साथ हो गये। मुनि महाराजने इनको धर्मके पठन स्वा-ध्यायके लिए कहा और थोड़े दिनोंमें अनेक ग्रन्थोंका पठन तथा स्वाध्याय कर लिया। आचार्य महाराजके साथ ही थोड़े दिन बाल ब्रह्मचारी रहकर रामटेक तीर्थ क्षेत्र पर ऐलक दीक्षा ले ली और सम्मेदशिखरजी

साथ चले गये। तत्पश्चात् २० वर्षकी अवस्थामें श्री कुन्थलगिरि सिद्धक्षेत्र पर उक्त आचार्यश्री से मुनि दीक्षा भी ले ली और मुनि अवस्थामें खूब विद्याभ्यास किया। अयोध्या जैसी सुन्दर नगरीमें जैन जनताका अभाव होनेसे वह तीर्थस्थान सूना-सा लगता है। अतः आचार्य महाराजने वहाँ एक गुरुकुल स्थापित कर जैन समाजका बड़ा काम किया है। यह गुरुकुल उन्नति करता जा रहा है। इस तीर्थको उन्नत बनानेके लिए आचार्यश्रीने ३१ फुट ऊँची श्री आदिनाथ भगवान्की विशाल प्रतिमा सुन्दर बगीचेमें स्थापित कराई है। जिससे यह क्षेत्र उत्तर प्रान्तका एक दर्शनीय स्थान बन गया।

प्रत्येक चातुर्मास में आपके धार्मिक, सामाजिक और नैतिक भाषणोंसे जनता पर्याप्त मात्रामें प्रभावित है कारण कि आपके भाषण जन साधारणकी भाषामें सुन्दर और चित्ताकर्षक तत्काल हृदयको उल्लासित करने वाले व्याख्येय विषयको स्फुट करनेमें सफल साधक उदाहरणोंसे ओत-प्रोत रहते हैं। आपकी अमृत-मयी वाणीसे जो विषय बोला जाता है वह श्रोताओंके कर्ण विवर द्वारा सीधा हृदय मे प्रवेश कर मन-सन्तापको शान्त करनेमें समर्थ होता हैं। आपके भाषण इतने गंभीर होते हैं जिन्हें सुनकर जनता मन्त्र मुग्ध हो जाती है। आप लगातार घन्टों बोलते रहते हैं। फिर भी आपको जरा भी थकावट नही आती है। यह आपकी सतत तप साधनाका ही माहात्म्य है। आचार्यश्री की विद्वत्ता, गम्भीरता, ओजस्विता, तपस्ते-जस्विता, निरीहिता, निःस्पृहता, दयालुता, कष्ट सहिष्णुता, अनुपम क्षमता आदि अनेक गुणगरिमा जनता के आर्कषणका केन्द्र बनी हुई हैं।

●

स्व० आचार्य सूर्यसागरजी महाराज

●

श्री १०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराजका जन्म कार्तिक शुक्ल ९ शुक्रवार वि० सं० १९४० को ग्वालियर रियासतके शिवपुर जिलान्तर्गत पेमसर ग्राममें हुआ था। पिताका नाम श्री हीरालालजी और माताका नाम गेंदाबाई था जो जातिके पोरवाल थे। बाल्यपनका नाम हजारीमल था। इनका लालन-पालन इनके पिताके सहोदर भाई बलदेवजी झालरापाटन वालोंके यहाँ हुआ था। बादमें उन्हीके ये दत्तक पुत्र हो गये थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी तक सीमित थी।

विवाह होने पर भी बचपनसे ही इनकी रुचि धर्मकी ओर होनेसे सं० १९८१ में एक स्वप्नके फल स्वरूप ये संसारसे विरक्त हो गए और उसी वर्षकी आसोज शुक्ला ६ को इन्होंने इन्दौरमें आचार्य शान्ति-सागर (छाणी) के पास ऐलक पदकी दीक्षा ले ली। दीक्षा नाम सूर्यसागर रखा गया। इसके बाद कुछ दिनोंमें इन्होंने उन्हींके पास हाटपीपल्यामें मगसिर कृष्णा ११ को मुनि पदकी भी दीक्षा ले ली और कुछ कालमें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये गये।

आचार्य सूर्यसागरजी महाराज स्वभावके निर्भीक और स्वतन्त्र विचारक थे। उत्तर भारतमें इस कालमें इनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। आचार-विचारमें मूल परम्परा की इन्होंने जीवनके अन्तिम क्षण तक रक्षा की है। स्वाध्याय और अध्ययन द्वारा इन्होंने अपने ज्ञानको खूब बढ़ाया और कई ग्रंथोंकी रचना की।

अंतमें जीवनको नश्वर जान इन्होंने डालमियानगरमें समाधि ले ली थी। वहाँ नगरके बाहर दाह संस्कारके स्थान पर प्रसिद्ध उद्योगपति शाहू शान्तिप्रसादजी द्वारा निर्मित इनकी संगमरमरकी भव्य समाधि बनी हुई है।

पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी इनको अपना गुरुके समान मानते रहे। इनका पूज्य वर्णीजीके साथ पत्र-व्यवहार होता रहता था।

●

पूज्य आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज

●

जीवनका पुरुषार्थ संयमकी साधना और इच्छाओंकी विराधनामें है। मुनि और जैन संतोंका जीवन-संयमकी जीवन्त प्रतिमा हुआ करती है। वे संसारमें रहकर उसके नहीं होते। वे कर्म करते हुए भी निष्कर्म रहते हैं।

फपोतू जिला-एटा (उ० प्र०) के श्री प्यारेलालजीके पुत्र रत्न श्री ओमप्रकाश उन जीवात्माओंकी श्रेणीमेंसे एक हुए जिन्होंने स्वात्मकल्याणकी लगन लगायी। साधारण-परिस्थितिमें बढ़कर विद्याध्ययन किया। आप प्रारम्भसे साधु सन्तोंके सहवासमें रहे। और एक दिन वह आया जब फाल्गुन सुदी १३ सं० २०१९ में आ० विमलसागरकी धर्ममयी प्रेरणासे श्री सम्मेदशिखरकी पुण्यस्थलीसे मुनिदीक्षा अंगीकार नये नाम मुनि सन्मतिसागरको सार्थक किया। उस समय आप बालब्रह्मचारी थे और आपकी आयु २५ वर्ष थी।

दीक्षोपरान्त आपने बाराबंकी, बड़वानी, मांगीतुंगी, श्रवणबेलगोला, हूमच, कुन्थलगिरि और गजपंथा आदिमें अपने वर्षाकालीन चातुर्मास धर्माराधन पूर्वक व्यतीत किये।

●

अनवरत चिन्तक, श्रुताभ्यासी
आचार्य कल्प श्रुतसागरजी महाराज

राजस्थानके प्रसिद्ध शहर बीकानेरमें फाल्गुन बदी अमावस्या संवत् १९६२ में श्रावक (ओसवाल) गोत्रोत्पन्न श्रीमान् सेठ छोगमलजी, माता श्रीमती गज्जोबाईकी कुक्षिसे आपका जन्म हुआ था। माता-पिताने आपका नाम श्री गोविन्दलाल रखा, इकलौते और लाडले पुत्र होनेके कारण आपको फागोलाल भी कहा करते थे।

आपके पिता कपडेके अच्छे व्यापारी थे। घरकी स्थिति अच्छी सम्पन्न थी। आपसे बडी एक बहिन श्री लोनाबाईजी भी हैं जो धर्म परायण तथा आत्म कल्याणकी ओर अग्रसर होकर धर्म ध्यानमें काल यापन करती हैं।

पिताके होनहार, इकलौते लाडले पुत्र होनेके साथ ही सम्पन्न परिवारमें होनेके कारण आपके पिताजीने आपकी शिक्षाको विशेष महत्त्व न देकर प्रारम्भिक शिक्षा मात्र ही दिलाई। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर लेनेके बाद आप पिताजीको उनके व्यावसायिक कार्यमें सहयोग देते हुए कपडेका व्यापार करने लगे। कुछ समय बाद आप अपनी कार्य निपुणताके कारण व्यापारी वर्गमें प्रतिष्ठित हुए और आपने व्यापार में प्रचुर सम्पन्नता एवं सम्मान प्राप्त किया।

प्रारम्भमें आपके पिता श्री मुँह पट्टी वाले श्वेताम्बर आम्नायके कट्टर अनुयायी थे। सयोगकी बात कि एक रामनाथ नामका व्यक्ति जो कि जातिका दर्जी था, आपके मकानके नीचे किराए पर रहता था। वह व्यवसाय भी अपनी जातिके अनुसार सिलाईका करता था। दर्जी होते हुए भी सुयोग्य, एवं दिगम्बर जैन आम्नायके प्रति गहरी श्रद्धा रखता था। इसने अपनी विवेकशीलता, निपुणता एवं आत्म श्रद्धासे आपकी माताको दिगम्बर जैन आम्नायके महत्त्वको बताया और अन्तमें आपकी माताके हृदयमें दिगम्बर जैनधर्मके प्रति अगाध श्रद्धाका समावेश किया। फलतः आपकी माताजी श्वेताम्बर आम्नायके बजाय दिगम्बरत्वके प्रति अटूट श्रद्धा रखने लगी। कुछ समय पश्चात् आपके पिताजीने अपनी तीक्ष्ण विवेक शीलताके द्वारा दिगम्बरत्वके महत्त्वको आका और दिगम्बर जैनधर्मके प्रति आस्था रखते हुए आचरण करने लगे।

जब आपकी उम्र लगभग १७ वर्षकी थी तो पिताश्रीने आपका विवाह बीकानेर निवासी व कलकत्ता प्रवासी सेठ जुगलकिशोरजीकी शीलरूपा, सुयोग्य सुपुत्री श्रीमती बसंताबाईके साथ सम्पन्न करा दिया। लेकिन आपका गृहस्थाश्रम बालापनसे ही बहुत वैराग्य युक्त व्यतीत हुआ।

आपके सुयोग्य, कर्त्तव्यशील तीन पुत्र श्री माणिकचन्द्रजी, श्री हीरालालजी एवं श्री पदमचन्द्रजी हैं, जो पैतृक उद्योगके अलावा प्रेसका भी संचालन करते हैं। आपकी सुयोग्यशीलरूपा तीन पुत्रियां भी हैं।

माता पिताके स्वर्गारोहण हो जानेसे फागोलालजीको संसारकी असारताका भाव उद्भासित हुआ।

अपने हृदयमें त्याग तप साधना ही आत्मकल्याणका हेतु है ऐसा विचार कर घर पर रहते हुए आत्म-कल्याण का कारण त्याग, उपवास, संयम आदि धार्मिक क्रियाएं करने लगे। कलकत्तेमें "छोगालाल गोविन्दलाल"के नामसे आपका कपड़ेका थोक व्यापार होता था। आपका बड़ा पुत्र श्री आपके व्यापारमें योग देने लगा, श्रीमान् पं० ब्रह्मचारी सुरेन्द्रनाथजी, श्रीब्रह्मचारी श्रीलालजी काव्यतीर्थ एवं श्री बद्रीप्रसादजी पटना वालों के साथ आपकी शास्त्रीय चर्चाएं तथा ज्ञान गोष्ठियां होती थी। ज्ञानार्जनके इस अभ्यासके द्वारा आप शास्त्रीय विद्वान् हो गये। आपके अन्तरमें गृह त्यागकी भावना दिन-प्रतिदिन बढती गई फलतः आप ४० वर्ष की तरुण वयमें आजन्म ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेकर ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने लगे।

विक्रम संवत् २००९ को उदासीन आश्रम ईसरीमें आपने परम पूज्य आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराजके प्रथम दर्शन किये थे। तभीसे आपकी आत्म कल्याणकी भावनाका प्रबलतम उदय हुआ था और उसी समयसे सासारिक वैभव नीरस एवं जल बुदबुदेके समान प्रतीत होने लगे। फलतः घर पर आकर आप उदासीन वृत्तिसे रहने लगे। फिर भी आपको हृदयमें पूर्णतः शान्ति नही मिली और संवत् २०११ में टोडा रायसिंह (राजस्थान) में आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजके समीप ७वी प्रतिमाके व्रत ग्रहण कर लिए। इन व्रतोंके लेनेसे आपकी आत्मामें अटूट वैराग्य भावना रूपी ज्वाला ज्वलित होने लगी। फलतः चार माह बाद ही टोडा रायसिंहमें कार्तिक सुदी १३ संवत् २०११ में ही आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजसे आपने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली।

क्षुल्लक दीक्षाके बाद आपका ध्यान आगम ज्ञानके आलोकमें विचरने लगा। अल्प समयमें अपनी तीक्ष्ण विवेकशीलताके द्वारा आपका ज्ञान आत्मामें आलोकित हो गया। भादों सुदी तीज सं० २०१४ के शुभ दिन जयपुर खानियामें प्रात.स्मरणीय परम पूज्य आचार्यवर श्री वीरसागरजी महाराजके श्री चरणोंमे नमन कर आत्म शान्ति तथा विशुद्धताके लिए दिगम्बर मुनिका जीवन अंगीकार कर लिया।

मुनि दीक्षाके बाद आपका प्रथम चातुर्मास ब्यावर, दूसरा अजमेर, तीसरा सुजानगढ़, चौथा सीकर, पाचवां लाड़नू एवम् छठवां जयपुरमें हुआ। जयपुर चातुर्मासके अवसर पर आपके ऊपर असह्य शारीरिक सकट आ पड़ा था, लेकिन आपने अपने आत्मबलके द्वारा दुःखी भौतिक शरीरसे उत्पन्न वेदनाका परिषह शान्ति पूर्वक सहन कर विजय पाई।

मुनि जीवन यापन करनेमें आपको अनेक आपत्तियों, उपसर्गों और परिषहोंका सामना करना पड़ा लेकिन मुनि श्री सदा अपने आत्म-कल्याणके लक्ष्यमें इस प्रकार लवलीन रहे कि इन आपत्तियोंसे आपके तपोतेजमें वृद्धि ही हुई।

धन्य है उस मां को जो मानवोंके कल्याण-कर्त्ता ऐसे इकलौते पुत्रको जन्म देकर महा भाग्यशालिनी हुई। इस क्षणिक जीवनमे आपने जबसे इस पथका अवलम्बन लिया तबसे अतुल जैनागमका ज्ञान ग्रहण करते हुए चारित्र के क्षेत्रमें भी अनवरत अग्रणी हैं। आपके दैनिक जीवनका अधिक उपयोग शास्त्र-स्वाध्यायमें ही होता है। आपका स्वाध्याय स्थायी और शुभोपयोगी होता है। आप अपने उपदेशमें जिन बातोंका निरूपण करते हैं वह विद्वानों को भी आश्चर्यकारी होती हैं।

श्री श्रुतसागरजीके दिव्य व्यक्तित्वमें एक अनोखी प्रभावोत्पादक शक्ति है जिसका अनुभव उनके सम्पर्कमें आने पर ही हो पाता है। जैन आगमके दुरूह और गूढतम रहस्यों तक उनकी जिज्ञासु दृष्टि पहुँचती है और वे तत्त्व विवेचनमें आठों याम एक परिश्रमी विद्यार्थीकी तरह रुचि लेते है एवं कठोर अध्य-वसाय करते है।

●

आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज

जीवन-परिचय

भगवान् महावीरकी श्रमण परम्पराको जिन आचार्योंने बीसवी शताब्दीमें अत्यधिक आगे बढाया उनमें श्री १०८ आचाय महावीरकीर्तिजी महाराजका नाम उल्लेखनीय है। आचार्यश्री गृहस्थ अवस्था महेन्द्रकुमारके नामसे विख्यात थे।

आपका जन्म उत्तरप्रदेशके सुप्रसिद्ध औद्योगिक नगर फीरोजाबादमें हुआ। आपने वैशाख वदी ९ वि०सं० १९६७ में जन्म लेकर अपने पिता रतनलालजी और माता बूंदा देवीको अमर कर दिया। आप पद्मावती पुरवाल समाजके भूषण व महाराजा खादानके थे। आप पाँच भाइयोंमें एक ही निकले। कारण, चारों भाइयोंने जो कार्य नही किया वही कार्य आपने सहज स्वभावसे किया।

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा फीरोजाबादमें हुई। दस वर्षकी अवस्थामें आपकी माताजीका स्वर्गवास हुआ तो आपके मानसमें विरक्तिका अंकुर उत्पन्न हुआ। आपने दिगम्बर जैन महाविद्यालय व्यावर और सर सेठ हुकमचन्द महाविद्यालय इन्दौरमें शास्त्री कक्षा तक ज्ञान प्राप्त किया। आपकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण और प्रतिभा अपूर्व थी। आपने न्यायतीर्थ आयुर्वेदाचार्यका अध्ययन किया। अधिकाधिक धार्मिक शिक्षाने आपकी उदासीनता और भी अधिकाधिक बढाई, परिणामस्वरूप उभरते यौवनमें ही आपने आजन्म अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया।

व्रतनिष्ठा

यों तो आप सोलह वर्षकी अवस्थासे ही श्रावक धर्मका निर्दोषरूपसे पालन करने लगे थे पर संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होकर आपने परम निर्भीक प्रखर प्रभावी वक्ता १०८ आचार्यकल्प चन्द्रसागरजी महाराजसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली। आचार्य वीरसागरजी महाराजसे संवत् १९९४ में टाकाटूकामें क्षुल्लक दीक्षा ली और बत्तीस वर्षकी अवस्थामें श्री १०८ आचार्य आदिसागरजी महाराजसे मुनि दीक्षा ली। यों आपका ज्ञान चारित्रके साथ जुड़ा।

आचार्य आदिसागरने आचारागके अनुकूल आपका आचरण देखकर अपना उत्तराधिकारी बनाया। आचार्य बनकर आपने चतुर्विध संघका सकुशलतासे संचालन किया। भारतके अनेक प्रान्तोंमें भ्रमण कर आपने दिगम्बर जैनधर्मका प्रचार किया व अनेकोंको मुनि, आर्यिका श्रावक-श्राविका, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक आदि बनाकर आत्म कल्याणमें लगाया। आचार्य श्री महान् उपसर्ग विजयी और निर्मोही साधु रत्न थे। आपकी क्षमाशीलता साहस क्षमताका परिचय आपके जीवनकी अनेक घटनाओंसे मिलता है।

उपसर्ग विजेता

एकबार आप बड़वानी सिद्धक्षेत्रपर ध्यान-मग्न थे। किसी दुष्ट पुरुषने मधुमक्खियोंके छत्तेपर पत्थर

फेंक दिया। मधुमक्खियोंने आचार्यश्री पर आक्रमण किया। लहूलुहान होकर भी आपने ध्यान नही छोड़ा। इसी प्रकार जब आप खण्डगिरि उदयगिरि क्षेत्रकी यात्राके लिए जा रहे थे कि पुरलियामें तीन शराबी लोगों ने आचार्यश्रीको अकारण ही मारनेके लिए लाठियां उठाईं। सेठ चाँदमलजीने अपने गुरुकी रक्षा करनेके लिए स्वयं लाठियां खाईं पर फिर भी कुछ तो आचार्यश्री को लगीं। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टने आकर उन्हें खूब फटकारा। दुष्ट लोग क्षमा मांगकर भाग गये। इसी प्रकार सम्मेदशिखरजी सिद्ध क्षेत्रपर भी अगहनमें असहनीय शीत नग्न शरीरपर झेलकर अपनी अपार विरक्तिका परिचय दिया।

आचार्यश्रीके समग्र शरीरपर ब्रह्मचर्यकी आभा दीखती थी। आप घण्टों एक आसनसे ध्यान करते थे। आचार्यश्रीकी निर्वाणभूमियोंके प्रति अपार निष्ठा थी। शायद इसलिए कि आप स्वयं निर्वाणके तीव्र अभिलाषी थे। जब गिरनार क्षेत्रके दर्शनकर आप शत्रुञ्जय अहमदाबाद होते हुए मेहसानी पहुँचे तब वहाँ ६ फरवरी, १९७२ को आपका स्वर्गवास हो गया। चूँकि आपको अपनी मृत्युका आभास होने लगा था, अतएव पहले ही संघकी सुव्यवस्था कर दी थी।

•

आचार्यरत्न विमलसागरजी महाराज

•

श्रमण संस्कृतिमें साधुका विशिष्ट स्थान है, जो संसारसागरमें डूबते जीवोंके उसी प्रकार सहारे होते हैं जैसे भटके हुए निशा-यात्रीके लिए आकाश-दीप। आचार्य विमलसागरजी महाराज उन दुर्लभ महा-पुरुषोंमें हैं जिन्हे वीर प्रसूता भारत जननी युगों बाद जन्म देती है।

कोसमा जिला एटामें जन्मे श्री नेमीचन्दके पिता श्री बिहारीलाल और माता कटोरीबाईने कब सोचा कि उनका पुत्र एक दिन भारतका सन्त शिरोमणि बनकर जन्म स्थान, कुल, जाति और वंशकी कीर्त्तिकी उज्ज्वलतासे निमज्जित करेगा। सं० १९७३ के आश्विन कृष्ण सप्तमीका वह शुभ दिन था जब बालक नेमीचन्दने जन्म लिया था।

माँकी ममता बालकको छह माहसे अधिक अपनी वात्सल्यता न दे सकी और वैराग्यके अंकुरणमें नेमीचन्दको माँका वियोग एक कारण बना। इसके बाद भी नारीत्वके कमनीय स्वप्निल बन्धन उन्हे बाँध न सके।

वैराग्य व दीक्षाएँ

श्री नेमीचन्दने मथुरा, अलवर, बड़ौदा, आगरा, जयपुर आदिका भ्रमण अध्ययनोपरान्त विभिन्न दृष्टिकोणोंसे किया। आप जब जयपुरमें श्री १०८ चन्द्रसागरजी महाराजके दर्शनार्थ गये तो वहाँ शूद्र जल त्यागका व्रत लिया। और वही चार माह अध्यापन कार्य किया। फिर साधु सेवा तथा तीर्थयात्रामें निरत रहे। आपके पिताने इन्हें सांसारिक प्रपंचमें लगे रहनेके उद्देश्यसे कपड़ेका व्यवसाय करवा दिया। परन्तु आपके मनमें वैराग्य भावनाका बीजांकुर जम चुका था और आप साईकिलसे इधर-उधर जाकर जैनधर्मके मूल सिद्धान्तोंकी शिक्षा देते रहते। साईकिलके द्वारा ही अनेक तीर्थोंकी वन्दना की तथा श्री सम्मेदशिखर

जी गये और इसके बाद पंचकल्याणक कराने तथा शिक्षण कार्यमें ही समय बिताने लगे। इसी बीच आपके पिताजीका देहावसान हो गया।

कई संस्थाओंमें कार्य करनेके पश्चात् कुचामन रोड स्थित श्री नेमिनाथ विद्यालयके प्रधानाध्यापक चुने गये। वहाँ १०८ श्री वीरसागजीका संघ पधारा और आपने द्वितीय प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। व्रतोंमें क्रमशः वृद्धि होती गयी और आपने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत लेकर सातवी प्रतिमा धारण की।

सं० २००७ प्रथम आषाढ़ वदी पंचमीको बड़वानी सिद्ध क्षेत्र पर श्री १०८ आ० शान्तिसागरकी आज्ञासे श्री १०८ आ० श्री महावीर कीर्तिने आपको क्षुल्लक दीक्षा दी और आप क्षुल्लक वृषभसागर कहलाने लगे। माघसुदी १३ सं० २००७ में धर्मपुरी (निवाल) पहुँचकर ऐलक दीक्षा ली और श्री सुधर्म-सागर के नवीन नामसे संस्कारित हुए। पुनः सोनागिरि सिद्ध क्षेत्र पर फागुन सुदी १३ सं० २००९ को निर्ग्रन्थ दीक्षा ली और आपका नाम 'विमलसागर' रक्खा गया।

मुनि दीक्षाके उपरान्त आपने ८ वर्ष कठोर तपस्या और गहन स्वाध्याय किया तथा उत्तर, दक्षिण भारतका भ्रमण किया। कुछ समय उपरान्त आपने अपना निजका संघ बनाया। तथा अगहन वदी २ सं० २०१८ को टूँडला (आगरा) में पं० माणिकचन्दजी धर्मरत्न एवं विशाल जनसमूहके बीच आपको आचार्यत्वका पद दिया गया।

उपसर्ग, अतिशय एवं धर्मप्रभावना

आपका सम्पूर्ण जीवन उपसर्गों और घटनाओंका जीवन रहा है। जब आप अतिशय क्षेत्र बन्धाजी (टीकमगढ़) पहुँचे तो वहाँके सूखे पडे कुएमें शान्ति धारा कराकर श्री आदिप्रभुका प्रक्षाल जल डलवा दिया और कुएँमें जल ही जल हो गया। मिर्जापुर रास्तेमें सिंह और विशालकाय अजगरका उपसर्ग हुआ। जौनपुरके रास्तेमें एक रेल्वे चौकी पर जहाँ रात्रि विश्राम करना पडा एक भयानक सर्प आपके सामने तीन घण्टा खडा रहा। गिरनारकी तीर्थ वन्दना पर जब पावां और उसके बाद भररियाँ पहुँचनेपर वहाँके निवासियोंने मारनेका उपक्रम किया परन्तु आपकी तपस्याके प्रभावसे वह उपसर्ग टला।

अब तक महाराजजी लगभग डेढ लाखसे अधिक लोगोंको शूद्र जल एवं माँस भक्षण आदिका त्याग करा चुके हैं। लगभग ३५० त्यागी आपके द्वारा बनाये गये तथा ३० ब्रह्मचारी, २ ऐलक, ३ क्षुल्लक, क्षुल्लिकाएँ, २ आर्यिकायें और ४ मुनि आदि बना चुके हैं। ऐसी अटूट प्रभावना आपके व्यक्तित्व एवं धर्मोपदेशसे हुई।

ऐसे परोपकारी सद्गुरु इस वर्तमान कालमें बहुत कम मिल पाते हैं जो स्वयं चारित्रिक भूमिका पर आरूढ होकर गिरोंको उठानेमें और उठोंको धर्मका अमृत देनेमें हमेशा निरत रहते है। धर्मकी आधारशिला इन्ही पूज्य सन्तोंसे टिकी है तथा अपनेमें जीवन्त है।

●

प० पू० आचार्यप्रवर धर्मसागरजी महाराज

●

जन्म एवं बाल्यकाल

जिस दिन चन्द्रमा षोडश कलाओंसे पूर्ण होकर अपनी शुभ्र ज्योत्स्नासे जगत्‌को आलोकित कर रहा था, जिस दिन धर्मनाथ भगवान्‌ने केवलज्ञानको प्राप्त कर समस्त लोकको आलोकित किया था उसी पौसी पूर्णिमाके दिन एक महान् आत्माने जन्म लेकर ६३ वर्ष पूर्व इस पृथ्वीतलको कृतार्थ किया था। राजस्थान प्रातस्थ गम्भीरा ग्राम धन्य हो उठा, जिस दिन माता उमराबाईकी पवित्र कुक्षिसे बालकने जन्म धारण किया, पिता भी अपनेको धन्य समझने लगे। जब उनके गृहांगणमें पुत्ररत्न बालसुलभ क्रीडाओंसे परिवार जनोंको आनन्दित करने लगा, चिरजीवन अभीष्ट होनेसे ही मानो माता पिताने चिरजीलाल यह नाम रखा। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय पाठशालामें हुई। बाल्यावस्थामें ही आपके माता पिता आपको अकेले छोडकर इहलोक यात्रा समाप्त कर स्वर्ग सिधार गये, कष्ट प्रद इस इष्ट वियोगके पश्चात् आप किशोरवयमें ही मध्यप्रदेश प्रातान्तर्गत इन्दौर नगरमें व्यापारार्थ चले आये और कपडेका व्यापार करने लगे।

संयमकी ओर

प० पू० मुनि श्री वीरसागरजी महाराज के समुज्ज्वल सांनिध्यने आपके जीवनमें संयमकी सर्व प्रथम स्वर्ण रश्मि प्रदान की। आपने पू० श्री दूसरी प्रतिमाके व्रत धारण किये। कुछ समय पश्चात् इन्दौर नगरमें प० पू० मुनि चन्द्रसागरजी महाराजके शुभ्र चारित्र रूपी चन्द्रमाके शीतल प्रकाशने संसारकी नश्वरतासे संतप्त आपके हृदयको शीतलता प्रदान की। फलस्वरूप आपने मुनिश्रीसे आजीवन ब्रह्मचर्य एव सप्तम प्रतिमाके व्रत धारण किये और पूज्यश्रीके साथ ही गृह परित्याग कर विहार करने लगे।

मंगलमय प्रभात

जैसे पूर्णिमाकी चन्द्रकिरणोंको प्राप्त करके लवणोदधि प्रमुदित हो वृद्धिको प्राप्त होता है उसी प्रकार पू० श्री चन्द्रसागर महाराजको प्राप्तकर आपका वैराग्योदधि वृद्धिगत होने लगा। तदनुसार सं० २००० में चैत्रशुक्ला सप्तमीका दिन आपके जीवनका मगलमय प्रभात था जिस दिन आपने उत्कृष्ट श्रावकके व्रत स्वरूप क्षु० दीक्षाको धारणकर ब्र० चिरंजीलालसे क्षु० भद्रसागर इस नामको प्राप्त किया। पू० गुरुवर्यका चरण सांनिध्य आपको बहुत अल्पकालीन रहा। गुरुवर्यकी समाधि हो जाने पर आप अपने आद्य गुरु पू० श्री वीरसागर महाराजके सांनिध्यमें चले आए।

दिगम्बरत्वकी ओर

आद्यगुरुके सानिध्यमें रहते हुए ज्ञानाभ्यास किया। "मुक्ति प्राप्तिमें अल्प परिग्रह भी बाधक है।" इस बातने आपको निर्ग्रन्थ मुनि बननेकी प्रेरणा दी और आपने गुरुचरणोंमें सर्वसंग त्यागकर मुनि दीक्षा

ग्रहण करनेकी भावना व्यक्त की। गुरुवर्यने १४ गुणस्थानोंसे अतीत सिद्धावस्था प्राप्त करने हेतु ही मानों स० २००८ में कार्तिक शुक्ला चतुर्दशीके मंगलमय दिवसमें बाह्याभ्यन्तर परिग्रहके त्यागरूप निर्ग्रन्थ श्रमण दीक्षा प्रदान की।

दीक्षाके पश्चात् सघके साथ आपने अनेक ग्रामों एव नगरोंमें विहार किया और गुरु सानिध्यमें तीर्थराज सम्मेदाचलकी यात्राका सौभाग्य प्रदान किया। लगभग ६ वर्ष गुरुचरणोमें रहनेका पुण्यावसर मिला और संवत् २०१४ में पू० आ० श्री शान्तिसागरजी महाराजके पट्टशिष्य आ० श्री वीरसागरजी (गुरुवर्य) का समाधिमरण हो जानेके पश्चात् आपने संघमे २ और मुनिराजोको साथ लेकर पृथक् विहार किया एव धर्मप्रभावना करते हुए अनेक भव्य जीवोंको संयम मार्गमें लगाकर उनके आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त किया।

संघ अधिनायकत्व

मुनि अवस्थामें भारतके कोने कोने में पदविहार द्वारा धर्म प्रभावना करते हुए सवत् २०२५ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठामें सम्मिलित होने हेतु अतिशयक्षेत्र श्री महावीरजी ससघ पधारे जहाँ आपके गुरु भ्राता आ० शिवसागरजी (आ० श्री वीरसागरजीके पट्टशिष्य) वहाँ पहलेसे ही ससंघ विराजमान थे। गुरु भ्राताओका सम्मिलन विहगावलोकनीय था। सयोगत. अल्पकालीन रुग्णावस्थाके कारण आ० शिवसागरजी महाराजका समाधिमरण फाल्गुन कृष्णा अमावस्या स० २०२५ में हो गया। उनके स्वर्गवास हो जानेके पश्चात् 'सघ अधिनायक कौन होगा ?" इस प्रश्नने सभीके मनको आदोलित कर दिया। अन्तत चतुर्विध संघने "विशाल संघ अधिनायकत्व" पद पर आपको आसीन करनेका निर्णय किया, फाल्गुन शु० अष्टमीके दिन पंचकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसर पर तप कल्याणकके दिन समस्त सघने विशाल जनसमुदायके मध्य आपको आचार्य पद प्रदान किया।

आचार्य पद प्राप्त होनेके १ घण्टे पश्चात् ही आपके करकमलोंमें ११ मुमुक्षुओने यथाशक्ति मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाकी दीक्षायें धारण की।

आचार्यत्वके पश्चात् पूज्यश्रीके मंगल वर्षायोग—

संवत्	२०२६ में	प्रथम	चातुर्मास	जयपुर	(राजस्थान)
,,	२०२७ में	द्वितीय	,,	टोंक	,,
,,	२०२८ में	तृतीय	,,	अजमेर	,,
,,	२०२९ में	चतुर्थ	,,	लाडनू	,,
,,	२०३० में	पचम	,,	सीकर	,,
,,	२०३१ में	षष्ठ	,,	देहली (निर्वाणोत्सव वर्ष)	
,,	२०३२ में	सप्तम	,,	सहारनपुर (उ० प्र०)	
,,	२०३३ में	अष्टम	,,	बडौत	,,

आचार्यश्रीके द्वारा अभिसिंचित चारित्र उपवनके किंचित् प्रसून—

मुनि

मुनिश्री पुष्पदंत सागर	मुनिश्री बुद्धिसागर	मुनिश्री पुष्पदंत सागर	मुनिश्री बुद्धिसागर
,, बोधिसागर (स्वर्गस्थ)	,, भूपेन्द्रसागर	,, अभिनन्दनसागर	,, भद्रसागर
,, निर्मलसागर	,, चारित्रसागर	,, सम्भवसागर	,, निर्वाणसागर

,,	संयमसागर	,,	सुदर्शनसागर (स्वर्गस्थ)	,,	शीतलसागर (स्वर्गस्थ)	,,	विपुलसागर
				,,	यतीन्द्रसागर	,,	पूर्णसागर
,,	दयासागर	,,	कीर्तिसागर	,,	वर्धमानसागर	,,	मल्लिसागर
,,	महेंद्रसागर	,,	गुणसागर	,,	योगीन्द्रसागर (स्वर्गस्थ)		

आर्यिका

आर्यिका अभयमती	आर्यिका संयममती	आर्यिका सिद्धमती
,, विद्यामती	,, विपुलमती	,, विमलमती
,, जयामती	,, श्रुतमती	,, समयमती
,, निर्मलमती	,, शिवमती	,, समाधिमती
,, रत्नमती	,, सुरत्नसागर	,, प्रवचनमती
,, शुभमती	,, गुणमती	,, सुरत्नमती

क्षुल्लक

क्षुल्लक पूर्णसागरजी
,, वैराग्यसागर (ऐलक अवस्थामें स्वर्गवास)
,, सिद्धसागर

इन दीक्षित शिष्योंके अतिरिक्त और भी अनेक साधुगण आपके विशाल संघमें हैं जो भ० महावीरके शासनकी प्रभावना करते हुए देशके विभिन्न भागोंमें यत्र-तत्र विहार करते हुए स्वपर कल्याण करनेमें निरत हैं।

हितमितभाषी स्पष्टवक्ता

पू० श्री हितमित एवं स्पष्टवक्तृत्व गुणको आत्मसात् किये हुए है। आपकी मित, किन्तु स्पष्ट एवं लोक कल्याणी वाणीके द्वारा लाखों व्यक्ति यथाशक्य आत्म साधनामें रत हैं। चाहे कैसा भी व्यक्ति हो आपकी प्रसन्न मुद्रा युक्त गम्भीर वाणीसे प्रभावित होकर जीवनमें कुछ न कुछ अहिंसारूप व्रतोंको धारण अवश्य करता है। अनेक भव्य प्राणियोंने महाव्रत एव देशव्रतरूप चारित्रको धारणकर आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त किया है।

लोकैषणासे निस्पृह व्यक्तित्व

आचार्यश्रीका जीवन लोकैषणासे निस्पृह जीवन है। इतने बडे संघके अधिनायक, सर्वमान्य निर्विवाद आचार्य पद पर आसीन होते हुए भी आप किसी भी लौकिक प्रतिष्ठारूपी गृह पिशाचसे सर्वथा दूर रहते हैं। इतने लब्ध प्रतिष्ठित पद पर आसीन है फिर भी अभिमान आपको छू तक नही गया है क्योंकि आप मार्दव धर्मको आत्मसात् किये हुए है। आपकी ख्यातिसे निस्पृहता एव निरभिमानता ही आपकी प्रतिष्ठाके सबसे प्रबल निमित्त है। यही कारण है कि आप प्रशंसकोंसे सदैव दूर रहना एवं निंदकोंको अपने निकट रखना श्रेष्ठ समझते है और इसी प्रकारके मार्गोद्बोधनसे अपने शिष्योपवनको अभिसिंचित करते रहते है।

आपकी तीव्रतम प्रेरणाओंसे जैन गुरुकुल एव छात्रावासोंकी स्थापना हुई है और वहाँ पर लौकिक अध्ययनके साथ साथ धार्मिक अध्ययनकी भी व्यवस्था की गई है।

इस प्रकार समाजके ज्ञान एवं चारित्रकी अभिवृद्धिस्वरूप आपने अनेक कार्य कलापोंमें अपनी लोकवाणीके द्वारा मार्गदर्शन दिया।

●

स्व० आचार्यकल्प श्री चन्द्रसागर जी महाराज

●

आपका जन्म विक्रमसंवत् १९४० में नाँदगाँव में हुआ था। पिताश्रीका नाम नत्थमलजीत था माताश्रीका नाम सीता देवी था। जाति खण्डेलवाल। आपका विवाह विक्रम स० १९६० में हुआ था। १९६२ में पत्नीका वियोग हो गया। इससे विरक्ति होनेसे आपने वि० १९६२ में आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। वीर सं० २४४८ में ऐलक पन्नालालजीसे दूसरी, तीसरी प्रतिमा ग्रहण की। कुर्दू वाडीमें में आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके चरण सान्निध्यमें दशमी प्रतिमा ग्रहण की। और उन्ही आचार्यजीसे २४५० में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। चातुर्मास ममडोलीमें हुआ। आश्विन शुक्ला ११ बुधवार २४५० में परमपूज्य आचार्यजीके आदेशसे केशलोंचकर ऐलक व्रत धारण किये नाम चन्द्रसागर रखा गया। २४५६ सोनागिर क्षेत्रपर दिनके १० बजे आपने मुनिदीक्षाके व्रत ग्रहण किये। इस तरहसे आचार्य द्वारा धर्म की प्रभावना होती रही। वीर नि० स० २४७१ में चतुर्विध संघ के समक्ष णमोकार मन्त्र का जाप करते हुए बडवानी सिद्ध क्षेत्रमें स्वर्गवासी हुए।

●

आचार्यश्री समन्तभद्रजी महाराज

●

आदर्श कर्मयोगी एवं त्यागशील महापुरुष ही हमेशा समाजका नेतृत्व करता आया है। जिन-जिन महापुरुषोंने जीवनको अमृत तत्त्वकी ओर ले जानेका प्रयत्न किया, उनमें आदर्श साधक श्री मुनि समन्तभद्रजी है, जो आ० समन्तभद्रके पद-चिह्नों पर चलकर निरन्तर स्व-पर कल्याणमें निरत हैं।

आपका जन्म सोलापुर जिलेके करमाला गाँवमें १० दिसम्बर, १८९१ को हुआ था। बी० ए० तक लौकिक शिक्षा प्राप्त की।

स० २००४ मे जब आप क्षुल्लकावस्थामें थे, शोलापुरमें जैन-महोत्सवके अवसरपर होनेवाले दि० जैन विद्वत्परिषद्के अधिवेशनमें आपने श्री बाहुबलि गुरुकुलकी स्थापनाका विचार रक्खा जो करीब ५ लाख रु० की अनुमानित धनराशिके प्रावधानके रूपमें था। ऐसे क्षेत्रमें जहाँ निर्धनता हो और शिक्षाका प्रचार कम यह योजना कागजोंमें लिखी रहने जैसे लायक लगी, परन्तु तीन वर्ष बाद सं० २००७ में खुरईमें श्री महाराजजीके चातुर्मासके अवसरपर आपने पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री एवं श्री सेठ ऋषभकुमारजी को बताया वे बाहुबलि गुरुकुल देखने चलें। उस समय तक उसमें २०० छात्र विद्याध्ययन कर रहे थे। उग्र तपस्वी होकर—धर्म प्रचारका यह अदम्य उत्साह। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर आपने कारंजामें सर्वप्रथम गुरुकुलकी स्थापना की थी और इसके बाद शोलापुर, कारकल, गजपंथा और खुरई आदि विभिन्न स्थानोंपर गुरुकुल स्थापित किये।

आपने मिरज (बेल्लुवाडी) तथा 'एलोरा' की प्रसिद्धि प्राप्त ऐतिहासिक भूमि पर एक-एक गुरुकुलकी स्थापना की जिसमें ब्र० माणिकचन्दजी (अधिष्ठाता-कारंजा गुरुकुल) जैसे लक्षाधिपतिको इसका कार्यभार सौंपा। इस प्रकार आपने ४०-५० लाख रुपयोंके दानसे दक्षिणमें १०-१२ गुरुकुल खोले। जहाँ आपके शिष्य आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर इनकी सेवामें निरत रहते है।

आपकी सत्प्रेरणासे बाहुबलिपर्वत पर श्री पं० कल्लापा परमप्पा निटवे कोल्हापुरने ५० हजार रु० लगाकर धर्मशालासे पर्वत पर निर्मित बाहुबलि मुनिराजकी समाधि तक पक्की सडकका निर्माण कराया। जहाँ पहिले वहाँ सूनसान और निर्जन स्थल था आज वहाँके पत्थर तत्त्वार्थसूत्रके सूत्र बोल रहे हैं। जहाँ मुनिवर्य श्री समन्तभद्रजी महाराज गुरुकुलके छात्रोंके बीच प्रवचनसार और समयसारके सूत्र पढते हैं।

सतारा और बेलगाँव जिला ऐसे जिले है जहाँ जैन तो हैं पर जैनत्वके चिह्न बहुत कम हैं। इस क्षेत्रमें ऐसे गुरुकुलोंको स्थापित कर जैनत्वका प्रचार करना ही मुनिश्रीका लक्ष्य था। वह योजना, बालकोंके मानस-क्रान्तिमें धर्मकी लहरका समायोजन ही है।

ऐसे युगीन-सन्त जिनका लक्ष्य आत्म कल्याणके साथ जगत्को उठाना, युवकोंके सामूहिक चारित्रका निर्माण करना तथा युगकी भौतिक आवश्यकताओंके साथ आध्यात्मकी भूख जगाना।

●

आचार्यश्री निर्मलसागरजी महाराज

●

आचार्यश्रीका जन्म उत्तर प्रदेश, जिला एटा ग्राम पहाड़ीपुरमें मगसिर वदी दोज विक्रम संवत् २००३में पद्मावती परिवारमें हुआ था, आपके पिताजीका नाम सेठ श्रीछोहरेलालजी एवं माताजीका नाम गोमावतीजी था, दोनों ही धर्मात्मा एवं श्रद्धालु थे। देव-शास्त्र-गुरुके प्रति उनकी अनन्य भक्ति थी तथा अपना अधिक समय धार्मिक कार्योंमें ही व्यतीत करते थे। उन्होंने पाँच पुत्र एवं तीन कन्याको जन्म दिया। उनमेंसे सबसे लघु पूज्य आचार्य १०८ श्रीनिर्मलसागरजी हैं। आपका बचपनका नाम श्री रमेशचन्द्रजी था। सबसे छोटे होनेके कारण आपपर माता-पिताका अधिक प्रेम रहा लेकिन वह प्यार अधिक समयतक न चल सका तथा आपकी छोटी उम्रमें ही आपके माता-पिता देवलोक सिधार गये थे। आपका लालन-पालन आपके बड़े भाई श्रीगौरीशंकरजी द्वारा हुआ। आपकी वैराग्य-भावना बचपनमें ही बलवती हुई। आपके मनमें घरके प्रति अति उदासीनता थी। आपके हृदयमें आहारदान देने व निर्ग्रन्थमुनि बननेकी भावनाने अगाध घर बना लिया था। आप जब छहढाला आदि पढते तो इस संसारके चक्र परिवर्तनको देखकर आपका हृदय काँप उठता था एवं १२ह भावना पढते ही आपके भावोंका स्रोत वह उठता तथा वह धर्म चक्षुओंके द्वारा प्रभावित होने लगता था। आप सोचते थे कि इन दु:खोंसे बचकर अपनेको कल्याण मार्गकी ओर लगाकर सच्चे सुखकी प्राप्ति करूँ। इसीके अनन्तर शुभकर्मके योगसे परमपूज्य श्री१०८ महावीर-कीर्तिजीका शुभागमन हुआ। उस समय आपकी उम्र १२ वर्षकी थी। महाराज श्री आपके घरानेमेंसे हैं। आपने उनके समक्ष जमीकन्दका त्याग किया और थोड़े दिन उनके साथ रहे। फिर भाईके आग्रहसे घर आना पडा। अब आपको घर कैद-सा मालूम होने लगा। आपके भाईने शादीके बहुत यत्न किये लेकिन सब निष्फल हो गये। आप आचार्य श्री१०८ शिवसागरके सघमें भी थोड़े दिन रहे। वहाँसे बड़वानी यात्राके लिए कुछ लोगोंके साथ चल दिये। बड़वानीमें श्रीआचार्य १०८ विमलसागरजीका सघ विराजमान था। आपने वहाँपर दूसरी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। उस समय आपकी उम्र १५ वर्षकी थी। फिर बादमें आप दिल्ली पहुँचे। वहाँपर परमपूज्य श्री१०८ श्रीसीमन्धरजीका संघ विराजमान था। उनके साथ आप गिर-नारजी गये। वहाँपर आपने सं० २०२२ मिती वैसाख वदी १४को क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। उस समय आपकी उम्र १७ वर्ष थी। वहाँसे विहारकर सघका चातुर्मास अहमदाबाद में हुआ। उसके बाद आपने गुरुकी आज्ञानुसार सम्मेदशिखरजीके लिए विहार किया। आप पैदल यात्रा करते हुए आगरा आये वहाँपर श्रीपरमपूज्य १०८ विमलसागरजीका संघ विराजमान था। आपने सं० २०२४ मिती आषाढ़ सुदी ५ रविवारके दिन महाव्रतीको धारणकर निर्ग्रंथ मुनि दीक्षा धारण की तथा संघका चातुर्मास वहींपर हुआ। आपके मनमें यात्राकी भावना बलवती थी। आपने महाराज श्रीसे आज्ञा लेकर व क्षुल्लकजीको साथ लेकर यात्राके लिए विहार किया। रास्तेमें आपका सागरमें चातुर्मास हुआ। वहाँसे विहार करते हुए आप कुण्डलपुर आये। जहाँपर आचार्यश्रीसे ब्र० निजात्मारामजीने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। वहाँसे विहार करते हुए आप श्रीसम्मेदशिखरजी पधारे। वहाँ पर महाराजश्रीकी तीर्थराज वन्दना सकुशल हुई। बादमें आपका चातुर्मास हजारीबागमें हुआ। उसके बाद आप मधुवन आये। वहाँपर क्षुल्लकजीने आपसे महाव्रत ग्रहण किये। बादमें आप ईसरी पंचकल्याणकमें पधारे तथा वहाँपर ८-१० दीक्षायें आपके द्वारा हुई। आप वहाँसे विहार करते हुए बाराबंकी पधारे। जहाँपर आपका चातुर्मास हुआ। चातुर्मासके बाद आपकी जयन्तीके शुभ अवसरपर वहाँकी समाजने आपसे प्रभावित होकर आपको आचार्य कल्पपदसे विभूषित किया। वहाँसे विहार करते हुए आप

मेरठ आये। मेरठसे आप संघसहित पाडव नगरी भगवान् शान्तिनाथ, अरहनाथ, कुन्थनाथ, मल्लिनाथकी जन्मभूमि हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्रपर अखैतीज—जिस दिन भगवान् आदिनाथने श्रेयांस राजासे प्रथम आदि कालका आहार गन्नेके रसके रूपमें लिया था। संघसहित विराजकर आपके सम्पूर्ण संघने गन्नेका रस लेकर उस दिन की याद ताजीकर मानो वो ही दृश्य सामने हो वहाँ आचार्य श्रीसंघसहित एक माह रहकर मीरा-पुर, जानसठ, मुजफ्फरनगर, खतौली, सरधना, बरनावा, बिनौली, बढागाँव, बडौत आदि इलाकोंमें होते हुए इस चातुर्मासके लिए दिल्ली कैलाशनगरमे विराजे, यहाँपर गुरु आज्ञासे महाराज श्रीको समाजद्वारा आचार्य पदसे सुशोभित किया गया और इसप्रकार आप आचार्यपदपर शोभायमान हैं।

आप व्रतोमें दृढ एवं साहसी हैं, सरलता अधिक है, क्रोध तो देखनेमें भी नही आता तथा प्रकृति शाति एवं नम्र है ऐसे वीतराग निग्रंथ साधुओं के प्रति अगाध श्रद्धा है।

●

परम पूज्य गणेश कीर्तिजी महाराज

●

पूज्य वर्णीजीका जन्म विक्रम सवत् १९३१की आश्विन कृष्ण चतुर्थीको असाटी वैश्यके मध्यमवर्ग परिवारमें हुआ था। इनके पिताजीका नाम हीरालाल एवं माताजीका नाम उजयारी बहू था। लोग इन्हे 'गणेश' नामसे पुकारने लगे। बुन्देलखण्डके गाँवों में लोग कृष्ण पक्षकी चतुर्थीको व्रत रखते हैं। इसी कारणसे इनका नाम 'गणेशप्रसाद' रखा गया। परन्तु यह कौन जानता था कि यह 'गणेश' सचमुच गण + ईश होगा। किन्तु इन्होंने अपने नामको सार्थक कर दिखाया। इनका लालन-पालन विशेष सावधानीसे किया गया। जब ७ वर्षके हुए तो पिताजीने इनका नाम गाँवके स्कूल में लिखा दिया। इनका शिक्षा केन्द्र घर और स्कूलके अतिरिक्त राममन्दिर भी था। ७ वर्षकी अल्प अवस्थामें आपने विवेक और बुद्धि द्वारा गुरुसे विद्याको पैतृक सम्पत्ति स्वरूप प्राप्त किया।

'होनहार विरवान के, होत चीकने पात' वाली कहावतके अनुसार आपमें शुभ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। गुरुकी सेवा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। गुरुजीको हुक्का पीनेकी आदत थी, अतः हुक्का भरनेमें जरा भी आनाकानी नही करते थे। निर्भीकता आपमें कूट-कूटकर भरी थी। निडर हो आपने एक दिन तम्बाकूके दुर्गुण अपने गुरुजीको बता दिये, और हुक्का फोड डाला। गुरुजी नाराज होनेकी अपेक्षा प्रसन्न हुए और तम्बाकू पीना छोड दिया।

वह विक्रम संवत् १९४१ था, जब कि १० वर्षकी अवस्थामें जैन मन्दिरके चबूतरेपर शास्त्र प्रवचनसे प्रभावित होकर 'रात्रि भोजन त्याग' की प्रतिज्ञा ली और सनातन धर्म छोडकर जैनधर्म स्वीकार किया।

इच्छा तो नहीं थी किन्तु जातीय विवशता थी, अतः वि० सं १९४३में १३ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत संस्कार हो गया। सं० १९४६ में आपने हिन्दी मिडिल प्रथम श्रेणीसे उत्तीर्ण कर लिया, परन्तु दो भाइयोंका वियोग अध्ययनमें बाधक बन बैठा। अब आपका विद्यार्थी-जीवन समाप्त-सा हो गया और गृहस्थावस्थामें प्रवेश किया। वि० सं० १९४९ में १९ वर्षकी आयुमें मलहरा ग्रामकी सत्कुलीन कन्या आपकी जीवन संगिनी बनी, किन्तु स्वयंकी इच्छा से नहीं।

विवाहके पश्चात् ही पिताजीका स्वर्गवास हो गया, किन्तु पिताजीका भी अन्तिम उपदेश यही था—बेटा, यदि जीवनमें सुख चाहते हो तो जैनधर्मको न भूलना। आत्मा दुखी तो थी ही और गृहभारका भी प्रश्न सम्मुख था, अतः पासके गाँवमें मास्टरी करना शुरू कर दिया। आपका लक्ष्य तो अगाध ज्ञानरूप समुद्र में गोता लगाना था। अतः आप मास्टरी छोड पुनः विद्यार्थी जीवनमें प्रविष्ट हुए और यत्र तत्र नीर पिपासु चातककी तरह विद्याकी साधनाको चल पडे।

वह पुण्य बेला संवत् १९५० थी जबकि सिमरा ग्राममें पूज्य माता सिंचैन चिरौंजाबाईजीसे भेंट हुई थी। माता चिरौंजाबाईजीके दर्शनकर मन आनन्द विभोर हो उठा। माताजीके हृदयसे भी पुत्रवात्सल्य उमड पडा और स्तनोंसे एकदम दुग्धधारा प्रवाहित हो पड़ी। वर्णीजीको चिन्तातुर देख माताजीने कहा—बेटा, चिन्ता छोडो और आजसे तुम मेरे धर्मपुत्र हुए और जो करना चाहो, करनेके लिए स्वतन्त्र हो। माताजीके वचन सुनकर वर्णीजीका हृदय पुलकित हो उठा।

माता सिंचैनजीकी भी इच्छा थी अतः माताजीकी आज्ञा पाकर विद्यासिद्धिके लिए निश्चित होकर निकल पडे। रास्तेमें सामान चोरी चला गया, केवल पाँच आने पैसे और छतरी शेष थी। चिन्तामें पड गये, क्या किया जाय। छतरी तो आपने छः आनेमें बेच दी और एक-एक पैसेके चने खाकर इस सन्तने दिन व्यतीत किये। इसी बीच एक दिन रोटी बनानेका विचार किया, किन्तु बर्तन न थे। पत्थर पर आटा गूथा और कच्ची रोटीमें दाल भिगोकर और ऊपरसे पलाशके पत्ते लपेटकर मन्दी आँचमें डाल दी। रोटी और दाल बनकर तैयार हुई फिर सानन्द भोजन किया।

एक बार अध्ययनकालमें आप खुरई पहुँचे तब पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकरसे धर्मका मर्म पूछा। पं० जी चिल्लाकर बोले—अरे तू क्या धर्मका मर्म जानेगा। तू तो केवल खानेको जैन हुआ है। इस प्रकार के वचन आपने धैर्यपूर्वक सुने।

एक बार आप गिरनारजी जा रहे थे, मार्गमें बुखार और तिजारीने सताया। पैसे भी पासमें नहीं। तब रास्तेमें सड़क बनानेवाले मजदूरोंके साथ मिट्टी खोदना प्रारंभ किया, लेकिन एक टोकनी मिट्टी खोदी कि हाथमें छाले पड गये। मिट्टी खोदना छोडकर ढोना स्वीकार किया, परन्तु वह भी आपसे न हुआ। अतः दिनभरकी मजदूरी न तो तीन और न नौ पैसे ही मिले, किन्तु दो पैसे मिले। दो पैसेका आटा लिया, दालको पैसे कहाँ। अतः नमककी डलीसे रूखी रोटी खानी पडी।

विद्याध्ययन हेतु वि० सं० १९५२में बनारस पहुँचे। किसीने पढ़ाना स्वीकार नहीं किया, नास्तिक कहकर भगा दिया। आपने निश्चय किया कि मैंने यहाँ एक जैन विद्यालय न खोला तो कुछ नहीं किया। आपने अपने कठिन परिश्रमसे सं० १९५२में स्याद्वाद महाविद्यालयकी स्थापना कराई।

वि० सं० १९५३में आपकी धर्मपत्नीका स्वर्गवास हो गया किन्तु लेशमात्र भी खेद न हुआ। 'एक शल्य टली'—कहकर प्रसन्न हुए।

सामाजिक क्षेत्रमें भी लोगोंने आपकी परीक्षा की, किन्तु अडिग रहे, अन्तमें शत्रुओंको परास्त होना पड़ा । मूर्ति अगणित टांकियोंसे टांके जानेपर भी पूज्य होती है । आपत्ति और जीवनके संघर्षोंसे टक्कर लेनेपर ही मनुष्य महात्मा बनता है । कर्तव्यशील व्यक्ति अनेक कष्टोंको सहनकर अपने लक्ष्यको पूर्ण कर ही विश्रान्ति लेते हैं । फलतः विद्योपार्जनके लिए सं० १९५२से १९८४ तक कई स्थानोंमें फिरे, किन्तु पुनः बनारस जाकर पं० अम्बादासजी शास्त्रीको अपना गुरु बनाया और वहीसे न्यायाचार्य प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण-कर पारितोषिक प्राप्त किया ।

विद्वत्ताके साथ-साथ संयमकी साधनाने आपको पूज्य सन्त बना दिया और बड़े पंडितजीके नामसे प्रख्यात हुए । जितना प्रेम विद्यासे था उससे भी कही अधिक जिनेन्द्र भक्तिसे था । यही कारण है कि आपने विद्यार्थी जीवनमें स० १९५२में गिरनारजी और स० १९५९मे शिखरजी जैसे पवित्र तीर्थोंकी बंदना पैदल की थी ।

सं० १९६२में श्री ग० दि० जैन संस्कृत विद्यालयकी स्थापना सागरमें कराई और संरक्षक पदको विभूषित किया था । सं० १९७०में आप बडे पंडितजीसे सन्त वर्णीजी बने । सं० १९९३में सागरसे बंडा मोटर द्वारा जा रहे थे कि ड्राईवरसे झगड़ा हो गया । तबसे मोटरका बैठना दूर रहा रेल आदिमें भी बैठना छोड़ दिया ।

सं० २००१मे दशम प्रतिमा धारण की और फाल्गुन कृष्ण सप्तमी सं० २००४को क्षुल्लक हो गये । अब लोग इन्हें बाबाजीके नामसे पुकारने लगे ।

सं० १९९३में फाल्गुन मासमें ७०० मीलकी पैदल यात्रा तय करते हुए बीचके तीर्थ स्थानोंकी भी बन्दना करते हुए शिखरजी पहुँचे । आपका लक्ष्य भगवान् पार्श्वनाथके पाद-पद्मोंमे जीवन बितानेका था, कुछ समय रहे भी । फल स्वरूप उदासीनाश्रमकी स्थापना हो गई । किन्तु २००१में बसन्तकी छटासे बुन्देल-खंडने आपको मोह लिया और एक बार फिर आपने बुन्देल वासियोंको दर्शन दिये ।

वि० सं० २००२में जबलपुरमें आम सभामें अपनी चादर आजादीके पुजारियोंकी सहायतार्थ समर्पित कर दी । उस चादरके उसी क्षण तीन हजार रुपये मिले । सभामें आश्चर्य हो गया, अरे यह क्या ! इस तरह आपके जीवनकी सैंकड़ों घटनाएँ हैं जिनका उल्लेख शक्य नही है । सं० २००२ से लेकर २००९ तक आपने बुन्देलखण्डका भ्रमण किया और सैंकडों विद्यालय, पाठशालायें, स्कूल और कालेज खुलवाकर अज्ञान-रूपी अन्धकारको नष्ट कर दिया । यही कारण है कि आज जैन समाजमें सैंकडों विद्वान् देखे जा रहे है ।

सं० २००९में आपने सागरमें चातुर्मास किया । चातुर्मासके पश्चात् आपने ७०० मीलकी लम्बी यात्रा ७९ वर्षकी अवस्थामें की और शिखरजी पहुँचे । आपकी इच्छा थी कि वृद्धावस्थामें पार्श्व प्रभुकी शरण में रहूँ । आपकी इच्छा पूर्ण हुई । सं० २००९से अन्तिम समय तक आप पार्श्व प्रभुके चरणोंमें रहे और यहींपर अपनी देह विसर्जित की । हर समय आपके दर्शनोंको हजारोंकी संख्यामें लोग आते रहते थे और वहाँ सदा मेला सा लगा रहता था ।

सन् १९५६में भारतके राष्ट्रपतिने शिखरजीमें आपसे भेंट की । दर्शनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए । संवत् २०१२में स्याद्वाद विद्यालय बनारस तथा सं० २०१३में गणेश विद्यालय सागरकी स्वर्णजयन्ती आपके सान्निध्यमें मनायी गई । गणेश विद्यालयकी स्वर्णजयन्ती बाद कानजी स्वामी बन्दनार्थ शिखरजी पधारे थे,

वर्णीजीके दर्शनकर तथा उनके उपदेश सुन आनन्द विभोर हो गये। सन्त विनोबाने भी आपसे कई बार भेंट की और वर्णीजीको अपना बड़ा भाई मानकर चरण स्पर्श किये। सं० २०१६में आचार्य तुलसी गणीने आपके दर्शनकर प्रसन्नता प्राप्त की थी।

पूज्य वर्णीजी मनसा, वाचा, कर्मणा एक थे। उन जैसा निस्पृही और पारखी व्यक्ति देखनेमें नहीं आया। जो भी आपके पास आया सम्मान पाया। विरोधी भी नतमस्तक हुए।

अन्तिम समयतक ८७ वर्षकी अवस्थामें भी आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ सतर्क थी। दो माहकी लम्बी बीमारी-के कारण शरीर शिथिल पड गया था। दैनिकचर्यामें कभी शिथिलता नही आने पाई थी। आहारकी मात्रा आधा पाव जल तथा थोडा सा अनारका रस ही रह गया था। अन्तिम दो दिनोंमें उसका भी त्याग कर दिया। ३ सि० १९६१ को यम सल्लेखना ली, और सब प्रकारके परिग्रहका परित्याग कर दिया। ५ सितम्बर को प्रातः आपके चेहरेपर नई मुस्कान थी। इसी दिन आपने त्यागियों और विद्वानोके समक्ष मुनि दीक्षा ग्रहण की। और उनका नाम गणेशकीर्ति रखा गया। आपकी परिचर्यामें विद्वान, त्यागी, सेठ, साहूकार आदि सभी सदा तत्पर रहे। ५ सि० को रात्रिके डेढ बजे पूज्यश्री सदाके लिए विलग हो गये।

यद्यपि पूज्य श्री का भौतिक शरीर चिताकी ज्वलन्त ज्वालाओंमें विलीन हो गया है तथापि उनकी आत्मशक्ति निखरकर विश्वमें सर्वत्र व्याप्त हो गई है। वे धन्य थे। उनके अभावसे ऐसा जान पडता हैं, मानों जैन समाजका सूर्य अस्त हो गया है।

महान् आध्यात्मिक सन्त
उपाध्याय मुनिश्री विद्यानन्दजी

●

आँखोंमें दिव्य ज्योति, अधरोंपर बोध पूर्ण स्मृति-रेखा, छविमें वीतरागत्वकी सौम्यता, दिगम्बर ऋषि जिनके प्रशस्त भाल-पर चिन्तन और अनुभूति पक्षका साधना-मूलक जीवन विसर्जन और तपोनिष्ठ व्यक्तित्वके धनी मुनिश्री विद्यानंदजी महाराज आज जैन जगतके शिरोमणि संत हैं।

मुनिश्रीका जन्म दक्षिण भारतके उसी बेलगाँव जिलेमें २५ अप्रैल १९२५ में हुआ था, जिसे आचार्यरत्न चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तिसागरजी महाराजकी कर्मभूमि होनेका गौरव प्राप्त है। आपकी माता श्रीमती सरस्वती देवी और पिता श्री कालचन्दजी उपाध्याय बेलगांवके शेडवाल नामक ग्राम-के रहने वाले है। माता-पिताके धार्मिक विचारोंका प्रभाव ही बालक सुरेन्द्र (मुनिश्रीका बचपनका नाम) के व्यक्तित्व और आचार विचारपर स्पष्ट परिलक्षित होता है। मुनि श्री विद्यानंदकी शिक्षा श्री शान्तिसागर विद्यालयमें हुई और ब्रह्मचर्यकी दीक्षा दिसम्बर १९४५ में तपोनिधि श्री महावीरकीर्तिजी महाराजने दी। मुनिश्रीके मनमे बाल्यावस्थासे ही मुनि बननेकी प्यास थी। वे स्वभावतः गम्भीर और विवेकी रहे।

मुनिश्रीकी सबसे बडी विशेषता उनका बेलागपन और समन्वयकी प्रवृत्ति है। प्राचीन धार्मिक विचारोके अनुशीलनके साथ-साथ आधुनिक सभी अच्छाइयोंके समर्थक हैं। समस्त धर्मोंके मूलतत्त्वोका आदर करते है और जैनदर्शन एव आगमके अनुकूल आत्मिक साधनाके पथपर चलते है। मानवकी समानताके पोषक एव 'वसुधैव कुटुम्बकम्'में इनकी आस्था है।

मुनि श्री जहाँ 'स्वान्तःसुखाय', इन्द्रिय निग्रह और तपश्चरण द्वारा अपने आत्म-सृजनमें लीन हैं वहाँ वे 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' समीचीन धर्मका उपदेश भी करते है। सतत लगन और स्वाध्याय द्वारा उन्होंने तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान एवं वस्तु स्वरूपका मूर्त-अनुभव प्राप्त किया। अपने प्रवचनमें जिन वचनामृतोंका दान करते है उसे लेने हजारोंकी संख्यामें धर्म श्रद्धालु आते है। उनका शेष समय साहित्य-सृजनमें लगता है। आपकी भाषा अत्यन्त परिष्कृत, प्रांजल और प्रसादगुण युक्त है। आपके प्रवचनोंमें जैसे अमृतकी मिठास घुली हो। एक सम्मोहन और आन्तरिक प्रभाव आपकी वाणीमें है।

विश्वधर्मकी रूपरेखा, पीछी और कमडल, कल्याणमुनि और सम्राट सिकन्दर, 'ईश्वर क्या और कहाँ है ?' देव और पुरुषार्थ, आदि ३० पुस्तकोंकी रचना की। भ० आदिनाथपर विशेष शोध कार्य चल रहा है।

आज धर्मको केवल मन्दिरों तक सीमित कर दिया है, परन्तु मुनि श्री राजनीति, न्याय और धर्मको जीवनसे पृथक् नही मानते। आपके मतानुसार धर्मका राष्ट्र और समाजसे निकटस्थ सम्बन्ध है। वे व्यक्तिके स्थानपर समष्टिको महत्त्व देते हैं। आप वैयक्तिक चरित्रपर जोर देते हैं और राष्ट्रीय चरित्रके निर्माण में उसका योगदान कहते हैं। आप इस बीसवीं सदीके उन महान् आध्यात्मिक सन्तोंमेंसे एक हैं जिन्होंने भौति-

कताकी सारहीनताको स्वयंके जीवन-अध्यायमें दिखाकर कहा कि 'भारतकी समृद्धि तो उसकी आध्यात्मिक विभूति है।' आत्माके कल्याणके लिए मुनि श्री पदार्थोंसे मोहके त्यागपर बल देते हैं। आवश्यकतासे अधिक-संचयके कट्टर विरोधी हैं और स्वयं तो इतने निष्परिग्रही हैं कि संघके व्यामोहसे ही अलग है।

जिनका जीवन जैनधर्मके लिए अर्पित हो गया आज जिनका जीवन लाखों भारतीयोंके लिए श्रद्धा-स्पद बन गया। क्या जैन, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सभीके पूज्य सन्त बन गये। मानवकी पीडासे जिनका हृदय करुणा जलसे भर गया और संतप्त प्राणियोंके लिए सुख और शान्तिका सिंहनाद करते जो बड़े-से-बड़े नगर और छोटे-से-छोटे गाँवोंमें विहार कर रहे हैं। 'श्रीनगर'की पर्वतीय यात्रा कर आपने 'मुनि-इतिहास'में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया। आपमें धर्म सहिष्णुता—जो सम्यक्‌दर्शनका एक अंग है, इतनी उत्कट रूपसे समाहित है कि 'कल्याण' मासिकके विद्वान् धार्मिक नेता श्री हनुमानप्रसादजी पोद्दारने आपका सम्मान कर अपने निवास स्थानपर मुनिश्रीके प्रवचन करवाये थे।

भारतके उच्चकोटिके राजनैतिक, साहित्यकार और दार्शनिक लोग तथा विदेशी विद्वान् आपके व्यक्तित्व और विलक्षण प्रतिभासे अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। डा० मंगलदेव शास्त्री, रूसी विद्वान् चेपिशेव, बौद्ध भिक्षु सोमगिरी, बालयोग प्रेम वर्णी, निरंजन नाथ आचार्य, पीठाधीश्वर स्वामी नारदानन्द, श्रीमती डा० वागल, डा० कृष्णदत्त बाजपेयी आदि सैंकडों लोग आपके प्रभावमें आये और अत्यन्त श्रद्धा देते है।

श्रीनगरकी पर्वतीय यात्राके दौरान आप हिमालयकी कन्दराओंमें रहनेवाले साधुओंके सम्पर्कमें आये जो आपके त्यागमय जीवनसे अत्यन्त प्रभावित हुए। आपके तपःपूत जीवनसे धर्म और ज्ञानकी लक्ष-लक्ष किरणें ऊर्जस्वित होकर इस विषम परिस्थिति और युगके संक्रमण कालमें धर्म जयका नारा उद्‌घोष कर रही हैं।

आपके चरण जहाँ-जहाँ जाते हैं एक नये तीर्थकी स्थापना हो जाया करती है। लाखों जैन बन्धुओं की अटूट भीड आपके दर्शनों और प्रवचनोंके श्रवणहेतु उमड पडती है।

जैन ग्रन्थोंके अतिरिक्त गीता, वेद, स्मृति, पुराण, उपनिषद्, ग्रन्थ साहब, मुस्लिम साहित्य एवं बाईबिल आदिका गहन अध्ययन है। आपने ३२ प्रकारकी रामायणोंका अवलोकन एव अध्ययन कर समी-क्षात्मक विवेचन किया है। श्रमण संस्कृतिके तपःपूत साधक मुनिश्रीका दैनिक जीवन बडा ही अनुशासित है और प्रत्येक कार्य ठीक समयसे करते है। आपके पास ज्ञानका अथाह सागर जैसे भरा पडा है। आंग्ल-भाषा-का अच्छा ज्ञान है और आवश्यकता पड़नेपर आप विदेशी विद्वानोंको इसी भाषाके माध्यममें अपनी बात कहते हैं।

आपने आकाशवाणीसे जैन भजनों और गीतोंके प्रसारणका पुण्य कार्य करनेका प्रोत्साहन दिया और बडा काम किया। जैन नवयुवकोंको अपने संस्कारोंके प्रति हमेशा सचेष्ट करते रहते हैं और अपनी वाणी द्वारा एक धर्म क्रान्ति का मंत्र फूँक देते हैं। हजारों नास्तिक आपके प्रभावसे आस्तिक बन धर्मके प्रति श्रद्धालु बन गये।

आप वर्ष में एक माहसे अधिक मौन रहते हैं और वह समय आत्मचिन्तन एवं ग्रन्थोंके गम्भीर अध्ययनमें लगाते है। हजारों विद्वानो, लेखकों और इतिहास विशारदोंको जैन संस्कृतिपर नयी बात लिखने, अन्वेषण करने और शोधात्मक प्रबन्ध लिखनेके लिए प्रेरित करते हैं।

ऐसे युगीन आध्यात्मिक सन्त जिन्होंने जैनदर्शनको विश्व-मंचपर लाकर खड़ा कर दिया और अहर्निश जिनकी साधना सिर्फ इस शाश्वत अहिंसा धर्मके उन्नयन हेतु चल रही है।

●

मुनिश्री अजितसागरजी

●

विक्रम सम्वत् १९८२में भोपालके पास आष्टा नामक कस्बेके समीप प्राकृतिक सुरम्यतासे परिपूर्ण भौंरा ग्राममें पद्मावती पुरवाल गोत्रोत्पन्न परम पुण्यशाली श्रीजवरचन्द्रजीके घर माता रूपाबाई-की कुक्षिसे आपका मंगल जन्म हुआ था। जन्मके बाद माता-पिताने आपका नाम राजमल रखा।

शीलरूपा माँ रूपाबाई सुग्रहणी, कार्यकुशल एवं धर्मपरायण महिला हैं। फलतः उनके आदर्शोंका असर होनहार सन्तानपर भी पड़ा। आपके पिता श्री स्वभावसे सरल, धार्मिक बुद्धिके व्यक्ति थे। वे वजनकसीका कार्य करते थे। जन्मके समय आपकी आर्थिक स्थिति साधारण थी।

आपसे बड़े तीन भाई श्रीकेशरीमल, श्रीमिश्रीलाल एवं श्रीसरदारमलजी हैं, और आजकल घरपर ही अपने उद्योगके साथ परिवारसहित धार्मिक जीवनयापन कर रहे हैं।

आपकी रुचि प्रारम्भसे ही विरक्तिकी ओर थी। बालपनसे ही आपका स्वभाव, सरल, मृदु एवं व्यवहार नम्रतापूर्ण रहा। विद्यार्थी जीवनमें आपकी बुद्धि प्रखर एवं तीक्ष्ण थी। वस्तु परिज्ञान आपको शीघ्र हो जाता था। आपकी प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा कक्षा बारतक ही इन्दौर जिलाके 'अजनास' ग्राममें हुई। अपनी प्रारम्भिक शिक्षाके बाद सम्वत् २०००में आपने आचार्यवर श्रीवीरसागरजी महाराजके प्रथम दर्शन किए फलत. आपके हृदयमें परमकल्याणकारी जैनधर्मके प्रति अनन्य श्रद्धाने जन्म लिया। १७वर्षकी अल्पआयुमें ही आचार्यश्रीकी सत्प्रेरणासे प्रभावित होकर आप संघमें शामिल हो गये और जैनागमका गहन अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। जैसे-जैसे आपकी निर्मल आत्माको ज्ञान प्राप्त होता गया वैसी-वैसी आपकी प्रवृत्ति वैराग्यकी ओर होने लगी। विक्रम सम्वत् २००२में ही आपने झालरापाटन (राजस्थान) में आचार्यवर श्रीवीरसागरजी महाराजसे सातवी प्रतिमातकके व्रत अंगीकार कर लिए।

इस अवस्थामें आकर आपने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रतकी कठिन प्रतिज्ञा लेकर सासारिक भोग-विलासोंको ठुकराते हुए कठोर व्रतोंका अभ्यास कर शरीरको दुर्द्धर तपस्याका अभ्यासी बनाया। इस पवित्र ब्रह्मचर्या-वस्थामें आकर आपने अपने अथक श्रमसे जिस आगमका ज्ञान प्राप्त किया उससे आपकी समाजके बीच उचित प्रतिष्ठा हुई।

सफलतापूर्वक अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओंमें व्रतविधान करानेके कारण 'प्रतिष्ठाचार्य'—आत्म-कल्याणकी ओर प्रवृत्त अनेक श्रावक श्राविकाओंको आगमकी उच्च शिक्षा देनेके कारण 'महापण्डित' तथा अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रवचन लेखन-शैलीके कारण 'विद्यावारिधि'के पदसे समाजने आपकी साधनाको अलंकृत किया।

आपमें एक विशिष्ट गुणका प्राधान्य पाया जाता है, वह यह है कि जब भी आप तर्कसंगत, विद्वत्ता-पूर्ण विशेष कल्याणकारक कोई भी कार्य करते तो उसका श्रेय अन्य किसी व्यक्ति विशेषको इंगित कर देते, तथा स्वयं नाम प्रतिष्ठाके निर्लोभी बने रहते। कार्यका सम्पादन स्वयं करते और उसकी प्रतिष्ठा, इज्जतके

अधिकारी अन्य व्यक्ति होते—यह आपकी व्यामोह विहीनता, महानता, प्रबल सांसारिक वैराग्य और क्षणभंगुर शरीरके प्रति निर्ममत्वके साथ ही मानव-समाजके कल्याणकी उत्कृष्ट भावनाका प्रतीक था।

इस प्रकार ज्ञान और चारित्रमें श्रेष्ठता पा जानेपर आपके अन्तरमें वैराग्यकी प्रबल ज्योतिका उदय हुआ, तथा सीकर (राजस्थान) में अपार जन-समूहके बीच परमपूज्य दिगम्बर जैनाचार्य श्रीशिवसागरजी महाराजसे समस्त अन्तरंग और बहिरंग परिग्रहका त्याग करके कार्तिक सुदी चतुर्थी सम्वत् २०१८की शुभ-तिथि व शुभ नक्षत्रमें आपने दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण कर ली। आचार्यश्रीने आपका नाम संस्कार श्रीअजितसागर नामसे किया।

आपका संस्कृत-ज्ञान परिपक्व एवं अनुपम है। आपने निरन्तर कठोर अध्ययन एवं मननसे जिस ज्ञानका भंडार अपनी आत्मामें समाहृत किया उससे अच्छे-अच्छे विद्वान दाँतों तले अँगुली दबाकर नत हो जाते हैं।

अब हम आपके जीवनपर दृष्टि डालते हैं तो यह पाते हैं कि आपने मात्र १७वर्षका समय घरमें व्यतीत किया और फिर आचार्य श्रीके संघमें मिलकर आत्मकल्याणकी ओर मुड़ गए। अल्प वयमें इतना त्याग, इतना वैराग्य और ऐसी कठोर ब्रह्मचर्य व्रतकी साधनाके साथ मुनिधर्म जैसी कठोर चर्याका पालन करना विरले पुरुषार्थी महापुरुषोंके लिए ही संभव हो सकता है।

●

मुनिश्री अनन्तसागरजी

●

आप पिता श्री हीरालालजी एवं माता श्री मेनका बाईके पुत्र हैं। गृहस्थावस्थाका नाम नेमचन्द्रजी है। जन्म सं० १९६० में पुनहरा (ऐटा)में हुआ। जाति पद्मावती पुरवाल। आपने शादी नहीं की। बाल ब्रह्मचारी रहे। क्षुल्लक दीक्षा, सं० २०२१ कोल्हापुरमें, विजयसागरके नामसे ऐलक दीक्षा माह कार्तिक सुदी ५, सं० २०२६ दिल्लीमें, एवं मुनि दीक्षा माह फाल्गुन, सं० २०२७ की सम्मेदशिखरपर श्री अनंत सागरजीके नामसे पूज्य आचार्यश्री विमलसागरजी महाराजसे लिया। ये ध्यान, अध्ययन, जपतपमें हमेशा लीन रहते हैं।

●

मुनिश्री अरहसागरजी

●

आजसे लगभग पचास बरस पहले आपका जन्म टीकमगढ (मध्यप्रदेश) में हुआ। आपके बचपनका नाम लक्ष्मीचन्द्र था। आपके पिता श्री रज्जूलालजी थे और माता महुवा देवी। आप परवार जातिके रत्न हैं। चूंकि आप बाल्यकालसे ही विषय-वासनाओंसे विरक्त थे, अतएव आपने विवाह नहीं किया, बाल ब्रह्मचारी हैं। आपका अध्ययन तो सामान्य है पर सत्संगतिसे आपमें विवेक जागा।

जब आपने सातवीं प्रतिमा ली तो ब्रह्मचारी जिनेन्द्रदास कहलाये और जब संवत् २०१६ में सुप्रसिद्ध तीर्थ सम्मेदशिखरपर आपने क्षुल्लक दीक्षा श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे ली तो क्षुल्लक सिद्धसागर कहलाये। अनन्तर इन्हीं आचार्यश्रीसे बडौतमें मुनिदीक्षा ली तो संवत् २०१९ में आप १०८ मुनि अरह-सागरजीके रूपमें प्रख्यात हुए। आपने नमक, तेल, दहीका सर्वथा त्याग कर रखा है। आपने पन्ना, टूंडला, मेरठ, ईसरी, बाराबंकी, बडवानी, कोल्हापुर, सोलापुर, ईडर, सुजानगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास किए। आपके मनमें अपने धर्म और समाजको उन्नत देखनेकी भावना सर्वदा बनी रहती है।

●

मुनिश्री आदिसागरजी

●

बेलगांव जिलेके अक्किवाट ग्राममें आपका जन्म हुआ। पिताजीका नाम दंडाप्पा था। महाराजजी का गृहस्थाश्रमका नाम शिवा था। शादी हुई थी। दो सन्तानें भी हुईं। श्री १०८ वीर सागर महाराजके पास १३ साल तक क्षुल्लक अवस्थामें रहे। सांगलीमें ४-१०-६२ को श्री १०८ नेमिसागरजीके पास निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण की। आपने समस्त तीर्थ स्थलोंकी यात्रा की है। मराठी, कन्नड और हिन्दी भाषाका आपको ज्ञान है। क्षुल्लक अवस्थामें एक साथ नव उपवास कर अचाम्ल व्रत, निरंतराय किया है। परिणाम बिल्कुल शांत है। शान्त स्वभावी और मितभाषी हैं। मुनि आचार निरंतराय पालन करनेमें दक्ष है। संघ-के वयोवृद्ध अत्यंत भद्र सरल स्वभावी मुनिराज है।

●

मुनिश्री आदिसागरजी

●

श्री बलगोंड़ाजी पाटीलका जन्म सन् १८९२ में शेडवाल (बेलगाँव) ग्राममें हुआ था। आपके पिता श्री देवगोंड़ाजी पाटील व माता श्री सरस्वती बाई थी। आप जातिसे दि० जैन चतुर्थ थे। आपका गोत्र दणकारे था। आपके दो विवाह हुए पर दुर्भाग्यवश दोनों पत्नियाँ मर गईं। आपके चार भाई व दो पुत्री थीं। आप प्रमुख अधिकारीके रूपमें तहसील कार्यालयमें नौकरी करते थे।

आपने आ० श्री शान्तिसागरजीका धर्मोपदेश सुनकर वैराग्य धारण करनेको सोची एवं १३-३-१९५४ को श्री १०८ मुनि वर्धमान सागरजीसे रत्नत्रयपुरी (शेडवाल) में दीक्षा ले ली। आपकी लौकिक शिक्षा केवल कक्षा ७वीं तक ही हुई, परन्तु धार्मिक शिक्षा काफी थी। आपको सभी पाठ कंठस्थ थे। आप कई शास्त्रोंके ज्ञाता थे। आपने कई पुस्तकें लिखी जिनमेंसे कुछ प्रकाशित हैं व कुछ अप्रकाशित हैं। आपने शेडवाल, गोकाक, बारामती, कटलण, आरा, सिवनी, आकलूज, छिंदवाड़ा, कारंजा, सोलापुर आदि ग्रामोंमें चातुर्मास किये वहाँ आपके रहनेसे काफी धर्मवृद्धि हुई।

आपने तेल, नमक, घी, मट्ठा, आदिका त्याग कर दिया है। आपने साहित्यिक सेवा भी अधिक की एकसे अधिक पुस्तकें लिखी जो धर्म व समाजको लाभकारी हैं। त्रिकालवर्ती, नित्यनैमित्तिक क्रियाकलाप, सूतकविधि, आहार दान, चौदह संस्थान दर्शन आदि पुस्तकें आपके ही द्वारा लिखी गयी हैं।

आप स्वभावसे मृदु एवं अल्पभाषी हैं और विद्वानोंके बड़े अनुरागी हैं। आप स्वयं एक सजीव संस्था हैं जो संस्थाके माध्यमसे धर्म व समाजकी सेवामें संलग्न हैं।

●

मुनिश्री अभिनन्दनसागरजी

●

श्री धनराजजीका जन्म शेषपुर (सलूम्बर-उदयपुर) में हुआ था। आपके पिता श्री अमरचन्दजी थे व माता रूपी बाई थी। आपकी जाति नरसिंहपुरा व गोत्र बोसा था। आपके तीन भाई व तीन बहिनें थीं। आजीविका चलानेके लिए स्वयं पानकी दुकान थी। आप बाल ब्रह्मचारी थे। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ८वी तक ही हुई, किन्तु धार्मिक शिक्षा काफी है।

आपने सत्संगति व उपदेशोंके कारण वैराग्य लेनेकी सोची। संवत् २०२३ में मुनि श्री वर्धमान सागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। फिर आप धर्मप्रचार करनेके बाद सं० २०२५ में आपने आ०श्री शिवसागरजीसे ऐलक दीक्षा ले ली। दीक्षा लेनेके बाद आपने कई ग्रामोंमें भ्रमण करके धर्मोपदेश दिया। अन्तमें सं० २०२५ में कार्तिक शुक्ला अष्टमीको मुनि श्री धर्मसागरजीसे मुनि दीक्षा ले ली। आपने प्रतापगढ़, घाटोल, नठव्वा, बांमड़ी आदि गांवोंमें चातुर्मास किये।

आपने तेल, नमक, दही आदिका त्याग कर रखा है। आपने अपनी अल्प अवस्थामें ही देश व समाजको काफी धर्मामृतका पान कराया है।

●

मुनिश्री आर्यनंदीजी

●

श्री शंकर रावजीका जन्म तालुका पेठन नामक ग्राममें हुआ था। आपके पिता श्री लक्ष्मण रावजी अहमिन्द्र थे एवं माता कृष्णाबाईजी थी। आपका गोत्र अहमिन्द्र वृषभ था। आप जातिसे दि० जैन सेतवाल थे। आपका विवाह श्रीमती पार्वतीदेवीसे हुआ जो धार्मिक काफी आगे रहती थी एवं द्वितीय प्रतिमा धारण कर रखी थी। आपके एक भाई व दो बहनें थी एवं आपके एक पुत्र व दो पुत्रियाँ थी जिनमेंसे पुत्रका स्वर्ग-वास हो गया है। आप निजाम सरकारके कष्टम आफिसमें पेशकार थे। आपकी १९५३ में पेंशन हो जानेके बाद आपका सम्पूर्ण समय धर्मध्यानमें जाने लगा।

आप वैराग्यकी ओर बढे एवं आपने श्री समन्तभद्रजी आचार्यसे कुन्थलगिरिमें १३-११-१९५९ को दीक्षा ले ली व आप धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन करने लगे। आप हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, उर्दू, गुजराती, संस्कृत आदि भाषाओंके ज्ञाता थे। आपके वैराग्यका प्रमुख कारण पूर्वजन्म एवं बचपनके संस्कार एवं ससारकी विचित्रता व स्वानुभव था।

आपने दीक्षा लेनेके बाद ६० से ६१ तक बाहुबलि कुम्भोजमें चातुर्मास किया। सन् ६२-६९ तक आप गुरुकुल एलौरामें रहे। आपने एकसे अधिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय किया। समयसार, पंचाध्यायी, प्रवचन-सार, ज्ञानार्णव सर्वार्थसिद्धि, मूलाचार आदि ग्रन्थोंका गहन अध्ययन व स्वाध्याय किया। आप स्वभावसे मृदु व अल्पभाषी हैं और विद्वानोंके बड़े अनुरागी हैं। आप स्वयं एक सजीवसंस्था हैं जो संस्था के माध्यमसे देश, धर्म व समाजकी सेवामें संलग्न है।

●

मुनिश्री कुन्थसागरजी

●

श्री १०८ मुनि कुन्थसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम कन्हैयालालजी था। आपका जन्म ज्येष्ठ सुदी तेरस, विक्रम सम्वत् २००३ में बडा बाढरहा स्थानपर हुआ था। आपके पिता श्री रेवाचन्द्रजी हैं व माता श्री सोहनबाई हैं। आप नरसिंहपुरा जातिके भूषण हैं व लोलावत गोत्रज हैं। आपकी लौकिक तथा धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आपने विवाह नहीं किया। आप बालब्रह्मचारी ही रहे। आपने पहले दूकानपर नौकरी भी की। आपके परिवार में एक भाई व तीन बहिनें हैं।

धार्मिक प्रेम होनेके कारण आपने श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरसे दूसरी प्रतिमाके व्रत धारण कर लिए। इसके बाद आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराजसे आपने आषाढ़ सुदी दूज, विक्रम सम्वत् २०२४ में हुमच (दक्षिण) में आपने मुनि दीक्षा ले ली। आपने हुमेच, कुन्थलगिरि, गजपंथा, आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने तीनों रसों का त्याग कर दिया है।

●

मुनिश्री चन्द्रकीर्तिजी

●

श्री १०८ मुनि श्री चन्द्रकीर्ति महाराजका गृहस्थावस्थाका नाम कनकमलजी था। आपका जन्म पौष कृष्णा नवमी, विक्रम सं० १९५० को अलवरमें हुआ था। आपके पिताका नाम संडमलजी व माताका नाम रुक्मणि देवी था। आपके पिता कपड़ेके एक सफल व्यापारी थे। आप अग्रवाल जातिके भूषण व गर्ग गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपने विवाह नही करवाया, बालब्रह्मचारी रहे।

क्षुल्लक श्री १०५ जानकीलालजीके उपदेशसे आपमें वैराग्य-प्रवृत्ति जागृत हुई। आपने विक्रम सं० २००४ में आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराजसे सीकरमें मुनि दीक्षा ले ली। आपने ४५ स्थानोंसे भी अधिक स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने कई उपवास किये। आप सिर्फ एक पेय पदार्थ लेते हैं। आपने चातुर्मासके समय एकसे अधिक उपसर्ग सहे। दरियाबादके चातुर्मासमे सर्पदंशका उपसर्ग, नांदगाँवमें बाढ़का उपसर्ग, बानेर गाँवमें अजगरका उपसर्ग, रोहतकमें रातभर सिरहाने सर्पिणीके बैठी रहनेका उपसर्ग, मधुमक्खियोंके काटनेका उपसर्ग, आदिको शांतिपूर्वक सहन किया। तिजारेमें आपके मस्तिष्कपर एक बहुत बड़ी बल्ली गिर पड़ी। इसी समयमें आपकी पीठपर बहुत बड़ा फोडा भी हुआ। आपने समस्त उपसर्गोंको धैर्यतापूर्वक सहन किया।

आपने देश और समाजकी जो सेवा की है, उसे देश और समाज कभी नही भुला सकता है।

●

मुनिश्री जयसागरजी

●

'आपलोग उदारतापूर्वक दान दीजिए। विद्यालयके लिए हृदय खोलकर चन्दा लिखाइये। यह पैसा न आपके साथ जानेवाला है और न किसीके भी।' ये वाक्य हैं श्री १०८ मुनि श्री जयसागरजीके, जो उन्होंने जावराके जैन समाजको सम्बोधित करते हुए कहे थे। मुनि श्रीने कहा—धार्मिक शिक्षाका महत्त्व तो दैनिक जीवनमें रोटी और पानीसे भी बढ़कर है। धार्मिक शिक्षाके अभावमें मनुष्य, मनुष्य नही पशु है। देशमें छात्रोंकी बढती हुई अनुशासनहीनताको रोकने के लिए धार्मिक शिक्षा आजके युगकी माँग है।

आजसे लगभग ६८ बरस पहले, संवत् १९५८ में पौष शुक्ल पंचमीको मुनि श्रीने जयपुरमे जन्म लिया। आपके पिता श्री केशरलालजी थे और माता वाग्देवी। कुलद्वीप समझकर माता-पिताने आपका नाम दीपचन्द रखा। चूँकि माता-पिता धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे, अतएव मुनि श्रीको अपने अनुरूप वंशानुक्रम और वातावरण दोनों ही अनायास मिल गये। आप धार्मिक अनुष्ठानों और तीर्थयात्राओंमें ही आगे नही बढे बल्कि आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत भी आपने संवत् १९९० में लिया था।

एक बार जब आप लाड़ कारंजामें तत्त्व-चिन्तनमें मग्न थे तब ही संवत् २००० हजारमें आपने आचार्य श्री जम्बुसागरजीसे क्षुल्लकके व्रत ले लिए। चार महीनों बाद वैराग्यकी मूर्त स्वरूप जैसी मुनि दीक्षा भी आपने उन्हींसे ले ली। आपने दक्षिणी भारत, गुजरात, मालवा, राजस्थानमें एकसे अधिक चातु-

र्मास किये। आपके स्वर्णोपदेशसे प्रभावित होकर लोगोंने अनेक स्थानोंपर धार्मिक विद्यालय और पारमार्थिक औषधालय खोले। इससे धार्मिक शिक्षा बढ़ी और लोक-जीवन मांगल्य बढ़ा।

मुनि श्री बडे शान्त स्वभावी और शास्त्रविद हैं। प्रथमानुयोगके ग्रन्थोंमें आदिपुराण, चरणानुयोग में मूलाचार, करणानुयोगमें धवला और द्रव्यानुयोग में समयसार ग्रन्थ आपको विशेष प्रिय हैं। गम्भीर बातोंको सरल बोलीमें समझाना आपकी विशेषता है। अष्ट मूल गुणोंके पालनके लिए, सप्तव्यसनोंके त्याग के लिए आप सभीको अधिकाधिक प्रेरणा देते हैं। अजैनोंको भी जैन श्रावक बनानेके पक्षमें हैं।

●

मुनिश्री धर्मकीर्तिजी

●

आपका जन्म भावनगरमें संवत् १९५९ में हुआ था। १७ वर्षकी अवस्थामें शादी की। पावागढमें आचार्य कुंथुसागरजी महाराजके पास दूसरी प्रतिमाके व्रतधारण किए थे। आप इन्टर पास है। दीक्षा पूर्व आपने सब वाहनोंका त्यागकर दिया था। वीर सं० २४८२ वैशाख शुक्ला ३, रविवारके दिन शंत्रुजय तीर्थ-क्षेत्रमें मुनि श्री वज्रकीर्तिसे मुनि दीक्षा ली।

●

मुनिश्री निर्मलसागरजी

●

श्री १०८ मुनि निर्मलसागरजीका गृहस्थ अवास्थाका नाम मदनलालजी जैन था। आजसे लगभग सत्तावन वर्ष पूर्व आपका जन्म टोंक (राजस्थान) में हुआ। आपके पिता श्री केशरलालजी थे, इनकी मिठाई-की दुकान थी। आपकी माताका नाम धापूबाई था। आप अग्रवाल जातिके भूषण हैं। आप मित्तल गोत्रज हैं। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके परिवारमें दो भाई थे। आपका विवाह हुआ और एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई।

आपने सत्संगति और उपदेश-श्रवणसे मनमें वैराग्य लेनेकी बात भी विचारी। विक्रम संवत् २०२३ में श्रावण शुक्ला सप्तमीको टोंकमें श्री १०८ मुनिश्री धर्मसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। बादमें विक्रम संवत् २०२४ में मगसिर शुक्ला पंचमीको श्री १०८ मुनि धर्मसागरजीसे ही मुनि दीक्षा ले ली। आपने बूँदी, बिजौलिया, पार्श्वनाथ, आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आप अपने भव्य जीवनसे लोगोंको सही अर्थोंमें भव्य बननेकी प्रेरणा देते हुए शतायु हों, यही भावना है।

●

मुनिश्री नेमिसागरजी

●

बालकके शिक्षणमें जननीका सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह तथ्य मुनि श्रीजीके चरित्रसे पूर्णतया होता है। मुनि श्री की वंदनीय जननीने अपने संस्कारोंसे मुनि श्री को भी वंदनीय बना दिया।

मुनिश्री का जन्म महाराष्ट्र प्रदेशमें सागली जिलाके आरग गाँवके यावबराऊके प्रतिष्ठित कुलमें हुआ। आपकी माताजीका नाम रत्नदेवी सार्थक हैं। वे स्त्रीरत्न हैं और उनका अपना सिद्धान्त है कि अपनेको दैव भाग्यसे सब कुछ मिलता है, फिर चिन्ता क्यों की जावे। मुनि श्री के पिताका नाम नरसूदास था। वह व्यावहारिक व धार्मिक व्यक्ति थे। मुनिश्रीके चार बड़े भाई थे। यशोधरने चारित्र चक्रवर्ती मुनि १०८ पायसागरजीसे मुनिदीक्षा ली थी। दो भाई गृहस्थ जीवन बिता रहे और मुनि श्री सब भाइयोंमें छोटे थे। इनका नाम इन्द्रजीत था। ये बचपनसे ही धार्मिक कार्योंमें रुचि लेते थे। आपके मनमें धार्मिक संस्कार सुदृढ हो रहे थे कि आपकी दो शादियाँ हुईं और कुल छह पुत्र व एक पुत्री हुई। पर फिर भी आपका शास्त्र स्वाध्याय विषयक प्रेम बढ़ता ही गया। आपने मुनि श्री शान्तिसागरजीके वचनामृतको सुननेके लिए सैंकडो रुपये किरायेमें दिए। आपसे मुनिदीक्षा लेनेकी प्रबल इच्छा थी, पर शान्तिसागरजीकी सल्लेखना पूर्ण हो जानेसे आपने आचार्य पायसागरजीसे सातवी ब्रह्मचर्य प्रतिमा लेकर घर रहे।

सिरगुणी नामक ग्राममें पंचकल्याणक महोत्सव था। वहाँ ही आप मुनि श्री १०८ वर्धमान सगरजीसे दीक्षा लेनेके विचारमें थे। परन्तु घरवालोंने बाधा डाल दी, फिर भी आप घर वापिस नही आये, बल्कि कुशनाइ गाँवमें रहे। और जब सकनवाडीमें पंचकल्याणक हुआ तब क्षुल्लक दीक्षा ली। इसके बाद आचार्य विमलसागरजीसे आपने गिरनारजीमें मुनि दीक्षा ले ली तथा उनके संघमें रहे।

आपने गाजियाबाद, हस्तिनापुर, खतौली, जयपुरनगर, सरघना, बिजनोर, नजीबाबाद, नगीना, नहटौर, एटा आदि स्थानोंकी जनताको धर्म लाभ दिया।

●

मुनिश्री नेमिसागरजी

●

पूज्य मुनि श्री नेमिसागरजीने गृहस्थ अवस्थामें सन् १९२४ में ५० साल पहिले आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजीके पास आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लिया था। क्षुल्लक दीक्षा श्री १०८ वर्धमान सागरजीके पास ली थी। सन् १९५८ में श्री १०८ शान्तिसागर महाराजके जेष्ठ भ्राता श्री १०८ मुनि श्री वर्धमान सागर-जी महाराजके पास निर्ग्रन्थ दीक्षा ली। आप मराठी, कन्नड, हिन्दी भाषा जानते है, पढ़ते हैं। पिताजीका नाम सावतापा है, और गृहस्थावस्थाका महाराजका नाम नेमाराणा है। सम्मेदशिखरजीकी यात्रा सम्पन्न कर चुके हैं। मंद कषायी मितभाषी हैं परिणाम शान्त हैं। मुनि आचार पालनमें दक्ष हैं। संघमें महाराज श्री ही गुरु है। सब तीर्थ स्थलोंकी वंदना गृहस्थावस्थामें की तीस चौबीसी, भक्तामर, कर्म दहन आदि व्रत किये। बचपनसे ही अत्यन्त शान्त भद्र परिणामी हैं। जन्मस्थल समडोलीके नगरवासी बचपनसे ही आपको मानते थे। आप संघके सुसन्त शिरोमणि एवं चारित्रके भगार हैं।

●

मुनिश्री नेमिसागरजी

पूज्य मुनिराजका जन्म पजाबके एक छोटेसे गाँवमें हुआ था। बहुत छोटी-सी अवस्थामें आप देहली-में श्रीमान् लाला रणजीत सिंहजीके यहाँ गोद आ गये थे। आपका बचपनका नाम नेमीचन्द्र था। आप बचपनसे ही सांसारिक कार्योंसे उदासीन रहे।

धार्मिक कार्योंमें विशेष रुचि रखते थे। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपने क्षुल्लक दीक्षा परम पूज्य मुनि १०८ श्री सुमतिसागरजी महाराजके पास कचनेर ग्राममें आजसे २५ साल पहले ग्रहण की, पूज्य मुनि १०८ श्रीणसागरजी महाराजके पास संवत् २०१२ में टांकाटूका ग्राममें मुनिदीक्षा ग्रहण की। आप पूज्य महाराजश्रीके साथ ही विहार करते हैं। आप स्वभावके बड़े ही मृदु एवं मित-भाषी हैं। आपके प्रवचन प्रभावशाली होते हैं। आपके ज्ञानका क्षयोपशम महान् है। निरतिचारपूर्वक महा-व्रतोंका पालन करते है।

मुनिश्री नेमसागरजी

पूज्य श्रीका जन्म कुडची ग्राम (बेलगाव-दक्षिण) में हुआ था। आपके पिताजीका नाम अराणा और माताका नाम शिवदेवी था। आप तीन भाई थे। एक भाईकी पैदा होते ही मृत्यु हो गई थी। दूसरे भाईकी मृत्यु सात आठ वर्षकी अवस्थामें हुई थी। आप ज्येष्ठ थे। माताकी मृत्युके समय आपकी अवस्था लगभग १२ वर्षकी थी। माता सरल परिणामी परोपकाररत साधु स्वभाव वाली थी। दीन जनों पर माताका बडा प्रेम था। आपके पिता बहुत बलवान थे। पाँच छै गुन्डी पानीका हंडा पीठ पर रखकर लाते थे।

आपका बचपन वास्तवमें आश्चर्यप्रद है। आप ग्रामके मुसलमानोंके बडे स्नेह पात्र थे। मुस्लिम दरगाहमें जाकर पैर पडा करते थे और सोलह वर्षकी उम्र तक वहाँ जाकर अगरबत्ती जलाना और शक्कर चढ़ाया करते थे। जब आपको धर्मबोध हुआ तो आपने दरगाह वगैरह क्षेत्रमें जाना बन्द कर दिया इससे मुसलमान काफी नाराज हुए और आपको मारनेकी सोचने लगे। ऐसी स्थितिमें आप कुडची ग्रामसे चार मील जाकर ऐनापुर गाँवमें चले गये। यहाँके पाटीलसे आपका काफी सौहार्द था। ऐनापुर गाँवमें आप रामू (कुंथ सागरजी) तथा एक और व्यक्ति मिलकर ठेका पर जमीन लेकर खेती करने लगे।

आपकी सांसारिक कार्योंसे अरुचि थी। आप इनको दु खमय मानते थे और इनसे छूटनेका उपाय मुनि मार्गकी तरफ रुचि थी और बाल्यावस्थामें ही मुनि बनना चाहते थे। धीरे-धीरे इनकी इच्छा बलवती हो गई। आप ज्योतिषियोंसे पूछा करते थे कि मुनि कब बनूँगा। मेरी यह इच्छा पूरी होगी या नहीं ?

आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराजसे आपने गोकाक नगरमें क्षुल्लक दीक्षा और समडोलीमें मुनि-दीक्षा ली थी।

अध्यात्म संत मुनि नेमिसागरजी

सरल स्वभाव, शान्त चित्त, शरीरसे कृश किन्तु तपस्तेजसे दीप्त, हृदयके सच्चे, लँगोटके पक्के, अपनी परिस्थिति अनुकूल चलनेवाले प्रयोजनवश बोलनेवाले, प्रतिष्ठा, वैद्यक, ज्योतिष, गणित, मंत्र, तंत्र, यत्र, संगीत एवं नृत्यकलाओंमें शिरोमणि, धर्मशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता, मधुर किन्तु ओजस्वी वाणीमें बोलनेवाले वक्ता, पण्डितोंके पण्डित, सफल साधक, जीव मात्रके प्रति अहिंसाका भाव रखनेवाले न किसीके अपने न पराये, न सपक्षी न विपक्षी, स्वाभिमान निर्भीकतासे धर्म साधन करनेवाले, विलासो एवं भोगोंसे अछूते, इन्द्रियोंके दमन करने वाले, कषायोंका निग्रह करनेवाले, समाजके गौरव एवं देशके अनमोल रत्न तपोनिधि अध्यात्म सन्त श्री १०८ मुनि नेमिसागरजीका मंगलमय एवं परम पवित्र माता श्रीयशोदा देवीकी पुनीति कुक्षिसे पिता श्रीमुन्नालालजीके पुत्रके रूपमें विक्रम संवत् १९६० के फाल्गुन शुक्ल द्वादशी रविवारको पठा ग्राममें जन्म हुआ।

आपने बाल्यकालसे ही बाबा गोकुलप्रसादजी, पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णी एवं पूज्य मोतीलालजी वर्णीके सान्निध्यमें रहकर उक्त गुरुजनोंकी कृपा द्वारा संवत् १९७५ मे स्थापित श्री वीर विद्यालय पपौरा, क्षेत्रके प्रथम छात्रके रूपमें विशारद तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद १९७८ में पूज्य पिताजीका स्वर्गा-रोहण हो जानेके कारण घरपर ही रहकर अनेकों विद्याओंके अथाह वारिधि बने।

आपका बचपनका नाम हरिप्रसाद जैन था। आपने विवाहका परित्याग कर बालब्रह्मचारी व्रत धारण किया। ८ वर्षकी आयुमें पाक्षिक व्रतो तथा १५ वर्षकी आयुमें नैष्ठिक श्रावकके रूपमे दूसरी प्रतिमा ग्रहण की। सन् ५६ में इन्दौर आए। वि० स० १९९६ मे माघ कृष्णा प्रतिपदा, गुरुवार, मु० पटना, पो० रहली, जिला सागरके जलयात्रा महोत्सवपर श्री १०८ मुनि पद्मसागरजी द्वारा सप्तम प्रतिमा ग्रहण की तथा आपका नाम रखा गया श्री विद्यासागर। फाल्गुन शुक्ल ३, सोमवार, सवत् २०१६ में म० प्र० के देवास जिलान्तर्गत लुहाखा नामक ग्राममे श्री पचकल्याणक महोत्सवपर दीक्षा कल्याणकके समय श्री १०८ मुनि आचार्य योगेन्द्रतिलक शांतिसागरजी महाराज द्वारा आपने ११ वी प्रतिमा धारण की और नाम पाया श्री १०५ क्षुल्लक नेमिसागरजी। वि० सं० २०२४ के शुभ मिती मार्गशीर्ष शुक्ला १५ को आचार्य योगेन्द्र तिलक शांतिसागरजी महाराज द्वारा मुनिदीक्षा ग्रहण की।

आपने लगभग १६ वर्ष की अवस्थासे लिखना आरम्भ किया। आपने अपनी मनोवृत्तियोंको

शब्दोंके माध्यमसे व्यक्त किया। आपका गद्य एवं पद्य दोनोंपर समान रूपसे अधिकार रहा। आपकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं :

१. श्रावक धर्म-दर्पण	प्रकाशित
२. हरि विलास	प्रकाशन हो रहा है
३ प्रतिष्ठासार-संग्रह	शास्त्राकार सजिल्द यह ग्रंथ लगभग २००० पृष्ठोंका होगा
४. आध्यात्म सार-संग्रह	
५. कविता-संग्रह (स्वरचित)	अप्रकाशित

सामाजिक क्षेत्रमें आपने जो कार्य किए उनका विवरण सिर्फ इतना कह देनेमें ही पूर्णरूपेण दृष्टि-गोचर होने लगता है कि क्षेत्र पपौरा, अहारजी एवं अनेक सस्थाओंके आप अधिष्ठाता, व्यवस्थापक एवं संचालक हैं। इन क्षेत्रों एवं संस्थाओंमें आपने जितने भी कार्य किए हैं वह अवगुण्ठनमें नही है।

आपके सकल्प इतने अडिग है कि विरोधी तत्वोंके अनेक विग्रहो, महादुर्मोच्य भयानक संकटो, शारीरिक आधि-व्याधियों तथा लोगोकी दुर्जनतापूर्ण मनोवृत्तियोसे भी आप टससे मस नही हुए। अनेकों तरहकी आपदाओंने आपको कर्तव्यपथसे डिगाना चाहा पर निर्भीक स्वात्म बलसे आपको सदैव सफलता मिली।

आपने अनेकों चातुर्मास किए, किन्तु श्री परम पावन अतिशय क्षेत्र देवगढ़के भयानक बीहड़ जंगलमें आपने जो चातुर्मास किया वह साहसिकताकी दृष्टिसे चिरस्मरणीय रहेगा। डाकुओं और जंगली जानवरोंके भयसे व्याप्त भीषण जंगलमें एक दिगम्बर संतका एकाकी रहना आश्चर्यकी बात नही तो और क्या हो सकती है किन्तु आश्चर्य हम ससारी लोगों को ही होता है। आप जैसे सतोंके लिए तो क्या पहाड़, क्या बीहड़ जंगल सब समान है।

एक चोटीके विद्वान् और महान् पद पर आसीन होते हुए भी आप अत्यन्त सरल, विनम्र एवं शात स्वभाव वाले हैं। आपके जीवन में प्रदर्शन और आडम्बर तो नाममात्रको नही है।

●

मुनिश्री नेमिसागरजी

●

आठ मार्च, सन् उन्नीस सौ तीसमें राजस्थानके नरवाली (बाँसवाड़ा) नामक स्थानमें माता श्रीमती अबकूबाईकी पुनीत कुक्षिसे आपका मंगलमयी जन्म हुआ। आपके पिताजीका नाम श्रीमान् नाथूलालजी है। आपका बचपनका नाम छगनलाल था। बचपन से ही आप अचंचल एवं सारल्यगर्भित थे।

आपने कक्षा चार तक शिक्षा पाई। छात्रजीवनमें आप एकदम गम्भीर रहते थे। ऐसा लगता था जैसे अनवरत किसी चिन्तनमें लगे रहते रहे हों और फिर

भोला बचपन सारल्य लिए जब यौवन उपवन में आया।
असमर्थ हुई उलझानेमें तब पुष्पों की चितवन माया ।।
निष्काम भावना के आगे कलियों की गन्ध विलीन हुई।
सांसारिक छलनाएँ सबही जिनके समक्ष अब क्षीण हुई ।।
ऐसे बिभूति धारी महन्त को शत-शत सादर वन्दन है।
जिनके चरणों की रज कठौक सम्मुख नगण्य नन्दन वन हैं ।।

बाल हृदय पर जब सांसारिक छलनाएँ आती तो चिकने घडेमें पानीकी बूँदों जैसी क्षणैकार्थ भी प्रश्रय न पाती यह देखकर लोगोंको आश्चर्य होता था कि इतनी छोटी उम्र और ऐसे गम्भीर विचार। बचपन गया, यौवन आया किन्तु उसमें बसन्ती बू नही आई। वासनाने आपके प्रशान्त मानसकी ओर आँख उठा कर देखने तककी हिम्मत स्वप्नमें भी नही की। आपने बालब्रह्मचारी का पुनीत और कठिन व्रत लेकर ससारकी समस्त सुखसामग्री एवं भोगविलासोंको नगण्य एव सर्वथा उपेक्षित सिद्ध किया।

आप पिताश्रीके साथ व्यापार किया करते थे। धर्म क प्रवृतिने आपके हृदयमें बचपन से ही अपना एक कोटर बना लिया था। उम्रके साथ-साथ स्वाध्याय एव धर्म प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई। साथ ही संसारके प्रति उदासीनताका भाव भी पुष्ट होता चला गया।

सासारिक चमक-दमक बचपन में ही जिनके सामने पराजित हो चुकी थी उनको गार्हस्थ्य बन्धन भला कबतक बाँध सकता है। वैराग्य भावना बढती गई और आपने संवत् २०२४ ईस्वी सन् ९ सितम्बर ६७ में हूमच पद्मावत (शिवभोगा) मैसूर स्टेटमें श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्ति जीसे मुनि दीक्षा ग्रहण की और संघमें सम्मिलित हो गए।

तत्पश्चात् वही हुआ जो संघोंमें सदैवसे होता आया है। आचार्यजी से ज्ञानार्जन कर सर्व साधारणको उनके बताए हुए मार्ग पर चलने की प्रेरणा प्रदान करना तथा उपदेश देना यही विषय अब आपके जीवनके पहलू हैं। अष्टमी और चतुर्दशी को आप व्रत रखते हैं। आपने चार रसोंका त्याग किया है। आपकी कीर्ति उज्ज्वल है। मुनि धर्मका पूर्ण पालन करते हुए आपने न जाने ससार सागरके कितने गुमराह व्यक्तियोंका पथ प्रदर्शन किया। आज भी आप अपने ज्ञानके अक्षय भण्डारसे लोगोंको सतृप्त करते हुए उनको उचित मार्गका निर्देशन करते है। आपका अलौकिक व्यक्तित्व आचरणीय है।

●

मुनिश्री पद्मसागरजी

●

मुनि श्री १०८ पद्मसागरजीके गृहस्थावस्थाका नाम मूलचन्दजी था। आपका जन्म आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व टोंक (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिता श्री गदूमलजी पंडित व माताजी श्रीमती भोली बाई हैं। आप खंडेलवाल जातिके भूषण व वाकलीवाल गोत्रज हैं। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके पिताश्री गोटेका व्यापार करते थे। आपने विवाह नहीं कराया, बाल ब्रह्मचारी ही रहे और परिवारमें एक भाई हैं।

संसारकी नश्वरताको जानकर आपने स्वयं आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी महाराजसे खानिया जयपुरमें मुनि दीक्षा ले ली। आपने इन्दौर आदिमें चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की है।

●

मुनिश्री पार्श्वसागरजी

●

श्री १०८ मुनि श्री पार्श्वसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम राजेन्द्रकुमारजी था। आपका जन्म कार्तिक सुदी सप्तमी विक्रम संवत् १९७२ को कोटला फिरोजाबादमें हुआ था। आपके पिता श्री रामस्वरूप जी हैं व माता श्रीमती जानकीबाई हैं। आप पद्मावती पुरवाल जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपने विवाह नहीं करवाया, बाल ब्रह्मचारी ही रहे।

दसलक्षण पर्वमें अशुभ स्वप्न देखने पर आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी व आपने विक्रम संवत् १९१७ में आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराजसे सोनागिरीमें दीक्षा ले ली। इसके बाद विक्रम संवत् २०१८ में फागुन शुक्ल अष्टमीको आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराजसे मेरठमें मुनि दीक्षा ले ली। आपने मेरठ, बडवानी, ईडर, सुजानगढ़, कोल्हापुर आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपको छहढाला, बारह भावना, वैराग्यपाठ आदिका विशेष ज्ञान है। आपने नमक, तेल, घीका भी त्याग कर दिया है।

●

मुनिश्री पुष्पदन्तसागरजी

●

मुनि श्री १०८ पुष्पदन्तसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम जीवनलालजी था। आपका जन्म आजसे लगभग ६२ वर्ष पूर्व मोजमाबादमें हुआ था। आपके पिता श्री चाँदमलजी थे जो कपड़ेके सफल व्यापारी थे। आपकी माता श्री फूलाबाई थी। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। विवाह भी हुआ और परिवारमें एक बहिन है।

नित्य दिन शास्त्र स्वाध्याय करनेसे आपमें वैराग्य-प्रवृत्ति जाग उठी। आपने श्रावण वदी छठ, विक्रम संवत् २०२१ में आचार्य श्री १०८ मुनि धर्मसागरजी महाराजसे इन्दौरमें मुनि दीक्षा ले ली। आपने इन्दौर, झालरापाटन, टोंक, सवाईमाधोपुर, शिखरजी, आरा आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की है। श्री सम्मेदशिखरजीकी २०१ वन्दना की। बाहुबली गिरनारजीकी भी तीन बार वन्दना की है। आपने घी, मीठा, नमकका त्याग कर दिया है।

●

मुनिश्री बोधिसागरजी

●

श्री १०८ मुनि बोधिसागर जीका गृहस्थ अवस्थाका नाम श्री पन्नालालजी था। आपका जन्म आजसे लगभग ६५ वर्ष पूर्व मलखेडा (हृप्पा) जिला रायसेनमें हुआ। आपके पिता श्री इन्द्रचन्द्र जी थे जो कृषि व दुकानदारी करते थे। आपकी माता हंसाबाई थी। आपकी जाति परवार एवं गोत्र चोसखे है। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा तीसरी तक हुई। आपको दो पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई।

सत्संगति एवं उपदेश श्रवणसे आपमें वैराग्य-भावना जागृत हुई। आपने २०१९ में खुरईमें आचार्य धर्मसागर जीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। बादमें मुनिदीक्षा २०२४ में बूँदी (राजस्थान) में ली। आपने टोंक, बूँदी, बिजोलिया आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये व धर्मप्राण जनताको धर्म ज्ञान दिया। आपने नमक, तेल, दही आदिका त्याग किया।

●

मुनिश्री भव्यसागरजी

●

मुनि श्री १०८ भव्यसागरजीको गृहस्थावस्थाका नाम लादूलालजी था। आपका जन्म जेठ सुदी तीज, विक्रमसंवत् १९७९ में नैनवामें हुआ था। आपके पिता श्री मिश्रीमलजी थे, जो कपडेका व्यापार व नौकरी किया करते थे। आपकी माता श्री बरजाबाई थी। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं व वैद गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक शिक्षा द्रव्य-संग्रह व रत्नकरडश्रावकाचार तक हुई। आपका विवाह भी हुआ। परिवारमें आपके चार भाई व तीन बहिनें हैं।

स्वाध्याय एवं चन्द्रसागरजीकी प्रेरणासे आपमें वैराग्य भावना जागृत हुई। जयपुर खानियामें ऐलक दीक्षा ले ली। कार्तिक सुदी तेरस, विक्रमसंवत् २०१७ में श्री आचार्य १०८ मुनि शिवसागरजी से सुजानगढमें मुनि दीक्षा ले ली। आपने अजमेर, सुजानगढ़, खानिया, सीकर, लाडनू, बूँदी आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की।

आपने चारों रसोंका त्याग तथा गेहूँ, चना, बाजरा, मटर आदिका त्याग किया है।

●

मुनिश्री महेन्द्रसागरजी

●

मुनि श्री १०८ महेन्द्रसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम मोहनलालजी जैन था। आपका जन्म आजसे ४५ वर्ष पूर्व पलाई (अलीगढ़) में हुआ था। आप खंडेलवाल जातिके भूषण व पाटनी गोत्रज हैं। आपके पिताका नाम श्री बजरंगलालजी जैन व माँ श्री कस्तूरीबाईजी थी। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। विवाह नही किया, बाल ब्रह्मचारी ही रहे। आपके परिवारमें दो भाई व एक बहिन हैं।

सत्संगति व उपदेशश्रवणके कारण आपमे वैराग्यकी प्रवृत्ति जागृत हुई। संवत् २०२३ में श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजीसे टोंक मे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। ऐलक दीक्षा संवत् २०२४ में बूंदी (राजस्थान) में आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजीसे ग्रहण की। इसके बाद फागुन शुक्ला अष्टमी विक्रम संवत् २०२५ में शान्तिवीर नगरमें मुनि दीक्षा लेकर पंचमहाव्रत धारण कर लिए। आपने बूँदी, बिजोलिया आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर जैनधर्मकी काफी प्रभावना की। आपकी तपःसाधना वन्दनीय है।

●

मुनिश्री मल्लिसागरजी

•

मुनि श्री १०८ मल्लिसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम मोतीलालजी था। आपका जन्म ७७ वर्ष पूर्व नांवगांवमें हुआ था। आपके पिता श्री दौलतरामजी व माता श्रीमती सुन्दरबाईजी हैं। आप खंडेलवाल जातिके भूषण व सेठी गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। विवाह नही करवाया, बाल ब्रह्मचारी ही रहे।

ऐलक पन्नालालजीके उपदेश श्रवणके कारण आपमें वैराग्यकी प्रवृत्ति जागृत हुई। परिणामतः आपने विक्रमसंवत् १९८७ में सिद्धवरकूटजी क्षेत्रपर आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराजसे मुनि-दीक्षा ले ली। आप घोर तपस्वी चारित्र शिरोमणि मुनि रत्न हैं। आपने सिद्धवरकूट, बडवानी आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की।

•

मुनिश्री यतीन्द्रसागरजी

•

श्री १०८ मुनि श्री यतीन्द्रसागर जी महाराज का गृहस्थावस्था का नाम श्री देवीलाल जी था। आपका जन्म उदयपुर में हुआ था। आपके पिता श्री मगनलाल जी व माता श्रीमती गेदी बाई थी। आप चितोड़ा जाति एवं गुढ़िया जाति के भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके परिवार में दो भाई, चार बहिन, चार पुत्र व चार पुत्रियाँ हैं।

ग्यारह वर्ष की अवस्था से ही मुनियों की सत्संगति के कारण आपमें वैराग्य की भावना जागृत हुई। परिणामतः कार्तिक शुक्ला ग्यारह, विक्रम संवत् २०२४ में उदयपुरमें आचार्य श्री १०८ शिव-सागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। एक वर्ष बाद ही आपने विक्रम संवत् २०२५ मे आचार्य श्री १०८ धर्मसागर जी महाराज से शान्तिवीर नगर (महावीर जी) में मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली। आपको भक्तामर आदि संस्कृत स्तोत्रों का विशेष ज्ञान है। आपने प्रतापगढ़ आदि अनेक स्थानों पर चातु-र्मास कर जिनवाणी की आशातीत प्रभावना कर जिनधर्म की काफी वृद्धि की। सोलह-सोलह दिनों के उप-वास कर आप सोलह कारण व्रतों का पालन करते हुए अहर्निश ज्ञान, ध्यान, तपोरक्त की उक्ति को जीवन में साकार कर रहे हैं।

•

मुनिश्री वीरसागरजी

●

श्री १०८ मुनि वीरसागरका गृहस्थावस्थाका नाम मोहनलालजी था। आपका जन्म कार्तिक सुदी दशमी, विक्रमसंवत् १९५१ को आजसे ८० वर्ष पूर्व कटेरा झाँसी उत्तर प्रदेशमें हुआ। आपके पिताका नाम श्री मिश्रीमलजी था, जो घीका व्यापार किया करते थे। आपकी माता श्रीमती रूपाबाईजी थी। आप गोलालारी जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आप बाल ब्रह्मचारी रहे। आपके पाँच भाई और तीन बहिनें थी।

सत्संगति एवं उपदेशश्रवणसे आपमें वैराग्यभावना जागृत हुई एवं आपने विक्रम संवत् २०२०में श्री १०८ विमलसागरजीसे ऐलक दीक्षा ले ली। इसके पश्चात् २०२१ में बड़वानीमें मुनिदीक्षा ले ली। आपने बडवानी, कोल्हापुर, सोलापुर, ईडर, सुजानगढ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने नमक, घी, तेल, दहीका त्याग कर रखा है।

●

मुनिश्री विवेकसागरजी

●

श्री १०८ मुनि विवेकसागरजीका पहलेका नाम लक्ष्मीनारायण छावड़ा था। आपका जन्म मरवा (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिताका नाम श्री सुगनचन्द्रजी छावडा था, जो किरानेके सफल व्यापारी थे। आपकी माता राजमतीबाईजी थी। आप खंडेलवाल जातिके भूषण तथा छावडा गोत्रज है। आपकी लौकिक व धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह भी हुआ। आपकी धर्मपत्नी पाँच प्रतिमाधारिणी है। आपके परिवारमें चार बहिनें, तीन पुत्र, चार पुत्रियाँ हैं।

आपने संसारकी क्षणभंगुरताको जानकर फाल्गुन वदी पंचमी, संवत् २०२५, सात फरवरी, '६९को नसीराबाद राजस्थानमें श्री १०८ आचार्य ज्ञानसागरजीसे मुनिदीक्षा ली। आपको तत्त्वार्थ सूत्रका विशेष ज्ञान है। आपने नसीराबादमें चातुर्माससे अतीव धर्मप्रभावना की। आपने यह प्रतिज्ञा की कि जब तक सिद्ध क्षेत्र की वन्दना भावसहित न करूँगा तबतक गेहूँका नही लूँगा।

●

मुनिश्री वर्धमानसागरजी

●

श्री १०८ मुनि वर्धमानसागरजीका जन्म करसिंगपुर (बासवाडा) राजस्थानमें हुआ था। आपके पिताका नाम उदयचन्द्रजी था और माताका नाम भूरीबाई था। आपने जिस कुलीन घरानेमें जन्म लिया वह बहुत ही सरल और शान्त प्रकृतिका था। उसकी देव, शास्त्र, गुरु और धर्मके प्रति अपार श्रद्धा थी।

आपका जन्म भादों सुदी चतुर्दशीको विक्रमसंवत् १९६९ में हुआ था। आपके बचपनका नाम रतनलाल था। आप बचपनसे ही सरल, शान्त व एकान्त प्रिय थे। गृहस्थीके कार्योंसे उदासीन थे। पर धार्मिक विचारोंमें अग्रसर थे। इसलिए आपने माता-पिताके आग्रह करनेपर भी विवाह नही किया।

आपने जावरामें पंचकल्याणक प्रतिष्ठाके समय श्री १०८ आचार्यश्री पायसागरजीसे सातवी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। अब आपका नाम ब्रह्मचारी ज्ञानसागर हो गया। उन्हीके सगमें रहते हुए आपने देश में भ्रमण किया। जयपुरमें आचार्यश्री महावीरकीर्तिसे आठवी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये और बादमें आचार्य श्री निर्मलसागरजीसे संवत् २०२८ में आषाढ़ शुक्ला एकमको मुनिदीक्षा सरूरपुर, जिला मेरठमें ले ली। अब आपका नाम वर्धमान सागरजी रखा गया।

आप अपनी आत्मिक साधनामें लवलीन रहते हुए भी गुरुभक्ति और वैयावृत्तिमें सलग्न रहते हैं। आप व्रतोंमें अपूर्व आस्था रखते हैं और इसलिए अपने भक्तोंसे व्रत लेनेके लिए आग्रह करते है। चरित्रके निर्माणकी दृष्टिसे आपका यह कार्य आशासे अधिक सराहनीय है।

●

मुनिश्री विमलसागरजी

●

मुनि श्री १०८ विमलसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम किशोरीलालजी था। आपका जन्म पौष शुक्ला दूज संवत् १९४८ को हुआ था। आपका जन्मस्थान महानो जिला गुना है। आपके पिता श्री भीषमचन्दजी थे जो किरानाके सफल व्यापारी थे। आपकी माता श्रीमती मथुरादेवी थी। आप जैसवाल जातिके भूषण है। आपकी धार्मिक व लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई थी। आपके दो विवाह हुए थे। आपकी दो बहनें थीं।

संसारकी असारता, शरीर भोगोंसे उदासीनताके कारण आपमें वैराग्यभाव जाग्रत हुए इसलिए संवत् १९९६ को कापरेन ग्राम रियासत बूँदीमें श्री १०८ मुनि विजयसागरजीसे दीक्षा ले ली। आपने मुरैना, इन्दौर, कोटा, मन्दसौर, उज्जैन, भीलवाडा, गुनाहा, अशोकनगर इटावा, आगरा, लखनऊ, लश्कर, दिल्ली आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये और वहाँकी धर्मप्राण जनताको धर्मज्ञान दिया। आप कर्मदहन और सोलह कारण व्रत करते हैं। कड़वी तुम्बीके आहारसे आप बडवानीमें तीन वर्ष तक बीमार भी रहे। आपने मीठा व तेलका आजन्म त्याग किया है। आपके ऊपर भौर व मच्छ द्वारा उपसर्ग भी किया गया।

●

मुनिश्री वर्धमानसागरजी

मुनि श्री १०८ वर्धमानसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम यशवन्तकुमार जैन था। आपका जन्म २३-९-५० को सनावद (मध्यप्रदेशमे) हुआ। आपके पिताका नाम कमलचन्द्रजी जैन था जो नौकरी करते हैं। आपकी माता स्व० मनोरमाबाई थी। आप पोरवाल जातिके भूषण हैं तथा पंचोलिया गोत्रज हैं। आपकी लौकिक शिक्षा हायर सेकेण्डरी तक हुई।

आर्यिका ज्ञानमतीजीकी सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य भावना जाग्रत हुई इसलिए आपने फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, वीर निर्वाण संवत् २४९५ को शान्ति वीरनगर महावीरजीमें आचार्यश्री धर्मसागरजीसे मुनि-दीक्षा ले ली। आपको छहढाला, भक्तामर आदि कंठस्थ हैं। आप धर्ममें इसी प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहें यही कामना है।

मुनिश्री वृषभसागरजी

मुनि श्री १०८ वृषभसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम आदगोडाजी पाटील था। आपका जन्म आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व (कोल्हापुर) मोजेमन गाँवमे हुआ। आपके पिता श्री बावगोड़ाजी पाटील थे, जो कृषि करते थे। आपकी माता श्रीमती सावित्रीबाई थी। आप दिगम्बर जैन चतुर्थ जातिके भूषण थे। आपकी धार्मिक व लौकिक शिक्षा लक्ष्मीसेन भट्टारक पट्टाचार्य महास्वामीके पास हुई। आपका विवाह भी हुआ था। आपके चार पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं।

नाभिराजके लड़केकी अचानक मृत्युसे आपको वैराग्य हो गया और आपने सन् १९५४ को बेलगाँव जिलेमें धमनेरवाड़ोमें मुनि श्री १०८ आदिसागरजी महाराजसे मुनिदीक्षा ली। आपने कोल्हापुर, बेलगाँव, इन्दौर आदि स्थानोंपर चातुर्मासकर लोगोंको सदुपदेश दिया। आप अष्टमी व चतुर्दशीका उपवास करते थे। आपने घी और नमकका त्याग किया था। आपने सम्मेदशिखर व दक्षिणके समस्त तीर्थोंकी वन्दना की। कुंथलगिरिमें आचार्यश्री १०८ शान्तिसागरजीकी सल्लेखनाके समय आप वहीं पर थे। आपने काफी धर्मकी वृद्धि की।

मुनिश्री वीरसागरजी

●

आप पिता श्री लालजी एवं माता श्री रूपाबाईके पुत्र हैं। आपका गृहस्थावस्थाका नाम श्री मोहनलालजी था। आपका जन्म सं० १९५१, कटेरा गाँव, (झाँसी) जाति गोलालारेमें हुआ था। ऐलकदीक्षा सं० २०१९ बाराबंकीमें एवं मुनिदीक्षा माह कार्तिक, १९४९, सं० २०२० बडवानी सिद्ध क्षेत्र पर पूज्य आचार्य विमलसागरजी महाराजसे ली। आपने शादी नहीं की। बाल ब्रह्मचारी रहे। आप बडे शान्त परिणामी वयोवृद्ध साधु हैं। कठोर साधना और अहर्निश स्वाध्यायमें निरत रहना आपका स्वभाव बन गया।

●

मुनिश्री विमलसागरजी

●

ग्वालियर राज्यके समीप महापनो नामक ग्राममें सेठ भीकमचन्द्रजी जायसवालके यहाँ सं० १९४८ में केसरीलाल पुत्रका जन्म हुआ। इनकी माताका नाम श्रीमती मथुरादेवी था। ८ वर्षकी अवस्थामें इनके पिताका स्वर्गवास हो गया था। इनके छोटे तीन भाई थे। इन सबका भार इन्हीके ऊपर था। आप बचपनसे ही स्वाध्यायके प्रेमी थे। स० १९६८ में पहली शादी हुई। पत्नीका देहान्त हो जानेके कारण दूसरा विवाह सं० १९७७ में हुआ। दूसरी पत्नीका देहान्त सं० १९९२ में हो गया। परिणामत: आपमें वीतराग भाव जगा। सं० १९९३ में दूसरी प्रतिमाका व्रत धारण किया। परिणामोंमें निर्मलता आई और स० १९९७ मे श्री १०८ मुनि विजयसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। उसके तीन महीने बाद खण्ड वस्त्र त्याग कर ऐलक दीक्षा ली। सं० दो हजारमें कोटानगरमें विजयसागरके साथ चातुर्मास किया और उसी समय दिगम्बर मुनि-दीक्षा ग्रहण की। उसी दिनसे आपका नाम मुनि श्री १०८ विमलसागरजी पड गया। तप:साधनाके कीर्तिमान पुरुषार्थी सन्त शिरोमणि मुनिराज हैं।

●

मुनिश्री सुबाहुसागरजी

●

आपका जन्म विक्रम सं० १९८६ में हुलगी ग्राम जिला बेलगाँव व मैसूर प्रान्तमें हुआ। आपका जन्म नाम तवनप्पा है। पिताजीका नाम बालप्पा है। माताजीका नाम श्रीमती जानकीबाई है। आपकी बाल्यावस्थासे ही धर्मध्यानकी ओर विशेष रुचि रही है। आपके यहाँ ही परिवारमें कृषि-कार्य होता है। श्री सीमंधर सागरजी महाराजका ग्राम भी आपके ग्रामसे बहुत निकट है। और आपकी उनकी रिश्तेदारी

निकट होनेसे उनसे धर्मोपदेश श्रवण कर आपने भी ब्रह्मचर्य व्रत लेकर गृहत्याग दिया था। आपने शादी करनेसे इन्कार किया। आप भी बाल ब्रह्मचारी हैं। आपने विक्रम सं० २०१५, अगहन शुक्ला पूर्णमासीको कुन्थलगिरि क्षेत्र पर श्री १०८ मुनि सुपार्श्वसागरजीसे मुनिदीक्षा ग्रहण की थी। तभीसे आप निर्भीकतासे महाव्रतोंका पालन कर रहे हैं। आपका तपोबल एवं ध्यानरत क्रिया निरंतर उत्तरोत्तर वृद्धि पर है। आपके साथ सिवा पठन-पाठन पुस्तकोंके अन्य कुछ नहीं है। आप बडे ही सन्तोषी स्वभावी साधु हैं।

आपका धर्मोपदेश बडे मधुर वचनोंमें होता है। जिसे श्रवण कर अनेक भव्योंने अष्टमूल गुण धारण किये और अनेक जैन अजैनोंने रात्रिभोजन व मांसाहार एवं शराब पान करनेका त्याग किया। यह सब आपकी प्रवचन-शैलीकी पटुता ही है।

●

मुनिश्री सुमतिसागरजी

●

आपका गृहस्थनाम श्री नत्थीलालजी था। पिता श्री छिद्दूलाल एवं माता श्री चिरोंजा देवीके आप लाडले पुत्र थे। ग्राम श्यामपुरा, परगना अम्बाह (मुरैना) में क्वार सुदी ६, सं० १९७५ को आपका जन्म हुआ। आप जायसवाल जैन हैं। आपकी पत्नीका नाम श्रीमती रामश्री देवी है। तीन भाई, दो पुत्र और दो पुत्रियाँ आपकी हैं। भरे-पूरे परिवारको छोड़कर आपने दिगम्बरी दीक्षा धारण की है।

आपकी बाल्य-कालसे ही धर्ममें लगन थी। आप अपनी काश्तकारी तथा मामूली व्यापार करते थे। आपका विवाह वि० सं० १९८४ में हुआ था और विवाहके थोड़े दिन बाद ही आपको रामदुलारे डाकू हरण कर ले गया था। १४ दिन बाद आप उसके गिरोहसे भाग आये। वि० सं० २०१० में आप गाँवसे मुरैनामें आकर रहने लगे और दुकानका कार्य करते रहे। पुण्योदयसे श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी महाराज संघ सहित मुरैना पधारे। इसी समय आपकी धर्मपत्नीने आपसे पूछा कि आचार्य श्रीको आहार देनेकी मेरी इच्छा है। अगर आप आज्ञा देवें तो मैं शूद्र जलका त्याग ले लूँ व आप भी ले लीजिये तब आप (नत्थीलालजी) ने कहा आपसे बने तो आहार दो हमसे तो कुछ नही बनता तब आपकी धर्मपत्नीने शूद्र जलका त्याग कर दिया और ज्ञानाबाईके साथ आहार दिया। फिर आपकी धर्मपत्नीने कहा, अब हम अपने मकान पर आहार बनावेंगे, आप महाराजको ले आवेंगे। तब दूसरे दिन घरपर आहार बनाया व आप महाराजको लेकर अपने घरपर आ गये और खड़े रहे। महाराज भी खडे रहे, महाराजकी निगाह आप पर पड़ी तो आपने कहा, महाराज, मुझसे त्याग नहीं बनेगा। तब महाराज लौटने लगे। तब आपने सोचा कि मेरे घरसे महाराज बिना आहार लिये लौट गये तो मेरा जैन कुलमें उत्पन्न होना ही बेकार है। फिर क्या था, उसी समय आपके भाव जगे और उसी समय आपने शूद्र जलका त्याग किया व आचार्य श्री को आहार दिया।

आहार देनेके बाद भावना हुई कि अब तो त्याग करते जायँगे, फिर पं० मक्खनलालजीकी संगतिमें रहने लगे व शास्त्र-अध्ययन करते रहे। सं० २०२१ में श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराजसे दूसरी प्रतिमा धारण की व वि० सं० २०२३ में एक मकान खरीदा और इसी वर्ष मुरैनामें गजरथ पंचकल्याणक महोत्सव हुआ। इस अवसर पर श्री १०८ विमलसागरजी महाराज पधारे। इनसे आपने सातवी प्रतिमा ली और इसी तरह आप त्यागकी ओर बढ़ते गये।

संसारको अस्थिर जानकर आपने अपने मनमें मुनिदीक्षा लेनेकी धारणा बना ली। सं० २०२४ में फागुन सुदी १२ को सोनागिर गये, वहाँ श्री १०८ मुनि निर्मलकुमारजीसे मुनिदीक्षा लेने का विचार किया। मगर श्री १०८ मुनि विमलसागरजीकी आज्ञा न पाकर बादमें रेवाडी पहुँचे। वहाँ पर श्री १०८ मुनि विमलसागरजी महाराजसे चैत सुदी १३, वि० सं० २०२५ को ऐलक दीक्षा ली और आपका श्री १०५ वीरसागर नामकरण हुआ। वहाँसे विहार करके श्री गुरुजीके साथ देहली पधारे। वहाँ पर चातुर्मास किया इसी अवसरपर सर्वप्रथम सावन सुदी ११को केशलौंच हुआ। केशलौंचके समय आप बडे शान्तचित्त दिखलाई दे रहे थे। थोड़ी ही देरमें आपने केश लौंच कर डाला। इस समय आपकी जय-जयकारसे आकाश गूँज उठा। चातुर्मासके बाद संघके साथ-साथ आप गाजियाबाद पधारे। अगहन बदी १२, वि० सं० २०२५ को दूसरा केशलौंच हुआ। उसी समय श्री गुरुजीसे मुनिदीक्षा हेतु प्रार्थना की और उसी समय श्री १०८ मुनि विमल-सागरजी महाराजने मुनिदीक्षा दे दी, फिर आपका दीक्षित नाम श्री १०८ मुनि सुमतिसागरजी महाराज रक्खा गया।

धन्य है आपकी धर्मपौरुषताको कि चन्द दिनोंमें ही आप सर्वपरिग्रह त्यागकर भरा-पूरा परिवार छोड़कर निर्ग्रन्थ मुनिपद प्राप्त कर लिया।

●

मुनिश्री सुव्रतसागरजी

●

आप श्री सूरजपालजी एवं माता श्री सूर्यदेवीके पुत्र जन्म स्थान भिंड (ग्वालियर) जन्म स० १९७३ जाति गोल सिंघारे हैं। आपका गृहस्थावस्थाका नाम श्रीपन्नालालजी। मुरैना, विद्यालयसे न्यायतीर्थकी परीक्षा पास की। इन्होंने दूसरी प्रतिमा सं० २०१०, चौथी प्रतिमा सं० २०१८, सातवी प्रतिमा सं० २०२० में ली। क्षुल्लक दीक्षा सं० २०२४, आसोज सुदी १० को ईडरमें पूज्य श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे ली और नाम श्री प्रबोधसागरजी रखा गया। आप बराबर तपमें रत रहते हैं तथा व्याख्यान देनेमें बड़े पटु हैं। राजगृहीमें ही अनन्त चतुर्दशी ता० ४-९-७१ को मुनि दीक्षा ली।

●

मुनिश्री सम्भवसागरजी

•

श्री १०८ मुनि सम्भवसागरजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम श्रीलालजी है। आपका जन्म आजसे लगभग अस्सी वर्ष पहले रेमजा (फीरोजाबाद) में हुआ। आपके पिता श्रीपन्नालालजी थे, जो कपड़े का व्यवसाय करते थे। आपकी माताका नाम दुर्गाबाई था। आपकी जाति पद्मावती पुरवाल है। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ४थी तक हुई। आप बालब्रह्मचारी हैं। आपके परिवारमें एक भाई व एक बहन है।

आपने धर्म श्रवण व सत्संगतिके कारण वैराग्य लेनेकी बात विचारी। संवत् २०१९में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे कामा (भरतपुर) में क्षुल्लक दीक्षा ली और सं० २०२७में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे ही मधुबनमें मुनिदीक्षा ली। आपने तत्त्वार्थसूत्रका अच्छी तरह अध्ययन-अनुभव-मनन किया। आपने ईसरी, बडवानी, बाराबंकी, कोल्हापुर, सोलापुर, सुजानगढ आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। वहाँ आपके रहनेसे बड़ी धर्मप्रभावना हुई। आपने घी, तेल, दही जैसे रसोंका त्याग किया है।

•

मुनिश्री समन्तभद्रजी

•

श्री १०८ मुनि समन्तभद्रजी महाराजका गृहस्थ अवस्थाका नाम देवचन्द्रजी है। आपका जन्म २७-१२-१८९१में करमोले (सोलापुर) में हुआ। आपके पिता श्रीकस्तूरचन्द्रजी थे व माता कंकूबाई थी। आपने सोलापुरमें माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की। बम्बईमें निवास करके आप स्नातक (बी० ए०) हुए। आप उच्चकोटिकी धार्मिक शिक्षाकी प्राप्तिके लिए जयपुर गए। आप विषय-वासनाओंसे दूर रहे व बाल ब्रह्मचारी हैं। आपने आत्मकल्याणहेतु १९५२में श्री१०८ मुनि वर्धमानसागरजीसे मुनिदीक्षा ली।

आपने कारंजा, सोलापुर, एलोरा, खुरई आदि बारह स्थानोंपर गुरुकुलोंकी स्थापना की (जो आज भी समाजमें विधिवत् अपना कार्य कर रहे हैं) क्योंकि आपकी यह मान्यता है कि गुरुकुल शिक्षा-पद्धति ही असत्यसे सत्यकी ओर, अन्धकारसे प्रकाशकी ओर, मृत्युसे अमरत्वकी ओर ले जानेमें समर्थ है। आपने सन् १९१८में कारंजामें महावीरब्रह्मचर्याश्रम नामसे गुरुकुलकी स्थापना की। सन् १९३४में कुम्भोजमें पाँच छात्रोंसे गुरुकुलकी स्थापना की थी, आज उसमें ५०० छात्र अध्ययनरत हैं।

मुनि श्रीसमन्तभद्रजी स्वयं एक सजीव संस्था हैं। वे शारीरिक और मानसिक तथा आध्यात्मिक दृष्टियोंसे स्वस्थ रहकर सहस्र वसन्त देखें। उनके निर्देशनमें एक नहीं, अनेक गुरुकुल खुलें, जिससे देश और समाज, शरीरसे आत्माकी ओर, भौतिकतासे मानवताकी ओर बढ़नेमें समर्थ हो सके।

•

मुनिश्री संयमसागरजी

●

श्री १०८ मुनि संयमसागरजीका पहलेका नाम भवानीशंकरजी था। आपका जन्म आजसे लगभग ५८ बरस पहले देवपुरा (बूँदी राजस्थान) में हुआ। आपके पिता श्री किशोरीलालजी थे, जो कृषि व व्यापार करते थे। आपकी माताका नाम माँगीबाई था। आप बघेरवाल जातिके भूषण हैं गोत्र कोटया है। आपकी लौकिक शिक्षा तीसरी कक्षा तक हुई। आपका विवाह हुआ।

सत्संगति और गुरुजनोंके उपदेशसे आपमें विरागीवृत्ति बढ़ी। आपने संवत् २०२३में टोंकमें श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने इस अवस्थामें भ्रमण करते हुए अनेक स्थानोंपर धार्मिक शिक्षा दी। संवत् २०२४में बूँदीमें श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजीसे मुनि दीक्षा ले ली। आपने बूँदी, बिजोलिया आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। आपने नमकका आजीवन त्याग कर दिया है। आप इसी *प्रकार तप और त्याग तथा संयमकी दिशामें अग्रसर रहें, यही भावना है।*

●

मुनिश्री सिद्धसागरजी

●

आपका गृहस्थ अवस्थाका नाम मोतीलालजी था। आपका जन्म कसवां (कोटा) राजस्थानमें हुआ। आपके पिता श्री छीतरमलजी अग्रवाल समाजके भूषण हैं और सिंघल गोत्रज हैं। आपकी माता गुलाबबाई हैं। आपके यहाँ श्रावण शुक्ला अष्टमी विक्रम संवत् १९७९ में मोतीलालने जन्म लिया। आपने बचपनसे ही शारीरिक और मानसिक विकासपर दृष्टि रखी। आप स्वभावसे दयालु और धार्मिक हैं। जीवविज्ञानका अध्ययन, आपने महज इसलिए छोड़ दिया कि उसमें मेढ़ककी चीरफाड करनी पड़ती थी।

आपने मोटर मैकेनिकका व्यवसाय आरम्भ किया। युवावस्थामें भी आप विषयवासनाओंसे विरक्त रहे। बीस वर्ष की अवस्थामें जब अव्रत अवस्थामें ब्र० कन्हैयालालजी एक लड़कीवालेको लेकर आये तब आपने कहा, मैं तो विवाह नही करूँगा पर आपकी पुत्रीका विवाह करा दूँगा और रामचन्द्रजीके पुत्र घीसा-लालजीसे विवाह करा दिया। आपने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की, जिनेन्द्रपूजन, शास्त्रस्वाध्याय आहारदानका लाभ लिया।

अशोकनगरमें मुनि श्री विमलसागरजी भिंडके धर्मोपदेशसे प्रभावित होकर आपने ७वी प्रतिमा ग्रहण की। १० वर्ष ब्रह्मचारी रहे। अनन्तर सन् १९७२ में तीर्थराज सम्मेदशिखरपर मुनि श्री १०८ सीमन्ध-सागरजीके समीप चन्द्रप्रभु चैत्यालयमें मुनि दीक्षा स्वीकार कर ली। आपने मुनि होकर प्रथम चातुर्मास राँचीमें किया और द्वितीय चातुर्मास टिकैतनगरमें किया। आपके चातुर्मासोंमें बड़ी धर्मप्रभावना हुई।

●

मुनिश्री सुबुद्धिसागरजी

मुनि श्री १०८ सुबुद्धिसागरजी महाराजका गृहस्थ अवस्थाका नाम मोतीलालजी जैन था। आपका जन्म आजसे लगभग ७४ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् १९५७में हुआ। आपकी जन्मभूमि प्रतापगढ(राजस्थान) है। आपके पिता श्री पूनमचन्द्रजी थे। आपकी माता नानीबाई थीं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा १०वी तक हुई। आपका विवाह हुआ। आपको तीन पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हैं। आप एक अपूर्व 'व्यापारी थे। लाखोंकी सम्पत्तिके अधिकारी थे। पर संयमित जीवन और नियमित स्वाध्यायके पक्षपाती भी थे।

आपने सं० २०२४में उदयपुर श्री १०८ आचार्य शिवसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। अगले वर्ष सं० २०२५में आपने सलूम्बर (उदयपुर) में आचार्य शिवसागरजीसे मुनि दीक्षा ले ली। आपने प्रतापगढ़, सलूम्बर आदि स्थानोंपर चातुर्मास किए। आपने नमक, तेल दहीका त्याग कर दिया है। भोगसे ही त्यागकी ओर बढनेवालोंमें आपका नाम विशेषतया उल्लेखनीय है।

मुनिश्री सम्भवसागरजी

श्री १०८ मुनि सम्भवसागरजीका पूर्व अवस्थाका नाम सुरेन्द्रकुमारजी जैन था। आपका जन्म आजसे लगभग तीन बरस पहले संवत् २००१ में कार्तिक शुक्ला ११ को उदयपुर (राजस्थान)में हुआ। आपके पिता श्री जवाहरलालजी थे, वे ३०० रुपये मासिकपर मुनीम हैं। आपकी माता श्रीमती चम्पाबाई हैं। आप जातिसे दशाहूमण (श्वेताम्बर) हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ४ थी तक ही हुई। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपके परिवारमें एक भाई व तीन बहनें हैं।

आपने काफी धार्मिक उपदेश सुने। सत्संगतिके कारण आपके भाव वैराग्यकी ओर बढे। आपने संवत् २०२१ में अतिशय क्षेत्र पपौराजीपर श्री १०८ आचार्य शिवसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। फिर आपने संवत् २०२५ में फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको श्री महावीरजीमें श्री० १०८ आचार्य धर्मसागरजीसे मुनिदीक्षा ले ली। आपने श्रीमहावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। आप संयम और त्यागकी दिशामें उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं।

मुनिश्री सन्मतिसागरजी

●

श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम मोहनलालजी है। आपका जन्म आजसे करीब ७० वर्ष पूर्व टोडारायसिंहमें हुआ। आपके पिता श्री मोतीलालजी थे। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं, और गोत्र छाबड़ा है। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह भी हुआ था।

आपने श्री १०८ आचार्य वीरसागरजीसे दीक्षा ली। आपने इन्दौर, औरंगाबाद, फल्टन, कुम्भोज, जबलपुर, आरा आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। आपको तत्त्वार्थसूत्रका विशेष परिचय है। आप अभी आहार में केवल दूध मात्र ग्रहण करते हैं। आप इसी प्रकार शरीरसे आत्माकी दिशामें बढते रहे।

●

मुनिश्री सुबलसागरजी

●

श्री १०८ मुनि सुबलसागरजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम परगोडाजी पाटील है। आपका जन्म आजसे लगभग ५५ वर्ष पूर्व नन्दगाव (बेलगाव) में हुआ था। आपके पिता श्री शिवगोडाजी पाटील हैं, जो खेती करते हैं। आपकी माताका नाम गान्धारी देवी है। आप जातिसे चतुर्थ धीमपन्थी है। आपकी लौकिक शिक्षा लगभग बिल्कुल नही हुई। धार्मिक शिक्षा आपने स्वाध्यायके बलपर स्वयं ही प्राप्त की। आपके परिवारमें चार भाई, एक बहन हैं। आपका विवाह हुआ। आपको एक पुत्र व चार पुत्रियोंके पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

जब आपके एक भाईकी पत्नीका मरण हुआ तब आपको काफी दुःख हुआ। संसारको असार समझा। आपने संवत् २०१८ में ज्येष्ठ शुक्ला १०वी को श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराजसे मागूर (बेलगाव) में मुनि-दीक्षा ले ली। आपने शिखरजी, नसलापुर, मागूर, कोल्हापुर आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। इन स्थानोंपर आपके विहार करनेसे काफी धर्मप्रभावना हुई। आपने मुनि-दीक्षा ली ही थी कि दूसरे दिनसे आप असाध्य रोगसे ग्रसित हुए। कालान्तरमें शुभ कर्मके उदयसे आप स्वस्थ हुए। एक प्रकारसे आपका दूसरा ही जन्म हुआ। आपने शक्कर, गुड़, घी आदि रसोंका त्याग कर रखा है।

आप अपने आदर्श जीवन चरितके माध्यमसे देश और समाजको सदैव सबल बन कर सन्मार्गपर चलनेकी शिक्षा दे रहे हैं।

●

मुनिश्री श्रेयांससागरजी

मुनिश्री १०८ श्रेयांससागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम फूलचन्दजी था। आपका जन्म १९ जनवरी, १९१९ को नांदगाँवमें हुआ। आपके पिता श्री लालचन्दजी थे। आपकी माताजी श्री कुन्दनबाई थी। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं तथा पहाडिया गोत्रज है। आपकी धार्मिक शिक्षा साधारण तथा लौकिक शिक्षा कक्षा १२ तक हुई। आपकी पत्नी श्री लीलाबाई है। जो वर्तमानमें वैराग्य धारणकर श्री १०५ आर्यिका श्रेयासमतीजीके नामसे जानी जाती है। आपके परिवारमें ८ भाई, १ बहिन, २ पुत्र, व २ पुत्रियाँ हैं।

स्वाध्याय व सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य भावना जागृत हुई व आपने विक्रम संवत् २०२२ में वैसाख सुदी ११ को शांतिवीरनगर (महावीरजी) में स्वर्गीय श्री आचार्य १०८ शिवसागरजीसे मुनिदीक्षा ले ली। आपको संस्कृत व हिन्दीका अच्छा ज्ञान है। आपने श्री महावीरजी, कोटा, उदयपुर आदि स्थानों-पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की।

मुनिश्री शान्तिसागरजी

श्री १०८ मुनि शान्तिसागरजीका पहलेका नाम शिवप्पा है। आपका जन्म आजसे लगभग ७२वर्ष पूर्व बेलगाँव जिलेके चन्दूर गाँवमें हुआ था। आपके पिता श्रीसत्यन्धरजी थे। आपकी माताजी रुक्मणि देवी थीं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ४थी तक हुई और धार्मिक शिक्षा प्रवेशिका तक हुई। आपका पैतृक व्यवसाय कृषि था। बादमें व्यापार करने लगे थे। आपके परिवारमें एक भाई दो बहनें है। आपका विवाह भी हुआ पर घरमें मन नही लगा। आप घरमें रहकर भी वैरागी थे।

प्रतिदिनके शास्त्रश्रवणसे, देवपूजन और गुरु उपदेशसे आपके भावोंमें विशुद्धता आई, अतएव आपने २-४-१९४३को सांगली जिलेके भोसे गाँवमें श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराजसे मुनि दीक्षा ली। आपने सांगली, इलाहाबाद, मधुवन, बडौत, कलकत्ता आदि स्थानोंपर चातुर्मास किए। वहाँ आपके रहनेसे बड़ी धर्म प्रभावना हुई। आपने मोक्षशास्त्र, दशभक्त्यादिके पाठोंका काफी मनन किया। आपने तेल, दहीका त्याग कर दिया है।

मुनिश्री शान्तिसागरजी

●

आपका जन्म जिला अलवर ग्राम अलावाड़ामें हुआ था, आपके पिताजीका नाम छोटेलालजी एवं माताजीका नाम चन्दनाबाई है। आपने उच्च घरानेमें सलवाड जातिमें जन्म लिया। आपका जन्म १८७२ मिति सावन सुदी २ को हुआ। आपके बचपनका नाम सुखरामजी था। आपके ४ भाई, २ बहिनें हुईं। आपकी बड़ी बहिनने श्री १०८ मुनि विमलसागरजी महाराजसे आर्यिका दीक्षा ली थी। उनका नाम आर्यिका शान्तिमतीजी था, उनका स्वर्गवास रेवाडीमें हुआ था। आपके यहाँ वीहगत कपडेका काम होता था, आपकी शादी १८८७ में हुई। आपकी पत्नीका नाम चन्द्रकला बाई था। आपके १ पुत्र एव २ पुत्री हुई। कुछ समय के पश्चात् आपकी पत्नीका स्वर्गवास सं० २०१३ में हुआ। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी आपकी भावना वैराग्यमय थी। धर्मकी ओर शुरूसे ही लगन थी। अपने कर्तव्योंके पालन करनेमें आप उत्साहशील थे, जयपुरमें आचार्य श्री देशभूषणजी महाराजका संघ विराजमान था। उनसे आपने सं० २०१८ में पहली प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये तथा उदासीन अवस्थामें रहकर गृहस्थाश्रमके कर्तव्यका पालन किया, बादमें आप सम्मेद-शिखरजीकी यात्रापर गये वहाँपर आचार्य निर्मलसागरजीका संघ विराजमान था। वहाँपर आपने उनसे सं० २०२६ में प्रतिमाके व्रत धारण किये फिर बाराबंकीमें आचार्य सघका चातुर्मास हुआ। वहाँपर आपने सं० २०२७ में सावन सुदी १४ को सप्तम प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। आचार्य श्रीका संघ विहार करते हुए मुजफ्फरनगरमें आया। वहाँ पर आपने आचार्य श्रीसे सं० २०२८ मिती जेठ सुदी सप्तमीको मुनि दीक्षा ली और दीक्षा नाम श्री शान्तिसागरजी रखा गया। आप अपने चरित्रमें दृढ व साहसी है, ध्यान-अध्ययनमें लीन रहकर आत्माकी कठोर साधनामें संलग्न है।

●

मुनिश्री शीतलसागरजी

●

श्री १०८ मुनि शीतलसागरजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम नन्हेंलालजी जैन था। आपका जन्म आजसे लगभग ७५ वर्ष पूर्व वीरपुर (भोपाल) म० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री गोपाललालजी थे एव माताजी हरबाई थी। आप जातिसे परवार थे। आपकी लौकिक और धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका दाम्पत्य जीवन सुखमय था। आपकी दुकान काफी चलती थी। आपके चार पुत्रियाँ हुई।

सत्संगतिके कारण आपने वैराग्य लेनेकी बात विचारी। आपने संवत् २०२० में पपौराजी क्षेत्रपर श्री १०८ आचार्य शिवसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली और आप सघमें रहकर भ्रमण करने लगे। आपने सवत् २०२५ में फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको शान्तिवीरनगरमें श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजीसे मुनि दीक्षा ले ली। आपने श्री महावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। इन स्थानोंमें आपके रहनेसे बड़ी धर्म प्रभावना हुई। आपने गुड़, शक्कर, नमक, तेल, दही आदिका त्याग भी किया है।

●

मुनिश्री क्षीरसागरजी

आपका जन्म बरैया वैश्य जातिके कांडोर गोत्रमें सौ० द्रौपदी बहिनके पश्चात् श्रावण कृष्णा ३ सं० १९६० में रिठौरा ग्राम जिला मुरैना (ग्वालियर) में हुआ था। आपका पूर्व नाम बोहरे मोतीलालजी था। पिताका नाम बोहरे पन्नालालजी तथा माताका नाम कौशल्या बाई था। आपकी शिक्षा मुरैना जैन विद्यालय में केवल चौथी कक्षा तक हुई और ११ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह साहू नन्दरामजी, मोहना (ग्वालियर) की सुपुत्री मथुरादे के साथ हो गया। लगभग ४० वर्षकी अवस्था तक आप पूर्ण धार्मिक मर्यादा सहित गृहस्थ-जीवन करते रहे। आपका मुख्य व्यवसाय कपड़ेकी दूकान तथा साहूकारी था। चिरंजीलालजी, सुनहरीलालजी, श्यामलालजी, शंकरलालजी तथा अमृतलालजी आपके पाँच सुपुत्र हैं जो इस समय ग्वालियरमें कपड़ेका व्यवसाय कर रहे हैं। विद्यालयमें शिक्षा प्राप्त करते समय ही आपके हृदयमें विशेष धार्मिक अभिरुचि उत्पन्न हुई और स्वाध्याय, दर्शन, पूजन आदि आपके दैनिक नियम बन गये। बाल्यकालसे ही आपकी प्रवृत्ति सप्त व्यसनोंसे सर्वथा विमुख रही। प्रत्येक शास्त्रकी समाप्ति पर आप कुछ न कुछ नियम अवश्य लेते थे। एक बार आपने एक महान् नियम लिया कि पुत्र-वधूके आते ही मैं गृह त्याग दूँगा। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी आपका हृदय सदैव संसारसे विरक्त रहा। सांसारिक प्रलोभन आपकी पवित्र आत्माको जरा भी विचलित न कर सके। दो पुत्रोंकी शादी होनेके पश्चात् उनकी छोटी अवस्थाके कारण आप ३ वर्ष तक ७वीं प्रतिमा धारण कर घर पर ही रहे। अन्तमें संसारकी अनित्यताको देखकर, अपने आत्म कल्याणकी दृष्टिसे आपने अपनी धर्मपत्नी सहित क्षुल्लक अवस्था धारण की। इससे पूर्व आपने धर्म-पत्नी सहित एक वर्ष तक प्रायः सभी तीर्थोंकी यात्रा की। आपकी धर्मपत्नी पद्मश्री क्षुल्लिकाके नामसे प्रख्यात हैं। ३ वर्ष तक क्षुल्लक अवस्थामें रहनेके पश्चात् स० २००७ मे भोपालकी पंच कल्याणक प्रतिष्ठाके शुभ अवसर पर तप कल्याणकके दिन विशाल जन समुदायकी हर्ष ध्वनिके बीच आपने मुनिव्रत धारण किया। सासारिक सुखोंके समस्त साधनोंके होते हुए भी, पारिवारिक एवं आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न होते हुए उनको ठुकराकर आपने वर्तमान कालमें एक महान् शिक्षाप्रद आदर्श उपस्थित किया है।

अध्ययनकी ओर आरम्भसे ही आपकी विशेष रुचि थी। विद्यालय छोड़नेके बाद भी आपने धार्मिक अध्ययन जारी रखा और समयसार, प्रवचनसार आदि जैसे महान् ग्रन्थोंका अध्ययन किया। अध्यात्मवाणी आदि जैसी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंकी रचना आपके इसी अध्ययन और मननका परिणाम है। समयके साथ आध्यात्मिक विषयका इतना ज्ञान आपकी एक महान् विशेषता है। धार्मिक एवं आध्यात्मिक विषयका अपूर्व ज्ञान होनेके साथ-साथ आपका स्वभाव भी अत्यन्त शान्त, सरल एवं गम्भीर है। भाषण शैली अत्यन्त मधुर एवं प्रभावशाली है। आपका व्यक्तित्व इतना महान् है कि दर्शन करते ही हृदयमें अपूर्व शान्तिका अनुभव होने लगता है। इससे पूर्व आपने लगभग २००-२५० आध्यात्मिक एवं महत्त्वपूर्ण दोहोंकी रचना की है। जिसमें अनेक जटिल विषयोंका निर्णय किया है जो अभी तक अप्रकाशित है।

आप कभी भी अपने श्रोताओंको किसी व्रतको ग्रहण करने अथवा कुछ दान करनेके लिए विवश नही करते। किन्तु आपका उपदेश इतना हृदयस्पर्शी होता है कि श्रोतागण स्वयंमेव ही शक्ति अनुसार व्रत ग्रहण किये बिना नही रहते। आप लौकिक, धार्मिक एवं सामाजिक झंझटोंसे सर्वथा विमुख रहते हैं। आपका अधिकांश समय अध्ययन और मननमें ही व्यतीत होता है।

मुनिश्री ज्ञानसागरजी

●

ग्वालियर प्रदेशमें दोहदके पास धनुषा नामक एक छोटा-सा गाँव हैं। वहाँ श्री प्यारेलालजी और श्रीमती कौशल्या देवी नामक जैन दम्पति श्रावकके सामान्य नियमों का पालन करते हुए सबके प्रेम-पात्र बनकर सुख-सुविधाके साथ लोक-व्यवहार चला रहे थे। उनके पाँच पुत्र थे, जिनमें से सुगनचन्द्रके भाव बचपन से ही वैराग्य की ओर थे। वह अपने दो अन्य भाइयों के साथ युवावस्थामें इन्दौरमें आकर बस गये थे तथा वीतबाडा बाजारमें कपडे का व्यवसाय करने लगे थे। जब चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्ति-सागरजी महाराज का विहार हुआ था। उनके उपदेशों ने सुगनचन्द्रके हृदयमे पहले से ही जमे हुए वैराग्य-बीजों को अंकुरित कर दिया। वह धीरे-धीरे तप त्याग की ओर अपने कदम बढाते चले गये। आचार्यश्री की यमसल्लेखना से कुछ ही समय पूर्व उन्होंने क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके पाँच वर्ष बाद इन्दौर में श्री १०८ मुनि विमलसागरजी महाराज से ऐलक दीक्षा ले ली और भिण्ड के पचकल्याणक में पूर्ण आकिंचन धर्म स्वीकार कर दीक्षा स्वीकार कर ली। वही सुगनचन्द्र आज पूज्य श्री १०८ मुनि श्री ज्ञानसागरजी महाराजके रूपमें हमारे सामने हैं। उनका ब्रह्मचर्य और तप-त्याग से पुनीत जीवन आज हम सबको धर्म मार्ग पर चलानेमें प्रेरक हो रहा है। यह सरल हृदय साधु यशोकामनासे सर्वथा दूर रहते हुए और दृढता से मुनि-चर्या का पालन करते हुए अपना समय शास्त्रस्वाध्याय और आत्म-चिन्तनमें व्यतीत कर रहा है उसे देखकर किसका सिर श्रद्धासे नत नहीं हो जायेगा।

●

मुनिश्री ज्ञानसागरजी

●

राजस्थान प्रदेशमें जयपुरके समीप राणोली ग्राम है। वहाँ पर एक खण्डेलवाल जैन कुलोत्पन्न छावडागोत्री सेठ सुखदेवजी रहते थे। उनके पुत्रका नाम श्री चतुर्भुजजी और स्त्रीका नाम घृतवरीदेवी था। ये दोनों गृहस्थ-धर्मका पालन करते हुए रहते थे। उनके पाँच पुत्र हुए। जिनके नाम इस प्रकार हैं— १ छगनलाल २ भूरामल ३. गंगाप्रसाद ४. गौरीलाल और ५. देवीदत्त। इनके पिताजीका वि० सं० १९५९ में स्वर्गवास हो गया, तब सबसे बडे भाईकी आयु १२ की थी और सबसे छोटे भाईका जन्म तो पिताजीकी मृत्युके पीछे हुआ था। पिताजीके असमयमें स्वर्गवास हो जानेसे घरके कारोबारकी व्यवस्था बिगड़ गई और लेन-देनका धन्धा बैठ गया। तब बडे भाई छगनलालजीको आजीविकाकी खोजमें घरसे बाहिर निकलना पडा और वे घूमते हुए गया पहुँचे और एक जैन दुकानदारकी दुकान पर नौकरी करने लगे। पिताजीकी मृत्युके समय दूसरे भाई और प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ता भूरामलकी आयु केवल १० वर्षकी थी और अपने गाँवके स्कूलकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थी। आगेकी पढाईका साधन न होनेसे एक वर्ष बाद अपने बड़े भाईके साथ आप भी गया चले गये और किसी जैनी सेठकी दुकान पर काम सीखने लगे।

लगभग एक वर्ष दुकान पर काम सीखते हुआ; कि उस समय स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसके छात्र किसी समारोहमें भाग लेनेके लिए गया आये। उनको देखकर बालक भूरामलके भाव भी पढ़नेको बनारस

जानेके हुए और उन्होंने यह बात अपने बडे भाईसे कही। वे घरकी परिस्थितिवश अपने छोटे भाई भूरामलको बनारस भेजनेके लिए तैयार नहीं हो रहे थे, तब आपने पढ़नेके लिए अपनी दृढ़ता और तीव्र भावना प्रकट की और लगभग १५ वर्षकी उम्रमें आप बनारस पढ़नेके लिए चले गये।

जब आप स्याद्वाद महाविद्यालयमें पढते थे, तब वहाँ पर पं० वंशीधरजी, पं० गोविन्दरायजी, पं० तुलसीरामजी आदि भी पढ़ रहे थे। आप और सब कार्योंसे परे रहकर एकाग्र हो विद्याध्ययनमें संलग्न हो गये। जहाँ आपके सब साथी कलकत्ता आदिकी परीक्षाएँ देनेको महत्त्व देते थे, वहाँ आपका विचार था कि परीक्षा देनेसे वास्तविक योग्यता प्राप्त नहीं होती, वह तो एक बहाना है। वास्तविक योग्यता तो ग्रंथको आद्योपान्त अध्ययन करके उसे हृदयंगम करनेसे प्राप्त होती है, अतएव आपने किसी भी परीक्षाको देना उचित नही समझा और रात-दिन ग्रन्थोंका अध्ययन करनेमें ही लगे रहते थे। एक ग्रन्थ का अध्ययन समाप्त होते ही तुरन्त उसके आगेके ग्रन्थका पढना और कण्ठस्थ करना प्रारम्भ कर देते थे, इस प्रकार बहुत ही थोडे समयमें आपने शास्त्रीय परीक्षातकके ग्रन्थोंका अध्ययन पूरा कर दिया।

जब आप बनारसमें पढ़ रहे थे, तब प्रथम तो जैन व्याकरण साहित्य आदिके ग्रन्थ ही प्रकाशित नही हुए थे, दूसरे वे बनारस, कलकत्ता आदिके परीक्षालयोंमें नहीं रखे हुए थे, इसलिए उस समय विद्यालयके छात्र अधिकतर अजैन व्याकरण और साहित्यके ग्रन्थ ही पढकर परीक्षाओंको उत्तीर्ण किया करते थे। आपको यह देखकर बडा दुःख होता था कि जब जैन आचार्योंने व्याकरण, साहित्य आदिके एकसे एक उत्तम ग्रन्थोंका निर्माण किया है तब हमारे जैन छात्र उन्हें ही क्यों नही पढ़ते है? पर परीक्षा पास करनेका प्रलो-भन उन्हें अजैन ग्रन्थोंको पढनेके लिए प्रेरित करता था। तब आपने और आपके सदृश ही विचार रखनेवाले कुछ अन्य लोगोंने जैन न्याय और व्याकरणके ग्रन्थ जो कि उस समयतक प्रकाशित हो गये थे—काशी विश्व विद्यालय और कलकत्ताके परीक्षालयके पाठ्यक्रममें रखवाये। पर उस समयतक जैन काव्य और साहित्यके ग्रन्थ एक तो बहुत कम यों ही थे, जो थे भी, उनमेंसे बहुत ही कम प्रकाशमें आये थे। अत. पढ़ते समय ही आपके हृदयमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि अध्ययन समाप्तिके अनन्तर मैं इस कमी की पूर्ति करूँगा। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि आपने बनारसमें रहते हुए जैन न्याय, व्याकरण, साहित्यके ही ग्रन्थोंका अध्ययन किया। उस समय विद्यालयमें जितने भी विद्वान् अध्यापक थे, वे सभी ब्राह्मण थे, और जैन ग्रन्थोंको पढ़ाने में आना-कानी करते और पढनेवालोंको हतोत्साहित भी करते थे। किन्तु आपके हृदयमें जैन ग्रन्थोंके पढने और उनको प्रकाशमें लाने की प्रबल इच्छा थी। अतएव जैसे भी जिस अध्यापकसे सम्भव हुआ आपने जैन ग्रन्थोंको ही पढा।

इस प्रसंगमें एक बात और भी उल्लेखनीय है कि जब आप बनारस विद्यालयमे पढ़ रहे थे, तब वहाँ पं० उमरावसिहजी जो कि पीछे ब्रह्मचर्य प्रतिमा अगीकार कर लेनेपर ब्र० ज्ञानानन्दजीके नामसे प्रसिद्ध हुए हैं—का जैन ग्रंथोंके पठन-पाठनके लिए बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा। वे स्वयं उस समय धर्मशास्त्रका अध्यापन कराते थे। यही कारण है कि पूर्वके पं० भूरामलजी और आजके मुनि ज्ञानसागरजीने अपनी रच-नाओंमें उनका गुरुरूपसे स्मरण किया है।

आप अध्ययन समाप्त कर अपने ग्राम राणोली वापिस आ गये। अब आपके सामने कार्य क्षेत्रके चुनावका प्रश्न आया। उस समय यद्यपि आपके घरकी परिस्थिति ठीक नहीं थी और उस समय विद्वान् विद्यालयोंसे निकलते ही पाठशालाओं और विद्यालयोंमें वैतनिक सेवा स्वीकार कर रहे थे, किन्तु आपको यह नहीं जँचा और फलस्वरूप आपने गाँवमें रहकर दुकानदारी करते हुए स्थानीय जैन बालकोंको पढानेका कार्य निःस्वार्थभावसे प्रारम्भ किया और एक बहुत लम्बे समय तक आपने उसे जारी रखा।

जब आप बनारससे पढ़कर लौटे तभी आपके बड़े भाई भी गयासे घर आ गये और आप दोनों भाई दुकान खोलकर अपनी आजीविका चलाने लगे और अपने छोटे भाइयोंकी शिक्षा-दीक्षाकी देख-रेखमें लग गये। इस समय आपकी युवावस्था, विद्वत्ता और गृह-संचालन-आजीविकोपार्जनकी योग्यता देखकर आपके विवाहके लिए अनेक सम्बन्ध आये, और आपके भाइयों और रिश्तेदारोंने शादी कर लेनेके लिए बहुत आग्रह किया, पर आप तो अध्ययन कालसे ही अपने मनमें यह संकल्प कर चुके थे कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जैन साहित्यके निर्माण और उसके प्रचारमें अपना समय व्यतीत करूँगा। इसलिए विवाह करनेसे आपने एकदम इन्कार कर दिया और दुकानके कार्यको भी गौण करके उसे बड़े और छोटे भाइयोंपर ही छोड़कर पढ़ानेके अतिरिक्त शेष सर्व समयको साहित्यकी साधनामें ही लगाने लगे। फलस्वरूप आपने अनेक संस्कृत और हिन्दीके ग्रन्थोंकी रचना की, तालिका इस प्रकार है—

संस्कृत रचनाएँ

१. दयोदय—अहिंसाव्रत धारी धीवरकी कथाका गद्य-पद्यमें चित्रण किया गया है।

२. भद्रोदय—इसमें असत्य भाषण करनेवाले सत्यघोषकी कथा पद्योंमें दी है।

३. सुदर्शनोदय—इसमें शीलव्रती सुदर्शन सेठका चरित्र-चित्रण अनेक संस्कृत छन्दोंमें है।

४. जयोदय—इसमें जयकुमार सुलोचनाकी कथा महाकाव्यके रूपमें वर्णित है। साथमें स्वोपज्ञ, संस्कृत टीका, तथा हिन्दी अन्वयार्थ भी दिया गया है।

५. वीरोदय—महाकाव्यके रूपमें श्री वीर भगवान्‌का चरित्र-चित्रण किया गया है।

६ प्रवचनसार—आ० कुन्दकुन्दके प्रवचनसारकी गाथाओंका हिन्दी पद्यानुवाद है।

७ समयसार—आ० कुन्दकुन्दके समयसारपर आ० जयसेनकी संस्कृत टीकाका सर्वप्रथम सरल हिन्दी अनुवाद किया गया है।

८ मुनि-मनोरंजन शतक—इसमे सौ संस्कृत श्लोकोंके द्वारा मुनियोंका कर्तव्य वर्णित है।

हिन्दी रचनाएँ

१. ऋषभावतार—अनेक हिन्दी छन्दोंमें भ० ऋषभदेवका चरित्र-चित्रण है।

२. गुणसुन्दर वृत्तान्त—इसमें भ० महावीरके समयमें दीक्षित एक श्रेष्ठीपुत्रका चरित्र है।

३. भाग्योदय—इसमें धन्यकुमारका चरित्र चित्रण है।

४. जैन विवाह विधि—सरल रीतिसे वर्णित है।

५. सम्यक्त्वसार शतक—हिन्दीके सौ छन्दोंमें सम्यक्त्वका वर्णन है।

६. तत्त्वार्थसूत्र टीका—अनेक उपयोगी चर्चाओंके साथ हिन्दी-अनुवाद।

७. कर्तव्य पथ-प्रदर्शन—इसमें श्रावकोंके कर्तव्योंपर प्रकाश डाला गया है।

८. विवेकोदय—यह आ० कुन्दकुन्दके समयसार गाथाओंका हिन्दी पद्यानुवाद है।

९. सचित्त विवेचन—इसमें आगम प्रमाणोंसे सचित्त और अचित्तका विवेचन है।

१०. देवागम स्तोत्र—यह आ० समन्तभद्रके स्तोत्रका हिन्दी पद्यानुवाद है।

११ नियमसार—यह आ० कुन्दकुन्दके नियमसार गाथाओंका पद्यानुवाद है।

१२. अष्टपाहुड—यह आ० कुन्दकुन्दके अष्टपाहुड गाथाओंका पद्यानुवाद है।

१३. मानव-जीवन—मनुष्य जीवनकी महत्ता बताकर कर्तव्य-पथपर चलनेकी प्रेरणा।

१४. स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म—अनेक प्रमाणोंसे सत्यार्थ जैन धर्मका निरूपण कुन्द-कुन्दाचार्यके ग्रन्थोंके आधारपर किया गया है।

आर्यिका अभयमतीजी

जब परम पूज्य आचार्य श्री १०८ स्व० वीरसागर जी महाराजकी शिष्या आर्यिका श्री १०५ ज्ञानमती माता जीने ससंघ हैदराबाद में चातुर्मास किया तब ही परम पूज्य आचार्य श्री १०८ स्व० शिव-सागर जी महाराजसे आज्ञा प्राप्त कर पूजनीया ज्ञानमती माता जीने ब्रह्मचारिणी मनोरमा बाईको क्षुल्लिका दीक्षा दी और इनका नाम अभयमती रखा। इस उपलक्ष्यमें मनोरमा बाईने १४–८–१९६४ को अपनी ओर से उमास्वामी श्रावकाचार ग्रन्थ भी प्रकाशित करवाया था।

आपका जन्म आजसे ३१ वर्ष पूर्व टिकैतनगर (बाराबंकी) उत्तरप्रदेशमें हुआ। आपके पिता श्री छोटेलाल जी गोयल हैं और माता मोहनी देवी हैं तथा पूजनीया ज्ञानमती माता जी आपकी बड़ी बहन हैं। बचपनमें आपको मनोवती कहते थे। मनोरमा बहनकी बाल्यकालसे ही घरेलू कार्योंकी ओर उतना रुझान न था जितना कि साधु-सत्संग धर्मोपदेश-लाभकी ओर था। घरपर आपने तत्त्वार्थसूत्र तक धार्मिक शिक्षा ली। आप बचपनसे ही उदार व सरल स्वभाव की थीं।

संवत् २०१८ में फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षमें, जब लाडनूंमें मानस्तम्भकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी और आचार्य श्री १०८ शिवसागर जी महाराज ससंघ विराजमान थे तब आप माँके साथ दर्शनके लिए आईं और माँको राजी कर आचार्यश्रीसे एक वर्षके लिए ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। संघमें ही रहने लगी। संघके साथ शिखर जीकी यात्रा की। आरा नगरमें पहुँचनेपर आचार्यश्री १०८ विमलसागर जी महाराजसे आपने पाँचवीं प्रतिमाके व्रत ले लिये। शिखर जीमें भगवान् पार्श्वनाथ जीकी टोंकपर आपने माता जीसे सातवी प्रतिमाके व्रत ले लिये थे। कलकत्तासे संघ पुनः शिखर जी पहुँचा। फिर खण्डगिरि उदयगिरि होता हुआ हैदराबाद पहुँचा। आपने ज्ञानमती माता जीसे आर्यिका दीक्षा देनेके लिये आग्रह किया तो उन्होंने आचार्यश्रीकी अनुमति आवश्यक बतायी। चूंकि ज्ञानमती जी अस्वस्थ रहती थी अतएव उनको देखनेके लिए भाई कैलाशचन्द्र जी आये तो ब्र० मनोरमाबाईने दीक्षा नहीं मिलने तक छहों रसका त्याग कर दिया। कैलाशचन्द्र जीने पपौरा जी जाकर आचार्य श्री शिवसागर जीको वास्तविक परिस्थिति समझायी तो उन्होंने आज्ञा दे दी। कैलाशचन्द्रजीकी इच्छा थी कि बहनकी दीक्षा-में माता-पिता भी सम्मिलित हो सकें, अतः कुछ दिन बाद यह कार्य हो पर शुभस्य शीघ्रं युक्ति दृष्टिमें रखते हुए यह कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हुआ।

आपने सर्वार्थसिद्धि, गोमट्टसार तक धार्मिक अध्ययन जहाँ किया वहाँ न्याय-व्याकरणके ग्रन्थ भी पढ़े। संघके नियमानुसार आप अपना अधिकाश समय धर्म ध्यान व शास्त्रस्वाध्यायमें लगाती हैं।

आर्यिका अरहमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका अरहमतीको लोग गृहस्थ अवस्थामें कुन्दनबाई कहकर पुकारते थे। आपके पिता श्री गुलाबचन्द्रजी थे, माता हरिणीबाई थीं। बीरगांवकी यह एक ही वीरबाला निकली जिसने लोक जीवन के साथ परलोकके जीवनको भी सम्हाला। आप जातिसे खण्डेलवाल और पहाडिया गोत्रज हैं। यद्यपि आपकी लौकिक धार्मिक शिक्षा नहींके बराबर ही हुई तथापि सत्संग-धर्मश्रवणसे आपने काफी लाभ उठाया। आपका विवाह लालचन्द्रजीसे हुआ था।

बचपनके सामाजिक संस्कार सबल हुए। वैधव्य जीवनमें विरक्तिकी भावना बढ़ी। भला जिसके ज्येष्ठ (मुनिश्री चन्द्रसागरजी) काका (आचार्यश्री वीरसागरजी) पुत्र (मुनिश्री श्रेयान्ससागरजी) हों और जो १५ वर्षों तक १०८ मुनिश्री सुपार्श्वसागरजीके धार्मिक वातावरणमें बढ़ी हो, वह भला संसारमें कैसे रहती? निदान १०८ मुनिश्री सुपार्श्वसागरजीसे संवत् २०२०में क्षुल्लिका दीक्षा ले ली और अगले वर्ष ही संवत् २०२१ में आचार्यश्री १०८ शिवसागरजी महाराजसे शान्तिवीरनगर महावीरजीमें आर्यिका दीक्षा भी ले ली।

यद्यपि आप ६५ वर्षोंकी हो गईं पर आपकी धार्मिकचर्यामें सावधानी बढ़ती जा रही है। आपने महावीरजी, जयपुर, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। जिह्वा इन्द्रियको वशमें करनेके लिए नमक, तेल, दहीका त्याग कर रखा। आपने चरित्रशुद्धि कर्मदहन तीसचौबीस जैसे व्रत अनेक बार किये।

●

आर्यिका अनन्तमतीजी

●

एक तपस्विनी नारीके कंकाल मात्र शरीरमें कितनी सशक्त, कितनी तेजस्वी आत्मा निवास करती है यह जानना हो तो आर्यिका अनन्तमतीजीके दर्शन कर लीजिये। रोगकी पीड़ा, अन्तरायका क्षोभ और कठोर क्लांतिकी साधना उनके मुखपर कदापि नहीं पावेंगे। आप एक ऐसी आर्यिका हैं जो वर्षमें ३-४ मास ही आहार लेती हैं। आप प्रायः मौन रहकर धर्म ध्यानमें लीन रहती हैं।

तपस्विनी आर्यिका अनन्तमतीजीका जन्म १३ मई १९३५ को बढ़ीगाँवमें हुआ था। आपके पिता लाला मिट्ठनलालजी थे और माता पार्वतीदेवी थीं। दोनों ही धर्म परायण थे। स्थानकवासी मान्यताओंके विश्वासी थे। आपके तीन पुत्र व चार पुत्रियाँ हुईं जिनमेंसे चौथीका नाम इलायची देवी था और जिसने इस युगमें इलायची कुमारकी कहानी दुहरा दी।

बचपनमें ही पिताकी मृत्यु हो जानेसे परिवारके लोग गढ़ी छोडकर कांधला आ गये थे। इलायची देवीने ८ वर्षकी आयुसे ही त्यागकी दिशामें बढ़ना शुरू किया। कांधलामें बालिका स्थानक और दिग० जैन मन्दिर दोनों जगहोंपर जाने लगी और दोष मूलक वस्तु जानकर त्याग करने लगी। १३ वर्षकी अवस्थामें तो रात्रिमें पानी तक पीनेका आजीवन त्याग कर दिया।

जब आपने भ० महावीरका जीवन चरित्र पढ़ा तब आपके मनमें यह सुदृढ़ विश्वास हुआ कि अपरिग्रह मूलक दिगम्बर परम्परासे ही आत्मकल्याण होगा अन्यथा नही। फलतः आप जहाँ कट्टर दिगम्बर परम्पराकी पोषक बनी वहाँ महावीर-सी विरक्तिके हेतु तरसने लगी। आप भोगसे योगकी ओर चलनेका उपक्रम करने लगीं। जिन आभूषणों के लिए अन्य स्त्रिया प्राण देती हैं उन्हें आपने हमेशाके लिए त्याग दिया। जिस वासनाकी पूर्तिके लिए अन्य महिलाएँ •अनेक कुकृत्य करनेमें भी संकोचन नहीं करती हैं। आपने उस वासनाका बलिदान ब्रह्मचर्य व्रत लेकर कर दिया। यद्यपि आप अभी न क्षुल्लिका थीं न आर्यिका तथापि आपकी साधना उनसे किसी प्रकार कम नहीं थी।

आप घण्टों सामायिक करतीं, लोग देवी कहकर पूजते, दर्शनोंके लिए भक्त उमड़ते, आशीर्वाद पाकर फूले नही समाते। आप विचारती कि बिना दीक्षा लिये जब यह हाल है तो दीक्षा लेने पर क्या होगा। १८वें वर्षमें आपने दीक्षा लेनेका विचार परिवारके सामने रखा तब परिवारने घरमें ही रहकर साधिका बननेके लिए कहा—पर अगले वर्ष जब आचार्यरत्न देशभूषणजी महाराज विहार करते हुए आ गये तब अपूर्व अवसर हाथ आया जानकर आपने दीक्षा देनेके लिए प्रार्थना की। परिवारकी अनुमति लेकर आचार्य श्रीने दीक्षा देकर आपको अनन्तमती नाम दिया। आपका दीक्षा महोत्सव दर्शनीय था। आपकी शोभायात्रामें लगभग पचास हजार नरनारी एकत्रित हुए। केशलुञ्चनकी क्रिया देखते हुए तो लोग अतीव विरक्तिका अनुभव करते थे। शरीरसे आत्माकी दिशामें बढ़ते देखकर सभी सन्तुष्ट दिखते थे।

आहार सम्बन्धी कठोर नियमोंके कारण अनेकों बार अन्तराय आया और दस पन्द्रह दिन तक आया पर आपके मुखकी सौम्यता शान्ति सुषमा नही गयी। आचार्यश्रीके साथ सम्मेदशिखर पर पहुँचनेपर आपने आर्यिका दीक्षा देनेकी प्रार्थना की तो उपयुक्त समझकर आचार्य श्रीने दीक्षा भी दे दी। आठ वर्ष तक गुरु चरणोंमें रहनेके बाद—गिरनार क्षेत्रके दर्शनकी लालसा लिये आप क्षुल्लिका विजयश्रीके साथ चली, एकसे अधिक उपसर्ग आये, रोगोंने घेरा, शरीरने साथ छोड़ना चाहा पर आपने चिन्ता नही की। गिरनार पर पहुँचकर आपने चातुर्मासका संकल्प पूरा किया।

●

आर्यिका आदिमतीजी

●

आपके जन्म-स्थान का नाम कामा (भरतपुर) है। आपके पिता श्री सुन्दरलालजी हैं और माता श्री मोतीबाई है। गृहस्थ अवस्था में आपका नाम मैनाबाई था। आपके पति श्री कपूरचन्द्रजी अग्रवाल थे। आपने क्रमशः अपने धार्मिक जीवन का विकास किया। पहले दूसरी फिर सातवी प्रतिमा ले ली। अनंतर कम्पिला में क्षुल्लिका बनी और मुक्तागिरि आर्यिका दीक्षा ली।

मोह माया ममता के जाल को तोडकर आप धर्म-ध्यान शास्त्र-स्वाध्याय को ही सर्वस्व समझने के लिए सभी को प्रेरणा दे रही हैं। आपने कोल्हापुर शोलापुर ईडर सुजानगढ़ आदि स्थानो पर चातुर्मास करके धर्म प्रभावना की। आप रस परित्याग व्रत पर अपार आस्था रखती है।

●

आर्यिका आदिमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका आदिमतीजीके बचपनका नाम अंगूरीबाई था। आपके पिता श्री जीवनलालजी है माता भगवानदेवी हैं। गोपालपुरा (आगरा) को आपकी जन्मभूमि होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने लौकिक शिक्षा कक्षा ८वीं तक प्राप्त की और धार्मिक शिक्षा विशारद तक प्राप्त की।

पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह हुआ तो सही पर भाग्यको यह स्वीकार नही था, इसलिए डेढ़ वर्ष बाद ही आपके पतिको डाकू हमेशाके लिए ले भागे। अब आपको संसार दुखमय सूना-सूना लगने लगा। आप कण्ठस्थ किये हिन्दी, संस्कृत भाषाके धर्म-पाठोंसे अपूर्व शान्ति पाती थी।

कालान्तरमें आपने घरके भाई-बहनोंका मोह छोड़ा और घर छोडकर साधु-संघमें रही। वातावरणके साथ ही आपका जीवन-क्रम बदला। सवत् २०१८ में सीकर (राजस्थान) में आचार्यश्री शिवसागरजी महाराजसे आर्यिका दीक्षा ले ली।

आपने लाडनूं, कलकत्ता, हैदराबाद, श्रवणबेलगोला, शोलापुर, सनावद, प्रतापगढ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आपकी रस परित्याग व्रतपर बड़ी आस्था है। आप जैसी विदुषी साध्वीसे ही धार्मिक समाजका अहर्निश कल्याण सम्भव है।

●

आर्यिका कल्याणमतीजी

●

आर्यिका श्री १०५ कल्याणमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम विलासमती था। आपका जन्म आजसे ५५ वर्ष पूर्व मुबारिकपुर (मुज्जफरनगर) में हुआ था। आपके पिताश्री समयसिंहजी थे व माता श्रीमती समुद्रीबाई थी। आप अग्रवाल जातिके भूषण व मित्तल गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपका विवाह भी हुआ।

गणेशप्रसादजी वर्णीकी सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी व आपने शिखरमें सातवीं प्रतिमा धारण कर ली। इसके बादमें आपने आचार्यश्री १०८ शिवसागरजीसे विक्रम संवत् २०२२ में शान्तिवीरनगरमें क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। कोटामें आचार्यश्री १०८ शिवसागरजीसे आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने श्री महावीरजी, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आप चारित्रशुद्धि व्रत भी करती हैं। आपने तीनों रसोंका त्याग कर दिया है।

●

आर्यिका कनकमाताजी

●

आर्यिका श्री १०५ कनकमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम चिरोंजाबाई था। आपका जन्म आजसे ५५ वर्ष पूर्व बडागाँव (मध्यप्रदेश)में हुआ था। आपके पिताश्री हजारीलालजी थे व माता श्रीमती परमाबाई थी। आप गोला पूर्व जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। १२ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह भी हुआ। परन्तु अशुभ कर्मोंके उदयसे १६ वर्षकी अवस्थामें आपको वैधव्य प्राप्त हुआ। परिवारमें आपके पाँच भाई व दो बहिन हैं।

आचार्यश्री १०८ विमलसागरजीकी सत्संगतिसे आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जागृत हुई। आपने संवत् २०२२ में आचार्यश्री १०८ शिवसागरजीसे डालटेनगंजमें क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। आपने शान्तिनगरमें आचार्यश्री १०८ शिवसागरजी महाराजसे आर्यिका दीक्षा ले ली। आपको अनेकों पाठ कंठस्थ है। कर्मकाण्ड और जीवकाण्डका आपको विशेष ज्ञान है। आपने श्री महावीरजी कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने नमक, तेल, दहीका आदिका त्याग कर रखा है।

●

आर्यिका इन्दुमतीजी

श्री आर्यिका १०५ इन्दुमतीजीका जन्म सन् १९०५ में हुआ था। मारवाड़में डेह नामक ग्रामको आपकी जन्मभूमि बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके पिता श्री चन्दनमलजी पाटनी थे और माता जड़ावबाई थीं। आपने दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जातिको विभूषित किया था।

चन्दनमलजी जहाँ कुशल व्यापारी थे, वहाँ धर्मात्मा भी थे और उनकी गृहिणी जड़ावबाई तो उनसे दो कदम आगे थी। आपके चार पुत्र हुए—ऋद्धिकरण, गिरधारीलाल, केशरीमल, पूनमचन्द्र। आपके तीन पुत्रियाँ हुईं—गोपीबाई, केशरबाई, मोहनीबाई। मोहनीबाईका विवाह चम्पालालजी सेठीके साथ हुआ तो सही पर छह माहके भीतर ही उनका स्वर्गवास हो गया। इससे दोनों परिवार दुखी हुए।

पिताकी प्रेरणा पाकर मोहनी बाई जिनेन्द्र पूजन व शास्त्र स्वाध्यायमें काफी समय बिताने लगी। आपने परिवारके साथ तीर्थयात्रा की। जब श्री १०८ मुनि शान्तिसागरजीका संघ सम्मेदशिखरजीकी वन्दनाके लिए आया तो उनके दर्शनोंसे आपके विचार और भी अधिक विरागकी ओर बढे। चूँकि आप मुनि श्रीके प्रवचन अपने हजार आवश्यक काम छोड़कर सुनती थी, इसलिए विषय वासनाओंसे विरक्ति बढ़ती ही रही।

उन दिनों, आचार-विचारमें मारवाड बहुत पिछड़ा था। पर जब १०८ मुनि श्रीचन्द्रसागरजी बिहार करते हुए सुजानगढ आये तब यहाँके श्रावकोंने भी अपने लिये सुधार लिया। जब मोहनीबाईको उक्त मुनि श्रीके आने और चातुर्मासकी बात ज्ञात हुई तो मोहनीबाई भी अपनी माताके साथ दर्शन करनेके लिए आई और माँके साथ ही स्वयं भी दूसरी प्रतिमा स्वीकार कर ली।

चातुर्मासके बाद जब मुनि श्रीने विहार किया तब मोहनीबाई भी उनके साथ अनेक नगरोंमे गयी। वे आहार दान तथा धर्म श्रवणके कार्य करती थी। सन् १९३६ मे आपने सातवी प्रतिमा स्वीकार कर ली। आपके भाई (ऋद्धिकरण) भाभीने दूसरी प्रतिमा ली और माँने पाँचवीं प्रतिमाके व्रत स्वीकर किये। यहीं आपका परिचय उन अध्यापिका मथुराबाईसे हुआ।

जब चन्द्रसागरजीने कसाव खेडामे चातुर्मास किया तब मोहनीबाई और मथुराबाईने उनसे आर्यिकाकी दीक्षा बाबत निवेदन किया। मुनिश्रीने आगापीछा सोचकर उन्हें सन् १९४२ मे क्षुल्लिका दीक्षा दी। अब ब्रह्मचारिणी मथुराबाईका नाम विमलमति रखा गया और ब्रह्मचारिणी मोहनीबाईको इन्दुमती कहकर पुकारा गया। आप दोनोंने पीछी कमण्डलू श्वेत साड़ी व चादरके सिवाय सभी परिग्रहका त्याग कर दिया और ज्ञान तथा ध्यानकी साधना करनेमें लगीं।

जब सुजानगढ़ निवासी चाँदमल धन्नालाल पाटनीने मुनि श्री चन्द्रसागरजीसे बडवानीजीकी ओर बिहार करने और स्वनिर्मित मानस्तम्भकी प्रतिष्ठामें सम्मिलित होनेके लिए प्रार्थना की तब इन्दुमती भी संघके साथ चली।

जब नागौरमें मुनिराज वीरसागरजीका चातुर्मास हुआ तब आपने उनसे आर्यिका दीक्षा ली और अपनी साध पूरी की। उनके संघमें रहकर आपने अनेक तीर्थोंकी यात्रा की।

आप परम शान्त जितेन्द्रिय हैं, जिनागम पर आपकी अपार आस्था है।

आर्यिका श्री सुपार्श्वमती जी

वि० सं० १९८५ की फाल्गुन सुदी ९ को राजस्थान के मैनसेर ग्राम में श्री हरखचंदजी चूडीवाड़ की धर्मपत्नी अणची बाई की कोख से आपका जन्म हुआ था। बचपन में पिता श्री ने इनका नाम भँवरीबाई रखा।

१२ वर्ष की अल्पायु में आपका विवाह नागौर निवासी श्री छोगमलजी बड़जात्या के सुपुत्र श्री इन्द्रचन्दजी के साथ सम्पन्न हुआ। परन्तु कर्मों की गति विचित्र है। विवाह के ३ मास बाद ही पति का स्वर्गवास हो गया और आपको घोर वैधव्य का दुःख झेलना पड़ा। जीवन के प्रारम्भ से ही आप धर्म-ध्यान की ओर आकृष्ट थी। फलस्वरूप हृदय वैराग्य की ओर झुक गया। वि० सं० २००६ में सौभाग्यवश श्री इन्दुमती माताजीका संघ नागौर डेह होते हुए मैनसेर आया। इसी अवसर पर आपने आजीवन लवणका त्यागकर सप्तम प्रतिमा ग्रहण की। माघ शुक्ला ४ को इन्होंने अपने बन्धु-बाधवोंका मोह छोडकर पूर्णतया आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ किया। इनके जीवनको उज्ज्वल बनानेमें आर्यिका १०५ श्री इन्दुमती माताजीका प्रमुख हाथ रहा है। आपसे अपनी पुत्रीसे भी अधिक स्नेह एवं वात्सल्य मिला।

आपने पूज्या इन्दुमतीजीके साथ अनेकानेक पवित्र स्थलोका भ्रमणकर वि० सं० २०१३ मिती भाद्र सुदी ६ को खानिया (जयपुर) में आचार्य श्री १००८ वीरसागर जी महाराजसे आर्यिका इन्दुमती जी आदि विशाल सघ एवं जन समुदायके मध्य आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। इनका नया नाम सुपार्श्वमती जी रखा गया।

सतत लगन और अथाह चेष्टाके परिणामस्वरूप थोड़े समयमें ही आपने जैन सिद्धान्त, न्याय, व्याकरण, ज्योतिष एवं तन्त्र-मन्त्र आदिका अपार ज्ञान प्राप्त किया। आपकी मधुरवाणी, हँसमुख चेहरा एवं विद्वत्तासे बड़े-बडे विद्वानोके दाँत खट्टे हो जाते है। शास्त्रोक्त मार्गसे शंकाओंका समाधान करतीं—प्रवचन सुननेवाले घंटों एकाग्रतासे सुनते है—मानो "जिनवाणी कंठभूषणम्" कंठमें सरस्वती विद्यमान है।

आर्यिका श्री विद्यामती जी

●

आपका जन्म डेह् (नागौर) से उत्तर की ओर लालगढ (बीकानेर) में वि० स० १९९२ मिती फाल्गुन वदी १३ को हुआ । आपके पिता श्री नेमचन्द जी बाकलीवालने आपके बचपनका नाम शान्तिबाई रखा । वि० सं० २००५ मिती बैसाख कृष्ण ४ को आपका पाणिग्रहण श्री मूलचन्दजीके साथ सम्पन्न हुआ ।

वि० सं० २००८ वैशाख सुदी ६ को कलकत्ता महानगरीसे श्री मूलचन्द जी एकाएक कहीं चले गये । कई वर्षों तक उनके न आनेके कारण इस संसारसे ऊब जाना स्वाभाविक था । कुछ समय पश्चात् आपका परिचय आर्यिका १०५ श्री इंदुमती जी एवं श्री सुपार्श्वमतीके साथ हुआ । इनके साथ आपने ज्ञानकी गंगामें स्नानकर आचार्य श्री १०८ शिवसागर जी महाराजसे आर्यिका इदुमती जी एव श्री सुपार्श्वमतीजीके समक्ष, अपार जन-समूहके सामने वि० स० २०१७ मिती कार्तिक सुदी १३ को सुजानगढमें दीक्षा ग्रहण की । दीक्षोपरान्त आपका नवीन नामकरण विद्यामती जी हुआ ।

●

आर्यिका श्री सुप्रभामती जी

●

आपका जन्म कुरडूवाडी (महाराष्ट्र) में हुआ । आपके पिता श्री का नाम श्री नेमीचदजी है ।

आपका शुभविवाह १२ वर्षकी छोटी-सी उम्रमें श्री मोतीलालजीके साथ हुआ । अभी मेंहदीकी लाली हल्की भी न हो पायी थी कि उतर गई । शीघ्र ही इन्होंने अपना चित्त धर्म-ध्यानकी ओर लगाया एव न्याय प्रथमा इन्टरकी शिक्षा ग्रहण की । तत्पश्चात् सोलापुरमें राजुमती श्राविकाश्रममे १५ साल तक अध्यापनका कार्य किया । वि० स० २०२४ मिती कार्तिक सुदी १२ को कुम्भोज बाहुबलीमें आचार्य १०८ समन्तभद्र जी महाराजसे आर्यिका दीक्षा ग्रहण की एव इनका नाम सुप्रभामतीजी रखा गया ।

आर्यिका श्री इन्दुमती जी व श्री सुपार्श्वमतीजीके संघमें प्रवेशकर आप स्वाध्यायमें मग्न रहती है एवं चातुर्मासमें छात्र-छात्राओंको पढ़ाती है ।

●

आर्यिका श्री चन्द्रमतीजी

●

आपका जन्म आजसे ६५ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् १९५६ में सतारा जिलान्तर्गत गिरवी नामक ग्राममें हुआ था। माता पिताने आपका नाम मानिकबाई रखा। आपके पिता श्री फूलचन्द्रजी धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति थे, तथा सराफीकी दुकान करते थे। जन्मके समय आर्थिक स्थिति अच्छी सम्पन्न थी। आपकी माताका नाम कस्तूरबाईजी था। माँका वात्सल्य बालापनसे ही छिन गया था। जिस समय आपकी माताजीका स्वर्गवास हुआ उस समय आप १२ वर्षकी थी। आपके भाई रामचन्द्रजी अपनी सात बहिनोंके बीच अकेले ही थे। दुर्दैवका चक्र चला और आपकी ५ बहिनें इस नश्वर संसारसे हमेशाके लिए विदा ले गई। आप और आपकी एक बहिन श्री बालूबाई ही सात बहिनोंके बीच जीवित रह सकी।

बालापनसे माँका प्यार छिन जानेके कारण आपका लाड़प्यारमयी जीवन पिताकी गोदमें ही व्यतीत हुआ। आपकी स्कूली शिक्षा भी कक्षा ४ तक ही हुई तथा धार्मिक शिक्षाका अभ्यास स्वयंके अध्ययन व मननसे घरपर ही प्राप्त किया।

जब आप गृह कार्यमें सुयोग्य होती हुई लगभग २० वर्षकी हुई तब आपका पाणिग्रहण सोलापुर अन्तर्गत मोहर ग्राममें श्रीमान् सेठ मोतीलालजीके लघु पुत्र श्री हीरालालजीके साथ सम्पन्न हो गया। आपके श्वसुर अच्छे सम्पम्न परिवारके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे तथा थोक व्यापार किया करते थे। आपके पति श्री हीरालालजी अपने चार भाइयोंके बीच सबसे छोटे थे।

आपकी शादी हुए केवल आठ वर्ष ही व्यतीत हुए कि आपके ऊपर दुख का पहाड़ टूट पड़ा और आपको वैधव्य धारण करना पडा। गार्हस्थ जीवनकी अल्प अवधिमें आपको एक मात्र पुत्री चि० 'विद्युल्लता' का ही सौभाग्य मिल सका। कालकी इस दुख-दायिनी विचित्रताको देखकर आपके अन्तरमें संसारकी नश्वरताके प्रति विराग हुआ और आपने कालिञ्जा आश्रममें अपना आश्रय लिया। इस आश्रममें आकर आपने धार्मिक शिक्षा का गहन अध्ययन और मनन किया, पश्चात् एक सुयोग्य विदुषी महिला बनकर इसी आश्रममें कुछ वर्षोंतक अध्यापनका भी कार्य किया। अपने जीवनके १६ वर्ष कालिजा आश्रममें ही अध्ययन और अध्यापन में व्यतीत किये।

परम तपस्वी आचार्य श्रीसमन्तभद्र स्वामीके सद्उपदेशोंने भी आपको वैरागी बना दिया। जब चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्रीशान्तिसागरजी का ससंघ चातुर्मास कालिजा में हुआ तब आपने आचार्य वीर-सागरजी महाराजसे सातवी प्रतिमा तकके व्रत अंगीकार किए थे, उस समय आपकी वय ३५ वर्ष की थी। इस प्रकार आपने सप्तम प्रतिमा तकके व्रतोंको १५-१६ वर्ष तक पालन कर अपनी आत्माको निर्मल और निर्मोही बना लिया।

"प्रायः यह पाया जाता है कि पिताके गुण पुत्रमें माताके गुण सुतामें आते हैं।" यही बात आपकी एकमात्र लाड़ली प्रिय पुत्री विद्युल्लतामें पूर्णतया चरितार्थ होना पाई गई। विरागिनी माँकी प्रज्ञा, आगमके प्रति गहन, श्रद्धा और परम वैराग्यका पूरा-पूरा प्रभाव लाड़ली पुत्रीके ऊपर पडा है।

शील शिरोमणि बहिन विद्युल्लता आजकल प्रधानाध्यापिका व अधिष्ठात्रीके रूपमें सप्तम प्रतिमा तकके व्रतोंका पालन करती हुई सोलापुरके आश्रममें स्थित हैं। इनका हृदय हमेशा वैराग्यकी ओर झुका

रहता है, और यही कारण है कि इनकी भी अभिलाषा महाव्रतोंके ग्रहण करनेकी है। विद्युल्लता जैसी सुयोग्य शीलरूपा सुपुत्रीको पाकर आपका मातृत्व भी धन्य हो गया।

कार्तिक शुक्ला पञ्चमी विक्रम संवत् २०१३में परमपूज्य आचार्य श्रीवीरसागरजी महाराजसे जयपुर खानियाँमें चातुर्मासके शुभावसरपर आपने क्षुल्लिकाकी दीक्षा ग्रहण कर ली। आचार्यश्रीने आपका दीक्षित नाम श्री चन्द्रमती रखा।

क्षुल्लिकाकी दीक्षाके बाद आपके अन्तरमें वैराग्यकी लौ दिन प्रतिदिन उग्र रूप धारण करती गई और चैत्र वदी पडमा वि० संवत् २०१४में गिरनारजी सिद्ध क्षेत्रपर परमपूज्य तपोनिधि आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजसे आपने आर्यिकाकी दीक्षा ग्रहण कर ली।

अपनी उग्र तपस्याके द्वारा आत्माको कर्ममलसे रहित करती हुई आप मुक्तिमार्गके पथपर अविचल रूपसे बढ़ रही है।

●

आर्यिका जिनमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका जिनमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम प्रभावती था। आपका जन्म आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व म्हसबड़ नामक स्थानपर हुआ था। आपके पिता श्री फूलचन्द्रजी जैन है जो किनारेके व्यापारी हैं। आपकी माता श्री कस्तूरीबाई हैं। आप हूमड जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा साधारण हुई परन्तु धार्मिक शिक्षा गोम्मटसार, कर्मकाण्ड, जीवकाण्ड एवं अष्टसहस्री तक हुई। आप बाल ब्रह्मचारिणी रहीं। आपने विवाह नहीं किया। परिवार में आपके एक भाई व दो बहिनें हैं।

श्री १०५ आर्यिका श्री ज्ञानमतीजीकी सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य परिणति जागृत हुई व आपने श्री १०८ आचार्य वीरसागरजी महाराजसे विक्रम संवत् २०१२ में माधोराजपुरामें क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। इसके बाद आपने विक्रम संवत् २०१९ में सीकर (राजस्थान) में आचार्य श्री १०८ शिवसागरजीसे आर्यिका दीक्षा ग्रहण की। आपको हिन्दी, संस्कृतके अनेकों पाठ कंठस्थ है। आपने जयपुर, ब्यावर, अजमेर, सुजानगढ़, कलकत्ता, प्रतापगढ़, सनावद आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आप चरित्र शुद्धि व्रत भी करती हैं।

●

महासाध्वी आर्यिका श्री धर्ममती माता

•

आचार्य वीरसागर संघमें महासाध्वी आर्यिका श्री धर्ममती माता आप मारवाड़ प्रान्तके अन्तर्गत कुचामन शहरके पास ही लूणवा नामक ग्राम खंडेलवाल जात्युत्पन्न श्री चंपालालजी जैनकी परम कर्तव्य-परायण सुपुत्री हैं। आप का जन्म सन् १८९८ में हुआ। सन् १९११ में आप का विवाह वर्धा निवासी श्री लखमीचन्दजी कासलीवालके साथ हो गया। पर १ वर्ष बाद ही १४ वर्षकी आयुमें आपका सौभाग्य अस्त हो गया। संसारकी इस नश्वरताका अनुभव कर आप धर्मध्यान व्रतानुष्ठान में विशेष रीतिसे लगी रही।

सन् १९३६ में श्री कुंथलगिरी सिद्धक्षेत्रमें १०८ श्री पूज्य जयकीर्तिजी मुनि महाराजसे परम श्रेयस्कारिणी आर्यिकाकी दीक्षा लेकर विशेष रीतिसे आत्मकल्याणके विशुद्ध मार्गमें लग गयी। आपका नाम गुरुद्वारा धर्ममती रखा गया। आपकी सौम्य मुद्रा, शान्त मुखाकृति, गम्भीर प्रकृति, कठोर तपश्चर्या, निरन्तर अध्ययन, नाना प्रकारसे व्रत उपवासादि करना आदि क्रियाओंको देखकर हृदयपर बड़ा प्रभाव पड़ता है।

आपने सन् १९३६ के मांगुर चातुर्माससे लेकर १९४७के कुचामन चातुर्मास पर्यंत इन १२ चातुर्मासों के अन्तर्गत आगम विहित क्रमशः आचाम्ल व्रत, एकावली व्रत, चन्द्रायणव्रत, पुनः एकावलीव्रत, मुक्तावलीव्रत, सिंहनिष्क्रीडितव्रत, सर्वतोभद्रव्रत, दुकावलीव्रत, रत्नावलीव्रत, शातकुंभव्रत व मेरुपंक्तिव्रतों का साधन किया। इन व्रतों में उपवासों की कुल संख्या ५५३ एवं पारणों की संख्या २२७ हैं। इस विधान से यह स्पष्ट है कि जीवन में आपने कितनी कठोर तपश्चर्या की है व करती रहती हैं।

•

पूज्य आर्यिका नेमीमतीजी

•

धन्य है वह माँ और धन्य है उसका अमल धवल स्नेहिल अञ्चल जिसकी पवित्र छाया लक्ष-लक्ष सन्तानें समान रूपसे धर्मस्नात स्नेहिल दुलार एवं पुचकार पाकर उसका आचरण करें। इस भव्यता समाच्छादित प्रातस्मरणीया आर्यिका माता नेमीमतीजीकी ओर जब ध्यान आकृष्ट होता है तो बरबस यही उद्गार निकलते हैं ?

> माँ तेरी वह गोदी धन्य, धन्य कहूँ या कहूँ अनन्य,
> कोटि-कोटि सुत जिसको पाकर बने भव्य तुझ सम सौजन्य।
> हो सब मार-मार व्रतधार, भोग उदास योग चैतन्य,
> सत्य अहिंसा पथ के 'राही' उन सम तुम सम और न अन्य।

सच है, धन्य है ऐसी माँ आर्यिका नेमीमतीजी और धन्य है उनकी वह संतति जो कुक्षिजात न होती हुई भी माताजीके पवित्र दर्शन और अमृतमय उपदेशोंके श्रवण मात्रसे ही सत्प्रेरणा प्राप्त कर अपने

मानसके समस्त विकारोंको क्षण मात्रमें हटाकर धर्मानुयायी बनती आई और निरन्तर बनती चली जा रही हैं।

पूज्य आर्यिका माताजीका नाम श्रावण वदी सप्तमी संवत् १९९५ की शामको हुआ था। जयपुर निवासी आपके पिता श्री रिखभचन्दजी विन्दायक एवं माताजी मेहताब बाई अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति के दम्पति थे। आपका बचपनका नाम भँवरदेवी था किन्तु पिता श्री प्यारसे आपको दौलत कवँरी कहा करते थे।

आपकी शिक्षा चौथी कक्षा तक हुई। छात्रावस्थामें ही आपके हृदयमें धर्मका बीजारोपण हो गया। बारह वर्षकी अवस्थामें आपका पाणिग्रहण संस्कार श्री नन्दलालजी सा० बिलाला नाजिम पीत्या वालेके सुपुत्र श्री गणेशलालजीके साथ सम्पन्न हुआ। पूजापाठ, जप और नियमके साथ चलती हुई आप पतिपरायणताकी नमूना बनी थी। आपकी कुक्षिसे दो सन्तानोंका जन्म हुआ। गृहस्थ जीवन बिताती हुई आप सदैव धर्म चिन्तन और जिनेन्द्र पूजन तथा स्वाध्यायमें निरत रही। प्रत्येक शास्त्रकी समाप्तिपर आप कुछ-न-कुछ नियम अवश्य ग्रहण करती तथा यथा समय कुछ-न-कुछ दान भी अवश्य करती। आपके पति श्री का भी यही कार्य था।

आपके पति देव जयपुर स्टेटके समय महाराजा माधोसिंहजीकी चाँदीके टकसालके आफीसर (दरोगा) थे। पेन्शन हो जानेपर श्री गणेशलालजी अधिकतर आचार्य श्री वीरसागरजीके सघमें रहते व चौका आदि लगाते थे। ८ वर्षों तक सातवी प्रतिमा धारण किये रहे। आपका विचार जयपुरमें श्री १०८ आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजके चातुर्मासके अवसरमें क्षुल्लक दीक्षा धारण करनेका था किन्तु घर-वालोंने आपको ऐसा नहीं करने दिया।

जब पूज्य शिवसागरजीने आचार्यकी दीक्षा ली और उनका संघ चातुर्मास समाप्त होनेपर गिरिनारके लिए रवाना हुआ तब आप (श्री गणेशलालजी) संघके साथ हो लिए। संघ भ्रमण करता हुआ ब्यावर पहुँचा। वहीं प्रातः पाँच बजे मन्दिरमें स्वाध्याय करते समय भगवान्‌की मूर्तिके सामने आपका स्वर्गवास हो गया और भवँरदेवीका वैधव्यसे साक्षात्कार हुआ।

पति वियोगके असीम दुखने आपके हृदयको इस तरहसे झकझोर दिया कि आपके मानसमें अव-गुण्ठित वैराग्याङ्कुर फूट चला और आपने सासारिक सुख और गार्हस्थजीवनसे सदैवके लिए नाता तोड़नेकी ठान ली। और आचार्य शिवसागरजीसे संवत् २०१६ में विशाल जन समुदाय की हर्षध्वनिक बीच आपने क्षुल्लिका व्रत धारण किया तथा संवत् २०१७ में सुजानगढमें आपने आर्यिका दीक्षा ग्रहण की।

उपरोक्त कथन और आपका जीवन सचमुच बहुत मेल खाता है। आपने बहुजन हिताय कुक्षिजात दो संतानोंका मोह त्यागकर हमारे समक्ष मातृत्व का जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह आचरणीय तथा चिरस्मणीय है। भारत देश ऐसी ही माताओंके दिव्य तप एवं त्यागसे अनादि कालसे जगमगाता आया है।

आप ज्ञानपिपासा बश संघमें शामिल हुई। जैसे-जैसे ज्ञानामृत मिलता गया वैसे ही वैसे आपकी पिपासा बढ़ती गयी। ज्ञानोपार्जनमें आपकी साधना अथक अनवरत और अध्यवसाय पूर्ण रही। आपने इस नश्वर शरीरके प्रति जितनी निर्ममता दिखाई वह सचमुच श्रद्धेय है। ज्ञानका जो भण्डार आपने अपनी कर्मठ लगन और अनन्त साधनासे प्राप्त किया वह अक्षय है।

●

आर्यिका दयामतीजी

कौन जानता था कि बालिका फूलीबाई एक दिन इस संसारके समस्त सुखों और वैभवकी चकाचौंध कर देने वाली चमक दमकको एक ही झटकेमें तिलाञ्जलि दे संघमें शामिल हो जाएगी।

आपका बचपनका नाम जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है फूलीबाई था। आपके पिताजीका नाम श्री भागचन्द्र एवं माताजीका नाम मानकबाई था। आपका जन्म छाणी (उदयपुर) राजस्थानमें हुआ। आप सुख्यात आचार्य शान्तिसागरजीकी सहोदरा बहिन हैं।

बचपनसे ही आपके हृदय प्रदेशपर वैराग्य-भावना अंकुरित हो वर्द्धन एवं संरक्षण पाती रही। निरन्तर संगति व उपदेश श्रवण करते रहनेसे एक दिन उस वैराग्य भावनाका अवगुण्ठन हटा और हुआ यह कि आप सासारिक आकर्षणोंसे स्वतःको मुक्त समझकर उससे परे हो गई।

नारी सहजमें ही ममत्व भरी होती है और फिर वह नारी जो माँ बन चुकी हो उसके ममत्वका क्या कहना किन्तु धन्य है ऐसी नारी जिसको पुत्र, पति एवं भ्रातृ-प्रेमके बन्धनोंने भी न बाँध पाया हो।

वि० संवत् २०२१ में खुरई नामक स्थानमें आचार्य धर्मसागरजीसे आपने क्षुल्लक दीक्षा ली। तथा आर्यिका दीक्षा संवत् २०२३ में आचार्य देशभूषणजी महाराजसे दिल्लीमें ली। आप डूँगरपुरमें श्री १०८ आचार्य विमलसागर महाराजजीके संघमें शामिल हुई।

णमोकारादि मंत्रका आपको विशेष ज्ञान है। धर्मप्रेमकी जो सद्भावना आपके हृदयस्थलमें भरी है। वैसी भावना नारी जगत्‌में यत्र-तत्र सौभाग्यसे ही मिलती है। महिला समाजको आप पर गर्व है।

दुर्ग, दिल्ली, जयपुर, उदयपुर और सुजानगढ़ नामक स्थानोमें आपने चातुर्मास किया। दही, तेल और रस आपके लिए त्याज्य हैं।

आपके उपदेशोंको सुनकर श्रोता स्वत मंत्र मुग्धसे रह जाते हैं। वैराग्यका ऐसा वातावरण बरबस मनुष्यके हृदयमें सरलताका भाव भर देता है।

स्व० आर्यिका पार्श्वमतीजी

श्री १०५ आर्यिका पार्श्वमतीजीका नाम गेंदाबाई था। आपका जन्म आसोज कृष्णा तीज विक्रम संवत् १९५६को खेड़ा (जयपुर) नामक स्थान पर हुआ था। आपके पिता श्री मोतीलालजी थे व माता जडावबाई थी। आप खण्डेलवाल जातिके भूषण व बोरा गोत्रज थी। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण हुई थी। आठ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह भी हुआ था। परन्तु दुर्भाग्यसे २४वर्षकी अवस्थामें आपको वैधव्य प्राप्त हो गया। आपके परिवारमें तीन भाई हैं।

आपके नगरमें आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरके संघसहित आनेसे आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी व आपने विक्रम संवत् १९९०में जयपुर (खानियाँ) में श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराजसे सातवीं प्रतिमाके व्रत धारण कर लिए। इसके बाद विक्रम संवत् १९०७में स्व० आचार्य वीरसागरजी महाराजसे आपने कचनेरमें क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। इसके बाद आपने विक्रम संवत् २००२में आचार्य श्री वीरसागरजी महाराजसे झालरापाटनमें आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने कई स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की थी।

आर्यिका भद्रमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका भद्रमतीका गृहस्थावस्थाका नाम पुत्तीबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व कुड़नारी (दमोह) म० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री परमलालजी जैन थे। जो खेती व व्यापार करते थे। आपकी माता श्री हीराबाई थी। आप समैया जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक शिक्षा ६ वर्ष तक आरा आश्रममें हुई। आपका विवाह भी हुआ। किन्तु अशुभ कर्मोंके उदयसे आपको एक वर्ष बाद ही वैधव्य प्राप्त हुआ। आपके परिवारमें एक भाई है।

बहिन एवं पतिकी मृत्यु व आर्यिका वासुमतीजीकी सत्संगतिसे व जगकी असारताका ज्ञान होते ही आपमें वैराग्य भावना जागृत हुई। आपने विक्रम संवत् २०२० में खुरईमें आचार्य श्री १०८ धर्मसागरजीसे क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। बादमें आपने विक्रम संवत् २०२३ को दिल्ली, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों पर चातुर्मास किये व धर्म वृद्धि की।

●

आर्यिका वीरमति माताजी

●

"जो कर्म-जन्य औपाधिक भावोंको आत्माकी चैतन्यतासे पृथक् मान, उनसे जनित सुख दुखमें हर्ष और विषाद नही करता तथा इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग के संयोगिक प्रसंगोंको संसारका स्वरूप मानकर इनसे तन्मय नही होता, वही जीव अपना भव एवं भावना विशुद्ध तक सम्यक्चारित्रका धनी बनकर आत्मकल्याण करता है।"

आर्यिका श्री वीरमति माताजीके जीवन दर्शनकी कुछ ऐसी ही कहानी है। विवाहके १० माह पश्चात् ही जीवन सौभाग्य उठ जानेसे उन्होंने संसारके स्वरूपका चिन्तन किया और अपने वैधव्य जीवनको शान्ति और धर्मकी गोदमें समर्पित कर सच्चे सुखके अन्वेषणमें लगा देनेका संकल्प किया।

आर्यिका श्री वीरमतिजीका पूर्व नाम ब्र० चान्दबाई था। जन्म जयपुर नगरमें सं० १९६९ में। पिता श्री जमनालालजी सोनी व माता श्रीमती गुलाबबाई धार्मिक सस्कारों वाले थे। विवाह श्री ईश्वरलाल भैंवसाके पुत्र श्री कपूरचन्द्रजी भैंवसासे हुआ था। लगभग सं० १९८८ में जब चारित्र चक्रवर्ती आ० श्री शान्तिसागरजी मुनिसंघका चातुर्मास जयपुरमें हुआ था तब आपने अपने माता-पिता सहित शूद्रजलका त्याग आजीवन ग्रहण कर लिया था। आपकी चारित्रिक विशुद्धि क्रम-क्रमसे बढ़ती गयी और आप उसी चातुर्मास के समय सातवी प्रतिमा ग्रहण कर वीर्य संयम पथ पर बढ़ती रही।

वि० स० १९९६ में इन्दौर नगरमें गुरुवर आ० शान्तिसागरजीके पट्ट शिष्य मुनि श्री वीरसागरजी महाराजने आपको आर्यिकाकी दीक्षा दी। फिर मुनिश्रीके आचार्यत्व पद पर आ जाने पर तथा बादमें आ० शिवसागर और धर्मसागर महाराजके संघोंमें आर्यिका प्रमुखका सम्मान-गौरव आपको प्राप्त है। आपने भारतवर्षके प्रायः सभी दि० जैन तीर्थ क्षेत्रोंकी ससंघ यात्रा-वन्दना की।

आपकी माताजी जीवन भर व्रत-स्वाध्याय और धर्म उत्सवोंमें संलग्न रहीं। पिता, पूर्वजोंसे टोंकसे लाये मन्दिर जो जयपुरमें सोनियाका जिन-चैत्यालय (चौकड़ी घाट दरवाजा, जयपुर) नामसे प्रसिद्ध है में नियमित पूजनादि धर्म कार्य करते हैं। ऐसे विरासतमें मिले सुसंस्कारोंके फलस्वरूप ब्र० चान्दबाईने अपना वीरमति नाम यथार्थ सिद्ध कर दिया।

•

आर्यिका विमलमति माताजी

•

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः' नारी पूज्यनीय है क्योंकि उनके गर्भसे तीर्थङ्करोंने जन्म लिया, चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष जन्मे। ऐसी नारी जब संयम और चारित्रके अलंकरणों· से सुसज्जित हो तब तो उसकी पूजनीयता और भी बढ़ जाती है।

मध्यप्रदेशवर्ती शाहगढ मण्डलान्तर्गत मुँगावली नगर है जहाँ परवार जातीय श्री रामचन्दजी सद्गृहस्थ रहते थे। आपके छठवी छोटी पुत्री मथुराबाई थी जो बडी लाड प्यारसे पाली पोसी गयी थी। तत्कालीन बाल विवाहकी प्रथानुसार बालिका मथुराबाईका विवाहसंस्कार उसकी १२ वर्ष की अल्पायुमें भोपाल निवासी श्री बाबू हीरालालजीके साथ कर दिया गया। परन्तु मथुराबाईके पैरोंकी मेंहदी सूखने नहीं पाई थी कि दुर्दैवसे श्री हीरालालजीका असमयमें निधन हो गया। मृत्युकी अनिवार्यताको कौन अस्वीकार कर सकता है?

मथुराबाईके जीवनको शान्तिमय बनानेके उद्देश्यसे आपके पिताने शिक्षा हेतु आपको श्री मगनबाई दि० जैन श्राविकाश्रम बम्बईमें भर्ती किया। और यहाँ मथुराबाईने ज्ञानावरणी कर्मके तीव्र क्षयोपशमसे थोड़े ही समयमें हिन्दी और संस्कृतका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया और उसका वैधव्य एक वरदानमें सफलीभूत होता दिखाई दिया।

शिक्षा समाप्त कर कन्या पाठशाला नागौरमें अध्यापन कार्य करने लगी। अपने इस शिक्षण कार्यके अलावा महिलाओंमें धार्मिक जागृतिका पुण्य संकल्प कर उनमें व्याप्त मिथ्या मान्यताओं और मासिक अशौच सम्बन्धी अनियमितताको दूर करनेकी शिक्षा दी। अपने ज्ञानके साथ आप अपने व्यवहार और संयत आचारमें भी प्रवृत्त रहीं।

सौभाग्यसे नागौरमें पूज्य मुनि श्री चन्द्रसागरजी पधारे और आपके धर्मामृत उपदेशसे प्रभावित होकर आपने द्वितीय प्रतिमा ग्रहण की। यहींसे आपकी जीवन दृष्टि बदली। कुछ समय पश्चात् सातवी प्रतिमाके व्रत अंगीकार कर चारित्र-मार्गमें प्रगति करती रही। आपमे प्रारम्भसे इन्द्रिय-विजयिनी और कषायभावकी निर्मलता थी। और आप संघके साथ विहार करने लगी। मुनि श्रीके औरंगाबाद जिलेके ग्राम सज्जनपुर (कसाव खेडा) में चातुर्मासके शुभावसर पर कार्तिक कृष्णा पंचमी वि० सं० २००० को ब्र० मथुराबाईने क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण की और उसी समय अपने पास संचित ६००० रुपयेको धार्मिक कार्य हेतु दान कर दिया। आपका नाम संस्करण-मानस्तम्भिनी रक्खा गया।

क्षुल्लिकापद प्राप्त कर आपने शास्त्रीय ज्ञान और चारित्र द्वारा आत्म-शुद्धिमें प्रगति की। अगले वर्ष अडूलका चातुर्मास समाप्त कर आप ससंघ बडवानी पहुँची। परन्तु उसी समय तपोनिधि संघनायक श्री चन्द्रसागरजी महाराज मलेरियासे आक्रान्त होकर अत्यन्त निर्बल हो गये थे और आपने फाल्गुन शु० पूर्णिमा सं० २००० को समाधिमरण पूर्वक भौतिक शरीरका त्याग कर दिया।

तदनन्तर माताजी पू० आचार्य श्री वीरसागरजीके पादमूलमें पिडावा (म० प्र०) आयी और यहाँ आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर नया नाम 'विमलमति' लिया। वि० सं० २००२ से वि० सं० २०१३ तक आपने झालरापाटन, जयपुर, केकड़ी, नागौर, सुजानगढ, डेह, मेहतारोड एवं मेहतासिटी तथा जयपुर श्री आ० वीरसागरजी महाराजके साथ चातुर्मास किये। इस वर्षायोगके बाद आप संघसे अलग विहार करके सं० २०१४ में आनन्दपुर कालूमें चातुर्मास किया। वि० सं० २०१५-१६ में दो चातुर्मास आपने परम पू० आ० श्री महावीरकीर्तिके संघमें रहकर क्रमशः नागौर और आनन्दपुरमें किये। फिर पू० आचार्य शिवसागरजी महाराजके संघमें आ गयी और सं० २०१७ से २०१९ संघस्थ सुजानगढ़, सीकर और लाडनू में चातुर्मास व्यतीत किये। और अपने ओजस्वी प्रवचन और धर्मोपदेशसे महती धर्म प्रभावना की। सं० २०२० से वि० सं० २०२४ तक आपने नागौर आदिमें चातुर्मास व्यतीत किये क्योंकि इस अवधिमे माताजीको शारीरिक कमजोरी आ गयी थी।

आपने तपस्विनी, स्वाध्यायशील, व्यवहार-कुशल, सौम्याकृति, शत्रुमित्र समभावी हैं। आपका पूरा जीवन संसार प्राणियोंको करुणा बुद्धिपूर्वक सन्मार्ग दिखानेमें तथा स्वयं कठोर तपस्या करनेमें लगाया। आपने सैंकड़ों लोगोंको ब्रह्मचर्य व्रत एवं प्रतिमाके व्रत देकर उन्हें चारित्र मार्गमें दृढ़ किया। आप शान्त और निर्मलस्वभावकी धर्मप्रतीका माताजी हैं।

●

आर्यिका राजुलमतीजी

●

श्री १०५ राजुलमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम ज्ञानमतिजी था। आपका जन्म आजसे ५५ वर्ष पूर्व छोदा (ग्वालियर) में हुआ। आपके पिता श्री खूबचन्द्रजी व माता श्री आनन्दीबाई थी। आप पल्लीवाल जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह छोदा निवासी श्री सीतारामजीसे हुआ था। जिससे आपको दो पुत्रियोंकी प्राप्ति हुई। आपके दो देवर भी हैं। आपके पतिकी मृत्यु हो जानेसे आपको यह संसार नश्वर जान पड़ा।

आपने सन् १९६५ में गिरनारजी पर सीमंधर स्वामीसे क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। आपने गिरनार, अहमदाबाद, हूमच, कुन्थलगिरि, गजपंथा आदि स्थानों पर चातुर्मास किये।

●

आर्यिका राजुलमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका राजुलमतीजीके बचपनका नाम रूपाबाई था। आपका जन्म विक्रम संवत् १९६४में कारंजा दक्षिणमें हुआ था। आपके पिताका नाम बवनसाजी था। जो एक सफल व्यापारी थे। आपकी माताका नाम बगाबाई था। आप बघेलवाल जातिकी भूषण थी। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। १२ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह देवमन साजीके साथ हुआ। १४ वर्षकी अवस्थामें अशुभ कर्मोके उदयसे आपको वैधव्य प्राप्त हुआ।

सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। आपने विक्रम संवत् २०१६में गिरनारजी पर आचार्य श्री १०८ शिवसागरजीसे क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। व कुछ समय पश्चात् २०१९में सीकरमें आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने सुजानगढ़, अजमेर, ब्यावर, सीकर, लाडनू, पपौराजी, महावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ इत्यादि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने तीनों रसों का त्याग कर दिया।

●

आर्यिका वासुमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका वासुमतीजीके बचपनका नाम लाडबाई था। आपका जन्म आजसे ७५ वर्ष पूर्व जयपुर (राजस्थान)में हुआ था। आपके पिताका नाम चान्दूलालजी था। जो सब्जीका व्यापार किया करते थे। आप खंडेलवाल जातिके भूषण है। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आप बडजात्या गोत्रज हैं। आपका विवाह श्री चिरंजीलालजीके साथ हुआ था।

नगरमें मुनिश्री १०८ शान्तिसागरजीके आगमनसे आपमें वैराग्य वृत्ति जाग उठी। आपने विक्रम संवत् २०१२में आचार्य श्री १०८ वीरसागरजीसे खानियामें आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने खानिया, अजमेर, सुजानगढ़, सीकर, दिल्ली, कोटा, उदयपुर, लाडनू इत्यादि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने तेल, दही, मीठा आदि त्याग कर रखा है।

●

आर्यिका वीरमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका वीरमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम चाँदबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व जयपुर (राजस्थान)में हुआ था। आपके पिताका नाम श्री जमुनालालजी था। तथा आपकी माता गुलाबबाई थी। आप खण्डेलवाल जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा व धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आपका विवाह श्री कपूरचन्द्रजीके साथ हुआ।

स्वयंके चरित्र व आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजीके आगमनसे भावोंमें विशुद्धि हुई अतः सिद्धवरकूट सिद्ध क्षेत्रमें क्षुल्लिकाकी दीक्षा ली। विक्रम संवत् १९९५में इन्दौरमें स्वर्गीय १०८ आचार्य वीरसागरजीसे आर्यिकाकी दीक्षा ली। आपको संस्कृत व हिन्दीपर विशेष अधिकार है। आपने खातेगाँव, उज्जैन, इन्दौर, झालरापाटन, जयपुर, ईसरी, कोटा, उदयपुर आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की। आपने दूधके अलावा अन्य समस्त रसोंका त्याग किया है।

●

आर्यिका विनयमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका विनयमतीजीका बचपनका नाम राजमती था। आपका जन्म आजसे लगभग साठ वर्ष पूर्व मड़ावरा (ललितपुर) में हुआ था। आपके पिता श्री मथुराप्रसादजी थे। व माता जी सरस्वती देवी थी। आप गोलालारी जातिकी भूषण थी। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह चतुर्भुजजीके साथमें हुआ। आपके दो भाई व तीन बहिन थी।

नगरमें संघका आगमन व प्रधानाध्यापिका सुमित्राबाईका दीक्षित होना आपके वैराग्यका कारण हुआ। आपने विक्रम संवत् २०२३में कोटामें आचार्य श्री १०८ शिवसागरजीसे आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने उदयपुर प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने मीठा, नमक, दही आदिका त्याग कर दिया है। आप देश और समाजकी सेवामें इसी प्रकार कार्यरत रहें। आप शतायु हों। यही हमारी कामना है।

●

आर्यिका विमलमतीजी

●

श्री १०५ विमलमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम मथुराबाई था। आपका जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी विक्रम संवत् १९६२को मुंगावली (शाहगढ) में हुआ। आपके पिता रामचन्द्रजी सर्राफ व माताजी श्री सीताबाई थी। आप परवार जातिकी भूषण हैं। आपकी धार्मिक शिक्षा श्री दिगम्बर जैन श्रावकाश्रम बम्बईमें हुई। १२ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह हुआ। परन्तु तीन महीने बाद ही आपको वैधव्य प्राप्त हुआ। आपने नागौर में विक्रम संवत् १९८० से १९९९ तक अध्यापिकाका कार्य किया।

स्व० आचार्य श्री १०८ चन्द्रसागरजीके सदुपदेशसे कसाबखेड़ा (औरंगाबाद) में कार्तिक कृष्णा पचमीको विक्रम संवत् २०००में क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। और आचार्य श्री १०८ वीरसागरजी महाराजसे पिड़ावामें चैत्र शुक्ला त्रयोदशी विक्रम संवत् २००१ में आपने आर्यिका दीक्षा ले ली।

आपने जयपुर, नागोर, सुजानगढ़, लाडनू, आनन्दपुर इत्यादि स्थानोपर चातुर्मास करके धर्म-वृद्धि की।

●

आर्यिका विजयमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका विजयमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम शान्तिदेवी था। आपका जन्म वैशाख सुदी १२ विक्रम संवत् १८८५में कामा (भरतपुर) उत्तर प्रदेशमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्री संतोषीलाल जी व माताजीका नाम चिरौंजीबाई था। आप खंडेलवाल जातिकी भूषण हैं। आपकी धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह श्री भगवानदासजी बी० ए० लश्करवालेके साथ हुआ। परन्तु दुर्भाग्यसे आपको वैधव्य प्राप्त हुआ। परिवारमें आपके पाँच भाई व तीन बहिन हैं।

संसारको अनश्वरताको जानकर आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जागृत हुई। एवं आपने आचार्य श्री विमल-सागरजी महाराजकी प्रेरणासे आमरा सन् १९५७ में आर्यिका दीक्षा ली। आपने कई स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की।

●

आर्यिका सुशीलमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका सुशीलमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम काशीबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग अट्ठावन वर्ष पूर्व मस्तापुरमें हुआ था। आपके पिता श्री मोहनलालजी थे। आप परवार जातिकी भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा १०वीं तक हुई। आपके पति धर्मदासजी थे। आपने अध्यापिका कार्य भी किया। आपके परिवारमें दो देवर और एक जेठ हैं।

जब आपके नगरमें मुनि-संघ आया तब आपने शान्तिवीर नगर महावीरजीमें श्री० १०८ आचार्य शिवसागरजीसे विक्रम संवत् २०२२में आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने संघके साथ कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। आपने दो रसोंका भी यथावसर त्याग किया। आप अपने वर्गको छल-प्रपञ्चसे निकालकर निश्छल निष्कपट बनानेमें समर्थ हों, यही कामना है।

●

आर्यिका सिद्धमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका सिद्धमतीजीका पहलेका नाम सोनाबाई था। आपका जन्म भादों वदी ७ सं० १९९०में मध्यप्रदेशकी राजधानी भोपालमें हुआ था। आपके पिता श्री मन्नूलालजी थे और माता भँवरीबाई थी। आपके परिवारमें दो बहनें भी हैं। आप परवार जातिकी भूषण हैं। आपकी लौकिक व धार्मिक शिक्षा महिलाश्रम आरामें हुई थी। आपका विवाह श्री गोकुलचन्द्रजीके साथ हुआ था। परन्तु छह महीने बाद ही आपको पति-वियोगको सहन करना पड़ा।

शोकको भुलानेके लिए और अपनी आत्माका उद्धार करनेके लिए, आपने धर्म-चर्चा, जिनेन्द्र-पूजन आदिमें मन लगाया। परिणामोंमें आशातीत विशुद्धता आई तो आपने बड़वानीमें फागुन सुदी १० सं० २०१३ क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। दीक्षाका नाम चन्द्रमती रखा गया। और मांगीतुंगी क्षेत्रपर पौष वदी २ स० २०१४को आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर ली। आपके दीक्षा गुरु श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी थे। आपके चातुर्मास इन्दौर, ईसरी, कोल्हापुर, सुजानगढ़ आदि स्थानोंपर हुए। जनता आपसे बड़ी प्रभावित हुई, आपने जनताको काफी धर्मलाभ दिया। आपने घी, तेल, दही रसोंका त्याग कर दिया।

●

आर्यिका सुमतिमतीजी

श्री १०५ आर्यिका सुमतिमतीजीका जन्म खटाव महाराष्ट्रमें हुआ। आजसे लगभग ९० वर्ष पूर्व आपने इस ग्रामको पवित्र किया था। आपको बचपनमें सीताबाई कहकर पुकारते थे। आपके पिता श्री हीराचन्द्रजी थे, जो दुकानदारी करते थे। आपकी माता कंकूबाई थी। आप हूमण जातिकी रत्न हैं। आपका विवाह रामचन्द्रजीसे हुआ।

सत्संगति और धर्मोपदेश श्रवणसे आपके मनमें विषयवासनाओंसे विरक्ति बढ़ी। आपने श्री १०८ आचार्य पायसागरजी महाराजसे बारेगाँव में क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराजसे सन् १९४८में देहलीमें आपने आर्यिका दीक्षा ले ली। आपने लगभग बीस स्थानोंपर चातुर्मास किये और समाजके सदस्योंमें अपूर्व धर्मप्रभावना की।

आर्यिका सूरिमतीजी

श्री १०५ आर्यिका सूरिमतीजीका पहलेका नाम गेंदाबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग सत्तर बरस पहले पवईमें हुआ था। आपके पिता श्री विशाललालजी थे, जो कपड़ा व जवाहरातके व्यापारी थे। आपकी माता प्यारी बहू थी। आप गोलालारीय जातिके भूषण हैं। आपका विवाह भी हुआ। अपनी ससुराल बड़वारामें रही अवश्य पर घर-गृहस्थीके काम करते हुए भी उदासीन रही। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही थी।

सत्संगति और उपदेश श्रवण तथा जिनेन्द्र-पूजनसे आपके मानसमें वैराग्यमूलक संस्कार बढे। आपने खण्डगिरिमें विक्रम संवत् २०१९ में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे क्षुल्लिका दीक्षा ले ली तथा विक्रम संवत् २०२१में मुक्तागिरि क्षेत्रपर श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे आर्यिका दीक्षा भी ले ली। आपकी णमोकार मन्त्रमें अखण्ड आस्था है। आपने ईसरी, बाराबंकी, बड़वानी, कोल्हापुर, शोलापुर, सुजानगढ़, आदि स्थानोंमें चातुर्मास किये और समाजके सदस्योंको धर्मविषयक एकसे अधिक उत्तमोत्तम बातें सिखलाईं।

आर्यिका शान्तिमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका शान्तीमतीजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम कुन्दनबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग पचपन वर्ष पूर्व नसीराबाद (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिता श्री रोडमलजी थे तथा माताजी बसन्तीबाई थी। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं। आपका जन्म गंगवाल परिवारमें हुआ था। विवाह बम्ब गोत्रमें हुआ था। आपके परिवारमें दो भाई है। आपकी लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपके पति हीरा-जवाहरातका व्यवसाय करते है।

श्री १०५ आर्यिका सुपार्श्वमतीजीकी सत्प्रेरणासे प्रभावित होकर आत्मकल्याणके हेतु जयपुरमें क्षुल्लिका दीक्षा ली। बादमे नागौरमें श्री १०८ आचार्य वीरसागरजीसे आर्यिकाकी दीक्षा ग्रहण कर ली। आपके चातुर्मास पद्मपुरी, सुजानगढ़, नागौर, अजमेर आदि स्थानोंपर हुए। आपने दूधके अलावा पाँचों रसोंका त्याग कर दिया है। आप संयम और विवेक लिए देश और समाजको सन्मतिके सन्मार्गपर चलनेकी प्रेरणा देती रहें।

●

आर्यिका सम्भवमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका सम्भवमतीजीका पहलेका नाम हुलासीबाई था। आपका जन्म वीरगाँव (अजमेर) राजस्थानमें हुआ। आपके पिता श्रीपन्नालालजी थे, जो नौकरी द्वारा आजीविका चलाते थे। आपकी माताजी राजमती बाई थी। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं। आपका गोत्र पाटनी है। आपकी लौकिक एवं धार्मिकशिक्षा साधारण ही हुई। आपके दो भाई है। आपका विवाह भी हुआ किन्तु दुर्भाग्यवश बारह वर्ष बाद ही आपके पतिदेव स्वर्गवासी हो गये।

सत्संगति और धर्मचर्चाके कारण आपमें संसारसे विरक्तिकी भावना बढ़ी। विक्रम संवत् २०१७मे अजमेरमें श्री १०८ आचार्य शिवसागरजीसे आपने क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। सवत् २०१९में सीकर (राजस्थान) मे श्री १०८ आचार्य शिवसागरजीसे आर्यिका दीक्षा भी ले ली। आपने सुजानगढ, सीकर, लाडनूँ, खुरई, दुर्ग, प्रतापगढ़, उदयपुर, कोटा, दिल्ली आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। आपने गुड़, शक्कर, दही, तेल आदि रसोंका त्याग भी कर दिया है। आप त्यागके मार्गपर स्वयं भी बढें और समाजको भी तप और त्यागके मार्गपर लगावें।

●

स्व० आर्यिका सिद्धमतीजी

●

स्वर्गीय श्री १०५ आर्यिका सिद्धमतीजीका पहलेका नाम सत्तोबाई था। आपका जन्म विक्रम सं० १९५०के आश्विन मासमें हुआ था। भारतकी राजधानी देहलीको आपकी जन्मभूमि होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपके पिताका नाम लाला नन्दकिशोर था तथा माताका नाम कट्टो देवी था। आप अग्रवाल जातिके भूषण और सिंहल गोत्रज थे। आपका विवाह ८ वर्षकी अल्पावस्थामें हुआ था। परन्तु पाँच वर्ष बाद ही, आपको पति-वियोग सहना पड़ा।

आपने संसारकी असारता देख जीवनको जल-बिन्दु सदृश क्षणिक समझा। इसलिए आत्माका कल्याण करनेके लिए वि० सं० १९९२में आपने सातवीं प्रतिमा श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजीसे ले ली थी। फिर वि० सं० २०००में क्षुल्लिका दीक्षा सिद्धक्षेत्र सिद्धवरकूटमें ली थी। श्री १०८ आचार्य वीर-सागरजीसे नागौरमें विक्रम संवत् २००६में आर्यिका दीक्षा ली थी। आपने विक्रम संवत् २०२५में प्रतापगढ़ में समाधिमरण प्राप्त किया था।

●

आर्यिका श्रेष्ठमतीजी

●

श्री आर्यिका श्रेष्ठमतीजी का गृहस्थावस्थाका नाम रतनबाई था। आपका जन्म फतेहपुर सीकरी (राजस्थान)में आजसे लगभग ६०वर्ष पूर्व हुआ। 'आपके पिताका नाम बासुदेवजी था। जो गल्लेका व्यापार करते थे। आपकी माताका नाम इन्द्रादेवी था। आपकी जाति अग्रवाल थी। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा तीसरी तक हुई। आपका विवाह श्री नेमीचन्द्रजी के साथ हुआ। परिवारमें आपके दो भाई एवं दो बहिन हैं। आपके नगरमें संघका आगमन होनेके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। आपने विक्रम संवत् २०१९ में आचार्य १०८ शिवसागरजीसे दीक्षा ले ली। आपने लाडनू, कलकत्ता, हैदराबाद, सोलापुर, श्रवणबेलगोला, सनावद, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आप चारित्र शुद्धिका उपवास व्रत भी करती हैं।

●

आर्यिका श्रेयमतीजी

●

आर्यिका श्री श्रेयमतीजी का पहले का नाम कमलाबाई था। आपका जन्म फलटन (महाराष्ट्र) में हुआ। आपके पिता श्री गुलाबचन्द्रजी जैन व माता फूलूबाई थीं। आपकी जाति दशाहूमड थी। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह चन्दुलालजी के साथ हुआ। परिवारमें आपके एक पुत्र हैं।

धार्मिक सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य वृत्ति जागृत हुई एवं आपने बड़ौतमें क्षुल्लिका दीक्षा ले ली।

आपने वाराणसी, बड़वानी, कोल्हापुर, सोलापुर, सुजानगढ़, ईसरी इत्यादि स्थानपर चातुर्मास किये व धर्म वृद्धि की।

●

आर्यिका श्रेयांसमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका श्रेयासमतीजी का गृहस्थ अवस्था का नाम शिवदेवी था। आपका जन्म राज-सुन्नार गुड़िमें हुआ। आपके पिता का नाम श्रीवर्धमान मुदालिया एवं माता का नाम श्रीमती पूर्णमती था। आप मुदालिया जाति की भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आपका विवाह भी हुआ। जिससे आपको दो पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। ३८ वर्षकी अवस्थामें आपके पतिका देहान्त हो गया।

शास्त्र पढ़नेसे आपमें वैराग्य वृत्ति जागृत हुई इसलिये आपने सन् १९५८ में श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराजसे नागौरमें आर्यिका दीक्षा ले ली। आपकी वर्तमानमें आयु ६४ वर्ष की है आपने नागौर, अजमेर, पावागढ, बडवानी, गजपन्था, कुन्थलगिरि आदि जगहोपर चातुर्मास किये। आपने लोगों को धर्मज्ञान की बातें सिखाई।

●

आर्यिका श्रेयांसमतीजी

●

श्री १०५ आर्यिका श्रेयासमतीजी का गृहस्थ अवस्था का नाम लीलावतीबाई था। आपका जन्म आजसे ५० वर्ष पूर्व पूना महाराष्ट्रमें हुआ। आपके पिता का नाम श्री दुलीचन्द्रजी व माता का नाम श्रीमती सुन्दरबाई था। आप खण्डेलवाल जाति की भूषण एवं बडजात्या गोत्रज हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ५ वीं तक हुई। आपका विवाह मूलचन्द्रजी पहाड़ेसे हुआ। जो आगे चलकर मुनि श्रेयाससागरजी हुए। आपके परिवार में दो पुत्र व दो पुत्रियां हैं।

पतिके दीक्षा लेने व संसारकी नश्वरताका विचारकर आपने वि० सं० २०२१ में श्री १०८ आचार्य शिवसागरजीसे शान्तिवीरनगर (महावीरजी) में दीक्षा ले ली। आपने महावीरजी, कोटा, उदयपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने तेल, दही, घी, नमक आदि का त्याग किया है।

●

आर्यिका ज्ञानमतीजी

आर्यिका ज्ञानमतीजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम मैनाबाई था। आपके पिताश्री छोटेलालजी हैं और माताजी मोहनदेवी हैं। आजसे लगभग ३५ वर्ष पहले आपका जन्म टिकैतनगर (बाराबंकी) में हुआ था। आप अग्रवाल जातिकी रत्न हैं और गोयल गोत्रज हैं। आपके परिवारमें चार भाई और नौ बहनें थी। आपका परिवार काफी सम्भ्रान्त और सम्पन्न था। कपड़े व सर्राफीका व्यापार होता था। आपने जहाँ लौकिक शिक्षामें निपुणता दिखलाई वहाँ धार्मिक शिक्षामें भी आशासे अधिक अग्रसर रही।

जैसे पुत्री (माता-पिता और सास-ससुर) के कुलको पवित्र करती है वैसे ही आपने ज्ञान और मतिसे लोक (संसार) और अलोक (अन्यलोक) को पवित्र करनेका प्रयास किया। आपने विवाहके बन्धनकी उपेक्षा की और जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचर्य धर्मकी आराधना करनेका निश्चय किया। आचार्यश्री १०८ देशभूषणजी महाराजसे धर्मका उपदेश सुनकर आपने परिवारके विरोधके बावजूद भी अपनी अन्तरात्माकी आवाज सुनी और उक्त आचार्यश्रीसे महावीरजी क्षेत्रमें विक्रम संवत् २०१० में क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। जब इससे सन्तुष्ट नही हुई तो स्व० आचार्यश्री वीरसागरजी महाराजसे माधोरावपुरा (जयपुर) में आर्यिका दीक्षा वि० संवत् २०१३ में ले ली। आपने टिकैतनगर, जयपुर, म्हसवड़, ब्यावर, अजमेर, सुजानगढ, सीकर, लाडनू, कलकत्ता, हैदराबाद, श्रवणबेलगोला, शोलापुर, सनावद, प्रतापगढ़ आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये और अपूर्व धार्मिक-चारित्रिक जागृति की।

यों तो समाजमें अन्य भी अनेकों आर्यिकायें हैं पर आप उनकी मालामें सुमेरु सी शीर्षस्थ है। इधर आपने अष्टसहस्री ग्रन्थका अनुवाद किया। सम्यग्ज्ञान मासिक पत्र भी आपकी प्रेरणासे निकल रहा है। आचार्यश्री वीरसागरजी स्मृति ग्रंथका कार्य भी आपके निर्देशनमें हो रहा है। भगवान् महावीरके २५००वें निर्वाण समारोहके उपलक्ष्यमें त्रिलोक शोधसंस्थान दिल्ली भी आपकी प्रेरणासे अपना प्रमुख स्थायी कार्य कर रहा है। एक वाक्यमें आप बहुश्रुत विद्याभ्यासी चारित्रकुशला हैं।
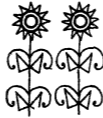
ऐलक १०५ भावसागरजी

●

श्री ऐलक १०५ भावसागरजीके बचपनका नाम नाथूलालजी जैन था। आपका जन्म आजसे लगभग ५५ वर्ष पूर्व बारासिवनी (म०प्र०) में हुआ था। आपके पिता श्रीधर्मदासजी थे। जो सरकारी नौकरी करते थे। आपकी माता आनन्दीबाई थी। आप गोलापूर्व जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण एवं हिन्दी भाषामें हुई है। आप बालब्रह्मचारी रहे हैं।

स्वाध्याय करनेसे आपके मानसमें वैराग्य भाव उठे व आपने कार्तिक सुदी तेरस विक्रम संवत्२०२५ को जबलपुरमें श्री १०८ मुनि सन्मतिसागरजीसे ऐलक दीक्षा ले ली। आपने जबलपुर, आरा आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्मवृद्धि की।

●

ऐलक वीरसागरजी

●

श्री १०५ ऐलक वीरसागरजीका पहलेका नाम सिद्धगौडाजी पाटील था। आपका जन्म आजसे ५० वर्ष पूर्व सन् १९२४में सिरगुर (बेलगाँव) मैसूरमें हुआ। आपके पिताका नाम रामगोडाजी पाटील था। जो कृषिकार्य करते थे। आपकी माताका नाम बालाबाई था। आप चतुर्थ पोलिस जातिके भूषण हैं। आपका गोत्र पाटील है। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा कक्षा ५वी तक हुई। आपका विवाह कृष्णाबाई पाटील जैनसे हुआ। आपके परिवारमें एक भाई, दो बहिनें, एक पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं।

पाँच बच्चोंके स्वर्गवाससे एवं स्वाध्याय मुनि उपदेशसे आपके मानसमें वैराग्यधारा बही। इसलिए चैत्र शुक्ला तेरस सन् १९६७को बड़वानीमें मुनि श्री १०८ वृषभसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। बादमें आचार्य वृषभसागरजीसे बड़ौतमें ऐलक दीक्षा ले ली। आपने दिल्ली, बड़ौत, चिपकौडा आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। आपने गृहस्थावस्थामें दुष्कालके कारण एक साथ १७ उपवास किये। आपने नमक, शक्कर, हल्दीका त्याग कर रखा है।

●

ऐलक वृषभसागरजी

●

आपका जन्म ग्राम–गढी (मोरेना, सं० १९६२ में हुआ था। नाम श्री शिखरचन्दजी था। पिता श्री पातीरामजी, खरौवा जाति एवं पाण्डे गोत्र।

पिताके साथ सिरसागंज (मैनपुरी) में लालन पालन एवं वही १० वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन। १८ वर्षकी आयुमें श्री जानकीप्रसादकी सुपुत्री श्रीमती रतनाबाईके साथ वैवाहिक संस्कार।

२५ वर्ष की आयुमे माता-पिता का देहावसान। आर्थिक उपार्जन हेतु खडगपुरमे कपडे की दुकानपर मुनीमी। बादमें दुकान-मालिकके पंजाब चले जानेके कारण स्वयं कपडे का व्यापार। यही दो पुत्र और एक पुत्री का योग लाभ।

गार्हस्थिक प्रपंचमें निमग्न आपको विचार आया कि पुत्रके आत्म-निर्भर होनेपर मैं स्वयं का आत्म-कल्याण करूँगा। सुयोगसे कुछ वर्ष बाद यहाँ पू० श्री १०८ विमलसागरजी महाराजका उदयगिरि, खण्डगिरि यात्रा करते समय आगमन हुआ। और आपने श्री महाराजजीसे द्वितीय प्रतिमा धारणकर, तीन वर्षके अन्दर क्षुल्लक दीक्षा धारण करने का संकल्प किया। ३ वर्ष बाद श्री महाराजजीके स्मरण (पत्र द्वारा) दिलानेपर आप फल्टण पहुँचे और वीर स० २४८५ में आपने सात प्रतिमायें धारण कर गृहत्याग की दीक्षा ली। आपका नाम संस्करण 'शिवसागर' किया गया। श्री सम्मेदशिखर की यात्राके पश्चात् फाल्गुन मासमें आपने क्षुल्लक दीक्षा धारण की और नवीन नाम—'ज्ञानसागर' से संस्कारित हुए। कुछ समयतक श्री महाराजके सघके साथ विहार किया। फिर अस्वस्थ्य हो जाने के कारण भागलपुरसे संघ छूट गया और आप वहां से खडगपुर आये जहां पहला चातुर्मास व्यतीत किया।

श्री सम्मेदशिखरजीमें श्री बाहुबलि स्वामी की पंचकल्याणक प्रतिष्ठाके समय (वीर सं० २४८७ के लगभग) आप एक माह शिखरजी रहे। वहाँसे फिरोजाबादमें द्वितीय चातुर्मास किया। वहाँसे विहार करते हुए श्री अतिशय क्षेत्र कम्पिलाजीमें आपका पू० गुरुमहाराज श्री विमलसागरजीसे समागम हुआ और आपने यहाँ वैशाख शु० १३ सं० २४८७ को ऐलक दीक्षा ग्रहण की और आप 'श्रीवृषभसागरजी महाराज' के नामसे विख्यात हुए।

तबसे आपने कुरावली (मैनपुरी) झाँसी, चन्देरी, ललितपुर, सैदपुर, महरौनी, मडावरा, जतारा (टीकमगढ़) आदि बुन्देलखण्ड प्रान्त की मुख्य-मुख्य धार्मिक जगहोंपर अपने चातुर्मास सम्पन्न किये।

परिणामों की गति बडी विचित्र है। यदि जीवके परिणाम सुलट जायें तो यह थोड़ेसे प्राप्त मनुष्य-जीवनमें अपना कल्याण कर सकता है। महाराजजीका जब अशुभ कर्म था तब गिरी हालतमें गृहस्थीका मोह नही छोड सके और जब शुभ कर्म आया तो इष्ट सामग्रियाँ प्राप्त होनेपर भी घर छोड दीक्षा ग्रहण की। जीवकी गति ही ऐसी है यदि यह गिरनेका काम करने लगे तो नारकी हो जाता है और यदि यही उठनेके संकल्पसे मर जाये तो सिद्धालयमें सिद्ध बन सकता है।

आप भेदज्ञानके पारखी उत्तम संयम को धारण करते हुए अपने जीवन को चारित्र की कसौटीपर कसते हुए धर्माराधन पूर्वक ऐलक जीवन बिता रहे है।

●

ऐलक वासुपूज्यजी

●

श्री १०५ ऐलक वासुपूज्यजी महाराजका गृहस्थावस्थाका नाम कपूरचन्द्रजी था। आपका जन्म कार्तिक शुक्ला पंचमी विक्रम संवत् १९८८ में गढमोरा (जयपुर) में हुआ था। आपके पिताका नाम श्री छगनलालजी व माताजीका नाम मूलीबाई था। आप खंडेलवाल जातिके भूषण व काला गोत्रज हैं। आपकी लौकिक तथा धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आप विषय भोगोंसे विरक्त रहे। व ब्रह्मचारी व्रतका पालन किया।

आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजीके उपदेशोंसे आपमें वैराग्य प्रवृत्तिकी जागृति हुई। एवं आपने ७-११-६५ को माँगीतुंगीमें आचार्य श्री १०८ महावीरकीर्तिजी महाराजसे ऐलक दीक्षा ले ली। आपने मागीतुगी, हूमच, कुन्थलगिरी, नाँदगाव, गणपंथा आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने तीन रसोंका त्याग कर दिया है।

●

ऐलक ज्ञानसागरजी

●

श्री १०५ ऐलक ज्ञानसागरजीका पूर्व अवस्थाका नाम ब्र० छोगालालजी था। आपके पिता नाथूलालजी व माता अणछाबाई धनगाँव (मन्दसौर) म० प्र० में निवास करती थी। आपका जन्म श्रावण बदी तृतीयाको संवत् १९६२ में हुआ था। आपने बघेरवाल जातिको भूषित किया। यद्यपि आपकी लौकिक शिक्षा तो नाम मात्रकी कक्षा दूसरी तक हुई थी तथापि आपने स्वाध्यायी छात्रके रूपमें काफी धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर ली हैं। कर्मकाण्ड और समयसार जैसे ग्रन्थ भी पढ़े।

आपके चार पुत्र हुए व एक पुत्री। लौकिक जीवनमें आप एक सफल कृषक व व्यापारी थे। एक दिन जब आप समयसारका श्रवण कर रहे थे तब ही आपके मनमें विवेक और वैराग्य जागा तो आपने परिवारका परित्याग किया और मुनि श्री जयसागरजीसे पिडावामें आसोज बदी अष्टमीको क्षुल्लक दीक्षा ले ली तथा अगले वर्ष ही अगहन सुदी ५वी को सवत् २०२३ में रामगंज मंडीमें ऐलक दीक्षा ले ली। आप अभी भी तीन रसोंका क्रमशः त्याग रखते हैं। आपको स्वयम्भूस्तोत्र,दशभक्ति, प्रतिक्रमणादि पाठ कण्ठस्थ हैं। आपने पिड़ावा रामगंज मंडी मिसरौली आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये, धर्मप्राण जनताको देशना दी।

चूंकि निकट भविष्यमें आप मुनि बननेके इच्छुक हैं अतएव निष्कपट शान्त स्वभाव लिये इस दिशामें अग्रसर हो रहे हैं। आपके प्रवचनोंमें जनता को आकर्षित करनेकी अपूर्व क्षमता है। आप इसी प्रकार धर्मकी धारा बहाते रहें।

●

क्षुल्लक आदिसागरजी

श्री शीलचन्द्रजी जैनका जन्म सं० १९६९ में कार्तिक वदी बारसको फिरोजपुर छावनीमें हुआ। आपके पिता श्री बाबू हीरालालजी अग्रवाल एवं माता मनभरीदेवी थी। आप जातिसे अग्रवाल थे। आपका गोत्र मित्तल था। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा सामान्य ही रही। आपकी शादी भी हुई। आपके एक भाई व दो बहिनें हैं। आजीविकाके लिए पिता एवं भाई सर्विस कर रहे हैं। आपके पूर्व जन्मके संस्कार होनेसे आपके भाव वैराग्यकी ओर बढे। उसी समय छोटे भाईकी मृत्यु हो जानेके कारण आपमें काफी उदासीनता आ गई। आपने शरीरको नश्वर जानकर सं० २०१८ में आसौज सुदी चौदसको मुनि श्री १०८ विमलसागरजीसे लखनऊमें दीक्षा ले ली।

आप प्रतिक्रमण एवं तत्त्वार्थसूत्रके ज्ञाता है। आपने लखनऊ, सीकर, हिगूणिमा, फुलेरा, रेवाड़ी आदि गाँवोंमें चातुर्मास किये एवं मुनि श्री ज्ञानसागरजीके साथ किशनगढ़, मदनगंज, अजमेर, हरियाणा आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये।

आपने रसोका त्याग किया, एवं कर्मदहनके लिए जिनगुण सम्पत्ति एवं सोलहकारणका व्रत लिया। आपने तीर्थयात्रायें भी की।

क्षुल्लक अरहसागरजी

श्री पन्नुजीका जन्म माण गाँवमें हुआ। आपके पिता श्री चन्याजी एवं माता श्री गंगाबाई थीं। आप जातिसे दिगम्बर जैन चतुर्थ थे। आजीविकाके लिए कृषि एवं मिलेट्रीमें कार्य करते थे। आपकी शादी भी हुई। आपके गाँव माणमें १०८ नेमिसागरजीका चातुर्मास हुआ एवं पचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई। इससे आपके भाव वैराग्यकी ओर जागृत हुए। एवं आपने सं० २०२२में कार्तिक वदी पंचमीको मुनि श्री नेमिसागरसे बारेगाँवमें दीक्षा ले ली। आपकी लौकिक शिक्षा कन्नड़ भाषामें हुई। आपकी धार्मिक शिक्षा कम नही रही। आपको ३-४ भक्ति कंठस्थ हैं।

आपने उगार, पंढरपुर, छुपरई, आरा आदि गाँवोंमें चातुर्मास किये। आपने तीस चौबीसी एवं नमक व तेलका त्याग कर दिया है। आप अभी देश व समाजको धर्मोपदेश देकर काफी लाभ दे रहे हैं।

क्षुल्लक आदिसागरजी

श्री बापूसाहबका जन्म मोगनोली नामक स्थानपर हुआ। आपके पिता श्री देवगोडाजी पाटील थे एवं माता मदनाकर थी। आप जातिसे दिगम्बर जैन चतुर्थ थे। आपको धार्मिक एव लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आपके एक भाई व एक बहिन है। आप आजीविका के लिए दूकानदारी करते है। आपने आचार्य श्री महावीरकीर्तिजीसे गजपंथाजी सिद्ध क्षेत्रपर २० अक्टूबर १९६९को दीक्षा ले ली। आपने गजपथाजीमें चातुर्मास भी किया।

क्षुल्लक गुणभद्रजी

आपका गृहस्थ अवस्थाका नाम मुखलालजी था। आपके पिताश्री प्यारेलालजी थे और माताका नाम भगवन्तीबाई था। आपका जन्म खिस्टौन जिला टीकमगढमें हुआ था। आपके घरपर साहूकारी व खेतीवाडीका धन्धा होता था। जब आप १३ वर्ष के थे तब ही आपकी माँका स्वर्गवास हो गया था। आप पिताकी देखरेखमे बढने व पढने लगे। खिस्टौनमें ही आपने कक्षा ४थी तक प्राथमिक शिक्षा पाई। इसके बाद पाँच वर्ष तक कुण्डलपुरमें रहकर धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। आपने ब्र० गजाधरप्रसाद, ब्र० अमरचन्द्र, ब्र० गोकुलप्रसादको गुरु रूपमे स्मरण किया। आपने ईसरीमें पं० शोभनलालजीसे द्रव्यसंग्रह पढी। द्रोणगिरिमें क्षुल्लक १०५ श्री चिदानन्दजी महाराजसे तत्त्वार्थसूत्र पढा।

जब आप २२ वर्षके थे तब आपका गौरारानीसे विवाह हुआ। आपके दो पुत्र और तीन पुत्रिया हुई। आपको नाटकोंसे बड़ा लगाव था, पृथ्वीपुर, बछौंड़ा नाटक मंडलियोंमे रहे। कविता करनेका भी चाव था, प्रतिक्रमण कविता मेरठसे प्रकाशित भजनमालामे संग्रहीत है। सत्सगति धर्मश्रवणसे विरक्ति बढी तो आपने क्षुल्लक आदिसागरजीसे दूसरी प्रतिमा ली और गणेशप्रसादजी वर्णीसे चौथी प्रतिमा ली। ब्रह्मचारी गोकुलप्रसादको दिये गये वचनके अनुसार आपने ५० वर्ष की अवस्थामें ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले ली। आपके गुरु अनन्तकीर्तिजी महाराज थे। ८० वर्षकी अवस्थामें पवाजीके वार्षिक मेलेमें आपने मुनिश्री १०८ नेमीसागरजी से क्षुल्लक दीक्षा ली।

क्षुल्लक चन्द्रसागरजी

श्री १०५ क्षुल्लक चन्द्रसागरजी महाराजकी गृहस्थावस्थाका नाम ताराचन्द्रजी था। आपका जन्म पहाड़ी (भरतपुर) में हुआ था। आपके पिताका नाम श्री मंगलराम तथा माताका नाम मालीदेवी था। आपके पिता कपड़ेके सफल व्यापारी थे। जाति अग्रवाल व गोत्र मित्तल है। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। दो शादियां हुई थी। परिवारमें आपके तीन भाई, चार बहिन हैं।

संसारकी अनश्वरताके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी व आचार्यश्री १०८ महाराज महावीरकीर्तिजीसे आजसे करीब २५ वर्ष पूर्व क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने कई स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की।

स्व० क्षुल्लक चिदानन्दजी

श्री १०५ क्षुल्लक चिदानन्दजी महाराजका गृहस्थावस्थाका नाम दामोदरदासजी था। आपका जन्म अगहन सुदी पचमी विक्रम सवत् १९९७ में दरगुंवा जिला छतरपुर मध्यप्रदेशमें हुआ था। आपके पिताका नाम जवाहरलालजी व माताका नाम भुजबलीबाई था। आपके पिता घीके एक सफल व्यापारी थे। जाति गोलापूरब गोत्र शाह हैं। आपकी धार्मिक एव लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपने विवाह नही किया, बाल ब्रह्मचारी ही रहे।

ब्रह्मचारी श्री मोतीलालजीके उपदेशसे आपमे वैराग्य प्रवृत्तिकी जागृति हुई। व आपने विक्रम संवत् २०७४ में क्षुल्लक श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने शाहगढ़, द्रोणगिरि, सागर, जबेरा, खंडेरी, दिल्ली आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आपने कई स्थानोंपर पाठशालाएँ खुलवाई और कई स्थानोंपर उपदेश द्वारा धर्म प्रभावना की।

आपको मोक्षशास्त्र, छहढाला, सहस्रनाम स्तोत्रका विशेष ज्ञान था। सस्कृतके आपको हजारों श्लोक याद थे।

आपने देश और समाजकी जो सेवा की उसे देश और समाज कदापि नही भूलेगा। आपके सम्मानमें चिदानन्द स्मृति ग्रंथ प्रकाशित हुआ जो आपके यशोकृतित्वका प्रतीक है।

क्षुल्लक जम्बूसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक जम्बूसागरजीका पहलेका नाम श्री हजारीलालजी था। आपके पिताका नाम श्री हुब्बलालजी था। आपकी माता श्रीमती चिरौंजाबाईजी थी। आप गोलसिंघारे जातिके भूषण हैं। आपका स्थान भिण्ड (मध्यप्रदेश) था। आप बचपनसे ही धर्म-प्रेमी थे।

आपने ज्येष्ठ शुक्ला छठ विक्रम संवत् २०२६ को चौरासी (मथुरा) में क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आप कई जगहोंपर भ्रमण करके जनताको धर्म लाभ दे रहे है।

●

क्षुल्लक धर्मसागरजी

●

आप जन्मसे ब्राह्मण थे परन्तु जैनधर्म पर विशेष श्रद्धा होनेसे उसीका अभ्यास करते रहे। ३-४ वर्ष आप ब्रह्मचारीके रूपमें रहे तब आपका नाम ब्रह्मचारी चुन्नीलाल शर्मा था। वीर स० २४५७ में आपने ईडर चातुर्मासके समय श्री शान्तिसागरजी (छाणी) मुनिराजसे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की और अपने चारित्रधर्म का उत्तरोत्तर पालन करते हुए आत्म कल्याणकी ओर अग्रसर होते गये।

●

क्षुल्लक नेमिसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक नेमिसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम आलमचन्द्रजी था। आपका जन्म आजसे लगभग अस्सी वर्ष पूर्व बहटा (शिवपुरी) म० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री अमरचन्द्रजी थे, जिनकी परचूनीकी दुकान थी। आपकी माता क्षेमश्री थीं। आप अग्रवाल जातिके भूषण हैं। आप मित्तल गोत्रज हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ५वीं तक हुई। विवाह भी हुआ। एक पुत्र व दो पुत्रियाँ हुईं।

सत्संगति और धर्मोपदेश श्रवणसे आपको संसारसे विरक्ति होने लगी। आपने विक्रम संवत् २०१६ में अकाशिरीमें श्री० १०८ आचार्य विमलसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको बारह भावना एवं अनेक सुभाषित श्लोक पढ़नेका बड़ा शौक है। आपने दस स्थानोंपर चातुर्मास किये। आप हमेशा पर्वके दिनोंमें अष्टमी-चतुर्दशीको उपवास करते हैं। आप अपनी भांति अन्य लोगोंको भी संयम और विवेकके मार्गपर लानेमें समर्थ हों, यही कामना है।

●

क्षुल्लक नन्दिषेणजी

श्री १०५ क्षुल्लक नन्दिषेणजीका पहलेका नाम लिंगप्पा सेठी था। आपका जन्म आजसे लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व म्हेसवाड़ी जिला बेलगावमें हुआ। आपके पिता श्री धरमप्पा सेठी थे, जो कृषि फार्मपर कार्य करते थे। आपकी माताका नाम अम्मा देवी था। आप चतुर्थ जातिके भूषण हैं। आप कासेठी गोत्रज हैं। आपने धार्मिक अध्ययन स्वयं ही किया। आपके परिवारमें तीन भाई और दो बहनें हैं। विवाह भी हुआ। तीन पुत्र और चार पुत्रियाँ हुईं।

गुरुजनोंके धर्मोपदेशोंको सुनकर आपने संसार असार समझा। वैशाख शुक्लपक्ष २०२५ में कोथली (बेलगाव) में श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको दशभक्ति आदि पाठ कण्ठस्थ हैं। आपने कोथली, टिकैतनगर आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। आपने घी, गुड़ आदि रसोंका त्याग भी किया।

क्षुल्लक नमिसागरजी

श्री १०५ क्षुल्लक नमिसागरजीका पहलेका नाम सुरेन्द्रकुमार जैन था। आपका जन्म आजसे लगभग तीस वर्ष पूर्व तमदलगे जिला कोल्हापुरमें हुआ। आपके पिताका नाम पवगोड़ाजी पाटील था। ब्रह्मचर्य प्रतिमा स्वीकार करनेपर आपका नाम सुरगोडाजी हुआ। आपने विक्रम संवत् २०२५को औरंगाबादमें श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्त्तिजीसे दीक्षा ले ली।

आपने एकसे अधिक स्थानोंपर चातुर्मास किये। लोगोंको धार्मिक बातें सिखाईं।

क्षुल्लक नमिसागरजी

श्री १०५ क्षुल्लक नमिसागरजीका पहलेका नाम सुरगोड़ाजी था। आपका जन्म दिनांक १३-२-४१ को मदले (कोल्हापुर) में हुआ। आपके पिता श्री यवागोडाजी थे, जो नौकरी करते थे। आपकी माताका नाम लक्ष्मीबाई था। आप चतुर्थ जातिके भूषण है। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ७वीं तक हुई। धार्मिक शिक्षा बालबोध जैनधर्म ४ था भाग तक हुई। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। आपके परिवारमें पाँच भाई व दो बहनें हैं।

साधु-समागम व उनके धर्मोपदेशके श्रवण-मननसे आपके मानसमें वैराग्यकी भावना बढ़ी। आपने दो फरवरी उन्नीस सौ उनसत्तरको औरंगाबादमें श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्त्तिजी महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने एकसे अधिक स्थानोंपर चातुर्मास किये। धर्म और समाजकी सेवा की।

क्षुल्लक पूरणसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक पूरणसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम राजमलजी जैन था। आपका जन्म आजसे लगभग ७५ वर्ष पूर्व घरोजा जिला शाजापुरमें हुआ था। आपके पिता श्री केशरीलाल थे व माता श्री जडावबाई थीं। आप जैसवाल जातिके भूषण है व सावला गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपकी दो शादियाँ भी हुई। आपके परिवारमें दो पुत्र एवं दो पुत्रियाँ है।

संसारकी नश्वरताको जानकर आपने स्वेच्छासे विक्रम संवत् २०१७ की पूर्णिमाको बूँदी (राजस्थान) में श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजी महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने शाहगढ, सागर, खुरई, झालरापाटन आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आपने रस त्याग व दही का त्याग कर दिया है।

●

क्षुल्लक प्रबोधसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक प्रबोधसागरजीके गृहस्थावस्थाका नाम पंडित पन्नालालजी था। आपका जन्म कार्तिक शुक्ला छठ विक्रम संवत् १९७३ को जारी (भिण्ड ग्वालियर) म० प्र० में हुआ था। आपके पिता श्री सूरजमलजी व माता श्री सूरजीदेवी थी। आप गोलसिंघारे जातिके भूषण है व सिंघई गोत्रज है। धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। विवाह भी हुआ। परिवार में दो भाई दो बहिन दो पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं।

स्वयंका अनुभव व आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराजकी सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। विक्रम सवत् २०२४ में ईडर (गुजरात) में आचार्य श्री १०८ विमलसागरजी महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको अनेकों पाठ कठस्थ याद हैं। आपने सुजानगढ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की।

●

क्षुल्लक पद्मसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक पदमसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम देवलाल मारवाडा था। आपका जन्म आषाढ वदी चौदस विक्रम संवत् १९५३ में नैनवाँ (बूँदी) राजस्थानमें हुआ था। आपके पिता श्री रामचन्द्र-जी व माता श्री छन्नाबाई थी। आप अग्रवाल जातिके भूषण व गर गोत्रज हैं। धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। विवाह भी हुआ।

आपने स्वयंके अनुभवसे संसारको नश्वर जानकर आचार्य श्री १०८ देशभूषणजी महाराजसे वैशाख सुदी ११ को विक्रम संवत् २०२१ में सातवी प्रतिमाके व्रत ले लिये। इसके बाद आषाढ वदी चौदस विक्रम संवत् २०२१ में आपने आचार्य श्री १०८ देशभूषणजी महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। टौंक, लावा, चोरू आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आपने तीनों रसोंको त्याग दिया है।

●

क्षुल्लक पूर्णसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक पूर्णसागरजी महाराज जिला सागरके अंतर्गत रामगढ़ (दमोह) के रहनेवाले हैं। जन्मतिथि आश्विन वदी १४ वि० स० १९५५ है। पिताका नाम परमलालजी और माताका नाम जमुनाबाई है और जाति परिवार है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है और महाजनी हिसाब-किताब का इनको अच्छा अनुभव है।

विवाह होनेके बाद ये कुछ दिन अपने घर ही कार्य करते रहे। उसके बाद दमोहके श्रीमान् सेठ गुलाबचन्दजीके यहाँ और सिवनीके श्रीमंत सेठ पूरणशाहजी व उनके उत्तराधिकारी श्रीमंत सेठ वृद्धिचंदजीके यहाँ कार्य करने लगे। प्रारम्भसे धार्मिक रुचि होनेके कारण घर में ही ये श्रावक धर्मके अनुरूप दया आदि आचार का उत्तम रूपसे पालन करते थे।

पत्नी वियोगके बाद ये घरमें बहुत ही कम समय तक रह सके और अंत में श्री १०८ आचार्य सूर्य-सागर महाराजके शिष्य होकर गृहत्यागीका जीवन बिताने लगे। इस समय आप ग्यारहवीं प्रतिमाके व्रत पाल रहे हैं। दीक्षा तिथि आश्विन वदी १ वि० सं० २००२ है। अपने कर्त्तव्य पालन करने में ये पूर्ण निष्ठावान हैं और मध्ययुगीन पुरानी सामाजिक परम्पराके पूरे समर्थक हैं।

इन्होंने एक केन्द्रीय महासमिति की दिल्लीमें स्थापना की है और उसके द्वारा अन्य संस्थाओंकी सहायता करते रहते हैं।

●

क्षुल्लक भूपेन्द्रसागरजी

●

क्षुल्लक श्री १०५ भूपेन्द्रसागरजीके बचपनका नाम कस्तूरचन्द्रजी जैन था। आपका जन्म आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व राठोडा (उदयपुर) में हुआ। आपके पिताका नाम जयचन्द्रजी व माताका नाम कस्तूरीबाई था। जाति नरसिंहपुरा है। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। विवाह भी हुआ। आपके दो भाई, चार बहिन व एक पुत्री हैं।

संसार भोगोंकी असारतासे आपमें वैराग्य प्रवृत्तिकी जागृति हुई। उदयपुरमें विक्रम संवत् २०२४ में स्वर्गीय आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली।

●

क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी 'सहजानन्द'

●

श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णीका जन्म कार्तिक कृष्णा १० वि० सं० १९७२ को झाँसी जिलेके दुमदुमा ग्राममें हुआ है। इनके पिताजीका नाम श्री गुलाब राय और माताका नाम तुलसाबाई है। जन्मका नाम मगनलालजी और जाति गोलालारे है। प्राइमरी स्कूलकी शिक्षाके बाद संस्कृत शिक्षाका विशेष अभ्यास इन्होंने श्री गणेश जैन विद्यालय सागरमें किया और वहाँसे न्यायतीर्थ परीक्षा पास की है। प्रकृतिसे भद्र देख वहाँपर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया था।

विवाह होनेके बाद गृहस्थीमें ये बहुत ही कम समय तक रह सके। पत्नी का वियोग हो जाने से ये सांसारिक प्रपञ्चोंसे विरक्त हो गये और वर्तमानमें ग्यारहवी प्रतिमाके व्रत पालते हुए जीवन सशोधनमें लगे हुए हैं। इनके विद्यागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी महाराज ही हैं। वर्तमान में ये सहजानन्द महाराज तथा छोटे वर्णीजी इन नामों से भी पुकारे जाते हैं।

इन्होंने सहजानन्द ग्रन्थमाला नामकी एक संस्था स्थापित की है। इसमें इनके द्वारा निर्मित पुस्तकोंका प्रकाशन होता है। इन्होंने एक अध्यात्म गीत की भी रचना की है। इसका प्रारम्भ "मैं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम" पदसे होता है। आजकल प्रार्थनाके रूपमें इसका व्यापक प्रचार व प्रसार है। अध्यात्म विद्या (समयसार) के ये अच्छे ज्ञाता व वक्ता है।

पूज्य श्रीवर्णीजी महाराजका इनके लिए विशेष शुभाशीर्वाद रहा है। अबतक आपने लगभग २०० से अधिक ग्रथोकी रचना अनुवाद आदि किया। जिनका प्रकाशन सहजानंद ग्रथमालासे हो चुका। आपका ज्ञानका क्षयोपशम काफी ऊँचा है। वर्णी सन्देश मासिक पत्रिका तो आपके प्रवचनोंका ही संग्रह लेकर प्रकाशित होती है। सौम्यशान्त आकृति, भद्रपरिणामी एवं गहन चिन्तक पूज्य सहजानन्दजी महाराज धर्म समाज एवं जिनवाणीकी भी वृद्धिमें इसी प्रकार सहकारी रहें यही भावना है।

●

क्षुल्लक योगीन्द्रसागरजी

●

क्षुल्लक श्री १०५ योगीन्द्रसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम हेमचन्द्र जी था। आपका जन्म आजसे लगभग ६५ वर्ष पूर्व राठौड़ा (उदयपुर) राजस्थानमें हुआ था। आपके पिता श्री पाढ़चन्द्रजी थे। जो खेती एवं व्यापार करते थे। आपकी माताजीका नाम माणिकबाई था। आप नरसिंहपुरा जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। विवाह भी हुआ। परिवारमें आपके तीन भाई, एक बहिन, चार पुत्र एवं चार पुत्रियाँ हैं।

आचार्य श्री १०८ शिवसागरजीकी सत्संगतिके कारण आपमें वैराग्य भावना जागृत हुई। अतः विक्रम संवत् २०२४ में उदयपुरमें आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराजसे आपने क्षुल्लक दीक्षा धारण-कर ली। आपने प्रतापगढ आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म की आशातीत वृद्धि की।

●

क्षुल्लक रतनसागरजी

●

क्षुल्लक श्री १०५ रतनसागरजीका बचपनका नाम रामचन्द्रजी था। आपका जन्म सोनी ग्राम (भिण्ड) में हुआ। आपके पिताका नाम श्यामलालजी जैन था जो नौकरी किया करते थे। आपकी माताका नाम राजमतीबाई था। आप गोलालारी जातिके भूषण हैं। आपका विवाह भी हुआ। परिवारमें आपके दो भाई, दो बहिन, दो भतीजे व दो भतीजियाँ है। उपदेश श्रवणके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी।

विक्रम संवत् २०२५ को सुजानगढमें आपने आचार्य श्री १०८ विमलसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको छहढाला आदिका विशेष ज्ञान है। आपकी पत्नी भी आपके पदचिह्नोंपर चली व क्षुल्लिका दीक्षा ले लीं।

●

क्षुल्लक श्रीविजयसागरजी

●

बच्चोंको सखा कहने वाले, उनसे घुलमिलकर उनकी बातचीतमें रस लेनेवाले और उन्हे सहज सरल स्वभावसे धर्मकी शिक्षा देनेवाले क्षुल्लक हैं विजयसागरजी।

आपका जन्म संवत् १९६८ में कोठियामें हुआ। आपका बचपन अतीव सुखमय बीता। १६ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह हुआ। एक पुत्री अभी भी है।

दस बरस बाद जब गृहिणीका स्वर्गवास हो गया तब आपके मनमें विचार आया—यो गृहस्थीमें रह-कर आत्महित करना सम्भव नही। गृहस्थी तो काजलकी कोठरी है। इसमें मनुष्य कितना भी सावधान होकर क्यों न रहे? पर राग-द्वेष, क्षोभ-लोभ, काम-क्रोध की रेखायें लग ही जाती है। यह विचार आते ही आपने बान्धवों और वैभवको छोड़ दिया।

संवत् २०१७ में देवलीमें आपने मुनि श्री जयसागरजीसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले ली। छह वर्ष बाद उक्त मुनिश्री जीसे ही आपने क्षुल्लक दीक्षा भी पिडावामें ले ली। यद्यपि आपकी लौकिक धार्मिक शिक्षा लगभग नही ही हुई थी तथापि गीत-भजनों और स्वाध्याय तथा सत्संगके माध्यमसे आपने जो आत्मानुभूति पायी, उसे धर्म और समाजके हितमें वितरित करते रहते हैं।

बड़ोंको उपदेश देनेवाले तो बहुत है पर वे मानते नही है। जो मान सकते हैं उन्हे कोई उपदेश देता नहीं है। आपकी यह बात एक रुपयेके सौ पैसों सी सही है।

●

क्षुल्लक विजयसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक विजयसागरजीका बचपनका नाम नेमीचन्द्र जी था। आपका जन्म आजसे ७० वर्ष पूर्व पुन्हेरा (एटा) में हुआ। आपके पिताका नाम हीरालालजी था जो एक सफल व्यापारी थे। आपकी माता मणिकबाई थी। आप पद्मावती पुरवाल जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ५वी तक हुई। आप बालब्रह्मचारी रहे। आपके चार भाई और चार बहिनें हैं।

संतोंकी संगतिसे आपमें वैराग्य भावना बढी व आपने वि० सं० २०२० में क्षुल्लक विजयसागर-जी से दूसरी प्रतिमा धारण कर ली। बादमें विक्रम संवत् २०२१ में कोल्हापुर स्थान पर आचार्य श्री विमलसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने सोलापुर, ईडर, सुजानगढ़ इत्यादि स्थानोंपर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आपने घी, तेल, दही, नमक आदि का त्याग किया है।

●

क्षुल्लक वृषभसागरजी

श्री १०५ क्षुल्लक वृषभसागरजी का गृहस्थ अवस्था का नाम ब्र० रतनलालजी था। आपका जन्म मगसिर सुदी तीज सवत् १९५२को इद् (जयपुर) में हुआ। आपके पिता का नाम श्री सूरजमलजी है। आपकी माता का नाम जडावबाईजी है। आप खण्डेलवाल जातिके भूषण हैं। आप लुहाडिया गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आप बालब्रह्मचारी रहे।

आचार्य विमलसागरजीकी संगतिसे आपमें वैराग्य भावना बढी। आपने फाल्गुन वदी चौथको वि० सं० २०२५में पद्मपुरामें पंचकल्याणकके साथ आचार्य श्री १०८ विमलसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने रेणवाल, मांजी, जयपुरमें चातुर्मास कर धर्म प्रभावना की। आपने दो रसोंका त्याग किया है।

क्षुल्लक वर्द्धमानसागरजी

बुन्देलखण्डकी ऐतिहासिक नगरी मडावरा के समीप सिमरिया ग्रामके वासी श्रीमान् खुशालचंदजी मोदी सन् १९४८के लगभग ललितपुर आकर रहने लगे। आपके श्री बच्चूलालजी, श्री मगनलालजी, श्री राजेन्द्रकुमारजी एवं श्री शीलचंदजी चार पुत्र एवं श्रीमती कस्तूरीबाई एक पुत्री है।

आपके चारों पुत्र धार्मिक वृत्तिके सम्पन्न भरे-पूरे परिवारके है! बडे पुत्र श्री बच्चूलालजी जब १५ वर्षके थे तब आपकी असमयमें मृत्यु हो गई थी।

श्री बच्चूलालजी जो पूज्य क्षुल्लक वर्द्धमानसागरके रूपमें वन्दनीय हुए की आरंभिक शिक्षा संस्कृत मध्यमा तक की साढूमल पाठशालामें हुई। गृह कार्य करते हुए भी आप आरम्भसे धार्मिकवृत्तिके भद्रपरिणामी रहे। आपके एक पुत्री चि० सुधाने जन्म लिया कि पत्नी भी परलोक सिधर गई। परिणामतः आपके वीत-राग परिणाम निरन्तर बढ़ते गये।

सन् १९७३में पूज्य मुनिश्री सम्भवसागरजी महाराजसे आपने ७वी प्रतिमाके व्रत अंगीकार किए। और 'ज्ञान ध्यान तपोरक्तः'की उक्तिको साकार करते हुए अपने परिणामोंमें सरलता लाते गये। तथा अगहन शुक्ला १४ वीर सं० २५०२ बुधवारके दिन मुनिश्री नेमिसागरजी महाराजसे श्री दि० जैन सिद्धक्षेत्र अहारजीमें क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली और आपका नाम श्री वर्द्धमानसागर रखा गया। आप सरल प्रकृतिके भद्र परिणामी, कठोरसंयमी, ज्ञानपिपासु हैं।

क्षुल्लक सुमतिसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजीका पहलेका नाम नेहनूराम था। आपका जन्म विक्रम संवत् १९६७ में भाद्रपद शुक्ला पंचमीको थोवा परगना जौरा जिला मुरैना (म० प्र०) में हुआ। आपके पिता श्री झिगुरियारामजी थे, जो दुकानदारी करते थे। आपकी माताजीका नाम चन्द्रादेवी था। जाति पल्लीवाल हैं। गोत्र देवरीहा है। आपकी लौकिक व धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपके परिवारमें चार भाई और एक बहिन थी। विवाह विक्रम सं० १९८०में भागीरथी देवीके साथ हुआ था। आपको एक पुत्र और दो पुत्रियोंके पिता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था पर तीनों सन्तानें जन्मके साथ ही मरणको प्राप्त हो गई थी। संवत् २००१में आपकी धर्मपत्नीका भी स्वर्गवास हो गया।

सन्तानका अभाव, गृहिणीका वियोग देख और लेखकर आपकी रुचि धार्मिक हुई। आपने शास्त्र-स्वाध्याय, जिनेन्द्रपूजन, सामायिकमें मन लगाया। आपने २६-२-६५को एटा (उ० प्र०) में श्री १०८ मुनि मन्थरसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। बीमारीके कारण आप विशेष आगे नही बढ सके। आपने बाल ब्रह्मचारीकी अवस्थामें लश्कर, ग्वालियर आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये व क्षुल्लक अवस्थामें छतरपुर, दिल्ली, जयपुर, बडौत आदि स्थानोंपर चातुर्मास किये। शास्त्र स्वाध्यायपर आप विशेष बल देते हैं। आपने यथावसर घी, नमक, तेल आदि रसोंका भी त्याग किया।

●

क्षुल्लक सुमतिसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजीका पहलेका नाम गिरवरसिंह है। आपका जन्म आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व पिडावा (झालरापाटन) राजस्थान में हुआ। आपके पिता श्री भँवर-लालजी हैं जो कृषि और दुकानदारीमें निपुण है। आपकी माता ताराबाई हैं। आप जायसवाल जातिके भूषण है। आपकी लौकिक शिक्षा साधारण ही रही। आप बाल ब्रह्मचारी है। आपके तीन भाई और तीन बहन हैं। आपने धार्मिक उपदेशोंका श्रवण किया, सत्संगतिमें जीवन व्यतीत किया, अतएव शीघ्र ही वैराग्यके संस्कार पनपे। आपने कम्पिला क्षेत्रमें श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले ली। आपने मुक्तागिरि तीर्थक्षेत्र पर विक्रम संवत् २०२१ में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने कोल्हापुर, शोलापुर, ईडर, सुजानगढ़ आदि जगहो पर चातुर्मास किये। आपने नमक तेल दही आदि रसोका त्याग किया है। आप बड़े ही मिलनसार व मृदुभाषी हैं।

●

क्षुल्लक सुमतिसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजीका जन्म सिरोंज (मध्यप्रदेश) में हुआ। आपने विक्रम संवत् १९६२ में अनुराधा नक्षत्रमें मंगलवारको जन्म लिया। आपके पिता श्री मंगलजीत भल्ला थे और माता मिश्रीबाई थी। उन्होंने बडे स्नेहसे आपका नाम बदामीलाल रखा। आपके नामका प्रभाव जीवन पर भी पड़ा। धर्म और समाजके हितमें आप, बाहरसे बादामके छिलकेसे पर भीतरसे अतीव गुणकारी रहे।

जब असमयमें ही गृहस्थीका ग्रह आपको लगा तब आपने पर्याप्त परिश्रम करके सभी बहनोंके विवाह किये। आत्मीयोंकी प्रेरणासे आपने अपना विवाह भी किया। दस बरस तक दाम्पत्य जीवनका निर्वाह किया पर विवाह विरागमें बाधक नही बना। पुत्र उत्पन्न मात्र हुआ और साथ ही अपनी माँको भी लेता गया।

आपने घर और परिवार छोडकर, शरीर और संसारसे विरक्त होकर आजीवन ब्रह्मचारी रहनेका निश्चय किया और श्री १०८ मुनि नेमिसागरजीसे सातवी प्रतिमा ले ली। पूज्य गणेशप्रसादजी, सहजानन्दजी वर्णीके सान्निध्यने आपको आत्मबोधकी दिशामें बढनेके लिये प्रेरित किया। विक्रम संवत् २०२३ में श्री १०८ मुनि जयसागरजीसे आपने क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आप सरलता और सादगी, सौजन्य और विद्वत्प्रेमके प्रतिनिधि है। पंडित द्यानतरायके शब्दोंमें आप आर्जव धर्मके प्रनिनिधि हैं।

●

क्षुल्लक सुमतिसागरजी

●

श्री १०५ क्षुल्लक सुमतिसागरजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम मदनचन्द्रजी था। आपका जन्म संवत् १९५० में किशनगढ़ (अजमेर) में हुआ। आपके पिता श्री फूलचन्द्रजी थे व माता गुलाबबाई थी। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही रही। आपके एक भाई था। आपके दो विवाह हुए। गार्हस्थक जीवन सुखसम्पन्न था।

आपने संवत् २०१२ में मगसिर कृष्णा एकमको स्वर्गीय १०८ आचार्य वीरसागरजी महाराजसे खानियाँमें क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने खानियाँ, ब्यावर, अजमेर, किशनगढ़, जयपुर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये।

●

क्षुल्लक शान्तिसागरजी

•

श्री १०५ क्षुल्लक शान्तिसागरजीका गृहस्थ अवस्थाका नाम छोटेलालजी था। आपका जन्म आजसे लगभग पच्चीस बरस पहले-लोहारिया (बाँसवाडागढी तहसील) में हुआ। आपके पिता श्री किशनलालजी हैं, जो किरानेके व्यापारी हैं। आपकी माता गुलाबबाई है। आप नरसिंहपुरा जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा हाईस्कूल तक हुई। आप आरम्भसे ही विषय वासनाओंसे विरक्त रहे। धार्मिक वातावरणमें पले। अतएव बाल ब्रह्मचारी रहे। आपके परिवारमें तीन भाई और एक बहन हैं।

आपने श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीकी विमलवाणीसे प्रभावित होकर विक्रम संवत् २०२५ में अजमेरमें क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपने भक्तामर, छहढ़ाला आदिका अध्ययन किया। आपने सुजानगढ़में चातुर्मास किया।

•

क्षुल्लक शान्तिसागरजी

•

श्री १०८ क्षुल्लक शान्तिसागरजीका पहलेका नाम भरम नरसिप्पा चौगुले था। आजसे लगभग ७५ वर्ष पूर्व आपका जन्म गल्तगा (बेलगाँव) में हुआ। आपके पिता श्री नरसिप्पा रतनप्पा चौगुले थे, जो कृषि फार्म पर कार्य करते थे। आपकी माता श्रीमती गगाबाई थी। आप चतुर्थ जातिके भूषण हैं, आपका गोत्र खेत्री है। आपने धार्मिक अध्ययन स्वयं ही किया। आपके परिवारमें एक भाई और तीन बहन है। आपका विवाह हुआ। आपके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं।

गृहस्थ अवस्थामें ही आप शास्त्र श्रवण करते थे। दशलक्षण धर्मका मनन करते थे। सोलहकारण भावनाओं पर चिन्तन करते थे। इसलिये आपमें वैराग्यके संस्कार बढ़े। आपने दिनांक २५-२-१९६६ को बारेगाँव (बेलगाँव) में श्री १०८ आचार्य नेमिसागरसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको दशभक्ति पाठ कण्ठस्थ है। आपने हुपरी, डगार, शेडवाल, टिकैतनगर आदि स्थानों पर चातुर्मास किये। आपने जीवन पर्यन्तके लिये मिष्ठान्न और हरे शाकका त्याग कर दिया है। आप संयम और विवेककी दिशामें और भी आगे बढे तथा देश और समाजको बढ़ावें।

•

क्षुल्लक सम्भवसागरजी

श्री १०५ क्षुल्लक सम्भवसागरजीका गृहस्थावस्थाका नाम माँगीलाल जैन था। आपका जन्म पचहत्तर वर्ष पहले मण्डलेश्वरमें हुआ। आपके पिता श्री वीरासा जैन थे, जो नौकरी करते थे। आपकी माताजीका नाम कस्तूरीबाई था। आप पोरवाल जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आप बाल ब्रह्मचारी हैं। अकेलेपनके कारण आप धर्मकी दिशामें सहज ही बढ सके।

आपने विक्रम सं० २००८में इन्दौरमें श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराजसे क्षुल्लक दीक्षा ले ली। आपको भजन-स्तुतियों-पदोंसे बडा प्रेम है। आपने फुलेरा, भवानीगंज, औरंगाबाद, गिरनारजी, इन्दौर, गजपन्थाजी, उज्जैन आदि नगरोंमें चातुर्मास किये। आप रविवारको कभी भी नमक नहीं लेते हैं।

क्षुल्लक शीतलसागरजी

ज्ञानकी ज्योति पांडित्यसे नहीं, प्रज्ञासे जगती है। प्रज्ञावान पुरुष जीवनमें श्रद्धा और ज्ञानको जीवंत बनाकर अपने चारित्रको तन्मय कर लेता है। एक ऐसे ही साधक आत्मा क्षुल्लक शीतलसागर हैं जिन्होंने जैन-साहित्यकी मूक सेवा कर अपनी संयम साधनाको अक्षुण्ण बनाये रखे।

आपका गार्हस्थिक नाम बद्रीलाल था। आपके पिता श्री गोपीलालजी सरखंडिया पो० घाटोली जिला झालरापाटन (राजस्थान) में अफीम व गन्नेकी खेती करते थे। आपका जन्म आषाढ सुदी ६ सं० १९८९में माता श्रीमती तुलसीदेवीके गर्भसे हुआ।

आपने १९५३में एक वर्ष सांगोद तहसीलके अजनावर ग्राममें बालकोंको पढानेका कार्य किया किंतु अपनी बढती वैराग्यभावनासे वहाँसे चले आये। आप बालब्रह्मचारी रहे।

पन्द्रह दिनके भीतर पिता व काकाकी असामयिक मृत्युसे संतप्त तथा खानपानकी अशुद्धिके त्याग और बढती हुई धार्मिक भावनाने क्षुल्लक पदकी दीक्षा लेनेका संकल्प किया। अन्तमें क्षु० गणेशप्रसाद वर्णी, भगत प्यारेलालजी तथा बाबू सुरेन्द्रनाथ की उपस्थितिमें ईशरी बाजार (सम्मेदशिखर) के व्रती आश्रममें सन् १९५५में आचार्य श्री महावीरकीर्तिजी महाराजसे क्षुल्लक पदकी दीक्षा ली तबसे फिरोजाबाद, जयपुर, खानियाँ, नागौर, मारवाड, डेह, सुजानगढ़, लाडनू आदि स्थानोंपर विभिन्न आचार्य संघके साथ रहकर चातुर्मास करते आ रहे हैं। राजस्थान क्षेत्र आपके भ्रमणका केन्द्र रहा।

साहित्य सेवाके रूपमें आपने अब तक चार हस्तलिखित ग्रंथोंकी प्रतियोंका (भद्रबाहु चरित्र, गौतम-गणधर-चरित्र, युक्त्यनुशासन एवं सिद्धिप्रिय स्तोत्र) सम्पादन तथा सुज्ञानमाला भाग १, २, ३, सुखानुभव की तरंगें, आप्तमीमासा, सदुपदेश दृष्टांत मालिका भाग १, २, ३, का सम्पादन कर प्रकाशन करवाया। दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि आपकी स्वतन्त्र रचना है। जो स्व-प्रयत्नसे प्रकाशित करवायी।

क्षुल्लिका अजितमतीजी

●

श्रीमती सुन्दरबाईका जन्म आजसे करीब ५० वर्ष पूर्व जबलपुरमें हुआ था। आपके पिता बशोरेलालजी एवं माता बुद्धिबाई थी। आप जातिसे गोलापूर्व थी। आपका विवाह राजारामजीसे हुआ। आपकी लौकिक शिक्षा नहींके बराबर थी किन्तु धार्मिक शिक्षा रत्नकरंडश्रावकाचार तक हुई। आपके चार भाई, तीन बहिन एवं तीन पुत्र व सात पुत्रिया हैं। घरमें व्यवसाय दूकानदारी व एजेन्सी है। जब आपके नगरमें आदिसागरजी महाराज आये तो उनके धर्मोपदेशसे प्रभावित होकर आपने सं २०२४में चैत्रवदी पंचमीको श्रवणबेलगोलामें आचार्य देशभूषणजीसे दीक्षा ले ली। आप छहढाला, 'वैराग्यभावनाका विशेष ज्ञान रखती हैं।

आपने कोतली, फुलेरा आदि स्थानोंपर चातुर्मास कर वहाँकी समाजको धर्म लाभ दिया। आप सोलहकारण, कर्मदहन, अष्टाह्लिका, पंचकल्याण व दशलक्षण व्रतोंका विधिवत पालन कर रही है। आप कई जगहोंपर भ्रमण करके वहाँके समाजोंको धर्मलाभ दे रही हैं।

●

क्षुल्लिका आदिमतीजी

●

श्री १०५ क्षुल्लिका आदिमतीका गृहस्थावस्थाका नाम शशिकुमारी था। आपका जन्म राजमन्नारगुडी (मद्रास) में हुआ। आपके पिता श्री वर्धमान है। माता पूर्णमतीजी है। आपकी लौकिक शिक्षा नाममात्रकी कक्षा दूसरी तक हुई पर स्वभावमें चन्द्रमा सी शीतलता होनेके आप दोनो कुलोंमें सम्मान्य हुईं। आपके पति अपाडमुदलिया वैदारवांया निवासी थे। जब वे ही नही रहे तब आपको घर भार लगने लगा।

आपने भाइयोंसे अनुमति ली और नागौरमें श्री १०८ आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराजसे सन् १९५८ में दीक्षा ले ली। आपने नागौर, अजमेर, कल्लोल, पावागढ़, मांगीतुंगी, गजपन्था, कुन्थलगिरि आदि अनेक स्थानों पर चातुर्मास किये। धर्म प्राण जनताको अच्छी बातें सिखायी।

●

क्षुल्लिका आदिमतीजी

श्री १०५ क्षुल्लिका आदिमतीका गृहस्थावस्थाका नाम जुबाई है। फल्टनको आपका जन्म स्थान होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके पिता श्री फूलचन्द्रजी दशाहूमण थे। आपकी शिक्षा नाममात्रको कक्षा तीसरी तक हुई। जब आप असमयमें ही विधवा हो गईं तब आपने साधु-सत्संग, धर्मश्रवण, धर्म ध्यानमें मन लगाया।

कोल्हापुर नगरमें सन् १९६० में श्री १०८ आचार्य देशभूषणजी महाराजसे आपने क्षुल्लिका दीक्षा ले ली थी। आपने लाठी, आनन्द, फल्टन, आकूलज, भसवड़, गजपन्था आदि स्थानो पर चातुर्मास किये। आप अतीव सरल स्वभावकी धार्मिक प्रकृति वाली महिला हैं। धर्म श्रवण साधु-सम्पर्कसे आपने अच्छा खासा अनुभव प्राप्त कर लिया है।

●

क्षुल्लिका कुन्थमतीजी

आपका जन्म लगभग ४५ वर्ष पूर्व मालेगाँव नाशिकमें हुआ था। आपके पिता श्री बैजूलालजी पाटोदी हैं। व माता श्री आशादेवी हैं। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं व पहाडया गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह भी हुआ परन्तु आपको २० वर्षकी अवस्थामें वैधव्य प्राप्त हो गया।

उपदेश श्रवणके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्तिकी जागृति हुई। आपने श्री १०५ आर्यिका श्री अनन्तमतिसे कन्नड (औरंगाबाद) में सन् १९६८ में दीक्षा ले ली। आपने कन्नड, गजपंथा आदि स्थानों पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की।

●

क्षुल्लिका गुणमती माताजी

●

प्रशममूर्ति विदुषीरत्न परमपूज्य श्री १०५ क्षुल्लिका गुणमती माताजी दिव्य देदीप्यमान नारी रत्न हैं जिन्होंने अपने जीवनमें सचित ज्ञानराशिको दूसरेके हितके लिए अर्पित कर दिया और अपना सारा जीवन संयमकी आराधनामें लगा दिया।

माताजीका जन्म ऐसे सपन्न परिवारमें हुआ जहाँ वैभव और ऐश्वर्यकी कोई कमी नहीं। जैन कुल-भूषण स्वनाम धन्य ला० हुकमचदजीके घर संवत् १९५६ में हुआ।

चार पुत्रोंमें एक कन्याका जन्म होनेसे उसका नाम चावली रखा गया। बादमें उसकी विशेष ज्ञान वृद्धिको देखते हुए ज्ञानमती नाम पड़ा। बचपनमें अत्यन्त लाड़-प्यारसे पालन होनेके कारण सभी प्रकारके सांसारिक सुख थे परन्तु कौन जानता था कि विवाहके ३६ दिन के पश्चात् विधिनाकी क्रूर दृष्टिके कारण माथेका सिन्दूर पुंछ जायेगा।

जैनधर्मकी शिक्षा ही कुछ ऐसी है जो हर्षमें उन्मत्त होनेसे और शोकमें आक्रान्त होनेसे बचाती है। बल्कि कर्मोंकी विचित्र गति जानकर साहस, पोरुष और आत्मशक्तिको प्रबल कर देती है। दुर्भाग्य सौभाग्य रूपमें परिणत हो जाता है।

त्यागमूर्ति बाबा भागीरथजी जैसे संतोंके पधारनेसे जिनशासनके अध्ययनकी रुचि जगी। व्रत नियम संयम जीवनका लक्ष्य हो गया। सौभाग्यसे विदुषी रत्न लोकसेवी शिक्षा प्रचारिका श्री रामदेवीजीके सम्पर्कसे जैनधर्मके अध्ययनमें निष्णान्त होने लगी। सिद्धान्तशास्त्री पं० गौरीलालजीने शाकटायन व्याकरणका अध्ययन कराया। फलस्वरूप जिनवाणीके अध्ययनमें अबाधगतिसे प्रवृत्ति होने लगी। ज्ञानाराधनका स्वाद दूसरे भी उठायें। असमर्थ विधवा सहायता योग्य बहिनोंकी उन्नति कैसे हो इस बलवती भावनाके फलस्वरूप गुहानामें श्री ज्ञानवती जैन वनिताश्रमकी स्थापना की गई। इस युगमें समन्तभद्रके समान प्रचारकी भावना रखने वाले ब्र० शीतलप्रसादजीने जैनकुलभूषण स्वनाम धन्य सेठ माणिकचंदजीकी सुपुत्री विदुषीरत्न मगन-बहेन, चारित्र मूर्ति ब्रह्मचारिणी चदाबाईजी जैसे मातृवत्सला नारी रत्नोंके समक्षमें नारी जातिके उद्धारके लिए यह संस्था कल्पवृक्षके समान फलदायी सिद्ध हुई।

माता ज्ञानवतीजीने इसे अपने जीवनका प्राणाधार समझा। दिन रात संस्थाकी उन्नतिमें अहर्निश दत्तचित्त हो संस्थाके विकासके मार्ग पर अग्रसर होती गई।

आन्तरिक सयमकी प्रबल भावनाके फलस्वरूप चारित्रके विकासकी अटापटी लगने लगी। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके सघके साधुओंको आहार दान वैयावृत करना, जहाँ संघका विहार हो वहाँ जाना अपने जीवनका लक्ष्य बना लिया। पचाणुव्रत व्रत प्रतिमा और क्रमशः बढ़ते हुए चारित्रकी सीढ़ी पर चढ़ने लगी। परमपूज्य शान्त मूर्ति आचार्य वीरसागरजी महाराजसे क्षुल्लककी दीक्षा अंगीकार की।

अपने व्रतोंसे निर्बाध और निरतिचार पालन करती हुई, सर्वत्र ज्ञानका प्रचार करती हुई, दरियागंजमें कन्याओंमें धार्मिक शिक्षाके प्रचारके लिए श्री ज्ञानवती कन्या पाठशालाकी स्थापना करायी और रायसाहब उल्फतरायजीकी पुत्रवधू स्वर्णमालाकी देखरेखमें संस्था दिनोदिन उन्नति करने लगी। स्त्री शिक्षाके प्रचार-के लिए चारित्रकी वृद्धिके लिए दुर्धर तपका पालन करती हुई जिनशासनके गौरवको बढ़ा रही हैं।

●

क्षुल्लिका जिनमतीजी

●

श्री १०५ क्षुल्लिका जिनमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम छीगनबाई था। आपका जन्म मगसिर वदी पंचमी विक्रम संवत् १९७० मे सिनोदिया (राजस्थान) में हुआ था। आपके पिता श्री गोपीलालजी हैं व माता श्री कस्तूरीबाई हैं। आप सोगानी जातिकी रत्न हैं। आप कासलीवाल गोत्रज है। आपकी लौकिक शिक्षा साधारण हुई परन्तु धार्मिक शिक्षामें आपने छहढाला, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि ग्रन्थोंका गहन अध्ययन किया। आपका विवाह श्री मांगीलालजी पाटनीके साथमें हुआ था। आपके परिवारमें चार भाई, चार बहिन, एक पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं।

पूज्य माता श्री धर्ममतीजी व बुद्धिमतीजीके उपदेश श्रवणके कारण आपमें वैराग्य प्रवृत्ति जाग उठी। परिणामत. आपने मगसिर सुदी दूज विक्रम संवत् २०२३ मे लाल मन्दिर दिल्लीमे श्री १०८ आचार्य देशभूषण महाराजसे क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याणकी ओर अग्रसर है।

●

क्षुल्लिका जिनमतीजी

●

आप पिता श्री चन्द्रदुलजी एव माता श्री दुरीबाईकी पुत्री है। आपका गृहस्थावस्थाका नाम मकुबाई था। जन्म सं० १९७३, स्थान पाडवा, सागवाडा (राजस्थान) जाति नरसिंहपुरा है। पहली प्रतिमा आचार्य १०८ महावीरकीर्तिजी, सातवी प्रतिमा मुनि वर्द्धमानजीसे ली थी। क्षुल्लिका दीक्षा २०२४ फागुन सुदी १२, दीक्षा स्थान-पारसोलमे ली थी। विवाहके छ महीने बाद वैधव्य हो गया। आपके दो भाई हैं। आप भी विदुषी तपस्विनी क्षुल्लिका है। आप स्वभावसे शान्त प्रकृति की हैं।

●

क्षुल्लिका प्रभावतीजी

●

आप पिता श्री मुन्नेलालजी एवं माता श्री कपूरी देवीकी पुत्री हैं। आपका जन्म स्थान अहारन (आगरा) है। जन्म तिथि भादों सुदी ११ सन् १९२९ जाति पद्मावती पुरवाल है। गृहस्थावस्थाका नाम जयमाला देवी था। आपका विवाह श्री सुगंधीलालजी खांड़ा (आगरा) निवासीसे हुआ था। परन्तु दुर्भाग्यसे वैधव्यका अपार दुख उठकर शीघ्र आ पड़ा। माह वैशाख सं० १९६९ ई० को आगरामें द्वितीय प्रतिमा एवं मिति माघ सुदी ११ स० १९६९ को फिरोजाबादमें क्षुल्लिका दीक्षा पूज्य श्री आचार्य विमल-सागरजीसे ली। आप संघकी विदुषी एवं तपस्विनी एव शान्त परिणामी क्षुल्लिका हैं।

●

क्षुल्लिका पार्श्वमतीजी

●

श्री १०५ क्षुल्लिका श्री पार्श्वमतीजीका जन्म आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व पाणुर (उदयपुर) राजस्थानमें हुआ था। आपके पिताजी श्री हुम्मचन्द्रजी है व माता श्री केसरबाई हैं। आप नरसिंहपुरा जातिके भूषण है। आपकी लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह भी हुआ। परन्तु दुभाग्यसे एक वर्षके बाद ही वैधव्य प्राप्त हुआ। आपके परिवारमें एक भाई व चार बहिन हैं।

आपने कार्तिक शुक्ला बारस विक्रम संवत् २०२४ को आचार्य श्री १०८ श्री विमलसागरजी महाराजसे पारसोला नामक स्थान पर क्षुल्लिका दीक्षा ले ली। आपने सुजानगढ़ आदि स्थानो पर चातुर्मास कर धर्म वृद्धि की। आपने घी, तेल, दहीका त्याग कर दिया है। आपने रसका भी त्याग कर दिया है।

आपका उत्कृष्ट त्यागमय जीवन एवं स्वाध्यायपूर्वक अर्जित आगम ज्ञान आपकी तप.साधनामें चार चाँद लगाये हैं।

●

क्षुल्लिका ब्राह्मीमतीजी

●

आप पिता खेमजी किशनजीकी पुत्री है। जाति दशा हूमड़। आपका जन्म छाणी (उदयपुर) में हुआ था। आपको शादी बाबलवाडामें हुई थी। दुर्भाग्यसे १ वर्षके अन्दर ही वैधव्य दु ख उठाना पड़ा। आप राजगृहजी क्षेत्र पर ही रक्षाबन्धनके पुनीत दिन पूज्य आचार्य श्री विमलसागरजीसे क्षुल्लिका दीक्षा ली। आप सरल एवं शान्त परिणामी हैं।

●

क्षुल्लिका विमलमतीजी

●

श्री १०५ विमलमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम फूली बाई था। आपका जन्म आजसे लगभग ७० वर्ष पूर्व अंडगाबाद (बंगाल) में हुआ था। आपके पिता श्री छेगमतजी थे। जो प्रेसका काम करते थे। आपकी माता श्री दाखाबाई थीं। आप खंडेलवाल जातिके भूषण हैं। आपकी धार्मिक और लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपका विवाह भी हुआ। आपके परिवारमें तीन भाई, दो बहन, तीन पुत्र व तीन पुत्रियाँ हैं।

गुरु संगतिके कारण भावोंमें विशुद्धि आयी। अतः आपने विक्रम संवत् २०२६ में सुजानगढ़ (राजस्थान) में श्री आचार्य विमलसागरजीसे क्षुल्लिका ले ली। आपको णमोकार आदि मंत्रका विशेष ज्ञान है। आपने तेल, दही आदि रसोंका त्याग किया है।

●

क्षुल्लिका संयममतीजी

●

श्री १०५ क्षुल्लिका संयममतीजीका पहलेका नाम सीताबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व निवारी (भिण्ड) म० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री सनोखनलालजी थे और माताका नाम लड़ेलीबाई था। आप गोलालारीय जातिके भूषण थे। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह भी हुआ। आपके परिवारमें चार भाई व दो बहनें थी। आपके पिता व पति अनाजके व्यापारी थे। यों आपका लौकिक जीवन सुखमय था।

श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीकी संगतिसे आपके भाव वैराग्यकी दिशामें बढे। आपने विक्रम संवत् २०२६ में श्री १०८ आचार्य विमलसागरजीसे सुजानगढमें दीक्षा ले ली। आप णमोकार मन्त्रमें बड़ी आस्था रखती है। आपने घी, नमक, दही, तेल, रसोंका त्याग किया है।

●

क्षुल्लिका सुव्रतमतीजी

●

श्री १०५ क्षुल्लिका सुव्रतमतीजीका गृहस्थावस्थाका नाम शान्तिबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग चालीस बरस पहले हिंगोली (महाराष्ट्र) मे वि० सं० १९९१ में हुआ। आपके पिताश्री भगवान राव है और माता सरस्वतीदेवी है। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा ६ठी तक हुई और धार्मिक शिक्षा बाल-बोध जैनधर्म ४था भाग तक हुई। आपके परिवारमें तीन भाई व चार बहनें हैं। आपका विवाह ९वर्षकी अल्पावस्थामे हो गया था किन्तु दुर्भाग्यवश ६माहमें ही आपके पतिदेव शान्त हो गये। जिससे आपको जीवन भार बना।

आपने संसारकी असारताको समझा और अनन्तमतीजीकी सत्संगतिसे आपके भाव वैराग्यकी दिशामें जाग्रत हुए। आपने विक्रम संवत् २०२०में कार्तिक शुक्ला एकादशीको श्री १०८ आचार्य धर्मसागरजीसे खुरईमें सातवीं प्रतिमा ले ली। फिर आपने विक्रम संवत् २०२१में कार्तिक शुक्ला एकादशीको श्री १०८ आचार्य शिवसागरजीसे पपौराजी क्षेत्रपर क्षुल्लिका दीक्षा भी ले ली। आपकी आलोचना एवं भक्तामर पाठपर बड़ी आस्था है। इनके विषयमें आपकी अच्छी जानकारी है।

●

क्षुल्लिका शान्तिमतीजी

●

श्री १०५ क्षुल्लिका शान्तिमतीजीका पहलेका नाम सुमनबाई था। आपका जन्म आजसे लगभग ३० वर्ष पूर्व कोल्हापुर नामक नगरमें हुआ था। आपके पिताका नाम बापू है, आपकी माताका नाम सोनाबाई है। आप जातिसे पंचम हैं। आपके परिवारमें एक भाई हैं। आपकी लौकिक शिक्षा कक्षा पाँचवी तक हुई। आपका विवाह हुआ और विवाहके एक वर्ष बाद ही दुर्भाग्यने आपको आ घेरा। पति-वियोग जैसी विषम विपत्तिको आपने धैर्यपूर्वक सहा।

आपके नगरमें जब मुनि-संघ आया तब उनके उपदेशोंसे आपके परिणामोंमें विशुद्धता आई। अतएव आपने दीक्षा लेनेकी बात विचारी और फिर डिप्टीगंज दिल्लीमें दीक्षा ली। आपकी दीक्षा-तिथि वीर निर्वाण सं० २४९५ है। आपके दीक्षा गुरु श्री १०८ आचार्य विमलसागरजी थे। आपने भक्तामर, छहढाला आदिका विशेषतया अध्ययन किया। आपका प्रथम चातुर्मास दिल्लीमें ही हुआ था। आपने तेल और नमकका त्याग कर दिया है।

●

क्षुल्लिका श्रीमतीजी

●

आप पिता श्री नेमीनाथजी एवं माता श्री सोनाबाईजीकी पुत्री हैं। आपके जन्मका नाम मालतीबाई है। आपका जन्मस्थान सकडी जिला कोल्हापुर है। आपकी शादी श्री पारिसा आदिनाथ उपाध्याय मु० पो० छोटी गिरहटी तालूका अथनी जिला बेलग्राममें हुई थी। परन्तु दुर्भाग्यसे शादीके थोडे दिन बाद ही आप पर वैधव्यका अपार दुख आ पड़ा। आप आचार्य श्रीविमलसागरजीके संघमें गत वर्षोंसे रहकर धर्मध्यान कर रही थी। परिणामोंमें वीतरागता आई और राजगृही क्षेत्रपर मिति चैत्र सुदी ४ शनिवार दिनाक १८-३-१९७२को क्षुल्लिका दीक्षा ली। आप काफी शान्त भद्रपरिणामी एव जिज्ञासु महिला है। 'ज्ञान ध्यान तपोरक्तः' आपका स्वभाव बन गया।

●

ब्र० कमलापतिजी

●

ब्र० कमलापतिजी सेठका जन्म लगभग ७० वर्ष पूर्व मध्यप्रदेशके जिला बंडान्तर्गत बरायठामें हुआ था। आपको दो विवाह हुए थे उनमें से प्रथम पत्नीसे एक पुत्र और दूसरीसे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई थी। सब सन्तानें जीवित हैं और सदाचारपूर्वक गार्हस्थ जीवनयापन कर रही हैं।

सेठजी स्वभावके सरल और धर्मात्मा पुरुष थे जो भी इनसे सम्पर्क करता था उस पर ये अपनी ममता उड़ेले बिना नहीं रह सकते। अपने जीवनमें ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार किये थे और यथावत् पालन करते थे। पूज्य वर्णीजीके प्रति विशेष अनुराग और श्रद्धा थी। इनका स्वाध्याय ज्ञान काफी ऊँचा था।

●

स्व० ब्र० पं० खेतसीदासजी

●

ब्र० खेतसीदासजीका जन्म वि० सं० १९३५ को बिहार प्रदेशके गिरीडीह नगरमें हुआ था। पिताका नाम प्रयागचन्दजी, माताका नाम रुकमणी देवी और जाति खण्डेलवाल थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई थी फिर भी इन्होंने स्वाध्याय द्वारा अच्छी योग्यता सम्पादित कर ली थी।

उनके श्री गिरधारीलालजी, चिरंजीलालजी, और श्री महावीरप्रसादजी ये तीन पुत्र तथा श्री पूर्णी बाईजी, ईसरीबाईजी ये दो पुत्रियाँ हैं। श्री ईसरी बाई यद्यपि अजैन कुलमें विवाही गई हैं। पर ये अपने पूज्य पिताजीके द्वारा प्राप्त संस्कारोंके कारण जैनधर्मका उत्तम रीतिसे पालन करती हैं।

ब्र० जी स्वभावके उदार, कट्टर तेरहपंथके अनुयायी और सप्तम प्रतिमाके व्रत पालते थे इन्होंने अपने जीवनकालमे एक शिखरबंद मन्दिरका निर्माण कराया था और उसकी व्यवस्था को दो मकान लगा दिये।

वैसे तो ये अपने पुत्रोंके पास रहते थे फिर भी इनका अधिकतर समय स्वाध्यायमें व्यतीत होता था। इन्होंने समता तत्त्वका अच्छी तरह अभ्यास किया था। इनका समाधिमरण फाल्गुन शुक्ला ८ वि०सं० २०११ को हुआ था। पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णीमें अनन्य श्रद्धा थी।

●

स्व० ब्र० गोविन्दलालजी

●

ब्र० गोविन्दलालजीका जन्म वि० सं० १९३५ के आषाढ़ सुदी १ को गयामें हुआ था। पिताका नाम श्री लक्ष्मणलालजी जैन था। जाति खण्डेलवाल और गोत्र लुहाड़या था। इनकी शिक्षा इण्टरमीडिएट तक हुई थी। स्वाध्याय द्वारा इन्होंने धार्मिक योग्यता भी अच्छी तरह सम्पादित कर ली थी।

ये शिक्षा प्राप्त करनेके बाद जजकी कचहरीमें शिकस्तेदारके पदपर रहकर सरकारी नौकरी करने लगे थे। वहाँसे निवृत्त होनेके बाद इन्होंने ब्रह्मचर्य व्रतकी दीक्षा ले ली थी। इनके दीक्षागुरु पूज्य वर्णीजी महाराज थे।

पूज्य श्री वर्णीजी महाराजके सम्पर्कमें आनेके बाद अपना उदासीन जीवन व्यतीत करते हुए ये ईसरी उदासीनाश्रममें रहने लगे थे। इन्हें सरकारकी ओरसे पेंशन मिलती थी इसलिए ये अंततकका खर्चा स्वयं करते रहे। इनके पास जो सम्पत्ति थी उसमेंसे पाँच-सात हजार रुपये इन्होंने दानमें भी व्यय किया था। वि० सं० २००९ में इनकी इहलीला समाप्त हो गयी। इनका जीवन सदा परोपकारमें ही व्यतीत हुआ। आप एक निःस्पृही, समाज-सेवी, उदार व्यक्ति थे।

●

स्व० ब्र० पंडित गौरीलालजी शास्त्री

●

ऐसे व्यक्तित्व जो आचरण और ज्ञानकी महिमासे मंडित होते है, जीवनके सच्चे पोषक होते हैं। सप्तम प्रतिमाधारी, जाति-भूषण, धर्मदिवाकर विद्वद्वर्य प० गौरीलालजी जैन सिद्धान्तशास्त्री ऐसे ही महान् आत्मा थे, जिन्होंने तत्कालीन परिस्थितियोंसे जूझकर छद्मस्थ वेषमें रहकर ब्राह्मण विद्वानोंसे संस्कृतका अध्ययन किया, क्योंकि उस समय ब्राह्मण, जैन-विद्वान्को संस्कृत पढ़ानेसे घृणा करते थे।

आपने मथुरामें दि० जैन महाविद्यालयकी स्थापना कर उसे जैन शिक्षाका केन्द्र बनाया तथा स्वयं जैनबद्री-मूडबद्रीमें रहकर जयधवलादिका स्वाध्याय किया। आपने पद्मावती परिषद्की स्थापना करके 'पद्मावती पुरवाल' पत्र निकाला और उसके सम्पादक रहे। आपने आगे चलकर 'शास्त्रीय परिषद्' की स्थापना की और अपने सम्पादकत्वमें 'जैन सिद्धान्त' पत्र निकाला।

विक्रम संवत् १९९७ में आपका स्वर्गवास हो गया था।

●

स्व० ब्र० चम्पालालजी सेठी

ब्र० चम्पालालजी सेठीका जन्म वि० सं० १९५८ में मन्दसौरमें हुआ था। पिताका नाम मुन्नालाल जी और जाति खण्डेलवाल थी। संस्कृत शिक्षाके साथ इन्होंने राजवार्तिक और पञ्चाध्यायी आदि उच्च-कोटिके ग्रन्थोंका अध्ययन किया था।

गृहस्थावस्थामें रहते हुए भी इनका चित्त आत्मकल्याणको ओर विशेष था इसलिए धीरे-धीरे ये गृहस्थावस्थासे निवृत्त होकर मोक्षमार्गमें लग गये। ये ब्रह्मचर्य प्रतिमाका उत्तम रीतिसे पालन करते थे।

पूज्य वर्णीजीकी चर्या और उपदेशोंका इनके जीवनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्हींकी सलाहसे बहुत समय तक वे और श्रीमान् ब्र० सुमेरचन्दजी भगत, श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णीके साथ रहकर उत्तरप्रान्तीय जैन गुरुकुल हस्तिनापुरको सेवा करते रहे। कुशल वक्ता होनेसे इनका समाजपर स्थायी प्रभाव दृष्टिगोचर होता था।

सम्भवतः इनका स्वर्गवास चार वर्ष पूर्व कुण्डलपुरमे हुआ था।

ब्र० चिरंजीलालजी

चौधरी चिरंजीलालजीका जन्म विक्रम संवत् १९५६में विदिशामें हुआ। आपके पिता श्री रतन-चन्द्रजी परवार जातिके भूषण थे और साहूकारी करते थे। आपकी आरम्भिक शिक्षा भोपालमें हुई। आपने ललितपुर, इन्दौरमे भी अध्ययन किया।

तीर्थक्षेत्र कमेटी बम्बई और बिहार तीर्थक्षेत्र कमेटी भागलपुरमें कार्य किया। राजगृही, कुण्डलपुर, गुणावा, अयोध्यामें मुनीम रहे। बम्बई और खण्डवामें रहकर प्रेसके कार्यमें भी सहयोगी रहे। कार्य क्षेत्रमें आपने सदैव शुभोपयोगका लक्ष्य रखा। आपकी प्रवृत्ति विरक्ति और निवृत्तिकी ओर उन्मुख रही। क्योंकि आप नौकरीपर ही निर्भर नहीं रहे बल्कि व्यापारी भी रहे। इसलिए आपकी आर्थिक स्थिति समुचित रही। इन्दौर, अशोकनगरके उदासीन आश्रमोंमें रहनेके बाद आप जयसागरजीके संघमें रहे। आपने दूसरी प्रतिमा धारण कर ली।

आपका अधिकांश समय भजन, पूजन, शास्त्र-स्वाध्यायमें व्यतीत होता है।

ब्र० पंडित चुन्नीलालजी काव्यतीर्थ

●

पंडित और ब्रह्मचारी चुन्नीलालजीका जन्म आजसे लगभग ७५ वर्ष पहले हुआ। आपका जन्म सिरगन (ललितपुर) उत्तर प्रदेशमें हुआ। आपने २८ जुलाई १८९९ को जन्म लिया। आपके पिता श्री नन्दीलालजी थे और माता कंचनबाई थी पर माता-पिताकी सुखद वरद छाया शीघ्र ही आपके सिरसे उठ गई।

पंडितजीने सिरगनमें ही रहकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। धार्मिक शिक्षा भी पंडित रखबदासजीके समीप प्राप्त की। पंडित मूलचन्द्रजी प्रतिष्ठाचार्यकी प्रेरणासे आप अनेक साथियों सहित बरुआसागर भी पढने गये पर दो माह बाद ही यह पाठशाला सागरमें आ गई। सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशालासे ही आपने सन् १९२१ में काव्यतीर्थकी उपाधि तथा न्यायमध्यमा पास की।

सन् १९२२ से आजतक आपने गत ५३वर्षोंमें जो समाज-सेवाका कार्य किया —ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम, हस्तिनापुर, महावीर पाठशाला जयपुर, मालवा प्रान्तिक अनाथालय बड़नगर, जैन पाठशाला मलकापुर, ज्ञानसागर कन्या विद्यालय उज्जैनमें धार्मिक शिक्षण दिया। इसके साथ ही मुरैना, सिद्धवरकूटके प्रचारक भी रहे। जब आप बड़नगरमें थे तब लगभग १५० व्यक्तियोंको जैनधर्मसे विमुख नहीं होने दिया। जाने ऐसी प्रेरणा स्थानीय खण्डेलवाल दिगम्बर जैन समाजको की तो उसने उन्हें अपना बना लिया। धार्मिक शिक्षणके साथ पंडितजीने लघु व्यापार भी किया।

पंडितजी यदा-कदा पत्रोंमें लेख लिखते है। कवितायें लिखी पर अप्रकाशित रही। आप स्वभावसे मिलनसार व बडे सेवाभावी है। पडितजी विचारोंका आचार रूप देनेके पक्षमे है। नैतिक शिक्षाकी दिशामें आपने एकसे अधिक प्रयास किये हैं।

●

ब्र० छोटेलालजी

●

श्रीमान् ब्र० छोटेलालजीका जन्म पौष शुक्ला १४ वि० सं० १९५१ को सागर जिलाके अन्तर्गत नरयावली ग्राममें हुआ है। पिताका नाम श्री पूर्णचन्दजी और माताका नाम नौंनी बहू था। जाति परवार है, शिक्षा विशारद तक होनेपर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होंने अपने ज्ञानमें विशेष उन्नति की है।

नरयावली छोड़कर व्यापार निमित्त ये सागर आये किन्तु व्यापारमें अपनी उदार प्रवृत्तिके कारण सफल न होनेपर बहुत काल तक ये सागर विद्यालयमें सुपरिटेंडेंट रहे। इसी बीच लगभग दो माहके शिशुको छोड़कर इनकी पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृहारम्भसे उदासीन रहने लगे। सिंघई मौजीलालजीका

सम्पर्क मिल जानेसे कुछ कालमें इन्होंने गृहवासका त्याग कर वि० सं० १९९६ में ब्रह्मचारी प्यारेलालजी भगतसे ब्रह्मचर्य दीक्षा ले ली।

ये रोचक वक्ता और समाजसेवी हैं। फलस्वरूप इन्होंने जियागंज, लालगोला, धूलियान और अंडगाबादमें जैन पाठशालायें स्थापित की। श्री स्याद्वाद विद्यालय बनारसको उल्लेख योग्य आर्थिक सहायता पहुँचवाई। उदासीनाश्रम इन्दौर और ईसरीके अधिष्ठाता रहे तथा व्रतीसंघके मन्त्री पदका कार्य भी इन्होंने किया है। वर्णीजीसे इनका अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था और उनमें विशेष श्रद्धा थी।

●

ब्र० छोटेलालजी वर्णी

●

श्री छोटेलालजी वर्णीका जन्म आजसे ८० वर्ष पूर्व विक्रम संवत् १९५१ मे फागुन सुदी तेरस गुरुवारको नरसिंहपुरमें हुआ था। आपके पिता नाथूरामजी बजाज, माता श्री इंद्राणीजी थी। बचपनमें ही आपके पिताकी मृत्यु हो गई थी, इसलिए आपका बचपन अनेक कठिनाइयोंमें बीता। आप परवार जातिके भूषण हैं। आपकी लौकिक शिक्षा मैट्रिक तक हुई। धार्मिक शिक्षाकी दिशामे आपने संस्थाओंके माध्यमसे व स्वतन्त्र रहकर काफी अध्ययन किया। आपका विवाह १९१३ में श्रीमती हीराबाईके साथ हुआ। परिवारमें आपके चार पुत्र, तीन पुत्रियाँ हैं। जो विभिन्न उच्च स्थानोंपर नियुक्त हैं। आपके बडे भाई श्री दीपचन्द्रजी वर्णीने, जो धर्म और समाजकी सेवा की है वह जैन साहित्यके इतिहासमे अविस्मरणीय है।

आपसे देश और समाजके हितमें खादी प्रचार, राष्ट्रीय सेवकोंकी सेवा, जैन समाजकी बिखरी शक्ति-समाजका संघटन, चैत्यालयों व मन्दिरोंकी स्थापना जैसे अनेक कार्य किये हैं।

आपने श्री सेठ प्रेमचन्द्र मोतीचन्द्रजी दिगम्बर जैन बोर्डिंग अहमदाबादमे धर्माध्यापक व श्री जैन आश्रम महावीर नगर बढवामें मन्त्रीके रूपमें कार्य किया व सहयोग दिया। आपने बावनगजा बडवानीमें शान्तिनिकेतन की स्थापना व नरसिंहपुरमें आपके बडे भाई श्री दीपचन्द्रजी वर्णीके स्मरणार्थ 'धर्मरत्न वर्णी दीपचन्द्र जैन हितैषिणी पाठशाला' की स्थापना सन् १९३९ में की है। आपने सागर पाठशालामें अंग्रेजी शिक्षककी भाँति व पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला औरंगाबादमें प्रधान अध्यापकके पदपर कार्य किया। आपने जैन विवाह पद्धति पुस्तकका भी सम्पादन किया है। आपका वतमान निवास स्थान दीपाश्रम मणिनगर अहमदाबाद है।

●

स्व० ब्र० जीवराज गौतमचंद्जी दोशी

सेठ जीवराजभाईका जन्म फलटणमें सं० १९३६ में हुआ था, लेकिन फिर आपके पिताजी व्यापारार्थ सोलापुर आकर बसे थे व स्थिति साधारण थी। पिताजी तो आपको १० वर्षके छोडकर गुजर गये थे, लेकिन आपके चाचा ज्योतिचन्दजीने आपको शिक्षा दे ऐसा योग्य विद्वान् बनाया कि आप मराठी, गुजराती, संस्कृत व धर्ममें योग्य विद्वान् हो गये थे व कपड़ेके व्यापारमें इतनी उन्नति की कि लाखों रुपये कमाये।

आपका विवाह हुआ था व एक लडकी भी हुई थी लेकिन दोनो ही प्लेगके समय कालकवलित हो जानेपर भी आपने दूसरा विवाह नही किया व दत्तक भी नही लिया। आपके चाचा सेठ हीराचन्द नेमचन्द दोशी जो महान् विद्वान् व महान् दानी व राजमान्य हो गये। उनकी नीति अनुसार आपने धर्मसेवा, समाज सेवा व दान करनेमें कसर नही रखी और करीब १ लाख रुपये ज्ञानदान, औषधि दान, मन्दिर प्रतिष्ठा, मन्दिर जीर्णोद्धार आदिमे लगाये थे, तथा जब सन् १९४९ में आपका स्वास्थ्य बिगडा व बम्बईमें बडा ओपरेशन कराया गया तब आपने अपनी सारी सम्पत्ति जो करीब दो लाख रुपयेकी एक ट्रस्ट करके जैनसाहित्य प्रचारार्थ अर्पण कर दी और उससे जैन संस्कृत संरक्षक संघ व जीवराज जैन ग्रन्थमाला स्थापित करा दी। उसके द्वारा आज तक हिन्दी तथा मराठीके बहुतसे ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है।

सेठ जीवराजभाईने कई वर्ष हुए सातवी प्रतिमा व अभी दो तीन वर्ष हुए १०वी प्रतिमा धारण की थी, व परिग्रह परिमाण व्रतसे दो लाखसे अधिक सम्पत्ति न रखनेका नियम लिया था। जोकि अन्त समय दान कर दी थी, आप अपने विचारके पक्के थे, धर्ममें दृढ थे व रात दिन धर्मसेवा, धर्मरक्षा व साहित्य-सेवामें ही अपना काल व्यतीत करते थे।

'जैन बोधक' मराठी मासिकका सम्पादकत्व भी आपने ४ वर्षतक बहुत निर्भीकताके साथ किया था।

जब कभी जैन सिद्धान्तके विरुद्ध कोई लेख आपकी नजरमें आता तो उसके विषयमें आप अपनी लेखनी चलाते ही रहते थे।

ऐसे विद्वान्, सर्वसम्पत्तिके दानी व १०वी प्रतिमाधारी श्री सेठ जीवराज गौतमचन्द दोशीका जीवन अतीव अनुकरणीय था। अपनी सारी सपत्ति जैन साहित्यके प्रचार व प्रकाशनार्थ कर दी थी। आपका ७२ वर्षकी आयुमें स्वर्गवास हो गया है।

ब्र० लाडमलजी भौंसा

श्री ब्रह्मचारी लाडमलजी भौंसा राजस्थानमें प्रतिष्ठित सम्मान्य ब्रह्मचारी हैं। आप मूल रूपसे चोरू (जयपुर) के रहने वाले है। चोरू जयपुरसे दक्षिणकी ओर ३ मील पर है। आपके पिताका नाम सरूपचन्द-जी था। आप दि० जैन खंडेलवाल जातिके रत्नस्वरूप हैं। आपका जन्म माघ शु० २ विक्रम संवत् १९६२ को हुआ।

आपने आग्रह करने पर भी विवाह नही किया और बाल ब्रह्मचारी है और वि० सं० १९८० में चोरूसे जयपुर आ गये तबसे जयपुरमें ही रहते हैं। चोरू और जयपुर दोनों ही जगह आपके मकानात हैं। चोरूमें आपके बडे भाई रहते हैं। जमीन जायदादके मालिक हैं।

आपने जयपुरमें कपडेका व्यापार किया जिसमें ३० हजार रुपयेका आपको थोडे ही दिनोंमें लाभ हो गया। उस समय आपने इतना ही परिग्रहका प्रमाण रख छोडा था। अत' आगे व्यापार करना बन्द कर दिया और उस पूँजीमेंसे पाँच हजार रुपया आपने मूल निवास स्थान चोरू औषधालय खोलनेको दे दिया और श्री चन्द्रसागर दिगम्बर जैन औषधालयकी स्थापना कर दी जो अब तक चल रहा है और अच्छी स्थितिमे है। पाँच हजार रुपयोंसे भी अधिक आपने चोरूमें श्री जिन मन्दिरोंके जीर्णोद्धार उत्सवादिमें लगा दिये तथा ५०००) अन्यान्य धर्मकार्योंमे लगा दिये।

वि० सं० १९९४ में आपने प्रातः स्मरणीय श्री स्व० चन्द्रसागरजी महाराजसे दूसरी प्रतिमाके व्रत ले लिये और मुनि संघकी सेवामे लीन हो गये। ७ वर्ष तक मुनिराज चन्द्रसागरजी महाराजकी सेवामें ही बिताकर धर्माराधन और ज्ञानार्जन किया। संवत् २००१ मे जब श्री १०८ श्री चन्द्रसागरजी महाराज-का समाधिमरण बडवानीमें हुआ तब तक आप बराबर साथ रहे और खूब वैयावृत्त किया।

आपने संवत् २००० से ही श्री चन्द्रसागरजी महाराजसे सातवी प्रतिमाके व्रत ले लिये थे। आपका प्रत्येक धर्म कार्यमें सहयोग रहता है। फुलेरामें जब पचकल्याणक महोत्सव हुआ तब आपने उसमें बड़ा भारी सहयोग देनेके साथ श्री १०८ श्री मुनिराज वीरसागरजी महाराज (ससघ) की सेवा वैयावृत्यमें बड़ा भारी योग दिया और सघकी सम्मेदशिखरजी तीर्थराजकी वदना करानेमें पर्याप्त प्रयत्न किया और परि-श्रम उठाया।

श्री १०८ श्री देशभूषणजी महाराज, श्री १०८ श्री आचार्य महावीरकीर्तिजी महाराज एवं तीन वर्ष तक लगातार श्री १०८ श्री आचार्यवर्य वीरसागरजी महाराजके जो ससघ चातुर्मास हुए उनकी सफल और निर्विघ्नताका अधिक श्रेय आपको ही है। अन्तिम चातुर्मासका तो करीब-करीब सारा व्यय भार भी आपने ही उठाया। मुनि संघकी सेवा, यात्रियोके ठहरनेकी व्यवस्था, यातायातकी व्यवस्था, अतिथि सत्कार आदि धार्मिक सामाजिक कार्योंमें आप सदैव लगे रहते है। स्वाध्याय, पठन पाठन, साहित्य प्रकाशन आदिकी ओर भी सदैव क्रियाशील रहते है।

श्री शान्तिवीर दि० जैनधर्म संरक्षक समितिके आप सहायक मंत्री और एक धार्मिक कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं। आपने अपनी सभी अर्जित संपत्तिका धर्म कार्योंमें लगाकर सदुपयोग किया और अब सदैव आत्म साधना और लोकोपकारमें तत्पर रहते हैं।

ब्र० जीवारामजी

●

श्री मान् ब्र० जीवारामजी मेरठके आस-पास रहनेवाले थे। इनका अन्तिम समय श्री १०५ क्षु० सहजानन्दजीके सम्पर्कमें व्यतीत हुआ। पूज्य श्री वर्णीजीमें विशेष श्रद्धा थी। यह जैन वाङ्मयके गहन अध्येता चारित्रवान तथा कुशल प्रवचन कर्त्ता थे। पूज्य गणेश प्रसादजी वर्णी महाराजसे इनका जो पत्राचार होता था इसमें आध्यात्मिकताके गहन पहलुओंका समावेश रहता था।

●

स्व० ब्र० दीपचन्दजी बडजात्या

●

बीकानेर जिलाके जसरासर नामक गाँवमें बडजात्या गोत्रीय सेठ श्री चुन्नीलालके पुत्रके रूपमें वैसाख वदी चतुर्थी सवत् १९४४ को आपका जन्म हुआ।

जब आपकी अवस्था लगभग १५ वर्षकी थी तब आपके अग्रज श्री लक्षमनदासका स्वर्गवास हो गया। संवत् १९७२ में आपके पिता श्री जसरासर ग्रामको छोडकर सपरिवार नागौर शहरमें आकर बस गये और एक वर्ष बाद ही धर्मध्यान पूर्वक समाधिमरणकर स्वर्ग सिधार गये।

अग्रज और पिता श्रीके निधनसे आपके 'मृदूनि कुसुमादपि' हृदय पर करारी चोट लगी। आप आरम्भ से ही विशेष धार्मिक प्रवृत्ति वाले थे। गृहस्थीमें रहकर भी वैराग्य परिणतिसे व्रत और पूजनमें लगे रहते थे। आपके हृदय पटल पर धर्मके पवित्र पुष्प खिलते रहे और आपकी रुचि दिन प्रतिदिन वैयावृत्तकी ओर उन्मुख होती रही। १९८४ में जब परमपूज्य आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज सघ सहित सम्मेद-शिखरजी पधारे तब उनके मंगलमयी दर्शन और उपदेशकी अमृतवाणीसे आपकी रुचि सर्वथा धर्ममें लिप्त हो गयी। हर वर्ष जहाँ भी संघका चातुर्मास होता वहाँ आप चौका लेकर पहुँचते तथा आहारदान एवं उप-देश श्रवण आदि कार्योंमें लिप्त रहते।

आपने सवत् १९९६ में माधोपुरमें परमपूज्य स्व० मुनि श्री १०८ चन्द्रसागरसे दूसरी प्रतिमाकी दीक्षा ग्रहण की। आप निरन्तर संघोंमे रहकर तपोधन मु ियों और आचार्योंका कल्याणकारी सान्निध्य प्राप्त कर आहार दान और वैयावृत्तिमें सतत ध्यान लगाते रहे और उनसे प्राप्त करते रहे वह अनन्त ज्योति जो आज भी आपकी कीर्तिको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें सक्षम है।

विक्रम सवत् २००६ में प्रात स्मरणीय परम पूज्य आचार्य १०८ श्री वीरसागरजीके सघका नागौरमें चातुर्मास हुआ। वही पर आपने सप्तम प्रतिमाका व्रत ग्रहण किया।

सातवी प्रतिमा लेनेके उपरान्त आपकी वैराग्य भावना प्रबल हो उठी। आपने व्यापार और अन्य सभी गार्हस्थ कार्योंसे सर्वथा मुख मोड लिया। आप सतत मुनिराजोंके सानिध्यमें रहने लगे। सासारिक सुखों और भोगों को बहिष्कृत कर धर्मसाधनामें लीन रहे।

फाल्गुन वदी सप्तमी शुक्रवारको सुबह ६ वजे ब्र० जीने सामायिक ग्रहण किया और ६ वजकर २० मिनट पर आपकी आत्मा नश्वर शरीरको तिलाञ्जलि दे स्वर्गारोहण कर गई।

इस प्रकार ब्रह्मचारीजीने अपने जीवनमें धर्म साधना, वैयावृत्ति और आत्म कल्याण करते हुए अन्तमें समाधिमरणका अपना जो इतिहास छोड गये हैं वह अमिट है और उसमें आपकी कीर्ति सदैव समुज्ज्वल ही दृष्टिगोचर होती रहेगी।

●

स्व० दीपचन्द्रजी वर्णी

●

श्रीमान् ब्र० दीपचन्दजीका जन्म होशंगाबाद जिलेके नरसिंहपुरमें माघ शुक्ला ५ वि० सं० १९३६ को हुआ था। पिताका नाम बजाज नाथूराम और जाति परवार थी। इनकी शिक्षा हिन्दीमें नार्मल तक और इंगलिशमें मिडिल तक हुई थी। अभ्यास द्वारा चित्रकला और सिलाई आदिमें तथा ब्रह्मचारी होनेके बाद धर्मशास्त्रमें इन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की थी।

इनके क्रमश दो विवाह हुए किन्तु दोनों पत्नियोंका वियोग हो जानेपर इनका चित्त प्रपंचसे हट-कर आत्मसाधनाकी ओर गया। ब्रह्मचर्य व्रत लेनेके कुछ दिन पूर्व तो ये पिताजीके साथ व्यापार करते रहे और उसके बाद शिक्षकका कार्य करने लगे।

इनकी दूसरी पत्नीका वियोग वि० सं० १९६० में हुआ था। अनन्तर १९६३ में इन्होंने श्री १०५ ऐलक पन्नालालजीके पास ब्रह्मचर्य व्रतकी दीक्षा ले ली और कुछ काल बाद पूज्य वर्णीजीने पूज्य बाबा भागीरथके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

ये स्वभावसे बड़े निर्भीक और कर्त्तव्यनिष्ठ थे। लेखक और वक्ता भी उत्कृष्ट कोटि के थे। सागर विद्यालय व दूसरी संस्थाओंकी सार सम्हाल करना और समाजकी सेवा करते रहना यही इनकी दिन-चर्या थी। संक्षेपमें ऐसा निष्ठावान, समाज सेवी त्यागी होना दुर्लभ है। फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा वि० सं० १९९४ को समाधिपूर्वक इन्होंने इह लीला समाप्त की थी। पूज्य वर्णीजीमें इनकी विशेष भक्ति होने से इनका अधिकतर समय उन्हीके सान्निध्यमें व्यतीत हुआ।

●

ब्र० नेमिसागरजी वर्णी

●

श्रीमान् ब्र० नेमिसागरजीका जन्म वि० सं० १९३३ को दक्षिण प्रान्तमें हुआ है। पिताका नाम श्री दुमाण अधिकारी और माताका नाम जाकम्म था। जन्म से ये क्षत्रिय हैं। शिक्षा ग्रहण करनेके बाद ७ वर्ष तक ये कन्नड स्कूलमें शिक्षक रहे और उसके बाद ४ वर्ष तक कारकल जैन मठके व्यवस्थापक रहे।

बचपन से ही इनकी वृत्ति त्यागमय थी इसलिए विवाह न कराकर वि० सं० १९५८ में इन्होंने ललितकीर्ति महाराजके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। गृह त्यागी होनेके बाद विशेष रूपसे इनका ध्यान संस्कृत शिक्षाकी ओर गया और इस निमित इन्होंने आरा, बनारस, मोरेना व मैसूरमें रहकर संस्कृत व्याकरण साहित्य व धर्मशास्त्रकी विशेष शिक्षा ग्रहण की।

इनके आचार और व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर श्रवणबेलगोलाके व्यवस्थापकोंने उन्हें वि० सं० १९८५ में भट्टारकके पदपर प्रतिष्ठित किया। इसका इन्होंने बडी योग्यता और निष्पृहताके साथ निर्वाह किया।

अपनी उदासीन परिणतिके कारण अन्तमें इन्होंने इसका त्याग कर दिया है और वर्तमानमें जैन गुरु-कुलउजे (दक्षिण कन्नड) में स्वाध्याय और आत्मचिन्तनमें रत रहते हुए जीवन-यापन कर रहे हैं।

●

ब्र० नाथूरामजी

●

श्रीमान् ब्र० नाथूरामजीका जन्म वि० सं० १९६९ को मध्यप्रदेशके दरगुवाँ ग्राममें हुआ था। पिताका नाम श्री बालचन्दजी, माताका नाम श्री केशरबाई और जाति परवार है। प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका विशारद तृतीय खंड तक अध्ययन हुआ है, इनके घरमें साहूकारीकी व्यापार होता था।

प्रारम्भ से ही इनका चित्त गृहकार्यमें बहुत ही कम लगता था इसलिए पू० वर्णीसे सम्पर्क मिलनेपर वि० सं० २००२ को सातवी प्रतिमाके व्रत लिये। इनका ये उत्तम रीतिसे पालन करते हुए अपने गुरुकी वैयावृत्य सेवाशुश्रूषामें निरन्तर लगे रहते थे। मुख्य रूपसे यही इनका स्वाध्याय है, यही संयम और यही तप है। पूज्य वर्णीजी महाराजका इनपर बड़ा अनुग्रह था। स्वाध्यायके द्वारा आगमका गहन अध्ययन किया—तथा अपने आध्यात्मिक प्रवचनोंसे समाजका महान् उपकार किया।

●

ब्र० श्रीनिवासजी

●

ब्रह्मचारी पाण्डे श्रीनिवासजी जैनका जन्म चैत्र वदी नवमी विक्रम सवत् १९५९ में फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। आपके पिता श्री बेनीराम पाण्डे थे और माता जामवतीदेवी थी। आपने पद्मावती पुरवाल जातिको भूषित किया है। आपकी लौकिक शिक्षा जितनी कम हुई, धार्मिक शिक्षा उतनी ही अधिक हुई। आपका विवाह श्रीमती केतुकी देवीके साथ हुआ था। आपके परिवारमें दो भाई, एक बहन व चार पुत्र हैं। आपके भाई चोखेलालजी भी अच्छे धर्मविद् थे। अपनी आजीविकाके हेतु आपने कपड़ेका व्यापार किया। जनरल स्टोर खोला, चूड़ी व सर्राफाका कार्य किया तथा किराना का भी व्यापार किया जिससे उत्तरोत्तर आपकी आर्थिक स्थिति सुदृढ होती गई।

आप अतीव स्वाध्याय प्रेमी मिलनसार गुणानुरागी है। आपने पं० चूरीलालजीसे धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन किया। आपने पं० पन्नालालजी, सन्तलालजी, माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य आदि विद्वानोंके अनुभवसे लाभ लिया। ज्ञानके साथ चरित्रकी दिशामें भी आप आगे वढे। सन् १९५७ में आपने पूज्य श्री गणेश-प्रसादजी वर्णीसे सातवी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। आप प्रतिदिन देव-पूजा, शास्त्र-स्वाध्याय, सामायिक जैसे कार्योंमें दत्तचित्त होकर मध्यम विरक्त गृहस्थ जैसा जीवन व्यतीत कर रहे है। अपने प्रभावसे अनेक लोगों को धर्म की दिशामें बोध दिया। इन्दौर, उज्जैन, रतलाम, फिरोजाबादके मन्दिरोंमें आपने मूर्तियाँ भी विराजमान करायी हैं।

आप श्री दिगम्बर जैन महावीर समिति फिरोजाबादके कर्मठ कार्यकर्ता हैं। दिगम्बर जैन पद्मावती पुरवाल फण्ड फिरोजाबादके सक्रिय सदस्य हैं। अपनी जातिकी सभाके मन्त्री भी वर्षों रहे। श्री पन्नालाल दिगम्बर जैन इण्टर कालेजकी स्थापना व प्रगतिमें आपका आरम्भसे आजतक अविस्मरणीय सहयोग रहा। आप धार्मिक, सामाजिक सभी क्षेत्रोंमें सक्रिय होकर सेवामें सन्नद्ध हैं।

●

ब्र० प्यारेलालजी भगत

●

श्रीमान् ब्र० प्यारेलालजी भगतका जन्म मगसिर शुक्ला ६ वि० सं० १९४१ को दिवी (राजाखेडा) में हुआ था। पिताका नाम लाला नाथूरामजी और माताका नाम सुमित्रादेवी तथा जाति जैसवाल है। प्रारम्भिक शिक्षा अक्षर, ज्ञान तक सीमित होते हुए भी इनका धर्मशास्त्रका ज्ञान उच्चकोटि का है।

प्रारम्भ से ही आत्मकल्याणकी ओर विशेष लक्ष्य होनेसे इन्होंने पहले व्रत प्रतिमाके और उसके बाद वि० सं० १९९१ में इन्दौरमें श्री १०८ कुन्थुसागर महाराजकी उपस्थितिमें स्वयं सातवी प्रतिमाके व्रत धारण किये।

त्याग धर्मके साथ इनकी सामाजिक सेवा भी सराहनीय है। अधिष्ठाता पद पर रहते हुए ईसरी और इन्दौर उदासीनाश्रम की बहुत काल से ये सम्हाल करते आ रहे हैं। राजाखेडा और कोडरमाकी शिक्षा संस्थायें भी इन्होंने स्थापित कीं।

कलकत्तामें हिन्दू-मुस्लिम दंगाके समय इन्होंने हजारों स्त्री पुरुषोंको बेलगछियाके जैन-मन्दिरमें आश्रय देकर इनकी रक्षा की। अहिंसा की ओर भी इनका निरन्तर ध्यान रहता था फलस्वरूप इन्होंने देश-विदेशके अनेक मांस सेवी-स्त्री पुरुषों को मांस का परित्याग कराकर धर्म मार्गपर लगाया है। इतना सब होते हुए स्वाध्याय और आत्मचिन्तन इनका मुख्य व्रत है। समाजमें चुने हुए कुछ प्रतिष्ठित त्यागियों में से एक हैं।

●

ब्र० प्रेमसागरजी

●

रेपुरा (पन्ना) में गोलालारीय जातिमें आपका जन्म सं० १९५० में अतीव गरीब कुटुम्बमें हुआ था। प्रथम नाम गोरेलाल उर्फ प्रेमचन्द पञ्चरत्न, पिताका नाम रामलालश्च माताका नाम धर्माबाई था। थोडा-सा हिंदीका ज्ञान कराकर पिताने ११ वर्षकी आयुमें आपको व्यापारमें डाला और वे इनकी १६ वर्षकी आयुमें चल बसे तब घरमें पांच आदमियोंका गुजारा आप न कर सके इसलिए कस्बा मझौलीमें तीन वर्ष तक पूजनका काम किया। फिर सिहौरा होकर कटंगी गये। वहाँ त्यागी गोकुलप्रसादजीके उपदेशसे पाठशाला खुली थी उसमें योग्यता न होनेपर भी अध्यापकी पर रहे और चौधरी परमानन्दजीसे अध्ययन करते रहे। वहाँ पासमें कैमोरीके सिं० मोहनचन्द्रजी जो कविता करनेमें दक्ष है उन्होंने आपको कविता बनानेके लिए मात्रा, छन्द, यगण, रगण आदिका रूप दर्शाया। बीचमें आप प० तुलसीरामके बुलानेसे बनारस पढ़नेको गये थे परन्तु वहाँसे एक वर्षमें वापिस आना पडा तथापि वहाँ साहित्य व लिखने पढनेका शौक अवश्य हो गया। फिर पाटन, कौनी होकर बहिनके घर पवई बहुत वर्षों बाद गये व बहिनको कुछ पढ़ाया। फिर भिंड जाकर वहाँ एक वर्ष विद्यालयमें अध्ययन किया। बाद ये परिषदके प्रचारक बन गये। फिर ललितपुरमें मुनिदर्शनको गये जहाँ वैराग्यकी भावना जग उठी। फिर बहिनको लेकर भिंड गये जहाँ मुनिश्री १०८ शांतिसागरजीके पाससे ब्रह्मचारीकी दीक्षा ली। आपने शादी नहीं की थी अर्थात् बालब्रह्मचारी ही रहे व कविता बनानेमें आप बड़े चतुर थे। आपकी अनेक कविताएँ जैनमित्र, दिगम्बर जैन, वीर आदि पत्रोंमें निकली। कविता बनानेकी आपको कुदरती बखशीस ही मिली हुई जान पड़ती है। आपने जैन साहित्यसे जैन समाजका विशेष कल्याण किया। ●

बाल ब्र० प्रद्युम्नकुमारजी

उत्तरप्रदेश जिला हमीरपुरमें टिकरिया ग्राम आपका जन्मस्थान है। वर्तमानमें आपके माता पिता मध्यप्रदेश हरपालपुरमें निवास करते है। आपके पूज्य पिताजीका नाम श्री ब्र० प्यारेलालजी है तथा मातेश्वरी श्रीमती ब्र० कस्तूरीबाईजी है। आपके माता पिता बहुत धर्मात्मा एवं श्रद्धालु है और कपडेका व्यापार करते हैं।

जन्म स्थानपर आपने प्रारम्भिक शिक्षा ली, पश्चात् बरुआसागर विद्यालयमे भर्ती हुए। परन्तु कुछ मोहवश वहाँ आप कुछ दिन ही रहकर झाँसी अपने बडे भाई (उस समय आपके बडे भाई झाँसीमें पढते थे) के पास पहुँच गये। झाँसीसे ८वी की परीक्षा पास करके पश्चात् हरपालपुरमे आपकी शिक्षा हुई। वहाँसे मैट्रिककी परीक्षा उत्तीर्णकर हायर सेकेण्ड्री क्लास (११वी) को नौगाँवसे पास किया।

पश्चात् महाराजा कालेज छतरपुरसे आपने बी० ए० पास किया। बी० ए० मे दर्शनशास्त्र (फिलास्फी) के विषयमें अत्यधिक रुचि होनेसे आपने अच्छे अंकोंमें उत्तीर्णता प्राप्त की। पश्चात् आपने डेढ वर्ष राजकीय विद्यालयमें प्रधानाध्यापक बनकर अध्यापनका कार्य भी किया। आपने बच्चोंको तन-मनसे पढ़ाया तथा नैतिकता व सदाचारताको अपनानेपर जोर दिया।

स्वभावसे ही आप चिन्तनशील और एकान्तप्रिय होनेके कारण आपने अध्यापनकार्यसे विराम लिया और पुनः महाराजा कालेज छतरपुरमें एम० ए० मे एडमिशन लेकर तथा अध्ययनकर आपने सागर विश्वविद्यालयसे एम० ए० की डिग्री प्राप्त की।

आप तीन भाई है। आपके छोटे और बडे दोनों भाई डाक्टर हैं। बडे भाई डाक्टर कोमलचन्दजी अशोकनगर जिला गुनामें प्राइवेट प्रैक्टिस करते है तथा छोटा भाई डॉ० शम्भूकुमार गवर्नमेण्ट सर्विसमे हैं। इस तरह आपका परिवार सुसम्पन्न है।

सौभाग्यसे जब आप बी० ए० मे पढते थे कि हरपालपुरमे आपके पूज्य गुरुवर क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी महाराजका आगमन हुआ। आप छतरपुरसे दर्शनार्थ आये। आपने माता पिताके समक्ष ही महाराज श्री से विवाहके बन्धनमें न फँसनेका विचार रखा। उन्होंने कहा कि पहिले खूब बिचार कर लो। एक वर्ष तक पत्रों द्वारा आप अपने विचारोंको उनके पास भेजते रहे। आपके माता पिता प्रतिवर्ष तीन चार माहको सत्संगतिमें जाकर धर्माराधन करनेका नियम रखे हैं। आपने बी० ए० पास किया था, उसी वर्ष माता पिता के साथ आप आगरा चातुर्मासमें पूज्य क्षुल्लक वर्णीजी महाराजके पास गये। उधर आपके बड़े भाई आपको बिवाहके बन्धनमें जकडनेका यत्न करने लगे। इतना ही नही, जब उन्होंने आपके आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत प्रतिज्ञा अंगीकार करने तथा सत्संगतिमें ही जीवन बितानेके समाचार सुने तो वे आगरा आये और आपको वहाँसे अशोकनगर ले जाकर गुना कालेजमें एम० ए० क्लासमें एडमीशन दिला दिया। आप १०-१५ दिन कालेज जाते रहे, परन्तु आपका मन वहाँ बिल्कुल नही टिका। आप तो तय कर चुके थे कि विवाहका बन्धन ही मोक्षमार्गमें सबसे बड़ा बाधक कारण है तथा वास्तविक सुखशान्तिमय जीवनके लिए ब्रह्मचर्य व्रत का होना प्राथमिक और अति आवश्यक शर्त है। आप गुनासे भागकर पुनः आगरा आ गये। पूज्य गुरुवरकी छत्र छाया ही आपको शरण थी। आपने अपने निर्णयके अनुसार पूज्य गुरुजीसे अपना संकल्प व्यक्त किया। आपके बडे भाई भी आगरा आ गये और आपको सन् १९६३ मे अपने परिवार तथा समस्त जैन समाज

आगराके समक्ष दिगम्बर जैन मन्दिर नाईकी मण्डीमें भाद्रपदके अन्तिम दिन गुरुवर्यसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत व पहिली दर्शन प्रतिमाके व्रत प्राप्त हुए।

पश्चात् आप धर्माध्ययन हेतु श्रीगणेशवर्णी जैन संस्कृत विद्यालय सागर गये। वहाँ छह माह ही रहते बना। वहाँ आपने जैन सिद्धान्तप्रवेशिका, तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्यसंग्रह, रत्नकरण्डश्रावकाचार आदि ग्रन्थ पढे। कुछ भाइयोंने अंग्रेजी साहित्यसे एम० ए० कर लेनेको प्रेरित किया तब महाराजा कालेज छतरपुरमें अध्ययन कर आपने सागर विश्वविद्यालयसे एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। तीन चार वर्षसे कुछ दिनोंको पूज्य गुरुवर के समीप रहकर आपने जीवस्थानचर्चाका तथा संस्कृतका ज्ञान किया, उनके प्रवचनोंने तथा रचित आध्यात्मिक साहित्यके स्वाध्यायने आपको आध्यात्मिक बना दिया।

आपको सहारनपुर चातुर्मास सन् १९६७ में कार्तिक मासमें अष्टाह्निकाके अन्तिम दिन गुरु सेवासे दूसरी प्रतिमाके व्रत प्राप्त हुए। इस अवसर पर आपके पूज्य गुरुवर्य १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी सहजानन्द जी महाराजके आशीशवादात्मक शब्द आपके विषयमें निम्नांकित थे। "प्रद्युम्न तो प्रद्युम्न ही है, इनके बारे मे अधिक क्या कहना, ये तो और भी ऊँचे व्रत लेनेके योग्य है। भविष्यमें समाजको इनसे बहुत आशायें हैं।"

पूज्य वर्णीजी आपको यहाँ लाये और यही छोड गये। आपकी भावोकी पवित्रता, सदाचरणता तथा अध्ययन अनुरागशीलतासे आपको अधिष्ठाता ब्रह्मचारी सोहनलालजी तथा ब्रह्मचारी सुरेन्द्रनाथजीसे अनुराग प्राप्त हुआ। ब्रह्मचारी सोहनलालजीके देहावसानके उपरान्त आपकी अन्तःअभिलाषा न होते हुए भी रायबहादुर सेठ हरकचन्दजी पाण्ड्या (अध्यक्ष) व ब्र० बा० सुरेन्द्रनाथजी आदि सब ब्रह्मचारियोंने अधिष्ठाता पदके लिए बहुत आग्रह किया, तब आपने उपाधिष्ठाता पद स्वीकार किया।

आपकी प्रवचनशैली बहुत सुन्दर है, जो स्वयंके हृदयको स्पर्श करती हुई श्रोताओंके हृदयको स्पर्श करा देती है। आपके कंठमें मधुरता है, चेहरे पर शान्ति है।

आपकी आत्मा वैराग्यसे ओतप्रोत है। ज्ञानार्जन और तत्त्वचिन्तनामें उपयुक्त रहकर आप पूर्ण आत्मविशुद्धताकी प्राप्तिमें तल्लीन है।

●

ब्र० पं० बिहारीलालजी शास्त्री

●

ब्र० पण्डित बिहारीलालजीके पिता श्री मोहनलालजी और माता श्रीमती भूदेवी जैन थीं।

खेरी, डाकघर बरहन, जिला आगरा, वि० सं० १९६३ में पद्मावती पुरवाल आम्नायमें जन्म लिया।

ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर, स्याद्वाद जैन महाविद्यालय बनारस और जम्बू विद्यालयसे जैन न्यायमध्यमा, धर्म न्याय, शास्त्री की परीक्षायें उत्तीर्ण की।

१९२७ से १९३० तक स्वाध्यायशाला अम्बाला (छावनी), मेरठ, अलीगढ और जलेसर की जैन पाठशालाओंमें प्रधानाध्यापक।

आपने सहजानन्द शास्त्रमाला मेरठमें पुस्तकोंका प्रकाशन भी कराया। अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कंचनबाई (इन्दौर) के साथ सातवी प्रतिमा धारणकर उदासीन पूर्वक धर्म परिणति रखकर जीवन यापन कर रहे हैं।

●

बाबा भागीरथजी वर्णी

●

श्रद्धेय बाबा भागीरथजीका जन्म मथुरा जिलेके पण्डापुर ग्राममें वि० सं० १९२५ को हुआ था। पिताका नाम बलदेवदास और माताका नाम मानकौर था। जब ये तीन वर्षके थे तब पिताका और ग्यारह वर्षकी उम्रमें माताका देहावसान हो गया था। बचपनमें इनकी पढ़ाई-लिखाई कुछ भी न हो सकी। माताके देहावसानके बाद आजीविका निमित्त ये दिल्ली चले गये। जन्मसे ये वैष्णव थे।

दिल्लीमें ये जैनियोंके मुहल्लेमें रहने लगे और वहीं पर आपने एक जैनबन्धुके सम्पर्कसे ज्ञान सम्पादन किया। एक दिन जैनमन्दिरके पाससे जाते समय इनके कानोंमें पद्मपुराण (जैन रामायण) के कुछ शब्द पड गये। इनके वैष्णव धर्मसे जैनधर्ममें दीक्षित होनेमें यही कारण है।

जैन होनेके बाद धीरे-धीरे इनको प्रपञ्चसे निवृत्ति होने लगी और कुछ काल बाद इन्होंने विधिवत् ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली। इनका सयमी जीवन अत्यंत श्लाघनीय रहा है। ये निर्वाहके लिए दो चादर और दो लगोट मात्र ही रखते थे तथा नमक और मीठेका आजन्मके लिए त्याग कर दिया था।

स्वाध्याय और आत्मचिन्तन ये दो कार्य इनके मुख्य थे। इनसे चित्तवृत्तिके हटने पर इनका अधिकतर समय परोपकारमें व्यतीत होता था। जैनियोंकी प्रमुख संस्था श्री स्याद्वाद महाविद्यालयके संस्थापकोंमें वे प्रमुख हैं। अधिष्ठाता पद पर रहकर इन्होंने इस संस्थाकी कई वर्ष तक सेवा भी की है।

पूज्य वर्णीजी और बाबाजी दो शरीर और एक आत्मा कहें तो अत्युक्ति न होगी। पूज्य वर्णीजीके जीवन पर इनकी गहरी छाप रही।

●

स्व० ब्र० मौजीलालजी

●

श्रीमान् ब्र० मौजीलालजी सागर जिलान्तर्गत विनैका ग्रामके रहनेवाले थे। पिताका नाम कुल्लेलालजी था। वय: प्राप्त होनेपर ये सागर आकर रहने लगे। वहीं पूज्य श्री वर्णीजी और सिं० बालचन्दजी अर्जीनवीसके सम्पर्कसे स्वाध्याय और चारित्रकी ओर रुचि उत्पन्न होनेपर इन्होंने ब्रह्मचर्य दीक्षा ली थी। इन्होंने जीवनके अंत तक अपने चारित्र और परिणामोंकी सम्हाल की है। समाधिमरण समय तक श्री पूज्य वर्णीजीसे इनका विशेष सम्बन्ध रहा। यह चारित्र निष्ठ स्वाध्यायी विद्वान् थे जो भी प्रवचनमें आप कहते थे ठोस आगमसम्मत चर्चा होती थी।

●

स्व० ब्र० मूलशंकरजी देसाई

●

श्रीमान् ब्र० मूलशंकरजी राजकोट (सौराष्ट्र) के रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम श्री कालीदासजी और माताका नाम उजमबाई था। दिगम्बर धर्मको मोक्षका साधक जान श्वेताम्बर परम्पराका त्याग कर इन्होंने दिगम्बर परम्परा अंगीकार की। ब्रह्मचर्य दीक्षा इन्होंने पूज्य श्री१०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराज से ली थी। उसका ये यथावत् पालन करते थे।

ब्रह्मचर्य दीक्षाके बाद उन्होंने स्वाध्याय आदि द्वारा अपने ज्ञानमें पर्याप्त उन्नति की। यह वक्ता भी अच्छे थे। देशमें यत्र-तत्र चातुर्मास आदि करके जनतामें जैनधर्मका प्रचार किया। इनका एकमात्र यही कार्य रहा।

अध्यात्म रुचिवाले होनेसे पूज्य श्री वर्णीजीमें विशेष श्रद्धा थी। बहुत काल तक ये उन्हींके सान्निध्यमें रहे।

●

ब्र० मंगलसैनजी

●

श्रीमान् ब्र० मंगलसैनजीका जन्म कार्त्तिक कृष्णा १३ वि० सं० १९४७ को मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत मुबारकपुर ग्राममें हुआ था। पिताका नाम लाला भिक्खीमलजी और माताका नाम श्री मुनिदेवी था। जाति अग्रवाल थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा मैट्रिक तक हुई। अपने व्रती जीवनमें उन्होंने अपनी धार्मिक योग्यता भी बढ़ायी है।

ववाह होनेपर ये गृहस्थ जीवनमें अधिक दिन तक रत न रह सके और गार्हस्थ जीवनसे उदास रहने लगे। फलस्वरूप इन्होंने १९८१ के माघमें सप्तम प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर लिये। दीक्षा गुरु पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णी हैं। अपने जीवनमे इन्होंने वेदी प्रतिष्ठा आदि अनेक कार्य कराये है। मात्र सुधार योजनामें रुचि होनेसे कुछ समय इनका इस कार्यमें भी व्यतीत हुआ। इन्होंने समाजकी भी खूब सेवा की।

●

भट्टारक श्रीयशकीर्तिजी

●

भट्टारक यशकीर्तिजी महाराजका जन्म विक्रम सं० १९५१में ठाकरडा निवासी श्रेष्ठी उदयचन्दकी सहधर्मिणी सुन्दरबाईके उदरसे हुआ था। आप नरसिंहपुरा जातिके पट्नर (खडनर नायक) गोत्री थे। आपके काका पं० किशनलाल जो कि भट्टारक ज्ञेयकीर्तिजी महाराजके शिष्य थे, प्रज्ञाचक्षु होनेसे, अपने भाई उदयचन्दके इस पुत्र (प्यारेलाल) को स० १९५७में भेंट स्वरूप प्राप्तकर अपनी संरक्षतामें शिक्षा दीक्षा दी। बालक प्यारेलाल बचपनसे ही कुशाग्र बुद्धिका था और १५वर्षकी अवस्थासे ही भजनोपदेश और भाषण देनेमें चतुर बन गया था। साथ ही लेखनकला, यंत्र-मंत्र, वैद्यक और ज्योतिषमें प्रवीणता हासिल की। अतः आपके इन गुणोंपर मुग्ध होकर भ० ज्ञेयकीर्तिजीने सं० १९७४मे आपको अपने पट्टपर यशकीर्तिके नामसे स्थापित किया।

भट्टारक पदपर पदस्थ होकर सर्वप्रथम गुजरात प्रान्तमें भ्रमणकर अपना विशिष्ट प्रभाव डाला। सं० १९८२में अपने गुरु भ० ज्ञेयकीर्तिके स्मारक (छतरी) की प्रतिष्ठा करायी।

त्याग भावना एक संयमित जीवन

आपकी त्याग भावना उत्तरोत्तर बढती गयी। २५ वर्षोंसे चातुर्माससें एक अन्नका आहार करते है तथा १५ वर्षोसे घृत रसका त्याग कर दिया है। भट्टारक पदपर रहते हुए भी आपने म्याना, पालखी, गद्दी, तकिये, छडो, चँवर, पशुवाहनकी सवारी आदिका सर्वथा त्याग कर दिया। गम्भीर और शान्त व्यक्तित्व वस्तुतः लोगोंपर गहरी छाप डालता है। संगीतमें निपुण आपने अपने जीवनमें इतनी प्रतिष्ठायें करवायी जितनी आपसे पूर्व किसी भी भट्टारकने नहीं करवायी थीं।

वि० सं० १९९५में ऋषभदेव (केसरिया) में चार मंजिल 'भ० यशकीर्ति भवन' की स्थापनाकर उसमें औषधालय, चैत्यालय और सरस्वती भवनकी स्थापना की। जिसमें १३वी शताब्दी तकके ३००० लिखित एवं मुद्रित ग्रन्थ संग्रहीत किये गये हैं।

ज्ञान प्रसार

आपने शिक्षाप्रचारके निमित्त प्रतापगढमें विशाल छात्रावासकी स्थापना की है, जिसकी आधारशिला सं० २०११में सरसेठ श्रीमन्त हुकमचन्दजी इन्दौरने रक्खी थी। वहाँ श्री सीमन्धर जिनालयकी नवस्थापना पर प्रतिष्ठा करवायी थी। आपने थाणो फलासिया, चावडा और बाँसवाडामें भी जैन छात्रावास एवं अनेक पाठशालायें स्थापित करायी।

आदर्श त्याग

आपने ऋषभदेव का भ० यशकीर्ति भवनका ट्रस्ट कर उसके साथ दस हजार नकद रुपया, गद्दीका लवाजमा उपकरण, शास्त्र, फर्नीचर आदि सभी समाजको सौंपकर अपना अधिकार हटा लिया। ज्यों-ज्यों सम्पत्तिसे आपका मोह छूटा, समाजसे उतनी ही ज्यादा भेंटें आपको प्राप्त होने लगी। परन्तु आप सभी कुछ संस्थाओंको दान-स्वरूप देते जाते हैं। आपके इस कल्याणकारी उपदेशसे लाखों लोग आत्मकल्याणके मार्गपर अग्रसर हुए।

सम्मान एवं उपाधियाँ

पूज्यपाद आ० श्री शान्तिसागरजी महाराजकी समक्षतामें तथा अन्य कई प्रसंगोंपर आपको अनेक उपाधियाँ तथा अभिनन्दन पत्र समर्पित किये गये। आप 'संगीत शिरोमणि' की उपाधिसे भी विभूषित हुए।

आपके तीन सुयोग्य शिष्य पं० रामचन्द्रजी, प० किशनलालजी व पं० डाडमचन्दजी है। पं० रामचन्दजी शिक्षण संस्थाओंकी देखभाल करते है। पं० डाडमचन्दजी उपदेशके साथ-साथ यंत्र-मंत्र और ज्योतिषके जानकार तथा संगीत कलामें निपुण हैं तथा पं० किशनलालजी आपकी सेवामें निरत हैं। वर्तमान परिस्थितियोंके अनुसार नये शिष्योंको बनानेका विचार छोड़ दिया है।

●

स्व० ब्र० राजारामजी

●

श्रीमान् सिं० राजारामजीका जन्म लगभग ६७वर्ष पूर्व सागर जिलान्तर्गत पाटन ग्राममें हुआ था। पिताका नाम वंशीधरजी और माताका नाम जियाबाई था। अपनी प्रारम्भिक शिक्षाके बाद इनका ध्यान मुख्य रूपसे व्यापारकी ओर आकर्षित हुआ और इस निमित्त ये सागर आकर रहने लगे।

सागरमें रहते हुए अपनी व्यापारिक कुशलताके कारण इन्होंने व्यापारमें बड़ी उन्नति की और वहाँ सम्पन्न व्यक्तियोंमें इनकी गणना होने लगी। वर्तमानमें इनका परिवार समृद्ध और खुशहाल है। सागर निवासी श्रीमान् पं० मुन्नालालजी राँधेलीय इनके लघुभ्राता हैं। स्वाध्यायके द्वारा इन्होंने आगमका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया।

जीवनके अन्तिम दिनोंमें ये गृहकार्यसे विरक्त हो गये और ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार कर उनकी योग्यतापूर्वक पालन करने लगे। इनकी ऐहिक लीला सन् १९५०में समाधिमरणपूर्वक समाप्त की थी। पूज्य श्री वर्णीजीमें अनन्य श्रद्धा थी और पूज्य वर्णीजी महाराजसे इनका सदैव आध्यात्मिक चर्चाओं, शंकाओं सहित पत्र व्यवहार चलता था।

●

ब्र० लक्ष्मीचन्द्जी वर्णी

●

श्रीमान् ब्र० लक्ष्मीचन्दजी वर्णी सागर जिलान्तर्गत करापुरके रहनेवाले है। इनकी आयु लगभग ५७ वर्ष है। पिताका नाम श्री नन्दलालजी था। जातिके परवार हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई। गृह-त्यागके बाद धार्मिक ज्ञान भी बढा लिया।

विवाह होनेपर कुछ दिनोंमें ही पत्नी वियोग हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत रहने लगे और श्री१०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराजका सम्पर्क मिल जानेसे ये उनके पट्ट शिष्य होकर इन्हीके साथ रहने लगे। इन्होंने उनके पास ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा वि० सं० १९८६में ली थी।

ये स्वभावके निर्भीक, निर्लोभी, सेवाभावी और कर्तव्यपरायण है। यों तो श्री१०८ आचार्य सूर्यसागर जी महाराजकी सेवामें अनवरत लगे रहते थे पर उनके समाधिमरणके समय इन्होंने जिस निष्ठासे सेवा की है। वैसा उदाहरण मिलना दुर्लभ है। ऐसा सेवाभावी, परोपकारी त्यागी होना इस कालमे दुर्लभ है।

●

ब्र० लखमीचन्द्जी ईसरी

●

जन्म

संवत् १९७१के कार्तिक मासमें मध्यप्रदेशके नरसिंहपुर जिलेमे आपका जन्म हुआ। जन्मके समय घरकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। आपके पिता श्री परमानन्दजी समाजके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। धार्मिक कार्योंमें रुचि लेते थे। माता श्रीमती राजरानी भी धार्मिक विचारोंकी महिला थी। जब आपकी उम्र तीन वर्ष की थी तभी एक दुर्घटनासे आपके बड़े भाई साहबका स्वर्गवास हो गया था। उसी वर्ष गाँवमे भीषण प्लेग की बीमारी आयी जिसके कारण आपका परिवार नरसिंहपुरसे करेली आ गया। वहाँपर मिठाईकी दुकान खोल ली गयी और निवासको स्थायी रूप दे दिया गया। तबसे आपका परिवार करेलीमे ही रहने लगा।

शिक्षा

आपकी शिक्षा सिर्फ चौथी कक्षा तक ही हो पायी। क्योंकि घरके कामके लिए पिताजीको आपके सहयोगकी आवश्यकता हुई। फलतः आपका अध्ययन कार्य स्थगित हो गया। अध्ययन स्थगित हो जानेपर आपकी प्रवृत्ति स्वाध्यायकी ओर उन्मुख हुई। आप मन्दिर जीमें जाते वहाँ कुछेक ग्रन्थोंका अध्ययन करते प्रवचन सुनते और भजन यादकर स्वर और लयके साथ सुनाया करते।

वैराग्य

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि आप जिनेन्द्र भक्तिरस पगे पदोंको बड़ी ही भावातिरेक शैलीसे गाते थे और उनके भावार्थोपर घण्टों मनन किया करते थे। उसका परिणाम यह हुआ कि आपके हृदय स्थलपर विरक्तिके अंकुर अंकुरित होने लगे। साथ ही एक घटना समुपस्थित हो जानेके कारण आपने गृहत्याग भी कर दिया। घटना यह थी कि नगरपालिकाके द्वारा व्यर्थ दोषारोपण लगानेके कारण प्रेसीडेण्टसे

आपकी कुछ बातचीत हो गयी । उसके सम्बन्धमें आपके पिताजीने कहा कि बेटा आजकल सच्चाईकी कीमत नहीं है । हथजडईका जमाना है । सच कहनेमें आपत्तिका सामना करना पडता है ।

पिताजीके उक्त वाक्योंको सुनकर इस मायावी तथा ढोंगी संसारसे आपको घृणा हो गयी । आपकी अन्तरात्मा चिल्ला उठी "रे मानव जिस समाजमें सच्चाईकी कीमत नही होती वहाँसे दूर भाग चल ।"

अन्तरात्माकी इस सरस पुकारको आपने श्रवणगोचर किया, समक्षा और रात्रिके बारह बजे मिठाईकी खुली दुकान छोड़ साथमें मार्गव्ययहेतु कुछ रकम ले सर्वदाके लिएं गृह त्यागकर निकल पड़े । आप सर्वप्रथम प्रयाग पहुँचे । रास्तेमें अनेकों कठिनाइयाँ आयी किन्तु ममताका धागा आप तोड़ ही चुके थे । अस्तु सभी आपदाओंका सामना करते हुए आप बढ़ते ही गये । अन्तमें श्री पार्श्वनाथ उदासीन आश्रम ईसरी बाजार (बिहार) पहुँचे और आश्रममें रहने लगे । आजभी आप वही हैं ।

व्यक्तित्व

आपका व्यक्तित्व अनूठा है । कि यद्यपि स्कूली शिक्षा आपको बहुत कम मिली है किन्तु आपका ज्ञान-वारिधि अथाह है । धर्मचिन्तनकी अथक लगन जैसी आपमें है वैसी बिरले ही में दिखाई पडती है। आप यूँ तो धर्मप्रवचन हेतु दूर-दूरतक जाया करते थे ।

आप ईसरी आश्रममें रहते हैं । वही अध्ययन और चिन्तन कर अपनेमें स्थिरताका अनुभव करते हैं । आपके घरमें पत्नी श्रीमती चिरोंजाबाई और बच्चे है । आप अपने आपमें सन्तुष्ट है । आपकी ज्ञानपिपासा शान्त नही हुई । अब भी आपका अधिकाश समय शास्त्रादि अध्ययनमें ही व्यतीत होता है ।

●

स्व० ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगत

●

श्रीमान् ब्र० सुमेरचन्द्रजी भगतका जन्म कार्तिक सुदी ९ वि० सं० १९५३को जगाधरी (पंजाब) में हुआ था । पिताका नाम श्रीलाला मूलराजजी और माताका नाम सोनादेवी तथा जाति अग्रवाल है । स्कूलमे हिन्दी मिडिल तक शिक्षा ग्रहण करनेके बाद ये घरके व्यवसायमें लग गये ।

प्रारम्भमे ही इनकी धार्मिक रुचि विशेष थी, पूजा, दान और व्रतोंका पालन करना आदि क्रिया मुख्य होनेसे बाल बच्चे होकर भी जनता द्वारा 'भगत' पद द्वारा सम्बोधित किये जाने लगे । इन्होंने अपनेको कभी नही भुलाया । यही कारण है कि अवसर मिलते ही ये कौटुम्बिक जीवनसे उदासीन हो मोक्षके मार्गकी ओर झुके । इनके शिक्षागुरु और दीक्षागुरु पूज्य श्री१०५ वर्णीजी महाराज थे । इन्होंने यह प्रतिमा वि० सं० २००१में स्वीकार की थी ।

इतना सब होते हुए भी इन्होंने समाज और राष्ट्रहितके कार्योंसे कभी भी उपेक्षा धारण नही की । स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए देशमें जो आन्दोलन हुआ है उसमें भी इन्होने सक्रिय भाग लिया और देशहित कार्यको आगे बढ़ाया ।

●

ब्र० पंडित सरदारमल जैन 'सच्चिदानन्द'

●

लक्षाधिपति, श्रीमन्त हुकमचन्दजी 'वैद्यरत्न' के पुत्ररत्न श्री ब्र० पं० 'सच्चिदानन्द'जी सिरोंज (टोंक स्टेट) वर्तमान जिला विदिशा (मध्य प्रदेश)में ज्येष्ठ शुक्ला १४ शनिवार सवत् १९६५ में श्रीमती मूँगाबाईकी कोखसे जन्म लिया। आपके पितामह श्री सुखलालजी जैन समाज सिरोंज के अग्रणी पदपर रहे। जिन्होंने उच्च धार्मिक शिक्षण हेतु एक जैन पाठशालाकी स्थापना करवाई तथा शास्त्र सभाकी परम्पराका शुभारम्भ सिरोंजमें किया। प्रारम्भिक शिक्षासे विशारदतक राजकीय स्कूल सिरोंजमें अध्ययन किया तथा बादमे स्वाध्यायी रूपसे ज्योतिष, वैद्यक, बायोकेमिक, होमियोपैथिक, नेचरोपैथिक तथा सामुद्रिक शकुनशास्त्र और यन्त्र-मन्त्र तन्त्रादि विषयक ग्रन्थोंका अध्ययन किया। संगीतमें विशारद होनेसे आपको बैजो, जलतरंग, प्यानों आदि वाद्य-यन्त्रोंसे संगीत प्रवीणता प्राप्त हुई। तथा १९३० में आपको मजिस्ट्रेट सिरोंजसे 'वैद्यक' का प्रमाणपत्र हासिल हुआ।

आपकी मौसीजी श्रीमती मथुराबाईजी वर्तमानमें पू० १०५ आर्यिका विमलमती माताजी है जो इस पदपर लगभग ३० वर्षसे है।

सामाजिक चेतनाके प्रतीक—आप स्थानीय सिरोंजकी विविध तीन संस्थाओंके मचालक, अध्यक्ष, मन्त्री एवं सदस्य रहे तथा १९४० में मेम्बर लेजिस्लेटिव कौंसिल टोंक स्टेट। १९४२ में म्यूनिस्पिल बोर्ड सिरोंजके वाइस चेयरमैन तथा कोटा डिवीजन साल्ट मर्चेंट एसो० के डायरेक्टर रहे। इसके अलावा आप प्रान्तीय परवार सभाके उपाध्यक्ष तथा विभिन्न जैन परिषदोंके सदस्य हैं। इस प्रकार आपके व्यक्तित्व की ऊर्जा, सामाजिक चेतनाके विकासके लिए लगी।

विशेष उल्लेखनीय कार्य—इस सेवाभावी भावनाके साथ-साथ आपने स्टेट टोंककी कौंसिलमें महावीर जयन्तीकी आम छुट्टी करवाई तथा बाल वृद्ध विवाह निषेध बिल पास करवाया। म्यूनिसिपल बोर्डसे महावीर जयन्तीके दिन जीव हत्या बन्द करवाई तथा जैन समाजसे वेश्या नृत्यकी कुप्रथा बन्द कराई और कुदेवादि पूजा मिथ्यात्वको छुडाया। स्टेट स्कूलोंमें छात्रोंको नैतिक शिक्षाके रूपमें जैनधर्मकी शिक्षा अनिवार्य करवायी। मुनियोंके विहार निर्विघ्न हों इसके लिए आपने सक्रिय कदम अपनाये। आप प्रतिष्ठाकारकके रूपमें सामने आये तथा अबतक करीब ६-७ सिद्धचक्र विधान सम्पन्न कराये। अपनी दानशीलतामें पीछे नहीं रहे तथा आपने आरोनमें पचकल्याणकके सुअवसरपर १००१) रुपये आहारदानमें तथा १९७२ में मुनि श्री जयसागरके आहारदानके उपलक्ष्यमें ५००१) का दान किया।

साधना जीवनके प्रतीक—सर्वप्रथम संवत् १९८३ में क्षुल्लक नमिसागरजीसे पाक्षिक श्रावकके व्रत ग्रहण किये और अपनी संयम-साधनामें अग्रेसर होते हुए वि० सं० २०१० में पू० क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णीसे व्रत प्रतिमायें और अन्तमें संवत् २०१३ में ब्रह्मचर्य लिया।

साहित्य सर्जकके रूपमें—आपके साहित्यका मुख्य क्षेत्र पूजाओं और भजनोंका प्रणयन रहा और आपने लगभग ७-८ पूजाओ, तीन कवित्तादि सग्रह प्रकाशित करवाये। इसके अलावा कई ग्रंथोंका संशोधन स्वर्गीय पू० श्री वर्णीजीके सान्निध्यमें किया। आपकी मौलिक एवं स्वतन्त्र रचनायें—'जलमें जीव', भगवान महावीर, जैन वाग्दान विधि, भ० ऋषभदेव प्रश्नोत्तर चूड़ामणि, अध्यात्म सूत्रभाव, तत्त्वार्थसूत्र भाषा आदि हैं। आपने सस्कृतकी सुबोध श्रावकाचारका हिन्दी अनुवाद भी किया है। अनेको सामयिक लेख लिखे हैं। एक ज्योतिष सग्रह और विश्व धर्म अभी अप्रकाशित है।

श्री 'सच्चिदानन्द'जी अपने कर्मठ व्यक्तित्व और वाक्-कुशलतामें प्रवीण हैं और आपके पांडित्य तथा सत्पुरुषार्थसे प्रभावित होकर समय-समयपर दि० जैन-समाज टोंक, सिरोज, सनावद, करकबेल, बारोन, खातेगाँव, अशोकनगर एवं दमोहने आपके सम्मानार्थ अभिनन्दन-पत्र एवं 'दिवाकर' जैसी सम्माननीय पदवीसे विभूषित किया।

आपके द्वारा संस्थापित श्री समन्तभद्र जैन पारमार्थिक ट्रस्ट तथा श्री सच्चिदानन्द जैन न्यास ट्रस्ट सुचारु रूपसे चल रहे हैं जिनका उद्देश्य जैनधर्म और जैनधर्मावलम्बियोंकी उन्नति, संरक्षण एवं सच्ची सेवा करना है। इन ट्रस्टोंसे असमर्थोंको सहायता आदि भी दी जाती है।

राजनीतिके क्षेत्रमें प्रजामण्डलकी ओरसे सत्याग्रह करनेका अल्टीमेटम देकर आन्दोलन चलाया। फलस्वरूप अपनी शर्तें स्वीकार करनेका आश्वासन लिया। आप विधान सभाके सदस्य भी रहे हैं।

आप सन् १९३० से बराबर धार्मिक एवं सामाजिक विषयोंपर लेख और कविताएँ सभी जैन पत्रोंमें भेजते रहते हैं।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती काशीबाईने सिरोजमें श्री चन्द्रप्रभु जिनालयमें विशालकाय श्री बाहुबलि स्वामीके नवीन जिनबिम्बकी व वेदीकी प्रतिष्ठा संवत् २०२४ में सोत्साह कराई।

इस प्रकार ब्रह्मचारीजीका बहुमुखी व्यक्तित्व जैन समाजके लिए अनुकरणीय है।

●

जैनधर्मभूषण ब्र० शीतलप्रसादजी

●

जैन समाजके अनूठे सेवक धर्मप्राण ब्र० शीतलप्रसादजीको सन् १८७९ में माता श्रीमती नारायण देवीने जन्मा था। पिताजी मक्खनलालजी मध्यम वर्गके गृहस्थ थे। आप अपने पितामह श्री मंगलसेनजीके साथ जब आपकी अवस्था ८ वर्षकी थी कलकत्ता चले आये थे।

कलकत्तामें ही शिक्षा प्राप्त की। सन् १८९३ में कलकत्ता निवासी श्री छेदीलाल गुप्तजीकी कन्यासे आपका विवाह कर दिया गया। १८९६ में आपने प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। १९०१ मे एकाउण्टेंटशिपकी परीक्षा उत्तीर्ण करनेके बाद आप रुहेलखण्डमें रेलवेमें कार्य करने लगे। इस नौकरीके अतिरिक्त जो भी समय बचता उसे स्वाध्याय एवं समाजसेवामें लगाते थे।

एक घटना और विरक्ति—सन् १९०३ में पिता श्री मक्खनलालजीके देहावसानके पश्चात् १९०४ में ९ मार्चको माता नारायणी देवी, १३ मार्चको धर्मपत्नी एवं १५ मार्चको नवजवान लघुभ्राता पन्नालालके

शरीर त्यागकी घटनासे आपने संसारकी असारताका प्रत्यक्ष अवलोकन कर लिया। एक वर्षतक वैराग्य-भावना एवं सांसारिक प्रलोभनोंके मध्य अन्तर्द्वन्द्वोंसे गुजरनेके पश्चात् आपमें वैराग्य भावना बलवती हुई और १९०५ मे अपनी सरकारी सेवासे त्यागपत्र दे दिया। इस समय तकके इस अल्प जीवनमें ही आप कई महत्त्वपूर्ण कार्य कर चुके थे। जैन गजटका सम्पादन, दि० जैन अवध प्रान्तीय सभाके उपमन्त्री एवं महा-सभाके अधिवेशनोंमें क्रियात्मक कार्य आदि सेवाएँ करनेसे आप 'जैनधर्मके अथक सेवक' कहे जाने लगे।

१९०५ में सेठ माणिकचन्द्रजी बम्बई के अनुरोधपर आप बम्बई चले आये। आपकी प्रेरणासे ही सेठजीने बम्बई, सांगली, आगरा, शोलापुर, कोल्हापुर, लाहौर आदि विभिन्न स्थानोंपर धार्मिक संस्थाओंकी स्थापनायें की।

१९०९ से १९२९ तक आपने बड़ी कुशलतासे "जैन मित्र" (साप्ताहिक) का सम्पादन किया और अपने सम्पादकत्वमें अनवरत विभिन्न विषयोंपर उपयोगी एवं सुधारवादी लेख लिखते रहे।

ब्रह्मचर्य दीक्षा—१९०९ में शोलापुरमें श्री ऐलक पन्नालालके समक्ष आपने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

सम्मानित पदवियाँ—१९१३में आपको 'जैनधर्म भूषण' तथा १९२४में इटावामें विभिन्न संस्थाओं की ओर से 'धर्म दिवाकर' की उपाधि समर्पित की गयी। परन्तु वे इनसे निर्लिप्त रहे। आप कांग्रेस अधि-वेशनोंमें भी सक्रिय भाग लेते थे। स्याद्वाद महाविद्यालयके अधिष्ठाता होनेपर आपने कानपुर कांग्रेसके अधिवेशनमें जैन समाजके प्रतिनिधिके रूपमें भाग लेना स्वीकार किया था।

जैन परिषदकी स्थापना—१९२३में जैन महासभाके दिल्ली अधिवेशन में रूढवादिता और प्रगति-शील विचारकोंमें मतभेद उत्पन्न हो जानेसे आपके नेतृत्वमें प्रगतिवादियोंने भा० दि० जैन परिषदकी स्थापनाका निश्चय किया। इसमें प्रमुख थे बै० चम्पतराय, श्री अजितप्रसाद जैन एवं बाबू कामताप्रसादजी।

१९२३से ही परिषदके मुखपत्र 'वीर' का सम्पादन कार्य भी सहसम्पादक बाबू कामताप्रसादजीके साथ किया। १९२६में आप लखनऊ पधारे तथा कुछ धर्म पुस्तकोंके अंग्रेजी अनुवाद हेतु श्री अजितप्रसादजी को प्रोत्साहित कर प्रकाशित की। आप बड़े ही सुधारवादी दृष्टिकोणके आदमी थे। अतः १९२७में आपने विभिन्न संस्थाओंके सभी पदोंसे त्यागपत्र दे दिया।

सुधार कार्य—१. समाजमें बाल-विधवाओंकी दयनीय स्थितिको देखकर उनको पथभ्रष्ट होनेसे बचानेके लिए बाल-विधवा विवाहका समर्थन कर उसे श्रेयस्कर समझा।

२ जैन-समाजकी अन्तर्जातीय विवाहोंके प्रबल समर्थक एवं इसका प्रचार किया।

३. समाज में व्याप्त दस्सा-बीसा विवाद जिसमें इन्हें पूजा-पाठसे वंचित रखा जाता था, का खुलकर विरोध और उसका उन्मूलन किया।

४. मरणभोजकी समाप्तिपर बल दिया।

५ संशोधित प्रतिष्ठा पाठ का सृजन कर बाहरी रूप मेले आदिका बहिष्कार एवं प्रतिष्ठाके समय एक ही प्रतिमाके समर्थक।

६. महिलाओंकी स्थितिमें सुधार लानेका संकल्प, जिसमे विभिन्न महिला संस्थाओंकी स्थापना, महिलाश्रम—बम्बई, दिल्ली एवं जैन बाला विश्राम—आराकी स्थापना जिसमें बहन मगनबाई एवं ब्र० चन्दाबाईका उल्लेखनीय योगदान।

७. १९४० में तरणतारण समाजके मूर्तिपूजा विरोधी विवादको समाप्त करना।

आपका विश्वास था कि यदि प्रचार किया जाये तो जैनधर्म राष्ट्रधर्म हो सकता है। विदेशोंमें जैन-धर्मके प्रचारकी बड़ी इच्छा बनी रहती थी। कम्पवायु रोगके कारण १९४२ में स्वर्गवास हो जानेसे यह इच्छा अपूर्ण बनी रही।

साहित्य सेवा—१. आपने लंका व बर्मा जाकर बौद्धधर्मका विशेष अध्ययन कर 'जैन बौद्ध तत्त्वज्ञान' (अंग्रेजी) व हिन्दीमें रचना कर दोनों धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया।

२. आपने लगभग ३० बड़े ग्रंथ, २४ छोटी पुस्तकोंकी रचना तथा २२ ग्रन्थोंकी हिन्दी टीकायें कीं। आपने अंग्रेजीमें २३ तीर्थंकरोंके चरित्र तथा 'What is Jainism' लिखा जो उल्लेखनीय है।

३. अनेक पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादनके साथ-साथ विशाल ग्रन्थ 'बृहत् जैन शब्दार्णव' का सम्पादन-कार्य विशेष सराहनीय है।

४ आपने गद्य-रचनाके साथ-साथ पद्य-रचना भी लिखी।

५. इसप्रकार ४० वर्षके ब्रह्मचर्य कालमें आपने लगभग ७७ ग्रंथ व पुस्तकें समाजको दी जो आपके लगभग १२ घण्टे प्रतिदिनके स्वाध्याय एवं ज्ञानार्जनका प्रतिफल थी।

स्वरचित ग्रन्थ—१ तत्त्वमाला द्वितीयावृत्ति, २ गृहस्थ धर्म (तृतीय संस्करण) ३. अनुभवानन्द, ४. स्वसमरानन्द, ५. आत्मधर्म, ६. सुलोचना चरित्र, ७. सेठ माणिकचन्द्रजीका जीवनवृत्त, ८. प्राचीन जैन स्मारक—बंगाल, बिहार, उड़ीसा, सयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त, राजपूताना, मध्य भारत, बम्बई प्रान्त, मैसूर व मद्रास प्रान्त, प्रतिष्ठासार सग्रह, जैनधर्म प्रकाश, निश्चय धर्मका मनन, महिलारत्न मगनबाईका जीवन चरित्र, आध्यात्मिक सोपान, सुखसागर भजनावलि (भाग १,२), मोक्षमार्ग प्रकाशक, विद्यार्थी जैनधर्म शिक्षा, जैन बौद्ध तत्त्वज्ञान (हिन्दी-२ भागोंमें अंग्रेजी), मानवधर्म, सहज सुख साधन, सहजानन्द सोपान, जम्बूस्वामी चरित्र, जैनधर्ममें अहिंसा।

हिन्दी टीकायें—छहढाला, नियमसार, समयसार प्रवचनसार, समाधिशतक, पंचास्तिकाय (प्रथम एवं द्वितीय भाग) इष्टोपदेश, सामायिक पाठ (अमितगति आचार्य), समयसार कलश टीका, बृहत् स्वयम्भू स्तोत्र, श्रावकाचार (तारणस्वामीकृत) ज्ञानसमुच्चयसार एवं उपदेश शुद्धसार, मंगल पाहुड़ सारसमुच्चय (कुलभद्राचार्य), बारह भावना (अंग्रेजी), तत्त्वसार टीका (देवसेनाचार्य), योगसार टीका, आध्यात्मिक चौबीस ठाणा चर्चा, त्रिभंगीसार एवं देव पुरुषार्थ एवं बृहद् जैन शब्दार्णव द्वितीय भागका सम्पादन किया।

●

स्व० ब्र० शीतलप्रसादजी

●

श्रीमान् ब्र० शीतलप्रसादजीका जन्म मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत शाहपुरमें अषाढ़ कृष्ण ७ वि० सं० १९४८ को हुआ था। पिताका नाम लाला मथुरादासजी था जाति अग्रवाल है। प्राथमिक शिक्षा लेनेके बाद ये अपने पिताजीके साथ बहुत दिन तक कपड़ेका व्यापार करते रहे।

इनके दीक्षा गुरु पूज्य श्री वर्णीजी हैं। ब्रह्मचर्य दीक्षा लेनेके बाद ये गृहकार्यसे पूर्ण विरत हो गये और धर्मध्यान पूर्वक अपना जीवन यापन करने लगे। इन्होंने स्वाध्याय द्वारा धार्मिक ज्ञान भी अच्छी तरह सम्पादित कर लिया था और उन प्रान्तकी स्वाध्याय मंडलीके प्रमुख सदस्य थे। ये बहुत समय तक उत्तरप्रान्तीय गुरुकुल हस्तिनापुरके अधिष्ठाता पदपर रहते हुए धर्म एव समाजकी सेवा करते रहे हैं। ये स्वभावसे विनम्र और निष्पक्ष थे।

●

स्व० ब्र० शान्तिदासजी

●

श्रीमान् ब्र० शान्तिदासजी नासिकके रहने वाले थे। इन्होंने अपने जीवन कालमें बूढ़ी चदेरी क्षेत्रकी बहुत सेवा की, स्वभावसे शान्त और निरहंकारी थे। पूज्य श्री वर्णीजीमें विशेष श्रद्धा थी। चारित्रके साथ जिनवाणीके अध्ययन चिन्तनसे आपमें ज्ञानकी विशिष्टता रही। शास्त्र सभामें आपका तात्त्विक प्रवचन विशेष गरिमा सहित होता था। तीर्थ सेवा आपका अपना कार्य था। बूढ़ी चन्देरीकी सेवा आपकी तीर्थ भक्तिका साकार उदाहरण है।

●

स्व० ब्र० श्रीलालजी काव्यतीर्थ

●

ब्रह्मचारी श्रीलालजीका जन्म १ जनवरी सन् १८९६ में टेहू (आगरा) उ० प्र० में हुआ था। यहीं आपकी आरम्भिक शिक्षा हुई। आपकी बुद्धि बचपनसे ही प्रखर व्यवसाय प्रधान थी। आपने बनारस आकर १२ वर्षकी अल्प आयुमें व्याकरण प्रथमा पास की। फिर कलकता विश्वविद्यालयसे काव्यतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९१२ तक आप प्रौढ़ विद्वान् माने जाने लगे।

पंडित पन्नालालजी बाकलीवालने आपके और पंडित गजाधरजीके सहयोगसे भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थाको जन्म दिया। इस संस्थासे अनेक अलभ्य जैन ग्रन्थ प्रकाशित हुए, जैसे राजवार्तिक, समयप्राभृत, पत्र परीक्षा, शब्दार्णव चन्द्रिका, जैनेन्द्र प्रक्रिया आदि। ब्रह्मचारीजीने संस्कृत प्रवेशिनीके दो भाग लिखे जो अतीव प्रशंसित व लोकप्रिय हुए, ये संस्कृत भाषा-समुद्रके सन्तरणके लिये जलयान ही हैं। पं० पन्नालालजी बाकलीवालने कलकत्तेमें शुद्ध प्रेस खोला जिसमें सरेसके बेलनके स्थानमें कम्बलोंका बेलन था। छपे हुए ग्रन्थोंके विरोधी वातावरणमें भी बाकलीवाल बढते ही गये।

आपका प्रथम विवाह हुआ तो पत्नी पुत्रीको जन्म देकर चली गई। पुनः विवाह हुआ, गृहस्थ बने और द्वितीय पत्नीका भी पहली पत्नी सा निधन हुआ तो आपका चित्त संसारसे विरक्त हुआ। १५ अगस्त १९४७ को ग्राण्ड ट्रंक रोड हावड़ामें आपकी फर्मको मुसलमानोंने घेर लिया पर आप सम्यक दृष्टि लिये विचलित नही हुए।

आपने जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थासे गोमट्टसार टीका (टोडरमलजी) की छापी। समयसार, मकरध्वज पराजय, आराधनासार, पदम पुराण (दौलतरामजी) छापा। विनोद मासिक पत्र निकाला। एक बौद्ध भिक्षुकने इसी प्रेसमे कातन्त्रव्याकरण छपवाई। जगरूपसहाय वकीलने वह सर्वार्थसिद्धि छपाई जो वस्तुत ब्रह्मचारीजी की कृति थी। विमलपुराण भी संस्थाने छापा। पं० श्रीनिवासजी शास्त्री, प० मक्खनलालजी न्यायालकारके सहयोगसे सस्था बढ रही थी।

आप राजेन्द्रकुमार कुंवरजीके साथ व्यावसायिक बुद्धि लिये फर्ममें कार्य करने लगे। आप आशातीत आगे बढे। जब आ० १०८ वीरसागरजीका शिखरजीमें चातुर्मास था, तब आपने गृहविरत ब्रह्मचर्य सप्तम प्रतिमा उनसे ले ली। तीर्थयात्रा की, पुन सस्थाकी उन्नतिमें लगे। सन् १९५६में सस्था महावीरजीमें आ गई। यहाँ संस्थाको नये सहयोगी मिले। उनमेंसे एक ब्रह्मचारी पडित संहितासूरि सूरजमलजी भी हैं जो ब्रह्मचारीजीके एक अनन्य मित्र है।

ब्र० श्रीलालजीने अनेक विद्याविहीनोंको विद्या दी, अनेक आजीविका विहीनोंको आजीविकाके योग्य बनाया। आपने अनेक जैन अजैन छात्रोंको मुक्त हस्त ज्ञान-दान दिया। आपकी प्रेरणासे टेहू गांवमें पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सस्कृत विद्यालय खोला गया, जिसमें नि.शुल्क शिक्षाकी सुव्यवस्था है, जिसने अनेक विद्वानों श्रीमानोंको जन्म दिया।

ब्रह्मचारीजीकी बडी भावना थी कि व्रतियोंके लिए एक आश्रम खोलें व सस्कृत विश्वविद्यालय बने। ब्रह्मचारीजीने नि.स्वार्थ भावसे गृहस्थ जीवनमें रहते हुए जो कार्य किया वह स्मरणीय बना है। एक कुर्ता व धोतीसे ही काम चलाने वाले सात्त्विक वृत्तिवाले श्रीलालजी श्री (लक्ष्मी) के लाल ही थे। आप गुरुजीके रूपमें प्रसिद्ध हो गये थे।

●

ब्र० हरिश्चन्द्रजी भगत

●

श्री मान् ब्र० हरिश्चन्द्रजी सहारनपुरके आस पासके रहने वाले है। प्रारम्भसे ही ये गृहकार्यसे विरत हो लोकसेवाके कार्यमें लगे रहते है। ब्रह्मचर्य व्रतके साथ सत्यव्रतका ये उत्तम प्रकारसे पालन करते हैं। जीवनमें कितनी ही कठिनाई और आर्थिक हानि क्यों न उठाना पड़े ये भूलकर भी असत्य भाषण करना स्वीकार नही करते।

श्री हस्तिनापुर गुरुकुलकी ये प्रारम्भसे सेवा करते आ रहे है। वर्तमानमें उपअधिष्ठाताके पदको सम्भालते हुए उसीकी सेवा कर रहे हैं। बीचमें संस्कृत और धर्मशास्त्रकी शिक्षा लेनेके लिए ये बनारस विद्यालयमें रहे है। ये स्वभावसे निष्पृह है।

पूज्य श्रीवर्णीजीमें इनकी अन्य भक्ति थी।

●

ब्र० हुकमचन्दजी

●

श्री मान् ब्र० हुकमचन्दजीका जन्म मेरठ जिलांतर्गत सलावामें कार्तिक कृष्णा ९ वि० सं० १९५२को हुआ था। पिताका नाम लाला माणूमलजी और जाति परवार थी। प्रारम्भिक शिक्षा लेनेके बाद ये अपने घरका कार्यभार स्वयं देखने लगे। इनके यहाँ जमीदारी और कपड़ेका व्यापार होता था।

इनका विवाह तो हुआ था किन्तु ३५ वर्षकी उम्रमें ही पत्नीका वियोग हो जानेसे ये गृहकार्यसे विरत हो आत्मसाधनामें लग गये। स्वाध्याय द्वारा इन्होंने षट्खण्डागम और कषायप्राभृत जैसे महान् ग्रन्थोंमें भी प्रवेश पा लिया। सर्वप्रथम इन्होंने ब्रह्मचर्यके साथ व्रत प्रतिमाके व्रत लिये थे और कुछ काल बाद ब्रह्मचर्य प्रतिमा स्वीकार कर ली थी। दीक्षा गुरु पूज्य वर्णीजी महाराज थे।

अपने गार्हस्थ्य जीवनमें इन्होंने कॉंग्रेस द्वारा देश-सेवाके कार्यको भी रुचिपूर्वक किया है। कुछ दिन तक ये नगर कांग्रेसके मंत्री भी रहे। उत्तर प्रान्तीय गुरुकुल हस्तिनापुरके अधिष्ठाता पद पर रहे। आज-कल ये इस गुरुकुल द्वारा धर्म और समाजकी सेवा करते रहते हैं। इनकी चित्तवृत्ति सेवाभावी, और निरहंकारी है। श्री पूज्य वर्णीजी महाराज पर इनकी अनन्य भक्ति और श्रद्धा थी।

●

विदुषी ब्र० अनूपमाला देवीजी

•

श्रीमती ब्र० अनूपमालाजी देवी आरा निवासी प्रसिद्ध रईस स्व० बाबू देवकुमारजीकी पत्नी हैं। श्रीमान् बाबू निर्मलकुमारजी और बाबू चक्रेश्वर कुमारजी इनके पुत्ररत्न हैं। इनमेंसे श्रीमान् बाबू निर्मल-कुमारजी आज हमारे बीच नहीं है। इनकी शिक्षा प्राइवेट रूपसे हिन्दी तक सीमित हैं फिर भी स्वाध्याय द्वारा इन्होंने धर्मशास्त्रकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है।

ये प्रारम्भसे ही धर्मकार्योंमें सावधान रही हैं और अपने पतिके प्रत्येक धार्मिक कार्य में योगदान देती रही हैं। बनारस स्याद्वाद विद्यालय भवन और आराका जैन सिद्धान्त भवन इन्हीं दम्पति युगलकी पुनीत सेवाका प्रतिफल हैं।

इन्होंने फाल्गुन सुदी ५ वि० सं० १९३७ को श्री १०५ क्षु० जिनमती अम्माके सान्निध्यमें ब्रह्मचर्य प्रतिमाका व्रत स्वीकार किया और उसका उत्तम रीतिसे पालन करती हुई ये श्री जिनमन्दिरजीमें धर्मध्यान-पूर्वक जीवन-यापन कर रही हैं। पूज्य वर्णीजीमें इनकी विशेष श्रद्धा और भक्ति रही।

•

ब्र० पण्डिता कृष्णाबाईजी

•

श्रीमती ब्र० पण्डिता कृष्णाबाईजीका जन्म फाल्गुन वदि १३ वि० सं० १९५७ को पिता रामेश्वर-लालजी गर्गके घर माता सीतादेवीके कूखसे फतेहपुरमें हुआ था। जाति अग्रवाल है। साधारण शिक्षाके बाद इनका विवाह हो गया था। वैधव्य प्राप्त हो जानेके कारण आपने अपने जीवन लक्ष्यको बदल दिया और ज्ञानवर्द्धनके साथ धर्म और समाज सेवाका व्रत जीवनमें उतारा। आपके महान् एवं सरल हृदयमें बालकोंकी समुन्नति एवं विधवाओं असहायोंके संरक्षणकी बलवती भावना रही परिणामतः आपने अपने सद्‌द्रव्यका उपयोग महिलाश्रमकी स्थापना संचालनमें किया जिससे हजारों महिलाओंका कल्याण हुआ।

लाखोंका दान और जिनमन्दिरोंके निर्माणमें भी आपका योगदान युगों-युगों तक चिरस्मरणीय रहेगा।

•

प्रशममूर्ति माता ब्र० पं० चन्दाबाईजी

श्रीमती ब्र० प्रशममूर्ति चन्दाबाईजीका जन्म अषाढ़ शुक्ला तृतीया वि० सं० १९४६ को वृन्दावनमें हुआ था। पिताका नाम बाबू नारायण दासजी और माताका नाम राधिकादेवी था। जाति अग्रवाल है। इनकी प्राथमिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई।

जन्मसे वैष्णव होनेपर भी इनका विवाह आरा निवासी प्रसिद्ध रईस और जैन धर्मानुयायी बाबू धर्मकुमारके साथ ग्यारह वर्षकी उम्रमें सम्पन्न हुआ था किन्तु १ वर्षके बाद ही इन्हें पति वियोगके दुःसह दुखका सामना करना पड़ा।

इतना होने पर भी इन्होंने अपने आपको सभाला और गुरुजनोंके सहयोगके द्वारा अपने जीवनको बदल डाला। ये पहले संस्कृत और धर्मशास्त्रके अध्ययनमें जुट गईं। उसके बाद उन्होंने एक कन्या पाठशाला की स्थापना की। आगे चलकर उसी कन्या पाठशालाने जैन बाला विश्रामका बृहद्रूप धारण किया। श्री अ० भा०दि० जैन महिला परिषदकी स्थापना और महिलादर्श मासिक पत्रका सचालन भी इन्होंने ही किया है। इनकी सेवायें बहुत है। वर्तमानमें प्रतिमाके व्रत पालती हुई धर्म और समाजकी सेवा कर रही है इनके दीक्षागुरु श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी महाराज है पूज्य श्री वर्णीजीमें विशेष श्रद्धा और अनुराग है। आपकी शिक्षित अनेकों बालिकाएँ समाजमें विदुषी महिलाओंके रूपमें सम्मानित हैं। आपके कृतित्व और व्यक्तित्व तथा पाण्डित्यकी तुलनामें दूसरी महिला नही है। आपके सम्मानमें अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हुआ जो स्वतन्त्र देशके प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसादजीके द्वारा आपको समर्पित किया गया।

ब्र० विदुषी महिलारत्न पं० पतासीबाईजी

पू० बाईजीके माता पिता मारवाडके प्राचीन नगर मारौठके निवासी थे। खंडेलवाल वंशमें चौधरी छगनलाल एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती माँगीबाई धर्मी दम्पति थे। जिनके संयोगसे वि० सं० १९४८ भाद्रपद मासके चतुर्दशीके शुभदिन शुभ लक्षणोंसे युक्त एक कन्याका जन्म हुआ। दो वर्षकी अवस्थामें मातृ वियोग हो जानेसे कन्या पतासीबाई अपनी नानी और दीदीके यहाँ पली। बचपनसे पतासीबाईकी अभिरुचि धर्मकी ओर होने लगी थी और उन्हें कई भजन कंठस्थ थे। तत्कालीन महिला शिक्षाकी प्रथा नही थी ऐसी परिस्थितिमें एक वृद्ध बाबाके पास कन्या मौखिक पाठ कंठस्थ करती। उस भद्र बाबाने मृत्युके दो दिन पूर्व पतासीबाईको ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत करनेकी बात कही थी।

१३ वर्षकी अवस्थामें पतासीबाईका विवाह गया निवासी श्री हीरालालजीके साथ हुआ। परन्तु आपके भाग्यमें ज्यादा दिन दम्पत्ति-सुख नही लिखा था। और एक रोगने श्री हीरालालकी जीवन लीला समाप्त कर दी। वीदणी (ससुरालका नाम) ने इसे अपने पूर्व जन्मका पापोदय समझकर अपने परिणामोंमें शान्त भाव रक्खा। आपकी जिठानी बहुत समझदार थी। पतासीबाईके इस वैधव्य जीवनको देखकर उन्होंने

इन्हें पढानेका विचार किया। क्षयोपशमकी तीव्रता होनेसे थोड़े दिनमें लिखना पढ़ना सीख लिया। दिनों-दिन बाईजीका वैराग्य सम्वर्द्धन होता गया और स्वाध्यायकी गति बढ़ने लगी। इस प्रकार सतत स्वाध्यायसे आपने जैनधर्मके रहस्यका परिज्ञान किया और घरके कामको करती हुई अपने आत्म ज्ञानका विकास किया।

अपने मामाके घर वे गया से नावाँ आयीं और उन्होंने वहाँके परिवारमें एक वृद्ध प्रज्ञाचक्षु पं० मोतीलालसे बहुत कुछ सीखा।

बाईजीका अधिकांश समय जैनधर्मके अध्ययन और अध्यापनमें व्यतीत होने लगा। अपनी सुशिक्षित जिठानीकी प्रेरणासे आपने स्वाध्यायकी लौ को निरन्तर वृद्धिगत की। यहाँ तक कि श्रीमंदिरजीमें शास्त्र प्रवचन करने लगी। तत्पश्चात् आपने श्री सम्मेदशिखर, गिरनार और बुन्देलखण्डके तीर्थक्षेत्रोंकी वन्दनायें की।

दैवयोगसे सप्तम प्रतिमाधारी भगत प्यारेलालजी गया पधारे और उनकी प्रेरणासे आप इन्दौर तत्त्वचर्चा एवं सत्समागमकी उत्कृष्ट लालसा लिये पहुँची। जहाँ उन्हें विदुषीरत्न भूरीबाई, पं० वंशीधरजी न्यायालंकार ओर प० खूबचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीके शुभ योगसे विशेष तत्त्व जिज्ञासाका अमृत मिला।

आपने विदुषी भूरीबाईसे गोम्मटसार तथा करणानुयोग और चरणानुयोगके ग्रन्थोंका अध्ययन किया। धवल ग्रन्थका प्रतिदिन प्रवचन सुनकर तत्त्वचर्चामें आनन्द लेती थी। इसप्रकार इन्दौरमें रहकर आपने अपने ज्ञानको विकसित करनेके साथ-साथ उपयोग भी स्थिर किया।

बादमें ज्ञान प्रचार हेतु आपने मारवाड़ तथा बंगाल प्रान्तका भ्रमण किया। इसी बीच आपने श्री पू० वर्णीजी व धर्ममाता चिरौंजाबाईजीके साथ गिरिराजकी यात्रा की और वर्णीजीके समागममें अध्यात्म ग्रन्थोंके स्वाध्यायकी ओर रुचि बढ़ गयी। आपने लगभग श्री सम्मेदशिखरजीकी ५० यात्रायें करके अतिशय पुण्य लाभ लिया।

परिग्रहका प्रायश्चित्त

आपने जहाँ आत्म साधनको अखण्ड बनाये रक्खा वहाँ लौकिक कर्तव्य-परायणतासे विमुख नहीं हुई। बाईजीने अपनी सम्पत्ति ज्ञान और दानादिमें लगा दी। दो हजार रु० स्याद्वाद विद्यालय बनारस तथा गयाकी पाठशालाको स्थायी रूप देनेके लिए स्वयं पाँच हजारका दान देकर स्थानीय लोगों के दो गुटोंके बीचके मन-मुटावको दूरकर सबके सहयोगसे पन्द्रह हजार रुपये उसके लिए स्थायी ध्रुव फण्डके रूपमें करवायी।

बाईजीने अपने जीवनमें ब्र० छोटेलालजीके सहयोगसे १७ पाठशालायें खुलवाईं तथा उन्हें यथा रूप सहायता दी तथा १५ पचकल्याणकोंमें भी सक्रिय भाग लेकर आत्म-उत्कर्ष किया।

'कवलचान्द्रायण' जैसे व्रतोंको धारण करती हुई आपने आ० शान्तिसागरजीसे कई व्रत लिये। अधिकाश रूपसे वर्णीजीके चातुर्मासोंमें साथ रहकर आत्म लाभ लिया। कोडरमा पंचकल्याणकमें आपको 'महिलाभूषण' की उपाधिसे विभूषित किया गया।

आपने मुनि आनन्दसागरके सत्संगसे बडा ज्ञान लाभ किया था। तथा इन्दौरमें मुनिजीके समाधि-मरणके समय बाईजीने उनकी बडी निष्ठासे वैयावृत्ति की थी। इसी प्रकार पू० वर्णीजीके समाधिमरणके समय १५ दिन तक आपने उनकी अच्छी वैयावृत्ति की थी। इस प्रकार बाईजीमें त्यागी और मुनियोंके प्रति अगाढ श्रद्धा थी।

इस प्रकार बाईजीका व्यक्तित्व उन विदुषी व्यक्तित्वोंमेंसे एक है जिन्होंने ज्ञानके विकासके लिए जीवनका समर्पण होम दिया, विशेष रूपसे उस परिस्थितिमें जब कि कन्याओंको शिक्षा देना पाप समझा जाता था। आप श्रद्धाकी मूर्ति हैं। आपकी वक्तृत्व-शैली अलौकिक है।

●

विदुषीरत्न ब्र० पण्डिता ब्रजबालादेवीजी

●

विदुषीरत्न पं० ब्रजवालादेवीजी पूज्य माँ ब्र० पं० चन्दाबाईजीकी सगी बहिन हैं। वर्तमान जैन सम्प्रदायमें बाला विश्राम महिला उत्थानकी महानतम शिक्षा संस्था है। इसके लिए एव समाज सेवाके लिए आपने अपना जीवन अर्पण कर दिया है। संस्थाके समस्त कार्योंका दायित्व आपपर ही है। इसके अलावा महिला परिषद्की मंत्रिणी एवं बाला विश्रामकी उपसंचालिका हैं। तथा सूरतसे निकलने वाली मासिक पत्रिका महिलादर्शकी उपसम्पादिका रही हैं। समीपवर्ती अनेक ग्रामोंमें चलनेवाली पाँच सामुदायिक विकास योजनाओंकी चेयरमैन रही। यह योजनाएँ सर्व साधारणके लिए विकास योजनाएँ रही है। अत: सामाजिक कार्यकर्त्री भी हैं।

जैनमिशनकी भी आप सदस्या रही हैं। इस संस्थाकी समुन्नतिमें स्व० बाबू कामताप्रसादजीसे आपका सदैव क्रियाशील कार्यकर्त्ताके रूपमें योग दान रहा। आपने प्रदर्शन रहित मूक सेविकाके साथ सप्तम प्रतिमाओं तकके व्रतोंको अंगीकार किये है। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीका आपको अच्छा ज्ञान है। जैन सिद्धान्त की तो आप मर्मज्ञा हैं। पूजन स्वाध्याय आपके दैनिक स्वाभाविक नियम बद्ध कार्य है। आपका त्यागमय जीवन शिक्षाके प्रचार और प्रसारमें सदैव अग्रणी रहा।

आपमे आतिथ्य सत्कार वात्सल्यपूर्ण भाव सदैव देखनेमें आता है। अनेकों जगह महिला अधिवेशनोंमें अध्यक्षताके रूपमें आपने नारी जगत्को जो दिशा बोध दिया उसकी छाप प्रत्येक भारतीय नारीके लिए आदर्शरूपमें अंकित है।

१७ वर्षकी अल्पावधिमें आपको वैधव्यपनका दारुण दु:ख सहना पडा। आपकी मात्र एक पुत्री हैं जिसके तीन पुत्र और पाँच पुत्रियाँ हैं। वर्तमान बीसवी शतीके इतिहासमें नारीरत्नके रूपमें आपका यशो-गौरव सदैव प्रकाशमान एवं प्रेरणा जनक रहेगा।

●

ब्र० रेशमबाईजी

●

इतिहासमें ऐसे कम उदाहरण मिलेंगे, कि कोई महिला आत्मकल्याणकी इच्छुक हो, अपने सम्पन्न परिवार (जिसमें पति भी हो) को त्यागकर अपने जीवनको आत्मनिर्भर बना एक तपस्विनीकी भाँति जीवन बिताये। ब्र० पं० रेशमबाईजी इन्दौर इसका उदाहरण है। बाईजीका जन्म ज्येष्ठ शुक्ला १३ वि० सं० १९८१ को पिडावा (राजस्थान) में हुआ था। पिता श्री भँवरलालजी जैसवाल जैन सम्पन्न व्यक्ति थे तथा माताजी श्रीमती केसरबाई धर्मपरायण महिला थी।

स्थानीय मुनि ज्ञानसागर दि० जैन पाठशालामें ४ वर्ष तक विद्याध्ययन कर घरपर पिताजीसे धर्म एवं संस्कृतकी शिक्षा ग्रहण की। बाईजी यह जानकर कि 'वास्तविक सुख धर्ममें है' कुछ उदासीन भावोंसे रहने लगीं।

नारी पराश्रिता होती है। और न चाहकर भी आपका वैवाहिक संस्कार १३वर्षकी आयुमें पिडावाके ही श्री गुलाबचन्दजीके साथ हो गया। ससुराल हर प्रकारसे सम्पन्न थी परन्तु केशरबाईका मन गार्हस्थिक प्रपंचसे छटपटाने लगा था। ४वर्ष ससुरालमें रहीं और एक सन्तानको जन्म भी दिया परन्तु वह आठ माह पश्चात् बिछुड़ गया।

गृह त्याग

बाईजी बचपनसे सांसारिक बन्धनोंसे उन्मुक्त होना चाहती थी परन्तु माता-पिताकी आज्ञा न मिली। विवाहके डेढ़ वर्ष बाद भी श्री आर्यिका चतुरमती माताजीसे ऐसी इच्छा व्यक्त की थी परन्तु ससुरालका बंधन था। सं० २००१में पूज्य मुनि ज्ञानसागरजीका पिड़ावामें आगमन हुआ और आपने इन्हींके चरणोंमें अपना हित समझा तथा पतिको दूसरी शादीकी स्वीकृति देकर जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य प्रतिमा ग्रहण की। ३वर्ष गुरुके चरणोंमें रहकर ७वर्षतक पिड़ावाके श्री ज्ञानसागर कन्या पाठशालामें अध्यापन कार्य किया और बादमें शिकोहाबादमें कसीदा कढ़ाईका काम सीखकर इन्दौर (मल्हारगंज) १९५६में आकर धार्मिक जीवन व्यतीत कर जीविकोपार्जन करने लगीं।

संवत् २०१६में लुहारदा (देवास) के श्री पंचकल्याणक महोत्सवके समय आपने १०८ आचार्य योगीन्द्रतिलक शान्तिसागरजी महाराजसे सप्तम प्रतिमा ब्रह्मचर्यके व्रत ग्रहण किये। अपनी २०वर्षके स्व-उपार्जित द्रव्यसे १०हजार रुपया दान विभागमें दिये। इन्दौर, श्री अहार गिरिपर चरणपादुकायें स्थापित करायी, पपौरा, पिड़ावा आदि स्थानोंपर अपने द्रव्यका सदुपयोग दान देकर किया।

इस प्रकार बाईजीका जीवन एक साध्वीके रूपमें व्यतीत हुआ और हो रहा है। आप विद्वान् महिला रत्न हैं। प्रत्येक विषयको बड़ी गम्भीरताके साथ सरल शब्दोंमें मृदुल भाषामें लोगोंके सम्मुख रखती हैं। अब आपका अधिकाश समय पूज्य श्री १०८ मुनि नेमिसागरजी महाराजके सान्निध्यमें होता है और उनसे निरन्तर अपने ज्ञानका विकास कर रही हैं।

धार्मिक दिशामें बढते चरणसे सम्यक्त्वके लक्ष्य और मंजिलकी ओर अनवरत बढ रही है।

●

ब्र० विद्युल्लता देवी 'शहा'

●

जैन महिला जगतकी शिरोमणि महिला जिनका सम्पूर्ण जीवन ज्ञान और चारित्रकी साधना हेतु समर्पित हुआ है तथा जो जैन साहित्य-अर्चनाकी अनन्य उपासिका हैं, उन ब्र० विद्युल्लता देवीका नाम आज कौन नहीं जानता ?

ग्राम गिरवी (फलटण) पो०—शोलापुर जिला सतारा (महाराष्ट्र) में मातु श्री माणिकबाईके गर्भसे जन्म लिया। वर्तमानमें आपकी मातु श्री मुनि १०८ श्रुतसागरजी महाराजके संघके साथ '१०५ आर्यिका चन्द्रमती' के नामसे वैराग्यधर होकर धर्म और ज्ञानके पीयूषका अवगाहन कर आर्यिका जीवन बिता रही हैं। जब आपकी आयु चार वर्ष की थी आपके पिता श्री हीराचन्दजी और बडे काकाजीका देहावसान हो गया था। तब आपकी माताने ब्र० जीवराज गौतमचन्द दोशी तथा ब्र० देवचन्द (वर्तमानमें १०८ पू० मुनि समन्तभद्र महाराज) की प्रेरणासे कंकूबाई श्राविकाश्रम कारंजा (वन्हाड) में अध्ययनार्थ आपको भेजा। आपके त्यागमय जीवन, आजीवन अविवाहित रहनेकी प्रेरणा और धर्म संस्कार निरखकर ब्र० सुमतिबाई शाहने सोलापुर जैन श्राविकाश्रममें अध्ययन हेतु आनेकी प्रेरणा दी और वहाँसे आपने न्याय, व्याकरण, काव्य तथा कालेजकी बी० ए०, बी० टी० तक शिक्षा प्राप्त की।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् आप श्राविका संस्था नगर सोलापुरकी प्राचार्यापदपर आसीन हुई और १९५२ से आज तक उसी पदपर कार्य रत हैं। शिक्षा-कालमें आप मेधावी छात्रा रही। आपने 'अनेकान्त' मासिकमें स्व० पं० जुगलकिशोरजी द्वारा घोषित 'निबन्ध प्रतियोगिता'में प्रथम स्थान प्राप्त कर १०१) रु० का नकद पुरस्कार जीता था जो गौरव की बात थी।

साहित्यिक क्षेत्रमें आपकी सेवायें अमूल्य हैं। आपने बहुधा संस्मरण, कथायें एवं लघु निबंध लिखे है जो श्राविका (मराठी-पत्रिका), 'जैनमहिलादर्श', 'स्थानिक-संचार', समाचार दैनिक तथा अन्य जैन साप्ताहिक पत्रोंमें प्रकाशित होते रहते हैं। १९६० से आप 'जैन महिलादर्श' और १९६७ से 'श्राविका' की सम्पादिका हैं। आपकी 'जीवन ज्योत' एक स्वतंत्र कृति है जिसमें क्षु० राजुलमतीका जीवन चरित्र है।

आपने तन, मन और धनसे 'राजुलमती दि० जैन श्राविकाश्रम' सोलापुरकी ही नहीं अन्य ऐसी ही कई संस्थाओं की सेवा की और जीवन लगाया। आप अखिल भा० दि० जैन महिला परिषदके अधिवेशनकी सेक्रेटरीके रूपमें सेवा कर रही हैं। तथा भारत महिला शिक्षण मंडल सोलापुरकी १९५२ मे 'फाऊन्डर मेम्बर'के रूपमें आजीवन सेवक हैं।

आप आदर्शता, सच्चरित्रता और नारीजन्य शीलताकी आगार हैं। समाज सेवाका जो अक्षय व्रत लिया वह वस्तुत: स्तुत्य है। आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लेकर समयकी दिशामें जीवनका महत्त्वपूर्ण कदम है और अपनी ज्ञानचेतनाके प्रवाहसे नारीके उत्थान और उन्नयन हेतु प्रयत्नशील रहती है। ऐसी नारी ही जगतकी माँ स्वरूपा होकर अपने पुत्रोंका कल्याण करती है।

●

द्वितीय खण्ड

परम्परागत संस्कृतिके वर्तमान साहित्यिक विशिष्ट
जैन विद्वानोंका जीवन परिचय

विद्यावारिधि पंडित मक्खनलालजी शास्त्री

●

जीवन परिचय

आजसे लगभग अस्सी बरस पहले, पंडितप्रवर मक्खनलालजीका जन्म चावली ग्राममें हुआ। आपके पिता श्री वैद्य तोतारामजी थे और माता मेवा रानी थी। आप पद्मावती पुरवाल जातिके भूषण व तिलक गोत्रज हैं। आपके परिवारमें छह भाई हुए। रामलालजीने विवाह नहीं किया, व्यापार और धर्म साधन किया। मिट्ठनलालजी रुईके व्यापारी बने। पं० लालारामजीने लगभग १०० ग्रन्थोंकी टीकायें लिखी। पंडित नन्दनलालजी शास्त्री तो कालान्तरमें मुनि सुधर्मसागर भी बन गये थे। पंडितजीसे छोटे भाई श्रीलालजी जौहरी धर्मात्मा हैं। पंडितजी स्वयं अतीव धार्मिक व सुप्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।

शिक्षा

अपने गाँवमें छठी कक्षा उत्तीर्ण करनेके बाद पंडितजीने दिगम्बर जैन विद्यालय मथुरा और सहारनपुरमें संस्कृतका अध्ययन किया। वैद्यक पढ़नेके विचारसे पीलीभीतके प्रसिद्ध ललितहरी वैद्यक विद्यालयमें भी प्रविष्ट हुए पर जिनदर्शनका साधन नही देख विद्यालय छोड़ आये और बनारसके विद्यालयमें न्यायतीर्थके ग्रंथ पढे। मोरेना आकर पंडित प्रवर गोपालदासजीसे उच्चकोटिके शास्त्रीय धार्मिक ग्रन्थ पढे।

कार्य

जब पं० धन्नालालजी और खूबचन्द्रजीने अतीव आग्रह किया तब आप कलकत्तेकी कपड़ेकी दुकान छोड मोरेना आ गये। गुरूणां गुरु गोपालदासजीके कीर्तिस्तम्भ जैसे गोपाल दिगम्बर जैन महाविद्यालयका चार युगों तक अक्षुण्ण रूपसे सचालन कर आपने सही अर्थोंमें गुरुदक्षिणा चुकाई व समाज-सेवा की। आज जो समाजमें आचार-विचारवान विद्वान् दिखलाई दे रहे हैं उनमेंसे अधिकाशको जन्म और जीवन देनेका श्रेय आपको है। इनमें डा० लालबहादुरजी शास्त्री, कुंजीलालजी शास्त्री, भागचन्द्रजी शास्त्री, फूलचन्द्रजी शास्त्री, मल्लिनाथजी शास्त्री, जिनचन्द्रजी शास्त्री, वर्द्धमानजी शास्त्री, श्रेयासकुमारजी काव्यतीर्थ, नागराजजी शास्त्री, धर्म चक्रवर्तीजो शास्त्री आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। आपके छात्रोंमें आचार्य विमलसागरजी, मुनिपार्श्वसागरजी, प्रबोधसागरजी, भट्टारक देवेन्द्रकीर्तिजी व लक्ष्मीसेनजी भी है जिनपर आपको गर्व और गौरव है।

मोरेना विद्यालयके आप प्रधानाचार्य ही नही रहे बल्कि उसकी आर्थिक व्यवस्थाके सुयोग्य स्तम्भ रहे। कलकत्ता से सत्तर सहस्र रुपया लाये तो देहलीसे बीस सहस्र रुपये लाये। ग्वालियर शिक्षा संभागसे मिलनेवाली ३० रुपयेकी सहायताको १०० रुपये करवाया। महाराजा ग्वालियरसे मिलकर बारहबीघा जमीन संस्थाको दिलवाई जिससे ७५० रुपये मासिक किराया संस्थाको मिल रहा। संस्थाके ऊपरीभागमें

आपने वर्धमान चैत्यालय बनवाया। पंचपरमेष्ठियोंकी भी प्रतिमायें बनवाईं। गुरुदेव गोपालदासजीका शुक्ल-वर्णका ३½ फुट ऊँचा पद्मासन स्टेच्यू भी आपने बनवाया।

समाज साहित्य सेवा

आपके संकेतमात्रसे सर सेठ हुकमचन्द्रजीने १५०० रु० की सहायता ५००० रु० में बदल दी थी। आप लगभग १६ वर्ष तक ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट भी मोरेनामें रहे। ओकाफ कमेटीमें भी आपको रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने जिन सिद्धान्तग्रन्थोंकी टीकायें लिखी। उनमें राजवार्तिक, पचाध्यायी, पुरुषार्थ-सिद्धयुपायके नाम उल्लेखनीय हैं। आपने अनेक गम्भीर उच्चकोटिके विस्तृत ट्रैक्ट लिखे जिनमें सिद्धान्त सूत्र समन्वय, सिद्धान्त विरोधपरिहार मुख्य हैं। सैद्धान्तिक विवाद दूर करनेके हेतु आपने जो ट्रैक्ट लिखे, स्पृश्यास्पृश्यविचार, चर्चासागरपर शास्त्रीय प्रमाण, जैनधर्म हिन्दूधर्मसे भिन्न है, मुनिविहार कानजीमतखंडन, आर्यभ्रमनिराकरण आदि हैं।

उपाधियोंकी उपलब्धि

देहली और अम्बालाके शास्त्रार्थोंमें मौखिक व लिखितरूपसे आपने विरोधियोंको निरुत्तर कर दिया तो वादीभकेसरी पदवी मिली। आपका देहली शास्त्रार्थ मुद्रित भी हुआ। जब महासभापर सेठवाल अधि-वेशनमें सुधारकोंने संकट ला दिया तब वहाँके लोगोंने आपकी प्रेरणासे सामना किया। जब आप महासभाके प्रमुख पत्र जैनगजटके सहायक सम्पादक थे तब बालचन्द्र रामचन्द्र कोठारीने आपपर इसलिये मुकदमा चलाया कि आपने पत्रमें मनगढ़न्त बातोंका पर्दाफाश किया था। न्यायाधीश किणीने केसको खारिज करते हुए लिखा था—'ये दूर देशके विद्वान् अपनी निःस्वार्थवृत्तिसे धार्मिक सिद्धान्तोंकी रक्षा एवं धर्मसेवी एक बडी सभाकी रक्षाके लिये इतना कष्ट उठा रहे है, अपने सिद्धान्तसे तिलमात्र भी नही हट रहे है दूसरी ओर सुधारवादी फर्यादी लोग समयके साथ दौड़ रहे हैं जो सिद्धान्तसे सुदूर है। महासभाकी रक्षा करनेसे आपके भाई लालारामजीको धर्मरत्न और पं० जीको 'धर्मवीर' उपाधि मिली। दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषदके पैठन (महाराष्ट्र) के अधिवेशनमें 'विद्यावारिधिकी' उपाधि दी गई। जैनदर्शनाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करनेपर गुरुवर्य गोपालदासजीने संस्थाकी ओरसे 'न्यायालंकार' उपाधि दी। कलकत्ताके जैन समाजमें दस लक्षणमे बुलाया और शंका समाधान शास्त्र प्रवचनसे प्रभावित होकर 'न्यायदिवाकर' उपाधि दी।

सभापतित्व व सम्पादन

दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद सिवनी अधिवेशनमें आप सभापति रहे। दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभाने फरिहामें आपको सभापति बनाकर सम्मानित किया। जैन गजटका आपने बारहवर्ष तक संपादन किया। कुछ समयके लिए आपने जैन गजटको अर्धसाप्ताहिक भी कर दिया था। 'जैनदर्शन' पाक्षिक स्वतन्त्र पत्र पुन. प्रकाशित किया। बादमें यही पत्र सिद्धान्त संरक्षिणी सभाका मुखपत्र बन गया। भा० दि० जैन महासभा परीक्षालयके वर्षों मन्त्री रहे। आपके गुणोंको देख लेखकर अनेक आचार्योंने आशीर्वाद दिये। आपने आचार्य शान्तिसागर संघके संकटको राजाखेडामें कौशल पूर्वक दूर किया और अपने जीवनको जोखममें डालकर आक्रामकोंको पकड़वा दिया। केस चला तो अपराधियोंको पाँच वर्ष जेल व १०० रुपये जुर्माना किया गया।

चारित्रकी दिशामें प्रवृत्ति

आपने आचार्य शान्तिसागरजी महाराजसे दूसरी प्रतिमाके व्रत लिये व आचार्य महावीरकीर्तिजीसे तीसरी प्रतिमाके व्रत लिये। गत ४० वर्षोंसे जैनके हाथका कुऐंका ही जल लेते है। इस जल लेनेके प्रयत्नमें

ही एक बार आपके प्राणोंपर आ बनी थी। आप पंजाब मेलमें चढ़ते समय गिरे पर निरापद रहे जिसे आप पद्मावती देवीका प्रसाद मानते हैं। आपने अपने लिये कभी कहीसे भेंट नहीं ली। आपकी यह निर्लोभिता आपको आदर्श विद्वान् प्रमाणित करती है। आपने अनेक सिद्धक्षेत्रोंकी वन्दना की। आचार्य शान्तिसागरने अपने सल्लेखनाकालमें भी आपको आशीर्वाद दिया—तुम अपना धर्मसाधन करते हुए निर्भीकतासे धर्मरक्षामें तत्पर रहते हो, आगमपर अटल श्रद्धा रखते हो अतः तुम्हारा सम्यग्दर्शन दृढ़ है तुम्हारा कल्याण होगा।

पंडितजी जहाँ देवदर्शनसे आत्मीय गुणोंका विकास मानते हैं वहीं रात्रिभोजनसे प्रच्छन्न त्रसजीवभक्षण दोष मानते हैं। भावोंकी शुद्धिके लिए द्रव्यशुद्धि भी आवश्यक मानते हैं। पंडितजीकी मनोकामना है कि समाजमें धार्मिक वातावरण, सदाचार पालन, धार्मिक वात्सल्य बना रहे। सभी आत्माका हित कर सकें। पंडितजी अध्ययनवृद्ध, अनुभववृद्ध और ज्ञानवृद्ध हैं।

●

पंडितप्रवर रतनचन्द्रजी मुख्तार

●

जीवन परिचय

विद्वत्ताकी विभूति ब्रह्मचारी रतनचन्द्रजी मुख्तार जैनगजट, जैनदर्शन, जैनसन्देशके शंकासमाधान विभागके सर्वेसर्वा रहे। आपके आगमविषयक अपूर्व ज्ञानकी बच्चोंसे लगाकर विद्वानों तकने सराहना की। अन्य लोग जहाँ रजकण होकर अपने लिए हिमालय बतलाते है वहाँ आप हिमालय होकर भी अपने लिए रजकण समझते है।

आपका जन्म जुलाई १९०२ में हुआ था। आपके पिता श्री धवलकीर्तिजी थे। उनके नाम अनुरूप आपने काम भी कर दिखाया। आपकी आरम्भिक शिक्षा उर्दू व अंग्रेजी लिए मैट्रिक तक हुई। १९२०में मैट्रिक करनेके बाद दिसम्बर १९२३में मुख्तारकारी परीक्षा उत्तीर्ण की और सहारनपुरकी ही कचहरीमें कार्य करने लगे। आप अपने कार्यमें अतीव सफल रहे। लगभग तेरह वर्ष इसी प्रकार बीते। जिनेन्द्रपूजन और शास्त्रस्वाध्यायकी सुरुचि तो पिताश्री ही पैदा कर गये थे अतएव वह दैनिक जीवनका अभिन्न अंग बन गई।

स्वाध्यायकी सुरुचि

आपने बाबा भागीरथजी वर्णीके सत्संगसे स्वाध्यायमें विशेष समय देना शुरू किया। प्रथमानुयोगके ग्रंथ पढ़नेसे हिन्दी भाषापर अधिकार हुआ। पं० माणिकचन्द्रजी कौन्देयके निर्देशसे आपने गोम्मटसार, लब्धिसार जैसे ग्रंथ भी पढ़े। पूज्यपाद गणेशप्रसादजी वर्णीके सुझावसे समयसार, पचास्तिकायका स्वाध्याय किया। हीरालालजी सिद्धातशास्त्रीकी प्रेरणासे आपने धवल ग्रंथोंका स्वाध्याय किया। स्वाध्यायकी सुरुचि बढ़ानेके लिए आपने नौकरी भी छोड़ दी। सन् १९५४में प० दरबारीलालजीने आपको शकासमाधान विभाग सौंपा तो आपका परिचय जहाँ अनेक स्वाध्याय प्रेमियोंसे हुआ वहाँ जिज्ञासुओंको सहज ही सुनिश्चित सन्तोषजनक साधार समाधान मिलने लगा। स्वाध्यायके सन्दर्भमें सेठ बद्रीप्रसादजी सरावगीसे भी घनिष्ठ परिचय हुआ। आपकी ही प्रेरणासे १९५९में आप अजमेर इसलिए गये कि वहाँ चातुर्मासमें श्री १०८ मुनि श्रुतिसागरजी धवल ग्रन्थका स्वाध्याय कराना चाहते थे। १९६७में धवल ग्रंथोंका स्वाध्याय करानेके लिए आप कोटा भी गये। १९६५से आप स्वाध्याय करानेके लिए कही-न-कही संघमें जाते ही रहे हैं।

व्रतनिष्ठा व व्यक्तित्व

यद्यपि आप श्रावकके व्रतोंका पालन कर रहे है तथापि मुनि बननेकी आपकी अभिलाषा है। कारण चारित्रके बिना ज्ञान कल्याणकारी नही है। ब्र० पं० जयकुमारजी आत्मनिष्ठके शब्दोंमें आप अत्यन्त मृदुभाषी, सरल परिणामी, सन्तोष स्वभाववाले है। आप सही अर्थोंमें सिद्धान्तभूषण हैं। चूँकि आप उच्च-कोटिके सिद्धातोंके ज्ञाता है अतएव आप कई वर्ष तक अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषदके अध्यक्ष रहे। आपके आगम विषयक ज्ञानकी प्रशंसा श्वेताम्बर समाजके आचार्य प्रेमसूरिजीने भी की थी।

१. पं० खूबचन्द्रजी शास्त्रीने लिखा था—श्री रतनचन्द्रजीने जीवकाडके विषयमें जो सशोधन भेजे थे, उनको दृष्टिमें रखा। उनकी सहृदयता-श्रुतानुराग और सहानुभूतिके लिए अत्यन्त आभारी है।

२ डा० हीरालालजीने लिखा था—रतनचन्द्रजी मुख्तार बडी लगन और तन्मयताके साथ स्वाध्याय करते हैं और ग्रन्थोंका शुद्धिपत्र बनाकर भेजते हैं।

ब्रह्मचारी श्रीलालजीके शब्दोंमें मुख्तार साहबका सिद्धान्त ग्रन्थोंके विषयमें ज्ञान असाधारण है। आपकी स्मरणशक्ति अत्यन्त उच्चकोटि की है।

मुख्तारजीके लघुभ्राता वकील नेमचन्द्रजी भी उनके ही पदचिन्होंपर चलने लगे है।

पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

●

श्री पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री जैन समाजके एक प्रथितयश, समाजसेवा रत विद्वान् हैं जिनकी ख्याति दक्षिण और उत्तर भारतमें समान रूपसे है। आपका जन्म पुण्यक्षेत्र मूडबिद्रीमें २७ मार्च १९०९ को रोहिणी नक्षत्रमे हुआ था। इनके विद्वान् पिता वेणूर क्षेत्रके निवासी थे जो संगीत और ज्योतिषके अच्छे जानकार थे। श्री सम्मेदशिखरजी यात्राके दौरान आपके पिताजी दुर्दैवसे किसी आततायीके फंदेमें फँस गये और क्या हुआ पता नही। माता अमृतमती बहुत कष्टसे यात्रासे लौटी और एक माह पश्चात् इस सुपुत्रको जन्म दिया। पति-पत्नीने पूर्वसे ही इसका नाम वर्धमान रख लिया था और योगायोगसे रोहिणी नक्षत्रमें जन्म होनेसे वही नाम आया।

प्रारम्भिक शिक्षा मूडबिद्रीकी जैन पाठशालामें। तदुपरान्त इनके ज्येष्ठ भ्राता स्व० पं० लोकनाथजी शास्त्रीके प्रयत्नसे अध्ययन हेतु मोरेना एवं इन्दौर महाविद्यालय गये। जहाँसे आपने शास्त्री एवं न्याय व काव्यतीर्थकी उपाधियाँ प्राप्त कर निष्णात पाडित्यको प्राप्त किया।

सामाजिक कार्योंका श्रीगणेश

विद्यार्थी जीवनसे निकलनेके बाद आपने भ० भा० दि० जैन महासभाके पुरातत्त्व विभागमें कुछ समय सशोधनका कार्य किया। 'बिजोलिए'का शिलालेख अन्वेषण आपके द्वारा ही हुआ था। १९२९ से ३२ तक अजमेरमे सेठ टीकमचन्दजी द्वारा संचालित महावीर विद्यालयमें प्रधानाध्यापकके पदपर रहे। इसी कार्य कालमे आपने डॉ० गुलाबचन्दजी पाटनीके द्वारा संचालित 'स्याद्वाद मार्तण्ड'का सम्पादन किया। इन्ही दिनों शाहपुरामें आर्यसमाजियोंके साथ छह दिन तक आपने लगातार शास्त्रार्थ किया और उससे आपकी काफी ख्याति बढ़ी। आप स्व० पं० देवकीनन्दनजीके साथ 'जैन सिद्धान्त' पत्रके सम्पादक हुए।

अजमेरसे आपने पू० स्व० नेमिसागरजी वर्णी (श्रवणबेलगोलाके भट्टारक) के आग्रहसे श्रवणबेलगोला जानेका विचार किया परन्तु यह बात जानकर, स्व० धर्मवीर रावजी सखाराम दोशीने आपको शोलापुर बुला लिया। और आप तभीसे आज तक करीब ४० वर्षसे 'जैन बोधक'का सम्पादन, मुम्बई परीक्षालयकी देखरेख आदि कार्योंको अव्याहत रूपसे करते आ रहे हैं।

साहित्य सेवा

शोलापुर रहते हुए आपने उग्रादित्याचार्य कृत कल्याणकारक वैद्यक ग्रन्थ, भरतेश वैभव, दानशासन, शतकत्रय आदि अनेक ग्रन्थोका सम्पादन व अनुवाद किया और आप कई वर्षों तक कर्नाटक एकीकरण संघके प्रधान मंत्री रहे।

आपने जैन बोधक (मराठी-हिन्दी), जैन दर्शन (हिन्दी), वीरवाणी (कन्नड़), विश्वबन्धु (कन्नड़-मराठी-हिन्दी), स्याद्वाद मार्तंड (हिन्दी) एवं 'जैन सिद्धान्त' आदि पत्रोंका सफल सम्पादन किया है। आप कोल्हापुर मठसे निकलने वाले 'रत्नत्रय' पत्रके प्रधान सम्पादक भी हैं।

आज बम्बई परीक्षालयसे २५० केन्द्रोंसे करीब दस हजार विद्यार्थी प्रतिवर्ष परीक्षा दे रहे हैं। इसका सम्पूर्ण श्रेय शास्त्रीजीको है।

धार्मिक एवं सामाजिक सेवा

आप श्रा० कुन्थुसागर ग्रन्थमाला, बम्बई परीक्षालय, अ० भा० शास्त्रि परिषद महासभाके पुरातत्त्व विभाग आदिके मंत्री रहे व हैं। इसके अलावा मूडबिद्री वीरवाणी विलासभवन एवं हुमचमें स्थापित कुंद-कुंद विद्यापीठके ट्रस्टी एवं कई वर्ष तक प्रधान मंत्री रहे। विद्वत्परिषद् शान्तिवीर धर्म संगठन सभा, अ० भा० महासभा आदि संस्थाओंके कार्यकारिणीके सदस्य हैं। शास्त्रि परिषदके आप उपाध्यक्ष भी हैं।

धर्मसेवा और समाजसेवा आपकी नैसर्गिक प्रवृत्ति है। १९५३ व ६७ में जैनबिद्रीमें महामस्तका-भिषेकमें अहोरात्रि सेवा कार्य किया, वेणूर मस्ताभिषेकमें प्रधानाचार्यत्वके पदसे क्षेत्रकी अपूर्व सेवा कर उसकी आर्थिक स्थिति दृढ़ की।

आप प्रतिष्ठा, मंत्रतंत्र आदिके प्रवीण पंडित हैं। राजस्थानमें, भीमपुर, लोहाटिया, मुगाणा, शिरडशहापुर, नौगामा, सम्मेदशिखरजी, बम्बई आदि अनेक स्थानोंपर विधिपूर्वक प्रतिष्ठायें सम्पन्न करायी। बम्बईके पोदनपुर त्रिमूर्ति प्रतिष्ठामें भी आप प्रतिष्ठाचार्य थे।

लेखक व प्रभावी वक्ताके रूपमें

श्री शास्त्रीजी, कन्नड़, हिन्दी और मराठीके सफल लेखक एवं प्रभावशाली वक्ता है। जैनेतर समाज भी आपको प्रवचन हेतु आह्वानित करती है। अनेक सर्वधर्मसम्मेलनोंमें जैनधर्मके प्रतिनिधित्व रूपमें जाकर भाग लिया। आपकी दृष्टि सर्वपक्षीय एवं समन्वयात्मक है। आ० कुन्थसागर ग्रन्थमालाके माध्यमसे आपने करीब ४५ ग्रन्थोंका सम्पादन कर प्रकाशित किये हैं। तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकालंकार सदृश महान् ग्रन्थके सात खण्ड आपके सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुए हैं।

सामाजिक सम्मान

समग्र भारतकी जैन समाजने समय-समयपर आपकी विद्वत्तासे प्रेरित होकर अनेक उपाधियोंसे विभू-षित किया। 'विद्यावाचस्पति' (शाहपुराशास्त्रार्थ १९२९ में), 'व्याख्यान केसरी (सूरत) 'समाजरत्न' (वाग्वर प्रान्त), विद्यालंकार (बेलगांव-कर्नाटक) एवं धर्मालंकार (सुजानगढ़) आदि उपाधियोंसे अलंकृत हुए। तथा १९३२ में अजमेरसे, १९५५ मे सोलापुरसे, १९५७ में बिलिचोड (दावणगिरि)से, एवं पर्यूषण पर्वके समय सूरतसे, १९५८ में बम्बईसे १९५९ में सुजानगढ (राज०) से, १९६० में हुमच क्षेत्रके सर्वधर्म सम्मेलनसे, १९६१ में बाँसवाडा एवं बागलकोटसे, १९६३ में शिरडशाहपुर (मराठवाडा)से, १९६४ में हैदराबादसे, १९६५में अतिशय सम्मानके साथ बेलगाँवसे प्रशस्तिपत्र एवं अभिनन्दन पत्र वहाँकी जैन समाजसे सम्मानार्थ प्राप्त हुए। १९६६ में कलकत्ता व १९६९ में होस दुर्ग (मैसोर) में आपके भाषणोंकी बहुत प्रशंसा की गयी एव सम्मानपत्र समर्पित किये गये। इस प्रकार जैन समाजकी ओरसे सर्व प्रान्तोंसे आपका अपूर्व सम्मान हुआ।

बहुमुखी प्रतिभाके धनी, विद्वान् पं० शास्त्रीजीको पाकर दक्षिण भारत ही नही उत्तर भारत अपने-को धन्य मानता है। आपके द्वारा समाजमें विविध अंगोंकी सेवायें हो रही हैं।

●

विद्वद्भूषण डा० लालबहादुरजी शास्त्री

●

व्यक्तित्वकी अनन्तता

बौद्धिक प्रतिभा, अप्रतिहत कवित्व, प्रभावी वक्तृत्व, और शालीन व्यक्तित्वके धनी डा० लालबहादुर शास्त्रीकी आँखोंमें स्नेहिल और अपनापन, वाणीमें माधुर्य और जिनके साहचर्यमें अपरिमेय सन्तोषकी झलक एक साथ देखनेको मिलती है। आपका स्थान जैन समाजके विशिष्ट विद्वानोंमें शीर्षस्थ है।

जीवनका प्रारम्भ और विकास

डा० शास्त्रीका जन्म लालरू (पंजाब) में एक समृद्ध परिवारमें हुआ। पिता श्री रामचरणलालजी ईस्ट इंडियन रेलवेमें एक उच्चपदाधिकारी थे। आपका परिवार मूलतः जिला आगरा, एत्मादपुर तहसीलके गाँव पमारीसे सम्बन्धित था। क्रमशः ५ वर्ष और ८ वर्षकी अवस्थामें क्रमशः माता पिताका वियोग सहना पड़ा।

अध्ययन एवं शिक्षा

आपका अध्ययन ब्यावर महाविद्यालय और बादमें गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेनामें हुआ। आप एक मेधावी छात्र रहे। सन् १९३० में असहयोग आन्दोलनके समय ब्रिटिश शासनके विरुद्ध विद्यालयके छात्रोंको उकसाया परन्तु तत्कालीन जिलाधीशकी रिपोर्टसे इनकी गतिविधियोंपर विद्यालयने नियंत्रण रक्खा।

अध्यापन कार्य

आप वर्षों सर सेठ हुकमचन्द्रजी इन्दौरके यहाँ पारिवारिक अध्यापक रहे। आपका सत्संग इन्दौरमें स्व० पं० देवकीनन्दनजी शास्त्री, स्व० पं० वंशीधरजी न्यायालङ्कार, स्व० पं० खूबचन्दजी शास्त्री आदि जैसे उद्भट विद्वानोंसे हुआ। परस्पर जैनदर्शनके गूढ़ तत्त्वोंके रहस्यका ज्ञान प्राप्त किया। १९६३में सेठजीकी पारमार्थिक संस्थाओंके मन्त्री रहे। पुनः १९६६से देहलीमें लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठमें (शिक्षा मंत्रालयसे सम्बन्धित) प्रवक्ता नियुक्त हैं। आपकी अध्यापन पटुताने शीघ्र ही आपको रीडर पदपर पदस्थ करके जैनदर्शनका विभागाध्यक्ष बना दिया।

शैक्षणिक योग्यता

अंग्रेजी साहित्यसे बी० ए०, संस्कृतमें एम० ए० एवं साहित्याचार्य करनेके बाद १९६३में 'आचार्य कुन्दकुन्द और उनका समयसार' विषयपर शोध-प्रबन्ध लिखकर आगरा विश्वविद्यालयसे पी० एच-डी० की उपाधि ग्रहण की। इसके अलावा संस्कृत एसोसियनकी सर्वोच्च उपाधि न्यायतीर्थ एवं काव्यतीर्थ प्राप्त की।

समाजके प्रकाश-स्तम्भ

आज अध्यात्मके क्षेत्रमें निश्चय नयकी दुहाई देकर जैन साधुओं और साध्वियोंके प्रति हेयदृष्टिका वातावरण कुछ मुमुक्षुओं द्वारा पैदा किया जाकर लोक सम्मत धर्मको व्यावहारिक पृष्ठभूमिसे काटकर मात्र अनन्त ज्ञान चैतन्य स्वरूप कहकर स्वयंको शुद्ध चैतन्य स्वरूपी एवं सम्यक्त्वी होनेकी अहंतामें चारित्रके प्रति एक कृत्रिमताका भाव ओढ़ लिया। 'उपादान में जो होना है' उसकी प्रतीक्षामें सारे निमित्त पुरुषार्थो-

पर पानी फेर बैठे हैं। ऐसे अध्यात्मके एकान्त मिथ्यात्वके निरसनमें आपका अपूर्व योगदान रहता है और आप कुन्दकुन्द भगवान्के रत्नत्रय स्वरूपी मार्गको अनेकान्त और समन्वयी दृष्टि की दिशा समाजको दे रहे हैं। चारित्र और संयम, दान, दया स्वरूपी धर्मका यथारूप व्याख्यान देकर एक सही दिशा प्रशस्त कर रहे हैं।

व्यक्तित्वकी गरिमा

आपकी वक्तृत्व-कला इतनी जादू भरी प्रभावक एवं आकर्षक है कि लोग मन्त्रमुग्ध जैनदर्शनके गूढ़ तत्त्वोंको सरल भावोंसे ग्राह्य कर लेते हैं। विद्वत्तापूर्ण भाषणोंसे आपने समस्त भारत-भूमिपर अपनी विशिष्टताकी छाप अंकित कर दी है। जिसमे समाजने आपको विद्वद्भूषण, व्याख्यान वाचस्पति, पंडितरत्न आदि सम्मानपूर्ण पदोंसे विभूषित कर अभिनन्दन पत्र एवं रजत पदक भेंट किये।

एक सुयोग्य सम्पादककी गुणवत्ता

आप अनेक पत्रोंके सम्पादक रहे हैं। सन् १९३९ के आसपास जैन संदेशके सहायक सम्पादक एवं लगभग १५ वर्ष तक जैन गजट (साप्ताहिक) के प्रधान सम्पादक रहे। १९६२ से आप जैनदर्शन (साप्ताहिक) के प्रधान सम्पादक हैं। सम्पादकीय हाँसियेसे लिखे जानेवाले विद्वत्तापूर्ण एवं तर्कयुक्त लेखोंसे विपक्ष विचारों-वाले भी लोहा मानते हैं।

सम्पादन कलाके मर्मज्ञ लेखक

मोक्षमार्ग प्रकाशकका आजकी हिन्दीमें सुन्दर सम्पादन कर उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका (प्रस्तावना) में सिद्ध किया है कि पं० टोडरमलजीने गोम्मटसार आदिकी टीका छोटी आयुमें नहीं अपितु बडी आयु में की। संस्कृत रामचरित ग्रन्थका हिन्दी अर्थ देकर विद्वत्तापूर्ण सम्पादन किया। आचार्य विद्यानन्दि कृत आप्त-परीक्षाका भी सम्पादन किया। इसके अलावा कई छोटी-छोटी किन्तु जन साधारणकी उपयोगी पुस्तकें भी लिखी हैं। जैसे—महावीर दर्शन, महावीरवाणी, मुक्ति-मन्दिर, सत्य और तथ्य, बेटीकी विदा, घरवाला आदि। ये सभी पुस्तकें हिन्दी कविता में हैं। इसी प्रकार संस्कृत काव्यपर भी आपका असाधारण अधिकार है। आपने तत्कालीन राष्ट्रपति श्री जाकिर हुसैनको एक समारोहमें एक संस्कृत कविता लिखकर दी थी।

सम्माननीय पदोंके गौरवधारी

गत ७ वर्षोसे डा० शास्त्री भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद्के अध्यक्ष हैं और परिषद्के प्राण हैं। भा० दि० जैन महासभा व भा० व० शान्तिवीर सभाके कार्यकारिणीके सदस्य है।

आप अपने विद्यापीठके प्रवक्ता परिषद्के अध्यक्ष भी हैं।

व्यक्ति ही नहीं संस्था हैं

आपका जीवन इतने कर्तृत्वोंसे सम्पूरित है कि आप व्यक्तिसे संस्था बन गये है। एक ओर आपकी निरभिमानिता परन्तु दूसरी ओर स्वाभिमानी-गरिमा आपमें परिलक्षित होती हैं।

शायद यही कारण है कि धनिक वर्गसे आपकी ज्यादा पटरी नहीं खाती। फिर भी आप किसी की अवज्ञा नहीं करते और न आशावश किसीका गुणगान। एक निस्पृह व्यक्तित्वके सम्पुटतासे युक्त हैं। लोभमें झुकते कही नही देखा गया। आप भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानमालाओंके लिए आमंत्रित किये जाते हैं परन्तु उसमें आपका कोई आर्थिक लाभ या योग नही होता है। विशुद्ध जैनधर्मकी सेवा और शुद्ध नय रूप दृष्टिका प्रचार प्रसार है।

●

पं० जगन्मोहनलालजी शास्त्री

●

जीवन परिचय

जैन समाजके गणमान्य विद्वान् पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्रीका जन्म परवार जातिमें श्रावण शुक्ला द्वादशीको वि० सं० १९५८ में शहडोलमें हुआ। आपके पिता श्री ब्र० गोकुलप्रसादजी असाधारण व्यक्ति थे। आप मझौलीसे आकर यहाँ बसे थे और मुकदमेबाजीमें माहिर थे। पर इसके कारण आप काफी आपत्तियोंको भी प्राप्त हुए। पिडरईमें आकर मुनीमी की। एक पंडितजीकी प्रेरणासे शास्त्रस्वाध्याय व उदासीनताकी दिशामें बढ़े। पंडित पलटूरामजीके सहवाससे वे कुछसे बहुत कुछ बन गये। छह वर्षकी आयुमें ही पंडितजीको माँका वियोग सहना पड़ा। सन् १९२२ में आपका प्रथम विवाह कस्तूरीबाईसे हुआ। इसके बाद सन् १९३८ में आपका दूसरा विवाह फूलमतीबाईसे हुआ। पंडितजीके सात पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं। बड़े पुत्र अमरचन्द्रजीका विवाह श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमारजी खुरईकी बहिन क्षमाबाईके साथ हुआ है। पंडितजीके सभी पुत्र, पुत्री शिक्षित हैं।

शिक्षा-कार्य

पंडितजीकी प्रारम्भिक शिक्षा पिडरईमें हुई। इसके बाद आपने जैन पाठशाला कटनी, जैन महाविद्यालय मथुरा, जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना, स्याद्वाद महाविद्यालय काशीमें रहकर धर्म व न्याय तथा व्याकरणका अध्ययन किया। धर्म-शिक्षा व शास्त्र स्वाध्यायमें आपकी आरम्भसे ही अधिक रुचि रही। आपने जीवनपर्यन्त श्रीशान्ति निकेतन जैन संस्कृत विद्यालय कटनीमें ही कार्य किया। एक विद्वान्का एक संस्थामें जीवन भर रहना अपने आपमें एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। आप ही इस संस्थाके सर्वेसर्वा रहे। अपनी अत्यधिक अस्वस्थतासे आप अब विदा हो गये व अन्य विद्वान्को अपना स्थान देना चाह रहे हैं। आपने महावीर जयन्ती, पर्यूषण पर्व, अष्टान्हिका आदि अवसरोंपर समाजमें जाकर काफी धर्म प्रचार किया। संस्थाके लिए सहायता ली पर स्वयंके लिये एक पैसा भी नहीं लिया।

साहित्यिक कार्य

यद्यपि आप अपने लिये साहित्यकार नहीं मानते हैं तथापि आपने जो श्रावकधर्म प्रदीप, श्रावकाचार सारोद्धार अनूदित ग्रन्थ लिखे हैं वे तो आपको आपकी लोकोत्तर प्रतिभा सिद्ध करते हैं। आपने पाँच वर्ष तक 'परवार बन्धु' मासिकका सम्पादन किया और दो वर्ष तक 'वीर सन्देश' पत्रका सचालन सम्पादन किया। जैनसन्देश मथुराके गत दस वर्षोंसे सम्पादक हैं। पंडितजीकी अनेको रचनायें अनेकों जैन पत्रोंमे भी प्रकाशित होती रहती है।

सामाजिक-राष्ट्रीय सेवा

सन् १९३० मे पंडितजीने कांग्रेसके कार्यक्रमोंमें सक्रिय भाग लिया। आपकी संस्था सार्वजनिक है इसलिए आप जन साधारणके सम्पर्कमें आये। आप स्याद्वाद जैन महाविद्यालय बनारसकी प्रबन्धकारिणीके २० वर्षसे सदस्य हैं। पार्श्वनाथ जैन गुरुकुलके आप सदस्य व ट्रस्टी हैं, गणेश दिगम्बर जैन विद्यालय सागर-

के १६ वर्षोंसे सदस्य हैं। भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ मथुरा तथा भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परवार सभाके आप लगभग १५ वर्षोंसे प्रधानमंत्री रहे। रामजानकी मोदी ट्रस्ट कटनीके ३० वर्षसे एवं श्री दि० जैन सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुरके गत दशकसे अध्यक्ष हैं। वर्णी दिगम्बर जैन ग्रन्थमालाके २५ वर्षसे उपाध्यक्ष हैं। वर्णी गुरुकुल जबलपुरके तीन वर्षसे अधिष्ठाता हैं। संक्षेपमें पंडितजी स्वयं एक सजीव संस्था हैं।

आपके कुछ विचार सामयिक मननीय विचारणीय हैं :

१. दिगम्बर श्वेताम्बर एकता आवश्यक है और यह तब ही हो सकती है जब तीर्थ क्षेत्रोंके झगड़े आपसमें निपटा लिये जावें।

२. तेरह बीस पन्थी दिगम्बर जैन अपनी पद्धतिसे पूजा पाठ करें। एक दूसरेके सहयोगी हों; अपनी मान्यतानुसार सभीको सुविधा मिले, ऐसा प्रयास करें।

३. अन्तर्जातीय विवाह जैन दृष्टिसे आगमके विरुद्ध नहीं है।

४. जब तक साधुवर्ग धर्मारूढ न होगा तब तक समाज नहीं चमकेगा।

●

पं० हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री

●
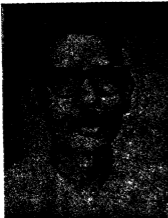
पौने दो वर्षके बच्चेको छोड़कर जब माँ राजरानीका स्वर्गारोहण हुआ तो श्रीमान् दरयावलालजी (बालकके पिता)का हृदय टूक-टूक हो गया। बालकके बड़े भाई एवं भावजके कानोंमें मरणासन्न माँके शब्द तब भी गूँज रहे थे, "बेटी ले माँकी अन्तिम निशानी है आजसे भावज होनेके साथ ही साथ तू इसकी माँ भी है।"

और बहू रानीने ज्योंही शिशुको पर्यङ्कशायी माँके पार्श्वसे उठाया था त्यों ही माँका सिर लटक गया। उस दिन किसीने कल्पना तक नहीं की थी कि मातृविरहित वह अबोध शिशु एक दिन भारतके चोटीके विद्वानोंमें गिना जायगा।

मातृ सुखवञ्चित बालक सबकी आँखोंका तारा बना। दिन प्रतिदिन चाँदकी तरह कान्ति एवं वृद्धिको प्राप्त होता गया। छः वर्षके वयमें बालकको विद्यार्जन हेतु शिक्षालयमें प्रविष्ट कराया गया। वहाँ भी वह छात्रोंका सम्मान-पात्र एवं गुरुजनोंका स्नेह भाजन बना। उच्च शिक्षाएँ प्राप्त करता हुआ वही शिशु आज भारतके गौरव गुम्फित विद्वान् पं० हीरालालजीके नामसे हमारे समक्ष आया।

श्रावण कृष्णा ३० सं० १९६१ में आपका जन्म परवार जातिमें हुआ। आपका जन्म स्थान साढूमल है। उ० प्र० (ललितपुर) आपको जीवनमें अनेक दुःखोंके मुँह देखने पड़े। १९७५ मे आपकी बड़ी भावजका भी देहावसान हो गया। उनकी उस असामयिक मृत्युसे परिवार संकटाछन्न हो गया। उस समय आप स्थानीय महावीर दिगम्बर जैन पाठशालामें विशारद द्वितीय खण्डके छात्र थे। आपको कौटुम्बिक परि-

स्थितिसे द्रवित होकर स्वनामधन्य, उक्त संस्था-संस्थापक स्व० सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीने आपको छात्रावासमें रख लिया जिससे आप निराकुल हो आगे की पढ़ाई जारी रख सके। आपने स्व० हु० दि० जैन विद्यालय इन्दौर से धर्मशास्त्री, न्यायतीर्थ एवं साहित्य शास्त्रीकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की इसके बाद जैन शिक्षा मन्दिर जबलपुरसे सिद्धान्तशास्त्री किया।

अध्ययन समाप्त करनेके उपरान्त आपने सन् १९२४से ३८ तक अनेकों संस्थाओंमें अध्यापन कार्य किया और इसके पश्चात् १९३९से आप ग्रन्थ सम्पादन कार्य कर रहे हैं। आपके अनुवादित एवं सम्पादित ग्रन्थोंमेंसे षट्खण्डागम (धवल सिद्धान्त) भाग १, २, ३, ४, ५ एवं ६, कसायपाहुड सुत्त, पञ्च संग्रह, कर्म प्रकृति, वसुनन्दी श्रावकाचार, जिन सहस्रनाम, जैन धर्मामृत, प्रमेय रत्नमाला, दयोदय, सुदर्शनोदय, वीरोदय, छहढाला एवं द्रव्य संग्रह, श्रावकाचार संग्रह तीन भाग आदि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

इसके अतिरिक्त अभी तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें आपके लगभग २५० निबन्ध भी प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी अप्रकाशित रचनाएँ निम्न प्रकार हैं।

१. कुन्दकुन्दाचार्यके समस्त ग्रन्थोंकी गाथाओं का दोहानुवाद। २. सावयधम्म दोहाका हिन्दी दोहानुवाद। ३ पाहुड दोहाका हिन्दी दोहानुवाद। ४. पुरुषार्थानुसानका हिन्दी अनुवाद। ५. परमागम सारका हिन्दी अनुवाद। ६. परमात्म प्रकाशका दोहानुवाद।

अमरावतीमें हिन्दी माध्यमसे माण्टेसरी शिक्षण पद्धतिसे बच्चोंको पढ़ाने हेतु कोई संस्था नहीं थी। इस समस्याकी ओर जब आपका ध्यान आकृष्ट हुआ तो आपने सर्वप्रथम वहीं अपना मकान बनवाया और इसके उपरान्त उसका नाम बाल मन्दिर रख करके १९४२-४३ में उसका संचालन किया। उस संस्थाकी व्यवस्था देखकर छोटे बालक इतने प्रभावित हुए कि प्रातः ८ बजे आकर सायंकालके ५ बजे तक भी घर जानेका नाम नहीं लेते थे। शिक्षण-पद्धति नूतन ढंगकी थी। मध्यावकाश वेलामें बच्चोंको दूध व फल देनेकी व्यवस्था थी किन्तु जब आप वहाँसे चले आये तब वह संस्था टूट गयी।

आपके रुचिके सम्बन्धमें एक बात बताना अत्यनिवार्य है। वह यह है कि पुस्तकोंसे जितना स्नेह आपको है शायद ही किसीको है। पुस्तक संग्रहका यह शौक आपको गुरु पं० घनश्यामदासजीसे अध्ययन कालमें ही मिला था जो आज तक उत्तरोत्तर प्रवर्द्धमान है। आपके संग्रहालयमें लगभग ढाई हजार पुस्तकें हैं। आपका नारा है कि "फटे वस्त्र पहिनकर भी नई पुस्तकें खरीदो।"

आप एक सम्पन्न परिवारके मुखिया हैं। आपका प्रथम विवाह सन् १९२४में हुआ था किन्तु दुखद विषय है कि आपकी धर्मपत्नीका प्रसूतिकी गड़बड़ीसे १९३५ में निधन हो गया तब आपका दूसरा विवाह हुआ। आपकी द्वितीय धर्मपत्नीका नाम चिन्तामणि है। आपके पाँच पुत्रियाँ एवं छह पुत्र वर्तमान है। जिनमेंसे सभी कुशल एवं प्रतिभा सम्पन्न तथा उच्च पदोंपर हैं। आपके कुटुम्बमें ७ विद्वान् पण्डित हुए। आपका ज्येष्ठ पुत्र तो अमेरिकामें विज्ञानकी उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं। वीर निर्वाण शताब्दीपर आपको विद्वत् समाजका २५ सौ रुपयेका सम्मानित पुरस्कार मिला। वस्तुतः आप एक उच्चकोटिके विद्वान्, प्रभावोत्पादक प्रवचनकर्ता, कुशल सम्पादक, महानतम साहित्यकार, अनुवादक एवं निबन्धकार, समाजके कर्णधार एवं देशके गौरव हैं। समाजको आपने बहुत-कुछ दिया और निरन्तर देते चले आ रहे हैं।

●

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्दजी शास्त्री

●

विख्यात विद्याकेन्द्र वाराणसीमें श्रद्धेय वर्णीजीने स्याद्वाद महाविद्यालयके रूपमें जो विद्याकुर आरोपित किया था यदि उसके माली रूपमें पं० कैलाशचन्दजी सिद्धान्तरत्नको प्राचार्य पद पर प्रतिष्ठित न किया होता तो यह आज इतना वट-वृक्ष रूपमें न होकर मुर्झा गया होता। पं० कैलाशचन्दजी शास्त्री एक प्रकाश-स्तम्भकी भाँति इस संस्थाके प्राण बन गये जिसने देशमें आधेसे अधिक विद्वानों और निष्णातोंको जन्म दिया। आज भी जिनकी अमूल्य सेवाओंसे विद्यालय निरन्तर अनुप्राणित हो रहा है।

उत्तर प्रदेशके बिजनौर जिलेमें नहटौर कस्बाके ला० मुसद्दीलाल अग्रवालके घर कनिष्ठ पुत्रके रूपमें सवत् १९६० सन् १९०३ में कार्तिक शुक्ला द्वादशीके दिन पंडितजीने जन्म लिया था। कौन जानता था कि १९१५मे इसी स्याद्वाद महाविद्यालयमें प्रवेश लेनेवाला एक बालक, इसका सचालक बनकर समाज और धर्मकी महान् सेवा करेगा? जब आप न्यायतीर्थकी तैयारी कर रहे थे, देशमे असहयोग आन्दोलन चल रहा था तब आप पढना छोडकर वापिस नहटौर पहुँचे, परन्तु वहाँ मन न लगनेके कारण १९२१में पुन: अध्ययनार्थ गोपाल जैन सिद्धान्त वि० मोरेना पहुँचे और वहाँसे शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। तथा १९२३में स्याद्वाद विद्यालयमें धर्माध्यापक पदपर नियुक्त होकर आ गये। अस्वस्थ हो जानेके कारण एक ही वर्षके भीतर आपको पुन नहटौर वापिस जाना पड़ा परन्तु बादमें १९२७में आपकी पुकार स्याद्वाद विद्यालयके लिए पुन. हुई और आप तभीसे निरन्तर इसकी प्रगतिमें अपना जीवन दे रहे हैं।

जैन साहित्य-सेवा

जैन समाजमे शिक्षा और साहित्यकी दृष्टिसे पिछली दो शताब्दियोंमे बहुत कम काम हुआ है। ऐसे युगमें सम्यक् ज्ञानकी ज्योतिको अक्षुण्ण बनाये रखनेमें जिन दो-चार विद्वानोंका योग रहा वहाँ २०वी शताब्दी-में पं० कैलाशचन्दजीका नाम बडी श्रद्धा और कृतज्ञतासे लिया जाता है। स्वनामधन्य प० नाथूराम प्रेमी की प्रेरणासे आप साहित्य-सृजनकी ओर प्रवृत्त हुए। स्व० पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यके साथ 'न्यायकुमुद-चन्द्रोदय' का सम्पादन किया और उसकी विस्तृत भूमिका लिखी। पं० फूलचन्द्रजीके साथ भा० दि० जैन संघसे प्रकाशित 'जयधवला' का लगभग १३ खण्डोंमें सम्पादन किया।

उज्जैनके विद्याप्रेमी स्व० सेठ लालचन्दजी सेठीने १९४८में 'जैनधर्म' पर सर्वोत्तम पुस्तक लिखनेके लिए एक हजारका नकद पुरस्कार घोषित किया था जिसको आपने ही प्राप्त किया और जिस पुस्तकने पं० जीका नाम अमर कर दिया। जो अब बनारस और सागर विश्वविद्यालयमें पाठ्य-पुस्तकके रूपमें मान्य है। तत्त्वार्थसूत्र टीका, नमस्कार महामन्त्र, भगवान् ऋषभदेव, सोमदेव उपासकाचार, जैन न्याय और जैन साहित्यका इतिहासकी पूर्वपीठिका, प्रथमभाग, द्वितीयभाग इत्यादि अनेक उच्चकोटिके महान् ग्रंथ आपके पांडित्यके परिचायक हैं। 'भ० महावीरका अचेलक धर्म' सघसे प्रकाशित आपकी बहुमूल्य रचना है। इस प्रकार विद्यालयसे बचा सारा समय, पंडितजीने साहित्य निर्माण और शोधकार्यमें लगाया।

पत्रकार और सम्पादक

पण्डितजी एक दूरद्रष्टा भी हैं । आपने देखा कि समाज-सेवाका कार्य मात्र अध्यापनसे पूरा नहीं हो सकता अतः आपने पत्रकारिताको इस हेतुका माध्यम बनाया । अपने मित्र पं० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थके सहयोग एवं परामर्शसे आर्यसमाजियोंके कुतर्कोंके आक्रमणोंको काफूर करनेके लिए एक यशस्वी संस्थाका निर्माण किया जो बादमें अ० दि० जैन संघमें विलीन हो गयी । इस संघके कर्णधार आप ही हैं । संघने प्रारम्भमें 'जैन दर्शन' पत्र प्रकाशित किया । १९३९ में 'जैन सदेश' साप्ताहिकका प्रकाशन संघने स्वीकार किया जिसके सम्पादक आप बनाये गये और प० लालबहादुर शास्त्री सह-सम्पादक । १९४५ से इसके सम्पादक पं० बलभद्र रहे परन्तु १९५६ से पं० जगमोहनलाल शास्त्री (कटनी) और आप संयुक्त सम्पादक नियुक्त हुए । 'जैन संदेश के सम्पादकीय वक्तव्यके रूपमें आपके सैकड़ों लेख निकले हैं । आवश्यकता इस बातकी है कि जिस प्रकार पं० जुगलकिशोर मुख्तारके लेख 'युगवीर निबन्धावली' के रूपमें पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं, उसी प्रकार आपके लेख संकलित होकर पुस्तकाकार हों तो ज्ञानवृद्धि और साहित्य-संवर्द्धनमें ये अपना विशिष्ट योगदान देंगे ।

विद्वत्परिषदके प्रकाश स्तम्भ

विद्वत्परिषद्की स्थापना कलकत्तेमें वीर शासन महोत्सवके समय १९४४में हुई । स्थापनामें आपका मुख्य हाथ रहा और वर्तमानमें आप उसके सरक्षक हैं । श्री प० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्यने वाराणसीमें जैन साहित्यकार संसदकी स्थापना की थी जो बादमें इसी विद्वत्परिषदमें विलय हो गयी ।

प्रभावशाली प्रवक्ता

पंडितजीके गुरुत्व, लेखकत्व और नेतृत्वसे भी बढ़कर उनका वक्तृत्व है । जैन समाजके ऐसे बहुत ही कम बड़े जलसे होते है जहां आप आमन्त्रित न किये जाते हों । अपने वक्तृत्व गुणके कारण वे समाजपर छा जाते है । इसी एक विशेषताके कारण सिवनी (म० प्र०) की जैन समाजने १९४६में आपको 'सिद्धान्त-रत्न' के पदसे विभूषित किया था । जैन सिद्धान्त भवन, आराके हीरक जयन्ती महोत्सवके अवसरपर १९६३ में राज्यपाल महामहिम श्री आयंगरके करकमलोंसे आपको 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधि प्राप्त हुई थी । यह आपकी वाणीकी तेजस्विता और वक्तृत्व गुणका प्रभाव है । प्रत्येक भाषणमे अगाध सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञानकी पुट रहती है ।

धनके प्रति निर्मम भाव एव निस्पृहता

जीवनमें धनके लिए आपने कभी महत्ता नही दी । पर्यूषण पर्वमें जहां कही जाते है केवल मार्ग व्ययके अलावा व्यक्तिगत एक पैसा भी स्वीकार नही करते । और जो दातारोंकी श्रद्धा होती है, विद्यालयके लिए झोली फैला देते हैं । एक ओर समाजमें वे पण्डित है जो आनेसे पूर्व विदाई ठहराते हैं, पूजा विधानका पारिश्रमिक तय करके तब मन्दिरके भीतर पैर रखते हैं, दूसरी ओर पण्डितजीकी निस्पृहता कि चाहते तो लाखों रुपयोंका अम्बार अपने पाण्डित्यसे लगा सकते थे परन्तु जिस बनारसमें आप लगभग पचास वर्षसे रह रहे है वहां एक इंच भूमि नही खरीदी । जब कि आपका सम्पर्क धनपतियोंसे है । लेकिन आप धनके गुलाम नहीं हैं, बल्कि धन आपके चरणोंमें लोटता है ।

गुरूणां गुरु

आज समाजमें नयी एवं तरुण पीढीके जितने विद्वान्, जैन प्रोफेसर या सिद्धान्त-ज्ञाता हैं बहुधा उनके निर्माणमें आपका ही श्रेय है । आपके अनेकों शिष्य विश्वविद्यालयों या महाविद्यालयोंमें प्राचार्य या प्राध्यापक हैं । जो आपके प्रति एक श्रद्धा और कृतज्ञताका भाव लिए कार्यरत हैं ।

गुणग्राहकतासे आग ार

स्वयं पर्देके पीछे रहकर सहयोगी और सहकर्मियोंको आगे लाते हैं और उनकी प्रशंसा करते-कराते हैं। आपमें मुँहपर तारीफ करके पीछे उसकी छिद्रान्वेषण करने की बात नहीं बल्कि सरलता, निर्भीकता और स्पष्टवादिता आपके व्यक्तित्वके अभिन्न अंग हैं।

आपके मुँहकी स्मितता और प्रसन्न मुखमुद्रा अन्तरंगमें प्रवाहित आत्मानन्दके अविरल स्रोतकी सूचक है। गुणीको परख कर उसका सम्मान करना आपकी वैयक्तिक विशेषता है। जिससे एक बार सम्पर्क बना लेते हैं जीवन भर निर्वाह भी करते हैं। आप जैसा सहृदय प्रकृतिवाला व्यक्ति होना बहुत दुर्लभ है।

संघर्षमय जीवन

पण्डितजीकी ढलती उम्र, विद्यालय तथा संघके संचालनका पूर्ण उत्तरदायित्व, पुत्र और पुत्र-वधूका राँचीमें निवास, धर्मपत्नी बसन्तीबाईकी अर्द्धविक्षिप्तता यह है पण्डितजीके विषम जीवनकी कुछ कड़ियाँ। जिनमें रहकर भी आप साहित्य उपासनामें संलग्न हैं। जब दुनियाँ आरामसे सोती है, तब आप निद्रादेवीसे विमुख हो विविध साहित्यावलोकन कर नयी शोधोंमें व्यस्त रहते हैं। लगता है कि अनेक प्रवृत्तियोंमें व्यस्त मस्तिष्कको विश्राम देने हेतु तथा विषम गार्हस्थ्य स्थितिको भूलनेकी दृष्टिसे मनबहलावका साधन आपके पास साहित्य-पठन है।

जैन विद्यावारिधि

आपका साधनामय, ज्ञाननिष्ठ और भोगोंसे विरत संयमी जीवन एक सन्तके जीवनसे कम नहीं है। आप जैन जगत के प्राण और पथ-निर्देशक हैं।

●

सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द्रजी सिद्धांतशास्त्री

●

जन्म और वंश

आपका जन्म उत्तरप्रदेशके झाँसी जिलेमें तहसील महरोनी के अंतर्गत ग्राम सिलावनमें बैसाख कृष्ण ४ सं० १९५८ वि०में हुआ। आपके पिताजीका नाम श्री दरयावलाल सिंघई और माताजीका नाम श्रीमती जानकीबाई था। आप परवार जातिके दिवाकर हैं।

शिक्षा

आपने एक छोटेसे गाँवमें जन्म लिया था। प्राथमिक पाठ-शाला खजूरिया गाँवमें थी जो सिलावनसे चार कि० मी० दूर था। मार्गमें दो छोटी नदियाँ पड़ती थी। ऐसी कठिनाईमें आपने खजूरियामें दो-तीन कक्षायें पढ़ी। फिर मौसेरे भाई (मौसीके पुत्र) से तत्त्वार्थसूत्र मूल पढ़ा। फिर बहिनके यहाँ रहकर बड़े मारगसे जिन सहस्रनाम एवं भक्तामर वाचनका अभ्यास किया।

आपके गाँवका एक लड़का इन्दौर पढ़ने गया। आपके मामा स्व० सुखसिंहने आपको इन्दौर जानेकी प्रेरणा दी। आप इन्दौर गये परन्तु सर स्वरूपचन्द हुकुमचन्द दि० जैन छात्रालयके छात्र एक वर्ष ही रह सके। रुग्ण हो जानेके कारण दूसरे वर्ष नहीं जा सके।

इधर साढूमल (ललितपुरके पास) के विद्याप्रेमी सेठ लक्ष्मीचन्द्रने अपने गाँवमें एक विद्यालय और छात्रालय स्थापित किया। संस्थापक सेठकी प्रेरणासे आप वहाँ गये और मध्यमा तक पढ़े।

फिर गुरु गोपालदास बरैया द्वारा स्थापित दि० जैन विद्यालय, मुरैना (ग्वालियरके निकट) में शास्त्री तक अध्ययन किया। मुरैनामें आपके सहपाठियोंमें दि० समाजके कुछ प्रसिद्ध पंडित थे जैसे स्व० पं० देवकीनन्दनजी, पं० माणिकचन्द्रजी कौंदेय (फिरोजाबाद), पं० बंशीधरजी (इन्दौर)।

अध्यापन कार्य

सर्वप्रथम आप पं० देवकीनन्दनजीकी प्रेरणासे लगभग छह माह साढूमलमें अध्यापक रहे उसी विद्यालयमें जिसमें किसी समय छात्र रूपमें थे फिर स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसीमें चार वर्ष तक धर्माध्यापकके पदपर रहे। फिर बीना (मध्यप्रदेश, सागर जिला) में चार वर्ष दि० जैन विद्यालयमें प्रधानाध्यापक रहे। बीनामें आपने लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी और भी रहते परन्तु विद्यालयके बजटमें कमी आ जानेसे आपको छोड़ कर नातेपूते (महाराष्ट्र, जिला सोलापुर) जाना पड़ा जहाँ पाँच या छह वर्ष रहे। नातेपूतेमें आपने मराठी बोलना और पढ़ना सीख लिया।

विदिशा (म० प्र०) के दानवीर स्व० सेठ लक्ष्मीचन्द जैनने साहित्योद्धारक कोषकी स्थापना की थी जिसके अन्तर्गत षट्खंडागमका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। किंग एडवर्ड कालेज, अमरावतीके प्रोफेसर डॉ० हीरालालजी प्रधान सम्पादकके साथ दो सहायक सम्पादक नियुक्त हुए, जिसमेंसे एक आप और दूसरे पं० हीरालाल सिद्धांतशास्त्री थे। इस प्रकार आप १९३७से १९४० ई० तक अमरावती रहे।

जेल यात्रा

अब आप अमरावतीसे बीना चले आये और राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लिया। व्यक्तिगत सत्याग्रहमें भाग लेनेके कारण १९४० ई०में तीन मास जिला जेल झाँसीमें कारावास भोगना पड़ा।

साहित्य सेवा

पहिले आपने तत्त्वार्थसूत्रकी टीका लिखी, फिर सर्वार्थसिद्धिकी हिन्दी टीका लिखी। आपके द्वारा संपादित पंचाध्यायी प्रसिद्धिको प्राप्त हुई। धवला टीकाके १६भागोंके सम्पादनमें सहयोग दिया। जयधवला के ११ भागोंका सम्पादन किया। भारतीय ज्ञानपीठने महाबन्धके प्रकाशनका प्रारम्भ किया। प्रथम भागको छोड़कर भाग २से ७ (कुल ६ भाग) आपके द्वारा सुसंपादित हैं। उक्त ग्रंथोंमें आपके गम्भीर पांडित्यके पग-पगपर दर्शन होते हैं।

आपके मौलिक ग्रंथोंमें 'जैनतत्त्व मीमांसा' उल्लेखनीय है। इसमेंसे १२ अधिकार हैं। बीनामें एक बार श्रुतपंचमीसे एक सप्ताह तक ४२ विद्वानों और त्यागियोंकी गोष्ठीमें इस ग्रंथपर मन्थन हुआ। तब प्रकाशन कराया गया। पृष्ठ ३१५के सजिल्द ग्रंथका मूल्य प्रचारकी दृष्टिसे केवल १ रुपया रखा गया है। दिनांक २०।८।१९६०को अशोक प्रकाशन मन्दिर २/३८ भदैनी, वाराणसीसे प्रकाशित हुआ है। प्राक्कथन पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री (कटनी) ने लिखा है।

दूसरा यह महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रंथ 'खानिया तत्त्वचर्चा' है। यह ग्रंथ दो भागोंमें डबल क्राउन आठपेजी ८५० पृष्ठोंमें प्रकाशित हुआ है। १९६३ ई० में जयपुरके निकट खानियामें लिखित चर्चा हुई थी जिसमें एक

पक्षमें कई विद्वान् थे और दूसरे पक्षमें आप अकेले थे। ऐसे सूक्ष्म और अकाट्य तर्कोंके साथ आपने अपने मतका प्रतिपादन किया है कि उसे पढ़कर आपके पांडित्य पर विस्मित होना पडता है। वही तत्त्वचर्चा बादमें पुस्तकाकार प्रकाशित की गयी है।

तीसरा मौलिक ग्रंथ 'वर्ण जाति और धर्म' भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसमें वर्णों और जातियोंका विशद विवेचन किया गया है। इस विषयमें आपकी रुचि बढ़ती गई। दो तीन वर्षसे आप जातियोंका इतिहास लिखनेके लिए शिलालेख, मूर्ति लेख आदि ऐतिहासिक सामग्रीका संकलन कर रहे हैं। आपने विदिशा, गुना, साठोरा, ईसागढ, सिरोंज, आरोन, राघोगढ, मुंगावली, चंदेरी आदि स्थानों पर जाकर शिलालेख लिये हैं। ७० वर्षकी परिपक्व वृद्धावस्थामें आपकी स्फूर्ति और कर्मठता देखकर युवकोंको भी विस्मय होते देखा गया है।

पत्र सम्पादन

भारतीय ज्ञानपीठके विख्यात ज्ञानोदय मासिक पत्रके आरम्भिक दिनोंमें आप २० माह तक सम्पादक रहे।

सन्मति संदेशमें कई वर्ष तक शंका-समाधान स्तम्भ चलाते रहे।

स्फुट साहित्य

भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'ज्ञानपीठ पूजांजलि'का सम्पादन आपने ही किया है। इस संकलनकी विशेषता यह है कि प्रचलित समस्त पूजापाठ संग्रहोंमें यह सबसे शुद्ध है। आपने समय-समयपर अनेक ट्रैक्ट भी लिखे हैं जैसे—विश्वशांति और अपरिग्रहवाद, वर्ण और जाति।

सभी जैन पत्र-पत्रिकाओंमें आपके लेख प्रकाशित होते रहते है। एक बार 'माधुरी' मासिक पत्रिकामें आपने भक्तामर काव्यपर एक विवेचनात्मक लेख लिखा था। 'माधुरी' लखनऊसे प्रकाशित एक विख्यात साहित्यिक पत्रिका थी।

सामाजिक क्षेत्र

आपकी साहित्यिक सेवाओं जैसी महत्त्वपूर्ण आपकी सामाजिक क्षेत्रकी गतिविधियाँ भी है।

इस शताब्दीके चौथे दशकमें बुंदेलखंडमें गजरथ विरोधी आन्दोलनमें आप अग्रणी रहे। उसमें आपने अनशन भी किया। दो दिन बाद यह तय पाया कि एक कमेटी निर्णय करेगी कि गजरथोत्सव हो या नहीं। तब आपने अनशन समाप्त किया।

फिर दस्साओंको पूजाधिकार दिलानेका आन्दोलन चला। उसमें भी आपने भाग लिया और कई जगह दस्साओंको पूजाधिकार दिलाया। वाराणसीके स्व० प्रो० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य इस आन्दोलनमें आपके साथी रहे।

वर्णी कालेज, ललितपुरकी योजना आपकी ही सूझ-बूझका फल है। कालेजकी स्थापनाके समय आपने बहुत परिश्रम करके सहस्रों रुपया चन्दा कराया। दि० जैन गुरुकुल, खुरई (जिला सागर, म० प्र०) के लिये भी चन्दा कराया। अन्तरिक्ष पार्श्वनाथके लिए विपुल दान दिलाया। पारमार्थिक संस्थाओंकी कोष वृद्धिके लिए अपने प्रभावक व्यक्तित्वका सदुपयोग करनेकी सूची लम्बी है।

डोंगरगढ (म० प्र०) के स्व० दानवीर सेठ भागचन्द्रजी तथा कारंजा (महाराष्ट्र) के चवरे परिवारसे आपकी घनिष्ठताके परिणामस्वरूप आपने अनेक छात्रोंको छात्रवृत्तियाँ दिलाकर विद्याप्राप्तिमें सहयोग दिया है।

वक्ता

आप जैन समाजके विख्यात वक्ताओंमें हैं। आपकी ओजस्वी वाणीमें ऐसा जादू है जो सहस्रों श्रोताओंको घंटों मंत्र-मुग्ध रखता है। सरल शब्दोंमें सुलझे हुए विचार कठिन विषयको हृदयंगम बना देते हैं। निश्चय और व्यवहारका ऐसा सामंजस्य प्रस्तुत करते हैं कि विरोधी विचारधारा तिरोहित होने लगती है। शंकालु श्रोताओंकी शंकायें क्षण भरमें छिन्न-भिन्न कर देते हैं। नवीन विचारधाराका शंखनाद करते हुए वे नगर-नगरमें विजय दुन्दुभी बजाते हैं।

परिवार

आपकी प्रत्येक प्रकारकी प्रगतिमें आपके सुखी पारिवारिक जीवनका योग है। आपकी सह-धर्मिणी सौ० पुत्रीबाई धर्मनिष्ठ महिला हैं। दोनों समय दर्शन और सामायिक करती हैं। शिक्षा तो अधिक प्राप्त नहीं की हैं परन्तु स्वाध्याय करते-करते पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है। पतिदेव महीनों घरसे दूर रहते हैं परन्तु आप उद्विग्न नहीं होती। आपने अपनी पुत्रियोंको उच्च शिक्षा दिलाई है।। सबसे बड़ी पुत्री शान्ति-देवी एम० बी० बी० एस० हैं। आजकल वे अपने पति श्री ज्ञानचन्द एम. एस. सी., के साथ मैनचेस्टर (इंग्लैंड) में हैं।

मध्यमा पुत्री सुशोलादेवी (घरेलू नाम बसन्ती) बी० एस० सी०, गुना जिलेमें शिक्षिका हैं। उनके पति डा० सुबोधकुमार चौधरी ए० बी०, एम० एस० का स्वर्गवास हो गया है।

कनिष्ठा पुत्री पुष्पाबाई अपने पति श्री नेमीचन्द्रजी (मिशीगन विश्वविद्यालय) के साथ संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें है।

पंडितजीके एकमात्र पुत्र श्री अशोककुमार हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसीसे एम० एस० सी० पास करके रिसर्च स्कालर हैं।

व्यक्तित्व

१९३१से खादी पहिनते हैं। आपकी सादा वेशभूषाको देखकर अपरिचित व्यक्ति सोच नहीं सकता कि उसके सामने जैन समाजके एक प्रख्यात पंडित हैं। आप लगनशील और कर्मठ कार्यकर्ता हैं। आडम्बर आपको बिल्कुल पसन्द नहो है। आपको अपने प्रदेशसे पूरा प्रेम है। यही कारण है कि आपने जीवनका बहुभाग वाराणसीमें व्यतीत करनेपर भी निवास हेतु सदन ललितपुर (जिला झांसी, उत्तर प्रदेश) में बनाया है। आप पूर्ण स्वस्थ हैं। वृद्धावस्थाका प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। वार्धक्यका केवल एक चिह्न है कि आपकी दंतावलि कृत्रिम है।

सम्मान

जैन समाजने पहिले तो आपको सिद्धान्तशास्त्रीकी उपाधिसे सम्मानित किया, फिर १९६३ ई० में जैन सिद्धान्त भवन, आराके हीरक जयन्ती महोत्सवमें बिहारके तत्कालीन राज्यपाल श्री अनन्तशयनम् आयंगर महोदयके करकमलोंसे आप 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधिसे विभूषित किये गये।

वीर निर्वाण भारती द्वारा २५००) की सम्मान निधि एवं स्वर्णपदकसे आप पुरस्कृत हुए।

●

पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य

जीवन परिचय

पंडित वंशीधरजी व्याकरणाचार्यका जन्म सोंरई ग्राममें भाद्रपद शुक्ला सप्तमी विक्रम संवत् १९६२ को हुआ। आपके पिता श्री मुकुन्दलालजीका स्वर्गवास तो उस समय ही हो गया था जब आप सिर्फ तीन माह के थे और १२ वर्षकी अवस्थामें आपकी माता राधादेवी भी आपको असहाय छोड़कर चल दी थीं। आपकी आरंभिक शिक्षा सोंरईमें ही हुई फिर आप अपने मामाके यहाँ बारासिवनीमें चले आये। पाठशालामें आरंभिक धार्मिक शिक्षण लेकर सागर आ गये। गणेशप्रसादजी वर्णीकी छत्रछायामें अध्ययन करनेके लिए बनारस पहुँच गये। वहाँ ११ वर्ष तक नियमित अध्ययन किया और व्याकरणाचार्य, साहित्यशास्त्री, धर्मशास्त्री, जैन न्यायतीर्थ आदि परीक्षाएँ पास की।

कार्यक्षेत्र

पंडितजी बीनामें आरंभ से ही एक स्वतंत्र व्यवसायी और विचारकके रूपमें रहे। उन्होंने एकसे अधिक आन्दोलनोंमें योग दिया। आपके मंत्रित्वकालमें सन्मार्ग प्रचारिणी समिति द्वारा देवगढ़ और क्योलारीमें गजरथ विरोधी आन्दोलन किये गये और बामोराका दस्सा पूजाधिकारका ऐतिहासिक मुकदमा भी समितिकी ओरसे आपने लड़ा था। गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला वाराणसीके वर्षों मंत्री रहे। दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद्के मंत्री रहे और ४ वर्ष तक अध्यक्ष रहे। सिवनी और श्रावस्तीके नैमित्तिक अधिवेशनोंमें आपने जो अध्यक्षीय भाषण दिये वे सामयिक साथ ही गवेषणापूर्ण भी थे। गुरु गोपालदासजी बरैया शताब्दी समारोह मनानेका आयोजन आपके ही निर्देशनमें हुआ था।

आप शान्ति सिन्धु पत्रके सह-सम्पादक रहे और सनातन जैन पत्रके सम्पादक भी रहे हैं। आपने पंडित फूलचन्दजीकी जैन तत्त्वमीमांसाके विरोधमें जैन मीमांसाकी तत्त्वमीमांसा नामक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है तथा दूसरी पुस्तक जैनदर्शनमें कार्य कारण भाव और कारक व्यवस्था नामक भी लिखी है। जिन्हें पंडित राजेन्द्रकुमारजी मथुराने जैन संस्कृति सेवक समाजकी ओरसे प्रकाशित की है। आपके अनेक मौलिक दार्शनिक सैद्धान्तिक निबंध भी पत्र पत्रिकाओं, स्मृति-अभिनन्दन ग्रंथोंमें प्रकाशित हुए है।

धर्म और समाजकी भाँति राष्ट्रकी भी आपने बड़ी सेवा की। सन् १९३१ से ही आप राष्ट्रीय कार्योंमें सक्रिय सहयोग देने लगे थे। सन् १९४२ के आन्दोलनमें आप सागर व नागपुरकी जेलमें भी ६-७ माह रहे। अमरावतीकी जेलमें स्वतंत्रता संग्राम लड़ते हुए आपने अनेक असहनीय दुख सहे। नगर कांग्रेस कमेटीके बरसों अध्यक्ष रहे और मध्य प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के भी सदस्य रहे। खादीको अपनाकर भी आप अन्य खादीधारी नेताओंसे बचे रहे।

पंडित बालचन्दजी शास्त्री और पं० दरबारीलालजी कोठिया जैसे आपके परिवारमें आज सम्माननीय विद्वान् है। वैसे ही पंडित शोभारामजी भी अपने समयमें लोकप्रिय थे। पंडितजी अतीव शान्तप्रिय और लोकप्रिय व्यक्ति है। उन्होंने अपनी शिक्षाको आजीविकाका साधन कभी भी कहीं भी नहीं बनाया। उनका जीवन अनेक संघर्षोंकी कहानी है जो बड़ी ही प्रेरणादायक है। काफी समय तक सर्दी गर्मी वर्षा भूलते हुए अशोकनगर जाकर लोगोंको धर्म बोध कराते रहे हैं।

आपको वीर निर्वाण भारती मेरठकी ओरसे सन् १९७४ ई० में उपराष्ट्रपति जत्ती महोदयके कर-कमलों द्वारा सिद्धान्ताचार्यकी मानद उपाधि प्रदान की गयी है।

पंडितरत्न बाबूलालजी जमादार

जीवन-परिचय

पण्डितरत्न जमादारजीका जन्म २२ अप्रैल १९२२ को ललितपुर (झासी) मे हुआ था। आपके पिता श्री फुन्दीलालजी जैन थे व माता रामप्यारीबाई थी। आपके पिता अपने समयके प्रतिष्ठित उद्योगपति व जमीदार थे। जिनके तीन पुत्र व तीन पुत्रियाँ जीवित रही। जिनमें आप लघु पुत्र हैं। अच्छा खासा धन धान्यसे परिपूर्ण जीवन बिताया।

शिक्षा-विवाह

आपकी आरम्भिक शिक्षा (माध्यमिक व धार्मिक) ललितपुरमें हुई। इसके बाद सर हुकमचन्द विद्यालय इन्दौरसे विशारद किया। जम्बू विद्यालय सहारनपुरसे अध्ययन किया। स्वाध्यायी होकर साहित्यरत्न किया। पं० जी व्यायामके अनन्य प्रेमी रहे। कुश्ती व तैराकीमें अग्रगण्य रहे, भाषण देनेम भी बचपनसे ही निपुण रहे अत अनेकों बार पुरस्कृत हुए। सन् १९४२ में, आनन्दीलालजी जैन ननौराकी सुपुत्री श्रीमती दक्खीदेवीके साथ आपका विवाह हुआ। आपका दाम्पत्य जीवन सुखद मधुर रहा। आपके सात पुत्र है और एक पुत्री है जिनमे चि० श्री अशोक कुमार बी० एस० सी० एल० एल० बी०, श्री अरुण कुमार आई० कॉम, श्री अनिल कुमार एम० ए०, श्री अभय कुमार एम० ए० तथा श्रीमती अशोककुमार एम० ए०, श्रीमती अरुणा कुमारी आई० कॉम० और अन्य बच्चे उच्च शिक्षामें अध्ययन रत है। श्री अशोक कुमार एवं श्री अनिल कुमार अपनी विशिष्ट योग्यताके कारण 'राष्ट्रपति द्वारा पदकसे पुरष्कृत हुए।

कार्य-परिचय

पं० जीने समाजकी एकसे अधिक शिक्षा-संस्थाओंमें शिक्षक और गृहपतिके रूपमें कार्य किया। कतिपय सामाजिक संस्थाओंके अवैतनिक मन्त्री-संयोजक भी रहे। दिगम्बर जैन स्कूल तिस्सामें सन् १९३९ में अध्यापक हुए। सन् १९४२ में बाल आश्रम देहलीमें गृहपति बने। सन् १९४३ में दिगम्बर जैन हाई स्कूल तिस्सामें पुन. अध्यापक हुए। अ० भा० दिग० जैन परिषद् बिजनौरके १९४४-४६ तक प्रचार मंत्री रहे। पुन बाल आश्रम देहलीमें १९४६-४९ तक गृहपति रहे। १९४९-५२ तक अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद् मुजफ्फरनगर सरधनाके प्रचार मंत्री रहे। वीर सेवामन्दिर देहलीमें आठ माह शोधकार्य हेतु रहे। १९५३-५४ में बाल आश्रम देहलीमें गृहपति रहे। १९५४-७१ तक दिगम्बर जैन कॉलेज बड़ौतमें धर्म व संस्कृति विभागके अध्यक्ष रहे।

समाज-साहित्य सेवा

अ० भा० दिग० जैन शास्त्रि परिषद्के संयुक्त मंत्री व मन्त्रीके रूपमें आपने स्मरणीय समाज व साहित्य सेवा की। जनगणना समिति, गणेशवर्णी अहिंसा प्रतिष्ठान, सराक जैन समिति व त्रिलोकशोध संस्थान के भी आप मंत्री है। अहिंसा सप्ताह समितिके संयोजक रहे। आप अब तक लगभग २२ पुस्तकें लिख चुके

हैं। शास्त्रि परिषदके ८६ ट्रैक्ट आपकी ही प्रेरणासे लिखे व प्रकाशित हुए हैं आपकी लिखी अनेकों कृतियाँ हैं। जिनमेंसे कुछके नाम ये हैं—१ प्रतिज्ञा, २. माँ और ममता, ३. आचार्य नमिसागर चरित्र, ४. हस्तिनापुर गौरव, ५. कर्त्तव्यशील युवक, ६. समाज दर्पण, ७. ते गुरु मेरे उर बसो, ८. आर्यिका, ९ उत्थान पतन, १०. सराक बन्धुओंके बीच, ११. सराक हृदय, १२. भक्तामर स्तोत्र (अनुवाद), १३. प्राच्य जैन सराक शोधकार्य, १४. जैन संस्कृतिके विस्मृत प्रतीक।

आपने कार्यकलापोंकी दृष्टिसे जमादारजी साठा सो पाठाके अभी भी उदाहरण हैं। उनकी वाणीमें सिंह जैसी गर्जना है। आप सभाके श्रोताओंको मन्त्र-मुग्ध किये रहते हैं। आपका प्रत्येक भाषण विद्वत्तापूर्ण प्रभावकारी एवं आकर्षक होता है। आपने साहित्य, धर्म समाज एव देशकी जो सेवाएँ की हैं जैनत्वके इतिहासमें सदैव यशःकीर्तिमय रहेंगीं। इन सेवाओंके प्रतिफल स्वरूप अबतक आपको भारतके कोने-कोनेसे सैकड़ों अभिनन्दन पत्र तथा वाणीभूषण, पण्डितरत्न, व्याख्यान वाचस्पति, समाजरत्न, जैनरत्न, समाज विभूषण, विद्वत् हृदय आदि अनेकों उपाधियोंसे सम्मानित किया जा चुका है। आपकी वाणीमें लालित्य प्रसाद गुण एवं ज्ञानका रस प्राप्त होता है। आप प्रत्येक सभा मुग्ध किये रहते हैं। प्राचीन कवियोंके पद्योंका प्रयोग करके भाषणोंको सरस बनाते हैं।

●

पं० मूलचन्दजी शास्त्री

●

पं० श्री मूलचन्दजी मालथौन जिला सागर (म० प्र०) के निवासी हैं। आपका जन्म अगहन वदी ८ सं० १९६० को श्री सटोलेलालजी जैन (परवार) के घर हुआ था। जब आप २॥ वर्षके थे आपके पिताकी असामयिक मृत्यु हैजेके कारण हो गयी थी। और आपकी माँ श्रीमती सल्लोबाईने मेहनत मजदूरी करके पाला-पोषा एवं प्रारम्भिक शिक्षा गाँवमें ही दिलवायी। इसके बाद आप चौरासी मथुरामें चले आये वहाँ १९१७ तक ३ वर्ष रहकर धर्म प्रवेशिका उत्तीर्ण की तथा बादमें १९२०-२६ तक स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीमें धर्मशास्त्री एवं क्वीन्स कालेजसे साहित्य-शास्त्री उत्तीर्ण की।

आर्थिक उपार्जन हेतु पण्डितजीको कई जगह जाना पड़ा। प्रारम्भमें आप गांधी विद्यापीठ उस्मानाबादमें पं० सुखलालजी संघवीके सान्निध्यमें रहे फिर अहमदाबाद चले आये। दोनों जगह आपने जैन श्वेताम्बर साधुओंको पढ़ानेका कार्य किया। इसके बाद आप जैन पाठशाला गुना, कोलारस, पपौरा, श्री अतिशयक्षेत्र महावीरजी (मुमुक्ष महिलाश्रम) और अंतमें आदर्श महिला विद्यालयमें १४ वर्ष तक धर्माध्यापकके रूपमें कार्य किया। आजकल आप अतिशय क्षेत्र महावीरजी पर ही शास्त्र-प्रवचनादिका कार्य सम्हालते हैं।

साहित्यके क्षेत्रमें महनीय कार्य

प्रारम्भसे ही पण्डितजीकी रुचि न्यायशास्त्र एवं साहित्यकी ओर रही। आपने अपने अतिरिक्त समयमें ग्रंथोंका अनुवाद एवं नवीन ग्रन्थोंके निर्माण किया। आपने हरिभद्रसूरिकृत 'षोडशक प्रकरण (पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध) पर १५००० श्लोक प्रमाण संस्कृतटीका, ४५० श्लोक प्रमाण विजय हर्ष सूरि प्रबन्धकी भी संस्कृत टीका की जो प्रकाशित हो चुकी है। आचारांग आदि ग्यारह आगमोंपर तथा कई उपांगोंपर श्वेताम्बर स्थानकवासी सम्प्रदायके अनुसार हिन्दी टीकायें की जो सभी प्रकाशित हो चुकी हैं।

इसके अलावा औपपातिक सूत्र, राजप्रश्नीयसूत्र, जीवाजीवाभिगम सूत्र, जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, नन्दीसूत्र, उत्तराध्ययनके हिन्दी अनुवाद लिखे। लोंका शाह महाकाव्य, वचनदूत (पूर्वार्द्ध), वचनदूत (उत्तरार्द्ध), वर्द्धमान, 'भक्तामर' 'द्रौपदी पूजनाधिकार' और 'मोक्षपद' रचनायें लिखी। न्यायरत्न टीकाके प्रथमा-मध्यमा और शास्त्री परीक्षोपयोगीके क्रमशः ३ अनुवाद-पुस्तकें लिखी जो अप्रकाशित हैं। दिगम्बर सम्प्रदायके कुछ ग्रंथोंका अनुवादन भी आपने किया—१. आप्तमीमांसाकी विस्तृत हिन्दी टीका। इस ग्रन्थकी टीकापर आपको न्याय वाचस्पतिकी उपाधिसे अलंकृत किया गया। २. युक्त्यनुशासनका अनुवाद। ये दोनों अनुवाद-टीका प्रकाशित हो चुके हैं।

आपकी दो स्वतंत्र अप्रकाशित रचनायें भी हैं—१. जैनदर्शनका तुलनात्मक अध्ययन २. सुरेन्द्रकीर्ति भट्टारक कृत चतुर्विंशति संस्थान १३ अर्थका अनुवाद। इसप्रकार साहित्यके क्षेत्रमें बड़ा कार्य किया है।

पारिवारिक जीवन

आपको चार पुत्र तथा चार सुपुत्रियोंका सुयोग प्राप्त है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती मनवादेवी एक साधारण शिक्षित सुयोग्य गृहस्थिनी हैं। आप अपनी माँके इकलौते पुत्र हैं।

पंडितजीका सारा समय अब सरस्वती माताकी सेवामें निरत रहता है। आप वास्तवमें धर्म एवं समाजके मूक सेवक हैं।

●

पं० तेजपालजी काला

●

महाराष्ट्रमें अमरावती नामक जिला है। वहाँ पर एक मध्यम स्थितिके सेठ श्री मोहनलालजी रहते थे। मोहनलालजी के छोटे भाईका नाम प्रतापमल था। मोहनलालके एक पुत्रका नाम मूलचन्द था। प्रतापमलके सन्तान न होनेके कारण मूलचन्दजीको उन्होंने गोद ले लिया। प्रतापमल धनी मानी व्यक्ति थे। प्रतापमलकी मृत्युके पश्चात् उनकी धर्मपत्नीने अपने दत्तक पुत्र श्री मूलचन्दजीको कुछ नहीं दिया। तब मूलचन्दजी वहाँसे पुन. अमरावती आ गये और अपने बड़े भाई श्री चन्द्रभानजी कालाके साथ रहने लगे। इन्हीं मूलचन्दजीके पुत्र पं० तेजपालजी काला हैं।

आपका जन्म मिती आषाढ़ सुदी अष्टमी संवत् १९६९ को माता श्रीमती रमकाबाईकी पुनीत कुक्षिसे हुआ। आपके ताऊ श्री चन्द्रभानजी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे उच्चकोटिके विद्वान् थे। समयसारके ज्ञाता होनेसे अध्यात्म पर उनकी अत्यधिक श्रद्धा थी। सात्त्विक प्रवृत्तिके धर्मात्मा व्यक्ति होनेके कारण उनका खानपान बहुत शुद्ध था।

आपकी माताके कोई भाई नहीं था अस्तु जब आपके नानाजीकी मृत्यु हुई तब उनकी सम्पत्ति उनकी लडकियोंमें विभाजित हो गई। उसमेंसे एक हिस्सा आपकी माताजी का भी था। अस्तु नानाजीके निधनके बाद आपके पिता अपना परिवार लेकर आपके नानाके घर नांदगांव चले गये। और वही रहने लगे। वहाँ भी सम्पत्ति ठिकानेकी न मिली जिससे पारिवारिक व्यय चलाने हेतु आपके पिताजीको नौकरीका सहारा लेना पडा।

जब आपकी अवस्था सात आठ वर्षकी थी। तब अध्ययनार्थ नांदगांवसे पुनः आपको ताऊजीके पास अमरावती जाना पडा। २० वर्षकी अवस्था तक आपने-अपने ताऊजीके पास ही रहकर विद्याध्ययन किया। कुछ दिनों तक अमरावतीमें रहकर आपको अध्ययनार्थ बम्बई भी जाना पड़ा। ताऊजीके धर्म एवं आचरणका आपके जीवनपर अमिट प्रभाव पडा। वे पर्यूषण पर्वमें आपसे पूजादि कराया करते थे। सातवी कक्षा तक अंग्रेजी तथा ग्यारहवी कक्षा तक हिन्दीका अध्ययन करनेके पश्चात्, रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, धनंजय नाममाला, तत्वार्थसूत्र और भाण्डारक आदि धार्मिक पुस्तकोंका आपने गहन अध्ययन किया तथा उनमें पूर्ण अधिकार प्राप्त कर उच्चकोटिके विद्वान् बने। कि धनाभावके कारण लौकिक शिक्षाके रूपमें आप मैट्रिकके आगे महाविद्यालयीन शिक्षा नही प्राप्त कर सके और न किसी विद्यालयमें जाकर उच्च धार्मिक शिक्षा ही ले सके किन्तु फिर भी बम्बईमें निरन्तर समाज प्रतिष्ठित बडे-बड़े विद्वानोंकी सत्संगति तथा आचार्योंके सान्निध्यसे आपमें धर्मके प्रति रुचि बढ़ती गई।

आप बम्बईमें ही काटन मार्केटमें नौकरी कर रहे थे तभी औरंगाबाद जिलेमें दानवीर जाति भूषण सेठ गुलाबचन्द्रकी सुपुत्री जानकीदेवीके साथ आपका विवाह हो गया। आपकी पत्नीकी योग्यता यद्यपि सातवी कक्षा तक ही है फिर भी अपने पिताके गुणोंका अनुसरण करके एक धर्मप्रिय महिला बनी है।

मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद अर्थोपार्जन हेतु आप बम्बईमें ही काटन मार्केटमे वायदेश व्यापारका कार्य करने लगे। दो वर्षों तक कार्य करनेके बाद भी जब उस कार्यमें आपको सफलता नही मिली तब अरुचि उत्पन्न होनेसे आपने उसका परित्याग कर दिया और घरमें ही छोटे भाईके साथ किराना और अनाजका व्यापार करने लगे। माता पिता वृद्ध हो गये थे अस्तु गृहस्थीका पूरा दायित्व आप पर ही था। न्याय नीतिके साथ व्यापार करनेके कारण यद्यपि दुकानदारीमें विशेष प्रगति नही हुई। फिर भी जीवन निर्वाह संतोष पूर्वक होता रहा।

सन् १९५४ से आप जैनदर्शनके सह सम्पादक है। दि० जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभाके १९६४ सहायक मंत्री तथा भा० दि० जैन महासभाकी प्रबन्धकारिणीके प्रतिनिधि, भा० शातिवीर दि० जैन सि० से० सभाकी प्रबन्धकारिणीके सभासद एवं नांदगांवकी खण्डेलवाल दि० जैन पंचायतके सभापति है। इसके अलावा श्री १०८ मल्लिसागर दि० जैन ग्रन्थमाला नांदगांवके २२ वर्षसे मंत्री हैं। श्री १०८ चन्द्रसागर दि० जैन औषधालयके ४ वर्ष तक मंत्री रहे अब ट्रस्टी है। श्री दि० जैन सिद्धक्षेत्र गजपथाकी प्रबन्धकारिणी कमेटीके प्रतिनिधि है।

बीस वर्षकी अवस्थासे आपने सामाजिक पत्रोंमें लेख लिखनेका समारम्भ किया। आपकी लेखनीके विषय विशेषतया धर्म और समाज ही थे। निबन्धोंके अलावा आपने 'सरल जैन विवाह पद्धति और लोकाचार' तथा 'सुगम जैन विवाह संस्कार विधि' नामक दो पुस्तकें भी लिखी जो प्रकाशित हो चुकी हैं।

आप आत्म सुधार भावनाके पोषक तथा पर्दा प्रथा एवं दहेज प्रथाके घोर विरोधी हैं। नैतिकता तथा सदाचारको अपनाकर आपने व्यक्तित्वको परिमार्जित बना लिया है।

●

डॉ० पन्नालालजी साहित्याचार्य

●

जीवन-परिचय : व्यक्तित्व

सागर जिलेके पारगुवाँ ग्रामके एक साधारण परिवारमें ५ मार्च १९११ को पंडितजीका जन्म हुआ। पिता श्री गल्ली-लालजी (गुलाबचन्द्र) थे तथा मातु श्री जानकीवाईजी। संस्कृत भाषाके न केवल अधिकारी विद्वान् माने जाते हैं पं० पन्नालालजी, अपितु इसी भाषाके अच्छे सुकवि और लेखक भी, अच्छे चिन्तक और विचारक भी, सफल टीकाकार और सम्पादक भी, आदर्श शिक्षक और व्यवस्थापक भी कहे जाते हैं। 'होनहार विरवानके होत चीकने पात' की कहावत पंडितजीके जीवनमें चरितार्थ होती दिखाई देती है। पंडितजी विवशता वश अंग्रेजी स्कूलमें प्रवेश नहीं कर पाये और सागरकी संस्कृत पाठशालामें पढ़नेकी सुविधा प्राप्त कर सके। पडितजीने संस्कृत भाषा और उसके साहित्यको बड़े ही मनोयोग पूर्वक पढ़ा, जैन-दर्शन और उसके सिद्धांतको भली भांति हृदयंगम किया। इस सबका जो परि-णाम होना था वह हमारे सामने है। कभी-कभी विवशता भी किस तरह वरदान बन जाती है यह देखकर आश्चर्य होता है।

वाराणसी और सागर ये दो स्थान ही पंडितजीके लिए विद्यार्जनके प्रमुख केन्द्र रहे हैं। सिद्धान्त-शास्त्री, काव्यतीर्थ और साहित्याचार्य जैसी सर्वोच्च उपाधियाँ पंडितजीकी विशेष योग्यतामे शोभित हो गयी। आपके सुयोग्य गुरुओंमें श्री मुकुन्द शास्त्री खिस्ते, श्री कपिलेश्वर झा, श्री लोकनाथ शास्त्री, श्री छेदीलाल शर्मा तथा श्री पं० दयाचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्रीका नाम उल्लेखनीय है। प्रात स्मरणीय पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी न्यायाचार्यके सानिध्य और संरक्षणमें पंडितजी ऐसा अनुभव करते रहे कि उन्हे एक स्नेही पिता, संवेदनशील गुरु तथा हितचिन्तक मार्गदर्शक प्राप्त हो गया है। इन्हीकी प्रेरणासे सन् १९३१ में सागरके श्रीगणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालयमें साहित्याध्यापकके रूपमें कार्य आरम्भ कर दिया जो अनवरत रूपसे १९७२ तक चलता रहा। वर्तमानमें आप इसी महाविद्यालयके प्रधानाचार्य हैं।

वैसे तो पंडितजीने १९३१ में ही साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रमें प्रवेश कर लिया था किन्तु इधर-के कुछ वर्षोंमें द्रुत गतिसे दोनों दिशाओंमें बढ़नेकी अपरिमित शक्ति और शौर्यका परिचय दिया है। पिछले २२ वर्षसे अखिल भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषदके महामन्त्रीके पदसे इस संस्थाको न केवल सामयिक नेतृत्व प्रदान कर रहे हैं बल्कि उसकी रचनात्मक प्रवृत्तियोंके सूत्रधार भी हैं।

पंडितजीको हम सरस्वती-साधक कह सकते हैं क्योंकि उन्होंने समूचे जीवनको सरस्वती-आराधनामें लगाया है। यह एक विचित्र संयोग है कि पंडितजीके व्यक्तित्वमें कुशल लेखक, प्रभावी प्रवक्ता तथा विवाद रहित विद्वत्ताका संगम हुआ है। पंडितजी अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं किन्तु आचारमें उनकी गहरी निष्ठा है। यही कारण है कि वे मात्र उपदेशकोंकी अपेक्षा आचार-प्रधान व्यक्तियोंके अधिक निकट हैं। उनकी चर्या एक व्रती जैसी है।

पंडितजीने अपने जीवनमें जितनी साहित्य सेवा की है और उनकी सेवाओंका जितना सम्मान सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर पर हुआ है यह उनकी विशेष प्रतिभाका द्योतक है ।

सन् १९६० में मध्यप्रदेश शासन-साहित्य-परिषद्की ओरसे 'जीवन्धर चम्पू' पर मित्र पुरस्कार, १९६९ में भारतके महामहिम राष्ट्रपतिजीकी ओरसे पुरस्कार, १९७२ में विद्वत् परिषद्की ओरसे 'गद्य-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ पर पुरस्कार, सन् १९७३ में सागर विश्वविद्यालयकी ओरसे 'महाकवि हरिचन्द्र एक अनुशीलन' शोध प्रबन्ध पर पी० एच-डी० एवं १९७४ में श्री वीर निर्वाण-ग्रन्थ प्रकाशन समिति, इन्दौरकी ओरसे 'पुरुदेव चम्पू' पर २५००) का पुरस्कार तथा 'प्रशस्ति-पत्र' प्राप्त हुआ । इसके अतिरिक्त पर्युषण पर्व अथवा किसी भी धार्मिक अथवा सामाजिक समारोहोंके अवसर पर पंडितजीको अनेक सम्मान-पत्र प्राप्त हुए । जबलपुर-संभाग तथा सागर नगर पालिका परिषद् पहले ही आपका सम्मान कर चुकी है । १९७३ में शिवपुरी पंच कल्याणक-महोत्सवके अवसर पर अखिल भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषद् की ओरसे आपको रजत-पत्र पर प्रशस्ति प्राप्त हुई ।

कृतित्व

जहाँ तक पंडितजीके कृतित्वका प्रश्न है उसे हम दो तरहसे देख सकते हैं, टीकाकार व मौलिक ग्रन्थकार । टीकाकारकी दृष्टिसे वे एक पारदर्शी तत्त्वबोधक और मौलिक ग्रन्थकारकी दृष्टिसे एक अध्ययन-मनन-सम्पन्न लेखक हैं । उनकी भाषा सरल, सुबोध और विषयानुरूप रहती है और पाठकको सीमाओंका सतत ध्यान रखती है । भारतीय ज्ञानपीठ जैसी अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रकाशन संस्थाने पंडितजीके लगभग २० विशाल ग्रन्थोंका प्रकाशन किया है । शेष ग्रन्थ सूरत, शान्तिवीर नगर, दिल्ली, फलटण और वाराणसीसे प्रकाशित हुए हैं । पंडितजीके द्वारा सम्पादित, अनूदित तथा मौलिक रूपसे रचित ग्रन्थोंकी सूची इस प्रकार है —

पुराण ग्रंथ—१. महापुराण (प्रथम एवं द्वितीय भाग) २. उत्तर पुराण, ३ पद्म पुराण (प्रथम, द्वि०, तृतीय भाग) ४ हरिवंश पुराण, ५. धन्यकुमार चरित ।

काव्य ग्रन्थ—जीवंधर चम्पू, गद्यचिन्तामणि, धर्मशर्माभ्युदय, पुरुदेव चम्पू, विक्रान्त कौरव की हिन्दी टीकायें की ।

प्राकृत साहित्य—समयसार, अष्टपाहुड, कुन्दकुन्द भारती, आराधनासारकी हिन्दी टीका लिखकर विस्तृत प्रस्तावना लिखी ।

धर्मशास्त्र—तत्त्वार्थसार, रत्नकरण्डश्रावकाचार, मोक्षशास्त्रकी सरल सुबोध ग्राह्यगम्य टीकायें की ।

स्तोत्र साहित्य—स्तुतिविद्या, स्वयंभूस्तोत्र, आध्यात्मामृत तरंगिणी और पंचस्तोत्र संग्रहके अन्वयार्थ तथा भावार्थ सहित टीका लिखी ।

मौलिक रचनायें—१. सामायिक पाठ, २ त्रैलोक्यतिलकव्रतोद्यापन, ३. अशोकरोहिणीव्रतोद्यापन, ४. वृषभजिनेन्द्रपूजा, ५. दविध्रतव्रतोद्यापन, ६. धर्मकुसुमोद्यापन तथा, ७ चौबीसी पुराण । इस प्रकार अब तक पंडितजीके द्वारा ४५ ग्रन्थ सम्पादित और अनूदित हो चुके हैं ।

●

विद्याभूषण पं० के० भुजबलीजी शास्त्री

जिन अहिन्दीभाषी विद्वानोंने राष्ट्रभाषा हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की है, उनकी संख्या अत्यल्प है। उनमें कन्नड भाषी साहित्यकार पं० के० भुजबली शास्त्रीका नाम उल्लेखनीय है। उन्होने न केवल मातृभाषामें अनेक मौलिक ग्रंथोंकी रचना की, बल्कि राष्ट्रभाषामें भी अनेक ग्रंथ लिखकर तथा मासिक पत्रका सम्पादन करके दक्षिण भारतीय विद्वत्समुदायके समक्ष एक अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। आपका पांडित्य अगाध है इसलिए शैलीमे जहाँ गम्भीरता है, वहाँ लेखनप्रणाली इतनी मनोरंजक है कि कठिन-से-कठिन विषयोंका ज्ञान सरलता-पूर्वक हो जाता है। धर्म, साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व आदिका तलस्पर्शी ज्ञान आपके साहित्यमें बिखरा पड़ा है।

व्यक्तित्व

स्वच्छ श्यामल वर्ण, नाटा कद, विशाल भाल, पुष्ट देह और मुख मुद्रापर खेलती मधुर मुस्कान। परिपक्व वार्धक्यमें युवकोचित उत्साहसे लेखनीकी अविराम गति। ऐसे जैन समाजके प्रकाशमान नक्षत्रका जन्म ११फररवरी १८९७में अहाता मदरास (मैसूर) के दक्षिण कनारा जिलेमें काशिपट्टण ग्राममें हुआ था। पिता श्री आदिराज (आदप्प) ग्राम मुन्सिफके पदपर थे। प्राचीन सस्कृतिके प्रति अनुरागी, धर्मनिष्ठ और विद्याप्रेमी पिता श्रीकी समाजमें बड़ी प्रतिष्ठा थी।

शिक्षा

अँग्रेजी पढ़नेके लिए लालायित, बालक के० भुजबली अपनी ग्रामीण पाठशालाकी प्रारम्भिक शिक्षा पूर्ण करके नेल्लिकार ग्रामकी संस्कृत पाठशालामें गये। १९१६में मैसूर नगरमें सेठ वर्द्धमानय्यद्वारा संचालित संस्कृत पाठशालामें प्रविष्ट हुए। प्रारम्भमें आयुर्वेदका अध्ययन शुरू किया परन्तु सेठजी आपको संस्कृतज्ञ और धर्मशास्त्रीके रूपमें देखना चाहते थे अतः १९२१में श्री पं० गोपालदास जैन विद्यालय मोरेना भेजे गये और वहाँसे शास्त्री उत्तीर्ण की। विशद ज्ञानके कारण 'न्यायकुल भूषण' और न्यायाचार्यकी अन्यान्य उपाधियाँ भी आपने प्राप्त कीं।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् आरा नगरके बाबू निर्मलकुमार रईस द्वारा संस्थापित 'जैन सिद्धांत भवन'के लिए आमन्त्रित किये गये और १९२३ ई०से १९४४ ई० तक आप वहाँके पुस्तकालयाध्यक्ष रहे। इसी बीच अनेक प्राचीन ग्रंथोंकी खोज करके उन्हें सुसम्पादित किया।

इसके अलावा रात्रिमें जैन बालाविश्रामकी छात्राओंको पढ़ाते थे। धतुपरामे स्थित नारीविदुषी पं० ब्र० चन्दाबाई द्वारा संचालित बालाविश्राममें संस्कृत और न्यायकी उच्च कक्षायें आरम्भ करनेका श्रेय आपको ही है।

साहित्य सेवी पंडितजीकी अनुपम सेवायें

आरामें रहते हुए आपने अनेक ग्रंथोंकी रचना और सम्पादन किया। १९४४में आप आरासे मूड-बिद्री (मैसूर) चले आये जहाँ दो वर्षके लिए भारतीय ज्ञानपीठकी कन्नड़ शाखामें अध्यक्ष पदपर रहकर

संचालन किया। इसके बाद १९४६से१९६८ तक कर्नाटक विश्वविद्यालयके अनुसन्धान विभागमें संश क और सहायकके रूपमें धारवाड (मैसूर) रहने लगे। वर्तमानमें यहीं हैं।

छात्रावस्थामें ही आपने कन्नड भाषामें 'जैनधर्म, जैनदर्शन और बाहुबलि चरित' नामक ग्रंथ लिखे। आरामें ही आप हिन्दीमें लिखने लगे थं। हिन्दीमें आपकी प्रथम पुस्तक 'दिगम्बर मुद्राको सर्वमान्यता' प्रकाशित होते ही आपकी मान्यता एव गणना अच्छे हिन्दी लेखकोंमें होने लगी। इसके अलावा आपने 'मूर्तिपूजाकी आवश्यकता' और जैनरमूररत्नगलु (कन्नड) आत्मनिवेदनम्' (संस्कृत) 'आदर्श जैन महिलेयरु' आदर्श जैन वीररु, आदर्शसाहितिगलु, जैनवाङ्मय मातृस्मृति, दैनिक षटकर्म, निबंध संग्रह, प्रबन्ध पुंज, समवसरण, भव्यस्मरणे, महावीर वाणी, 'कन्नडकवि चरिते' कामन कालग, आदि कन्नड भाषाकी प्रमुख कृतियाँ हैं। संस्कृत भाषामें आपने शांति शृंगार विलास, भुजबलिचरितम् लिखा, मुनिसुव्रत महाकाव्य, चित्र-सेन पद्मावती चरितम् और भव्यानन्दकी पाण्डुलिपियोंका सम्पादन और अनुवाद किया।

'कन्नड प्रान्तीय ताड़पत्रीयग्रंथ सूची' और 'प्रशस्तिसंग्रह' हिन्दीमे प्रकाशित ग्रन्थ है। अनेक प्राचीन ग्रंथोंकी शोध की और 'जैन प्राकृत वाङ्मय' जैसे शोधपूर्ण शताधिक निबंध प्रस्तुत किये जिमको मैसूर सरकारने बडी इज्जत और सम्मान दिया। 'वीरबंकेण' नाम प्रबंधको मैसूर शासनने 'मूडबिद्री' शीर्षक प्रबंध को केरल शासनने पाठ्य ग्रन्थोंमें स्थान दिया। ज्ञानकोष, बृहत्समाधिमरण, ज्ञान प्रदीपिका, क्षत्र चूडामणि आदि पुस्तकोंकी पाँडित्यपूर्ण, प्रस्तावनायें हिन्दीमें लिखकर पुस्तकें प्रकाशित करायी।

'मुहूर्त दर्पण', 'भव्यानन्द' का हिन्दी अनुवाद किया। इस प्रकार स्वतन्त्र कृतियाँ अनुवादित रच-नायें और सम्पादित ग्रंथोंकी कुल संख्या लगभग ४० है।

सम्मानित उपाधियाँ तथा अभिनन्दन पत्र

वाराणसीके भारतधर्म महामण्डलने १९३८ ई०में आपको 'विद्याभूषणकी' उपाधि प्रदान करके सम्मानित किया। १९६३में जैन सिद्धान्त भवन, आराके हीरक जयन्ती महोत्सवके समय विहारके तत्का-लीन राज्यपाल श्री अनन्तशयनम् आयंगरके करकमलोंसे आपको 'सिद्धान्ताचार्य' की उपाधिसे विभूषित किया गया।

जैन समाज शिमला, जैन मठ, हुंबुच, जैन जीर्णोद्धार संघ कारकल, आराकी विद्या परिषद, साहित्य परिषद जैसी संस्थाओंने आपको अभिनन्दन पत्र भेंट किये।

सार्वजनिक और सामाजिक सेवायें

मैसूर सरकारके प्राच्य संशोधन मन्दिरका सदस्य रहकर कार्य किया। आपने राजकीय एव राष्ट्रीय परीक्षालयोंका परीक्षक बनकर सेवा की। अनेक राजकीय एवं राष्ट्रीय प्रकाशनोंको प्राचीन ग्रंथोंकी प्रतियाँ प्रदानकर उनका प्रकाशन करवाया। भ्रातृसंघ आदि संस्थाओंकी स्थापना करवायी। आप हिन्दी साहित्य सम्मेलनके स्वागताध्यक्ष भारतवर्षीय दि० जैन संघ मथुराके अन्वेषण मन्त्री, जैन कन्या पाठशाला पणपिल, और परस्पर सहायक संघ मूडबिद्रीके अध्यक्ष, वीरपाणि विलास जैन सिद्धांत भवन, मूडबिद्रीके मंत्री, आ० शांतिसागर स्मारक समिति, जैन विद्वत्परिषद आदिके सदस्य रहे हैं।

इसके अलावा आपने पावापुरी, आरा, राजगृही, आसनसोल आदि कई स्थानोंपर बिम्बप्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा और मानस्तम्भप्रतिष्ठादि सम्पन्न करवायीं हैं। इसी प्रकार मन्त्रविधानके द्वारा बहुतसे व्यक्तियोंको भूतप्रेत बाधायें दूर की। महोत्सवों और सेमिनारोंमें सक्रिय भाग लेने हेतु देशके बड़े-बड़े नगरोंमें प्रायः गये हैं और जाते रहते हैं।

पत्रकार और सम्पादकके रूपमें

कन्नडमें 'शरण साहित्य' विवेकाभ्युदय, वीरवाणी और गुरुदेव पत्रोंके सम्पादन-मण्डलमें रहकर सम्पादन किया। 'जैन सिद्धान्त भास्कर' (हिन्दी) पत्रके सम्पादक रहे। अब भी इसके परामर्श मण्डलमें तथा Voice of Ahinsa (अलीगंज) के सम्पादक मण्डलमें हैं। इन पत्रों तथा अन्य हिन्दी और कन्नड़ भाषी अनेक पत्रोंमें पुरातत्त्व, जैन इतिहास आदि विषयोंके सैकड़ों संशोधनात्मक लेख प्रकाशित हुए हैं।

पांडित्य और प्रज्ञाके धनी

आपके पांडित्य और सम्पादन निपुणता एवं सौजन्यताकी प्रशंसा जहाँ एक ओर महात्मा गान्धी, राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे महापुरुषोंने कीं वहाँ ब्र० शीतलप्रसादजी, ज्योतिषाचार्य रामव्यास शर्मा, पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य जैसे धुरीण विद्वानोंने। कौन ऐसा जैन सिद्धान्तोंका मर्मज्ञ विद्वान् न होगा, जिसने आपकी रचनाओंकी प्रशंसा न की हो।

आपने कन्नड, संस्कृत और हिन्दीकी साहित्य सेवाका आजीवन व्रत निभाया और निभा रहे हैं। वर्तमानमें भी हिन्दीसे कन्नड और कन्नडसे हिन्दीमें अनेक ग्रन्थोंका अनुवाद चल रहा है। वृद्धावस्था और विषम गार्हस्थ्य स्थिति विद्याराधनमें बाधक नहीं है।

●

पंडित सुमेरुचन्द्रजी दिवाकर

●

मध्यम कद, गठा बदन और सफेद गेहुँआ वर्णमें खादीके सफेद कुर्ता और धोतीके ऊपर बन्द कालरका कोट तथा सिरपर सधी टोपी, ऐसे व्यक्तित्वको देखकर सहज ही सादा जीवन उच्च विचारकी लोकोक्ति स्मरण हो आती है। प्रारम्भिक शिक्षा सिवनीमें। १९२१-२२ के असहयोग आन्दोलनके समय विदेशी सत्ता द्वारा संचालित अंग्रेजी मिशन हाईस्कूल त्यागकर जैन गुरुकुल मोरेना तथा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें धार्मिक शिक्षण एव न्यायतीर्थ। पुन: हिन्दू विश्वविद्यालयमें अंग्रेजी अध्ययन। जबलपुरसे बी० ए० उपाधि तथा नागपुरसे विधि उपाधि प्राप्त की।

जन्म ८ अक्तूबर १९०५ ई०। सिवनीमें प्रसिद्ध बड़े घरके बड़े लालने जन्म लेकर जैनधर्मकी महती सेवा की। पिता श्री कुँवरसेनजीसे धर्म और जाति सेवा विरासतमें प्राप्त हुई। पिता जी भा० दि० जैन परवार सभाके जन्मदाता थे।

यौवनावस्था तक आनेपर आपमें रागवर्द्धक अभिलाषायें विसर्जित हो चुकी थी और जब पंचायती बुलावा उनके फलदान (सगाई)के लिए आया तब अपने पूर्व निश्चयपर दृढ़ रहकर विवाह न करने और आजन्म ब्रह्मचारी होनेकी बात कही। सुमेरुकी तरह अचल आपका व्यक्तित्व धर्म और चरित्रकी सुगन्ध बिखेरने लगा।

जैसा सुन्दर लिखते हैं वैसा ही प्रभावक बोलते है। साहित्यिक सेवायें हिन्दी और अंग्रेजीमें अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं हैं। जिनमें मुख्य हैं—जैन शासन, चारित्र चक्रवर्ती, तीर्थंकर, श्रवणबेलगोला, महा-बंध (अनुवाद) तथा अंग्रेजीमें रिलीजन एण्ड पीस (Religion and Peace), न्यूडिटी ऑफ जैन सेन्टस् (Nudity of Jain Saints) और एन्टीक्विटी ऑफ जैनइज्म (Antiquity of Jainism)। आपके महान् प्रयासका सुफल था कि दक्षिणके मूडबिद्रीसे महाधवला जैसा महान् ग्रन्थ, भट्टारकोंके एकाधिकारसे प्राप्त कर सके। महाधवलाका अनुवाद कर जैनधर्मकी महती सेवा और जैन समाजको महान् देन। इतना ही नही, अपितु आचार्यवर श्री शान्तिसागरजी महाराजकी आज्ञासे आपने महाधवल, जयधवल तथा धवलको ताम्र-पत्रोंमें उनका सम्पादन कर उत्कीर्ण करवाया। कषायपाहुड जैसे दुरुह महान् ग्रन्थका सम्पादन किया और उसकी विस्तृत भूमिका लिखी। वर्षों 'जैन गजट' साप्ताहिकके सम्पादक रहे।

सामाजिक सेवायें एव सम्मानीय पदोंपर आसीन

रामटेक गुरुकुलके स्थापकोंमेंसे आप एक है। जिसका संचालन भी कई वर्षों तक किया। अ० भा० दि० जैन महासभा द्वारा—विद्वत्रत्नकी उपाधिसे अलंकृत तथा पू० आ० शान्तिसागरजी द्वारा 'धर्म दिवाकर' की पदवी प्राप्त करना।

सर्व धर्म सम्मेलन शिमूजी-टोकियो (जापान)में जैनियोंका प्रतिनिधित्व कर जैनधर्मपर लेख पढा। वर्ल्ड ओरियण्टल कान्फेरेन्स देहलीको एंटीक्विटी ऑफ जैनइज्म नामक लेख भेजा था। आस्ट्रियाकी कान-फेरेन्समें वर्ड पीस (World Peace) नामका आपका लेख पढ़ा गया।

पर्यूषण पर्व और महावीर जयन्तीके अवसरपर भारतके उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिमसे हर वर्ष साग्रह आमन्त्रण पर जाकर जैनधर्मकी अनन्य सेवा। दिल्ली, मद्रास, कलकत्ता और बम्बई जैसे महानगरोंसे प्राप्त मानपत्र आपकी विद्वत्ता और निस्वार्थ समाजसेवाके ज्वलन्त प्रमाण हैं। धनके निर्मोही अपनी सेवाओं के उपलक्षमें एक पैसा भी पारिश्रमिक रूपमें स्वीकार नही करते। देशके ख्याति प्राप्त विद्वानोमे शिरोमणि पं० दिवाकरजीकी कर्मठ धर्म और समाज सेवासे सम्पूर्ण जैन-समाज ऋणी है। भविष्यमें भी ऐसे निस्पृही और मेधावी वयोवृद्ध व्यक्तित्वसे बड़ी आशायें हैं। जिनके जीवनका लक्ष्य जैन सिद्धान्तोंको विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचानेका रहा।

●

विद्यावारिधि डा० ज्योतिप्रसादजी

●

जन्म—१९१२ ई०

जन्मस्थान—मेरठ शहर (उ० प्र०), निवास—लखनऊ

पता—ज्योतिनिकुञ्ज, चारबाग, लखनऊ-१ (उ० प्र०)

पिता—स्व० श्री पारसदास जैन

शिक्षा—एम० ए० (इतिहास, राजनीति एवं अंग्रेजी साहित्य), एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, लगभग ८-९ देशी विदेशी भाषाओंका ज्ञान।

मानद उपाधियाँ—इतिहासरत्न, विद्यावारिधि आदि।

संस्कृति एवं इतिहासके गम्भीर अध्येता, जैनविद्या (जैन संस्कृत-इतिहास-पुरातत्त्व-कला-साहित्य-धर्म-दर्शन) के विशिष्ट मनीषी, अनेक ग्रन्थोंके प्रणेता, कुशल पत्रकार, दर्जनों शोधछात्रोंके पथप्रदर्शक, अनगिनत सांस्कृतिक एवं सामाजिक अखिल भारतीय, प्रान्तीय, संभागीय एवं स्थानीय संस्थासे सम्बद्ध, सुप्रतिष्ठित जैन विद्वान् एवं संस्कृतिसेवी।

१. जैनिज्म, दी ओल्डेस्ट लिविंग रिलीजन (१९५१)
२ हस्तिनापुर (१९५३)
३. प्रकाशित जैन साहित्य (१९५८)
४ भारतीय इतिहास . एक दृष्टि (प्र० सं० १९६२, द्वि० सं० १९६६)
५ दी जैना सोर्सेज आफ दी हिस्टरी आफ एन्शेन्ट इंडिया (१९६४)
६. रुहेलखड-कुमायुँ जैन डायरेक्टरी (१९७०)
७ तीर्थंकरोंका सर्वोदय मार्ग (१९७४)
८. प्रमुख ऐतिहासिक जैन पुरुष और महिलाएँ (१९७५)
९ रिलीजन एंड कल्चर आफ दी जैन्स (१९७५)
१०. भगवान् महावीर स्मृति ग्रन्थ (१९७५)
११. उत्तर प्रदेश और जैनधर्म (१९७६)

इनके व लगभग एक दर्जन अन्य प्रकाशित लघु पुस्तिकाओंके अतिरिक्त उ० प्र० शासन जिला भूवृत्तोंके सम्पादनमें योग दिया है और उनके लिये लगभग २० जिलोंका इतिहास लिखा है, तथा लगभग २० अन्य कृतियाँ प्रकाशनकी प्रतीक्षामें है। कई अन्य विद्वानोंकी पुस्तकोंके प्राक्कथन-प्रस्तावना आदि लिखे हैं, लगभग एक सहस्र हिन्दी व अंग्रेजीके विविध-विषयक लेख जैन व अजैन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं, करीब एक सहस्र पुस्तकोंकी समीक्षा की है। वर्तमानमें जैन सिद्धान्त भास्कर-जैसा एन्टीक्वेरी (१९५२ से), वायस आफ अहिंसा (१९५३ से), जैनसन्देश-शोधाक (१९५८ से) जैसी प्रतिष्ठित शोध-पत्रिकाओंके सम्पादक हैं—पूर्व कालमें कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं के भी सम्पादक रह चुके हैं। १०-१२ शोध छात्र-छात्राएँ जैनविद्याके विविध अंगोंपर निदेशनमें कार्य कर रहे हैं, अनेकों कर चुके हैं।

प्रमुख संस्थाओंसे सम्बन्ध

अखिल विश्व जैन मिशन (प्रधान संचालक), भा० दि० जैन० परिषद् कार्यकारिणी [illegible], भा० दि० जैन संघ (सदस्य), भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् (सदस्य), भा० दि० जैन महासभा (पावा-निर्णय उप-समिति सदस्य), दि० जै० संस्कृति सेवक समाज (सदस्य), प्राकृत जैन विद्यापीठ वैशाली (सदस्य), श्री देव-कुमार जैन, प्राच्यशोधसंस्थान, आरा (सदस्य), जैनशोध संस्थान, आगरा (सदस्य), पं० जुगलकिशोर मुख्तार युगवीर ट्रस्ट (ट्रस्टी), श्री दि० जै० अयोध्या तीर्थ क्षेत्र कमेटी (सदस्य), श्री दि० जैन श्रावस्ती तीर्थ क्षेत्र कमेटी (सदस्य), अ० भा० दि०जैन २५०० वां म० नि० सोसाइटी (सदस्य), उ०प्र० शासकीय म० न० समिति (सदस्य)–संभागीय समिति (कार्याध्यक्ष)–स्थानीय समिति (अध्यक्ष), ती० महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र० (सदस्य), जैनमिलन लखनऊ (संरक्षक), जैन शिक्षा संस्थान, लखनऊ (सदस्य), अनन्त-ज्योति विद्यापीठ (अध्यक्ष), ज्ञानदीप प्रकाशन (निदेशक), कान्त बाल केन्द्र (संरक्षक), विश्वजिज्ञासा क्लब (संरक्षक), बुक क्लब (सदस्य), सर्वधर्ममिलन सोसाइटी (सदस्य), लखनऊ जिला नागरिक परिषद् (सदस्य), पार्श्वनाथ दि० जै० धर्मार्थ औषधालय (सदस्य) इत्यादि।

लखनऊ (१९५७), भोपाल (१९५८), कोटा (१९७३), मेरठ (१९७४), आदिमें सार्वजनिक अभिनन्दन हुए हैं, प्रशस्तियाँ, उपाधियाँ आदि भी मिली हैं।

सन् १९७२ में राजकीय सेवासे निवृत्त होनेके उपरान्त प्राय सम्पूर्ण समय अध्ययन, शोध-खोज, लेखन, प्रवचन आदि सांस्कृतिक एवं सामाजिक सेवामें समर्पित है। निजी समृद्ध पुस्तकालय एवं अध्ययन-कक्ष वस्तुतः एक उत्तम शोध संस्थान है।

डा० साहब के अनुज श्री अजीतप्रसाद जैन (अवकाश प्राप्त उपसचिव–उ० प्र० शासन) भी उत्साही समाजसेवी हैं और ती० महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ० प्र० के प्रधान मंत्री हैं। डाक्टर साहबके दोनों सुपुत्र-डा० शशिकान्त जैन एवं श्री रमाकान्त जैन उ० प्र० सचिवालयमें वरिष्ठ अधिकारी हैं साथ ही सुयोग विद्वान् सुलेखक एवं संस्कृति व समाजसेवी हैं।

●

पं० बालचन्द्जी सिद्धांतशास्त्री

●

वीर सेवा मन्दिर, दरियागंज दिल्लीके माध्यमसे पं श्री बालचन्दजी जैनने जैन साहित्यके संवर्द्धन और प्रसारकी जो महती सेवा की है वह वस्तुत आपके जीवनकी तपस्याका प्रतिफल ही है। अपने ज्ञानके क्षयोपशमको जैन दर्शनके विकास और उन्नयनमें करके स्वयं विशुद्ध परिणति की और समाजको ग्रंथोंके अनुवाद आदिके माध्यमसे ज्ञान-आलोक दिया। आपके कार्य ही आपकी जीवन-कहानीकी दुहाई देते हैं।

आपका जन्म मडावराके समीप सोंरई ग्राम जिला झांसीमें ज्येष्ठ कृष्णा अमावस्या सं० १९६२ को श्री अच्छेलालजी जैनके घर मातुश्री उजियारीके गर्भसे हुआ था। बुन्देलखंडमें सोंरई ग्राम पिछड़े इलाकेमें डाकूग्रस्त क्षेत्रमें होनेसे पुलिसकी अनावश्यक आस्ती रहती थी जिससे परेशान होकर आपके पिता आपको लेकर हुंडुवा

जिला सागर ले आये। परन्तु ४ वर्ष बाद ही ९ माहके अन्तरालसे १२ वर्षकी अल्पायुमें आपके माता और पिताजीका स्वर्गवास हो गया।

शिक्षा

१९२१ से २८ तक स्याद्वाद महाविद्याय बनारसमें रहकर न्यायतीर्थ, मध्यमा, धर्मशास्त्री व नव्य-न्यायकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। तत्कालीन प्राचीन न्यायके प्रतिष्ठा प्राप्त विद्वान् पं० अम्बादासजी थे। पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य बीना आपके काका, पं० दरबारी लालजी कोठिया न्यायाचार्य एम० ए०, पी-एच० डी० आपके चचेरे भाई और पं० शोभारामजी सोंरई सप्तम प्रतिमाके धारी हैं। इन सबके संसर्गसे आपकी प्रतिभा और वृद्धिगत हुई।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् आपने सन् १९२८ से १९४० तक जारखी (आगरा), गुना, मथुरा और उज्जैनमें अध्यापन कार्य किया। इसके बाद १९४० से धवला आफिस अमरावती और वर्तमानमें जीवराज जैन ग्रंथमाला सोलापुरमें ग्रंथ संपादन, अनुवाद व प्रस्तावना लेखन आदिका कार्य कर रहे हैं।

साहित्यिक गतिविधियाँ

ग्रंथ संपादनके इन वर्षोंमें आपने कई महत्त्वपूर्ण शोध निबंध 'अनेकांत'में प्रकाशित करवाये जो अपने में विशेष महत्ता लिये हुं तथा पं०जीकी ज्ञान-प्रतिभाके द्योतक हैं—ऐसे निबन्धोंकी संख्या २०से अधिक है। गुरु गोपाल बरैया अभिनन्दन ग्रन्थमें प्रकाशित आपका विशेष लेख 'आचार्य वीरसेन और उनकी धवलाटीका' विद्वत्तापूर्ण है।

सम्पादित एवं अनुदित ग्रन्थ

आपने निम्नलिखित ग्रन्थोंका सम्पादन एवं अनुवाद किया है—तिलोयपण्णत्ती (२ भागोंमें), षट्खण्डागम (धवला—भाग ६ से १६ तक पृथक-पृथक), 'जम्बूदीपपण्णत्ति संगहो', आत्मानुशासन, पद्मनन्दि पञ्चविंशति, लोकविभाग, पुण्यास्रव कथाकोष। 'लोक विभाग' ग्रन्थके सम्पादनके सम्मानार्थ आपको भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसीका एक हजार रुपयेके साथ प्रशस्तिपत्र 'गणेश प्रसादजी वर्णी' पुरस्कारके रूपमें श्री भा० दि० जैन विद्वत्परिषदके माध्यमसे अध्यक्ष ज्ञानपीठ श्रीमती रमा जैन और पं० नेमिचन्दजी शास्त्रीके कर कमलों द्वारा ८ मई १९६८ को प्राप्त हुआ।

सामाजिक सेवायें

आप सन्मति साहित्य सभा सोलापुरके एक वर्ष अध्यक्ष एवं मराठी रामायण प्रकाशन समिति, सोलापुरके २ वर्षके लिए सदस्य मनोनीत हुए थे। इसके अलावा आपने ज्ञानार्णव, धर्मपरीक्षा, सुभाषित रत्न सन्दोहका और श्वेताम्बर श्रावक प्रज्ञप्तिका हिन्दी अनुवाद एवं संपादन कर प्रकाशित करवाये।

इस प्रकार साहित्यार्चनामें आपके जीवनके अमूल्य क्षणोंका सदुपयोग हो रहा है। और जैनधर्मको प्रकाशमें लानेका परम श्रेय प्राप्त किया है। ऐसे साहित्यसेवी विद्वानपर जैन जगतको बड़ा गर्व एवं स्वाभिमान है।

●

प्रो० खुशालचन्द्रजी गोरावाला

प्राचीन दतिया राज्यमे शाहगढ उपराज्य था जिसकी राजधानी मडावरा थी। इस राजधानीके निर्माणके समय तत्कालीन प्रमुख श्रीमान् चिन्तामणि शाहको उनकी गोरा जागीरसे मडावरा (शाहगढ राज्य) मे बुलाया गया था। और मडावरामें रहनेका आग्रह किया फलत परवार कुलान्तन श्री चिन्तामणिशाहका परिवार 'गोरावाला' बैंकसे ख्यात हुआ। १८५८मे राजा बखतवलीसिंह और शाहगढ को भी रानी लक्ष्मीबाईके निधनके साथ क्रमश वनबासी तथा पराजित होना पडा और इनके सहायकों तथा अनुयायियोंको ब्रिटिश बर्बरताका शिकार होना पडा जिससे चिन्तामणिशाहके वशधर उमरावशाह भी अछूते न रहे और जागीरदारस साधारण साहूकार ही रह गये।

इसी वश की ६ठी पीढीमें सन् १९१७ में खुशालचन्द्र गोरावालाका जन्म हुआ। परिवारके नियमानुसार सब भाइयोमें कनिष्ठ होनेके नाते खुशालचन्द्रने ज्योंही प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त की त्यो ही सस्कृतके अध्ययनके लिए इन्हें वाराणसी भेजा गया। जहाँ पर जनपदीय लोकापवादके अनुसार प्रच्छन्न-तात्या टोपेकी खोज करते-करते बालक क्रान्तिकारियोके सम्पर्कमें आया। किन्तु मार्च सन् १९३० में गाधीजीका दूसरा सत्याग्रह आरम्भ होनेपर सत्याग्रही स्वयसेवक बन गया तथा आयु कम होनेके कारण बादमे वानर सेनानी कर दिया गया और इसी हैसियतसे काम करता रहा।

सन् ३२ में विलिंगडन शाहीके दमनके समय वाराणसी टाउनहालमें एल० ओवेन द्वारा किये गये गोलीकाण्डके समय मृत समझा गया क्योंकि पासमे ही खडे श्री योगेश्वरप्रसाद पाठकको गोली लगी थी। गोकि गिरफ्तार किये गये स्त्री-बच्चोमें घेरे आनेके कारण वह जीवित था। प्रत्येक आन्दोलन आदिमे भाग लेते हुए भी किशोर गोरावालाने अपनी पढाई जारी रक्खी और सन् ३९ मे एक साथ एम० ए० (का० वि० वि०) और आचार्य (सं० वि० वि०) परीक्षाएँ भी पास की।

उभय योग्यताओके कारण श्रीराम वि० कालेज फीरोजाबादमें तुरन्त नियुक्ति हो गयी, किन्तु स्व० प० काशीपति त्रिपाठी, राष्ट्ररत्न शिवप्रसाद गुप्त और श्रीप्रकाशजीके आग्रहके कारण उक्त सवैतनिक स्थान को छोडकर गोरावालाने काशी विद्यापीठकी अवैतनिक प्राध्यापकी ग्रहण की, क्योकि आर्थिक सकटके कारण विद्यापीठके काममे बाधा आ रही थी। तथा सस्थापकजीने देशभक्त युक्त-विद्वानोका आह्वान किया था।

विद्यापीठके निकटतम सम्पकने युवकके ब्रिटिश-विद्रोहपर धार रख दी और परिणाम यह हुआ कि तीसर (व्यक्तिगत) सत्याग्रहके समय वह उ० प्र० प्रादेशिक काग्रेसका सघटनमंत्री और मन्त्री हो सका। तथा २।। माह तक हैलटशाहीसे जूझता हुआ २५ जुलाई, ४१ को नजरबन्द किया गया। इसके बाद मुकद्दमा भी चला और फरवरी ४२ मे जेलसे छूटा। भारत छोडो आरम्भ होते ही फिर विद्रोहमें जुट गया और ३ सितम्बर ४२ को फिर नजरबंद कर लिया गया तथा ३१-१२-४४ तक बदी रहा।

जेलसे छूटनेपर प्रान्तीय तथा अन्तरप्रान्तीय स्तरपर काग्रेसमे कार्य करते हुए सन् ५० में पश्चिम बगाल काग्रेसके स्थानीय-निर्वाचन-अधिकारीका कार्य भी किया। सन् ५२ में स्व० रफी अहमद किदवईके

साथ कांग्रेस छोड़ कर 'किसान-मजदूर-प्रजादल'में सम्मिलित हुआ। किन्तु प्रथम आम चुनावकी पराजयके बाद जब यह दल समाजवादी दलमें मिलकर प्रजासमाजवादी दल बना तो नेताओंको मिलन प्रक्रियासे सहमत न होनेके कारण गोरावालाने राजनैतिक संन्यास ले लिया और किसी भी राजनैतिक दलमें प्रवेश नही किया। राष्ट्रपिताके 'स्वराज्यके बाद हिमालय प्रयाणके' आदर्शको निभानेके लिए स्वराज होते ही प्रो० गोरावालाने राजनीतिसे संन्यास लिया और लोकमान्य तिलकजीके आदर्श (स्वराज्य होनेपर किसी विद्यालयमें गणितका अध्यापक हो जाऊँगा) को अपनाया है। तथा विविध पदोंकी उपेक्षा करके तटस्थताके साथ देश-धर्म की सेवा कर रहे हैं।

प्रो० गोरावाला संस्कृत, प्राकृत साहित्य तथा दर्शन, धर्म और इतिहासके विशेषज्ञ हैं। आपका काशी विश्वविद्यालय, नागरी प्रचारिणी सभा, स्याद्वाद-महाविद्यालय, भा० दि० जैन संघ आदि अनेक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओंसे निकट सम्बन्ध है। इन संस्थाओंके अधिकारियों और सदस्य रूपसे सेवा करते हुए भी उनकी विशेष रूचि पठन-पाठनमें ही है। यही कारण है कि पूर्णकालिक स्वाध्यायस्थविर हो जानेपर भी इतिहास, संस्कृत आदि की उच्च कक्षाओंको अनवरत लेते रहे हैं। तथा वरागंचरित, विद्यापीठ रजतजयन्ती ग्रन्थ, वर्णी-अभिनन्दन ग्रंथ, द्विसन्धान महाकाव्य आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों तथा पत्रिकाओंका सम्पादन करते रहे है तथा सदैव गुमनाम भी लिखते रहे है।

●

पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ

●

जीवन-परिचय

पंडित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थका जन्म माघ शुक्ल तीज संवत् १९६४ में हुआ था। आपके पिता सिंघई मौजीलालजी महरौनीमें रहते थे और माताजीका नाम सगनाबाई था। आप गोलालारीय समाजके भूषण हैं। आपके पिता जी वैद्य थे। आप उनके साथ ही आठ वर्षकी अवस्थामें ललितपुर आ गये थे। आपके परिवारमें ३ भाई व एक बहन हैं। आप एक मध्यमवर्गीय परिवारके व्यक्ति हैं।

शिक्षा और विवाह

आपकी प्राथमिक शिक्षा महरौनीमें हुई, माध्यमिक शिक्षा ललितपुरमें हुई। धार्मिक शिक्षा साढूमल, मोरेना, जबलपुर और इन्दौरमें हुई। आपने शास्त्री व न्यायतीर्थ परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। सन् १९२८ में आप शिक्षा समाप्त कर कार्यकी दिशामें बढे। आपके विद्यार्थी जीवन-कालकी एक घटना उल्लेखनीय है कि जुगमन्दरदासजीकी शव यात्रामें साथियों सहित सम्मिलित हुए।

आपने बैरिस्टर चम्पतरायपर प्रेरणास्पद कविता प्रकाशनार्थ भेजी। आपका विवाह २३ वर्षकी अवस्थामें कमलादेवी राष्ट्रभाषा कोविदसे हुआ। आप सही अर्थोंमें पंडितजीकी सहयोगिनी बनीं। आपके तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। सभी उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। जैनेन्द्रकुमार अपने प्रेसके संचालक और माधुरीके सह सम्पादक हैं।

सेवा-कार्य

आपने जैनमित्र कार्यालय सूरतमें सहयोगीके रूपमें काफी धर्म और समाज की सेवा की। आप 'वीर' पत्रके कई वर्षों तक सम्पादक रहे और वर्तमानमें भी हैं। सूरतमें आपने राष्ट्रभाषा प्रचार मंडलमें निःशुल्क पत्नी सहित पढ़ाया था। आरम्भमें मण्डल सभी दृष्टियोंसे निम्न था पर अब उच्च है। आपने दिगम्बर जैन पत्रोंके साथ कुछ श्वेताम्बर पत्रोंमें भी लिखा। आपने गजरथ विरोध, मरणभोज, पर्दा प्रथा, दस्सापूजाधिकार मुनिभेषियोंका बहिष्कार जैसे आन्दोलन किये। सूरतमें आपका नागरिक अभिनन्दन किया गया। शिवपुरीमें जो प्रतिष्ठा हुई, विद्वत्परिषदका रजत जयन्ती उत्सव मना, उसके स्रोत आप हैं। वर्त्तमानमें आप जैनेन्द्र प्रेसके संचालक व वीर पत्रके सम्पादक हैं।

पण्डितजीने लगभग बीस पुस्तकें लिखी है उनमे जैनधर्मकी उदारता एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। अन्य पुस्तकोंमेंसे कुछके नाम ये है—चर्चासागर समीक्षा, ज्ञानविचार समीक्षा, विजातीय विवाह मीमांसा, मरणभोज, पद्मनन्दी श्रावकाचार, परमेष्ठी-पद्यावली, चारुदत्त चरित्र, सुधर्म श्रावकाचार, दस्साओंका पूजाधिकार। आपके अनूदित ग्रन्थोंमें समयसार, प्रवचनसार, मोक्षशास्त्र, मूलमें भूल, मुक्तिका मार्ग है। सम्पादित ग्रन्थ वत्सल जीवन गाथा है।

आप जैनसमाजके एक आदर्श समालोचक है। प०जीका शास्त्रीय ज्ञान अगाध-विपुल है। आपकी समीक्षाका ढंग वैज्ञानिक है। पण्डितजीके ग्रन्थोंने आलोचनात्मक साहित्यके अभावकी पूर्ति की है।

राष्ट्रसेवा—सूरतमें आपने राष्ट्रभाषा प्रचारक मडल की स्थापना की थी और कई हजार लोगोंका हिन्दीका ज्ञान कराया था।

पं० परमेष्ठीदासजीने देशके स्वतंत्रता आन्दोलनमें सपत्नीक सक्रिय भाग लिया और सपत्नीक जेल यात्रा की। दोनों ही सरकार द्वारा ताम्रयुक्त तथा सन्माननिधि से सम्मानित है।

दिगम्बर जैन मुनिके अप्रतिहत विहारके सम्बन्धमे प० जी महात्मा गाधीमे मिले और मुनिचर्या पर पर्याप्त चर्चा की। जिससे महात्मा जी प्रभावित हुए, और उन्होंने प्रकाशित करवाया कि ऐसे उच्चकोटिके दिगम्बर जैन साधुओंको कहीं भी नही रोका जाये।

वीर निर्माण भारती द्वारा आप स्वर्णपदक, २५००) तथा 'समाजरत्नकी उपाधिमे सम्मानित हैं।

पं० शिखरचन्द्रजी प्रतिष्ठाचार्य

प्रतिष्ठा कारकके रूपमें पंडितजीका नाम अग्रणी है। पिता श्री फुलजारीलाल जैन एवं माता श्रीमती कौंसादेवीने शुभ सं० १९७४ भाद्र मासकी कृष्णाष्टमीके दिन आपको जन्म दिया था। प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम–बछरौली (अमाइन) में की थी। पुनः श्री गोपाल दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेनामें विशारद तक धार्मिक अध्ययन एवं पं० झम्मनलालजीसे पाँच वर्ष तक प्रतिष्ठा आदिका ज्ञान प्राप्त किया।

आपके पिताजी सप्तम प्रतिमा धारी थे जो सं० २०२४ में समाधिमरण पूर्वक परलोक सिधारे। माताजी धर्मध्यानमें लीन अब भी सप्तम प्रतिमाको धारण किये हुए जीवन यापन कर रही हैं।

प्रारम्भमें आर्थिकोपार्जनका साधन—कपडे और घीकी दुकानदारी जो ३२ वर्ष की आयु तक किया। तत्पश्चात् प्रतिष्ठाका ज्ञान लेकर इस ओर प्रवृत्त हुए।

सामाजिक सेवा एवं यश प्राप्ति

अभी तक आपने चौवीस बिम्ब प्रतिष्ठायें, ८२ बार श्री सिद्धचक्र महामण्डल विधान, तीन बार इन्द्रध्वज विधान, ३६ वेदी प्रतिष्ठायें, सात मानस्तम्भ प्रतिष्ठायें, चार बार त्रैलोक मंडल विधान और अनेकानेक विधि विधान सम्पन्न कराये। सन् १९६० में पंचकल्याण प्रतिष्ठा पानीपत (पंजाब) में अनेक विद्वत्जनोंके समक्ष अभिनन्दन पत्र एवं 'वाणी भूषण' की उपाधि प्राप्त हुई। इसके अलावा आपको १९६९ में रहली (पटनागंज) जिला-सागर (म० प्र०) के गजरथ-महोत्सव पर 'प्रतिष्ठा दिवाकर' की उपाधिसे सम्मानित किया गया। जहाँ-जहाँ भी आप पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें कराने गये आपके प्रभावक व्यक्ति, विशद ज्ञान और जैन-सिद्धान्तानुसार धार्मिक क्रियाओंसे युक्त साविधि विधान करानेकी दक्षतामें निपुणता की वजहसे अभिनन्दन पत्र एवं अन्य सम्मान जनक पुरस्कार प्राप्त होते रहे। दिल्ली, वाराणसी, जबलपुर, नागपुर, भागलपुर, फीरोजाबाद आदि जैसे नगरोंकी जैन समाजने आपको अभिनन्दन पत्र भेंट किये।

आपके जीवनमें इष्ट वियोगका अवश्य ही मार्मिक कष्ट रहा। चार पुत्रोंका वियोग होकर निःसंतान रहना पड़ा परन्तु संसारकी असारता पर चिन्तवन करके आपने इसको सहन किया और कहा कि ज्ञानीको यह सकट नहीं मानना चाहिए।

आपने अपनी प्रतिष्ठाओंके माध्यमसे समाजमें व्याप्त कई अनर्गल रूढियोंको समाप्त किया तथा दहेज जैसे कलंकके उन्मूलनमें आपने बड़ी शक्ति लगायी। समाजको नवीन दृष्टि और नयी दिशाके लिए हमेशा प्रयासवन्त रहते हैं। आपका अधिक समय धार्मिक एवं संयम-नियमपूर्वक व्यतीत होता है।

●

डॉ० दरबारीलालजी कोठिया न्यायाचार्य

जन्म स्थान

सोंरई (ललितपुर) उ०प्र० सन् १९१३।

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा महावीर जैन विद्यालय, साढ़ूमलमें प्रवेशिका और विशारद करनेके बाद स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीसे सिद्धान्तशास्त्री, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज वाराणसीसे न्यायाचार्य तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे शास्त्राचार्य, एम० ए० तथा पी० एच-डी० की उपाधि ग्रहण की।

अध्यापन

१९३७ से ४० तक वीर विद्यालय-पपौरा (टीकमगढ) में अध्यापन कार्य करनेके बाद आप दो वर्ष ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुराके प्राचार्य और १९५० से ५७ तक समन्तभद्र संस्कृत-महाविद्यालय, दिल्लीके प्राचार्य रहे। तीन वर्ष दि० जैन कालेज बड़ौत (उ० प्र०) में प्राध्यापक रहे तत्पश्चात् १९६० से १९७८ तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालयमे प्राध्यापक एवं रीडर पद पर नियुक्त रहे। शोधात्मक कार्य—वीर सेवा मन्दिर, सरसावा सहारनपुरमे ८ वर्ष (१९४२-५०) तक किया।

सम्पादन कृतियाँ

न्यायदीपिका, आप्तपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, स्याद्वादसिद्धि, प्रमाण प्रमेय कलिका, अध्यात्म कमल मार्तण्ड, शासन चतुस्त्रिंशिका, श्रीपुर, पार्श्वनाथ, प्राकृतपद्यानुक्रमणी ग्रन्थोंका सम्पादन किया।

सेवा-प्रवृत्तियाँ

आप अखिल भा० व० दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्के अध्यक्ष, श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला वाराणसी तथा वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट वाराणसीके ऑनरेरी मंत्री, स्याद्वाद महाविद्यालयमे उपअधिष्ठाता, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली (बिहार) तथा बिहार तीर्थक्षेत्र कमेटी राजगिरिके सदस्य हैं।

सम्मान

वीर निर्वाण भारती द्वारा २५००) की सम्मान निधि एवं स्वर्ण पदकसे सम्मानित एवं पुरस्कृत हुए।

जैन समाजके गणमान्य विद्वानोंमें आपकी प्रतिष्ठा है।

पं० विमलकुमारजी जैन सौंरया

●

एक मिलनसार व्यक्तित्व, सामाजिक कार्यकर्त्ता तथा जैनधर्मके प्रति परम अनुरागी पंडित श्री विमलकुमार जैन सोंरया एम. ए., शास्त्री अपने उपनाम 'सोंरयाजी' के नामसे भारतवर्षके प्रायः सभी प्रमुख पण्डित वर्ग एवं विद्वानोंके समुदायमें भली-भाँति जाने जाते हैं। वंश परम्परासे ज्ञान और समाज-सेवाकी निधि मिली है। अपने विद्यार्थी जीवनमें जब आप जैन गुरुकुल अयोध्या-में हाई स्कूलके छात्र थे आपने वहाँ एक वृद्ध पुस्तकालयकी स्थापना एवं संयोजनका उत्तरदायित्व लेकर अपनी प्रतिभाका परिचय देना प्रारम्भ कर दिया था।

मंदिरोंकी नगरी मड़ावरा (जिला-ललितपुर) उ० प्र० में सन् १९४०, १८ जनवरीको सोंरया वंशमें परवार जातिमें समुत्पन्न हुए। आपके पिता श्री गुलझारीलालजीने शिशु विमलकुमारका श्री विमलसागर महाराजके आशीर्वादसे नामकरण किया था।

बचपनमें पिता श्रीका वियोग सहना पड़ा जब आपकी आयु ४ वर्षकी थी। जिससे सम्पूर्ण दायित्व आपके चाचा प्रज्ञाचक्षु प० जम्बूप्रसादजी शास्त्री पर आ पडा। उनके विचारों और संस्कारोंका प्रभाव भी आप पर पड़ा। पुस्तकीय ज्ञानके साथ आचरणकी शिक्षा आपको अपने चाचाके आदर्श जीवनसे प्राप्त हुई।

प्रारम्भिक शिक्षा

प्राथमिक शिक्षा मड़ावरा पश्चात् हाईस्कूल जैन गुरुकुल अयोध्या तथा बी०ए० डिग्री कालेज टीकमगढ़से करनेके पश्चात् स्वाध्यायी रूपसे एम० ए० (हिन्दी) तथा शास्त्री (जैनधर्म), बी० टी० की परीक्षाएँ पास की।

धार्मिक जागरणमें

आप न केवल एक सुन्दर वक्ता हैं। अपितु विधि विधानोंके सम्यक् ज्ञाता हैं। आपने निस्पृह भावना और धर्म प्रभावनाके उद्देश्यसे पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, मंदिर एवं वेदी प्रतिष्ठा तथा सिद्ध चक्रादि विधान एक प्रतिष्ठाचार्यके रूपमें सम्पन्न करवाये और इस प्रभावनासे अभिभूत होकर विभिन्न स्थानोंकी जैन समाजने आपको अभिनन्दन भी भेंट किये।

सामाजिक सेवामें अग्रणी

विगत १५ वर्षोंसे आप कई तीर्थक्षेत्रों, धार्मिक शिक्षण संस्थाओं, परिषदों तथा मण्डलोंके अध्यक्ष, मंत्री तथा सदस्य आदिके रूपमें कार्यरत रहे। वर्तमानमें आप भारतवर्षकी सुमान्य दि० जैन शास्त्रि परिषद-के संयुक्त मंत्री, श्री बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषदके संस्थापक एवं वर्तमान कमेटीके मंत्री, अतिशय क्षेत्र बंधा जी (टीकमगढ) के भू० पू० मंत्री, दि० जैन अतिशय क्षेत्र मदनपुरके संस्थापक अधिष्ठाता, स्वामी समन्तभद्र सरस्वती सदन मड़ावराके संचालक तथा अन्य क्षेत्रगत संस्थाओंके पदाधिकारी है। आप क्षेत्रीय, जिला, सम्भाग, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय स्तर पर निर्मित भ० महावीर निर्वाण महो० समितिके सदस्य तथा पदाधिकारी भी रहे। इन सभी उत्तरदायित्व कार्योंके निर्वाहनमें आपकी विशिष्ट सूझबूझ तथा लगन साध्य श्रम ही है जिसने इतनी कम उम्रमे बड़े कार्योंके संयोजनोंका भार सौंपा है। मदनपुर क्षेत्र अत्यन्त जंगल पर्वतोंके

बीच गुमनाम १०वीं शताब्दीका कलापूर्ण केन्द्र है जिसके उन्नायक और प्रकाश स्तम्भ आप हैं और आपकी अनवरत सेवाओंने यहाँ ५ वर्षके अन्दर लगभग ५० हजार रु० का जीर्णोद्धार कार्य करवा दिया।

आपका संकल्प अटूट है। स्वामी समन्तभद्र सरस्वती प्रकाशन हेतु आपने एक वर्द्धमान प्रेसकी स्थापना मड़ावरामें की। आपकी भावना एक ऐसे सुदृढ विचारों वाली पाक्षिक पत्रिकाके निकालनेका है जिससे शुद्ध दिगम्बर आम्नायकी सांगोपांग रक्षा हो सके और पूर्वानुवर्ती आचार्योंकी वाणीकी सुरक्षा बनी रहे।

सामाजिक सेवाके सन्दर्भमें आपका करुणा-हृदय गरीब ग्रामीण जनताके प्रति इतना दयार्द्र हो उठा कि आपने निस्पृह भावना गत १० वर्षसे औषधि-दानके रूपमें रोगियोंकी सेवा शुश्रूषा जैसे सत्कार्यको दैनिक जीवनका अंग बना लिया।

सामाजिक सेवा करते हुए आपका गाम्भीर्य व्यक्तित्व और वचन पटुतासे कोई भी अपरिचित प्रभावित हुए बिना नहीं रहता और सहज आपका होकर बन जाता है।

साहित्यिक चेतनाके चेती

मुनि और आचार्योंके परिचयकी पुस्तिका 'परिचयमाला' तीर्थराज अयोध्या, 'आदर्श वाणी' चातुर्मास, बंधा वैभव, वर्णी वचनामृत, कलातीर्थ मदनपुर आदि पुस्तकोंके लेखक। बुधजन सतसईके टीकाकार जो ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है तथा इस विशाल काय विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थके संयोजक तथा प्रधान सम्पादक। शताधिक लेखों और गीतोंके रचयिता, अनेक ग्रन्थोंके सम्पादक तथा भूमिका लेखकके रूपमें जाने माने लेखक हैं। 'जैन संस्कृति' मासिक पत्रिका मथुराके भूतपूर्व सम्पादक, सम्प्रति—आप बुन्देलखण्डके जैनतीर्थोंका सांस्कृतिक अध्ययनपर शोधकार्यमें संलग्न हैं।

आप शासकीय सेवा (शिक्षा विभाग-म० प्र०) में हैं। वर्तमान पता—वर्द्धमान प्रेस मड़ावरा (ललितपुर) उ० प्र०।

तृतीय खण्ड

जैन विद्वानों, जैन निष्णातों, जैन साहित्यकारों एवं कवियोंका वर्णमाला क्रमानुसार परिचय

स्व० पंडित प्रवर अम्बादासजी शास्त्री

पंडित अम्बादासजी शास्त्री, जिन पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णीके गुरु होनेके नाते जैन समाजके गुरु थे, उनकी सहिष्णुताके सम्बन्धमें वर्णीजीने अपनी जीवन गाथामें लिखा है—

आजसे ६० वर्ष पूर्ण बनारसके ब्राह्मण विद्वानोंमें इतना अधिक साम्प्रदायिक विद्वेष था कि कोई भी अजैन विद्वान् जैन छात्रोंको पढ़ानेके लिए तैयार न था। उस समय एक जैन छात्र (स्वयं वर्णीजी) को न्याय पढ़ानेका उपक्रम करके पूज्य पंडित अम्बादासजी शास्त्रीने अपने सम्प्रदायातीत महान् साहसका परिचय दिया था। बनारसमें स्याद्वाद विद्यालयकी स्थापनाके पश्चात्—आप अपने जीवनके अन्तिम समय तक न्याया-ध्यापककी गद्दीपर आसीन थे। अपने अध्यापन-कालमें अनेकों बार आपको ब्राह्मण विद्वानोंका कोप-भाजन बनना पड़ा परन्तु आप अन्त तक जैन छात्रोंको प्रेमसे जैन न्यायके ग्रन्थोंको पढ़ाते रहे।

पंडित हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री ब्यावरने आपकी सहृदयताका जो उदाहरण दिया है, वह अपने-में एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म जैसा है। उसे संक्षेपमें यों पढ़िये—

१७ जुलाई १९२४ को पं० हीरालालजीने स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसके धर्माध्यापकका पद सम्हाला और कुशलता पूर्वक कार्य करने लगे पर उनके बाल साथी, जो विघ्नसन्तोषी स्वभावके थे, उनके विरुद्ध शिकायती पत्र लिखकर अधिकारियोंको भड़काने लगे। ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी (जो विद्यालयके अधिष्ठाता थे) का पंडित अम्बादासजीके पास इस आशयका एक पत्र आया कि वे नवीन धर्माध्यापकके अध्यापन कार्यके सम्बन्धमें समुचित जानकारी दें। पंडितजी पत्र पाकर आगबबूला हुए और बाबू पन्ना-लालजी चौधरीसे बोले—'अधिष्ठाताको लिख दो। जो व्यक्ति मेरी बराबरीपर बैठकर निर्भयता पूर्वक अनेक उच्च ग्रन्थोंके पाठ लगातार चार-चार घण्टे तक महीनोंसे पढ़ाता आ रहा है, उसकी परीक्षा करनेके लिये लिखना उसका नही प्रत्युत मेरा अपमान करना है।'

यद्यपि पं० हीरालालजीका पं० अम्बादासजीसे विशेष तो क्या सामान्य परिचय भी नही था। पर चूँकि वे गणेशप्रसादजी वर्णीके गुरु थे। इतना भर जानते थे पर गुरूणां गुरुका हृदय अपने सहयोगीके प्रति इतना अधिक सहृदय है यह बात पं० जी कदापि नही जानते थे। बन्धुके वियोगके बाद जब पं० जी पुनः शास्त्रीजीसे मिलने गये तो उन्होंने सान्त्वना ही नही दी बल्कि अकारण वह वत्सलता बताई कि पंडितजी श्रद्धासे भरे उनके चरणोंमें झुक गये।

सजीव संस्था अर्जुनलालजी सेठी

जैसे लोकमान्य तिलकने अंग्रेजी व मराठी पढे लिखे लोगोंको राजनीतिका शौक दिलाया और महात्मा गाँधीजीने राजनीतिको जन साधारण तक पहुँचाया वैसे ही गुरुवर्य गोपालदास बरैयाने जैनधर्मका शौक जैन समाजको पुनः दिलाया और उसे बच्चों तक अर्जुनलाल सेठीने पहुँचाया।

आपने फारसी लेकर बी० ए० किया था और जैनधर्मका अध्ययन अतीव लगन पूर्वक किया था। आप हृदयसे उदार थे। प्राप्त ज्ञानके वितरणके इच्छुक थे। अतः चीसीलालजी गोलेछाके साथ जैन शिक्षा

प्रसार समितिकी स्थापना की । इस समितिने सर्वप्रथम जयपुरमें धार्मिक पाठशाला खोली बादमें अन्य स्थानों पर । जब छात्र-छात्राओंकी संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ी तब छात्रावास भी दोनोंके लिए बने । समिति ने जैनधर्म विषय स्वतन्त्र पाठ्य क्रम तैयार किया । समितिके तत्त्वावधानमें लिखे बालबोध जैनधर्मके भाग आज भी पाँच दशकों बाद भी पढ़ाये जा रहे हैं । समितिका अपना परीक्षालय था । वह विद्यापीठ बन गई थी । उसमें प्रवेशके लिए किसी भी धर्म या जातिका बन्धन नही था पर जैनधर्मके अध्ययनका अनिवार्य अपरिहार्य प्रतिबन्ध था । समिति जैनसे आगे जैनेतर तक बढ़ रही थी ।

सेठीजीने जैनधर्मके ग्रन्थोंको स्वाध्याय तक सीमित नही रखकर दैनिक जीवनके प्रतिक्षणमें उतरता देखना चाहा था । वे जैन साहित्यको कथाकी विधाके रूपमें टालना चाहते थे पर उनकी संस्था ही महात्मा भगवानदीनके शब्दोंमें वीरताके साथ जनमी और वीरताके साथ मर गई, पर वह सेठीजीको अमर कर गई । धर्म मूढताका दोष उनके सिरपर कभी नही मढ़ा जा सकता । कारण, धर्म-मूढ़ अज्ञानी स्वार्थी नामके लोलुप होते हैं । महात्मा भगवानदीनको धर्म पुरुष बनानेका श्रेय जहाँ सेठीजीको है वहाँ ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमकी बुनियादमें भी उनका वरदहस्त रहा । वे गुलामोंको अपने नामके आगे जैन जोडते हुए नही देखना चाहते थे । कारण, जैन तो जितेन्द्रिय-स्वतन्त्र होता है । सेठीजी सही अर्थोंमें महावीरके सिपाही थे ।

सेठीजी जहाँ गम्भीर तत्त्वज्ञानी और शिक्षा प्रसारक थे वहाँ सुयोग्य साहित्यकार और बढ़िया वक्ता तथा देशभ त भी थे । कृष्णलालजी वर्मा बम्बईके शब्दोंमें उनकी एक एक कृतिकी अपनी कहानी थी । उनका मानवीय जीवन नवरसोंसे परिपूर्ण एक अद्वितीय ग्रन्थ था । किसी भी श्रेष्ठ साहित्यिक नाटकके नायक हो सकते थे । उनके जीवनमें वीरता और विनोद, त्याग और तपकी भावनायें मुखरित हुई । सेठीजी के साहित्य निर्माणका उद्देश्य शिक्षा प्रचार या समाज-सुधार सुस्पष्टतया समझा जा सकता है । उनके साहित्यकी संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत पंक्तियोंमें इस प्रकार दी जा सकेगी—

१. प्रात' सन्ध्याकालीन प्रार्थनाएँ—जो आज भी सारे दिगम्बर जैन समाजमें प्रचलित हैं ।

२. महेन्द्रकुमार नाटक—जयपुरमें अभिनीत हुआ था । इसमे कृष्णलालजी वर्माने भी एक पात्र का अभिनय किया था । इससे धर्मान्ध व्यक्ति चिढ़ गये थे, कारण—उनके पापोंका पर्दाफाश हुआ था पर तूफान शान्त करनेमें जैन शिक्षा प्रचारक समिति जयपुर और जैन छात्रावासके विद्यार्थियोने बडा सहयोग दिया था । फिर तो कई बार नाटक खेला गया । इस नाटकने उन्हें यशके साथ अपयशका अन्धकारमय भविष्य भी दिया ।

३. धर्मपाल नाटक—खेले जानेपर ऊधम हुआ । इसमें भी दम्भीजनोंकी पोल खोली गई थी ।

४. चिमन विलास—में सेठीजी द्वारा बनाये गये सामयिक गीतों-भजनोंका सकलन है ।

५. पार्श्वयज्ञ—वह पूजाकी पुस्तक है जो सेठीजीने देशभक्त बनकर जेलके सीकचोंमें बन्द होकर लिखी थी । इसमें प्रत्येक आत्माको परमात्मा बननेका अधिकारी बतलाया गया । इसमें उन्होंने हिन्दू मुसलमान सिख गुरुओंको भी स्मरण किया ।

६. स्त्री-मुक्ति और शूद्रमुक्ति जैसे निबन्ध भी लिखे ।

सेठीजीके समग्र साहित्यका सिंहावलोकन करनेके पश्चात् यह कहा जा सकता है कि उनका साहित्य सामयिक था, उसमें समाजके यथार्थ जीवनका चित्रण था । अन्तिम दिनोंमें वे दिगम्बर धर्मकी मान्यताओंसे कुछ विमुख भी हो गये थे (शायद ऐसा समाज द्वारा उपेक्षाके कारण हुआ होगा ।)

सेठीजी वाणीके भूषण थे । उनके व्याख्यानमें अपार भीड होती थी । कृष्णलालजी वर्माके शब्दोंमें उनके व्याख्यान संकलित सम्पादित होकर प्रकाशित होते तो वे स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थके व्याख्यानों

के समकक्ष ही होते । पत्र लिखनेमें भी सेठीजी अतीव सिद्ध हस्त थे । जान्सनके शब्दोंमें पत्र लिखनेकी कला में वे एक ही थे । एक सेठको लिखे गये पत्रकी पंक्तियाँ आज भी संस्थाओंके संचालकोंको प्रेरणास्पद लगेंगी ।

"मेरे बोर्डिंगके छात्र जैन हैं और आप भी जैन हैं । इस नाते आप साधर्मी हैं । बोर्डिंग वासी बालक हैं और आप बालकोंके पिता हैं । बालक क्या अपने पितासे कुछ पानेके अधिकारी नही है ? आपका बाग आमोंसे भरा है उनमेसे सैकडों आम पक्षी खाते होंगे, गलते-सडते होंगे, अन्यान्य लोगोंके पेटों-जेबोंमें जाते होंगे । मेरे बच्चोको आमोंके दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं । मुझ गरीबके पास पैसा कहाँ कि खरीदकर उन्हे खिलाऊं । क्या कुछ आम मेरे बच्चोंके लिए" 'नही मैंने तो बच्चोंमे कह दिया है ''' से आम अगले हफ्ते आ जायेंगे । आपके भरोसे हूँ ।"

उन्होंने वर्द्धमान जैन विद्यालयमें बढिया पुस्तकालय स्थापित किया था पर जब वे जेल गये तब यह पुस्तकालय भी किसी जेलमे चला गया । सेठीजीकी राजनीतिक सेवाओंपर उनकी धार्मिक-सामाजिक सेवाओं का बलिदान समुचित नही हैं । अपने युगमें धर्म और समाजके अभ्युत्थानके लिए उन्होने जो कुछ किया वह आज भी समाजके लिए उल्लेखनीय है ।

●

स्व० पं० अजितप्रसादजी एडवोकेट

●

पंडित अजितप्रसादजी एडवोकेटका जन्म सन् १८७४ में हुआ था । आपके पिता श्री देवीप्रसादजी बड़े दूरदर्शी व धार्मिक पुरुष थे । उन्होंने १८८९ में जैनधर्म प्रवर्धनी सभा लखनऊमे स्थापित की थी । इसी वर्ष रथोत्सवमे १५ वर्षीय बालक अजितप्रसादने वह भाषण दिया था जो उसके उज्ज्वल भविष्यका द्योतक था । यह भाषण छपा व बँटा भी था ।

जब १९०३ मे आप ब्र० शीतलप्रसादजीके सम्पर्कमें आये तब आपके व्यक्तित्व और कृतित्वमें एक नवीन ही निखार आया । आपने विमल विचार शीर्षकसे शान्ति पाठ और सामायिक पाठका भावानुवाद प्रस्तुत किया । आपने मोक्षमार्गस्य नेतारं "सत्वेषु मैत्री''''जैसे पद्योका उर्दू भाषामें अनुवाद किया । क्षमा-वाणी विषयक भावोंका अंगरेजीमे गुम्फन किया । सन् १९१३ में जब आपके परममित्र जे० एल० जैनी लन्दन गये तब वे अपना मानस पुत्र जैन गजट आपको सौंप गये जिसका आपने दीर्घकाल तक सम्पादन किया । सन् १९२२ में आपने मित्र देवेन्द्रप्रसादजीको स्मृतिमें देवेन्द्र पत्र निकाला । उसमें मित्रका चरित्र लिखा । ब्र० शीतलप्रसादजीके साथ वर्षों रहे, प्रभावित हुए, उनका भी जीवन चरित्र लिखना चाह रहे थे ।

आप एक उदासीन कर्मयोगी विद्वान् थे ।

●

स्व० डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये

आजके युगमें मौलिक ग्रन्थोंके सृजनके साथ ही प्राचीन ग्रन्थोंका भी विधिवत् वैज्ञानिक ढंगसे सम्पादित होना भी महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा है। सम्पादन क्रिया स्वय अपनेमें एक नित नवीन कला बनी है। डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये एक ऐसे ही श्रेष्ठ साहित्यकार थे जो प्रतिष्ठा और प्रदर्शनसे दूर रहकर सरस्वतीकी आराधनामें लगे रहे। आप प्राकृत, पाली, सस्कृत और अपभ्रंशके जहाँ अधिकारी विद्वान् थे वहाँ कन्नड, मराठी, अँग्रेजी भाषाओंके सुप्रयोक्ता भी। आपकी विद्वत्ता और सूझबूझका लोहा सभी मानते थे। आप जो कुछ भी लिखते थे वह साधार औरअनुभव गम्भीर चिन्तन प्रधान लिखते थे। डा० वासुदेवशरण अग्रवालके शब्दोंमें आप निष्काम भावसे स्वान्तःसुखाय ही लिखते थे।

सरस्वतीके सुपुत्र डा० उपाध्येका जन्म छः फरवरीको सन् १९०६ में सदलगा (बेलगाँव) ग्राममें हुआ था। गाँवका प्रारम्भिक शिक्षण समाप्त करके आपने के० जी० ए० हाई स्कूलसे मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९२८ में संस्कृत आनर्स बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९३० में प्राकृत संस्कृत विषय लेकर प्रथम श्रेणीमें स्नातकोत्तर एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् १९३९ में बम्बई विश्वविद्यालयसे आप डी० लिट्० हुए। सन् १९३९-४२ तक आपको विश्वविद्यालय बम्बईसे शोध छात्रवृत्ति भी दी गई।

राजाराम कालेज कोल्हापुरमें आपने प्राध्यापक बनकर ३२ वर्षों तक सहस्रों छात्रोंको पढाया। सन् १९४१ में ३५ वर्षकी अल्प आयुमें ही आप अखिल भारतीय प्राच्य परिषद्के अध्यक्ष चुने गये थे। दिवंगत राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद द्वारा गठित प्राकृत टेक्स्ट सोसायटीके आप सम्माननीय सदस्य थे। यद्यपि आप महाराष्ट्र सरकारकी ओरसे सन् १९६२ से सेवा निवृत्त हो चुके थे पर आपकी विद्वत्तासे प्रभावित होकर विश्वविद्यालय अनुदान आयोगने आपको विशेष आर्थिक सहयोग प्रदानकर प्राकृतमे और अधिक अनुसंधान कार्य करते रहनेका आग्रह किया।

आपने पचसत्तम, प्रवचनसार, परमात्मप्रकाश, वरागचरित्र, प्राकृत व्याकरण, नियमसार, धर्म परीक्षा, कंसवहो, उषानिरुद्धं, तिल्लोयपण्णत्ति, बृहत् कथाकोष, धूर्ताख्यान, चन्द्रलेखा, लीलावती, आनन्द सुन्दरी, कार्तिकेयानुप्रेक्खा, कुवलयमाला, जम्बूद्वीपपण्णत्ति, कथाकोष आदि ग्रन्थ नवीन भाषा शैली की विधा लिए सम्पादित किये। आपने ५६ पुस्तकोंकी विद्वत्तापूर्ण समीक्षायें लिखी और लगभग १०० शोधपूर्ण निबन्ध भी।

यों तो साँवला रंग, भारी शरीर, ठिगना कद, स्वभावसे सरल, विद्वत्ता और विनम्रताके प्रतिनिधि आप स्वयं एक सजीव संस्था थे पर आपने जीवराज ग्रन्थमाला सोलापुर, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द्र ग्रन्थमाला विदिशा, वैशाली इन्स्टीट्यूट बिहार, विश्वेश्वरानन्द वेदी रिसर्च-इन्स्टीट्यूट पजाब, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी वाराणसी, ओरियंटल इन्स्टीट्यूट बडौदाके कार्योंको गति मति दी थी। आप गया, बम्बई, पूना, नागपुर विश्वविद्यालयोंके बोर्ड आफ स्टडीजके सम्मानित सदस्य भी रहे हैं।

डा० उपाध्येके व्यक्तित्वमें प्राच्य व पाश्चात्य विद्वान्का एक अद्भुत सम्मिश्रण था। आप ज्ञानकी दिशाके एक ही श्रमिक थे। जैन साहित्य व संस्कृतिके विकास तथा पुनरुद्धारके लिए आपने जो कार्य किया वह न केवल जैन समाजके इतिहासमें बल्कि भारतीय इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित किये जाने योग्य है। जैन सिद्धान्त भास्कर जैसा शोध प्रधान पत्र तो आपकी रचनाओंके लिए वैसे ही लालायित रहा जैसे चातक स्वाति नक्षत्रकी एक बूंदके लिए आतुर रहता है।

●

स्व० अयोध्याप्रसाद्जी गोयलीय

●

मँझोला कद, कसरती देह, गेहुआ रंग, गठे हुए अवयव, भरी हुई सजग मुखाकृति, विरलश्मश्रु, वाणीमें ओज, शैलीमें गम्भीरता, निरालापन और शिष्ट ढंग वाले गोयलीयजीका व्यक्तित्व आकर्षक है, कृतित्व भावुक है।

गोयलीयजीने जैन समाजमें जो जागृतिका शंखनाद फूंका वह सभीको विदित है। आपने वर्षों तक सफलता पूर्वक 'वीर' और 'अनेकान्त'का सम्पादन किया।

अपनी सहज कुशाग्रबुद्धि लिए, नैसर्गिक अध्यवसाय और अनुशीलन लिये आपने जीवनके विद्यालयमें वह शिक्षा प्राप्त की, जिसे विरले ही प्राप्त कर पाते हैं। आपने कथा, कविता, नाटक, निबन्धकी विधाओंमें लिखा। 'दास' उपनामसे लिखी गई हिन्दी-उर्दू कविताओंके संकलन प्रकाशमें आये। आप मौर्यकालीन इतिहासके जानकार विद्वान् थे।

यूरोपीय युद्धके दिनोंमें—राजपूतानेके जैन वीर, मौर्य साम्राज्यके जैन वीर, हमारा उत्थान और पतन पुस्तकें लिखकर सत्य सबके समक्ष रखा—अहिंसक कायर नहीं होता है। अपने अपूर्व ऐतिहासिक ज्ञानसे आपने अन्य इतिहासकारों द्वारा भी प्रशंसा पायी। गोयलीयजीकी लेखन शैली आकर्षक थी।

आपने अनेक छोटी-मोटी पुस्तकें लिखी। जिनमेंसे कुछके नाम ये हैं—कथा व संस्मरण, दासकुसुमार्जलि, विश्व प्रेम व सेवाधर्म, अहिंसा और कायरता, उजले पोश बदमाश आदि। आपकी कुछ प्रौढ पठनीय कृतिया भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हुई है, जिनमें जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ, शेरो व शायरी, शेरो-सुखन पाँच भाग, जैन जागरणके अग्रदूत मुख्य है। शेरो-शायरी पर उत्तर प्रदेश सरकारसे पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

गोयलीयजी एक स्वावलम्बी व्यक्ति थे। वे जीवन संघर्षमें जूझने वाले साहसी थे। गोयलीयजी जैसी कर्मवीरताकी चिनगारी हम सभीके हृदयोंमें हो तो फिर क्या पूछना? वर्षोंका काम मिनिटोंमें हो। गोयलीयजी सदा समाजके आदर पात्र रहे हैं।

●

स्व० श्री पंडित अजितकुमारजी शास्त्री

●

पंडितप्रवर अजितकुमारजी शास्त्रीका जन्म चावली (आगरा) उत्तरप्रदेशमे हुआ था। जब विक्रम संवत् १९५७ में माघ शुक्ला अष्टमीको पंडितजीका जन्म हुआ तब देश और समाज प्लेगके रोगसे दुखी हो रहा था। ढाई वर्षकी अवस्थामें माता-पिताके साथ सम्मेदशिखरकी यात्रा की थी। चूंकि शैशवकालमें ही आपको माता-पिताके सुखसे वंचित रहना पडा था अतएव आप बड़े भाई इन्द्रप्रसादजीके सरक्षण और दादी सीताबाईकी गोदमें क्रमश: बडे व खड़े हुए।

सात वर्षकी आयुसे आपने विद्या आरम्भ की। सन् १९१३ में, आप भा० दि० जैन महाविद्यालय चौरासी मथुरामें पढने लगे। चार वर्ष पढे। कुछ समय बनारस रहे, वहाँ पंडित राजेन्द्रकुमारजी और पंडित कैलाशचन्द्रजी जैसे मेधावी साथी मिले। आपने माणिकचन्द्र दि० जैन परीक्षालय बम्बईसे जहाँ शास्त्री परीक्षा पास की वहाँ राजकीय परीक्षा न्याय मध्यमा भी उत्तीर्ण की। न्यायतीर्थ परीक्षाकी तैयारी तो की पर देशव्यापी असहयोग आन्दोलनके कारण परीक्षा नही दी। सन् १९४४ में पंजाब विश्वविद्यालयसे प्रभाकर परीक्षा पास की और प्रवेशिका (मैट्रिक) परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

सन् १९२० से आप कार्यक्षेत्रमें आगे बढ़े। सर्वप्रथम भा० जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था कलकत्तामें छह माह कार्य किया। फिर दिगम्बर जैन सेतवाल महासभा बम्बईके ढाई वष तक व्यवस्थापक रहे। साथ ही जैन कुमार सभा बम्बईकी मुख पत्रिका जैन प्रभादर्श मासिकीका सम्पादन किया। दि० जैन खण्डेलवाल महासभाके पाक्षिक पत्र खण्डेलवाल जैन हितेच्छुके सम्पादनमें भी बिना नामके सहयोग दिया।

सन् १९२३में अक्षय तृतीयाको आपका विवाह हुआ। आपके चार पुत्र हुए, जिनमेंसे अरुणकुमार ही जीवित रहा और चार पुत्रिया हुईं। आप १९२४ मे मुलतान आकर बसे और अध्यापक बन गये। १९२५ में दुकानदार बने और १९३४ मे अकलक प्रेसकी नीव डाल दी। जब १६ जुलाई १९४७ को देशके विभाजनकी योजना बनी तब आपको भी मुलतान छोडकर सहारनपुर आना पडा। यहाँ लाला हुलासरायजीने आपको और मुद्रणालयको समुचित स्थान दिया। १० माह सहारनपुर रहे। चूँकि यहाँ प्रेसका व्यवसाय बखूबी नहीं जमा इसलिये सन् १९४८ में दिल्ली आ गये। अभय प्रेस सदर बाजारमें खोला और अहाता केदारमें आवास बनाया। जब एक दयामयी भूलसे सन् १९५० में प्रेससे स्वत्व जाता रहा तब आप चार वर्ष तक जैन गजटके वैतनिक सम्पादक रहे। सन् १९५६ में आपने पुन. प्रेस खोला। सन् १९६६ में आप महावीरजी आ गये यहाँके शान्त स्वच्छ वातावरणमें ही आपने अन्तिम सास ली और २० मईको आपका स्वर्गवास हो गया था।

सन् १९१८ में ब्र० ज्ञानानन्दजीकी प्रेरणासे 'मानव जीवनकी सफलता' निबन्ध लिखा था। प्रतिमा पूजन आपका विद्यार्थी जीवनमें लिखा गया वह पहला निबन्ध था जो पद्मावती पुरवाल (कलकत्ता) में प्रकाशित हुआ था। भा० दिग० जैन संघके मुखपत्र जैनदर्शनका आपने ९ वर्ष तक सम्पादन किया। फिर १ वर्ष तक सिद्धान्त सरक्षिणी सभाके जैनदर्शनका सम्पादन व प्रकाशन किया। जैन गजटका १९५० से १९६८ तक सम्पादन किया। १९६६ से शान्तिवीर नगर महावीरके श्रेयोमार्ग पत्रका भी सम्पादन किया।

आपने एक बहुत बडी संख्यामें पुस्तकें लिखी जिनमें सत्यार्थ दर्पण, सत्पथदर्पण, जैनधर्म परिचय, अनेकान्त परिचय, दैनिक जीवन चर्या, स्वास्थ्य विज्ञानके नाम उल्लेखनीय हैं। आपने कुछ ग्रन्थ ऐसे भी लिखे जिनपर नाम नही दिया। आपने पत्रोंके माध्यमसे लगभग छह सौ फर्मोंका मैटर लिखा। आपने १३०

छात्रों और ३० छात्राओंको पढ़ाया। आप अवैतनिक रूपसे पढ़ानेके पक्षमें थे। पर समाजके आग्रहसे नाम-मात्रका पारिश्रमिक ले लेते थे। आपने सन् १९४७ से ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया था।

पंडितजीका जीवन चरित्र आज भी प्रेरणादायक बना है। कुछ विशेषताएँ थी—१. आगराके कुलीने सारा सामान इधर-उधर कर ठग लिया था पर आप अमृतसरके कुलीको पैसे देनेके लिये तीन बार मुलतानसे अमृतसर गये थे। २. जब सच्चा कलाबत्तू खरीदने वाला मुसलमान १३७ रुपयो वाला बटुआ भूल गया तब आपने उसकी खोज कराई और बटुआ सौंप दिया। ३. आपने एकसे अधिक सस्थाओंकी सेवा की। ४ आप एकसे अधिक वर्षों तक शास्त्रि परिषद्के मंत्री रहे।

अन्य व्यक्तिको कष्ट न देकर, दुष्ट व्यक्तिके सामने नहीं झुकते हुए, सज्जनोंके मार्गपर चलते हुए आर्थिक लाभ थोड़ा हो तो वह भी बहुत समझना चाहिए।

संक्षेपमें पंडितजी अपूर्व अध्यवसायी और सहृदय व्यक्ति थे। वे सही अर्थोंमें मानव थे।

●

श्री अगरचन्दजी नाहटा

●

जब ख्याति प्राप्त साहित्यकारोंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है तो नाहटाजीका नाम हमारे ओठों तक बरबस आ ही जाता है। सरस्वतीके वाङ्मय मन्दिरमे अपनी निष्पृह और अनवरत साधना द्वारा लोकोत्तर साहित्य सृजन करनेवाले श्रीनाहटाजीका जन्म बीकानेरमें चैत्र वदी चतुर्थी संवत् १९६७में विद्वद्प्रसूता माँ श्रीमती चुन्नी बाईकी कुक्षिसे हुआ था।

पिता शंकरदानजी नाहटा समाजके उन रत्नोंमेंसे थे जिन्होंने समाजकी सेवामें नि:संकोच भावसे तन मन और धन अर्पणकर उसकी भरपूर उन्नति की। घर धनधान्य एवं हर तरहकी सुविधाओंसे भरापूरा था। घरके प्रायः सभी सदस्य विद्वान् अथच उदारहृदय थे। आपके बचपनको भविष्यमें उठाकर देखनेवाले लोगोंने सहज ही मे इतना अन्दाजा लगा लिया था कि बालक अपनी अथक साहित्य साधना द्वारा एक दिन माँ भारतीके भंडारको भर देगा। समय गुजरता गया, आपकी अनुपम प्रतिभा खिलती गई। लगभग २५वर्षकी उमरसे आपका अनवरत लेखन कार्य साहित्योद्धार करने हेतु इस ढंगसे प्रारम्भ हुआ कि देखनेवाले दंग रह गये।

गत चालीस वर्षोंके अनवरत परिश्रमके फलस्वरूप आपके द्वारा लिखित एवं सम्पादित ग्रंथोंकी संख्या चालीससे ऊपर हैं। लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओंमें आपके निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं। आपके द्वारा सम्पादित एवं लिखित ग्रंथोंमें 'विधवा कर्तव्य' राजस्थानमें हस्तलिखित ग्रंथोंकी खोज भाग २ एवं

भाग ४, जसवंत उद्योत, धर्मवर्द्धन ग्रंथावली, जिनराजसूरि कृत कुसुमांजलि, सभाशृंगार, जिन हर्ष ग्रन्थावलि, युग प्रधान जिनचन्द्रसूरि, जिनदत्तसूरि, दादा जिनकुशलसूरि, प्राचीन काव्यरूपोंकी परम्परा, ऐतिहासिक काव्य संग्रह, बीकानेर जैन लेख संग्रह, ज्ञानसार ग्रन्थावलि, वीर दानग्रंथावली, दम्पति विनोद, बीकानेरके दर्शनीय मन्दिर, राघवदासकी भक्तमाल, क्याम खाँ रासो, रत्नपरीक्षा, सीताराम चौपाई, छिताई चरित्र, रुक्मिणी हरण और बीसलदेव आदि अनेक ग्रन्थ कितने लोकप्रिय हुए।

इसके अलावा आपने लगभग १०० ग्रन्थोंकी भूमिकाएँ लिखी हैं तथा अगणित ग्रन्थोंकी अशुद्धियोंका निवारण किया है। आपने सूची निर्माण कार्य भी किया है। बृहद् खरतरगच्छ भंडारका उपासरा और बीकानेरके अन्दर करीब १० ज्ञानभंडारकी लगभग ११ हजार प्रतियोंकी सूची आपने तैयार की है। साथ ही अनेक हस्तलिखित प्रतियोंकी खोज की है।

सामाजिक कार्योंके रूपमें श्री अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर और राजस्थानी साहित्य परिषदोंका संचालन आपके द्वारा सुसम्पन्न हुआ है।

यद्यपि आपने समाज और साहित्यके लिए इतने अधिक कार्य किए है जिनका मूल्यांकन करना दुर्लभ है तथापि सम्मान स्वरूप समाज तथा संस्थाओं द्वारा समय समय पर आपको सिद्धान्ताचार्य, जैन इतिहास रत्न, विद्या वारिधि तथा पद्मभूषण आदि उपाधियोंसे विभूषित किया गया तथा भगवान् महावीर निर्वाण महोत्सव वर्षमे अभिनन्दन ग्रन्थसे आपका देश व्यापी सम्मान किया गया।

इस तरहसे आप एक चोटीके विद्वान्, अनन्य भारती भक्त एवं उच्चकोटिके साहित्यकार, अनेकों संस्थाओंके सस्थापक एव संचालक, पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक, उत्तम प्रवक्ता एवं समाजके कर्मठ सेवक है। समाज एवं साहित्य आपके ऋणके बोझसे सचमुच दब गया है।

●

पं० अमृतलालजी 'फणीन्द्र'

●

श्री अमृतलालजी 'फणीन्द्र' टीकमगढ स्टेट और झाँसी जिलेके प्रमुख जनप्रिय साहित्यिक और सुकवि है। आपकी कविताएँ, कहानी, एकाङ्की तथा लेख सार्वजनिक पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं। आपकी रचनाएँ मार्मिक और अग्निगर्भ हैं। आपकी 'विश्व क्रान्ति' (नाटक) और 'रैयतकी लड़ाई' (आल्हा) यह दो रचनाएँ शीघ्र ही प्रकाशित होकर पाठकोंके हाथमें पहुँचेंगी।

फणीन्द्रजी साहित्यिक ही नही, बल्कि एक उदीयमान राजनीतिक कार्यकर्ता भी हैं। आप ओरछा स्टेटके एम० एल० ए० तथा 'ओरछा-सेवा-संघ'के सहायक मंत्री हैं। आपसे साहित्य, समाज तथा देशको अनेक आशाएँ हैं।

●

पं० अमृतलालजी शास्त्री

●

श्री शास्त्रीजीका जन्म सात जुलाई १९१९ को उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलेमें वमराना नामक गाँवमें हुआ। जन्मके समय आपके पिता श्री बुद्धिसेनजीकी स्थिति सामान्य थी। वे स्व० स्वनामधन्य सेठ चन्द्रभानजी रईस-वमरानाके यहाँ प्रधान मुनीम थे। आप लगभग पाँच वर्षके थे तभी आपकी माता श्रीमती सोना देवी का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद थोड़े ही समयमें पिताश्री परलोक सिधार गये। आँगनमें अन्धकार छा गया। घरकी स्थिति विशेष शोचनीय हो गयी। परिवारमें दादी और दो बड़ी बहनोंके अतिरिक्त कोई नही था। आपका साधन समाप्त हो गया।

फिर भी स्व० सेठ श्री चन्द्रभानजीकी सुकृपासे आप लोगोंपर कोई आपत्ति नही आने पायी। बड़ी बहनका विवाह आपके पिताजी ही कर गये थे। छोटी बहन अविवाहिता थी। सेठजीने उनका विवाह किया तथा आपको पढ़ाया-लिखाया भी।

क्रमश. साढ़ूमल, बरुआसागर और ललितपुरमें अध्ययन कर आप श्री महा० दि० जैन पाठशाला साढ़ूमल पहुँचे। वहाँ आपने प्रवेशिका तृतीय खण्ड तक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् आपने जैन महा विद्यालय मोरेनामें विशारद द्वितीय खण्ड तक अध्यापन किया। फिर आप अध्ययनार्थ वाराणसी पहुँचे। जैन महाविद्यालय वाराणसीसे आपने न्यायतीर्थ और दर्शनाचार्यकी परीक्षाएँ पास की।

जैन दर्शनाचार्य परीक्षा पास करनेके उपरान्त आप सन् १९४४ से स्याद्वाद दिगम्बर जैन महा-विद्यालय वाराणसीमें अध्ययन कार्य करने लगे तथा क्वीन्स कालेजमें साहित्यका अध्ययन करने लगे। यद्यपि कि उस समय क्वीन्स कालेजमें जैन छात्रका प्रवेश वर्ज्य था तथापि डॉ० मंगलदेवकी कृपासे आपको वहाँ प्रवेश सुलभ हो गया। वहाँसे आपने साहित्याचार्य एवं रि० ट्रे० (प्रशिक्षण) की परीक्षाएँ पास की। इसके बाद आपने स्वाध्यायी परीक्षार्थीके रूपमें एम० ए० भी किया।

सन् १९५९ से आप वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसीमें जैन दर्शन विभागके व्याख्याता हैं। आरम्भसे ही आपकी रुचिका विषय जैनदर्शन तथा साहित्य रहा। आपने इन्हीं विषयोंको लेकर सतत आगे बढते रहनेका संकल्प-सा कर लिया है। लगभग ३० वर्षकी उम्रसे आपने लिखनेका समारम्भ किया था। आज भी आपका यह कार्य अपनी अनवरत साधनाके रूपमें बढता चला जा रहा है। आपने भक्तामर स्तोत्रम्, द्रव्य संग्रह, चन्द्रप्रभचरितम्, तत्त्वसंसिद्धि आदि ग्रंथोंका अनुवाद किया है। अनेकों ग्रंथोंका सम्पा-दन किया है। लगभग २० पत्रपत्रिकाओंमें आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती हैं। आपका संस्कृत भाषापर असाधारण अधिकार है।

जो रस आपकी कविताओंमे देखने तथा आस्वादन करनेको मिलता है वह अन्यत्र अलभ्य ही है।

इस तरहसे निःसंकोच भावसे यह कहा जा सकता है कि आप एक उच्चकोटिके विद्वान् एवं लासानी साहित्यकार हैं।

●

श्री आदीश्वरप्रसादजी जैन

जन्म

१५ अप्रैल सन् १९१९ में दिल्लीमें आपका जन्म हुआ। आपकी माताजीका नाम श्रीमती चम्पा देवी था। आपके पिता श्री उमरावसिंहजी उस समय उत्तर प्रदेश पंजाब नेशनल बैंकमें हेड क्लर्कका काम करते थे। आपके दादा श्री दीवानचन्दजी उत्तर प्रदेश P W. D में सब डिवीजनल आफीसरका कार्य करते थे। वे प्राय. दिल्लीकी समस्त दिगम्बर जैन संस्थाओंसे सबंधित थे। समाजमे उनका विशिष्ट स्थान था। ऐसे सुशिक्षित परिवारमे जन्म लेनेके फलस्वरूप आपमे बौद्धिक विकासका अंकुरण बचपनसे ही फूट निकला।

शिक्षा

पहलीसे आठवी कक्षा तक तथा धार्मिक परीक्षामें आपने प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके बाद हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएटमें भी आपको प्रथम श्रेणी मिली। बी० ए० तथा एम०ए० मे आप द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए फिर भी आपके अंक बहुत अच्छे रहे।

अर्थोपार्जन

अर्थोपार्जन हेतु आपने पंजाब नेशनल बैंक सदर बाजार दिल्लीमें क्लर्कके रूपमें ४०) मासिक वेतन से कार्य करना आरम्भ किया। आजकल आप संघ लोकसेवा आयोग नई दिल्लीमें १३००) मासिक वेतनपर कार्यरत हैं।

सामाजिक सेवायें

आपकी सामाजिक सेवायें अमूल्य हैं। सचमुच आपने संस्थाओंकी जितनी सेवा की उतनी सेवा एक साधारण व्यक्ति नही कर सकता। १९३० से ३३ तक जैन खद्दर प्रचारिणी सभा दिल्लीके बाल-विभागमें मंत्री रहे। १९४० से आप सोहनलाल बांकेराय जैन अकादमी दिल्लीके मन्त्री है। जैन धर्म प्रचारक संघ दिल्लीके मन्त्रीके रूपमे आपने सराहनीय कार्य किये। आप अ० भा० दि० जैन परिषद रजत अधिवेशन दिल्लीके प्रचार मन्त्री, जैनमित्र मण्डल धर्मपुर दिल्लीके मन्त्री तथा प्रधान मन्त्री, महावीर जयन्ती जलूस दिल्लीके प्रधान संचालक हैं। इन सबके अलावा इसी तरहकी और भी लगभग २० संस्थाओमे आप सम्बद्ध है। हर संस्थामें आपकी सेवायें मात्र औपचारिक रूपमें नही है अपितु आपकी सेवा भावना एवं कर्मठताका इतिहास अपना विशिष्ट स्थान लिए हुए हैं।

साहित्य क्षेत्र

यद्यपि आप बहुत अच्छा लिखते है किन्तु प्रमुख रूपसे आप साहित्यसृजनका कार्य नही करते, बल्कि सम्पादन कार्यको ही प्रधानता दिए हैं। आप Voice of Ahinsa अलीगज एटा, अमर साहित्य दिल्ली वीर रजत जयन्ती अंक भा० दि० जैन परिषद दिल्ली एवं वीर दिल्लीके संपादक मण्डलमें कार्यरत हैं।

व्यक्तित्व

आपका व्यक्तित्व नवनीत जैसा मृदुल है। सचमुच इतने प्रतिभावान होते हुए भी आपमें अभिमान नामकी वस्तु देखने तक को नही मिलती। आप सफल आम्र वृक्षकी तरह सदैव विनम्र ही रहते हैं। आपके व्यक्तित्वको देखकर यह आभास नही हो पाता कि अन्तरालमें ऐसी प्रखर प्रतिभा छिपी हुई है।

श्री अक्षयकुमार जैन

●

श्री अक्षयकुमारजीका जन्म विजयगढ़ (अलीगढ़) में ३० दिसम्बर १९१५ को हुआ था।

बी० ए० की परीक्षा सन् १९३७ में आपने होल्कर कालेज, इन्दौर द्वारा आगरा विश्वविद्यालयसे एव एल० एल० बी की परीक्षा सन् १९३९ में अलीगढ़ विश्वविद्यालयसे उत्तीर्ण की।

सन् १९४२ मे आपने स्वतन्त्रता आन्दोलनमे भाग लिया एव जेल यात्रा भी की। पत्रकारिताका आरम्भ सन् १९३९ से 'सैनिक' दैनिकसे आरम्भ किया। सन् १९४० में आप एटासे प्रकाशित 'सुदर्शन' साप्ताहिकके सम्पादक रहे। सन् १९४० से १९४६ तक कई निजी पत्रों एव अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्के मुखपत्र 'वीर'का सम्पादन किया। सन् १९४६ से आप 'नवभारत टाइम्स' दैनिकसे सम्बद्ध हैं। सन् १९५५ से आप इसके स्थानीय सम्पादक है।

दिसम्बर १९६४ से १९६७ तक दो बार आप अखिल भारतवर्षीय समाचार पत्र सम्पादक सम्मेलनके अध्यक्ष रहे। सन् १९६७ से प्रथम प्रेस कौंसिल आफ इण्डियाके आप आरम्भिक सदस्य हैं। अखिल भा० दि० जैन परिषद्के आप १९६७ से १९६८ तक अध्यक्ष रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस परिषद् के भी आप भारतकी ओर से सदस्य रहे हैं।

योरोप, अमेरिका, रूस, पोलैण्ड तथा पूर्वी योरोपके अनेक देशोंकी सरकारोंके निमन्त्रणपर आपने वहाँकी यात्रा की है। सन् १९६८ में स्व० श्री लालबहादुर शास्त्रीकी आवक्ष मूर्ति लेकर जो शिष्ट मंडल ताशकंद गया था उसके आप सदस्य थे। यह मूर्ति शास्त्रीजीके मृत्यु स्थलपर स्थापित की गई है।

२६ जनवरी, १९६८ को आपके लिए 'पद्म भूषण' की उपाधिकी घोषणा की गई और उसी वर्ष अप्रैलमें यह उपाधि आपको प्रदान की गई। किन्तु भारत सरकारकी हिन्दी विरोधी नीतिसे क्षुब्ध होकर दिसम्बर, १९६८ में हिन्दी आन्दोलनके अवसरपर यह उपाधि आपने सरकारको वापिस कर दी।

आप प्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार, वक्ता एवं सामाजिक व्यक्ति है। पत्रकारिताके क्षेत्रमें भारतके प्रमुख दैनिकके प्रधान सम्पादक होनेके अतिरिक्त आपका भारतके समस्त पत्रकारोंमें विशिष्ट स्थान है। नगरके प्रमुख आयोजनोपर आप विशेष रूपसे आमंत्रित किये जाते है।

रचनाएँ

१ परित्यक्ता (१९३९), २ युग पुरुष राम (१९५४ उत्तर प्रदेश एवं केन्द्रीय सरकार द्वारा पुरस्कृत), ३ साहसी समार (१९५५), ४ ईरानकी कहानियाँ (१९५७), ५ दूसरी दुनिया (१९५९), ६. ब्रिटेनमें चार सप्ताह (१९६१), ७ अमिट रेखाए (१९६५), ८. कुरु प्रदेशकी कहानियाँ (१९६६), ९ वरद पुत्र (१९६६ , १० ससारके महापुरुष (१९६६ उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत), ११ भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा निबन्धोंका प्रकाशन (१९६६), १२ मेरी रूस यात्रा (१९७०), १३ ब्रजभाषाकी कहानियाँ— लोक कथाएं २ भाग (१९७०)।

सम्पादन

अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन।

अनुवाद

एक रूसी पुस्तकका 'पीडा रहित प्रसव' नामसे अनुवाद। यह पुस्तक एम० बी० बी० एस० के पाठ्यक्रममें स्वीकृत है।

●

श्री अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ

श्री अनूपचन्दका जन्म दिगम्बर जैन खण्डेलवाल जातीय बडजात्या परिवारमें १० सितम्बर सन् १९२२ को जयपुरमें हुआ। आपके पिता श्री गोमतीलालजी भांवसा समाजके एक प्रतिष्ठित व्यक्ति एवं प्रसिद्ध कपडेके व्यवसायी थे। आपको प्रारम्भ से ही रुचि धर्म की ओर विशेष रही। इसी कारण प्रारम्भिक शिक्षा जयपुर नगरकी प्रसिद्धशिक्षा संस्था दि० जैन संस्कृत कालेजमें हुई। श्रद्धेय पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थके चरण सानिध्यमें रहकर जैन दर्शनका गहन अध्ययन किया और सन् १९४७ में प्रथम श्रेणीमें न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। लगातार २५ वर्षोंसे अधिक पंडितजीके सम्पर्कमें रहनेसे अध्ययनमें विशेष रुचिके कारण सन् १९४८ में 'साहित्यरत्न' परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् १९४२ से राज्य सेवामें प्रवेश करनेके बाद भी अध्ययनमें पूर्ण तल्लीन रहे। प्रारम्भ से ही समाज-सेवामें रुचि रखनेके कारण सामाजिक बुराइयोंके विरुद्ध कितने ही लेख जैन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए। अच्छे लेखक होनेके साथ-साथ आप एक प्रतिभाशाली कवि भी हैं। अब तक आपकी अनेकों कविताएँ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी है।

आप अच्छे अनुवादक भी हैं। आपके द्वारा अनूदित निम्न संस्कृत पूजाएँ विशेष प्रसिद्ध है—

१. रोहिणी व्रत पूजा २. चन्दन षष्ठी व्रत पूजा ३. कंजिका द्वादशी व्रत पूजा।

इसके अतिरिक्त आचार्य सूर्यसागर पूजा तथा 'पद्म प्रभु चालीसा' काफी पुरानी प्रकाशित रचनाएँ हैं। 'भरत-बाहुबलि संवाद' तथा 'बाहुबलि वैराग्य' अप्रकाशित खंड काव्य है। ६० से अधिक गीतांजलि पद्योंका अनुवाद, अनेक सामयिक फुटकर रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी है।

श्री महावीरजी अतिशय क्षेत्रपर फेरीमें मकरानेके बने भावोंके नीचे काव्यमय परिचय आपका ही लिखा हुआ है।

कवि हृदयके साथ-साथ जैन पुरातत्त्व एवं प्राचीन साहित्यमें आपकी रुचि है। राजस्थान के सैकड़ों दिगम्बर जैन मंदिरोंके मूर्ति-यन्त्र एवं शिलालेखोंको जगह-जगह जाकर उतारा है। हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची बनाकर भंडारोंको व्यवस्थित किया है।

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजीसे प्रकाशित राजस्थान के दि० जैन शास्त्र भंडारोंकी ग्रंथ सूची भाग तीसरा, चौथा तथा पाँचवाँका डॉ० कासलीवालके साथ सम्पादन किया है। साहित्यशोधमें रुचि होनेके कारण ही डॉ० कासलीवालके प्रत्येक खोज एवं शोध कार्यमें पूर्ण सहयोगी हैं। अनेकांत, वीर-वाणी, जैन साहित्य शोधांक आदि पत्रोंमें कितने ही खोजपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं और समय-समय पर होते रहते हैं।

सरस्वतीके उपासकके साथ ही आप अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं। प्रत्येक सामाजिक संस्थाओंमें आप किसी न किसी रूपमें पूर्ण सहयोगी हैं। वर्तमानमें आप श्री दि० जैन औषधालय, जयपुरके मन्त्री, दि० जैन संस्कृत कालेज, दि० जैन विद्वत् परिषद्, आल इंडिया भगवान महावीर २५०० निर्वाण महोत्सव सोसाइटी राजस्थान, जयपुर तथा संभागीय समितिके सदस्य तथा राजस्थान जैन साहित्य परिषद्के कोषाध्यक्ष हैं।

श्री अनूपचन्द्रजी एडवोकेट

आपका जन्म अक्टूबर १९२१ में जयपुर (राजस्थान)में हुआ। आपके पिताका नाम श्री लक्ष्मणलाल जैन एवं माताका नाम श्रीमती गुलाब देवी था। सुशिक्षित, प्रगतिशील एव सुधारक लोगोंमें अग्रणी परिवारके नामसे आपका घराना सदैव प्रतिपादित रहा है। आपके पिताजी एवं दादाजी दोनों ही अपने समयके मूधन्य विद्वान् एव सुख्यात वकील थे। आपके अग्रज भारतके मूर्धन्य विद्वानोंमें प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करनेवालोंमेंसे है तथा आपके घरके प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी कोटिके अनूठे विद्वान् हैं। ऐसे शिक्षाविद् घरानेमें जन्म लेकर आपने अपने कुल गौरवकी ज्योतिको और भी प्रदीप्त किया इसमें दो मत नहीं हैं।

आप उच्चकोटिके मेधावी छात्र थे। आपने सत्रह वर्षको अवस्थामें मैट्रिक, इक्कीस वर्षकी अवस्थामें बी० ए०, २९ वर्षकी अवस्थामें एल० एल० बी० तथा तीस वर्षकी अवस्थामें हिन्दीसे एम० ए० पास किया।

साहित्य सेवा, पत्रकारिता, समाज सेवा तथा राजनैतिक क्षेत्रमें आपकी त्यागमयी सेवाभावना आपके चिन्तन, मनन एवं कार्य क्षेत्रके विशिष्ट पहलू रहे हैं।

साहित्य सृजन, पत्रकारिता तथा सार्वजनिक जीवनकी समस्याओंका अध्ययन आपकी स्वाभाविक रुचिके प्रिय विषय रहे है। कवि तथा लेखकके रूपमें राजस्थानके साहित्यकारों तथा चिन्तकोंमें सदैव आपका एक विशिष्ट स्थान रहा है। अनेकों कविताएँ तथा रचनाएँ देशके सुविख्यात पत्रोंमें बराबर प्रकाशित होती रहती है।

आपने अर्थोपार्जनकी दृष्टिसे कलकत्ता, दिल्ली तथा जयपुरमें राजकीय तथा व्यावसायिक संस्थाओंमें अनेक उत्तरदायित्व पूर्ण पदोंपर कार्य किया है। आजकल पिछले सोलह वर्षोंसे कोटामें वकालत तथा राजकीय महाविद्यालय कोटामें अंश कालीन विधि व्याख्याता पदपर कार्यरत है।

आप जयपुर राज्यप्रजा मण्डलके प्रचार प्रकाशन मंत्री, अ० भा० हिन्दी सा० सम्मेलन जयपुर राजा शाखाके प्रधानमंत्री, हिन्दुस्तान टाइम्स दिल्लीके सह सम्पादक, अ० भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलनके प्रचार मंत्री, सर्वोदय साहित्य समाजके सभापति, साहित्य संगीत परिषद् कलकत्ताके प्रधान मंत्री, श्रीजैनेन्द्र कुमार द्वारा सचालित लोक जीवनके सम्पादक, प्रस्तावित राजस्थान शिक्षा निर्देशिकाके सम्पादक, भारतेन्दु समिति कोटामें प्रधान मंत्री, टाइम्स आफ इण्डियाके प्रतिनिधि, चिदम्बरा मासिकके सम्पादक, राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुरके प्रतिनिधि, हरिजन सेवक संघ कोटाके अध्यक्ष, राजस्थान गृहनिर्माण वित्तीय सलाहकारी समिति लि० जयपुरके संचालक एवं सत्यमित्रके सम्पादक आदि अनेकानेक संस्थाओंके उपरोक्त पदोंसे विभूषित हैं तथा हुए हैं।

नियमित रूपसे लेखन कार्य आपने सत्रह वर्षकी अवस्थासे आरम्भ किया। अविलम्ब ही आप 'राजस्थान के पंत'के नामसे साहित्य जगत्में मशहूर हो गए। कविता, जीवन वृत्त तथा लेखादि हिन्दी तथा आंग्ल भाषामें लिखते रहे।

धर्मयुग, राष्ट्रभाषा, तरुण, लोक जीवन, चिदम्बरा, राजस्थान हिराल्ड, इण्डियन स्टेट्स, अमृत बाजार पत्रिका, हिन्दुस्तान (दिल्ली), नवभारत (दिल्ली), विश्वमित्र कलकत्ता, लोकवाणी जयपुर, राजस्थान पत्रिका जयपुर और शारदा आदि अनेक पत्रिकाओंमें आपकी अमूल्य रचनाएँ प्रकाशित होती हैं।

आपकी समस्त कृतियाँ प्रकाशित हैं। अप्रकाशित वही हैं जो अभी अधूरी हैं यथा—इन्दिराजीका अश्वमेध यज्ञ, जीवनके बदलते मूल्य, भीडकी मनोवृत्ति और उभरते मूल्योंकी एकरूपता आदि।

संक्षिप्ततः आप उच्चकोटिके कानूनवेत्ता एवं श्रेष्ठ साहित्यकार हैं। आपकी सेवायें अमूल्य हैं।

●

पं० अभयकुमारजी

●

अर्थाभावके प्रखर तापमें निरन्तर जलते हुए भी जिसने अपनी मञ्जिलको प्राप्त किया है, यदि वास्तविक रूपसे पूछा जाय तो वही व्यक्ति जीवन यात्रामें सफल हो पाया है। वैसे जिन्दगी तो सब लोग जीते हैं परेशानियोंका सामना भी बहुधा लोगोंको करना पडता है किन्तु उन परेशानियोंका हँस-हँसकर सामना करने वाले कर्मठ पुरुष इने गिने ही हैं।

यह बात श्री अभयकुमारजी जैनके जीवनमें हमे साकार रूपमें देखनेको मिलती हैं। आपका जन्म माघसुदी षष्ठी सवत् १९९४ में मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत लाखनखेडा नामक गाँवमें माता श्रीमती नन्नीबाईकी पुनीत कुक्षिसे हुआ। पिताश्री मन्नूलालजी जैन गरीब परिस्थितिके व्यक्ति थे। यद्यपि समाजमें धनिकोंकी अपेक्षा उनकी अधिक प्रतिष्ठा थी किन्तु फिर भी मनुष्यका जीवन यापन सिर्फ प्रतिष्ठासे नही हो सकता। जीवनके लिये अनेक उपकरणोंकी आवश्यकता होती है जिनके अभावसे मानव जीवन परेशान हो जाता है।

ऐसी गरीब परिस्थितिके मध्य आपका जन्म हुआ और आप सात वर्षके थे तभी पिताजी निर्धनताका उत्तराधिकार आपको सौंप कर भगवान्को प्यारे हो गए। लाचार होकर आपकी माँको मायकेमे रहना पडा। इस तरहसे आप पूर्णरूपेण अपने नानाजीके आश्रित हो गए। जब आपमे कुछ सोचने समझनेकी शक्ति आयी तो आपने स्वत को सर्वथा असहायावस्थामें पाया। आपके सामने अध्ययनकी समस्या थी। पाठकोंको यह जान कर आश्चर्य होगा कि अपनी प्रारम्भिक शिक्षाके समयमें ही आपमें इस भावनाका उदय हो गया कि मुझे अध्ययन करना है और जहाँ तक हो सके स्वावलम्बनके सहारे ही करना है।

प्रारंभिक शिक्षाके लिये आपको साल दो साल दर-दरकी ठोकरें खानी पडी। अन्तमे आपने अपने ताऊजीके यहाँ रहकर प्रारंभिक शिक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् श्री ना० नं० दि० जैन पाठशाला बीनामें प्रवेश लेकर पं० धर्मदासजी एवं पं० मोतीलालजीके सान्निध्यमें रहकर प्रथमा, प्रवेशिका और मिडिल कक्षाएँ उत्तीर्ण कर सोलह वर्षकी अवस्थामें वाराणसी अध्ययन करने चले गए। बम्बई बोर्डसे विशारद और शास्त्री की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर आपने एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की। अध्ययन कालमें आपको आर्थिक परेशा-

नियोंका सामना करना पड़ा। इसके बावजूद घरकी जिम्मेदारियोंके कारण आपकी मानसिक अवस्था सदैव अस्तव्यस्त-सी रही किन्तु अध्ययनके मामलेमें आप सदैव कटिबद्ध रहे।

आप अध्ययन कालमें विद्यालयमें सदैव प्रतिष्ठा पात्र रहे। इसके अलावा विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयोंकी क्रीडा प्रतियोगिता एव वादविवाद प्रतियोगिताओंमें सदैव स्वर्ण पदक एवं प्रमाण पत्र प्राप्त करते रहे।

आप श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके छात्र थे उसी समय आपका विवाह श्रीमती स्नेह प्रभा जैनके साथ सम्पन्न हुआ।

अध्ययन, मनन, चिन्तन तथा लेखन प्रारम्भसे ही आपकी स्वाभाविक रुचिका विषय रहा किन्तु पारिवारिक उलझनों एव जिम्मेदारियोंके कारण आप अपनी अभिलाषाआके पूर्ण करनेमें असमर्थ रहे।

●

पं० अमरचन्द्रजी शास्त्री

●

सागर जिलेमें शाहपुर नामक एक स्थान है। वहीपर भगवानदासजीका एक छोटा-सा परिवार रहता था। घरकी परिस्थिति साधारण थी। छोटी-सी किराना की दूकान थी और छोटे रूपमें खेती होती थी। इसी घरानेमें आपका जन्म भादों वदी सप्तमी सवत् १९५० में हुआ। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है आपके पिता श्री भगवानदासजी सामान्य परिस्थितिके व्यक्ति थे फिर भी उन्होंने आप पाँचों भाइयोंको धार्मिक विद्वान् बनाया। धर्मके प्रति उनकी काफी आस्था थी। स्थानीय समाजके वे प्रमुख थे। वहाँ दोनों समय शास्त्र प्रवचन उन्हीके द्वारा सम्पन्न हुआ करता था।

धार्मिक शिक्षाकी प्रबल भूख आपके हृदयपर विद्यमान थी चूँकि घरकी परिस्थिति सामान्य थी अस्तु अध्ययन कालमें भी आपको अध्ययन व्यय हेतु एक छोटीसी किरानेकी दूकान करनी पडी। फिर भी आपने शास्त्री तक शिक्षा प्राप्तकर समाजके मूर्धन्य विद्वानोंमें अपना स्थान बनाया।

आपकी प्रवचन शैली बहुत ही मनोहारी एवं परिमार्जित संस्कृत निष्ठ शब्दावलीसे युक्त है। छात्र जीवनसे ही प्रवचन कार्य आपने आरम्भ किया था जो आज भी चल रहा है।

स्वतन्त्र व्यवसाय कहा जाय या अर्थोपार्जनका एक मात्र साधन—आपने दूकान एवं कृषि कार्यको ही अपनाया है। आज आपकी दुकान अच्छी हालतमें है जबकि आपके पिताजीने उसका समारम्भ दस रुपयेकी पूँजीसे किया था।

आपकी रुचि प्रारम्भसे ही धर्मकी ओर रही है क्योंकि आपके पिताश्रीने आपको हिन्दी स्कूल बिल्कुल न भेजकर स्वयं ही हिन्दी कक्षाका ज्ञान कराकर स्थानीय पाठशालामें भर्ती करा दिया साथ ही आपको चौदह वर्षकी उम्रमें शास्त्र प्रवचन गद्दीपर बैठाया।

आप साहित्यकी ओर भी उन्मुख हैं। सिद्ध चक्र विधान आदि कार्योंके लिए आप दूर-दूर तक जाते हैं।

●

पं० आनन्ददासजी

आप प्रथम श्रेणीके रजिस्टर्ड वैद्य हैं और धर्मपुरा-दिल्ली में निवास करते हैं। आपकी सामाजिक एवं धार्मिक सेवायें स्तुत्य हैं। साहित्यिक प्रवृत्ति भी आपमें यथेष्ट रूपसे विद्यमान है। आप विगत १३ वर्षसे 'गीत सन्देश' पाक्षिक पत्रके प्रधान सम्पादक हैं। वीर सुधा, शान्ति सुधा, वीर गुटका, सार-समुच्चय, कुन्थु सुधा आदि कई उपयोगी ट्रैक्टोंका प्रकाशन आप कर चुके है।

सामाजिक सेवायें एवं सम्मान

सर हुकमचन्दजी इन्दौरने आपकी निःस्वार्थ सेवासे प्रेरित होकर तारंगा पंच कल्याणकके समय लाखों जन समुदायके बीच स्वर्ण पदक प्रदान किया था। आपका नाम तारंगाजी क्षेत्रके मानस्तम्भपर क्षेत्रीय कमेटी द्वारा लिखवाया गया। आल इण्डिया चन्द्र जैन यात्रा संघके आप प्रमुख संचालक हैं।

पं० अभयचन्द्रजी जैनदर्शनाचार्य

श्री पं० अभयचन्द्रजीका जन्म सागर जिलातर्गत भानगढ ग्राममें परवार जैन वंशी, वासल्ल गोत्रीय अति धर्मानुरागी श्री नाथूरामजी मोदीके यहाँ सन् १८९५ ई० में हुआ। आपका प्रारंभिक अध्ययन भानगढ़ ग्राममें ही हुआ। तदुपरात आप श्री पं० गणेशप्रसादजी वर्णीके सान्निध्यमें आकर उन्हीकी प्रेरणाके अनुसार स्याद्वाद जैन महाविद्यालय वाराणसी पहुँचे एवं वहाँ धार्मिक अध्ययनके साथ कलकत्ता यूनिवर्सिटीसे काव्यतीर्थ एवं वाराणसेय हिन्दू विश्वविद्यालयसे आयुर्वेदाचार्य परीक्षा पास की।

चिकित्सकके रूपमें कानपुरमें यशस्वी चिकित्सक राजवैद्य स्व० कन्हैयालालजी हकीमके साथ तीन वर्ष कार्य करनेके पश्चात् आपने कलकत्ता, इन्दौर, गुना, दमोह, जबलपुर, खंडवा, हरदा, नागपुर आदि अनेक स्थानोंपर सफलता पूर्वक चिकित्सा कार्य किया। राजकुमार सिंह आयुर्वेदिक कालेज इन्दौरमें आपने आयुर्वेदाध्यापककी तरह भी कार्य किया।

आपमें धार्मिक प्रवृत्ति तो जन्मजात थी ही। अध्ययनसे उसमें निरंतर वृद्धि होती गई। मन्दिरोंमें शास्त्र प्रवचन तो अनेक वर्षोंसे करते आ रहे हैं। जैन साहित्य एवं संस्कृत भाषामें आपकी अच्छी गति है।

संस्कृत विद्यालय मोरैना तथा सर हुकमचन्द जैन महाविद्यालय इन्दौरमें आपने अनेक वर्षों तक अध्यापनका कार्य किया है। अध्यापनकी आपमें इतनी रुचि है कि आप विद्यार्थियोंके घर-घर जाकर या उन्हें स्वगृह बुलाकर संस्कृत ग्रन्थोंका अध्यापन करते रहते हैं। आपके पढ़ाए हुए कई विद्यार्थी शिक्षा शास्त्री एवं सुयोग्य चिकित्सक हैं। इसी अध्ययन-अध्यापन रुचिका ही फल है कि आपने ६५ वर्षकी आयुमें जैनदर्शन शास्त्री एवं जैनदर्शनाचार्यकी परीक्षाएँ सफलतापूर्वक उत्तीर्ण की। आज ८० वर्षकी आयुमें भी आपका अध्ययन-अध्यापन जारी है।

राशिका नाम आपका हजारीलाल था। लेकिन अपनी सुगठित देह, नियमित व्यायाम, निर्भीक व्यवहार एवं साहसिक कार्योंके कारण जैन संस्कृत महाविद्यालय वाराणसीमें आपका नाम परिवर्तन कर अभयचन्द रख दिया गया था—तभीसे यही नाम प्रचलित है।

●

पं० अमृतलालजी शास्त्री

●

मध्यप्रदेशमें सागर जिलान्तर्गत नरयावली स्टेशनसे दक्षिण पश्चिम दिशामें टीला दुर्ग नामक एक गाँव है। वहीपर श्रावणकृष्णा नवमी सोमवार सवत् उन्नीस सौ तिरासीमें आपका जन्म हुआ। आपके पिता श्री धर्मचन्दजी जैन थे। अभी बीस वर्ष पूर्व उनका देहावसान हो गया।

बनारससे आपने काव्य मध्यमा, व्याकरण मध्यमा तथा न्याय मध्यमा किया तथा शोलापुरसे शास्त्रीकी परीक्षा उत्तीर्ण की। साथ ही सागर विद्यालयसे प्रतिष्ठादिक सभी कार्योंकी शिक्षा अनुभवरूपसे प्राप्त की।

श्री पुण्यक्षेत्र दिगम्बर जैन वर्णी संस्कृत विद्यालय शाहपुरमें बारह वर्षों तक आपने अध्यापन कार्य किया। श्री वर्णी दिगम्बर जैन सस्कृत पाठशाला दमोह एवं श्री नेमिसागर दिगम्बर जैन पाठशाला हीरापुर-में भी आपने अध्यापन सम्बन्धी महान् सेवायें की।

पंच कल्याणक गजरथादिक प्रतिष्ठा कार्य आप बड़े ही सुन्दर ढंगसे कराते हैं। यह आपकी महत्ता ही है कि स्वतः इतने बड़े प्रतिष्ठाचार्य होते हुए भी अपने आपको आप 'प्रतिष्ठा विद्यार्थी' कहते है।

आप जैन सिद्धान्तके मर्मज्ञ विद्वान् हैं। जैन समाजके निष्ठावान सेवक है। आपका स्वभाव मृदुल और गम्भीर है। सच्चाईसे आपको इतना लगाव है कि उसे आपने अपने जीवनमें उतारा है। अपनी विद्वत्ता और निर्मल चित्तवृतिके कारण आप समाजकी आँखोंके तारे बने हुए हैं।

●

श्री अमृतलालजी 'चंचल'

●

कवि और लेखकके रूपमें 'चंचलजी' समाजमें सुपरिचित है। विद्यार्थी अवस्थासे ही आपको साहित्यिक लगन है, जब आप ७-८ वर्ष पूर्व, हरदा कॉलेज में पढ़ते थे। उसी समय आपने संस्कृतके सुप्रसिद्ध धर्म ग्रन्थ 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' का हिन्दी-कवितामें-अनुवाद किया था। जो प्रकाशित हो चुका है। आपको संस्कृत और हिन्दीका अच्छा ज्ञान है। उर्दू साहित्यसे भी रुचि है। हिन्दी साहित्यमें काव्य साहित्य पर आपका नैसर्गिक प्रभाव है। 'चंचल' जीकी रचनाएँ अत्यन्त मधुर होती हैं। आप प्रकृति दर्शनसे प्राप्त आह्लादकी अभिव्यंजना सरल और स्वाभाविक पदावली द्वारा करते हैं; किन्तु पार्थिवके वर्णनमें भी अपार्थिव तत्त्वकी ओर संकेत करते चलते हैं। आपकी साहित्यिक प्रगतिके मूलमें दार्शनिक संस्कृतिकी छाप है।

●

अशोककुमारजी 'रवि' प्रियदर्शी

●

बिहार प्रान्तके हजारीबाग जिलाके अन्तर्गत ईशरी बाजार नामक स्थान है। वहीं पर २५ अगस्त सन् १९४६ में पिता श्री कस्तूरचन्द्रजी शास्त्री महोपदेशकके घर माता श्रीमती सरलादेवीकी पुनीत कुक्षिसे आपका जन्म हुआ। आपकी माँ का स्वभाव बिल्कुल उनके नामके अनुरूप ही था।

उस समय आपके पिता श्री पार्श्वनाथ शिक्षा मंदिर जो आजकल पार्श्वनाथ दि० जैन डिग्री कालेजके नाम से विख्यात है, के संस्थापक तथा सचालक थे। उक्त विद्यालय ईशरी बाजार में ही है। तत्पश्चात् वे कई वर्षों तक मालवा प्रान्तीय सभा बडनगरके महोपदेशक रहे। वे जैन समाजके चोटीके विद्वानों में से थे।

सात वर्षकी अवस्थामें आप मातृ विहीन तथा सोलह वर्षकी अवस्थामें पितृ विहीन हो गए। पितृ देवके प्यारकी अनुभूति तो कुछ वर्षों तक आपने की ही किन्तु माँ की ममता कैसी होती है इसका अहसास आपको नही होने पाया और असमयमें ही ममतामयी माता जी असार संसारको परित्याग कर परलोकगामिनी हो गई। आपसे भी अधिक जटिल समस्या थी आपके छोटे भाई सीमन्धर कुमार की जिनको चार वर्ष की उम्र में ही मातृ वंचित होना पडा।

सन् १९५५ से १९५९ तक आप प्रारभिक शिक्षा हेतु श्री शांतिनाथ दि० जैन पाठशाला सतनामें अध्ययन रत रहे। तत्पश्चात् श्री पद्मधर उच्चतर माध्यमिक विद्यालय माधवगढ पहुँचे। वहाँ से सन् १९६३ में आपने हायर सेकेन्डरी की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद बी० ए० के अध्ययन हेतु जैन माध्यमिक शाला सतनामें अगस्त १९६३ से अध्यापन कार्य शुरू किया किन्तु अक्टूबर १९६५ में शाला से त्यागपत्र देकर जैन दर्शन साप्ताहिक इन्दौरमें व्यवस्थापन कार्य करने लगे।

सोलह वर्ष की अवस्थासे आपने लिखना प्रारंभ किया था। आपको गद्य अधिक प्रिय है। उसमें भी आप प्रमुख रूपसे निबन्ध ही लिखते हैं। यद्यपि कि आपकी लेखनीका विषय बनकर साहित्यका प्रत्येक अंग शृंगारमय हो जाता है तथापि जितने अच्छे ढंगसे आप निबन्धों को सजाते हैं उतना ध्यान साहित्य के और अंगोंकी ओर नही देते। आपने शताधिक निबन्ध लिखे जिनमें अधिकांश अप्रकाशित है।

आजके तरुण साहित्यकारोंमें आपका नाम बहुत ही श्रद्धाके साथ लिया जाता है।

●

स्व० पंडित अनन्तराजजी शास्त्री

●

वैद्यराज श्री अनन्तराजजी मूलत' केकडीके निवासी, मृदुभाषी व मिलनसार व्यक्ति थे। प्राचीन पंडितोंमें आपकी गणना की जाती है।

जब आप आरम्भिक शिक्षा समाप्त कर चुके तब सर स्वरूपचन्द्र हुकमचन्द्र दिगम्बर जैन महाविद्यालय इन्दौरमें अध्ययन करनेके लिये आये। दीर्घकाल यहाँ रहकर आपने शास्त्री व न्यायतीर्थकी परीक्षायें पास की इनके साथ ही आयुर्वेदाचार्य भी कर लिया। इस उपाधिने आपको आजीविकाका मार्ग सुगम किया व वैद्यराजके रूपमें ख्याति भी कराई। महावीर फार्मेसी उज्जैन अभी भी आपकी स्मृति दिलाती है।

आपने अपने जीवनकालमें न केवल आयुर्वेद महाविद्यालयकी स्थापना कराई बल्कि विक्रम विश्वविद्यालयके प्रमुख सदस्य बननेका भी आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप अवन्तिकाके सार्वजनिक जीवन में ही नही बल्कि समग्र मालवा भूमिके धार्मिक व सामाजिक क्षेत्रमें भी लोकप्रिय हुए। आपके व्यक्तित्व और कृतित्वसे प्रकाशचन्द्र सेठी (मुख्य मंत्री मध्यप्रदेश) तक प्रभावित हुए। आपने अनेक असाध्य रोगोंका उपचार आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा किया।

●

श्रीमती आशा मलैया

●

प्रतिभाके साथ सौजन्य, आत्मविश्वासके साथ कार्यकुशलता, वाणीमें माधुर्य और व्यवहारमें शालीनताका संगम देखना हो तो सागर जैन समाजकी सामाजिक-धार्मिक अभिरुचि वाली विदुषी महिला श्रीमती आशा मलैयासे साक्षात्कार कीजिये, जो वर्षोंसे महिला समाजकी प्रगतिके लिये अनवरत प्रयत्न कर रही हैं।

आपका जन्म सन् १९४३ में हुआ। आपके पिता श्री नेमिचन्द्र पटौरियाने समुचित मार्ग दर्शन दिया और रही सही जो कमी थी, वह आपके पति श्री विमलकुमारजी मलैयाने पूरी कर दी। परिणामस्वरूप गृहस्थीके उत्तरदायित्वका निर्वाह करते हुए भी आप धार्मिक-सामाजिक कार्योंको करनेके लिये काफी समय निकाल ही लेती हैं।

आपने एम० ए० तक शिक्षा ही नही पाई बल्कि कन्या महाविद्यालयकी प्राध्यापिकाके रूपमें शिक्षण भी दे रही हैं। शोध छात्राके रूपमें सुरुचिसे भक्तामर स्तोत्र पर आपने विवेचनात्मक निबन्ध लिखा था। यथावसर जैन पत्रोंमें आपकी रचनायें पठनार्थ मिलती हैं। साहित्यके साथ संगीतका भी आपका अतीव शौक है। आपका हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला पर अच्छा अधिकार है।

निराशाके नीहारसे ग्रस्त महिलाओंमें श्रीमती आशा मलैया काफी काल तक जीवनव्यापी आशा-किरणें बिखेरती रहें और अपनी धार्मिक-सामाजिक सेवाओंका अनूठा आदर्श उपस्थित करनेमें सक्षम हों, यही मनोभावना है।

●

विदुषी बहिन श्रीमती अनन्तीबाईजी

•

स्व० पं० ठाकुरदासजी बी० ए० टीकमगढ (पू० गणेश वर्णीजीके सहपाठी) जैसे उद्‌भट विद्वान्, संत प्रकृति और शान्त स्वभावीसे पूरा बुन्देलखण्ड ऋणी है। ऐसे ही योग्य पिताकी योग्य सुपुत्री श्रीमती अनन्ती-बाईजीका जन्म आसोज वदी ४ सं० १९८८ को हुआ था। प्रारम्भिक लौकिक एवं धार्मिक शिक्षा पिताके संरक्षणमें सम्पन्न हुई। मिडिल-परीक्षा वीरेन्द्र कन्या विद्यालय टीकमगढसे उत्तीर्ण की और धार्मिक शिक्षा अपने पिता श्रीके सुफल प्रयत्नोंका परिणाम है। आपका विवाह सन् १९४९ में श्रीमान् हीरालालजी सर्राफ-ललितपुर (अध्यक्ष-श्री वर्णी स्वाध्याय मण्डल-ललितपुर) के साथ सम्पन्न हुआ था।

वर्तमानमें आप महिला मण्डल-ललितपुरकी अध्यक्षा हैं। और प्रतिदिन श्री दि० जैन अटाजीके मन्दिरमें सदैव महिला समाजमें शास्त्र प्रवचन करके धार्मिक शिक्षणका उपादान समाजको दे रही हैं।

स्वाध्याय-प्रेमी एवं गार्हस्थिक कार्यमें दक्ष, उदार प्रकृति, सरल स्वभावी महिला रत्न है।

स्व० पं० इन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार

●

हिन्दी जगत्के सुख्यात साहित्यकारों, पत्रकारों, सम्पादकों, प्रवक्ताओं, धर्मोपदेशकों एवं समाज सुधारकोंकी ओर जब हमारा ध्यान जाता है तो एक उभरता हुआ व्यक्तित्व हमारे सामने प्रतिभाषित होता है साथ ही उपरोक्त सभी व्यक्तियोंके गुणोंका संकलन उस अकेले व्यक्तित्वमे प्राप्त कर हम आश्चर्यचकित रह जाते हैं, ऐसे निराले व्यक्तित्वके मालिक है श्री इन्द्रलालजी शास्त्री। जनसामान्यमे एक उक्ति प्रचलित है कि हर व्यक्ति एक ही कलाका श्रेष्ठतम कलाकार हो सकता है किन्तु आपने अपनी बहुमुखी और हर क्षेत्रमें समानाधिकार रखनेवाली प्रतिभाके द्वारा उपरोक्तोक्तिको सर्वथा थोथी साबित कर दिखाया। आप जितने अच्छे कवि है उतने ही अच्छे लेखक। जो कला आपको प्रवचन हेतु मिली वही सार्वजनिक भाषणके लिए भी। जितनी कर्मठताके साथ आप समाज सेवाका कार्य करते थे उतना ही श्रम धर्मोपदेशमें भी लगाते थे सचमुच ऐसा व्यक्तित्व अपनी श्रेणीका अद्वितीय व्यक्तित्व था।

आपका जन्म २१ सितम्बर सन् १८९७ मे जयपुरमें हुआ। जन्मके समय पिता श्री मालीलालजी रेवेन्यू विभाग तहसीलमें क्लर्क थे तथा पितामह नगरमें कोतवाल थे। आपकी माताजी श्रीमती हीरादेवी उदारहृदया धार्मिक महिला थी। खेद है कि आपको जीवनकी कोमलतम बाल्यावस्थामें ही अनेक वियोगोका सामना करना पडा। आप दो वर्षके थे तभी पिताजीका देहावसान हो गया। ९ वर्षकी अवस्थामे बडे भाईका स्वर्गारोहण तथा १२ वर्षकी अवस्थामे मातृवियोग सहनकर ३८ वर्षकी उम्रमें आपको पत्नी श्रीमती लाडलीबाईका असहनीय वियोग सहन करना पडा। इन समस्त वियोगोंसे आपका कलेवर सूखकर काँटा हो गया। हृदय छलनीके रूपमें परिणत हो गया, ससारकी समस्त वेदनाओंका आश्रय स्थल बन गया। और आप साहित्यकार तथा एक अद्वितीय चिन्तक बनकर हमारे सामने आए।

माता-पिताका साथ छूट जानेके कारण आपको अर्थाभावको भीषण परिस्थितियोंका भी मुँह देखना पड़ा, परिणामत. अध्ययन क्रम जारी रखने हेतु आपको ट्यूशनका आश्रय लेना पड़ा। शास्त्री एवं साहित्याचार्यकी परीक्षा उत्तीर्ण कर 'विद्यालकार', 'धर्म दिवाकर' तथा धर्मवीर आदि अनेक उपाधियोंसे विभूषित हुए। कौटुम्बिक व्यय वहन करने हेतु आपने शिक्षण कायके साथ-साथ व्यवसाय तथा अन्यान्य कार्योंको भी अपनाया। आपने सरसेठ भागचन्दजी सोनीके जयपुर फर्ममें भी कार्य किया। जयपुर राज्यमें देव स्थान विभागके अधिकारीके रूपमें भी हमारे समक्ष आये तथा मथुरा केकड़ी, लाड़नू तथा जयपुर आदि महाविद्यालयोंमें अध्यापन कार्य भी किये।

आपने अपने साहित्यिक जीवन कालमें धर्म सोपान, अहिंसा तत्त्व विवेक मंजूषा, दि० जैन साधुकी चर्या, जैनधर्म सर्वथा स्वतन्त्र धर्म है, जैन मन्दिर और हरिजन, श्रेयोमार्ग, वर्णविज्ञान, जैनधर्म और जाति, तत्त्वालोक, आत्म वैभव, महावीर देशना, पुण्य धर्म मीमासा, भावलिङ्गि द्रव्यलिङ्गि मुनिका स्वरूप, साम्यवादसे मोर्चा, भारतीय संस्कृतिका मूलरूप, पशुवध सबसे बड़ा देश द्रोह, मन्दिर, प्रवेश मीमांसा, रात्रि भोजन,

शान्ति पीयूष धारा, भक्ति कुसुम संचय आदि कृतियोंकी रचना की। पंचस्तोत्र, आत्मानुशासन एवं स्वयंभू-स्तोत्रका हिन्दी पद्यानुवाद किया। भँवरीलाल बाकलीवाल स्मारिकाका सम्पादन किया। खण्डेलवाल जैन हितेच्छु, जैन गजट, सन्मार्ग, अहिंसा आदि पत्रोंका भी सम्पादन आपने ही किया।

आपने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों साहित्योंकी यथेष्ट सेवा की। इसके अलावा धर्मोपदेश, प्रवचन आदि आपके प्रिय विषय थे। सत्रह वर्षकी अवस्थासे आपने लेखनी उठाई जो अविरामगतिसे चलती रही। सचमुच आपकी प्रखर प्रतिभाने आपकी लेखनीका साथ देकर आपको जैनजातिका देदीप्यमान मार्तण्ड बनाया है। आपकी अमर सेवायें समाज तथा साहित्यको चिरस्मरणीय रहेंगी।

●

श्री इन्द्रजीतजी शास्त्री

●

साहित्य वाटिकाके नये कुसुम श्री इन्द्रजीतजो जैन साहित्य जगत्मे अनूठी सुगन्धि लेकर आये।

आपका जन्म अप्रैल १९४० मे आगराके रेहा गाँवके समीपस्थ 'जगतूके पुरा' में हुआ। आपके पिता श्री कल्याणदास जैनधर्मनिष्ठ व्यक्ति है। माता श्रीमती कस्तूरीबाई भी धर्ममय भावना स्नात एक बहुत ही दयावान महिला है। आपकी आर्थिक स्थिति उत्तम थी तथा है भी। पिताश्री व्यवसाय कार्यके साथ-साथ समाजसेवाको भी अपने ही दायित्वोंकी श्रेणीमें रखते थे। अब भी वे श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर बडापुराकी प्रबन्धकारिणी कमेटीके अध्यक्ष हैं। आपका परिवार सुशिक्षित, सम्पन्न है।

छात्र जीवनमें आप अद्वितीय प्रतिभाके मेधावी छात्र थे। आजतक आपके सामने ऐसा अवसर नही आया जब आपको परीक्षामें प्रथम स्थान न मिला हो। तेरह वर्षकी अवस्थामें आपने जैनधर्म प्रवेशिका एव मिडिल स्कूलकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण कर प्रथम पारितोषक ग्रहण किया। इसके पश्चात् श्री गो० दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय मुरैनासे जैनधर्म विशारद, हाईस्कूल, पूर्वमध्यमा (सस्कृत) तथा न्यायमध्यमाकी परीक्षाएँ प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। इसके बाद शास्त्री तथा बी० ए० की परीक्षाओंमें भी आपने प्रथम श्रेणी प्राप्त की तथा एम० ए० में आपको स्वर्ण पदक मिला। साहित्याचार्यकी परीक्षामें भी प्रथम स्थान प्राप्त किया।

आप अपने छात्र जीवनमें एक अनुपम प्रतिभाके छात्र तो थे ही साथ ही पठनेतर विषयों जैसे वादविवाद, क्रीड़ा आदिमें कभी भी कही भी किसी से भी पीछे नही रहे। जहाँ भी आप उपस्थित हुए वहीके शिरोमणि बनते गए इसमें कोई भ्रम नही है। शिक्षक लोग आपकी प्रतिभा देखकर दंग रह जाते थे।

अध्ययन कालमें ही मुरैनाके बरवाई ग्राम निवासी श्रीमान् मिट्ठीलालजी जैनकी सुलक्षणी कन्या अनारदेवीके साथ आपका शुभ विवाह हुआ। अध्ययन समाप्त कर आपने अध्यापन कार्यको अपनाया। सम्प्रति आप केन्द्रीय विद्यालय चण्डीगढमें संस्कृतके व्याख्याता पद पर कार्यरत है।

उन्नीस वर्षकी आयुमे आपने लिखनेका शुभारम्भ किया और आपकी पहली कृति ही पाठकोंका हृदय हार बनकर उनके अन्तरालमें उलझकर रह गई। सचमुच आप अतीव सुन्दर ढंगसे लिखते हैं। आपकी अनूठी शैली उन व्यक्तियोंके लिए भी मनमोहक सिद्ध हो जाती है जिन्हे साहित्यसे अरुचि या कम रुचि है। आपने प्रमुख रूपमे गद्यको ही अपनाया है। तथा गद्यमें भी मात्र कहानी एव निबन्ध लिखते हैं। आपकी रचनाएँ लोकप्रिय है इसका ज्वलन्त उदाहरण यह कि रचनाएँ पूरी होते ही प्रकाशित होकर पाठकोंके हाथमें पहुँच जाती हैं।

●

स्व० पं० श्री इन्द्रमणिजी

●

आपका जन्म ऐसे परिवारमे हुआ जो विद्याका भण्डार माना जाता है। आपके घरानेके सभी सदस्य उच्च कोटिके विद्वान् होते चले आए है। आपके पिता श्रीमान् बिन्द्रावनदास-जी जैन एव माता श्रीमती पाँचीबाई जैन दोनो ही धर्मके विद्वान् थे। आपके चचेरे छोटे भाई श्री भगवानदासजी जैन असि० कमिश्नर थे। परिवारके शेष सदस्य भी अपने-अपने विषयके प्रकाण्ड पण्डित थे।

आपका जन्म दिगम्बर तेरह पंथी ढढोरिया गोत्रमें मार्ग शीर्ष एकादशी (शुक्ल पक्ष) संवत् १९५८ में मथुरा जिलेके नगला मंसाराम नामक गाँवमें हुआ। जमीदारीके कारण गाँवमें आपके पिता श्री की अच्छी स्थिति थी। उच्चकोटिकी प्रतिष्ठा प्राप्तकर आपके पिताश्री ग्रामवासियोंके हृदयहार बने हुए थे। नगला मंसाराम गाँव आपके पितामह द्वारा ही बसाया गया था। दु:खके नामसे आपको जीवन कालमें चार वियोगोंका सामना करना पडा। युवावस्थामे आपके अग्रजश्री का, १५ वर्ष वर्षकी आयुमें माँ का तथा इसके बाद पिता एवं प्रथम धर्मपत्नीका वियोग सहन किया। इन वियोगोंके अलावा आजतक आपके सामने दु:ख नामकी कोई वस्तु नही आई।

आपने हिन्दी तथा उर्दूमें मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् मैट्रिक कर संस्कृत मध्यमाकी परीक्षा पास की। इसके बाद धर्मका गहन अध्ययन कर उसमें अधिकारी विद्वान् हुए। आप आयुर्वेद के भी प्रकाण्ड पण्डित थे।

भि० भा० व० दि० जैन जैसवाल महासभा द्वारा आपको जाति रत्नकी उपाधिसे विभूषित किया गया। इसके बाद नि० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन लखनऊ द्वारा आयुर्वेदकी सेवाओंके उपलक्ष्यमें आपको भिषग्वरकी उपाधि मिली। संस्कृत विश्वविद्यालय दिल्लीसे आपको आयुर्वेद वाचस्पतिकी अमूल्य उपाधि हस्तगत हुई।

समाज सेवा में भी आपका उच्चकोटिका स्थान रहा। आप लगभग ३० बडी-बडी तथा पचासो छोटी-छोटी संस्थाओं में से किन्हीके संस्थापक, किन्हीके अध्यक्ष, किन्हीके संरक्षक, किन्हीमें सभापति एवं प्रतिनिधि थे। आपने अनेक शिक्षण एवं स्वास्थ्य संस्थाओंकी स्थापनाएँ की।

आपने सत्रह वर्षकी अवस्थासे कविता करना आरम्भ किया। कविताओके अलावा आप उच्च-कोटिके निबन्धकार भी थे। जैन गजट, जैन दर्शन, अहिंसा वाणी, अहिंसा वीर, जैसवाल जैन और धन्वन्तरि आदि पत्रिकाओंमें आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती थी।

'माला' (गद्य) 'जैन विवाह पद्धति' (गद्य) एवं 'इन्द्रनिदान' (पद्य) नामक तीन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। आपने 'द्रव्य सग्रह' का हिन्दी छन्दोंमें अनुवाद किया है जो अभी भी अप्रकाशित है।

आपने 'जैसवाल जैन' तथा 'जनपद आयुर्वेद सम्मेलन' नामक पत्रिकाओंका सम्पादन कार्य भी किया था।

अपने जीवन कालमें आपने यथेष्ट विद्या, अपार धन एवं समाज की निःस्वार्थ सेवा करके अनन्य कीर्ति प्राप्त की। आपका व्यक्तित्व दया एव परोपकारकी प्रतिकृतिके रूपमें सर्व साधारणके मानस पटल-पर छाया हुआ था। आपने अपनी अमूल्य सेवाओंसे एक ओर आयुर्वेदकी महानतम सेवाएँ की तो दूसरी ओर साहित्यकी सम्यक् उन्नतिमें योगदान दिया। धर्म सेवाके साथ-साथ समाजके दलित एव प्रताडित लोगोंको गलेसे लगाया। असंख्य रोगियोंको नि शुल्क औषधि प्रदान कर उनकी मुमूर्षु प्रतिमामें नव जीवनका सचार किया। हजारों असहाय तथा निर्धन बालकोंके अध्ययन हेतु शिक्षण सस्थाएँ स्थापित कर उनको मानव बनाया। सचमुच आपका जीवन दया और उदारतासे परिपूर्ण था।

आपके ज्येष्ठ पुत्र आयुर्वेद वाचस्पति, सिद्धान्त शास्त्री है। समाजमें उनकी अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके पास ही वैद्यक कार्य करते हैं। द्वितीय पुत्र बिहारमे जज थे अब दिल्ली मे लॉ डिपार्टमेन्टमें अन्डर सेक्रेटरी है। तृतीय पुत्र डायरेक्टर तथा चतुर्थ पुत्र इन्जीनियर है।

इस तरह आपका परिवार धन, महत्ता, विद्या और कीर्तिका अड्डा है। जिसका बहुत कुछ श्रेय आपको ही है।

●

पं० इन्द्रसेनजी शास्त्री

आपका जन्म मेरठ जिलेके शवगा नामक गाँवमें ९-७-१९४१ को हुआ था आपके पिताश्री का नाम श्री चन्द्रभानजी एवं माँ श्री का नाम जैनमतीजी है। आरंभ से ही आपको धार्मिक शिक्षाके संस्कारोंसे संस्कारित किया गया। लौकिक शिक्षा एम० ए० (संस्कृत) एव साहित्यरत्न तक हुई।

आपका बचपन तथा छात्र जीवन सुखमय ढंगसे सम्पन्न हुआ। इन्टरमीडिएट करनेके बाद आप के० के० जैन इन्टर कालेज खतौली (मुजफ्फरनगर) में अध्यापक हो गए थे। अध्यापन कार्य प्रारंभ करनेके दूसरे वर्ष ही आपका विवाह हो गया। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती ऊषारानी जैन एक सुशिक्षित महिला और अब दो पुत्र रत्नों की माँ है।

प्रारंभ से ही आपकी रुचि विद्याध्ययन एवं धर्म की ओर थी। गुरुकुलीय शिक्षा प्राप्त करने तथा सर्वैव धार्मिक वातावरणमें रहकर आपमें गहरी धर्मप्रियताकी भावना उदित हुई। आपको लिखने का भी शौक है किन्तु यह कार्य शौक तक ही सीमित है। आप निबन्ध अधिक लिखते हैं। आपकी रचनाएँ लगभग अप्रकाशित हैं।

वैसे आपकी लेखन शैली सुन्दर है। आपके दो चार निबन्ध कॉलिज मैगजीनमें प्रकाशित हुए हैं। बाकी सबके सब अप्रकाशित ही हैं। सारांशतः आप एक अच्छे निबन्धकार, आदर्श अध्यापक एवं समाजके तरुण एवं यशस्वी कर्मठ सेवक हैं। समाजको आपसे अनेक आशायें हैं।

श्री उग्रसेनजी

●

श्रेष्ठिवर्य उग्रसेनजीका जन्म टिटौड़ा (खातौली मुजफ्फरनगर) ग्राममें सन् १९०५ में हुआ था। चूंकि आप अपने पिता श्री हुरमतरायजीके एक मात्र पुत्र थे अतएव द्वितीय हृदय थे और माता मनभातीके मनको बहुत भाते थे परन्तु तीन वर्ष बाद ही पिता पुत्रको माताके भरोसे छोड़कर चले गये और माता भी कुछ समय बाद पुत्रको पूर्णतया अनाथ बनाकर चली गई। फिर भी अनाथ बालक उग्रसेन ने हार नही मानी। प्रकृतिके निर्दय व्यंगको वज्रका वक्षस्थल बनाकर सहा और आगे बढा।

इन्होंने वर्धमान जैन महाविद्यालय जयपुरमे प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। त्रिलोकचन्द्र जैन हाईस्कूल इन्दौरसे मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। अनन्तर जयपुर, मेरठ, हस्तिनापुरमें शिक्षक बनकर शिक्षण दिया। सन् १९२८ में जब स्वदेशी आन्दोलनने जोर पकड़ा तब आपने छत्तीसगढ़की भूमिपर स्वदेशी क्लाथ स्टोर्स द्वारा देश और समाजकी सेवा करनेका निश्चय किया। आपके इस पुनीत कार्यमें चम्पादेवी भी पीछे नही रही। सन् १९५१ तक आप यही कार्य करते रहे। संकल्पके अनुसार देशको स्वतन्त्र देखकर आप दुकान-दारसे साहूकार बन गये।

आप दिगम्बर जैन समाज रायपुरके अध्यक्ष बने तो ग्यारह वर्ष तक समाजको सही दिशा दी। यद्यपि आज आपकी अवस्था लगभग सत्तर वर्षकी है तथापि आपमें युवकोचित उत्साह है। सन् १९६८ में जब आपकी श्रीमती चम्पादेवीका स्वर्गवास हुआ तब आपने उनकी स्मृतिको चिरस्थायी रूप दिया। ५० हजार रुपयों की धनराशि देकर श्री चम्पाबाई रात्रिकालीन कला वाणिज्य महाविद्यालयको जन्म और जीवन दिया।

जिन चम्पादेवीने आपके जीवनको समृद्धिके शिखरपर पहुँचाया। उनका जन्म सन् १९११ में सहारन-पुरमें हुआ था। उनके पिता सेठ फूलचन्दजी जन कार्य विभागमें कटनीमें ठेकेदार थे। उग्रसेनजीकी भाँति चम्पादेवी भी अपने परिवारमें एक मात्र बालिका थी। सन् १९२६ में आपका विवाह हुआ। आप स्वभाव से सरल उदार सात्त्विक वृत्तिवाली महिला थी। आपकी इच्छा थी कि एक शिक्षा सस्था सचालित करें अतः सेठ साहबने यह कार्य करा दिया।

जब तक रायपुरमें उक्त महाविद्यालय रहेगा तब तक लोग सेठ उग्रसेनजी और सेठानी चम्पाबाईको वैसे ही नही भुला पावेंगे जैसे लोग ताजमलहको देखकर शाहजहाँ और मुमताज महलको नही भुला पाते है। घर-घर उग्रसेनसे दानी सेठ और चम्पाबाईसी सरल सात्त्विक प्रकृति वाली सेठानियाँ हो।

●

प्रो० उदयचन्द्रजी जैनदर्शनाचार्य

मध्यप्रदेशके शिवपुर जिलेमें पिपरौदा नामक स्थान है। वहीपर श्री प्रानसिंहजी जैनके घर १ अक्टूबर १९२३ में श्री उदयचन्द्रजीका जन्म हुआ। जन्मके समय घरकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। पिता श्री प्रानसिंहजी पञ्चायत बोर्डके सदस्य थे। इस सदस्यताके अलावा भी समाजमें उनकी प्रतिष्ठा थी।

आपकी शिक्षाका श्री गणेश वीर दि० जैन विद्यालय पपौरा (टीकमगढ़ म० प्र०) से हुआ। वहाँ सन् ३६ से ४० तक आपने प्रवेशिका तथा विशारदकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। इसके बाद श्री स्याद्वाद जैन महाविद्यालय वाराणसीसे आपने शास्त्री, न्यायतीर्थ, बौद्धदर्शनाचार्य एव सर्वदर्शनाचार्यकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीसे एम० ए० (दर्शनशास्त्र) भी कर लिया। सफलता पूर्वक अध्ययन समाप्तिपर सन् १९४९ में जैन छात्र संघ स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीकी ओरसे आपको अभिनन्दन पत्र भी प्राप्त हुआ। सन् १९४५ में गुलाबबाई जैनके साथ आपका विवाह भी हो गया।

अध्ययन समाप्तिके अनन्तर आपका ध्यान उदर पोषणार्थ अर्थोपार्जनकी ओर गया। जुलाई ४९ में आप श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला वाराणसीमें व्यवस्थापक पदपर नियुक्त हुए। अप्रैल ५० में आप आनन्द इन्टर कॉलेज धारमें प्रवक्ता पदपर कार्य करने लगे। जुलाईसे आप श्री एम० एस० एल० जैन कालेज विदिशामें दर्शन शास्त्रके प्रवक्ता नियुक्त किए गए। अब सितम्बर ६० से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीमें बोद्ध दर्शन प्रवक्ता है। इसी अवधिमें आपने जैनदर्शनाचार्यकी परीक्षा भी उत्तीर्ण कर तीन स्वर्णपदक प्राप्त किये।

सन् ६५ से ७६ तक आप श्री भा० दि० जैन विद्वत् परिषदके संयुक्त मंत्री रहे हैं। सन् ६१ से नव-नालंदा महाविहार नालदा (पटना) महापरिषद्से प्रतिनिधि तथा ७२ से श्री गणेश प्रसाद वर्णी संस्थान वाराणसीके उपमंत्री हैं।

२४ वर्षकी अवस्थामें आपको पितृ वियोग तथा ४६ वर्षकी अवस्थामें मातृ वियोग देखना पड़ा। इसके अलावा आपके जीवनमें किसी परितापकी छाया नही उतर सकी।

आप अच्छे साहित्यकार है। आपकी रचनायें विश्ववाणी, मध्य भारत सन्देश, जैन संदेश, जैनगजट, श्रमण, महावीर जयन्ती स्मारिका आदि पत्र पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुआ करती हैं। 'अनेकान्त और स्याद्वाद' 'आप्तमीमासा-तत्त्वदीपिका' एवं 'तत्त्वार्थवृत्तिका हिन्दीसार' आपकी पठनीय कृतियाँ है। वर्तमानमें आप 'प्रमाण वार्तिक' पर शोध कार्य कर रहे हैं।

●

स्व० समाजसेवी मास्टर उग्रसैनजी

●

समाज सेवाके आजन्म व्रती श्री उग्रसैनजी जैनका जन्म ६ फरवरी १८९४ में मेरठ जिलेके ऐतिहासिक स्थान सरधना नगरमें हुआ। आपकी माता श्रीमती चम्पादेवी और पिता श्री पन्नालालजी अग्रवाल कुल भूषण थे।

शिक्षा

सन् १९०८ में सरधनाके स्कूलसे उर्दू मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की तथा १९१४ मे चर्च मिशन स्कूल मेरठसे हाई स्कूल परीक्षा। मेरठके जैन बोर्डिंग हाउसमें रहनेसे धार्मिक शिक्षणके साथ पू० श्री मा० मित्रसैनके आदर्श जीवनसे समाजसेवाकी भावना उत्पन्न हुई।

विवाह

१९११ में झज्झर (रोहतक) के प्रसिद्ध परिवार श्री ला० इच्छारामजी सुगनचन्दके यहाँ ला० हीरालालजीकी सुपुत्री जुगवन्तीदेवीके साथ हुआ।

सन्तान

बड़े सुपुत्र श्री सलेकचन्द्रजी कानपुर टैक्सटाइल इंस्टीट्यूटसे उच्च शिक्षाहेतु इगलैण्ड गये वहाँसे 'Textile technoloy' की डिग्री प्राप्त की। सम्प्रति लाल इमली मिल कानपुरमें आफिस इन्चार्ज हैं। द्वितीय पुत्र श्री राजेन्द्रकुमारजी थे जो २६ वर्षकी अल्पायुमें देवलोक प्रस्थान कर गये थे। आपको दो सुपुत्रियोंका सौभाग्य प्राप्त है।

सेवा कार्य

हाईस्कूल पास करते ही आपको D. D. O. आफिस मेरठमें सर्विस करनी पड़ी। एक साल पश्चात् आप सहारनपुर चले आये। १९१६ से आप जैन स्कूल बड़ौतमें अध्यापक तथा १५ वर्ष तक जैनबोर्डिंग हाउसके सुपरिटेण्डेंट रहे। १९४५ से ५१ तक भारत बैंकके हेड आफिस दिल्लीमें भविष्यनिधि विभागके इन्चार्ज व १९५१ से ६५ तक काशीपुरमें पैट्रोल पम्प एवं सीमेन्ट एजेन्सी आदिका व्यापार फिर १९६५ से कानपुरमें पेपरका थोक व्यापार।

सामाजिक सेवायें

बड़ौत जैन स्कूलमें अध्यापक पदपर कार्य करते आपने गरीब और रोगी बालकोंकी सेवा तथा सहायता की। बोर्डिंग हाउसमें प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन नित्य कर्म था।

परिषद् परीक्षा बोर्ड

सन् १९३०में आपने स्व० ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके आदेशानुसार श्री दि० जैन परिषद् परीक्षा बोर्डका कार्य अपने हाथमें ले लिया और अपनी लग्न एवं अध्यवसायसे उसे विश्वविद्यालय श्रेणी तक ला दिया। इसमें तीनों सम्प्रदायके विद्वानोंका सहयोग प्राप्त है और जिसके माध्यमसे प्रतिवर्ष हजारों जैन एवं अजैन छात्र जैनधर्मका विधिवत् अध्ययन कर परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं। आपने जैन एजूकेशन बोर्डकी स्थापना करके यह कार्य समाजसेवी विद्वानोंके हाथ सौंपकर स्थायी बना दिया था। १९७० तक आप इस बोर्डके मन्त्री रहे थे।

दि० जैन परिषद्के माध्यमसे आपने उल्लेखनीय सामाजिक सुधार किये। दस्सा पूजा अधिकारके लिए आपने पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थके साथ भ्रमण कर बड़ा कार्य किया। 'आदर्श विवाह' की परम्परा को शुरू कर समाजसे संघर्ष भी लिया।

आपने काशीपुरके प्रसिद्ध देवीके मन्दिरमें होनेवाली पशुबलिके विरुद्ध जोरदार प्रचार कराया और उसे कम करवायी। अब वहाँ केवल नारियल चढ़ाते हैं।

आपने काशीपुरमें मंदिरजीका जीर्णोद्धार करवाकर वेदी प्रतिष्ठा करवायी और उसी अवसरपर रुहेलखंड कुमायूँ जैन परिषद्‌की स्थापना की।

जैन जनगणना और डायरेक्टरी प्रकाशनमें आपने बड़ा कार्य किया था। आपने बोर्डकी पाठ्य पुस्तकोंके अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्य विभिन्न विद्वानोंको प्रेरितकर तैयार करवाया तथा 'सरधना' एवं 'णमोकार मंत्र' पर आपने स्वयं पुस्तकें लिखी।

आपका कई धार्मिक संस्थाओंसे सम्बन्ध रहा है। आप श्री बाँकेलाल चम्पतराय जैन एकाडमीके ट्रस्टी व सभापति थे तथा सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द्र जैन ट्रस्ट विदिशाके भी ट्रस्टी थे।

शाहजहाँपुर, काशीपुर और जसपुरके मन्दिरोंका जीर्णोद्धार तथा हल्द्वानीमें जैनमन्दिरकी स्थापना के लिए प्रेरणा देकर तैयार करवाया।

आप अतिथि सत्कार तथा मानव प्रेमके जीवन्त उदाहरण हैं।

●

पं० उत्तमचन्दजी 'राकेश'

●

बुन्देलखंडकी ऐतिहासिक नगरी ललितपुरमें ५ जनवरी १९३६ को जन्म हुआ। समाजसेवी श्री दामोदर दासजी आपके पिता हैं। आपकी माताका नाम श्रीमती मलीदाबाई है। प्रारंभिक शिक्षा समाप्त कर सर हुकमचन्द महाविद्यालय इन्दौर एवं बरैया महाविद्यालय मोरेनामें आपने शास्त्रीय तक की शिक्षा प्राप्त की। तथा आगरा विश्वविद्यालयसे एम० ए० हिन्दी एवं संस्कृत भाषासे पास किया।

छात्र अवस्थामें अब तक आपको अपनी प्रतिभा एवं कार्यक्षमताके अनुरूप सम्मान पत्रोंसे सम्मानित किया गया।

१६ वर्षकी अवस्थामें १९५२ में आपका पाणिग्रहण संस्कार श्रीमती प्रभादेवीके साथ सम्पन्न हुआ। वर्तमानमें आपको चार बच्चे एवं दो बच्चियाँ है।

सन् १९५९से आप ललितपुरकी ख्याति प्राप्त शिक्षण संस्था श्रीवर्णी जैन इण्टर कॉलेजमें प्राध्यापक हैं। इसके साथ ही अनेक स्थानीय संस्थाओंके पदाधिकारी भी हैं। आरंभसे ही आपमें लेखनकी अभिरुचि रही है। यही कारण है कि आप नवोदित लेखकोंमें प्रतिभाशाली हैं। खेलकूद एवं व्यायामसे भी आपको अभिरुचि है यही कारण है कि आपने अनेक विपुल जनसमूह युक्त आयोजनोंमें युवक दलके कैपटेनके रूपमें महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की।

कर्मठ समाजसेवी, धर्म प्रभावनाके कट्टर हितैषी एवं सुवक्ताके रूपमें आपका नाम सदैव आदरके साथ लिया जाता है। समाजको आपसे अनेक आशाएँ हैं।

●

पाण्डेय उग्रसेनजी शास्त्री

श्री उग्रसेनजीका जन्म आगरा जिलेके नगलास्वरूप नामक एक छोटेसे ग्राममें हुआ। आपके पिता श्री सुखनन्दन लालजी कृषिकर्मी व्यक्ति थे। आपकी माँका नाम श्रीमती रामप्यारी देवी था। १३ माहकी अवस्थामें आपको माँके असीम प्यारसे वंचित होना पड़ा। ४ वर्षकी अवस्थामें चेचकके भयंकर प्रकोपसे आपका जीवन बुझते बुझते बचा। छोटी दादीके लालन पालनने आपके मातृ वियोगके दु:खको अनुभवमें नहीं लाने दिया।

६ वर्षकी आयुमें आपने पढ़ना आरंभ किया। ८ वर्षकी आयुमें अपनी दादीके साथ श्री शिखरजीकी यात्रा की, बारह वर्षकी उमरमें आपने कक्षा ५ पास किया। आपका रुख अध्ययनकी ओर देखकर आपके चाचाजीने आपको सहारनपुर श्री दि० जैन जम्बू विद्यालयमें प्रविष्ट करा दिया वहाँ आप प्रवेशिकामें दाखिल हो गये।

प्रवेशिका तथा विशारदके तीनों खंड उत्तीर्ण करनेके बाद आपने शास्त्री, ज्योतिष शास्त्री, ज्योतिष रत्न और ज्योतिष आचार्य किया।

फाल्गुन शुक्ल द्वितीया सवत् १९९७ मे किरणदेवीके साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ किन्तु टी०बी० रोगाक्रान्त होनेके कारण ३वर्ष बाद किरणदेवीका निधन हो गया। आपकी सासजीने दूसरी शादी (आपकी) सालीके साथ) कर दी किन्तु ३ वर्ष बाद आपकी दूसरी पत्नी सोमश्री भी टी० बी० रोगमे ही चल बसी। तब आपमें विरक्ति उत्पन्न हो गयी और आप विवाह सुखकी कामनासे बहुत दूर हो गए किन्तु दादी (जिन्होंने आपको पाला था) की स्नेहसिक्त आज्ञासे विमलादेवीके साथ आपको फिर विवाह करना पड़ा। जिनसे आपको तीन पुत्र और दो पुत्रियोंका योग मिला।

आपका जीवन समाजसेवा धर्मप्रभावना एवं सामाजिक संस्थाओंकी समुन्नतिमें बीतता है। अनेक संस्थाओंके संस्थापकके रूपमें सदैव आप स्मरणीय रहेंगे।

स्व० डा० बाबू कामताप्रसादजी

साहित्य-साधक

डा० कामताप्रसादजीकी गणना उस महान् व्यक्तियोंमेंसे है, जिन्होंने जीवनपर्यन्त जैन साहित्य, पुरातत्त्व एवं समाज सेवामें अपनेको एकाकार कर दिया था। सेवाकी उत्कट भावनासे प्रेरित होकर अपने मिशनका काम आगे बढ़ाया। उन्होंने जो कुछ लिखा 'सर्व सुख हिताय' और लोकोपकारकी भावनासे लिखा है। १९३२ से एकाकी जीवन बिताकर आपने सारा समय, सारी शक्ति और सम्पत्ति साहित्य-सेवा और साहित्य-सृजनमें लगायी। वह स्वयंमें एक साहित्य-संस्था बन गये। साहित्य-निर्माणकी लौ छोटेसे नगर अलीगंज (एटा)में रहकर अखंड जली और इस हेतु आपको जहाँसे जिस ग्रंथकी आवश्यकता होती थी, मँगवाकर अध्ययन करते थे। प्रायः इम्पीरल लायब्रेरी कलकत्तासे पुस्तकें मँगवाया करते और पढते। उनको एक अर्थमें तत्कालीन विघटित समाजका सूत्रधार कहें तो अत्युक्ति न होगी।

परिचय : एक जीवनवृत्त

डा० साहबका जन्म १९०१ ई० में कैम्पबेल्पुर ग्राममें हुआ था जो आजकल पाकिस्तानमें है। आपके पिता ला० प्रागदास 'बडेलवाल दि० जैन कुल'के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे जो बैंकिंगका कार्य करते थे। आपका बचपन सिन्ध हैदराबादमें व्यतीत हुआ और यहीं एक सिक्ख-शिक्षण संस्था 'नवलराम हीराचन्द एकाडेमी' में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। यहीं आपका समागम स्व० ब्र० शीतलप्रसादसे हुआ जिनके प्रोत्साहनसे आप साहित्य क्षेत्रकी ओर मुडे। कुछ समय पश्चात् बाबूजी हैदराबाद छोडकर अपने पिताजीके साथ अलीगंज आकर रहने लगे। आज अलीगंज बाबूजीकी साहित्यिक एवं सामाजिक गतिविधियोंके कारण देशमें ही नहीं विदेशों तकमें प्रसिद्ध हो गया। यहीं रहते हुए आपने ऑनरेरी मजिस्ट्रेट और असिस्टेंट कलेक्टर जैसे उत्तरदायी पदोंपर कार्य किया और न्यायप्रियता एवं कर्त्तव्यनिष्ठामें लोगोंके हृदय सहज जीत लिये।

आप कितनी ही सभा सोसाइटियोंके संयोजक, मंत्री व अध्यक्ष रहे और विदेशोंमें कई बार आमन्त्रित किये गये।

शोध और साहित्यके क्षेत्रमें अमूल्य सेवायें

आपका पहला लेख 'जैनधर्म क्या है ?' ट्रेक्टके रूपमें और पहली मौलिक रचना 'भगवान् महावीर' जैन पुस्तकालय सूरतसे प्रकाशित हुई। स्व० बैरिस्टर चम्पतरायजी आपकी रचनाओंसे बहुत प्रभावित हुए और कई रचनायें लिखनेकी प्रेरणा दी।

आपकी ऐतिहासिक शोधों एवं अन्वेषण युक्त साहित्यने आपको एक प्रामाणिक स्कॉलर बना दिया। आपकी शोधपूर्ण निबन्धावलियाँ कुछ निम्न प्रकार हैं :—

१. भ० महावीर और भ० बुद्धके पारस्परिक सम्बन्धको मौलिक रूपसे स्थापित किया। २. सम्राट् अशोकके जैनत्वपर नया प्रकाश डाला। ३. दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायोंकी उत्पत्तिपर अपने शिलालेखीय एवं साहित्यिक साक्षीसे गवेषणात्मक निर्णय लिये। ४. हिन्दी भाषा लिपिसे सर्राफी (मुड़िया) लिपि का प्रादुर्भाव पर शोधपूर्ण लेख। ५. दिगम्बरत्वकी धार्मिकता और महत्तापर मौलिक विचार प्रस्तुत किये। अंग्रेजी और हिन्दीके उच्चकोटिके साहित्य-निर्माणमें गहरा हाथ रहा और कई विदेशी अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में आपके लेख प्रकाशित होते रहे। जितना लिखा उससे ज्यादा उसका प्रचार किया। आपकी सम्पादित एवं लिखित पुस्तकोंकी संख्या कुल १०१ है। जिनमें अंग्रेजी भाषाकी १२ पुस्तकें, अंग्रेजीमें अनुवादित ७, अंग्रेजीसे हिन्दीमें अनुवादित ९, हिन्दी भाषामें निबद्ध ७१ तथा सम्पादित पत्रिकाओंके रूपमें २ पुस्तकें हैं।

आपने सन् १९२४ से १९६४ तक लगातार ४० वर्ष तक साहित्यकी सेवा की। कई शब्दोंमें

'संक्षिप्त जैन इतिहास' पुस्तककी रचना कर जैन इतिहास निर्माणमें उल्लेखनीय कार्य किया। यशोविजय जैन ग्रन्थमालाकी ओरसे 'भगवान् महावीर' विषयके निबन्धपर स्वर्णपदक प्राप्त किया था। भारतीय विद्या-भवन बम्बईके तत्वावधानमें आयोजित प्रतियोगितामें हिन्दी जैन साहित्यपर आपको रजतपदक प्राप्त हुआ। कनाडाके अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानमें सर्व धर्मके तुलनात्मक अध्ययन पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। वाराणसीकी संस्कृत परिषद्ने आपको सिद्धान्ताचार्यकी सम्मानित उपाधिसे अलंकृत किया था। रायल एशियाटिक सोसाइटी लन्दन, कोसरलिंग सोसाइटी जर्मनीके आप सम्माननीय सदस्य रहे। तथा अमेरिकाके अन्तर्राष्ट्रीय धर्म संघमें आपको सर्वोच्च सम्मान मिला।

स्व० बैरिस्टर चम्पतरायजी द्वारा स्थापित 'जैन एकेडेमी आफ विसडम एण्ड कल्चर' द्वारा आपकी साहित्यिक सेवाओंको लक्ष्य करके 'Doctor of Law' की उपाधि प्रदान की गयी।

प्रमुख ग्रन्थ :

१. धर्म-शास्त्र : (i) सत्यमार्ग, (ii) आत्मिक मनोविज्ञान, (iii) भ० महावीर, (iv) भ० महावीर और महात्मा बुद्ध, (v) संक्षिप्त जैन इतिहास (तीन भागोंमें), (vi) जैन वीरोंका इतिहास, (vii) सम्राट अशोक और जैनधर्म, (viii) भ० महावीर की अहिंसा आदि।

२. पुरातत्त्वीय ग्रन्थ : (i) दि० जैन मूर्ति लेख और प्रशस्ति संग्रह (वर्धा एवं आराके पृथक-पृथक संस्करण), (ii) प्रवचन पुष्प, (iii) जैन उपजातियोंकी उत्पत्तिका इतिहास।

३. कथा-साहित्य : (i) पंच-रत्न, (ii) नव-रत्न, (iii) महारानी चेलना, (iv) बाल-चरितावली।

४. अँग्रेजी साहित्य : (i) Mahavir and Budha, (ii) Some Hestorical Jain Kings and Hervs, (iii) Lord Mahavir and Some other teachers etc.

५. अन्य कृतियाँ : (i) पतितोद्धारक जैनधर्म, (ii) जैन जातिका ह्रास और उन्नतिका उपाय, (iii) विशाल जैन संघ, (iv) जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, (v) बृहत् स्वयंभू स्तोत्रका (पद्यानुवाद) आदि।

इसके अतिरिक्त कई पठनीय ट्रेक्ट आदि।

मिशन संस्थापकके रूपमे

देश-विदेशमें अहिंसा एव शाकाहारीके प्रचारके लिए आपने अखिल विश्व जैन मिशनकी स्थापना की थी और उसके प्रचार एवं विस्तारके लिए पूरी लगनसे जीवन पर्यन्त काम किया। आपने कितने ही विदेशियोंमे सम्पर्क स्थापित कर उन्हें मिशनके उद्देश्योंसे अवगत कराया और बाहर विभिन्न प्रकारका साहित्य भेजकर अहिंसाकी ओर आकृष्ट किया।

आपने अपने सद्प्रयासों द्वारा कितने ही विदेशियोंको पूर्ण शाकाहारी बनाकर रात्रि भोजन त्याग करवाया जिनमें डा० अर्नेस्ट विल्हम मेयर (पं० जर्मनी), मि० बुडलैण्ड वाल्टर (पेरिस), प्रो० काउन्ट आरन-मैंड, केसरलिंग, प्रो० लोथर वेंडल आदिके नाम उल्लेखनीय हैं।' आप इसके आजीवन संचालक रहे तथा इस माध्यमसे हिन्दू, मुसलिम, सिख सभीको आमन्त्रित कर एक ही मंचपर धर्मनिरपेक्षताका उदाहरण प्रस्तुत किया।

पत्रकारके रूपमें

सर्वप्रथम १९२३ में आपने 'वीर' का सम्पादन प्रारम्भ किया जिसके ३० वर्षसे अधिक आप विशेष सम्पादक रहे। इसके साथ 'अहिंसा वाणी' और 'वायस आफ अहिंसा' का जीवनपर्यन्त सम्पादन कर एकसे एक उच्चकोटिके उनके विशेषांक निकाले। आपने हमेशा नवोदित लेखकोंको प्रोत्साहित किया। आप इतिहास-कार और पुरातत्त्ववेत्ताके रूपमें भी समाजके सामने आये और दोनों क्षेत्रमें आपने सराहनीय कार्य किये।

इस प्रकार डा० साहब जैन साहित्यके प्रांगणमें अपना एक अनूठा स्थान बना गये। मधुर संभाषण और मिलनसारी आपके प्रमुख गुण थे। अभिमान जैसे छू तक नहीं गया था। जीवन भर आपने अपने ज्ञानको मुक्त हस्तसे लुटाया और कमी उसे अवरुद्ध नहीं होने दिया। सेवा और सरलताके साकार मूर्ति बाबूजीकी प्रतिभा बहुँमुखी और सर्वतोभावेन थी। ●

स्व० पं० कस्तूरचन्दजी शास्त्री

●

लाल पगड़ी वाले स्व० पं० कस्तूरचन्दजी शास्त्री जो कोडरमा वाले, ईसरीवाले, बड़नगरवाले और जीवनके अन्तिम वर्षोंमें सतना वाले पंडितजीके नामसे पुकारे गये, एक ऐसे व्यक्तित्व थे, जिन्होंने ईसरीमें शिक्षा मन्दिरकी स्थापना कर धार्मिक शिक्षणके व्रतको पूरा किया।

जन्म सन् १९०० में मध्यप्रदेशमें रायसेन जिलेके ग्राम नरवरमें हुआ था। आपके पिता श्री सोहनलाल नरवर इलाकेके मुखिया थे। आपके पूर्वज चन्देरीके निवासी और घोड़ोंपर भौरी बन्जी करके भरण-पोषण करते थे। बाल्यावस्थामें पिताका साया सिरसे उठ जानेके कारण उनकी मातु श्री बेटीबाई पर आपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा जिन्हें अपने छोटे चार पुत्रों और तीन सुपुत्रियोंका पारिवारिक दायित्व निभाना पड़ा और आपने बीना (इटावा)में अपने फूफाजीके यहाँ आश्रय लिया।

शिक्षा

बीना आये, सर सेठ हुकमचन्द जैन विद्यालय इन्दौरके तत्कालीन प्रधानाध्यापक श्री पं० जीवन्धरजी शास्त्री न्यायालंकारकी दृष्टि होनहार युवक विद्यार्थी कस्तूरचन्दपर पड़ी और अपने साथ इन्दौर ले गये जहाँ उन्होंने तीन वर्ष धर्म एवं न्यायकी उच्च शिक्षा प्राप्त की। अन्तमें मोरेनामें दो वर्ष पू० पं० श्री मक्खनलालजी न्यायालंकारके शिष्यत्वमें रहकर शास्त्रीकी उपाधि, मुरैना जैन विद्यालयसे प्राप्त की।

सामाजिक कार्य एवं संस्थाका स्थापन

सन् १९३५ में कोडरमामें जैन विद्यालयके माध्यमसे सराक जातिके उद्धारार्थ पच्चमोसों विद्यार्थियों को अनपेड भर्ती कर उन्हें धार्मिक शिक्षणके लिए प्रोत्साहित किया और इस प्रकार समाजके इस विस्मृत वर्गके उन्नयनमें सक्रिय सहयोग दिया।

सन् १९३८में श्री सम्मेदशिखरजीके प्रवेश द्वार ईसरीमें (पार्श्वनाथ) दि० जैन शिक्षा मन्दिरकी स्थापना की जो आज महाविद्यालयके रूपमें संचालित हो रहा है।

लोकप्रियता एवं सम्मान

आपने सहायक प्रतिष्ठाचार्य एवं प्रतिष्ठाचार्यके रूपमें भारतवर्षके अनेक प्रतिष्ठाओंमें यथेष्ठ ख्याति एवं सम्मान प्राप्त किया। आपकी वक्तृत्व-कलासे प्रभावित होकर समाजने आपको महोपदेशककी उपाधिसे विभूषित किया था। आपको समय-समयपर अभिनन्दन पत्र जैन सभाओं और सम्मेलनोंमें प्राप्त हुए।

गृहस्थाचार्यके रूपमें

पंडितजीका विवाह १९२५ में सीहोरके श्री मूलचन्दजीकी पुत्री सरलादेवीके साथ हुआ था। आपके चार पुत्रोंका सुयोग प्राप्त हुआ था। १९६६में जलोदर रोगके कारण जबलपुरमें देहावसान हो गया था।

जब तक श्री पार्श्वनाथ दि० जैन महाविद्यालय रहेगा वह पंडितजीकी कीर्तिगाथा गाता रहेगा।

●

विद्यावारिधि डा० कस्तूरचन्द् कासलीवाल

जीवन वृत्त : डा० कासलीवालजीका जन्म ८ अगस्त १९२० को जयपुरसे ६४ कि०मी० दूर सैथल ग्रामके एक सम्पन्न घरानेमें हुआ था। आपके पिता श्री स्व० गेंदीलालजी कपड़ेके व्यापारी थे। ४ वर्षकी अल्पायुमें माँका वियोग देखना पड़ा।

शिक्षा : आपकी प्राथमिक शिक्षा गाँवमें ही हुई पश्चात् उच्च शिक्षा हेतु आप जयपुर आये और प० चैनसुखदासकी छात्रछायामें जैन संस्कृत कालेजमें प्रविष्ट हुए। १९३९ में शास्त्री परीक्षा बादमें अँग्रेजी शिक्षाकी ओर झुकाव हुआ। १९४० में मैट्रिक उत्तीर्ण कर १९४६ में एम० ए० (संस्कृत) किया। यद्यपि आजीविका हेतु आपको शासकीय कार्यालयमें अकाउन्टस्का कार्य अपनाना पड़ा परन्तु अध्ययनके प्रति रुझान कम नही हुआ और १९५६ में राजस्थान विश्वविद्यालयमें शोध स्नातक होकर राजस्थानके जैन ग्रन्थ भण्डारों पर शोध प्रबन्ध लिखकर इतिहास विषयमें १९६१ में पी-एच० डी० हुए।

साहित्यिक जगत्में अपूर्व और विशिष्ट योगदान

सर्वप्रथम जयपुरके विख्यात संगीतज्ञ स्व० नानूलालजीके पदोंका संकलन 'नानू भजन संग्रह' के रूपमे किया। जिससे प्रारम्भसे ही आपके सम्पादकोचित प्रौढ़ताका परिचय मिल गया।

अ० क्षेत्र महावीरजीके प्रधान कार्यालयमें साहित्यशोध संस्थानकी स्थापनामें ही आपने कार्य प्रारम्भ किया। आप उक्त साहित्य शोध संस्थानके प्रमुख रहे और प० अनूपचन्दजी न्यायतीर्थने सहायकके रूपमें आपको सहयोग दिया। आपने इसके अन्तर्गत १०० से भी अधिक ग्रन्थ भण्डारोंकी छानबीन और सुव्यवस्था की तथा ग्रन्थ-सूचियाँ तैयार की। संस्कृत, प्राकृत और हिन्दी (राजस्थानी) के पाँच सौसे अधिक ग्रन्थोका परिचय प्रशस्ति आदि प्रस्तुत किया। हस्तलिखित ग्रन्थोंका अध्ययन और वांछित जानकारीका संचयन बड़ा श्रमसाध्य कार्य आपने किया। जैन साहित्य-इतिहास और पुरातत्त्वके क्षेत्रमें की गयी इन अमूल्य सेवाओंका मूल्यांकन भविष्य ही करेगा।

आपने ५०० से अधिक प्राचीन साहित्य पर परिचयात्मक एवं आलोचनात्मक लेख लिखे जो समय-समय पर अनेकान्त, वीरवाणी, सन्मतिसंदेश आदि जैन पत्रों तथा मध्यप्रदेश संदेश (ग्वालियर), कादम्बिनी, साहित्य सम्मेलन पत्रिका (प्रयाग), राष्ट्रदूत (जयपुर), राजस्थान पत्रिका आदि पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुये।

आपने अब तक २० ग्रन्थोंका लेखन तथा सम्पादन किया। राजस्थानके जैनशास्त्र भण्डारोंकी सूचियाँ पाँच भागोंमें (करीब दो हजार पृष्ठों) प्रकट की। आमेर शास्त्र भण्डारकी ग्रन्थ प्रशस्तियाँ और ग्रन्थकार प्रशस्तियाँ 'प्रशस्ति संग्रह' नामसे १९५० में प्रकाशित करवायी। 'बनारसी विलास', 'चम्पाशतक' 'हिन्दी पद संग्रह', प्रद्युम्न चरित और जिनदत्त चरितका सम्पादन किया। महाकवि दौलतराम कृतित्व और व्यक्तित्व ग्रन्थ पर तो शास्त्रिपरिषद्का पाड्या पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'राजस्थानके जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व' पर विद्वद् परिषद्से पुरस्कार प्राप्त किया। अक्टूबर सन् १९७४ मे वीर निर्वाण भारती द्वारा आप विशेष ढंगसे सम्मानित किये गये। तथा 'इतिहास रत्न' उपाधिमें अलंकृत किये गये।

अंग्रेजीमें शोध प्रबन्ध 'Jain Granth Bhandrs in Rajasthan' प्रकाशित करवाया। 'राजस्थानके जैन सन्त' ग्रन्थ साहित्य शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित करवाया। कलकत्तेमें आयोजित प्राचीन ग्रन्थोंकी प्रदर्शनीमें २९ दुर्लभ ग्रन्थ ले जाकर सहयोग दिया।

पत्रकारके रूपमें एवं अन्य सामाजिक सेवायें

वीरवाणी (पाक्षिक) के १९६४ से सम्पादक मण्डलमें हैं। आपकी विशेष सेवाओंका क्षेत्र राजस्थान जैन साहित्य परिषद् है जिसके आप अध्यक्ष हैं। जो प्रतिवर्ष एक स्मारिका प्रगट करती है। अ० विश्व जैन मिशन जयपुर शाखाके उपाध्यक्ष रहे हैं। आपने बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रन्थका भी सम्पादन किया था तथा वीरवाणीके प्रायः सभी विशेषांकोंमें आपका विशेष सहयोग रहता है। वर्तमानमें तो आप अनेक संस्थाओंके पदाधिकारीके रूपमें समाज सेवाका दायित्व निभा रहे हैं।

आपको अलीगंज (एटा) में अन्तर्राष्ट्रीय जैन शोध विद्यापीठके वार्षिक समारोह (दिसम्बर १९६७) 'विद्यावारिधि' की उपाधि प्राप्त हुई थी।

आपकी पत्नी श्रीमती तारादेवी भी समाजसेवी विदुषी महिला हैं। आपके अग्रज श्री चिरंजीलालजी समाजके माने हुए कार्यकर्त्ता हैं तथा लघुभ्राता श्री प्रभुदयालजी चिकित्सा क्षेत्रके माने हुए चिकित्सक हैं। आपकी तीन पुत्रियाँ निर्मला, शशि एवं सरोज तथा दो पुत्र निर्मल एवं नरेन्द्र नई पीढ़ीके होनहार बालक हैं।

●

पं० कोदरलाल 'कपिलभाई'

●

महान् समाज सेवी कपिलभाई तलकचन्दजीका नाम साबरकांठा जिलेमें बड़े आदर और श्रद्धासे लिया जाता है। हिम्मतनगरकी अनेक सहकारी समितियों, कोपरेटिव बैंकों तथा उद्योगीय संघों और बोर्डोंके आप अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, संचालक तथा ऑनरेरी सचिव आदि उत्तरदायी और सम्मानित पदोंपर आसीन हो जन और राष्ट्र सेवामें अपना पूरा समय दे रहे हैं।

आपका जन्म बेरणा जिला साबरकांठा (गुजरात) में श्री तलकचन्दके घर ११ नवम्बर १९२० में श्रीमती रतनबेनकी कोखसे हुआ था। आपके पिताजी छोटे पैमानेपर सर्राफेका व्यवसाय करते थे। पंचोंमें मुखियाके पदपर थे।

शिक्षा दीक्षा—बेरणा प्राथमिक शालामें प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्तकर ईडरकी सरप्रताप हाईस्कूलसे मेट्रिक परीक्षा प्रथमश्रेणीमें उत्तीर्ण की। १९४४ में शामलदास कालेजसे बी० ए०। १९४७ में गुजरात वर्नाकुलर सोसाइटी अहमदाबादसे एम० ए० (गुजराती एवं संस्कृत) तथा एल-एल० बी० उत्तीर्ण की। इसके

साथ धार्मिक शिक्षण—दि० जैन बोर्डिंग ईडर में। आप अपने समयके मेधावी छात्र रहे तथा बी० ए० (ऑनर्स) में स्वर्णपदक प्राप्त किया।

आर्थिक उपार्जन—जीविकोपार्जन हेतु प्रारम्भमें वकालत की परन्तु १९५८ से यह कार्य त्याग दिया। जीवन बीमाका काम प्रारंभ किया और कर रहे हैं। कुछ माहोंके लिए आपने गुजरात स्टेट मार्केटिंग सहकारी सोसाईटी अहमदाबादमें मार्केटिंग आफीसरके पदपर कार्य किया परन्तु उसमें नैतिकताका अभाव देख छोड़ दिया।

सामाजिक क्षेत्र में व्यापक सेवायें—आपकी सामाजिक सेवायें विशेष उल्लेखनीय हैं। आप साबरकांठा जिला सहकारी समिति, सर्वोदय हाऊसिंग सहकारी समिति, कृषि उत्पादक बाजार समिति, हिम्मतनगर सहकारी बैंक तथा खादी बोर्डके अध्यक्ष।

साबरकांठा जिला कोपरेटिव उद्योगीय संघ, जिला कोप० खादी और ग्रामोद्योग मण्डल हिम्मतनगर आदिके उपाध्यक्ष। प्रान्तीय उद्योगीय सहकारिता संघ आदि कई समितियोंके संचालक, हिम्मतनगर तालुका विकास परिषद् के ऑनरेरी सचिव तथा गुजरात स्टेट सहकारिता सघकी कार्यकारिणी समिति तथा अखिल भारतीय तेल एसोसिएसन पूनाकी कार्यकारिणी समिति आदिके सदस्य है।

इसके अलावा हिम्मतनगर आदिम जाति केलावनी मण्डलके सचिव, सामाजिक संस्था आत्मानन्द मंगलजीकी फर्मके अध्यक्ष तथा आदिवासी सेवा समिति शामलजीके सदस्य है।

इसी प्रकार आप अनेकों सलाहकारी बोर्डों, कोप० बैकों, आदिके चेयरमैन और संचालक रहे। शायद ही कोई इतने अधिक उत्तरदायित्वोंका निर्वाहन कर पाता हो जितना कपिल भाई अपने जीवन कालमें कर रहे हैं।

साहित्यिक और धार्मिक सेवायें—आपकी स्वाभाविक रुचि धर्मके प्रति उन्मुख है। लोकोपयोगी कार्यों द्वारा धर्मको जीवनका अभिन्न अग बना लिया। अनेक धार्मिक प्रवचन किये और करते रहते है जिनके माध्यमसे सोनगढकी एकान्तिक मान्यता और कार्य नीतिका विरोध करना, जैन छात्रालयोके लिए चन्दा एकत्रित करना आपकी प्रमुख सामाजिक और प्रवृत्तियाँ रही।

'समाज सेवक' (सामाजिक मासिक) का दो वर्ष, महाकांठा प्रजापत्र (राजकीय) का दो वर्ष, जैन शासन (धार्मिक मासिक) का तीन वर्ष, सहकार (साप्ताहिक) का दो वर्ष तथा ग्राम स्वराज (मासिक) का दो वर्ष सम्पादन किया। इसके अलावा 'दिगम्बर जैन', जैनशासनके सम्पादकीयमे, 'आगे कूच' आदिमे सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए हैं। आपकी मातृभाषा गुजराती होनेसे अधिकतर मातृभाषामे लिखा परन्तु संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान है। वर्तमानमे धार्मिक ग्रन्थोका वाचन और स्वाध्याय सतत जारी है।

आपको अपनी विशिष्ट सेवाओंके लिए कई स्वर्णपदक एवं अभिनन्दन पत्र प्राप्त हुए।

•

कविवर कल्याणकुमारजी 'शशि'

सरस्वतीके वरद पुत्र जिन्हे कवित्व शक्ति नैसर्गिक देनके रूपमें मिली और जिनकी प्रत्युपन्न मतिने कवित्व प्रवाहको और वेगसे जीवनमें बढाया ऐसे कविवर आज भी अपनी वृद्धावस्थामें युगकी क्रान्तदर्शिनी चेतनाके साथ कदमसे कदम मिलाकर चल रहे हैं।

आपका जन्म उत्तरप्रदेशके रामपुर नगरमें सन् १९०८ मार्चमें हुआ था। पिता श्री बी० एल० जैन सन्तोषी और सद्गृहस्थ थे। आप न तो कोई डिग्री या उपाधि प्राप्त शिक्षार्थी रहे और न किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालयमें अध्ययन ही किया। परन्तु 'वैद्यक'की शिक्षा अवश्य ग्रहण की। और १९३२ से स्वयंकी जैन फार्मेसीमें चिकित्सा कार्य करके दवाओंका निर्माण और विक्रय करते है। उच्च शिक्षाके लिए रामपुरसे बाहर इसलिए न जा सके कि कोई अल्पायु (४ वर्ष) में आपको पिताका वियोग हुआ और एक विषम आर्थिक संकटके संक्रमण कालसे आपको गुजरना पड़ा। परन्तु संघर्षोंने आपकी कवित्व शक्तिको और और स्वर तथा प्राण दिये। और १९ वर्षकी अवस्थासे आप कविताओंको रचने लगे थे।

तबसे आज तक देशके सभी प्रमुख पत्र पत्रिकाओं और सभी जैन पत्रिकाओंमें आपकी सैकडों कविताएँ निकल चुकी हैं।

अविराम साधक और साहित्य सर्जक

कविता आपके लिए कल्पना लोकको वस्तु नही वल्कि इसी धरतीसे जन्म लेने वाली सौरभमयी चेतना रही हैं। आपकी साहित्य सर्जना रामपुरमें काव्योपासकोंके लिए लगभग चार दशकोसे अधिकसे प्ररणा स्फूर्ति और मार्ग दर्शनका केन्द्र बिन्दु रही है। यहाँकी धरतीमें आपने काव्य रचना और सुरुचिपूर्ण सहृदयताका जो बीज बोया है वह अनेक रूपोंमें पल्लवित और पुष्पित, फलित हुआ।

'देवगढ़ दर्शन', हृदयकी आग, पंखुरिया, जैनसमाज दर्पण, मेरी आराधना, कविता कुंज, कविता संग्रह (दो भाग), अहिछत्र पार्श्वनाथ एवं शौरीपुर वटेश्वर पूजन आदि स्वतंत्र कृतियां है। संस्कृतसे अनूदित 'सरल जैन विवाह सस्कार विधान' आपकी पद्यमय रचना है।

देशके प्रमुख बडे-बडे कवि सम्मेलनोंमें आपको आमंत्रणमें अवश्य ही बुलाया जाता है जिसमें आपने अब तक हजारों कवितापाठोंका वाचनकर ज्ञानवृद्धि और मनोरंजनके संगमका लाभ श्रोताओंको दिया है। आपकी कविताओंमें राष्ट्रीयताको ज्यादा पुट मिलती है।

समाज सेवकके रूपमें

आपका उद्देश्य शिक्षाका प्रसार रहा है। इस उद्देश्य हेतु आपने रामपुरमें जैन इण्टर कॉलिजकी स्थापनामें बडा हाथ बँटाया। हिन्दीके प्रचारार्थ जैन लाईब्रेरीकी स्थापना करायी तथा १९४० में रामपुरमें हिन्दी साहित्य गोष्ठीकी स्थापना की। वर्तमानमें आप उक्त इण्टर कॉलेज और पुस्तकालयके अध्यक्ष हैं। तथा हिन्दी उच्च० माध्य० कन्या विद्यालयके ऑनरेरी मैनेजर। डिस्ट्रिक्ट जेल रामपुरके आप विजीटर हैं।

आपको १९६४ में जैन समाज रामपुर द्वारा 'आशु कवि' की उपाधि तथा १९६८ में राजकीय महाविद्यालय रामपुर (उ० प्र०) द्वारा अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया था।

राजनीतिक्षेत्रमें

१९२८ से १९३० तक मुरादाबादमें कांग्रेसका कार्य किया और वहांके सत्याग्रह आश्रमके अध्यक्ष रहे। १९३० में एक अंग्रेज एस० पी० के ऊपर बम्ब फेंकनेके अपराधमें १ वर्ष रावलपिण्डी जेल रहे। इस प्रकार आप पोलिटिकल सफररके रूपमें प्रमाणपत्र प्राप्त कर चुके हैं।

पत्रकारके रूपमें

आपने १९५०-५१ में 'सन्देश' (दैनिक), १९५५-६६ तक प्रदीप (साप्ताहिक) तथा आदर्श जैन चरितमाला (मासिक) का १९४० में सम्पादन किया।

जहां आपकी रचनायें सभी जैन पत्र पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुई हैं वहां ज्ञानोदय, धर्मयुग, नवभारत टाइम्स, पराग, नन्दन और प्रदीप आदि सैकड़ों पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुई और होती रहती है।

चन्द्रशेखर आजाद (१९३० में) और स्व० प्रेमचन्द (कहानीकार) से आपकी भेंट क्रमशः काश्मीर और दिल्लीमें हुई थी। आपकी कवित्व शक्ति पूर्ण प्रौढ़ता लिए हुए धर्म और साहित्यकी जो सेवा कर रही है वह वस्तुतः कविवर 'शशि' जीकी प्रतिभा और विलक्षण व्यक्तित्वका प्रभाव है। आज भी आपकी ज्ञान-शिखा हृदयोंमें पुलक और मुखोंपर स्मितकी रेखा खींच देती है।

●

स्व० पं० किशोरीलालजी शास्त्री

●

जन्मस्थान एवं तिथि—मालथौन जिला सागर (म० प्र०) पौष शुक्ला त्रयोदशी वि० सं० १९६२।

पिता—श्री जगन्नाथ प्रसादजी—बीस सहस्र बडे मन्दिरजी मालथौनके प्रधान।

शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षा बमराना। श्री महावीर पाठशाला साढूमलसे विशारद एवं न्याय मध्यमा (१९१८-१९१९ में)। श्री गणेश दि० जैन विद्यालय मोरेना एवं शिक्षा मन्दिर जबलपुरमे शास्त्री (द्वितीय-खण्ड) सम्पूर्ण शास्त्री-ब्रह्मचर्याश्रम कारंजासे।

आर्थिक उपार्जन—वि० सं० २००० तक मालथौन, साढूमल (मडावरा), पपौरा तथा मोरेनाके विद्यालयोंमें अध्यापन कार्य सं० २००० से अन्त समय तक व्यापार, साहूकारी एवं प्रतिष्ठादि। आपका स्थायी निवास टीकमगढ़में हो गया था।

सामाजिक तथा साहित्यिक सेवायें—१९३२-३३ से ९ वर्ष तक भा० दि० जैन महासभा सिवनी के साप्ताहिक मुखपत्र 'जैन गजट' के सहायक सम्पादक।

अतिशय क्षेत्र पपौराके ६ वर्ष तक मंत्री और अन्त तक अधिष्ठाताके गुरुत्व पदपर आसीन रहे।

संवत् २००३ में बानपुर (झाँसी) के सिद्ध चक्रविधानमें 'धर्मरत्न' की उपाधिसे सम्मानित। तथा जैनसमाज गुडगाँव, जाखलौन (झाँसी), पंचकल्याण प्रतिष्ठा पपौरामें अभिनन्दन पत्र। पुनः सं० २०२२ में पपौराजीमें श्री बाहुबलिजीकी विशाल प्रतिमाकी प्रतिष्ठा एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करवायी। २० वर्ष तक शोलापुर परीक्षालयके परीक्षक रहे।

प्रत्येक वर्ष दशलाक्षणीपर्व, अष्टाह्निका आदि पर्वोंमें प्रवचन व सिद्धचक्र विधान कराने हेतु देशकी विभिन्न नगरोंमें आमंत्रण रूपमें जाकर धर्मकी महती प्रभावना। आपका 'विधवा विवाह मीमांसा', शूद्र जलत्याग मीमासा आदि लम्बे लेखोंके अलावा अन्य सैकडों लेख प्रकाशित हुए।

आचार विचारके समर्थक तथा विधवा-विवाहके विरोधी रहे। शान्त परिणामोंसे मन्दिरजीमें दर्शन करते हुए मरणको प्राप्त हुए।

●

स्व० बख्शी केशरलालजी

●

श्री बख्शीके पूर्वज बडजात्या गोत्रीय श्री लालचन्द्रजी सं० १८१८ में मोजमाबादसे जयपुर आकर बसे थे। जयपुर नरेश माधोसिंहने इनको फौज बख्शी बनाया। आप फौजी व्यक्ति होते हुए भी धार्मिक वृत्तिके व्यक्ति थे। श्री उदयलालजी जो एक अच्छे कवि थे इन्हीके वंशके थे। स्व० केशरलालजी बख्शी आपके तृतीय पुत्र थे। आपका जन्म मार्गशीर्ष शुक्ला १० सं० १९५४ में हुआ था। जब आपकी आयु १० वर्ष की थी। आपके पिताका स्वर्गवास हो गया था अत: पारिवारिक उत्तरदायित्वका निर्वाहन छोटी उम्र से ही करना पड़ा। अतः अपनी प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् ही आप शासकीय सेवामें आ गये। और ३५ वर्ष तक सरकारी सेवामें रहकर अपनी कार्यकुशलता, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं लगनसे तत्कालीन जयपुर राज्यके वित्त मंत्री श्री अमरनाथजी अटलपर अपनी ईमानदारीकी छाप छोडी।

आपकी ड्राफ्टिंग बडी ही कुशलता पूर्ण हुआ करती थी और आर्थिक प्रश्नों पर तथा बजट आदि बनाते समय आपकी सम्मति बडी महत्त्वपूर्ण हुआ करती थी। ५० वर्षकी आयु मे ही पेन्सन सामाजिक क्षेत्रमें और कटिबद्ध होकर कार्य करने लगे थे। यद्यपि पेन्सनके बाद आपको कई उच्च पदों हेतु आमंत्रण आये परन्तु शान्ति प्राप्ति हेतु उन्हे स्वीकार नही किया।

आप सुधारवादी, राष्ट्रीय विचारोंके सबल समर्थक थे। रिटायर्ड होनेके बाद जब आपको नगर-पालिकाकी सदस्यताके लिए खड़े होनेको बाध्य किया तो आप भारी बहुमतसे विजयी हुए। और वहाँ व्याप्त भ्रष्टाचारको समाप्तकर म्यूनिसिपलटीके सुधारमें बड़ी प्रगति दिखाई।

सामाजिक सेवायें—श्रद्धेय पं० चैनसुखदासजीके जयपुर आनेके पश्चात् १९३२ से आपका सामा-जिक क्षेत्र में आगमन हुआ। पहिले आप जैन संस्कृत कालेजके प्रमुख कार्यकर्त्ताके रूपमें इसके पुनरुद्धारके कार्यमें संलग्न रहे फिर मंत्री और सभापतिकी हैसियतसे बड़ी सेवा की।

आप शिक्षा प्रेमी थे—महावीर दि० जैन हायर सेकण्डरी विद्यालयकी स्थापना और उसके भवन निर्माणमें काफी सहयोग दिया। अ० क्षेत्र महावीरजीके मंत्री रहकर उसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ की।

आप सादा जीवन उच्च विचारके जीवन्त-प्रतीक थे। यश और नामसे सर्वथा दूर यहाँ तक कि अपनी फोटो नही उतरवायी।

आप कुशल शासक, अच्छे सलाहकार और निर्भीक वक्ता थे। सच्चाईको प्रगट करनेमें जरा भी नही हिचकते थे। बातके धनी जिस कार्यको करनेका संकल्प कर लेते थे बस पूरा करके चैन लेते थे।

आप साहित्य-प्रेमी थे। अनुसन्धानके कार्योंमें आपको दिलचस्पी थी। साहित्य संरक्षण और उद्धारकी शिक्षा विरासतमें आपको अपने पूर्वजोंसे प्राप्त हुई थी। आचार्य कल्प पं० टोडरमलजीकी मृत्यु घटनाके सम्बन्धमें तथ्य प्रगट करने वाला उस समय का गुटका आप ही के पास निकला था।

आप परोपकारी एवं दानी थे। अपनी शक्तिको विना छिपाये गरीब छात्रों, विधवाओं एवं असमर्थोंकी अवश्य सहायता किया करते थे। जयपुरकी प्राय सभी संस्थायें आपकी सहायतासे किसी न किसी रूपमें उपकृत हैं।

आप पं० चैनसुखदासजीकी शास्त्र सभाके नियमित श्रोता थे। धर्मके प्रति गहरी जिज्ञासा और प्यास रखते थे। यही कारण था कि अपने निश्चित दैनिक कार्य क्रममें अधिक समय स्वाध्याय, चर्चा और श्रवणमें व्यतीत करते थे।

१९६७ में श्री महावीरजीकी यात्रासे वापिस लौटते समय जीप-दुर्घटनासे आपकी मृत्यु हो गयी थी।

●

स्व० श्री केशरलालजी अजमेरा

●

श्री केशरलालजी अजमेरा, जयपुर जैन समाजके पुराने कार्यकर्त्ता एवं समाज सेवियोंमेंसे थे। आपका जन्म २३ सितम्बर १८९९ को जयपुरके प्रतिष्ठित घराने श्री जमनालालजी चौधरीके यहाँ हुआ था। आप १९१९ में एक जागीरदारके ट्यूटर रहे फिर दि० जैन व्यापारिक स्कूल अजमेरके प्रधानाध्यापक।

सामाजिक सेवायें

कांग्रेस आन्दोलनमें भाग लेने हेतु १९२१ में जयपुरसे अलग होना पड़ा। आप १९२०-२१ से १९३० तक राजपूताना व मध्य भारत प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सदस्य तथा अ० भा० खादी बोर्ड राजपूताना प्रान्तकी कार्य समितिके सदस्य बनकर खादी भण्डार जयपुरके व्यवस्थापक (१९२७) रहे। ११२१-३२ तक राजपूताना और मध्य भारतके बिक्री संयोजक अ० भा० चर्खा संघके उत्पादन एवं बिक्री-केन्द्रोंके निरीक्षक रहे। १९३० में ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमके शिक्षा-सचिव। १९२८ में राजपूतानामें स्वराज्य पार्टीके संस्थापक। १९२९ में अ० भा० दि० जैन महासभाकी कार्य समितिके सदस्य। तथा जयपुरकी अन्य राजनैतिक एवं सामाजिक सभाओं और सुधारक मण्डलोंके मंत्री अध्यक्ष आदि रहे।

जीवनके अन्त समय तक 'जयपुर चैम्बर आफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीकी कार्यकारिणीके सदस्य तथा 'जयपुर चेम्बर पत्रिका' के सम्पादक। श्री महावीरजी तीर्थ क्षेत्र कमेटीके उपाध्यक्ष तथा राजस्थान जैन सभाके अध्यक्ष थे। आप अजमेरा प्रिंटिंग प्रेसके संस्थापक तथा ''राजस्थान वार्षिक एवं व्यक्ति परिचय' के प्रधान सम्पादक रहे।

साहित्यिक सेवायें—अपने वृहद् ग्रन्थ जयपुर एलबमका सम्पादन व प्रकाशन किया। आप 'राजस्थान हेराल्ड' साप्ताहिक पत्रके सम्पादक थे। सम्पादक सम्मेलनके १९६१ तक कोषाध्यक्ष रहे तथा जिला-कांग्रेस कमेटीके निर्वाचन अधिकारी भी रहे थे।

आप राजस्थान दि० जैन परिषद् तथा भारत जैन महामण्डल राजस्थानकी प्रबन्धकारिणी समितिके सदस्य रहे तथा सदैव मार्गदर्शन प्रदान करते रहते थे।

आपकी सेवायें जयपुर तथा राजस्थान जैन समाजके लिए विशेष रूपसे उल्लेखनीय रहीं।

●

प्रो० कन्छेदीलालजी साहित्याचार्य

●

श्रम और संकल्प, व्यक्तिको ऊँचा उठा देते हैं। प्रो० कन्छेदीलालमें इन्हीं दो बातोंका समावेश है जिसके सम्बलसे आज वे शासकीय संस्कृत महाविद्यालय कल्याणपुर शहडोल (म० प्र०) में संस्कृतके प्रवक्ताके रूपमें कार्यरत हैं।

जन्म—ग्राम बिलानी (पथरिया) जिला दमोह (म० प्र०) पिता स्व० श्री चतुर्भुज जैन साधारण परिस्थिति वाले थे। पौष कृष्णा १५ वि० सं० १९८६ को श्रीमती राजरानीके गर्भसे हुआ था।

प्रारम्भिक शिक्षा जैन संस्कृत महाविद्यालय सागरमे। १९५३ में स्याद्वाद महाविद्यालयसे धर्मशास्त्री और आचार्य। स्वाध्यायी रूपसे आपने अपनी लौकिक शिक्षा चालू रक्खी और १९६१ तक आपने संस्कृत और हिन्दी विषयोंमें एम० ए० तथा साहित्याचार्य उत्तीर्ण किया। शास्त्री परीक्षामें आपको सर्वप्रथम उत्तीर्ण होनेके उपलक्ष्यमें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ था।

प्रारम्भमें आर्थिक उपार्जन हेतु जैन विद्यालय मुरैना और चौरासी मथुरामें धर्म शिक्षक और व्यवस्थापकके रूपमें कार्य किया। तदनन्तर गुर्जर इण्टर कालेज दादरी (बुलन्द शहर) में १९६१ तक व्याख्याता रहे। फिर जैन डिग्री कालेज सिवनीमें संस्कृत और हिन्दीके व्याख्याता पदपर आये जो बादमें शासकीय कॉलेज हो जानेसे आपकी सेवामें शासन (म० प्र०) ने स्वीकार कर ली और आप रायपुरमें इसी पदपर कार्य रत हुए। 'रूपककार हस्तिमल्ल और उनके रूपकों का समीक्षात्मक अध्ययन' पर डॉ० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य डी० लिट्० के निर्देशनमें शोध कार्य कर पी-एच० डी० प्राप्त की।

आपने अस्थायी तौर पर कुछ दिन 'जैन सन्देश' का सम्पादन कार्य किया तथा यथा समय जैन पत्र पत्रिकाओंमें लिखते रहते हैं। आप दि० जैन संघ मथुराके आनरेरी निरीक्षक (सन् ५५-५७) रहे।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती क्रान्तिदेवी शिक्षित सद् गृहिणी है। आपको तीन सुपुत्रियाँ और दो पुत्र हैं। अप्रत्यक्ष रूपसे आपने धर्म और समाज की बड़ी सेवा की है।

●

डा० कमलचन्द्जी सोगानी

●

श्री डा० कमलचन्दजी सोगानी बी० एस-सी०, एम० ए०, पी-एच० डी० (दर्शनशास्त्र) हैं और वर्त्तमानमें राजस्थान विश्वविद्यालयमें दर्शन विभागके रीडर पदपर कार्यरत हैं।

कार्य परिचय—जैन दर्शनसे सम्बन्धित आपने लगभग सौ निबन्ध प्रकाशित कराये हैं। आपका शोध प्रबन्ध सन् १९६७ में सोलापुरसे प्रकाशित हो चुका है। जैनदर्शनके शोध छात्रोंको आप गत सात वर्षोंसे निर्देशन दे रहे हैं। 'जैनदर्शनकी रूपरेखा' ग्रन्थ आपका शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। अखिल भारतीय दर्शन परिषद् एवं जैनालाजिकल रिसर्च सोसाइटीके सदस्य हैं। ऑल इण्डिया कांग्रेस फिलासफिकलके कानपुर अधिवेशनमें स्याद्वादपर आपने निबन्ध पढ़कर प्रशंसा प्राप्त की थी।

आप मास्टर मोतीलाल संघी द्वारा संस्थापित सन्मति पुस्तकालयके ट्रस्टी हैं। इस संस्थाके अनेक ट्रैक्ट आपके निर्देशनमें प्रकाशित हुए। आपने मुनिश्री मिश्रीमल अभिनन्दन ग्रन्थ, जैन संस्कृति और राजस्थान, जैन विद्याके मनीषी महावीर रहस्य जैसे ग्रन्थोंका हिन्दीमें सम्पादन किया व तीन ग्रन्थ अँग्रेजी भाषामें भी सम्पादित किए हैं।

व्यक्तित्व—डा० सा० विद्वत्ताकी विभूति हैं। वे मिलनसार व मृदुभाषी हैं। वर्तमानमें आप जैन आचारका पाश्चात्यशैलीमें प्रस्तुतीकरण तथा जैन विद्याके अनुसन्धान-अध्ययनमें कार्यरत है। आप जैसे विद्वान्को पाकर जैन समाज गौरवान्वित है।

●

श्री कैलाशचन्द्रजी

●

जीवन-परिचय—डा० कैलाशचन्द्रजीका जन्म २१ अप्रैल १९३० को मारोठ (नागौर) राजस्थानमें हुआ। आपके पिता श्री किशनलालजी थे और माता कँवरीबाई है। आप खंडेलवाल समाजके भूषण व पाटौदी गोत्रज हैं। आपके परिवारमें दो भाई हैं, दो पुत्र व दो पुत्रियाँ हैं। आपके ससुर फतहचन्द्रजी सेठी समाज सुधारक और जैन जगत्के प्रकाशक हैं। आपके दोनों भाई भी शिक्षित उच्चपदोंपर कार्यरत है।

आपने दरबार हाईस्कूल साँभरलेकसे प्रवेशिका परीक्षा पास की। महाराजा कालेज जयपुरसे बी० ए० व एम० ए० किया। जैनिज्म इन राजस्थान विषयपर राजस्थान विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। एशियंट सिटीज आफ राजस्थान विषयपर राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुरसे डी० लिट् किया।

कार्य-परिचय—१९५५ से आप अध्यापनके क्षेत्रमें अग्रसर हुए। आपने शासकीय महाविद्यालय जयपुर, अजमेर, अलवर, उज्जैनमें कार्य किया। अभी आप उज्जैनमें ही प्राचीन भारतीय संस्कृति इतिहास विषयके रीडर (प्रवाचक) हैं। आपके द्वारा लिखित-प्रकाशित कुछ पुस्तकोंके नाम ये हैं—

१. जैनिज्म इन राजस्थान (शोधग्रन्थ)। २. प्राचीन भारतमें सामाजिक आर्थिक संस्थायें। ३. एनशियंट सिटीज एण्ड टाउन्स ऑफ राजस्थान। ४. लार्ड महावीर। ५. मालवा थ्रू दी एजेज। ६. लगभग ५० रिसर्च पेपर। ●

श्री कान्तिकुमारजी 'करुण'

उदीयमान सुकवि श्री कान्तिकुमारजी करुणका जन्म आजसे लगभग चालीस बरस पहले खिमलासामें हुआ। आपके पिता श्री छोटेलालजी है व माताजी लक्ष्मीबाई हैं। आपको चार पुत्रोंके पिता होनेका सौभाग्य प्राप्त है। आप खिमलासामें कपडेके व्यवसायी हैं। धर्म व समाजके कार्योंके लिए सदैव अग्रसर रहते हैं।

करुणजी लगभग बीस बरसोंसे जैन पत्र-पत्रिकाओंमें रचनायें लिख रहे हैं। जैनमित्र, जैनगजट, श्रेयोमार्ग, अहिंसावाणी आदिमें आपकी रचनायें छपी हैं। आपने नेमिविराग, बाहुबलि विराग, वीर अवतरण खण्डकाव्य या लम्बी कवितायें प्रकाशित कराईं हैं तथा खण्डकाव्योंकी पाडुलिपियाँ प्रकाशनकी प्रतीक्षामें हैं।

करुणजी सहज सरल स्वभावके कवि है। स्व० धन्यकुमारजी 'सुधेश' की प्रेरणासे आप आगे बढे हैं। घरेलू कार्योंमें उलझे रहनेसे बाहर विशेष नही आ जा पाते हैं। आशा है आप धर्म-समाजके लिए प्रयत्नकर नवीन आदर्श रखेंगे।

स्व० पं० कामताप्रसादजी न्यायतीर्थ

स्व० प० कामताप्रसादजी न्यायतीर्थ कर्मठ सेनानी, सफल समाज सुधारक, कट्टर धर्मावलम्बी, कुशल प्रशासक, जैन संस्कृतिकी रक्षाके अनूठे संरक्षक, महान विद्वान, सुयोग्य चिकित्सक, तीर्थ प्रेमी एवं विद्वत्‌रत्न प्रभावक वक्ता आदि गुणोंके समूह थे।

आपका जन्म बिलराम (एटा) में आजसे लगभग ८० वर्ष पूर्व हुआ था। आपकी विदुषी धर्म-पत्नी एवं होनहार प्रतिभाशाली पुत्रोंने आपकी यशः कीर्तिको गौरवान्वित किया।

समाजकी अनेकानेक संस्थाओंमें निष्ठा विश्वास एवं कर्मठतासे कार्य कर आपने समाजके बीच महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। भारतवर्षीय जैन बाल आश्रमके सफल प्रचारक रहकर इस संस्थाकी समुन्नति में आपने जो योग दिया वह अवश्य युगों युगोंतक आपकी गौरवगाथा गाता रहेगा।

पूज्य आचार्यश्री देशभूषणजी महाराजकी सत्प्रेरणासे आपको तीर्थ क्षेत्र अयोध्याका व्यवस्थापक बनाया गया। तीर्थकी भीषण एवं साम्प्रदायिक विषमताके बीच विनाशकी ओर जा रहे ऐसे पावनतीर्थको यदि बचाने और उसे जैनोंके एकाधिकारमें लानेका सफलतम प्रयासका श्रेय है तो श्री कामताप्रसादजी को अहर्निश कठोर श्रमसाधना एवं अनन्त मुसीबतोंके बीच आपने जिस प्रकार इस तीर्थकी रक्षा की तीर्थका इतिहास सदैव आपके उस कृतित्वको गौरवके साथ गाता रहेगा।

श्री देशभूषण जैन गुरुकुलके कुशल प्रशासक, संस्थाके संचालक एवं व्यवस्थापकके साथ बालकोंको धार्मिक एवं न्यायकी शिक्षा देने वाले श्रेष्ठतम गुरुके रूपमें आपकी उज्ज्वल कीर्ति सदैव प्रकाशवान रहेगी।

आपमें सादगी, करुणा, धर्म प्रभावनाकी लगन एवं श्रमण संस्कृतिकी सुरक्षाकी बलवती आकांक्षा बनी रहती थी इस ग्रन्थके प्रधान सम्पादकने ऐसे ही महान् व्यक्तित्वकी छत्रछायामें न्याय और धर्म-ग्रन्थोंके अध्ययनका सौभाग्य प्राप्त किया।

स्व० पण्डितजीने जिस निष्ठा लगन और श्रमसे समाज धर्म संस्थाओंकी सेवाका कार्य किया। खेद है, समाज उनको जीतेजी उनकी गौरवमय कृतित्व और व्यक्तित्वका समुचित आदर नही दे सकी।

यद्यपि आज वह नहीं हैं पर उनका उन्नत व्यक्तित्व और अनुकरणीय कृतित्व सदैव वन्दनीय रहेगा।

पाण्डेय कंचनलालजी

●

"हँसत खेलमें त्याग घरो अरु जिनमतकी दीक्षा धारी" वाली लोकोक्तिके कारणभूत ऐतिहासिक मुनिराज 'ब्रह्मगुलाल' की पीठी परम्परामें पाण्डेय कंचनलालजीका जन्म हुआ। पंचमंगलके रचयिता पाण्डेय रूपचन्दजी आपके कुटुम्बके ही दिवाकर हैं। उसी परम्परामें पाण्डेय कंचनलालजी उदीयमान नक्षत्रोंमें एक है जिनको विपत्तियोंके बादल प्रारम्भसे ही घेरे रहे। बचपनसे ही पिताके स्नेहसे वंचित रहे, बड़े भाई श्री लालारामजी तथा माताजी कंठश्रीके सौहार्दसे आप प्रारम्भिक शिक्षाके बाद मथुरा-चौरासीपर सन् १९२२-२३मे पढे। उसके बाद २४-२५में बनारस स्याद्वाद विद्यालयमें अध्ययन किया। घरकी स्थिति खराब होनेसे पुन. अधूरी शिक्षा छोडकर वापस आ गये। एटामें दुकान की तथा बा० जगरूप सहायजी वकील द्वारा भाषा टीका सर्वार्थसिद्धि (आचार्य पूज्यपाद कृत) स्थान-स्थानपर विक्रय की तथा बादमें सन् १९३०में पं० पन्नालाल जैनकी स्मृतिमें जारखीमें एक जैन विद्यालयकी स्थापना हुई उसमें आनरेरी प्रचार मन्त्री थे। उसके बाद विद्यालय फिरोजाबाद चला गया जो आज पी० डी० जैन कोलेजके नामसे है। आपके पूर्वज पांडे हीरालालजी अपने मूल निवास फिरोजाबादमें ही रहते थे अतः जारखीके बजाय विद्यालयके वहीं संचालनमें आपकी विशेष प्रेरणा रही। आपने अपने कुल परम्परागत पंडिताई (विवाह पढ़ना आदि कार्य) को बड़ी निपुणतासे निभाया। धार्मिक ग्रन्थोंका स्वाध्याय निरन्तर करना आपकी विशेषता है। आपकी विवाह पठन पद्धति अपनी निराली ही विशेषता रखती है। आपके आचार्यत्वमें सम्पन्न होनेवाला विवाह संस्कार केवल एक संस्कार समारोह ही नहीं होता है अपितु स्वजातीय नियम एवं शास्त्रोंके उदाहरणोंद्वारा संस्कारोंको समझनेका बहुमूल्य अवसर होता है। आपने "पांडेय संगठन कमेटी" का गठनकर पाण्डेय महानुभावोंकी उचित शिक्षा दीक्षाका भी प्रबन्ध किया है तथा "अखिल भारतवर्षीय जीव दया प्रचारिणी सभा" में वर्षों सेवाकार्य किया है। जगह-जगह जाकर हिंसा बन्द कराई है। पैडत, जलैया वगैरह स्थानोंपर बलि देना भी बन्द कराया था जो आज तक बन्द है। राजनीतिके क्षेत्रमें भी आपका अपना स्थान है। ग्राम पंचायतके प्रधान पदको आप १२वर्ष तक सुशोभित करते रहे हैं। प्राइमरी पाठशालाएँ, धर्मशाला, कुआँ आदिका निर्माण कराके ग्रामकः बहुमुखी उन्नति की है। पशुपालन, वृक्षारोपण तथा ग्रामकी सीमाओंमें शिकारपर प्रतिबन्ध लगाने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करके समाजमें ही नही जैन जैनेतर समाजमें भी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। आप अपनी तहसीलके आदर्श प्रधानोंमें माने जाते रहे हैं। ब्रिटिशकालमें भी आप ३८ गाँवोंकी अत्याचार निरोधक समितिके प्रधान मन्त्री थे। उस समय आपने अत्याचारोंके विरोधमें जनतामें एक नवीन भावना और साहसका सचार किया था। आज भी अपनी उपस्थितिमें कोई झगड़ा जहाँ तक होता है अदालतोंमें नही जाने देते—दोनों पार्टियोंके विचार मालूम कर उन दोनोंको ही समझा बुझाके आपसमें प्रेम कराके झगड़ोंका निबटा देना यह भी आपकी प्रशंसनीय शैली है। अतः आप बहुत लोकप्रिय भी हैं तथा आपने राजकीय योगोंसे कितने ही वृद्ध वृद्धाओंकी पेंशन २०) माह बँधवा दिए हैं तथा स्वयं अपने पैसेसे भी सबकी सहायतामें रत रहते है। दीन दु.खी लोग कोई न कोई आते ही रहते हैं। आजकल टूण्डलामें ही आपने अपना स्थान बना लिया है।

●

डा० कैलाशचंदजी

●

डॉ० कैलाशचंद जैन एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० लिट०का जन्म सन् १९३१में श्रीमान् किसनलालजीके यहाँ हुआ। वर्तमानमें आप प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनमें रीडरके पदपर पदांकित है।

आप उच्चकोटिके साहित्यकार विद्वान् हैं। सन् १९५६ मे राजस्थानमें जैनधर्मपर शोध प्रबंध लिखकर पी० एच० डी० की उपाधि तथा १९६२में आप 'राजस्थानके नगरोंका सांस्कृतिक अध्ययन' विषयपर अपना ग्रंथ लिखकर डी० लिट०की सम्माननीय उपाधिसे अलंकृत किए गए।

●

पं० कुन्जीलालजी

●

पिता श्री छदामीलालजी जैनकी एक मात्र सन्तानके रूप में आपका जन्म ४नवम्बर १९१७में मरसेना ग्राम पो०—अहारन जि० आगरा (उ० प्र०) में हुआ था। डेढ़ वर्षकी अल्पायुमें मातु श्रीमती मालादेवी जैनका स्वर्गवास हो गया था।

अपने ग्राममें प्रारम्भिक शिक्षा समाप्तकर नगला सिकन्दर पढ़ने गये तथा बादमें श्री गो० दि० जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेनासे १९३९में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की और वहीं पर ६वर्ष धर्माध्यापकके रूपमें कार्य किया।

इसके पश्चात् १९४४से ५२ ई० तक सुप्रसिद्ध फर्म श्री राजेन्द्र कुमार कुँवरजी जैन कलकत्ताकी फैक्टरीमें मैनेजर पदपर ८वर्ष कार्य किया। १९४६में हावड़ा (कलकत्ता) के साम्प्रदायिक उपद्रवमें दो हजार मुसलमानोंद्वारा फैक्टरीपर आक्रमण हुआ और आपकी सारी सम्पत्ति लूट ली गयी।

अध्ययनकी लालसा समाप्त नहीं हुई और पुनः लौकिक शिक्षण हेतु कमर कसी तथा १९५४से हाईस्कूल परीक्षामें प्रविष्ट होकर १९६३ तक हिन्दी तथा संस्कृतमें एम० ए० किया। इस अवधिमें आपने स्वतन्त्र व्यवसायके रूपमें 'पुस्तक प्रकाशन एवं विक्रेता' का कार्य किया। १९६३के बाद पुनः अध्ययनक्षेत्रमें उतरे और वर्तमानमें आप श्री जैन विद्यालय गिरिडीह (हजारीबाग) में प्रधानाध्यापकके पदपर कार्य कर रहे हैं।

इस प्रकार 'एक म्यानमें दो तलवारें' जैसा कार्य किया। एक ओर व्यापार दूसरी ओर अध्ययन कार्य।

१९६६में भागलपुर विश्वविद्यालयसे 'Dip Edu.' की उपाधि प्राप्त की जो कि आपकी सेवामें स्थायित्व देनेमें सहायक हुई।

साहित्यिक जागरूकता

विद्यार्थी जीवनसे ही गद्य और पद्य दोनोंमें लिखनेकी प्रवृत्ति जागी। और विद्यालयसे निकलनेके बाद ४वर्ष तक हस्तलिखित पत्रिका 'सिद्धान्त चन्द्रिका' का सम्पादन किया। 'मार्तण्ड' तथा 'बालकेशरी' पत्रका प्रकाशन किया। आप आर्ष आगमवादी परम्पराके पोषक हैं। तत्सम्बन्धमें आपने सामाजिक मंचोंसे अपने लेखों व पत्रिकाओंके माध्यमसे काफी प्रचार व प्रसार किया।

आचार्यवर श्री शान्तिसागर महाराजके समक्ष आप सिद्धक्षेत्र गजपंथामें पंचकल्याणक प्रतिष्ठाके अवसर पर शास्त्रप्रवचन हेतु गद्दीसे जब प्रश्नोंका उचित समाधान दे रहे थे तो आचार्य श्रीने आपको 'पण्डित' होनेका आशीर्वाद दिया था।

●

पं० कैलाशचन्द्रजी पंचरत्न

●

पिता : श्री प० रामलालजी जैन, ज्योतिषरत्न जो 'वाणीभूषण'के सम्मानसे युक्त भा० दि० जैन परिषद् दिल्लीके कर्मठ कार्यकर्ता थे। हस्तरेखा, वर्षफल, आदि ज्योतिष सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं तथा अनेक धार्मिक पुस्तकोंका अनुवाद किया।

शिक्षा : बी० ए०, साहित्यरत्न, हिन्दीरत्न व हिन्दी भूषण, आयुर्वेदिकमें 'वैद्य भूषण' तथा होम्योपैथिकमें ए० बी० एच० तथा धर्ममें ए० जी० पी० एच० के प्रमाणपत्र प्राप्त कुशल ज्ञाता हैं।

साहित्यिक गतिविधियाँ 'सत्यार्थ' पाक्षिक एवं 'धर्मवाणी' मासिक पत्रिकाओंके ऑनरेरी सम्पादक।

सार्वजनिक सेवायें : राष्ट्रीय बाल मेला लखनऊके मन्त्री एवं सहसंयोजक। कुछ वर्षों तक लखनऊ जैन समाजके प्रधानमन्त्री। मुहल्ला सुधार समितिके मन्त्री। 'मैरिजब्यूरो' और जैन जन-गणनाके कार्यमें काफी सहयोग देते रहे।

वर्तमानमें : कालीचरण इण्टर कालेज, लखनऊमें अध्यापन कार्य एवं वहाँकी वैल फेयर सोसाइटीके सदस्य।

सम्पादकीय लेखोंसे जैन जागरण एवं धर्मकी सेवाका व्रत निभा रहे हैं। आत्म-प्रशंसासे दूर अपने कार्यमें निष्ठापूर्वक निरत होकर शान्तिपूर्वक जीवनयापन कर रहे हैं।

●

डा० कुन्दनलालजी

जन्म स्थान एवं तिथि : महरौनी (झाँसी) सन् १९१६ ई० ।

शिक्षा : सर से० हुकमचन्द दि० जैन विद्यालय इन्दौर और सेंटजॉस कालेज आगरासे हिन्दी तथा संस्कृत विषयसे एम० ए० । काव्य, न्याय और व्याकरण मध्यमा तथा हिन्दीके रीतिकालीन अलंकार ग्रन्थों पर संस्कृतका प्रभाव । विषयपर शोधकार्य पी-एच०डी० उपाधि ।

वर्तमान : बरेली कालेजके हिन्दी विभागमें एसोशिएट प्रोफेसर । यही पर 'जैन सन्त साहित्य' से सम्बन्धित विषय पर डी० लिट० के लिए प्रयत्नशील ।

साहित्यिक अनुकृतियाँ : महाकवि पंचामृत, रसदोष अलंकार तथा शोध प्रबन्ध 'हिन्दीके रीति कालीन अलंकार ग्रन्थों पर संस्कृतका प्रभाव ।

सामाजिक सेवायें . बरेली नगरमें दि० जैन मन्दिरकी स्थापनामें सक्रिय सहयोग । बरेली जैन समाजके एकीकरण हेतु योगदान तथा रथोत्सव आदि उत्सवों पर जैनधर्मकी प्रभावना करना ।

पं० कन्हैयालालजी

प्रारम्भमें जैन शिक्षा सस्था कटनीमे अध्यापन कार्य तथा वहाँसे निकलनेवाली पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन कार्य । योग्यता एम० ए० (सस्कृत) साहित्यशास्त्री एवं धर्ममें शास्त्री ।

वर्तमानमें १९५७ से ए० सी० सी० (सीमेन्ट फेक्टरी) माध्यमिक शाला कटनीमे संस्कृत शिक्षणका कार्य कर रहे है ।

धार्मिक और सामाजिक सेवाओंके रूपमे प्रत्येक वर्षके पर्यूषण पर्वों एवं अन्य विधि विधानोंके समय सभी धार्मिक कार्योंका सम्पादन ।

शान्तपरिणामी एव स्व-सन्तोषीवृत्तिके व्यक्ति है ।

श्री कपूर चंद 'इंदु'

श्री कपूर चन्द्र 'इंदु' सम्भवत कई वर्ष पहलेसे कविता लिख रहे हैं। किन्तु इधर हालमें ही तो उनकी कवितायें पत्रोंमें प्रकाशित हुई । उनसे उनकी प्रतिभाके चमक उठी है ।

आपकी कविताओंका केन्द्रवर्ती दार्शनिक भावअभिनव शब्द-व्यंजनके द्वारा जब व्यक्त होता है तो वह परिचित होते हुए भी अनूठा लगता है । आपने मौलिक भावके लिए यह तदनुकूल और शब्द सङ्कलन गढ़ लेते हैं ।

आपकी 'कवि विमर्श' नामक कविता काव्यशैलीका सुन्दर उदाहरण है । मधु पुराना ही है। किन्तु प्याली एकदम नई और आकर्षक है ।

पं० कुन्दनलालजी

●

दुख-सुखकी पूर्व पीठिका हुआ करती है। ऐसे जीवन, जो निर्धनता और आर्थिक विषमताकी गोदमें पाले पोसे जाते हैं, एक दिन वही महान् व्यक्तित्व लिये समाजका अनन्त उपकार कर जाते है। श्री पं० कुन्दनलालजीका अतीत कुछ ऐसी ही घटना चक्रोंसे गुजरा था। आपके पिता श्री कालूरामजी अत्यन्त निर्धन थे और जिनकी अन्तिम क्रिया भी समाजके सहयोगसे हो सकी। माता श्रीमती चिरौंजीबाईने बालक कुन्दनलालको 'रूखा सूखा खायके ठण्डा पानी पीय' वाली कहावतके अनुसार बड़ा किया। पं० मनोहरलालजी (मामा) की सत्कृपा कि कुन्दनलालजी अपने ग्राम बीना (सागर)से जैन विद्यालय बरुआसागर (झाँसी) पढ़ने गये और १९३६ से ४२ तक ६ वर्ष रहकर व्याकरण मध्यमा और विशारदकी परीक्षा उत्तीर्ण की। बादमें मोराजी विद्यालय सागर और स्याद्वाद विद्यालय वाराणसीसे १९४६ में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। इसीके साथ लौकिक शिक्षामें मेट्रिक भी उत्तीर्ण कर लिया।

चूँकि जीवकोपार्जनकी समस्या पंडितजीके सामने प्रमुख थी अत. आपने १९४६ में वीर सेवा मंदिर सरसावामें पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारके सान्निध्यमें ६ माह नौकरी की फिर आप ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी मथुरा चले आये। जहाँ आपने धर्माध्यापकीके साथ-साथ बी० ए० एल० टी० उत्तीर्ण कर लिया। आगरा विश्वविद्यालय आगरासे १९५३ और १९५५ में क्रमश संस्कृत और हिन्दीसे एम० ए० किया तथा जैन इण्टर कालेज विदिशामें १९५१-५७ तक शिक्षक पदपर रहे। आपकी अथक लगन, श्रम और सकल्पने आपको पूरा पारितोषिक दिया और आप दिल्लीके शिक्षा विभागमें हायर सेकण्डरी स्कूलमें अध्यापक पदपर आये। वर्तमानमें आप प्रधानाचार्यके प्रथम श्रेणीके राजपत्रित अधिकारीके रूपमें कार्य रत है।

साहित्य जगतमें पदार्पण : लगभग सोलह वर्षकी अवस्थासे लेखन कार्य प्रारम्भकर दिया था और निस्वार्थ साहित्य सेवा अपने जीवनका मूल ध्येय रक्खा।

दिल्लीमें सन्मतिसे देशको पुनर्जीवन देनेमें काफी संघर्ष करना पड़ा और प्रथम अकके प्रकाशनमे पूरा सहयोग दिया। इसके बाद आपने अपने लेखों द्वारा उसे जीवन शक्ति दी।

दिल्लीके जैन मंदिरोंमें स्थित लगभग २० हजार पांडु लिपियोंका निरीक्षणकर विस्तृत सूची पत्र तैयार करनेके लिए बड़ा धन, घोर परिश्रम और कठिनाइयाँ उठायी तथा सारी सामग्रीका सदुपयोग हो सके, इस हेतु भारतीय ज्ञानपीठ को दे दी। पर प्रकाशनके अभावपर उसका यर्थाथ उपयोग नही हो पा रहा है।

आपने पी-एच० डी० हेतु 'त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित' पर काफी अध्ययन एवं शोध कार्य किया परन्तु कुछ बाहरी सहयोगके अभावमें वह अधूरा ही पड़ा है।

आपके लगभग १५० लेख आज तक प्रकाशित हो चुके तथा ३०–४० अप्रकाशित पड़े हैं। आपके लेख जहाँ प्रमुख जैन पत्रिकाओं जैसे—सन्मति संदेश, अनेकान्त, जैन मित्र आदिमें प्रकाशित हुए वहाँ साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, नवभारत टाइम्स, बरैया अभिनन्दन ग्रन्थ आदिमें निकले हैं।

आप एक सच्चे समाजसेवी, कर्त्तव्य निष्ठ और ईमानदारीके व्यक्तित्वको लिए निस्पृही व्यक्ति हैं। इसीके सम्बलको लेकर जीवनमें इतनी प्रगति और शिखरताको प्राप्त किया है। ●

पं० कस्तूरचन्दजी 'सुमन'

पिता : श्री छोटेलाल वैद्य

जन्मस्थान एवं तिथि : बाँसातार खेडा, जिला दमोह (म० प्र०) सन् १९३६ ई० ।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा बाँसातार खेडा में । पुनः शाहपुर एवं श्री वर्णी भवन मोराजी सागर तथा श्री वर्णी गुरुकुल जबलपुर में । स्वाध्यायी रूप से एम० ए० (संस्कृत) तथा एम० ए० (इतिहास), साहित्यरत्न एवं साहित्य शास्त्री ।

प्रशिक्षण . बी० एड० ।

अर्थोपार्जन : १९५७ में किशुनगंज (दमोह) में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया । वर्तमानमें शासकीय सेवामें । किशुनगंजमें रहते हुए २ वर्ष जैन पाठशालाका संचालन किया ।

साहित्यिक गतिविधियाँ : 'मध्य प्रदेशके प्राचीन जैन अभिलेखोंका अध्ययन' विषयपर शोधकार्य कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त आपके खोज पूर्ण निबंध 'अनेकान्त' में प्रकाशित हुए । 'श्रमणोपासक', 'जैन-मित्र' आदि पत्रिकाओंमें गद्य-पद्य में रचनायें बहुधा प्रकाशित होती रहती हैं ।

आपका जीवन संघर्षमय रहा तथा उच्च शिक्षा पाकर भी स्तरीय शासकीय सेवामें पदोन्नति न होने से जीवन विषाद पूर्ण वातावरणमें झूला ।

आपकी तीन पुस्तकें अप्रकाशित पड़ी हैं—(१) संस्कृत रचनादर्श (२) छन्द रस अलंकार तथा हिन्दी साहित्यका इतिहास और (३) वर्णी जीवन गाथाका पद्यानुवाद ।

पं० कान्तिलालजी शाह

परि परिचय : पिता श्री ईश्वरलाल मातु, श्री ललीता बहेन ।

जन्म स्थान एवं तिथि : ग्राम नरसीपुर पो० जहेर जि० खेड़ा गुजरात प्रान्त, १७ अगस्त १९३० ।

लौकिक शिक्षा : मेट्रिक तक परन्तु शास्त्राध्ययन एवं स्वाध्यायके फलस्वरूप धार्मिक ज्ञान अच्छा प्राप्त किया ।

आर्थिक उपार्जन : प्रारम्भमें नौकरी । १९६२ से जूटके सामानका स्वयंका व्यवसाय तथा १९६५ से परिग्रहपरिमाणव्रत लेकर (१०००/- रु० माहसे ज्यादा कमाई न हो) मर्यादित व्यवसाय ।

साहित्यिक एवं सामाजिक सेवायें : धर्म प्रभावनाके लक्ष्यसे १९६४ में श्री दिगम्बर जैन श्रावक संघकी स्थापना तथा उक्त ट्रस्टीके महामन्त्री । संघके द्वारा संचालित 'आत्म-वैभव' (मासिक-गुजराती) के सम्पादक । 'असंयमीको न वंदो' गुजराती स्वतन्त्र कृतिके लेखक तथा श्री रयणसार, अष्टपाहुड़, धवल सत्प्ररूपणा, बृहद् द्रव्यसंग्रह (ब्रह्मदेवजी कृत टीका), जीव स्थान चूलिका-धवल तथा रत्नकरण्डश्रावकाचारका गुजराती अनुवाद कर ग्रन्थोंका सम्पादन कार्य किया ।

आप धार्मिक रिवाजोंको पलटना स्वरूप-घातक मानते हैं ।

पं० कपूरचन्दजी जैन बरैया

पाश्चात्य शिक्षा प्राप्तकर भी जो अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृतिसे कोसों दूर हैं तथा विशुद्ध भारतीय संस्कृतिके पोषक और जिनवाणी माताकी सेवामें अग्रणी प० कपूरचन्दजी बरैयाका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। १० अगस्त १९२५ को लश्कर (ग्वालियर) में श्री फूलचन्द जैन बरैयाके घर जन्मे बालकको प्रारम्भसे ही धार्मिक शिक्षण जैन बोर्डिंग हाऊस लश्करमे मिलनेके कारण धर्म में रुचि रही। आगरा विश्वविद्यालय आगरासे १९५० मे एम०ए० किया और १९५५ में साहित्यरत्न करनेके पूर्व ही १९५० से महा-लेखाकार कार्यालय म० प्र० ग्वालियरमे लिपिक पदपर आये और वर्तमानमें आडीटरके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

महाविद्यालयीय जीवनमें ग्वालियरमें पू० वर्णीजीके चातुर्मासके प्रवचनोसे आपके हृदयमे धर्मके प्रति विशेष जिज्ञासा जाग्रत हुई और उनके प्रवचनोंको नित्यप्रति अपनी डायरीमें लिपिबद्ध कर बादमे 'सुखकी झलक' नामसे १५ भागोंमें स्वतन्त्र कृतियोंके रूपमे प्रकाशमें आयी जो आपका साहित्य सेवाके क्षेत्रमे अमूल्य योगदान है।

गुरु गोपालदासजी बरैया आपकी बुआके श्वसुर होनेके नाते लौकिक सम्बन्धी होनेसे पूज्य तो थे ही वरन् उनके महान् गुणोंसे श्रद्धेय और महापूज्य थे। श्री गुरुवर्य प० गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थकी रचना में आपका अमूल्य योगदान रहा।

अपनी छात्रावस्थासे भजनोंके रूपमें पद्यात्मक रचनायें करने लगे थे। अभी आपके लगभग ३० लेख विविध जैन पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। 'भजन पीयूष' स्वतन्त्र पद्य-रचना है। तथा 'जैनधर्म और विज्ञान' पुस्तकका सम्पादन कर रहे हैं जिसमें प्रो० घासीराम जैनके लेख संकलित है। 'ग्वालियर जैन निर्देशिका'के सहसम्पादक तथा बरैया विकासके भूमिका लेखकका गौरव आपको प्राप्त है।

इतना ही नही आपने अपने सुकृतसे उपार्जित द्रव्यका उपयोग दानमें किया है और लगभग ८ हजार रु० दान स्वरूप दिए। आपने १९६७ में लश्करमें 'जैन भवन' की स्थापना की। आपकी सामाजिक और धार्मिक साहित्यिक सेवाओंके प्रतिफलमें जैन समाज लश्करने १९६७ को आपको 'अभिनन्दन पत्र' के साथ 'धर्म भूषण'की उपाधिसे सम्मानित किया था। आप वीर जैन छात्रावास, चम्पाबाग लश्करके पाँच वर्ष अधीक्षक भी रहे। आप एक ओजपूर्ण शैलीके प्रभावक वक्ता तथा श्रावकोचित गुणोके परिशीलनकर्ता है।

श्री कुँवरलालजी

●

पं० कुँवरलालजी न्यायतीर्थ जैन समाजके एक प्रतिभा सम्पन्न दिग्गज विद्वान् थे। ब्र० शीतल-प्रसादजी, बैरिस्टर चम्पतरायजीके साथ-साथ भा०दि० जैन परिषद्की स्थापना की थी। आपने पं० अम्बादास शास्त्री और पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य जैसे ख्यातिप्राप्त विद्वान्-गुरुओंसे शिक्षा प्राप्त की थी। सत्य-भक्त पं० दरबारीलाल आपके अनन्य मित्रोंमेंसे थे जिससे आपका सुधारवादी दृष्टिकोण हो गया था।

पहिले आप मथुरामें महासभाके विद्यालयमें प्रधानाध्यापकके पदपर कार्य करते थे। फिर अपने पिता के स्वर्गवासपर नौकरी छोड़कर अपनी जमींदारी, कपड़ेका व्यवसाय तथा लेनदेनका कार्य करने लगे।

आप 'उत्कर्ष' मासिक पत्र, अहिंसा तथा पाक्षिक-पत्र 'वीर' के सम्पादक रहे। कुशल व्याख्याता और सामाजिक जागृतिके विशेष स्तम्भ थे। १९३५ तक आप अपना निजी कार्यके साथ सामाजिक चेतना को उठानेका निरन्तर प्रयास करते रहे। इसी समय पुत्र और धर्मपत्नीका देहावसान हो गया। संतप्त वेदनामें जी कर कुछ दिन निकाले कि आपके शरीर में भयंकर फोड़ा हो गया था जिसके कारण बीमार रहे और एक माह बाद आपकी मृत्यु हो गयी।

उनकी हार्दिक इच्छा, जैन धर्मको सार्वजनीन रूप देकर उसके प्रसार एवं प्रचार की रही। व्यर्थकी रूढ़ियोंके प्रति विद्रोह था। आपने बहुत समय तक ब्र० ज्ञानानन्दजीके साथ अहिंसा प्रचारका कार्य वाराणसीमें किया। जहाँपर अपना अध्ययन अनवरत रक्खा। बा० भागीरथजी वर्णी आपकी कुशाग्र बुद्धिके कारण बहुत स्नेह करते थे।

●

पं० कमलकुमार शास्त्री

●

जन्म स्थान—ग्राम नारायणपुर जि० टीकमगढ़ (म० प्र०)।

पिता—श्री बदलीप्रसादजी—अच्छे वैद्य, गायक, सारंगी वादक तथा अतिशय क्षेत्र अहारजीके अध्यक्ष।

शिक्षा—जैन विद्यालय अहारजी, पपौराजी एवं इन्दौरसे क्रमशः प्रवेशिका, विशारद एवं मध्यमा तथा शास्त्री परीक्षायें।

सेवाकार्य—दलतपुर, सागरमें अध्यापन कार्य। १९५७ से श्री अतिशय क्षेत्र पपौरामें प्रधाना-ध्यापक एवं मैनेजमेन्ट कार्य।

सामाजिक एवं साहित्यिक सेवायें

भाषण एवं लेखन कलामें दक्ष। १९७० में सिद्धचक्र विधान महोत्सव अहमदाबादमें अभिनन्दनपत्र एवं 'वाणीभूषण' की उपाधिसे अलंकृत।

'पपौरा दर्शन' स्वतंत्र पद्य-रचना कृति। तथा पपौरासे समय-समयपर निकलने वाली पत्रिकाके सम्पा-दक। जैन पत्र पत्रिकाओंमें पद्य और गद्य दोनोंमें रचनायें प्रायः प्रकाशित होती रहती हैं। 'विधवा विवाह' के समर्थक परन्तु मरणभोज और छुआछूतके विरोधी। उत्साही कार्यकर्ता विद्वान् हैं।

●

श्री कैलाश मड़वैया

●

जन्म स्थान एवं तिथि : बानपुर (झाँसी) उ० प्र० । २ दिसम्बर १९४३ ।

परि परिचय : पिता श्री भैयालाल मडवैया—गल्लेके व्यापारी एवं पितामह श्री मूलचन्द्रजी मड़वैया–प्रतिष्ठित व्यक्ति ।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा बानपुर ग्राममें । उच्च-शिक्षा हेतु टीकमगढ़, छतरपुर एवं रीवाँ । एम० एस-सी (रसायन शास्त्र) एवं प्रशिक्षण बी० एड० ।

सम्प्रति : व्याख्याता, शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, टीकमगढ़ (म० प्र०) ।

साहित्यिक क्षेत्र एवं विधा : कविताके क्षेत्रमें विगत १६ वर्षसे अनवरत साधना । लगभग पाँच काव्य-संग्रहोंका सृजन । जैन पत्रिकाओंके अलावा स्तरीय पत्र-पत्रिकाओंमें स्फुट काव्य-रचनायें प्रकाशित होती रहती हैं । गान्धी-शताब्दीके सन्दर्भ में 'बा-बापू श्रद्धांजलि ग्रन्थ' का सम्पादन । रेडियोमें कविताओं-का वाचन एवं प्रसारण । अनेक कवि सम्मेलनोंमें जनमानसकी लोकप्रियता प्राप्त है । लोक भाषा बुन्देलीमें सरस एवं सुबोध कविताओंका प्रणयन ।

आपकी कविताओंमें ओज, क्रान्ति और प्रगतिके साथ करुणा एवं क्रन्दनका अद्भुत समावेश रहता है । काव्यमें यथार्थ धरातल पर समसामयिक दृष्टिकोणका समन्वय है । लोक-संस्कृतिके चितेरे एव जैनदर्शन पर कई बड़ी रचनायें लिखीं ।

साहित्यिक संगठनके रूपमें 'सर्जना' के अध्यक्ष, वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद्के सचिव और विन्ध्यकी अनेक साहित्य परिषदोंके सम्माननीय सदस्य । आपको कई कविता पुरस्कार प्राप्त हुए हैं । नवोदित कवियोंमें आपका विशिष्ट स्थान है । काव्य-सृजनमें अनवरत संलग्न रहते हैं ।

●

स्व० पं० कुंजबिहारीलालजी

●

फिरोजाबाद निवासी पं० कुंजबिहारी लालजी अपने समयके एक अच्छे प्रतिष्ठाचार्य थे और आपने अनेक विधान प्रतिष्ठा सम्पन्न कराये । आपने बनारसकी शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर लगभग ८० वर्ष इन्दौर एव हजारीबागमें अध्यापन कार्य किया ।

आपने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की—जैसे जीवन्धर नाटक, कन्या प्रहसन, जैन विवाह पद्धति एवं भजन संग्रह इत्यादि ।

५८ वर्षकी अवस्थामें क्षय रोगके कारण आपका स्वर्गवास हो गया ।

●

श्रीमती कुन्थुकुमारी बी० ए०

आप एक प्रतिभाशालिनी और विदुषी महिला हैं। आपने अंग्रेजी साहित्यके विशाल अध्ययनके साथ मातृभाषाके साहित्यका भी मनन किया है। देहली और पंजाब विश्वविद्यालयकी बी० ए० और बी० टी० परीक्षाओंमें आपने प्रान्तकी महिलाओं में सर्वप्रथम पद और स्वर्णपदक प्राप्त किया था। इन्होंने अंग्रेजी हिन्दीके अनेक अखिल भारतीय वाद विवादोंमें भी प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया है। आप दो वर्ष तक लाहौरके हंसराज महिला ट्रेनिंग कालेजमें बी० टी० श्रेणीकी प्रोफेसर रह चुकी है।

श्री कुन्थुकुमारी हिन्दीमें लेख, कहानी और कविताएँ लिखती है। आपकी कविताओं और लेखोंमें रचनाका सौन्दर्य और कल्पना कोमलताका दर्शन होता है। आप प्रसिद्ध शिक्षा प्रेमी देहलीके जैन कन्या शिक्षालयके प्रमुख संस्थापक पं० फतेहचन्द्र जैन खजांचीकी पुत्री और श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए० की धर्मपत्नी है।

श्रीमती कमलादेवी

आप प्रगतिशील विचारोंकी शिक्षित महिला है। पंडित परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थकी आप धर्मपत्नी हैं। आपने धर्म-न्याय और साहित्यका खूब मनन किया है और कविता क्षेत्रमें विशेष सफलता प्राप्त की है। आपकी कितनी ही साहित्यिक रचनाएँ उच्चकोटिकी हैं। कवि सम्मेलनोंमें आपको अनेक स्वर्ण और रजत-पदक भी मिल चुके हैं। साहित्यिक प्रतिभाके कारण ही आपको 'राष्ट्रभाषाकोविद' की उपाधिसे अलंकृत किया गया। आप न केवल अच्छा लिखती ही हैं बल्कि कविता भी बहुत जल्दी बनाती हैं। इनकी रचनाएँ 'सुधा' 'कमला' आदि साहित्यिक पत्रिकाओंमें निकलती रहती हैं। राष्ट्रीय आन्दोलनमें आप जेल यात्रा कर चुकी हैं। आपकी कविताएँ अलंकार युक्त किन्तु सुबोध होती हैं। सौम्यता, सरलताके साथ सेवापरायणता आपके विशिष्ट गुण है।

बहिन कैलाशवतीजी

बहिन कैलाशवती ललितपुरका जन्म चैत्र कृष्णा नवमी सन् १९३२ को नागपुरमें हुआ था। आपके पिता श्री लक्ष्मीचन्द्रजी जैन हैं व माता श्री स्व० हीराबाई है। आपके जन्मके समय आपके परिवारकी स्थिति साधारण ही थी। आपको धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपका विवाह वैशाखवदी चौथ सन् १९४८ में श्री सेठ सनतकुमारजी जैनके साथ हुआ। आपके श्वसुर श्री चन्द्रभानजी जैन साढूमल भी धार्मिक प्रवृत्तिके व्यक्ति हैं। आपके छोटे श्वसुर स्वर्गीय श्री लक्ष्मीचन्दजी जैन भी धर्मप्रेमी एवं समाजसेवी व्यक्ति थे। उन्हें बच्चोंसे बड़ा प्रेम था। उन्होंने श्री महावीर दिगम्बर जैन साढूमल नामक पाठशाला खोली। आपके परिवारमें २ भाई, ४ बहिन, ४ पुत्र एवं ४ पुत्रियाँ है।

आपके यहाँ पंडितों एवं विद्वानोंका समागम बना ही रहता है। आप समाजकी इच्छानुसार दिगम्बर जैन कन्याशालामे शिक्षा मंत्रीके पदपर कार्य कर रही है। आपकी धार्मिक अध्ययनके प्रति गहरी रुचि है। आप शास्त्र सभामें शास्त्र प्रवचन भी करती हैं। आपका आध्यात्मिक ज्ञान अनुकरणीय है।

पं० कुन्दनलाल 'भारतीय'

जन्म : आपका जन्म उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलेमें बाबतपुर तहसीलके अंतर्गत सिवनी ग्राममे कातिक सुदी ११ सं० १९८७ वि० में हुआ।

बाल्यकाल : शैशवमें ही आपको पितृ वियोग सहना पड़ा। आपकी माताने कठिनाईसे पाल पोसकर पढाया लिखाया।

शिक्षा : मिडिल परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। इससे आगे लोग द्वितीय श्रेणीमें सदैव आते रहे। आगरा वि० वि० से १९५५ में बी० ए० हुए। आगरा वि० वि० से १९५६ में भूगोलमें एम० ए० (प्रीवियस) और विक्रम वि० वि० से १९५८ में एम० ए० (प्रीवियस) इतिहासमें किया है।

साहित्य सेवा : स्फुट कवितायें और लेख सामयिक पत्र पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं जैसे ज्ञानोदय, नवभारत टाइम्स, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, आदि १९५२ से।

समाज सेवा : चंदेरीकी शैक्षणिक और सामाजिक संस्थाओंमें उत्साह पूर्वक भाग लेते रहते हैं। जैसे सार्वजनिक पुस्तकालय, सार्वजनिक छात्रावास आदि। व्यवसाय—शिक्षक माध्यमिक शाला, चंदेरी। रुचि पुरुषत्वकी ओर रही है। वर्तमानमें आप स्वतंत्र रूपसे 'सुनील प्रेस' का संचालन करते है। चन्देरी नगरके श्रेष्ठतम व्यक्तियोंमें आपकी गणना है।

पं० कन्हैयालालजी

●

पण्डितजीने अपने जीवनमें स्व-प्रेरणासे अनुप्राणित होकर जो भी पाया, वह स्व-पुरुषार्थ से प्राप्त किया। सम्पूर्ण जीवनको अध्ययन और अध्यापनके पवित्र संकल्पके लिए समर्पित करने वाले पण्डितजीका जन्म मध्यप्रदेशमें सागर जिलेके अन्तर्गत मरदानपुरमें १५ अगस्त १९२२ को हुआ। आपके पिता श्री खूबचन्दजी व मातु श्रीमती काशीबाई धार्मिक-विश्वासोंके अनुगामी थे।

प्रारम्भिक शिक्षा ग्राम मरदानपुरमें तथा संस्कृतकी मध्यमा तक शिक्षा श्री गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालय सागर में १९३४ से १९४४ तक की। वहीसे विशारद, काव्यतीर्थ तथा शास्त्री (पूर्वार्द्ध) उत्तीर्ण की। और आगामी उच्च शिक्षा स्याद्वाद संस्कृत महाविद्यालय भदैनी घाट वाराणसीमें १९४६ तक प्राप्त की।

१९४६ से श्री जैन शिक्षा संस्था कटनी द्वारा संचालित श्री शान्ति निकेतन जैन संस्कृत विद्यालयमें अध्यापन कार्य किया। १९५७ से ए० सी० सी० माध्यमिक शाला कटनीमें संस्कृत शिक्षक तथा व्यायाम शिक्षकके पदपर कार्यरत। अपने अध्यापन कार्यके साथ लौकिक शिक्षा एम० ए० (संस्कृत) तथा बी० एड० प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। व्यायाम शिक्षामें विशेष अभिरुचि प्रारम्भसे होनेसे जबलपुर और अमरावतीकी व्यायामशालाओंसे व्यायाम सम्बन्धी परीक्षायें उत्तीर्ण की।

धार्मिक तथा सामाजिक सेवायें : १. जैन विद्यालय कटनीमें १ वर्ष तक धार्मिक शिक्षण देते हुए समाजकी अन्य सामाजिक गतिविधियोंमें पूर्ण सहयोग दिया। २. श्री बाहुबली व्यायामशालाके माध्यमसे छात्रोंको व्यायाम शिक्षा एवं ग्रीष्मकालीन व्यायाम शिक्षण शिविरोंका संचालन। ३ कटनी नगरवासियोंको लाठी, तलवार, भाला आदि शस्त्रास्त्रोंका सफल शिक्षण। ४. संस्कृत विश्व परिषद् बम्बई (भारतीय विद्या भवन बम्बई) की कटनी शाखाके जनरल सेक्रेटरीका छह वर्ष तक कुशल कार्य सम्पादन। ५. सुरभारतीके उन्नयनके साथ-साथ सांस्कृतिक कार्यक्रमोंमें अभिरुचि रखकर पूर्ण सहयोग। ६. श्री १०८ सुपार्श्वसागरजी महाराजके ससंघ चातुर्मासके अवसरपर स्थापित श्री महावीर रात्रि विद्यालय कटनीमें जैन जैनेतर बालक बालिकाओंको धार्मिक शिक्षण जो अभी भी अनवरत चालू है।

इस प्रकार पंडितजीकी जीवन-साधना श्रम बनकर ज्ञानके प्रसारमें निरत है।

●

पं० कमल कुमारजी न्यायतीर्थ

●

आप बमराहा ग्रामके रहने वाले हैं। मनसा वाचा कर्मणा एक हैं। साहित्य और व्याकरणके व्युत्पन्न विद्वान् हैं। आपकी भाषण शैली उत्तम है। आपने कुछ वर्ष तक सागर विद्यालयमें व्याकरणाध्यापकका कार्य किया है और अब सेठ गजराजजी गंगवाल कलकत्ताके घर रहकर उनके परिवारको धार्मिक शिक्षा देते हैं। कलकत्तामें प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन करते हैं। संस्कृत तो इतनी सुन्दर बोलते हैं कि जैन समाजमें इनकी टक्करका संस्कृत बोलने वाला दूसरा विद्वान् नहीं। ●

पं० खुन्नीलालजी (पं० ज्ञानानंदजी)

विक्रम ,संवत् १८५०के लगभग आपके पूर्वज दि॰ जैन परवार कुलोत्पन्न बाबा नैनसुखदासजी तत्कालीन ओरछा नरेशके आग्रहपर ग्राम भदौरा (महरौनी)मे टीकमगढ आये थे। उस समयकी दृष्टिमे आप सम्पन्न एवं कुशल वस्त्र व्यवसायी थे और तभीसे आपको निरन्तर राज सम्मान मिलता रहा।

बाबा नैनसुखदासकी परम्परामें श्रावक शुक्ला अष्टमी सवत् १९५७ के दिन आपका जन्म हुआ था। आपके पिताजी का नाम श्री मन्नूलालजी भदौरा था। वे समाजमान्य, राज्य प्रतिष्ठित एव टीकमगढ़ रियासतके प्रमुख वस्त्र व्यवसायी थे। आप स्वाध्यायी एव धर्मात्मा व्यक्ति थे। अन्त समय अनेक विद्वानोंके सान्निध्यमें समाधिपूर्वक मरणको प्राप्त हुए थे। आपके जन्मके समय परिवारमें लगभग ६०-७० व्यक्ति थे। इतने बड़े परिवारमें आपका जन्म सभीके लिए आल्हादकारी था।

प्रारम्भमें आपने प्राथमिक शिक्षासे लेकर न्याय, व्याकरण साहित्य आदिकी उच्चशिक्षा तत्कालीन प्रसिद्ध विद्वान् ब्राह्मण पंडितोंसे प्राप्त की थी। जैनधर्मकी आदिसे लेकर गोम्मटसार, पंचाध्यायी आदि आगम ग्रन्थों तककी शिक्षा वर्तमानमें सुसम्मानित वयोवृद्ध विद्वान् पं० दरयाव सिंहजीसे प्राप्त की थी। इस प्रकार सं० १९८२ तक का समय अध्ययनकालका रहा, पश्चात् आजतक अध्ययन-अध्यापनका समय व्यतीत हो रहा है।

आप विद्याव्यसनी होनेके साथ ही प्रारम्भसे उच्च कुशल व्यवसायी भी है। १८ वर्षकी अल्प अवस्यामें बाहर दिशावरोंसे वस्त्र व्यापार हेतु खरीदना और बेचना आपकी कुशल कर्मठताका प्रतीक है।

आप समाज सेवक भी हैं। अतिशय क्षेत्र पपौरामे स्थित श्री वीर दिगम्बर जैन विद्यालयके जन्मसे ही उपमन्त्री-मन्त्री-अध्यक्ष आदि पदोंपर रहकर विद्यालय व क्षेत्रके प्रति विशेष उन्नतिशील कदम उठाए और क्षेत्र तथा विद्यालयको क्रमशः विकासमें लाते गये।

आपने विक्रम संवत् ७५ के लगभग 'अकलंक सरस्वती सदन' एवं ज्ञानामृत पुस्तकालयोंकी स्थापना की। 'ज्ञानामृत' पुस्तकालय आपका अपना निजी है। जिसमें हजारों विविध विषयोंकी पुस्तकोका संग्रह है। आप ज्ञानमार्ग और चरित्र मार्गमें विशेष अग्रणी रहे। आपके प्रवचन बहुत ही प्रभावशाली एवं मार्मिक रहते है। श्रोताओंमें तल्लीनता आए बिना नही रहती। आप व्रतियों, ज्ञानियों व अन्य धर्म पात्रोंकी वैयावृत्तिमें सदा अग्रसर रहते हैं।

जटिलसे जटिल सामाजिक वैमनस्योंको शान्त कर देनेमें आप सफल होते रहते हैं। दीनों, अनाथोंके साथ आपका व्यवहार बड़ा ही दयालुतापूर्ण रहता है। इन्हीं सब कारणोंसे आप समाजमें धन्य हुए।

श्री खच्चूरामजी बरैया

बरैयाजीका जन्म आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व ग्राम क्वार (मुरैना) म० प्र० में हुआ था। आपकी आरम्भिक शिक्षा सुमावली (मुरैना)में स्व० पं० हीरालालजीके समीप हुई थी। आपने शास्त्री तकके धार्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन किया। ज्योतिष-शास्त्रका आपको अधिक ज्ञान है। यह आपकी उपाधि सहज ही बतलाती है। आप हिन्दी-संस्कृत भाषाके साथ गुजरातीका भी ज्ञान रखते हैं। वर्तमानमें आप मोर बाजार लश्कर (ग्वालियर) में निवास करते हुए व्यापार बढ़ा रहे हैं।

आप दिगम्बर जैन पाठशाला माधवगंज लश्करमें १२ वर्ष तक अध्यापक रहे। आप वीर शिक्षा समितिके प्रचारमन्त्री भी रहे।

आपने भारतीय जैन बन्धु समाचार पत्रका सम्पादन भी किया। संक्षेपमें बरैयाजी धर्म-ज्योतिर्विद् और साहित्यिक अभिरुचि सम्पन्न व्यक्ति हैं। शरीरसे वृद्ध होकर भी उनमें युवकोचित उत्साह है।

पंडित खूबचन्दजी न्यायतीर्थ

पंडित खूबचन्द्रजीका जन्म आजसे लगभग ६२ वर्ष पूर्व मडावरामें हुआ था। आपके पिता श्री मूलचन्द्रजी सिंघई थे और माताजी मुन्नीदेवी हैं। आपने विक्रम संवत् १९६९ में आषाढ वदी पंचमी बुधवारको जन्म लिया था। आप परवार जातिके भूषण हैं। चूँकि बाल्यकालमें ही आपके पिताश्रीका देहावसान हो गया था अतएव आपके संरक्षणका दायित्व माताजीने वहन किया। आपकी आरम्भिक शिक्षा मडावरा-महरौनीमें हुई। इसके बाद आपने महावीर दिगम्बर जैन पाठशाला साढ़ूमलमें अध्ययन किया। अनन्तर जैन महाविद्यालय ब्यावरमें आपने अध्ययन किया। न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की।

सन् १९३४ में, सौ० रतनबाईसे आपका विवाह हुआ। इनसे आपको दो पुत्र व दो पुत्रियोंकी प्राप्ति हुई। इस समय तक आप पार्श्वनाथ विद्यालय उदयपुरको छोड़कर सम्भवनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला चांबानेरमें कार्य करने लगे थे। इसके बाद आपने कुरावड, उदयपुर, रतलाम, भीलवाड़ाकी धार्मिक शिक्षा संस्थाओंमें कार्य किया। कुछ समय तक आप टीकमगढ़में मुनीम बनकर भी रहे। अनन्तर दिगम्बर जैन वीर विद्यालय पपौरामें प्रधानाध्यापक रहे। फिर कुछ समय नेवरा (रायपुर)में धर्मशिक्षक रहे। अनन्तर अपनी जन्मभूमि मडावरामें वर्णी दिगम्बर जैन पाठशालामें एक युग तक कार्य करते रहे। इसके साथ ही आपने दुकानदार बननेका निश्चय कर दुकान भी खोल दी, जिससे जीवनमें स्थायित्व आ गया।

आप कांग्रेसके सदस्य रहे। दिगम्बर जैन, जैनमित्रके लिए कभी-कभी लेख लिखते रहे। आपके प्रयत्नोंसे ही चावनेरमें पाठशाला स्थापित हुई थी। आप ओरावल धर्मनिधिके ट्रस्टी हैं। आप जहाँ सादा जीवन उन्नत विचारके प्रतीक हैं, वहाँ न्यायोपार्जित आजीविका और बालक-बालिकाओंकी धार्मिक शिक्षाके भी पक्षमें हैं।

सिद्धांतशास्त्री पंडित खुशालचन्द्रजी

पंडित खुशालचन्द्रजी बड़ेरायका जन्म करौंदी (दमोह)में अगहन सुदी दशमी वि० सं० १९७२ में हुआ था। आपके पिता श्री सवाई सिंघई धनीरामजी (मालगुजार साहूकार कृषक लक्षाधिपति) थे और माताजी धौरी बहू थी। आप परिवारमें चार भाई हैं। बाल्यकालमें ही माता-पिताका स्वर्गवास हो गया था पर उनके दायित्वकी पूर्ति आपकी दादीने कर दी थी। आप तेजगढ पाठशालाकी पढ़ाई समाप्त कर जैन शिक्षा संस्था कटनीमें पढ़ने लगे। यहाँ न्यायमध्यमा, विशारद, सिद्धान्तशास्त्री किया। फिर गणेश विद्यालय सागरके छात्र बनकर श्वेताम्बर न्यायतीर्थ, शास्त्री, साहित्याचार्य किया। इसके बाद प्रशिक्षण संस्था हटासे बी० एस-सी० किया।

आपके जीवनपर देशभक्त नानाजी व नाथूरामजी तेजगढ़का प्रभाव पड़ा। दस्सापूजन अधिकार आन्दोलन आपने देखा। अपने पिताश्रीसे सबके हृदयोंपर ईमानदारीकी मुहर लगाना सीखा। समाज-सुधार मन्दिर अर्थ-व्यवस्था हेतु यत्न लेखे।

सन् १९३३ में बल्लेलालजी आयजीकी सुपुत्री शान्तिबाईसे आपका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। आपके चार पुत्र व पाँच पुत्रियाँ हुईं। बड़े पुत्र खेमचन्द्रजी आयुर्वेदाचार्य शासकीय सेवामें कार्य कर रहे हैं।

यद्यपि आपकी नौकरी करनेकी इच्छा तो न थी पर मजबूरीमें आप अध्यापक व प्रचारक भी बने। अपने जैन पाठशाला दमोह, जै० पा० शा० बंडा, वनवासी मंडल धनगौर, जनपद माध्यमिक शाला तारादेही, जैन पाठशाला कोटा, प्राथमिक शाला पतलोनीमें शिक्षकका कार्य किया। आप परिषद्के प्रचारक भी रहे। धर्मका मर्म प्रवचन सुनकर जैन समाज बण्डाने अभिनन्दन पत्र दिया। अनेकान्तपर वक्तृता सुनकर अग्रवाल समाज कोटाने भी अभिनन्दन पत्र दिया।

आपने विद्यार्थी जीवनकालमें सन्मति मिलन मंडल स्थापित किया। तारादेहीमें स्वरूपसागर सार्वजनिक वाचनालय खोला। सहकारी संस्थाके मन्त्री पदपर रहकर जन-सेवा की। करौंदीके तालाबका जीर्णोद्धार कराया। सेवादल दमोहमें सम्मिलित होकर कुण्डलपुर केवलारी गजरथोंमें सामाजिक सेवा की। सन् १९३०-४२ तक कांग्रेसके स्वयंसेवक रहे। दस्सा पूजाधिकारका समर्थन किया। समाज सुधारके लिए धार्मिक शिक्षा पर बल दिया।

पं० खूबचंदजी पुष्कल'

●

आपका जन्म कार्तिक सुदी ७ सोमवार संवत् १९७८ में म० प्र०के सागर जिलान्तर्गत सीहोरा नामक स्थानमें हुआ। आपके पिता श्री दरयाब प्रसादजी मध्यम आर्थिक स्थितिके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। माता श्रीमती सरलादेवी सचमुच सरला ही थी। आपके पिताश्रीको धर्मके प्रति बहुत अधिक ममत्व था। वे ग्राम पंचायतके सरपंच, विद्वद् जनोंमें अग्रणी एवं जैन मन्दिरके प्रमुख प्रबन्धक थे। भरा-पूरा परिवार था। खेती बाड़ीका काम होता था। इसके अलावा कपड़ा एवं किरानाकी दूकान भी थी।

आप हिन्दी चतुर्थ कक्षा उत्तीर्णकर ११ वर्षकी अवस्थासे ही जैन संस्कृत विश्वविद्यालय मोराजी भवन सागरमें प्रविष्ट हुए। आपने विशारद तथा व्याकरण मध्यमा एवं साहित्य मध्यमा किया। तत्पश्चात् आप विवाह बन्धनमें बँधकर अध्ययनसे वंचित रह गये।

सन् १९४१-४२ से विद्यालय छोड़नेके बाद आपको कृषिकार्यका दायित्व सम्हालना पड़ा। क्योंकि आपके बड़े भाई साहब श्री गुलजारीलालजीको सन् ४२ के आन्दोलनमें जेलयात्रा करनी पड़ी थी। खेती बाड़ी एवं दुकानदारीका कार्यभार सिरपर आ जानेसे आप एकदम विचार परिवर्तित कर उसी ओर प्रवृत्त हो गये।

आपमें सन् १९३६से कविता लिखनेकी भावना जागृत हुई और आपने रक्षाबन्धन कथा लिखी। आपने साहित्यके सिर्फ पद्य भागको ही अपनाया। ललितपुर कवि सम्मेलनमें आपने स्वर्णपदक तथा धामपुर कवि सम्मेलनमें आपने रजतपदक प्राप्त किया। इसके अलावा प्रत्येक स्थानोंके कवि सम्मेलनोंमें कमसे कम प्रशंसापत्र तथा नगद इनाम आप हमेशा पाते रहे हैं।

आरम्भसे अब तक आपने स्फुट रचनायें ही लिखी हैं। आपका साहित्यिक दृष्टिकोण दार्शनिकके साथ-साथ आध्यात्मिक भी है। आज तक आपने लगभग छै सौ कवितायें लिखी हैं।

आप एक सफल कवि हैं। आप मंचके श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। पचास वर्षकी अवस्थाके बावजूद भी आपकी लेखनी अविराम गतिसे अब भी चलती जा रही है। सरस्वतीके वरद हस्तकी छायामें आप उसीकी सेवामें निरत है।

●

गुरुवर्य पं० गोपालदासजी बरैया

इस शताब्दीमें श्रीमान् गुरु गोपालदासजी बड़े अनुभवी गणनीय विशिष्ट विद्वान् हो चुके हैं। मैं संवत् (विक्रम) १९६४ में बनारस अध्ययनार्थ गया था, उससे २० वर्ष प्रथम काशीमें ब्राह्मणोंमें पं० बालशास्त्रीजी बड़े भारी विद्वान् विद्यमान थे। वे व्याकरण, न्याय, साहित्य परिष्कार, काव्य आदि विषयोंके प्रकाण्ड पंडित थे। षड्दर्शनोंके पारदृश्वा थे। मैं जब बनारस पहुँचा था तब स्वर्गीय पं० बालशास्त्रीजीके शिष्य श्री शिवकुमारजी शास्त्री, दामोदरजी शास्त्री, सीतारामजी शास्त्री, राममिश्रजी शास्त्री, तात्याजी शास्त्री, गंगाधर शास्त्री, देवीप्रसादजी शुक्ल प्रभृति विद्वान् बनारसमें ख्याति प्राप्त थे। ये सब राज्यमान्य महामहोपाध्याय थे। एकसे एक प्रखर पंडित थे। इनका परस्पर शास्त्रार्थ बड़ा रुचिकर होता था।

उसी प्रकार ५०, ५५ वर्ष प्रथम पंडित प्रवर गोपालदासजी हुए थे। उनके शिष्य पंडित वंशीधरजी (बेरनीवासी), पं० खूबचन्दजी, उमरावसिंहजी, पं० मक्खनलालजी, पं० वंशीधरजी (महरौनी), प० देवकीनन्दनजी और मैं ऐसे आठ दस विद्वान् इस जैन धरा-मण्डलको अलंकृत कर चुके थे। पंडितजीकी बुद्धि पैनी थी। वे यद्यपि चोटी बाँधकर, आँखें पानीसे भिगोकर, घडीमें अलार्म लगाकर, व्याकरण न्यायकी पुस्तकोंको गुरुसन्मुख खोलकर एकाग्र बैठकर चार, छः वर्ष तक न्याय, व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र नही पढे थे फिर भी उनकी प्रतिभा नितान्त तीक्ष्ण थी। क्षयोपशम तीव्र होनेसे वे व्याकरण, न्याय, साहित्य विषयोंमें भी अन्तःप्रवेश कर लेते थे। अगाध गम्भीर पंडित वरेण्य बलदेवदासजीसे आगरेमें पंडितजीने कुछ अध्ययन किया तथा अजमेरमें पं० मोहनलालजी पहाड़े साहबके साथ गुरुजीका चर्चा पूर्ण सम्पर्क रहा। आगरेमें स्तोक संस्कृतका अध्ययन किया था। लगनके पक्के धनी थे।

गुरुजी जैन सिद्धान्तके तो अगाध तलस्पर्शी अधिकारी पंडित थे। एक बार त्रिलोकसार पढ़ाते हुए ऊर्ध्वलोकका पिनष्टि गणित नहीं लगा। किन्तु दो दिन घोर परिश्रम कर पंडितजीने पिनष्टिके रेखागणितको परिपूर्ण हस्तगत कर लिया और तीसरे दिन हम सभी छात्रों को हस्तामलकवत् स्पष्ट समझा दिया। जिस गणितके लिए महाविद्वान् आचार्य कल्प पंडित टोडरमलजी सा० ने भी त्रिलोकसार भाषाटीकामें लिख दिया कि यह प्रकरण मेरी समझमें नीका नही आया है। गोम्मटसार, त्रिलोकसार, पंचाध्यायीके तो पंडितजी अन्तः प्रवेशी विद्वान् थे ही, जैन न्यायके भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। प्रमाण, प्रामाण्य, प्रमाण फल, स्वत. प्रामाण्य, परत प्रामाण्यका अच्छा विवेचन करते थे।

नि.स्वार्थ सेवी

पंडितजी समाजसे भेंट, दक्षिणा नही लेते थे। यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति प्रशस्त नही थी फिर भी जैन बन्धुओंसे स्वभावतः उनने एक पैसा नहीं लिया। एक बार बम्बई समाजसे मार्ग व्यय जो दिया गया था, उसमें दस आनेसे अधिक आ गये थे। वे मनीआर्डर करके बम्बई वापिस भेज दिए गये। पंडितजी यदि चाहते तो ५०-४० हजार रुपये उनको जैन धनिकोंसे अनायास मिल सकते थे, किन्तु पंडितजीने एक पैसा नही लिया। एक बार पंडितजीको बाहरके दो भाई लिवाने आये। कुछ गृहकलहके कारण पंडितजी

घरसे कपड़ा नहीं ले पाए । जैसा मलिन कुर्त्ता पहने थे, उसी वेषमें चल दिए । इटावा पहुँचकर पंडितजीने नवीन दो कुर्ता बनवाये और दूकानदारको मूल्य २) तीन आने फौरन अपनी जेबसे निकालकर दे दिए । तत्रस्थ जैनबन्धु मेषवत् यों ही देखते रहे, कुछ कहते नहीं बना । इसीसे निःस्वार्थ ज्ञानदानीका अक्षुण्ण प्रभाव था ।

पंडितजीको जैनधर्म प्रभावना, शास्त्रार्थ करना, स्याद्वाद प्रचारका गाढ़ अनुराग था । नितान्त घोर परिश्रम करके, परीषहें सहकर उन्हें जैनधर्मकी पताका ऊँची फहराना अभीष्ट था । इटावाके पंडित पुत्तूलालजी, चन्द्रसैनजी वैद्य, दिग्विजयसिंह, रूपचन्द्रजी वैद्य आदि उत्साही जैन बन्धुओंने तत्त्वप्रकाशिनी सभा स्थापित कर रक्खी थी । उसके द्वारा जोवनेर, अटेर, अजमेर आदि अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ किए गए तथा जैनसिद्धान्तकी उत्कट प्रभावना की गई ।

आद्य परिचय

जोवनेर (जयपुर स्टेट) के ठाकुर साहब विचार विमर्शके अनुरागी थे । आर्य-समाजी विचारके थे । वैशाख संवत् १९६८ में ठिकानेदार रईसने तत्त्व प्रकाशिनी सभा (इटावा) को निमन्त्रित किया । मुझे भी ठोस प्रतिभाशाली विद्वान् श्री अर्जुनलालजी सेठीने तार देकर आमन्त्रित किया । तदनुसार मैं चावलीसे जोवनेर पहुँचा । पं० गोपालदासजी, सेठीजी, दिग्विजयसिंहजी, चन्द्रसैनजी मन्त्री वहाँ प्रथमत शास्त्रार्थमें डटे हुए थे । बड़ा सुशोभन प्रबन्ध था, वातावरण सन्तोषजनक था । विद्वानोंके व्याख्यान हुए, गुरुजीकी सुकीर्ति, विद्वत्ता, व्याख्यान शैली पाण्डित्यपूर्ण थी । मुझे भी व्याख्यान देनेका अवसर दिया । मुझसे गुरुजी भारी प्रसन्न हुए । मेरे गलेमे बाँहें डालकर गुरूजीने सामोद आग्रह किया कि अब मैं तुमको नही छोड़ूँगा, साथ ही मोरेना ले चलूँगा ।

उनके गाढ स्नेहपूर्ण आग्रहको मैं नही टाल सका और १५ दिनमें पूज्य भाईजीकी आज्ञा लेकर मोरेना पहुँच जाना मैंने स्वीकार कर लिया ।

जेठ सुदी ९ वि० स० १९६८ को मैं मोरेना पहुँचा । उस समय गुरुजी गोम्मटसारकी देशावधि मार्गणाको पढा रहे थे । पं० खूबचन्द्रजी, पं० बंशीधरजी, पं० मक्खनलालजी, पं० उमरावसिंहजी, प० देवकीनन्दनजी ये प्रधान विद्यार्थी थे । दूसरे दिन गुरुजीने मुझे न्यायाध्यापक नियुक्त कर दिया । मैंने मोरेनामें उपर्युक्त छात्रोंको प्रमेयरत्नमाला, आप्त-परीक्षा, प्रमेयकमल मार्तण्ड, अष्टसहस्री, श्लोकवार्तिक पर्यन्त न्याय ग्रन्थ पढाये । अन्य भी पचासों छात्र न्याय, सिद्धान्त ग्रन्थोंको पढते रहे । पं० जी जिनवाणीके नितान्त श्रद्धालु थे । कभी-कभी श्री १०८ विद्यानन्द आचार्यकी कठिन पंक्तियोंको सुननेके लिए अथवा मेरा अध्यापन परीक्षण करनेके लिए पाठनावसरपर बैठ जाते थे ।

पण्डितजीकी तीक्ष्ण प्रतिभा न्यायशास्त्रोंमे अन्तः प्रवेश कर जाती थी, क्षयोपशम तीव्र जो था । जिनवाणीकी प्रभावना की उत्कट भावना जो थी । गोम्मटसार आदिके तो वे अन्तर्यामी महारथी विद्वान् थे ही ।

तीन चार वर्ष तक मोरेनामें किरायेके मकानमें गुरुजी सिद्धान्त ग्रन्थोंमें गोम्मटसार, त्रिलोकसार, पञ्चाध्यायीको पढ़ाते थे । और मैं पं० बंशीधरजी, पं० मक्खनलालजी आदिको अष्टसहस्री, मार्तण्ड, श्लोकवार्तिक पढ़ाता था । और गुरुजीसे सिद्धान्त ग्रन्थोंका अध्ययन भी बंशीधरजी आदिके साथ करता था । बडा आनन्द आता था । दिन रात अध्ययन, अध्यापन, शास्त्रचर्चामें हो व्यतीत होते थे । पण्डितजीकी तीव्र भावना थी कि विद्यालय उन्नति करे और विद्यालयका निजका भवन हो ।

पावन तीव्र भावना अवश्य फलवती होती है । पञ्चायत विचारानुसार स्थानीय दिगम्बर पार्श्वनाथ जैन मन्दिरके विशाल अहाते में ही विद्यालय भवनका निर्माण प्रारम्भ हो गया । इस कार्यमें पण्डितजीको

भारी परिश्रम करना पड़ा। उनके अर्थोपार्जनका कार्य भी शिथिल पड़ गया। पं० जी बडे साहसी पराक्रमी थे। प्रारम्भ करके हट जाना उनकी प्रकृतिमें नहीं था। दो तीन वर्ष में ही सिद्धान्त विद्यालय भवन पूर्ण बन गया और नवीन भवनमें पठन-पाठन चालू हो गया।

उस समय मोरेना विद्यालयकी कीर्ति प्रशस्त थी। प्रत्येक विद्यालयके छात्र मोरेना अध्ययनकी छाप लगवाते थे। यों सं० १९७२ में मोरेना विद्यालयमें २५ छात्र ४ अध्यापक (पं० मक्खनलालजी पं० वंशीधरजी (महरौनी) पं० जगन्नाथजी शास्त्री और मैं नियुक्त था। फिर विद्यालयका कार्य बढता ही गया। गुरुजीने सर्वदासे मुझे प्रधानाध्यापक पदपर प्रतिष्ठित किया। कुछ दिन मैं मन्त्री भी रहा। किन्तु प्रबन्ध करनेमें रागद्वेषकी अनेक झंझटें होती हैं। सूरजभानजी वकील देवबन्दकी प्रेरणासे एक जैन छात्रको मुझे निकालना भी पडा, जिसका भी मुझे अद्यापि अनुताप है। अत: पठन-पाठन ही मेरी प्रकृतिके अनुकूल पडा। विद्यालयके अंगभूत छात्राश्रम, सुपरिन्टेन्डेन्ट, रसोइया, भोजनशालाकी सुव्यवस्था भर कर दी गई। यों मोरेना विद्यालयका उस समय अत्यधिक नाम काम बढ़ गया था। १०० छात्र थे, ७ अध्यापक थे।

बम्बई परीक्षालयकी वार्षिक परीक्षाएँ होती थी फल ९० प्रतिशत निकलता था। विद्यालयमें पढ़कर पं० वशीधरजी, पं० मक्खनलालजीने अष्टसहस्रीमें अच्छे नम्बर प्राप्त किये थे। पुन अग्रिम वर्ष श्लोकवार्तिक में भी परीक्षा देकर उत्तीर्णता प्राप्त कर ली। अत्यन्त प्रसन्न होकर गुरुजीने प० मक्खनलालजी और वंशीधरजीको न्यायालंकार पदवीसे विभूषित किया था। उस दिन विद्यालयमे विशेष अधिवेशन किया गया था। और पं० जी ने मुझे अभिनन्दित किया तथा वेतन मे १०) रु० मासिक वृद्धि की एवं प्रशंसा की। तथा स्वपुरुषार्थसे जिन वाणीकी प्रभावना देखकर अनेक पुत्रजन्मो से भी अधिक आत्मीय हर्षका अनुभव किया। अपने लगाए हुए वृक्षके मधुर फलोंका आस्वादन कर प० जी ने हर्ष से गद्गद होकर ये शब्द कहे कि "आज मुझे परम हर्ष है कि विद्यालयमें उच्चकोटिके न्याय और सिद्धातके अध्येता, अध्यापक विद्यमान हैं।"

बुद्धि वैभव

गुरुजी जैनधर्म प्रभावनार्थ बाहर भी जाते थे तो मुझे भी साथ रखते थे। कई स्थानोंपर गर्विष्ठ विद्वान् आ जाते थे जो कि कठिन संस्कृत भाषामें भाषण करते हुए पूर्व पक्ष उपस्थित कर देते थे। उनमे वाद करनेके लिए वे मुझे संकेत कर देते थे। वे दक्षिण महाराष्ट्र सभाके सभापति होकर वेलगाँव गये थे। उनके साथ परम प्रभावक मान्य पण्डित धन्नालालजी भी थे। पं० जी मुझे भी साथ ले गए थे। वहाँ उनका सभापति भाषण नितान्त गंभीर हुआ था। दक्षिणके जैन भाइयोंकी गुरुजी पर तीव्र श्रद्धा थी। हजारों दाक्षिणात्य जैनबन्धु धनिक उनके भक्त हो गए थे।

कलकत्तामें बाबू धन्नूलालजी अटर्नीके निमन्त्रणपर संवत् १९७२ में गए थे। तब भी पं० जी मुझे साथ ले गए थे। कलकत्तेके सैकड़ों उद्भट विद्वान् सभामें आमंत्रित थे। पण्डितजी ने बडी विद्वत्ताके साथ जिनागमोक्त द्रव्य, गुण, पर्यायों तथा अनेकान्तका प्रतिपादन किया। पण्डित सतीशचन्द्रजी डी० लिट्०, प्रमथनाथ न्यायचक्रवर्ती आदि २०० वैष्णव ब्राह्मण चूड़ामणि विद्वानों ने पं० जी को 'न्यायवाचस्पति' पदवीसे अलंकृत किया।

इसी प्रकार अजमेरमें हजारों जैनाजैन जनताके सम्मुख स्वामी श्रद्धानन्दजीके साथ पण्डितजीका शास्त्रार्थ हुआ। पण्डितजीकी अकाटय युक्तियोंके सम्मुख स्वामीजी की युक्तियां निर्बल रही। उस समय 'सरस्वती' पत्रके सम्पादक महावीरप्रसादजी द्विवेदी आदि प्रौढ़ विद्वानोंने स्वकीय प्रसिद्ध पत्रिकाओंमें यही

टिप्पणी लिखी थी कि जैनोंकी ओर से विशेष प्रबल युक्तियाँ दी गई थीं। अजमेरमें मेरा पं० यज्ञदत्तजी न्यायशास्त्रीसे संस्कृत भाषा में दो दिन शास्त्रार्थ हुआ था। जैनधर्मकी प्रकाण्ड प्रभावना हुई।

पण्डित जी की समय पर सूझ बड़ी तीक्ष्ण थी। प्रतिष्ठा, मेला, दशलक्षण, शास्त्रसभाओं में भी तत्त्वोंका प्रतिपादन अन्तःप्रविष्ट होकर करते थे! जोबनेर, अटेर, भिण्ड, सोनागिर, दिल्ली आदिमें गम्भीर सुशिक्षित वकील, बैरिस्टर, दार्शनिक आदि विद्वत्समाजमें पण्डितजीका धाराप्रवाही व्याख्यान गम्भीर विद्वत्तापूर्ण होता था। वे जिनागमको दिपावनेवाले सूर्य थे।

बम्बईमें माधौबागमें पण्डितजीका सार्वजनिक भाषण हुआ। ८ हजार विचारशील जनता उपस्थित थी। ईश्वरवाद, अनेकांत, द्रव्य निरूपण विषयोंपर पण्डित जी २ घण्टे तक बोलते रहे। गुणी सज्जनोंने पण्डितजीको 'स्याद्वादवारिधि' पदवी प्रदानकर कृतज्ञता प्रकट की।

पण्डितजी स्वल्प सन्तोषी थे। आशा रहित थे। प्रतिभाशाली महापण्डित थे। पण्डितजीकी शिष्य प्रशिष्य परम्परा में ही अन्तर्निहित है। पण्डितजीने जैन समाजका बड़ा भारी उपकार किया है। जैन समाज उनके उपकारोंसे उऋण नही हो सकता है। उनकी स्नेहपूर्ण कृतियोंको हम स्मरणकर उनके चरणोंमें श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

एक बात प्रकरणान्तरकी कहानी है। मुझे पं० दुर्गादासजी, जीवनाथ झा, हरिवंश ओझा, सहदेव झा, अम्बादासजी शास्त्री, रामावतार पाण्डेय आदि वैष्णव विद्वानोंसे सिद्धान्त-कौमुदी, मनोरमा, शब्देन्दुशेखर, व्युत्पत्तिवाद, शक्तिवाद, काव्यप्रकाश, रसगंगाधर, सामान्य निरुक्ति, सिद्धान्तलक्षण, साधारण, सत्प्रतिपक्ष आदि वैष्णव ग्रन्थोंको पढ़कर जो आनन्द प्राप्त हुआ था। गुरुजीसे धर्मशास्त्रके ग्रन्थ पढ़कर वह प्रकाण्ड सुख सम्यग्ज्ञान रूपमें परिणत हुआ। यह सब गुरुजीके प्रसादसे प्राप्त हुआ 'तेभ्यो गुरुभ्यो नमः' गुरुजीका जैन-ग्रंथो के ही अध्ययन अध्यापन का ही पक्ष था।

पूज्य पं० वर्णीजी महाराज गणेशप्रसादजी (गणेशकीर्ति मुनिराज) पं० महेन्द्रकुमारजी, पं० दरबारीलालजी कोठिया आदि विद्वानोंने भी अवच्छेदकावच्छिन्न फक्किकाओं, परिष्कार आदि पढ़ानेमें भारी श्रम किया है।

हां गोम्मटसार, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक ग्रंथोंमें पर्याप्त अमृतसर्वस्व मुझे प्राप्त हुआ। अतः संस्कृताध्ययन करने वाले छात्रोंसे मेरा साग्रह निवेदन है कि वे अल्पसार ग्रन्थोंमें अधिक श्रम नहीं कर जैन वाङ्मय जैनन्याय काव्य ग्रन्थोंमें परिश्रम करें। जिनसे ठोस विद्वत्ताके साथ स्वपर कल्याण करते हुए घोर परिश्रमको सफल कर सकें।

शासक

पंडितजी महोदय गोपाल सिद्धान्त विद्यालयके तो सर्वांगीण शासनकर्त्ता थे ही। स्थानीय म्यूनिसिपैल्टीके भी कमिश्नर थे तथा स्थानीय पंचायती बोर्डके भी मजिस्ट्रेट रह चुके थे। वे सत्य और न्यायके अनुसार निर्णय देते थे। एक-दो बार पेशकारने कुछ लञ्चा ले ली थी। पंडितजी उसपर अत्यधिक कुपित हुए और उसको पृथक् कर दिया। पंडितजीका राज्यमें विशेष आदर प्रभाव था। ग्वालियरके महाराज साहबने पंडितजीको दरबारी पोशाक देकर सत्कृत किया था। राज्यके तत्कालीन प्रधानमन्त्री पमास्साव तों गुरुजीके मित्र थे तथा शिक्षा मन्त्री एच० एम० बुल (अंग्रेज) पंडितजीको मान्य करते थे। यों राज्य, राष्ट्र प्रजाजनोंमें पंडितजीका पुष्कल आदर सम्मान था।

[प० मानिकचन्द्रजी न्यायाचार्य द्वारा लिखित]

●

विद्याभूषण स्व० पं० गोविन्दरायजी शास्त्री

●

आप महरौनी जिला झाँसीके निवासी थे। दि० जैन समाजमें आप व्याकरण, न्याय, काव्य आदिके प्रसिद्ध विद्वान् और हिन्दीके माने हुए लेखक थे। कद आपका छोटा दोहरी देह और रंग गेहुँवा था। आँखें बड़ी-बड़ी और भरा चेहरा होनेसे मुखमुद्रा प्रभावशालिनी थी। मुखपर ही पाण्डित्यका तेज दमकता था। व्यवहार मिलनसार रहा फिर जैसेको तैसा था। काशीके स्याद्वाद महाविद्यालयमें कई विषयोंके अध्ययन अध्यापनसे आपकी विद्वत्ता निखरी हुई थी इसी कारण आप जैन और अजैन विद्वानोंमें समान सम्मान पाते रहे। साम्प्रदायिक पंडित होकर भी असाम्प्रदायिक रहे। धर्मनिष्ठ होकर भी सुधारक विद्वान् रहे।

महाराज टीकमगढ़ और महाराज धारके दरबारोंमें आपकी अच्छी प्रतिष्ठा रही। धार राज्यमें आपने १२ वर्ष तक धर्म और नीतिके व्याख्याता होनेके साथ सहायक इन्स्पेक्टरके पदपर शिक्षा विभागमें गौरवके साथ काम किया। सन् १९४० में आपके नेत्र एक ही रात्रिमें जब चले गये तबसे आप विश्रामवृत्ति (पेन्शन) लेकर जिन वाणीकी सेवामें अहर्निश लगे रहे। निजी पुस्तकालयके ५०० ग्रन्थोंके बीच नित्य सोते और जागते रहे। दि० जैन समाजके विद्वानोंमें आपका एक निराला ही स्थान था।

"जैनधर्मकी सन्ततनता" यह ऐतिहासिक और दार्शनिक पुस्तक है। "गृहिणीचर्या" "बुन्देल खंड गौरव" यह संस्कृतमें खण्डकाव्य है जो कि वर्णी अभिनन्दनग्रन्थमें और श्रद्धाञ्जलिके रूपमें काशीसे प्रकाशित है "वर्तमान विश्वकी समस्यायें और जैनधर्म' यह एक ट्रैक्ट है जैन-समाज सदर बाजार झाँसीसे प्रकाशित है। भक्तामर स्त्रोत्रका हिन्दी पद्यानुवाद, यशस्तिलकचम्पूकी बारह भावनाओंका हिन्दी गद्य पद्यानुवाद "आचार सूत्र" यह हिन्दीमें सूत्र पद्धतिसे लिखा हुआ है आदिका संग्रह प्रकाशित होनेकी तैयारीमें था तथा सम्राट जीवन्धर नामक काव्य भी तैयारीमें था कि आकस्मिक घटनासे आपका देहावसान हो गया।

भाषामें माधुर्य और ओज पर्याप्त था। कुछ ही समयमें लोग आपसे बातचीत कर मोहित हो जाते थे। इसलिए आप अपनी ललित रचनाओंसे श्रद्धेय राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी, माननीय राजाजी राजगोपाला-चार्यजी, आचार्यश्री विनोबाभावेजी, परमपूज्य महात्मा श्री गणेशप्रसादजी वर्णी तथा काका कालेलकरजी आदि जैसे गण्य मान्य विद्वानोंसे सम्मान पा चुके थे।

आपके कुरल काव्यकी रचनापर देशको बडा गौरव है। इसे शास्त्रीजीने संस्कृत तथा हिन्दी दोनोंमें लिखा है। यह अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त दो हजार वर्षका प्राचीन जैनग्रन्थ मूल तामिल भाषामें कुन्दकुन्दा-चार्य (एलाचार्य) द्वारा विरचित है जिसके कि अनुवाद अँग्रेजी, जर्मनी, फ्रांच और इटालियन भाषाओंमें हुए हैं। यह व्यवहारनयका समयसार है। विश्व साहित्यकी वस्तु है और भारतके साहित्यका कौस्तुभमणि है।

आपके व्याख्यान भी कभी-कभी बड़े मोहक होते रहे। शास्त्रीजी साहित्यिक रचनामें प्रतिदिन कुछ न कुछ अवश्य लिखवाते रहे।

अप्रकाशित 'नीति वाक्यामृत' की हिन्दी व्याख्या—यह प्राचीन राजनीतिका अद्भुत शास्त्र है।

समय-समयपर आपके लेख सरस्वती, वीणा, एजुकेशनल गजट, जैन सिद्धान्त भास्कर, जैनमित्र और दिगम्बर जैन आदिमें प्रकाशित होते रहे। गांधीजीके सत्याग्रह और असहयोगके समय महरौनी तहसीलकी कांग्रेस कमेटी के मंत्रीपदका कार्य आपने योग्यताके साथ किया। साहित्यिक सेवापर प्रसन्न होकर भारत सरकार आपको एक साहित्यिक अलोन्स भी देती रही। आप बुन्देलखण्डके गरिमाके प्रतीक महानतम विद्वान् रहे। आपकी यशः कीर्ति आज भी प्रकाशवान है।

●

पं० गोकुलराम जैन आचार्य

●

युवा पीढीके विद्वानोंमें पं० गोकुलरामजीका नाम आता है, जो संघर्षोंका सामना करते हुए अपनी निष्ठा एवं लगन से आचार्य तक उच्च शिक्षा प्राप्तकर जैनदर्शनकी सेवामें निरत हो गये हैं।

आपका जन्म बोलखेडा नामक ग्राममें हुआ था। माता-पिता साधारण परिस्थितिके होनेके कारण आपको हाईस्कूलके पश्चात् अध्यापन कार्य करना पडा। ग्राममें ही ब्रान्च पोस्ट आफिसके पोस्ट मास्टरका कार्य करते हुए स्वाध्यायी रूपसे इंटरमीडिएट उत्तीर्ण की और श्री उमादत्त शास्त्रीकी सत्प्रेरणासे १९७०में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। बादमें संस्कृतके गहन अध्ययनकी रुचि जाग्रत हुई और श्री डा० लालबहादुर शास्त्रीकी अनुकम्पासे केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठ शान्तिनगर देहलीसे प्रथम श्रेणीमें आचार्य उपाधि उत्तीर्ण कर मेरिट प्राप्त की। १९७४में बी० एड० करनेके पश्चात् "जैनदर्शने कर्मवाद" विषयपर संस्कृतमें शोध प्रबन्ध लिखने हेतु शोधकार्यमें निरत है।

'जैनदर्शन' साप्ताहिकमें विचारोंकी अभिव्यक्ति लेखोंके रूपमें नवयुवकोंका मार्गदर्शन कर रहे हैं। विद्वानोंकी सत्संगतिमें विश्वास रखनेवाले ज्ञानके पिपासु, सीखनेकी अदम्य लालसा लिए पं० गोकुलराम जैन भविष्यमें एक होनहार व्यक्तित्वके रूपमें उभरेंगे।

●

पं० गप्पूलालजी बाकलीवाल

●

आप लक्षाधीश होते हुए भी बहुत सादगी एवं धर्माचरण रूप जीवनयापन कर रहे हैं। ब्रह्ममुहूर्तमें जागरणकर प्रतिदिन धार्मिक ग्रंथोंका स्वाध्याय करना आपका नियमित कार्यक्रम है।

बाहर जाकर धर्मोपदेश देना और धार्मिक कार्योंमें दान आदि कार्य करना आपकी कल्याणकारी वृत्तिका परिचायक है। बाहरकी संस्थाओंमें गुप्तदानके रूपमें बड़ी उदार वृत्ति रखते हैं। विद्वानों और व्रती लोगोंका विशेष सम्मान करते हैं।

आपका लश्कर (ग्वालियर) में ही लोहेका व्यापार चलता है। शासनके कॉन्ट्रेक्टर हैं और भवन आदि निर्माण करवाते हैं।

आप वयोवृद्ध धार्मिक गुणोंसे विभूषित हैं।

●

पं० गोपीलालजी गोधा

●

सप्तम प्रतिमाधारी पं० गोपीलाजी गोधा एक वयोवृद्ध विद्वान् और प्रतिष्ठाचार्य है। आपका जन्म लश्करमें हुआ। तांत्रिक विद्याके ज्ञाता आपकी लौकिक शिक्षा बी० ए० तक है। उस समय जब कि शिक्षाका प्रचार अत्यल्प था आपकी प्रतिभाने न केवल बी० ए० तक शिक्षाका सुयोग्य प्राप्त किया था अपितु आपने अनेक शास्त्रोंका अध्ययन और मनन किया। आपका धार्मिक आचरण उज्ज्वल और विराग वृत्तिके पोषक होनेके कारण आपने संयम रूप धर्मका पालन करते हुए सप्तम प्रतिमा धारण की।

आपकी सामाजिक सेवायें भी अनन्य हैं। आप थियोसोफिकल लाजके सदस्य हैं। आपने अपने समय 'खण्डेलवाल' नामक पत्र भी निकाला था। आपका धार्मिक भाषण प्रभावकारी एव चिन्तनाको पृष्ठभूमिसे युक्त होता हैं और कई स्थानों पर आप प्रवचनों हेतु आमंत्रित किये जाते रहे।

वर्तमानको आपकी आयु लगभग ८८ वर्ष की हो चुकी और आप धर्माराधनमें आरूढ़ है।

●

पं० गोविन्ददासजी कोठिया

●

श्री सिद्धक्षेत्र अहारजी जिला टीकमगढ (म० प्र०) में वैशाख शुक्ल १४, संवत् १९७६ मे पडितजी का जन्म हुआ था। आपके पिता श्री शिवलालजीको 'चौधरी' पदसे विभूषित किया गया था क्योंकि आप एक न्यायप्रिय और निष्पक्ष व्यक्ति थे। प्रारम्भिक शिक्षासे लेकर न्यायतीर्थ, शास्त्री एवं बनारसकी व्याकरण मध्यमा (सम्पूर्ण) परीक्षायें (१९३३-४१) वीर दि० जैन विद्यालय पपौरा (टीकमगढ) उत्तीर्ण की। १९६७ में सर हुकमचन्द संस्कृत विद्यालय इन्दौरमें अध्यापन कार्य करते हुए एम० ए० (संस्कृत) उत्तीर्ण किया। शिक्षाके क्षेत्रके अलावा आपने १९५० में इंजेक्शन ट्रेनिंग लेकर आयुर्वेदाचार्य पास किया और तभीसे चिकित्सा कार्य करते हुए स्वनिर्मित दवाइयोंका क्रय करते है। स्वअध्ययनसे आपने साहित्याचार्य उत्तीर्ण की।

अपना अध्ययन समाप्तकर १९४१से शान्तिनाथ विद्यालय अहार, जैन पाठशाला दोहद (पंचमुहाल), बहरामघाट (बाराबंकी), पुनः अहारजी, संस्कृत विद्यालय इन्दौर आदिमें प्रधानाध्यापकके पदपर कार्य किया। वर्तमान में आप गो० दि० जैन महाविद्यालय मुरैना में प्रधानाध्यापकके पदपर कार्यरत हैं।

साहित्य-रचनायें—ज्ञातमाल पच्चीसी, अहार-वैभव, अमर सन्देश, अहार दर्शन, प्राचीन शिला लेख (अहार के) प्रकाशित स्वतंत्र रचनायें हैं। कुछ अप्रकाशित रचनायें भी हैं—(१) संग्रहालयकी परिचयात्मक सूची (२) चन्द्रप्रभ चरित ४ सर्ग (हिन्दी संस्कृत टीका) (३) धर्मशर्माभ्युदय ६ सर्ग (हिन्दी-संस्कृत-टीका (४) अहार का इतिहास (५) रांगा का चाँदी (नाटक)।

●

प्रो० गजकुमार बाबुलाल शहा

श्री गजकुमार शहाका जन्म बड़वानी (इन्दौर) म० प्र०में १मार्च १९४३को श्रीमती लीलाबाईके गर्भसे हुआ था। आपके पिता श्री बाबूलालजी एक सामान्य आर्थिक परिस्थितिके व्यक्ति थे। आपकी आरम्भिक शिक्षा महावीर ब्रह्मचर्याश्रम कारंजामें हुई। जहाँ आपने धार्मिक शिक्षणमें गोम्मटसार स्तर तकके ग्रंथोंका अध्ययन किया। लौकिक शिक्षा दयानन्द कॉलेज सोलापुरमें प्राप्त की। १९६७में इतिहास तथा संस्कृत विषयसे एम० ए०की उपाधि प्राप्त की।

अपने छात्र जीवनसे आप एक प्रतिभाशाली और साहित्य प्रेमी व्यक्ति रहे। सन्मति ज्ञान प्रसारक मण्डल और आचार्य शान्तिसागर वक्तृत्व स्पर्धा, सोलापुर द्वारा आयोजित क्रमशः निबन्ध और वक्तृत्व स्पर्धाओंमें आपको कई नगद रुपयोंके पुरस्कार प्राप्त हुए।

प्रारम्भमें आपने दि० जैन गुरुकुल (हाईस्कूल) सोलापुरमें अध्यापन कार्य किया। १९६७ से आप के० जे० सोमय्या कालिज, कोपरगाँव जिला अहमदनगरमें इतिहास विभागाध्यक्षके पदपर प्रोफेसर हैं।

बीस वर्षकी अवस्थासे लिखना प्रारम्भ किया। धार्मिक कथाग्रंथोंको आधुनिक भाषामें नयी शैलीसे लिखनेका कार्य प्रारम्भ किया। अभी तक आपने बीस किताबें लिखी हैं। उनमेंसे जैनधर्मपर आधारित सम्राट् चन्द्रगुप्त, पवनपुत्र हनुमान्, भारती तत्त्वमाला आदि हैं। दो जैनधर्मीय उपन्यास सम्राट् खारवेल और नागकुमार भी लिखे जो काफी प्रसिद्ध हुए।

कुछ प्रमुख पुस्तकें जो स्वतन्त्र रूपसे आपने लिखी वे निम्नलिखित है—चक्रवर्ति भरत, राणाप्रताप, बाजीप्रभु देशपांडे, यांराची पाहतां जीवनें (कहानी), भारताचा इतिहास, मधुघट (सम्पादित)। 'जैनबोधक' तीर्थंकर, सन्मति आदि जैन मासिक और साप्ताहिक पत्रोंमें लगभग १२ वर्षसे लेख, कहानियाँ आदि लिख रहे हैं। आपके कुछ निबन्ध बड़े हो महत्त्वपूर्ण हैं जो मराठी भाषामें प्रगट हुए हैं।

आपने जैनधर्मके ऊपर बहुतसे प्रभावशाली व्याख्यान दिये। जैन नवयुवकोंमें जागृतिके लिए विशेष प्रयत्नशील हैं। जैनधर्मके बच्चोंके लिए पाठ्य पुस्तकें लिखना प्रारम्भ किया है। भ० महावीरकी २५००वाँ निर्वाण महोत्सव मनाने हेतु सन्मति ज्ञान प्रसारक मण्डल नामकी संस्थाकी स्थापना कर प्रतिवर्ष ५ या ६ पुस्तकें प्रकाशित की जाती हैं। इस प्रकाशन मण्डलके सम्पादक विभागमें भी आप हैं। तथा दो वर्ष इसके सचिव भी रहे।

आपका विवाह १९६८में सौ० त्रिशलाके साथ हुआ था। वर्तमानमें आपको दो सुपुत्रोंका सौभाग्य प्राप्त है। आप पूना विद्यापीठमें 'Board of Studies' के सदस्य भी हैं।

पं० गणेशीलालजी

श्रीमान् पंडित गणेशीलालजीका जन्म आजसे लगभग ६० वर्ष पूर्व हुआ था। सन् १९१५ में आपने बुधमलजीके घर में जन्म लिया और कुलदीपक शब्द चरितार्थ कर दिया। शिक्षाकी दिशामें आपने आशातीत प्रगति की। आपने जैन सिद्धान्तशास्त्री, साहित्याचार्य, न्यायतीर्थ और एम० ए० (हिन्दी-संस्कृत)की परीक्षायें अतीव अच्छे अंकोंमें उत्तीर्ण कीं। आपने शिक्षण-लेखन व सम्पादन को दिशामें शक्ति भर कार्य किया।

कुछ कालतक तो आप ऋषभदेव उदयपुरमें रहे। अनन्तर गुरूणां गुरु गोपालदासजीके जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेनामें आ गये। इसके पश्चात् आप श्री महावीर दिगम्बर जैन महाविद्यालय आगरामें प्रवक्ता के रूपमें कार्य करने लगे। आपने महावीर दर्शन और महावीर सेवा समिति आगराके परिचयात्मक ग्रन्थ लिखे। मनुष्यकृत्यसार, (आ० कुन्थुसागरजी द्वारा रचित) की टीका भी की।

आपका अध्ययन-अनुभव-अभ्यास जहाँ प्रेरणादायक है, वहाँ आपकी निरभिमानता कर्मवीरता और अविचलता भी स्पृहणीय बनी है। आपका पांडित्य और प्रतिभा श्लाघनीय और अनुकरणीय है।

●

पं० गुलजारीलालजी चौधरी

●

आपका जन्म केसली जिला सागर (म० प्र०) में सन् १९११ में हुआ था। जब आपकी आयु सात वर्ष की थी आपके पिता श्री नोनेलाल जी व मातुश्री गौरीबाईजीका लाल बुखारके कारण सवत् १९७५ में स्वर्गवास हो गया और इस प्रकार अपने परिवारमें छोटे काकाको छोडकर अकेले रह गये। आपके काकाने आगेकी पढ़ाई हेतु आपको स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीमें भर्ती करवा दिया जहाँ आपके बहनोई श्री पन्नालाल जी चौधरी गृहपति थे। १९२८ में आपने वहाँसे न्यायतीर्थ, धर्मशास्त्री एवं साहित्याचार्यकी उपाधि प्राप्त कर शिक्षण संस्था उदयपुरमें सर्विस प्रारम्भ की और सेवा-मुक्त होने तक (१९७०) वहाँ कार्य किया।

आपके विवाह होनेकी एक मनोरजक घटना है। उस समय कन्या-विक्रय प्रथा थी। एक सज्जन तीन सौ रुपया लेकर अपनी लड़कीसे शादी करवाना चाह रहे थे परन्तु आपने स्पष्ट रूप से मना कर दिया। परिवार जनोंके रुष्ट हो जानेपर उदयपुर चले गये। बीनामें शास्त्र प्रवचन हेतु आये और प्रभावक वक्तृत्व-कलासे प्रभावित होकर मोदी कामताप्रसादने अपनी सुपुत्रीका सम्बन्ध बिना लिये दिये आपसे किया।

सामाजिक सेवा : आपने उदयपुरमें आदर्श बाल मंदिरकी स्थापना की। साथ ही श्री दि० जैन कन्या विद्यालय (सेकेण्डरी स्कूल) एवं शान्ति धर्म पुस्तकालय एवं ग्रन्थमाला की स्थापनामे सक्रिय सहयोग एवं कन्या विद्यालयके २० वर्ष तक व्यवस्थापक रहे।

आपने स्वतंत्रता संग्राममें सक्रिय भाग लिया और कांग्रेसके अच्छे कार्यकर्त्ता हैं। विशेषकर दि० जैन समाजकी अशिक्षित महिलाओंमें शिक्षा प्रसारका कार्य किया और महिला मण्डलके अन्तर्गत सभायें सयोजित कर उन्हें जागरूक किया।

साहित्य-सेवायें : विभिन्न जैनपत्रोंमें स्फुट-रचनायें लिखनेके अतिरिक्त शिशु बोध जैनधर्म भाग १, २, ३ एवं ४, जैन तीर्थयात्रा दर्शक, आराधना सार, गणधरवलय पूजा, अनादिनिधन स्तोत्र आदि का सम्पादन, बुधजन कृत छहढालाका स्वतंत्र अनुवाद, एवं द्रव्यसंग्रह, मोक्षशास्त्र, रत्नकरण्डश्रावकाचार की टीकायें की। आपने सुपार्श्व ज्ञान मंदिरकी नव स्थापनाकर साहित्यकी सेवामें एक नया चरण जोड़ा है।

पारिवारिक जीवन : यद्यपि आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णादेवी विवाहके समय पढ़ी लिखी नही थीं। परन्तु आपने अपने श्रमसे इन्हें मेट्रिक एवं साहित्य विशारद पास करवाकर शासकीय सेवामें संलग्न करवाया। आपके पाँच पुत्रियाँ है जो सभी उच्च शिक्षा प्राप्त हैं। दो पुत्रोंका भी सुयोग प्राप्त है।

समाजमें पर्दा प्रथाके उन्मूलन तथा विधवा महिलाओंकी दुर्दशाके उन्नयनमें बड़ा कार्य किया।

●

पं० गुलाबचन्दजी 'पुष्प'

●

बुन्देलखण्ड प्रान्तमें प्रतिष्ठाचार्य पं० गुलाबचन्दजी 'पुष्प' जी का नाम प्रतिष्ठादि कार्योंमें अग्रणी है। यद्यपि आपको अपने पिता श्री वैद्यभूषण पं० मन्नूलालजी, जो एक अच्छे ज्योतिष ज्ञाता, वैद्यक, प्रतिष्ठा-कार्योंमें विशेष योग्य थे, से वैद्यक और प्रतिष्ठा कार्यका गुण विरासतमें मिला। वर्तमानमें आपके अर्थोपार्जन का मुख्य स्रोत भी यही है। जिसे धर्म और परोपकार भावनासे करते हैं।

आपका जन्म ककरवाहा जिला टीकमगढ़ (म० प्र०) में असाढ़ शुक्ला ८, संवत् १९८१ में श्रीमती हरबाईके गर्भसे हुआ था। श्री महावीर विद्यालय साढूमल (झाँसी) से वाराणसी प्रथमा (१९४१), अयोध्यासे आयुर्वेद विशारद (१९५४) तथा अ० भा० वर्षीय आयुर्वेद सम्मेलन नागपुरसे आयुर्वेद शास्त्री (१९५६) उत्तीर्ण की। १९५८ में आपने सचिकित्सा महाविद्यालय, रीवाँ (म० प्र०) से एच० एम० डी० की उपाधि प्राप्त की।

चिकित्सा कार्य करते हुए आप लगभग २५ वर्षसे छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेशके विभिन्न स्थानोंपर बिम्ब प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा और विधानादिका कार्य भी कर रहे हैं।

आप दो पुस्तकोंके प्रणयनमें संलग्न हैं (१) चिकित्सा-विज्ञान और (२) विधि विधान संग्रह।

संगीतमें रुचि रखते हैं तथा भजनादि रचकर विधानादिमें उनका गायन करते हैं।

आपको पाँच पुत्रोंका सौभाग्य प्राप्त है जो सभी होनहार एवं सुशिक्षित हैं। आपके ज्येष्ठ भ्राता प० बल्देवप्रसादजी भी प्रतिष्ठादिका कार्य करते हैं एवं चिकित्साका अच्छा अनुभव है। आपको कई स्थानोंसे अभिनन्दन पत्र भी भेंट स्वरूप प्राप्त हुए हैं।

आपके समधी साहब बाबू अमृतलालजी 'फणीन्द्र' बड़ागाँव एक कर्मठ समाज सेवी, स्वतंत्रता संग्राम-के सेनानी एवं प्रतिष्ठा प्राप्त नेता हैं जिन्होंने अमर शहीद श्री नारायणदास खरेके साथ कार्य किया।

●

स्व० डा० गुलाबचन्द्र चौधरी

●

मध्यप्रदेशके जबलपुर मण्डलान्तर्गत सिलौडी ग्राममें २ अक्टूबर १९१७ को जन्म। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राममें लेकर दि० जैन शिक्षा संस्था कटनी (म० प्र०) में सिद्धान्तशास्त्री, काव्यतीर्थ उपाधि प्राप्ति। सन् १९३९-४७ तक श्री स्याद्वाद-महाविद्यालय वाराणसी और भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसीमें रहकर व्याकरणाचार्य एवं साहित्यरत्न तथा मेट्रिकुलेशनसे एम० ए० (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) परीक्षोपाधियाँ प्राप्त की। वहीं प्रसिद्ध इतिहासज्ञ पं० जयचन्द्र विद्यालंकारके साथ भारतीय इतिहास परिषद्में तीन वर्ष तक भारतीय इतिहासके निर्माणमें सहयोग। वाराणसी ही में श्री सन्मति जैन निकेतन और श्री पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रममें रहकर प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृतिमें शोधकार्य कर १९५४ में पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की।

सन् १९५२ से ६० अगस्त तक बिहार शिक्षा सेवासंवर्गमें रहकर बिहार शिक्षा विभागके आधीन नवनालंदा महाबिहार नालंदा (पटना) में २५००० पुस्तकोंके एक विशाल पुस्तकालयका गठन आधुनिक रीतिसे व्यवस्था सम्पादन तथा वहीं उक्त अवधिमें पालि-प्राकृत-संस्कृतके पाठ्य ग्रन्थों एवं भारतीय इतिहास एवं संस्कृतिका अध्यापन एवं शोध-पथ-प्रदर्शन ।

सन् १९६० सितम्बरसे बिहार शिक्षा सेवा संवर्गमें नियुक्त हो प्राकृत जैन शोध प्रतिष्ठान, मुजफ्फरपुरमें प्राध्यापक पदसे जैनदर्शन एवं विविध प्राकृत भाषाओंका प्राध्यापन एवं शोध-पथ-प्रदर्शनका कार्य किया । तदनन्तर १९६५ से मिथला संस्कृत शोध संस्थान दरभंगामें स्थानान्तरित होकर भाषाविज्ञान एव संस्कृतके न्याय-व्याकरण-काव्य आदि विषयोंका अध्यापन शोध-पथ-प्रदर्शन । पुन: १९६७ से स्थानान्तरण द्वारा, नवनालदा महाबिहार, नालंदामें वरिष्ठ प्राध्यापक पद पर नियुक्त होकर पालि, बौद्धदर्शन और बृहत्तर भारतके इतिहासका प्राध्यापन एवं शोध कार्य पथ-प्रदर्शन । सन् १९५४ से अनेको विश्वविद्यालयोंकी स्नातक स्नातकोत्तर एवं शोध परीक्षाओंके परीक्षक रहे ।

रचनायें—१ पुराणसार संग्रह (दो भाग) सम्पादन एवं अनुवाद २ जैन शिलालेख संग्रह (भाग २-३) में प्रकाशित ८५० शिलालेखों पर विस्तृत प्रस्तावना एवं अनुक्रमणिका ३ कन्नड भाषाके ५३ जैन शिलालेखोंका देवनागरी रूपान्तरण एवं सारानुवाद ४ पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दनं इण्डिया फाम जैन सोर्सेज (अंग्रेजी ग्रन्थ) । ५. जैन काव्य साहित्यका इतिहास (जैन साहित्यका बृहत् इतिहासका छठवाँ भाग) । ६. जैन साहित्य एवं संस्कृति पर अनेकों लेखोंका प्रणयन एव प्रकाशन जो अनेक मासिक पत्रो एवं स्मृति ग्रन्थोंमें प्रकाशित हो चुके हैं । आपने जैन संस्कृतिकी समुन्नतिमे जो कार्य किये वह शदियो तक आपकी यश:कीर्ति बनाये रखेंगे ।

●

भगवन्त गणपति गोयलीय

●

आपका वास्तविक नाम श्री भगवानदास है । आपके पिताका नाम गणपतिलाल था । कविताका कल्पवृक्ष आपके कुटुम्बमें सदा ही फूला फला है । आपके पितामह श्री भूरेलालजी मोदी आशु कवि थे ।

भगवन्तजी बहु पाठी, विचारशील और प्रतिभावान् व्यक्ति हैं । हिन्दी-हिन्दुस्तानीके अतिरिक्त आपको बँगला, गुजराती और मराठीके साहित्यका भी अच्छा ज्ञान है ।

आपकी गद्य-पद्यमय प्राथमिक रचनाएँ प्राय: २५-३० वर्ष पहले 'विद्यार्थी' और 'भारत जीवन' नामक पत्रोंमें प्रकाशित हुई थी । आपकी कविताओंको उस समय भी बड़ी रुचिसे पढ़ा जाता था । अनेक कवियोंको आपकी रचनाओंसे स्फूर्ति मिली और आपके विचारोंसे समाजमें जागृति हुई ।

आप 'जाति प्रबोधक' 'धर्म दिवाकर' और 'महाकौशल' कांग्रेस-बुलैटिनके वर्षों तक सम्पादक रहे हैं । आपके लेख, कविताएँ और कहानियाँ भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रोंमें छपती रही हैं । 'जाति-प्रबोधक' में

लिखी हुई आपकी कहानियोंको हिन्दुस्तान भरमें देशी पत्रोंने उद्धृत किया और सुधारक संस्थाओंने अनुवादित कर लाखोंकी संख्यामें बँटवाया। आपकी कहानियोंका संग्रह हिन्दीमें छपा था।

भगवन्तजी कर्मठ देशसेवक हैं। आप रायपुर सेन्ट्रल-जेलकी काली कोठरियोंमें महीनों रहे और वहाँके "उच्च पदाधिकारियोंके आदेश पर आपको भयंकर मार मारी गई जिसकी आवाज नागपुर कौन्सिल-से टकराई।"

आपकी कविताओंमें सुकुमार भावना और कोमल अनुभूतिके वर्णन होते हैं। हृदयगत भावको आप चुने हुए सरस शब्दोंमें व्यक्त करके पाठकका मन अपनी ओर खींच लेते हैं।

●

डॉ० गोकुलचन्द्रजी

●

आपका जन्म स्थान पिडरुआ जिला सागर (म० प्र०) है। आपके पिता सेठ मूलचन्द जैन एक समृद्ध, सम्भ्रान्त और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। जब आपकी आयु केवल ढाई वर्ष की थी पिताजीका देहावसान हो गया था और घरका सारा दायित्व आपके १५ वर्षीय बड़े भाईपर आ गया था। ५ नवम्बर १९३४ में आपका जन्म माँ श्रीमती यशोदादेवीकी पुण्य कोखसे हुआ।

१९४४-५४ तक गणेश दि० जैन विद्यालय सागरमें रहकर साहित्य-शास्त्री, काव्यतीर्थ, न्यायतीर्थ आदि उत्तीर्ण कर स्याद्वाद दि० जैन महाविद्यालय वाराणसी आये। वहाँ आपने साहित्याचार्य, एम० ए० जैन दर्शनाचार्य और डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालके निर्देशनमें 'यशस्तिलकका सांस्कृतिक अध्ययन' पर शोध प्रबन्ध लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। पी-एच० डी० करते समय आपको पार्श्वनाथ विद्या-श्रमका फैलोशिप प्राप्त होता रहा। १९६८ में उत्तर प्रदेश सरकारने आपके शोध प्रबन्धपर पुरस्कार भी प्रदान किया।

जुलाई १९६२ से ही आप भारतीय ज्ञानपीठसे सम्बद्ध रहे। वहाँसे छोड़नेके बाद काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीमें जैनदर्शनके प्रवक्ता हैं।

साहित्यिक-कृतियाँ :

१४ वर्षकी अल्पायुसे ही आपकी रुचि जैन साहित्य और सांस्कृतिक विषयक निबन्ध, कहानी, कविता और स्केच आदि लिखनेकी ओर हो गयी थी। अभीतक आपने मुख्य चार ग्रन्थोंका प्रणयन करनेके अलावा लगभग १०० निबन्ध लिखे हैं जो श्रमण, श्रमणोपासक, तीर्थंकर, जैन-जगत्, राजस्थान भारती आदि सभी प्रमुख जैन पत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं। आपकी प्रकाशित पुस्तकें निम्नलिखित हैं—१. सत्यशासन परीक्षा (सम्पादित), २ यशस्तिलकका सांस्कृतिक अध्ययन (शोध-प्रबन्ध), ३. कर्म प्रकृति, ४. प्रमेय-कण्ठिका (दोनों सम्पादित)। उक्त साहित्यिक कार्य भारतीय ज्ञानपीठके माध्यमसे किया है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सुनीता जैन एम० ए०, बी० एड० हैं। वर्तमानमें आपके एक पुत्र एवं दो सुपुत्रियाँ हैं।

अपने श्रम एवं संकल्पसे आपने आशातीत सफलता जीवनमें प्राप्त की।

●

श्री गेंदालालजी सिंघई

●

श्री सिंघईजीका परिवार सुसंस्कृत परम्पराओंसे युक्त शिक्षित था। यही कारण था कि श्री गेंदालालजी १३ वर्षकी अल्पायुसे ही कविता लिखने और सार्वजनिक मंचसे भाषण देने लगे थे। आपके पिता श्री रतनचन्दजी कानूनके विशेषज्ञ, संगीतके प्रति रुचि रखने वाले तथा हिन्दी-उर्दू के ज्ञाता थे।

आपका जन्म चन्देरी (गुना) में २० फरवरी १९२२ ई० को हुआ था। आपकी माताजीका नाम भूरीबाई था। चन्देरीमें मिडिल स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करनेके पश्चात् उज्जैन गये और वहाँसे १९३९ में विशेष योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर स्वाध्यायी रूपसे बी० ए०, साहित्यरत्न और हमीदिया कालेज भोपालसे एल० एल० बी० (१९६६) की उपाधि प्राप्त की।

आर्थिकोपार्जनके लिए आपने १९४०-४५ तक जरीन कपड़ेका व्यवसाय फिर अशोकनगरमें गल्लेका थोक व्यापार। १९४९ से ६७ तक अशोकनगर और भोपालमें प्रेस संचालन। फिर भोपालमें ही वकालत प्रारम्भ की। आजकल अशोकनगरमें वकालत कर रहे हैं।

साहित्यिक गतिविधि :

साहित्यके प्रति बचपनसे लगाव रहा। स्व अध्ययनसे ज्ञानार्जनके साथ साहित्य सृजन किया। स्फुट रचनाओंके रूपमें आपकी लगभग २५ कहानियाँ, २५ निबन्ध और ५० कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। धर्मयुग (साप्ताहिक), मध्य प्रदेश सन्देश, ज्ञानोदय (मासिक), रेखा, अहिंसावाणी और सन्मति सन्देश जैसी स्तरीय पत्रिकाओंमें आपकी बहुधा रचनायें प्रकाशित हुई हैं।

इसके अतिरिक्त आपकी लगभग १५ पुस्तकें अप्रकाशित पड़ीं हैं जिनमें मुख्य निम्नलिखित है—

काव्य १ प्राणोंका संगीत, २. करुणामयी, ३ विश्रृंखल, ४. चन्देरी काव्य, ५. मर्दनसिंह बुन्देला (खण्ड काव्य)।

उपन्यास · १. जिन्दगी की दौड़, २. जीवन पथ, ३. निर्माण।

कहानी सग्रह : सामाजिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक कुल ४५ कहानियोका सकलन।

निबन्ध सग्रह : एक। इसके अलावा आपकी चार पुस्तकें अपूर्ण अवस्थामें है—वेदवाणी (काव्य), दुखी ससार, जन्मान्तर और एक पौराणिक उपन्यास।

आप १९५६ में अहिंसावाणी (मासिक) के सहसम्पादक व १९५७-५८ मे सगठन (साप्ताहिक) के सम्पादक व प्रकाशक रहे। इस प्रकार साहित्यके क्षेत्रमे आपका विशेष योगदान है। स्व० श्री चम्पालाल सिंघई 'पुरन्दर' आपके एक मात्र अग्रज थे जो एक लब्ध प्रतिष्ठित साहित्यकार एवं समाजसेवी थे।

सामाजिक सेवाओंके रूपमें आप चन्देरीकी विभिन्न संस्थाओंके उपसचिव तथा सभापति, अशोकनगर में एक वर्षके लिए ऑनरेरी मजिस्ट्रेट तथा नगर कम्युनिस्ट पार्टीके मंत्री रहे।

आपको चार सुपुत्रियों और दो पुत्र रत्नोंका सुयोग प्राप्त है।

●

पं० गुलाबचन्द्रजी वैद्य

श्री पं० गुलाबचन्दजी ढाना जिला सागर (म० प्र०) के निवासी हैं। आपका जन्म ८ मई १९१२ को माँ पार्वतीबाईके गर्भसे हुआ था। जब आपकी आयु लगभग चार वर्षकी थी आपकी माताजीका देहावसान हो गया था। आपके पिता श्री बलजूरामजी कपड़ेके व्यापारी और वैद्यक तथा ज्योतिषके जानकार थे। आपने स्वाध्यायी रूपसे हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीका ज्ञान प्राप्त किया। वैद्यक विशारदमें योग्यता प्राप्तकर १९५० से रजिस्टर्ड चिकित्सकके रूपमें वैद्यकका कार्य करने लगे।

साहित्यके क्षेत्रमें आपकी प्रारम्भसे रुचि रही। और १९३० से आपने कविता लिखना प्रारम्भ किया। आपने अभी तक सौसे अधिक कवितायें रची हैं जो जैन-मित्र, सन्मति सन्देश आदि जैन पत्रोंमें तथा कुछ व्यंग्यात्मक लेख 'परवार-बन्धु' में प्रकाशित हुए हैं। आपने राधेश्यामकी तर्जमें निशिभोजन कथाका पद्यानुवाद किया है।

आप बारह वर्ष तक गान्धी संस्कृत महाविद्यालय ढानाके मंत्री पद पर रहे। राजनैतिक कार्योंमें दखल रखा। १९४२ में आपने ६ माहकी जेलयात्रा व पचास रुपयेका आर्थिक दण्ड दिया। यह जेलयात्रा कांग्रेसके एक जलूसके नेतृत्व करनेके फलस्वरूप करनी पड़ी थी। आपकी विशेष अभिरुचि 'कविता' क्षेत्रमें है।

स्व० पं० गुणभद्रजी

आपकी जन्म भूमि बुन्देलखण्ड स्थित जि० झासीका मऊरानीपुर नगर है। पिताका नाम सिंघई धनीरामजी और माताका नाम 'जगरानी' था। अबोध अवस्थामें ही माता पिता इस लोकसे प्रयाण कर गये। उस समय आपकी आयु ४ वर्षकी होगी। मात्र माता पिताकी आज भी कभी-कभी इतनी स्मृति आ जाया करती है कि वे अपनी स्नेहमयी गोदमें खिलाया करते थे। इसके सिवाय और कोई स्मरण नहीं आता।

परिस्थिति वश जन्म भूमिका त्यागकर आपका परिवार मध्य प्रदेशस्थ छिंदवाड़ा आकर बसा, और आज भी वहीं रह रहा है।

आपकी प्राथमिक शिक्षाका श्रीगणेश हस्तिनापुरके गुरुकुल श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमसे होता है। वहाँ वर्षों तक अध्ययन किया। तत्पश्चात् इन्दौर और बनारसमें शास्त्री तक अध्ययन किया। वहींसे काव्य रचना प्रारम्भ होती है, उस समय परवार बन्धु आदि जैन पत्रोंमें कविताएँ लिखते रहते थे। अनेक प्रशंसा पत्र मिले, जो आपकी गुण गरिमा एवं प्रतिभाके अनुरूप थे।

३० वर्ष तक श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम अगास (गुजरात) में शिक्षणका काम करते रहे। अवकाशके समयमें जैन भारती, प्रद्युम्न चरित, तथा साध्वी, जैसे काव्य लिखे हैं, जो जिनवाणी प्रचारक कार्यालय कलकत्तासे प्रकाशित हो चुके हैं। अनेक पद्यानुवाद जैन मित्र तथा जैन गजट आदि समाचार पत्रोंमें छप चुके हैं। दो वर्ष हुए आपका स्वर्गवास हो गया है।

●

गोविन्ददासजी वैद्य

●

परि परिचय : पिता श्री अयोध्या प्रसाद, माता श्रीमती घोकाबाई।

जन्मस्थान एवं तिथि . मबई जिला टीकमगढ (म०प्र०) ९ अक्टूबर १९३२।

शिक्षा : वीर दि० जैन पाठशाला टीकमगढ़से विशारद। १९५० में यू० पी० बोर्ड इलाहाबादसे मेट्रिकुलेशन। महात्मा गान्धी मेडिकल कालेज इन्दौरसे फार्मासिस्ट व लेबोरेटरी टैक्नीशियन डिप्लोमा (१९५३), बोर्ड आफ होम्यपैथी एण्ड बायोकेमिकल्स भोपालका रजिस्टर्ड मेडिकल प्रेक्टिशनर प्रमाण पत्र।

सामाजिक सेवा : अपने क्षेत्रके कुशल एवं अनुभवी वैद्य और गरीब लोगोंकी नि.शुल्क इलाज-सेवा। प्रारम्भमें हैवी इलेक्ट्रिकल इण्डिया लिमि० भोपालमें फार्मासिस्ट एवं एटोमिक पावर प्राजेक्ट कोटामें फार्मासिस्ट रहे। परन्तु जलवायु अनुकूल न होनेके कारण शासकीय सेवासे मुक्ति एवं प्राईवेट प्रेक्टिस (सन् १९५३)।

आप एक धर्मनिष्ठ, ईमानदार एवं परोपकारी व्यक्ति हैं। काफी लब्ध प्रतिष्ठित है। यदाकदा जैनमित्रमें लिखा है। सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं सेवकके रूपमें प्रसिद्ध।

●

श्री गुलाबचन्द्रजी एम. एस-सी.

●

श्री गुलाबचन्द्रजीका जन्म ३ अगस्त ५१ को मबई (टीकमगढ़) से हुआ था। आपके पिता श्री परमानन्दजी हैं। आपने विज्ञान विषयमें जहाँ एम० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की वहाँ साहित्यमें विशारद भी किया है। आप एक होनहार उदीयमान युवा लेखक हैं। आपकी एकसे अधिक सामाजिक सेवायें

उल्लेखनीय हैं। आप समाजकी अनेक संस्थाओंसे सम्बद्ध हैं। आप श्री बुंदेलखण्ड स्याद्वाद परिषद्, शास्त्रि-परिषद् और विद्वत्परिषदके सदस्य हैं। आप भगवान् महावीर निर्वाण महोत्सव समिति (केन्द्रीय-जिलास्तरीय) के सदस्य और क्षेत्रीय समिति मबईके मन्त्री हैं।

आपने पहले श्री दिगम्बर जैन वीर विद्यालय पपौराको अपना कार्य-क्षेत्र बनाया था पर बादमें आप शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय टीकमगढ़में आ गये हैं। गुलाबचन्द्रजीका गुलाब-सा व्यवहार न केवल शिक्षार्थियोंके लिए ही बल्कि समाजके सभी सदस्योंके लिए प्रेरणादायक बना है।

●

पं० गोपीलालजी 'अमर'

●

पंडित गोपीलालजी 'अमर' का जन्म आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व हुआ। पडवार ग्रामको आपकी जन्मभूमि बननेका सौभाग्य मिला, जो सागर जिलेकी बण्डा तहसीलमें स्थित है। आपने श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागरमें रहकर दीर्घ कालतक शिक्षण प्राप्त किया। आपके शिक्षा गुरुओंमे स्वनामधन्य पंडित दयाचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, पंडित पन्नालालजी साहित्याचार्य तथा प्राध्यापक श्री कृष्णदत्तजी वाजपेयीके नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। आपने एम० ए०, जैनशास्त्री, साहित्यशास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न जैसी शैक्षणिक उपाधियाँ प्राप्त की। आपका हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीपर भी अच्छा अधिकार है। 'मध्य प्रदेशमें जैन धर्म' विषयपर शोध कार्य हेतु आप विशेषतया अध्ययन कर रहे हैं।

अमरजीने केवल परीक्षायें ही नहीं उत्तीर्ण की बल्कि सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्रोंमें भी अपने अध्ययन अनुभव और अभ्यासका परिचय दिया है। आपने अनेक संस्थाओंकी अध्यक्षता की, कुछके मन्त्री रहे। आपकी शास्त्र प्रवचन शैली अपूर्व होती है। आप दिल्ली, कलकत्ता, वाराणसी, इटारसी, भोपाल, गोंदिया, दमोह आदि स्थानोंपर शास्त्र प्रवचनके लिए भी आमन्त्रित होकर गये। आपकी रचनायें अहिंसा-वाणी, सन्मति सन्देश आदि पत्र-पत्रिकाओंमें छपती रहती हैं। आपकी प्रमेयरत्नमाला और प्रमेयरत्नालंकार कृतियाँ प्रकाशनकी प्रतीक्षामें हैं।

अमरजी अपने धर्म और समाजकी सेवा अमर बननेकी दृष्टिसे कर रहे हैं। उनका यह दृष्टिकोण हम सभीके लिए उतना उपादेय है कि जितना भी शक्य और सम्भव है। वर्तमानमें आप भारतीय ज्ञानपीठमें अपनी सेवाएँ दे रहे हैं।

●

श्री गुलाबचन्द्रजी जैनदर्शनाचार्य

●

श्री गुलाबचन्द्रजी जैनका जन्म आजसे लगभग ५० वर्ष पूर्व हुआ। बरोदिया कलां आपकी जन्मभूमि है जो सागर जिलेमें है। आपके पिता श्री कम्मोदलालजी थे और माताजी जमुनाबाई हैं। आपके परिवारमें तीन भाई है पर ज्ञान, प्रतिभा और कर्मठतामें आप उनमें एक ही हैं।

आपने हिन्दू विश्वविद्यालय बनारससे अर्थशास्त्रमें एम० ए० किया। स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें रहकर जैनदर्शनाचार्यकी परीक्षा उत्तीर्ण की। काशी विद्यापीठ बनारससे श्रम अधिकारीका उपाधि पत्र प्राप्त किया।

सन् १९५० में आपका विवाह हुआ। आपके एक पुत्री है जो शिक्षित हो रही है। आप परवार जातिके भूषण हैं। इसलिए आप 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को दिशामें आरम्भसे ही अग्रसर हो रहे हैं। देश और समाजकी सेवाके लिए आपने जो कार्य किये हैं उनका विवरण संक्षेपमें निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है।

१. वर्णीजी द्वारा संस्थापित पाठशालाको पुनः सजीव कर सन् १९६०में आरम्भ किया और १० वर्षों तक उसके मन्त्री रहे। २. जबलपुर नगर कांग्रेसकी प्रबन्धकारिणीके सदस्य हैं। ३ समाज शिक्षा-समितिके १० वर्षों तक कोषाध्यक्ष रहे। ४. ग्राम स्वराज्य मन्त्री भी सन् १९६९, ७१-७२ मे रहे। ५. सदर कांग्रेसके सभी आन्दोलनात्मक कार्योंमें आपने भाग लिया। ६ कालिदास जयन्ती समारोह जबलपुर संभागके संयोजक भी रहे।

साहित्यिक शैक्षणिक कार्य

सन् १९५५ से आजतक यानी लगभग बीस वर्षोंसे आप पुस्तक लेखन व उनके स्वयं प्रकाशनका कार्य करके साहित्य और शिक्षाकी दिशामें आप अभूतपूर्व कार्य कर रहे है। आपके द्वारा लिखित-प्रकाशित पुस्तकोंकी सूचीको देखकर लगता है कि आपको विविध विषयोंका बखूबी ज्ञान है। आपकी अनेक पुस्तकें मध्यप्रदेशमें चल रही हैं। आपकी कतिपय उल्लेखनीय पुस्तकें ये हैं, जो नव-निधि बनी है।

१. संस्कृत मंजरी, २. व्याकरण वल्लरी, ३ सामाजिक अध्ययन, ४. हिन्दी प्रवाह, ५. अर्थशास्त्रकी विवेचना, ६. नागरिक शास्त्रकी रूपरेखा, ७ भूगोल, ८. नीतिशिक्षा, ९. राष्ट्रीय प्रान्तीय एकताकी कहानी आदि।

●

स्व० पं० गुलझारीलालजी सोंरया

●

स्व० श्री गुलझारीलाल एक ऐसे पारस-व्यक्तित्व थे जिनमें बाहरसे क्षत्रियत्व और भीतरसे ज्ञानका ब्राह्मणत्व झांकता था। न्याय देनेमें अपने समीपस्थ क्षेत्रमें विख्यात। वस्तुतः उन्होंने जैन दर्शनके अनेकान्तको व्यावहारिक रूपमें जीवन्त किया था। आपका हँसमुख व्यक्तित्व मिलनेवालोंमें ऐसी छाप छोड गया जो आज भी अविस्मरणीय बना है। चारित्रिक संस्कारोंके धनी—कि मजिस्ट्रेट तक यह जानकर कि जैन साहब रात्रिभोजन नहीं करेंगे। कभी भी आपके दीवानी आदि केस अन्तमें न सुनकर उनकी पुकार पहिले लगवाते थे।

आपके ऊपर अपने पिता श्री हरिसिंहजी सौरयाका बड़ा प्रभाव पड़ा था जो कि पू० गणेश वर्णीजी के लंगोटिया मित्र थे। वे साथ-साथ वर्णीजीके साथ खेले और पढ़े थे। अतः सहजरूपमें पूज्य वर्णीका वरद हस्त आपके ऊपर रहा था।

आपका जन्म फाल्गुन सुदी १० संवत् १९६१ को मड़ावरा ग्राममें हुआ था। उस समयकी परि-स्थिति यह थी कि जैन समाजमें शिक्षा और जैन शिक्षाका अत्यन्त अभाव था। विद्वान् दुर्लभ थे। बुन्देल भूमि विद्वान्-प्रसूतिनी कही जाती है। ऐसे अज्ञान आच्छन्न समयमें आपने अपने सतत स्वाध्याय और उत्कट जिज्ञासाकी मेरुदण्डके सहारे ज्ञान-पिपासाको शान्त किया और कुछ ही वर्षोंमें एक अधिकारी विद्वान् की हैसियत से शास्त्र गद्दीपर बैठ प्रवचन करने लगे थे।

आपकी सादगीपूर्ण जीवन अत्यन्त आदर्शवान एवं संयमयुक्त था। अन्यायसे धनका उपार्जन कभी नहीं किया और गरीब लोगोंके कर्ज मूलसे ही लेकर उऋण करते थे। साहूकारीका प्रमुख व्यवसाय होनेपर भी अपने आसामियोंके बीच जो वात्सल्य भाव था वह कम ही लोगोंमें होता है।

चूँकि उस समय पत्र-पत्रिकाओं का ज्यादा प्रचलन नहीं था फिर भी अपने प्रकाशनकी दृष्टिसे नहीं अपितु स्वान्त· सुखाय अनेक पद्य-रचनाओंका सृजन किया और उनका संग्रह अपने पीछे छोड़ गये।

आपने ३८ वर्षकी तरुण वयमें चार पुत्र और चार पुत्रियोंसे युक्त बिलखते परिवारको छोड़कर इस नश्वर शरीरसे विराम ले लिया था। आपके दो पुत्र पं० विमलकुमार सौंरया और निहालचन्द्र जैनने अपने पिताके सकल्पको और दृढ़ किया तथा उनकी कल्पनाओंको स्वयंमें जीवन्त किया है। आपके ज्येष्ठ पुत्र श्री कैलाशचन्द एव श्री जयकुमार सौंरया स्थानीय समाजके प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं।

सामाजिक कार्यकर्त्ता : आप अनेक वर्षों तक भारतकी प्रसिद्ध श्री महावीर जैन पाठशाला साढ़ू-मल (ललितपुर)के मन्त्री रहे जहाँ वर्तमानमें शास्त्री तकके विषयोंका शिक्षण देती है। मन्त्रित्व कालमें विद्यालयके ऊपर आपका अनुशासन अत्यन्त प्रभावशाली रहा। बड़े-बड़े सेठ साहू सामन्त आपकी वाणीसे गद्गद हो जाते थे। परिवारके लोगोंको ही नहीं जैन समाजके प्रत्येक भाईसे इतनी मुस्कान भरी बात करते थे कि सहज हँसी उभर आती थी।

आपकी प्रवचन और वक्तृत्वकला अत्यन्त प्रभावपूर्ण रहा करती थी। अनेक संस्कृत श्लोक और प्राकृत गाथाओंके अभ्यासी जैसे सरस्वती जिह्वापर निवास करती हो।

संवत् २००० में ज्येष्ठ कृष्ण ६ को आपका स्वर्गवास हो गया।

३७० पं० घनश्यामदासजी न्यायतीर्थ

आपका जन्म महरौनी (झाँसी)में वि० सं० १९४५ के लगभग हुआ । आपने स्थानीय मिडिल स्कूलसे हिन्दी मिडिल परीक्षा पास की । उन दिनों बमराना वाले सेठोंके कपडेकी दुकान उनकी जमींदारीके ग्राम साढूमलमें थी और उसपर पंडितजीके काका खुमान बजाज मुनीम थे । आप मिडिलकी परीक्षा देकर साढूमलकी दुकानपर काम सीखनेके लिये रहने लगे । उस समय आपकी अवस्था २० वर्षकी थी । और विवाह हो चुका था । भाग्यसे स्व० पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णीजी महाराजका वहाँ आगमन हुआ । उस समय वे बडे पंडितजी कहलाते थे । उन्होंने आपसे पूछा—भैया, पढ़ना क्यों छोड दिया । उत्तर मिला—हमारे यहाँ आगेकी पढ़ाईका स्कूल नहीं है । वर्णीजीने कहा—हमारे साथ सागर चलो और संस्कृत पढ़ो । यह सुनकर वे अपने काकाकी ओर देखने लगे । क्योंकि आपके पिताजीका स्वर्गवास तो आपके बचपनमें ही हो गया था । आपका सारा भार उनपर ही था । काका भी कुछ उत्तर देनेसे सकुचाये । उसी समय दुकानके मालिक स्व० सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी भी बमरानासे वर्णीजीको लिवानेके लिए आ गये । वर्णीने उनसे कहा यह आगे संस्कृत पढ़ना चाहता है, यदि घरके लोगोंके जीवन-निर्वाहकी व्यवस्था हो जाय । उदारमना सेठजीने तुरन्त कहा—जबतक ये पढना चाहें, इनको पढ़ाईका और घर वालोंके निर्वाहका पूरा खर्चा मैं दूँगा । आप इन्हें अपने साथ सागर लिवा जाइये । बस, फिर क्या था, वर्णीजी इन्हें सागर ले गये और सुधातरंगिणी पाठशालामें भर्ती कर दिया । जो अब भी गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालयके नामसे चालू है ।

आप छात्रोंमें सबसे अधिक उम्रवाले थे और कुशाग्र बुद्धि भी । अतः १३ वर्षमें ही विशारद और न्याय मध्यमा पास कर ली । तत्पश्चात् वर्णीजीने आपको बनारस विद्यालयमें भेज दिया । वहाँ रह कर आपने दो वर्षमें न्यायतीर्थ परीक्षा पास की । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि दि० जैन समाजमें आपने ही सर्वप्रथम न्यायतीर्थकी परीक्षा देकर उत्तीर्णता प्राप्त की थी ।

तत्पश्चात् गोम्मटसारादि सिद्धांत ग्रन्थोंके अध्ययनार्थ आप जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेना चले आये । वहाँपर आपने सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन किया । आपकी स्मरण शक्ति इतनी तेज थी कि आपने गुरुजी (पं० गोपालदासजी) से गो० जीवकांड और कर्मकाड एक ही वर्षमें पढे । आपको दोनोंकी (पौने दो हजार) गाथाएँ कण्ठस्थ थी । उस समय आपके साथियोंमें स्व० प० देवकीनन्दनजी, स्व० पं० पन्नालालजी सोनी आदि प्रमुख थे ।

इसी समय बनारस विद्यालयमें धर्माध्यापकका स्थान रिक्त हुआ और आप सन् १९१५ में धर्माध्यापक बनाकर बनारस बुला दिये गये । लगभग एक वर्षके बाद ही इन्दौरमें सर सेठ हुकमचन्दजीने विद्यालयकी स्थापना की । उसके लिए प्रधानाध्यापककी आवश्यकता पत्रोंमें प्रकाशित हुई । आप इन्दौर चले गये । लगभग दो वर्ष कार्य करनेके पश्चात् एक घटना ऐसी घटी कि आप दो घंटेमें ही वहाँका कार्य छोड कर अपने घर चले आये ।

पण्डितजी बहुत ही मनस्वी और स्पष्टवादी निर्भीक व्यक्तित्वके धनी थे । जब यह समाचार स्व० सेठ लक्ष्मीचन्दजीको मिला तो उन्होंने पंडितजीको बमराना बुलाया और उनकी पीठको ठोंकर कहा—शाबास, बुन्देलखण्डका आपने नाम रखा । आप कोई चिन्ता न करें । आपको जो वेतन वहाँ मिलता था, वह आजसे ही यहाँपर चालू किया जाता है यह कह कर और साढूमलमें पाठशाला खोलनेका अपना भाव प्रकट किया । चूंकि मगसिरमें पाठशालाके लिए लडके मिलना सम्भव नहीं था, अतः पंडितजीको उन्होंने

अपने पास ही रखा और उनसे सिद्धांत ग्रन्थोंका स्वाध्याय करते रहे। अप्रैलमें जैसे ही सरकारी स्कूलके लड़कोंकी परीक्षा समाप्त हुई, वैसे ही आपने साहूमल आकर मडावरा, सौंरई, सैदपुर आदि समीपवर्ती गाँवोंमें पाठशाला खोले जानेकी सूचना भिजवाई। तदनुसार हम ग्रामके ६-७ लडकोंके तथा मडावरा-सैदपुर आदिके भी ७-८ लडकोंके आनेके साथ ही वि० सं० १९७४ के वैशाख सुदि २ के दिन पाठशालाका मुहूर्त कर दिया गया। मडावरासे स्व० गुलझारीलाल, (इस ग्रन्थके प्रधान संपादकके पिता) मुन्नालाल आदि और सैदपुरसे काशीप्रसाद आदिके आ जानेपर पाठशालाका श्रीगणेश हो गया। तत्पश्चात् सिलावनसे फूलचन्द, मालथौनसे किशोरीलाल आदि भी पढ़नेके लिए आ गये।

पंडितजीकी प्रेरणासे प्रथम वर्ष ही बनारससे एक व्याकरण-साहित्यके अध्यापकको तथा ललितपुरसे स्व० बा० नाथूरामजीको अंग्रेजी और गणितके अध्यापकको बुला लिया गया। पंडितजीने जिस तत्परता और शीघ्रतासे हम लोगोंको पढ़ाया यह इसीसे स्पष्ट है कि हम लोगोंने ६ वर्षका कोर्स ४ वर्षमें ही पूरा कर लिया। पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, पं० हीरालाल सिद्धांतशास्त्री आदिमें जो कुछ योग्यता है, वह पंडितजीकी कृपाका ही सुफल है।

यहाँ इतना लिखना भी जरूरी है कि खुरईमें श्रीमन्त सेठ मोहनलालजीने वहाँ पाठशाला खोलने और उसमें पंडितजीसे काम करनेके लिए बहुत आग्रह किया और उनके इसी आग्रह पर वे खुरई गये थे। मगर उन्होंने नौकरी करनेसे सर्वथा इन्कार कर दिया। भला, जो व्यक्ति सर सेठ हुकमचन्द्रजीसे टक्कर लेकर आया था, वह अन्यत्र कहाँ सर्विस कर सकता था। सेठ लक्ष्मीचन्द्रजीने तो उन्हें पढ़ाया था और अपने भाई समान मानकर अपने यहाँ रखा था। अन्तमें श्रीमन्त सेठ सा० ने कहा कि व्यापारके लिये जितनी पूंजीकी जरूरत हो, बिना ब्याजके मैं देता हूँ, आप यहीं खुरईमें रहकर व्यापार कीजिए और सायंकाल शास्त्र प्रवचन कर हमें अनुग्रहीत कीजिए। उनके इस आग्रहको स्वीकार कर पं० जी वहींपर व्यापार करने लगे। सन् १९२४ के अन्तमें पंडितजीका वहीं स्वर्गवास हो गया।

पंडितजी जहाँ प्रातःकाल चार बजे छात्रोंको उठाकर पढ़नेके लिए बैठाते, वहीं सामने आप भी स्वयं ग्रन्थोंका अनुवाद करनेको बैठ जाते थे। उनकी इस प्रकृति और प्रवृत्तिका ही यह संस्कार पड़ा है। पंडितजी द्वारा अनुवादित ग्रन्थ इस प्रकार हैं :—

१ पाडव पुराण, २ परीक्षामुख, ३. नाममाला, ४. प्रभंजन चरित, ५ पद्मपुराण।

इनमेंसे प्रारम्भ के ४ ग्रन्थ तो उनके ही सामने प्रकाशित हो चुके थे। किन्तु पद्मपुराण इधर पंडितजीके और उधर उसके प्रकाशक पं० उदयलालजी काशलीवाल बम्बईके स्वर्गवास हो जानेसे अप्रकाशित ही रह गया।

यदि पंडितजीका असमयमें स्वर्गवास न होता, तो न जाने, कितने ग्रन्थोंका उनसे अनुवाद आदि हुआ होता और समाजको कितने ही कार्योंमें नवीन मार्गदर्शन प्राप्त होता। पर यह समाजका दुर्भाग्य ही था कि ये मात्र ३६-३७ वर्षकी अवस्थामें चले गये।

पंडितजीकी प्रथम पत्नीसे एक पुत्रीका जन्म हुआ, जो आज भी अपना सौभाग्यपूर्ण जीवन बिता रही है। उनके वि० सं० १९७५ के इन्फ्ल्यूएंजामें दिवंगत हो जानेपर आपका विवाह महरौनीके ही प्रसिद्ध भायजी श्री बालचन्द्रजीकी बहिन विदुषी तुलसाबाईके साथ हुआ। आपने पंडितजीके चिरवियोगका दुःसह दुःख बड़े धैर्यके साथ सहन किया और लगभग ४० वर्ष तक जैन कन्यापाठशालाओंमें अध्यापन कराके रिटायर्ड होनेपर अपना अन्तिम जीवन धर्मसाधनके साथ महरौनी (झांसी) में ही बिता रही हैं।

●

पं० घनश्यामदासजी शास्त्री

●

शास्त्रीजीका जन्म देवराहा (जतारा-टीकमगढ़) म० प्र०में हुआ। आजसे लगभग ४४वर्ष पूर्व आपने परवार जातिको भूषित किया। आपने धार्मिक शिक्षा 'शास्त्री' उपाधि सर स्व० हु० दि० जैन महाविद्यालय इंदौरमें पढ़कर प्राप्त की। स्वाध्यायी छात्रके रूपमें बी० ए० भी कर लिया। आपको हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी भाषाओंका पर्याप्त ज्ञान है। आप स्वभावसे मिलनसार व सरल हैं।

आप वर्तमानमें बैंकमें कार्य कर रहे हैं। आपने महासभा परीक्षालय, चन्द्रसागर दिगम्बर जैन पाठशाला इन्दौरमें कार्य किया। कुछ वर्ष सम्भवनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला रतलाममें भी शिक्षण दिया। समाजके व्यक्तियोंको धर्मकी दिशामें सहज स्वभावसे आप प्रेरित करते रहते हैं।

●

पं० घनश्यामदासजी नायक शास्त्री

●

आपका जन्म १५ मई १९२४ के दिन लुहर्रा नामक ग्राममें परम पूज्य स्व० गणेशप्रसादजी वर्णी न्यायाचार्यके पावन परिवारमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्री लक्ष्मणप्रसादजी है। आपके पिता श्री एक प्रतिष्ठित सम्पन्न एवं वैष्णव धर्मानुयायी व्यक्ति हैं।

आप अपने चार भाइयोंके बीच सबसे छोटे हैं। आपके काका पूज्य स्व० क्षुल्लक १०५ श्री गणेशप्रसादजी वर्णीको जन्मसे ही आपके प्रति एक विशेष अनुराग था। वर्णीजीके अनुरागका कारण आपको जैन धर्मावलम्बी बनानेका था, इसी सफल भावनाके ध्येयसे प्रारंभिक शिक्षोपरांत सन् १९४०में आपको स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीमें अध्ययन हेतु प्रविष्ट कराया था। वहाँपर आपने शास्त्रीय ग्रंथों तक धार्मिक शिक्षा प्राप्त करनेके साथ ही इण्टरमीडिएट व संस्कृत व्याकरण साहित्य आदिकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। शिक्षोपरान्त आप अपने घर वापिस आये तथा मड़ावरा ग्राममें स्थित शासकीय माध्यमिक विद्यालयमें अध्यापन कार्य करने लगे। परिणय बन्धन तो अध्ययनकालमें ही हो चुका था। मोहनीय कर्मके उदयसे तथा निजी कौटुम्बिक प्रेरणाओं एवं सामाजिक बन्धनोंके कारण अनेक परिस्थितियों वश जैनधर्मका उच्च ज्ञान होते हुए भी पूज्य वर्णीजीके जीवितकालमें जैनधर्मावलम्बी न बन सके और पूज्य स्व० वर्णीजीकी इच्छाको उनके समक्ष साकार रूपमें न दिखा सके।

समयका कुचक्र चला और पूज्य वर्णीजीके निधनसे सर्वत्र अन्धकार छा गया। उनके निधनका समाचार आपके हृदयमें अनंत दुःखोंका घर बन गया। आपके निर्मल ज्योतिरूपी ज्ञानका उदय हुआ और पूज्य वर्णीजीकी इच्छाका स्वप्न साकार होनेकी बलवती प्रेरणा देने लगा।

आप श्रीमान् पं० जम्बूप्रसादजी शास्त्रीके समीप आये और अपनी कल्याणकारी भावनाओंके संबंध में जैनधर्म अंगीकार करनेकी इच्छा व्यक्त की। पं०जीने अपने सम्यक् उपदेशोंसे आपको जैनधर्मका अनुरागी एवं श्रद्धालु बनाया, आपने दृढ़तापूर्वक जैनधर्म अंगीकार करते हुए जिनेन्द्र प्रभुके समक्ष अणुव्रतोंको ग्रहणकर पूज्य स्व० वर्णीजीकी अंतिम और जीवनकी अतिप्रबल भावनाको साकार कर दिया। आपने अपने काका

पूज्य स्व० वर्णीजी द्वारा प्रतिपादित परम्पराको अपने कुलमें अक्षुण्ण बनाये रखनेका आदर्श और महानतम वन्दनीय कार्य किया।

तभीसे आप निरन्तर श्री पं० जम्बूप्रसादजीके सान्निध्यमें जैनागम विस्मृत उच्च ग्रंथोंका पुनः अध्ययन करते हुए अध्यापन कार्यमें निरत रहे।

आपके निर्मल ज्ञान, कट्टर जैनधर्मावलम्बी निर्भीक पांडित्यपूर्ण तात्त्विक चर्चाओंके फलस्वरूप जैन समाज मड़ावराकी ओरसे सम्मान पत्र देकर यह प्रसन्नता व्यक्त की गई थी कि जो निर्मल प्रकाश वर्णीरूपी सूर्यसे हमें मिला उसीकी आभा आपसे भी प्राप्त हो।

●

प्रोफेसर घासीरामजी

●

श्री प्रोफेसर घासीरामजी जैन, अग्रवाल जैन हैं। वर्तमानमें आप इन्जीनियर कॉलेजमें अध्यापन कार्य करते हैं। आपको तीन लोक की कथनी का बड़ा गहरा अध्ययन है और इस विषयपर आपने आँग्ल भाषामें कई पुस्तकें लिखी हैं।

आप धार्मिक और संयमके पथके अनुगामी हैं। और धार्मिक ज्ञानके अध्येताके रूपमें आपके भाषण बड़े ही प्रभावक होते हैं। नवयुवकों को सही मार्ग प्रशस्त करनेवाले आपके प्रवचन बड़े शिक्षाप्रद होते हैं।

आपने नवयुवक संघ की स्थापनाकर उसके अन्तर्गत वीर छात्रावासका संचालन किया और उसमें यथेष्ट दान भी दिया। आपकी सामाजिक सेवायें प्रसंशनीय हैं।

●

श्री घासीराम 'चन्द्र'

●

श्री घासीराम 'चन्द्र' नईसराय, आप गत अनेक वर्षोंसे कविताएँ लिख रहे हैं। प्रारम्भमें आपने कवि सम्मेलनोंके लिए समस्या पूर्ति करके कविता रचनेका अभ्यास किया। अब आप स्वतंत्र विषयोंपर रचनाएँ करते हैं। आप भावों की सुकुमारताकी अपेक्षा विषयकी उपयोगिता की ओर अधिक आकर्षित होते हैं। योग्य साहित्यकार, सफल वक्ता एवं सामाजिक कार्य कर्त्ताके रूपमें आप सदैव स्मरणीय रहेंगे।

●

८३० बैरिस्टर चम्पतरायजी

●

बैरिस्टर चम्पतरायके पिता लाला चम्द्रामलजी थे। वे प्रणको प्राणसे भी अधिक महत्त्व देते थे। बैरिस्टर सा० अपने पिताके एक मात्र चौथे पुत्र ही नहीं थे बल्कि परिवारमें भी अकेले पुत्र होनेसे सभीके लाडले थे। जब माता-पिता सामायिक करते तब आप भी आँख बन्द करके उनके साथ बैठे रहते थे। छह वर्षकी अवस्थामें ही माँका स्वर्गवास हो गया। आपके ही वंशज सोहनलाल बाँकेलालने आपको दत्तक पुत्र बनाया। आप अँगरेजी स्कूलमें पढ़ने लगे। आपका विवाह वकील प्यारेलालजीकी सुपुत्रीके साथ हुआ था। सेण्ट स्टीफन कालेजमें शिक्षा प्राप्त करके इंग्लैंड गये। सन् १८९७ में बैरिस्टर होकर आये।

आपने अनेक फाँसीके अभियुक्तोंको कुशलतासे बचाया। मुकदमे कम लेते थे पर उनसे ही पर्याप्त सम्पत्ति प्राप्त कर लेते थे। जब हरदोईके जजने एक वकीलका अपमान कर दिया तो आपने ११ माह तक कोर्टका बहिष्कार किया। अन्तमें मूल सुधरी तब कहीं आपने जाना शुरू किया। सभी आपको Uncle Jain कहने लगे। स्वाभिमान और वात्सल्यके स्रोत ऐसे विरले ही होते हैं।

जब रंगीलाल बैरिस्टरका स्वर्गवास अनायास हो गया तब आप अतीव उद्विग्न हुए, विरक्त हुए। स्वामी रामतीर्थके धर्म ग्रन्थ (अंग्रेजीमें पढ़) वेदान्तकी ओर झुके पर शंकाओंका समाधान नहीं पाया तो १९१३ में देवेन्द्रकुमारजीने आपकी शंकाओंका निवारण किया और जैनधर्मका अध्ययन करनेके लिये प्रेरित किया। सन् १९२२ में दिगम्बर जैन महासभाके लखनऊ अधिवेशनमें सभापति बने। महासभाको और उसके मुखपत्र जैन गजटको सुधारनेके लिये आपने अमित श्रम किया पर फिर कुछ लोगोंको असन्तोष हुआ तो आपने जनवरी १९२३ में दिगम्बर जैन परिषद्को जन्म व जीवन दिया। सम्मेदशिखर तीर्थराजकी रक्षाके लिये आपने लन्दन जाकर पैरवी की। ऋषभ जैन लायब्रेरीकी भी लन्दनमें स्थापना की। जैन लाका निर्माण कर जैन मुनियोंके विहारपर प्रतिबन्ध हटाया। पं० रवीन्द्रनाथजी शास्त्रीके शब्दोंमें कुडचीके अत्याचारोंको पालियामेण्टमें पहुँचाया। बैरिस्टर साहबने तुलनात्मक साहित्यका सृजन किया। देश-विदेशमें जैनधर्म विषयक अनेक भाषण दिये।

बाबू कामताप्रसादजी संस्थापक अखिल विश्व जैन मिशन ग्रेंड मैन ऑफ लैटर्स कहा करते थे। वे विद्याके वारिधि थे। इसलिये विश्वधर्म परिषद् शिकागोमें कुछ ही मिनटोंमें सभीके मनमें जम गये थे। लन्दनमें जैन सेन्टर आपने कायम किया। यूरोपका तत्त्वज्ञान उन्हें आकर्षित नहीं कर सका। अद्वैत वेदान्तने उन्हें आकर्षित किया। उसकी पुष्टिमें Key of Knowladge लिखना शुरू की पर आत्म-अनात्म भेद विषयक शंका बढ़ी तो जैनधर्मके ग्रन्थ पढ़े और अभीष्टकी उपलब्धि हुई।

बैरिस्टर साहबने अधिकांश रचनायें अँगरेजीमें ही लिखी। ज्ञानकी कुंजी, जैनधर्म क्या है। असहमत संगम, श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र जैसे ग्रन्थ शीर्षस्थ हैं, बैरिस्टर साहबको विविध विषयोंका अपूर्व ज्ञान था। इसीलिये परिषद्, दिगम्बर जैनने आपको जैनधर्म दिवाकर उपाधि दी थी। धर्म, मनोविज्ञान, इतिहास, राजनीति, विधिशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि विषयोंमें उनका गहन अध्ययन था।

१. तुलनात्मक धर्म विज्ञानमें ज्ञानकी कुन्जी, असहमत सगम जैन लॉजिक हैं।

२. जैनधर्म विषयक—इष्टोपदेश, रत्नकरण्डश्रावकाचार, जैनपूजा अभिषेक, व्यावहारिक धर्म, संन्यास धर्म, आत्मिक मनोविज्ञान, श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, जैनधर्म क्या है, ह्रास परिवर्तन, जैन तपश्चरण, जैन संस्कृति, जैन मुनियोंकी दिगम्बरता।

३. जैन नीति शास्त्र—जैन ला ग्रन्थ बनाया पर जैन जनोंकी फूटसे सरकार द्वारा मान्य नहीं हुआ।

४. वेदान्त—आत्मरामायण।

५. इतिहास—ऋषभदेव (जैनधर्मके प्रथम तीर्थंकरका प्रामाणिक परिचय लिखा)

६. राजनीति—जूता कहाँ काटता है ?

७. इस्लाम—जवाहराते इस्लाम (इस्लामधर्मके अनुसार जैन सिद्धान्तोंकी सिद्धि की)

८. अन्य पुस्तकोंमें ईसाई मतके शास्त्रोंमें जैन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है।

बैरिस्टर सा० ने आपने अमूल्य अनेक ग्रन्थों द्वारा सिद्ध किया कि जैनधर्म विश्वधर्म है। संसारके प्राचीन धर्म ग्रन्थोंमें जैनधर्मका ही अलंकृत भाषामें प्रतिपादन हुआ।

●

स्व० पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ

●

जीवन दर्शन

आपका जन्म भादवा ग्रामके एक सम्पन्न एवं प्रतिष्ठित जैन परिवारमें हुआ। उस दिन माघ कृष्णा अमावस थी। लेकिन उनके माता पिता एवं परिजनोंके लिए वह शुक्ल पक्षकी दोज बन गई। प्रारम्भमें आपका लालन पालन लाड़प्यारमें हुआ। लेकिन अभी आपने जीवनके तीन ही सुनहले वर्ष व्यतीत किये होंगे कि पक्षाघातके विषम रोगने आ घेरा। यहींसे आपके साहस एवं आत्म-विश्वासकी मंजिल प्रारम्भ हुई। आपने पक्षाघातका साहसके साथ सामना किया। लेकिन एक पैरसे वे सदाके लिए लाचार बना दिए गये। कुछ ही वर्ष पश्चात् पितृ वियोगने भी आपके दृढ़ निश्चयकी परीक्षा ले डाली। आपकी प्रारंभिक शिक्षा भादवा ग्राममें ही हुई। वहीं संस्कृतका भी अध्ययन किया। प्रारम्भसे ही आप व्युत्पन्नमति एवं वाकपटु थे। इसलिए वे तेरह-चौदह वर्षकी अवस्थामें ही अपने गाँवके प्रमुख विद्वान् माने जाने लगे।

अध्ययन को ओर

इसके बाद आप स्याद्वाद महाविद्यालयके स्नातक बन गये। आपका विद्यालय भवन गंगातटपर ही था इसलिए उन्होंने अपने जीवनको भी गंगाके समान पावन गतिशील एवं अमृतमय बनानेका प्रयास किया। वाराणसीमें उन्होंने साढ़े पाँच वर्ष रहकर संस्कृत साहित्यके साथ-साथ जैन दर्शनका भी उच्चाध्ययन किया और बंगाल संस्कृत एसोशिएशनकी न्यायतीर्थ परीक्षा पास की जो उस समयकी उच्चतम परीक्षा मानी जाती है। यहींपर उन्होंने अपनी विद्वत्ता, विचारशीलता एवं सैद्धान्तिक ज्ञानका अच्छा परिचय दिया। और संस्थाके अधिकारियोंकी सहज ही सहानुभूति प्राप्त कर ली।

कार्य क्षेत्र

सन् १९१९ में दिगम्बर जैन विद्यालय कुचामनके प्रधानाध्यापक बनकर चले गये। यहाँपर वे करीब १२ वर्ष रहे। इस अवधिमें उन्होंने सारे मारवाड़में समाज सुधार एवं शिक्षा प्रसारका एक जबरदस्त वातावरण तैयार किया। कुचामनसे पंडितजी साहब सन् १९३१ में जयपुरमें दिगम्बर जैन महापाठशालाके

प्रधानाध्यापक बनकर आये। तबसे लेकर अब तक जयपुरमें रहते हुए आपने संस्कृत शिक्षाके प्रचार कार्यमें अपना अनवरत योगदान दिया। सन् १९३६ के पश्चात् वे स्थान विशेष अथवा प्रदेश विशेषके ही विद्वान् नही रहे बल्कि सूझ-बूझ और कार्यकुशलतासे देशके मान्य विद्वान् बन गये।

सुयोग्य शिक्षक

इस असंस्कृत युगमें भी उन्होंने संस्कृत भाषाके अध्ययन प्रवाहको सूखने नही दिया। अनेक विद्यार्थियोंको शास्त्री, आचार्य बनाकर सुयोग्य नागरिक बनाया। एक कुशल संस्कृत शिक्षकके रूपमें उन्हे राष्ट्रपति पुरस्कार भी दिया गया। अध्ययन और अध्यापन उनके जीवनके अभिन्न अंग रहे। प्राचीन साहित्यके प्रकाशन और अनुसन्धानकी उनमें आरम्भसे रुचि थी उन्होंने हिन्दी और संस्कृत भाषामें साहित्य का निर्माण किया। जैन दर्शनसार संस्कृतमें लिखी मौलिककृति है। उनके अर्हत प्रवचनकी प्रशंसा अनेक विद्वानोंने की। पंडितजीके द्वारा सम्पादित प्रद्युम्न चरित्रकी सराहना राहुल साकृत्यायन व डॉ० वासुदेवशरणने की थी।

कवि पत्रकार

पंडितजी प्रतिभासम्पन्न कवि थे। उनकी ५० कविताएँ पत्रोंमें छपी। कविताओंमें समाजको बदल डालनेकी बात उन्होंने बड़े जोशसे कही है। पंडितजीने ४५ वर्ष तक सम्पादन कार्य किया। पहले जैन दर्शन निकाला। फिर जैन बन्धुका सम्पादन किया। इसके माध्यमसे अनेक आन्दोलन चलाये और लगभग २० वर्षों तक वीरवाणीका सम्पादन किया। इसके कतिपय विशेषांक संग्रहणीय और सुरुचि-पूर्ण हैं।

प्रवचनकार

पंडितजी सर्दी गर्मी वर्षा भुलाकर प्रवचन करते थे और उनके श्रोता उन्हें सुननेके इच्छुक ही रहते थे। उसके समीप नेता शिक्षा शास्त्री साहित्यकार विद्वान् समाजसेवी सभी आते थे और वे सभीको पंचशील का सन्देश सुनाते थे। देश समाज और साहित्यकी सेवाके लिए प्रेरित करते थे।

७० वर्षोंमें पंडितजीने धर्म और समाजकी संस्कृति और साहित्यकी जो सेवा की वह युग युगों अविस्मरणीय रहेगी।

●

श्री चिरंजीलालजी जैनदर्शनाचार्य

●

जन्म : श्रावण वदी १३ सं० १९८५। शिक्षा : जैनदर्शनाचार्य। पिता . श्री नोंदीलालजी लुहाड़िया। व्यवसाय : कपड़ेके व्यापारी।

आप श्री सुरज्ञानीचन्द न्यायतीर्थके छोटे भ्राता हैं। आपकी शिक्षा श्री दि० जैन संस्कृत कॉलेज, जयपुरमें पं० चैनसुखदासजीके सांनिध्यमें हुई। व्यापारमें लगे रहते हुए श्री पंडितजीकी प्रेरणासे जैन-दर्शनकी उच्चतम परीक्षा 'आचार्य' उत्तीर्ण की। अंग्रेजीमें मैट्रिक तथा हिन्दीमें साहित्यरत्नकी परीक्षा भी आपने उत्तीर्ण की है।

आपके जीवनमें धर्म एवं समाजकी सेवाके प्रति काफी लगाव है। 'सादा जीवन उच्च विचार' ही आपके जीवनका ध्येय है।

आप कथनीमें नहीं करनीमें विश्वास रखनेवाले व्यक्तियों में हैं।

●

पं० चन्दनलालजी

सुप्रसिद्ध दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र ऋषभदेवके नामसे कौन अपरिचित होगा उसी पावन स्थलीमें विक्रम संवत् १९७८ ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया मंगलवारको पिता श्री कालूलालजीके घर माता कारीबाईकी पुनीत कुक्षिसे आपका जन्म हुआ।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय दिगम्बर जैन विद्यालयमें हुई इसके बाद श्री पार्श्वनाथ दि० जैन महाविद्यालय उदयपुरमें पं० सुन्दरलालजी जैन न्यायतीर्थके सांनिध्यमें रहकर आपने विशारद तक शिक्षा प्राप्त की।

चौदह वर्षकी अल्पायुमें ही आपका अध्ययन बन्द हो गया और आप आजीविकोपार्जनमें लग गए। अट्ठारह वर्षकी आयुमें आप पं० रामचन्द्रजी जैनके सम्पर्कमें आये और उनके सहयोगसे ऋषभदेव की सुविख्यात समाजसेवी संस्था श्री ऋषभ दिगम्बर जैन मण्डलकी स्थापना की। साथ ही लम्बी अवधि तक आप उसके मंत्री रहे। बादमें संस्थाओंकी सेवा करते हुए आपने साहित्यरत्नकी परीक्षा दी। आपको अंग्रेजी तथा गुजरातीका भी लिखने, पढ़ने तथा बोलनेका अच्छा अभ्यास है।

आप बाल्यकालसे ही सुधारक विचारधाराके पोषक रहे हैं। मरण भोजका विरोध करनेके लिए जनमत तैयार करनेमें आजसे ३० वर्ष पूर्व आपने प्रशंसनीय कार्य किया। इस आन्दोलनको दबानेके लिए आपको तथा आपके साथियोंको जाति बहिष्कृत करने तक की धमकियाँ दी गयी किन्तु स्वल्प भी विचलित नहीं हुए। ऋषभदेव जैन समाज की अनेक कुप्रथाओंको आपने समूल ध्वस्त कर दिया।

आप श्री ऋषभदेव दि० जैन तीर्थरक्षा कमेटी ऋषभदेव तथा श्री अ० भा० दिगम्बर जैन नरसिंह-पुरा महासभाके विगत कई वर्षोंसे मंत्री हैं। भट्टारक यशकीर्ति दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट प्रतापगढ़ के आप ट्रस्टी मनोनीत किए गये है।

आपने सरल जैन बाल बोधक चार भाग जो कि माणिकचन्द्र दि० जैन परीक्षालय द्वारा वर्षोंसे स्वीकृत हैं। श्री केशरियाजी तीर्थका इतिहास और स्तवक मंजरीके चार भाग भी लोकप्रिय पुस्तकें हैं। आपने कुछ समय तक साप्ताहिक पत्र 'सम्यक् ज्ञान' का भी सम्पादन एवं प्रकाशन किया। आपकी रचनाएँ अन्य पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रहती हैं।

आप बहुत कम बोलते हैं इसलिए कुछ वरिष्ठ महानुभावोंने आपका नाम "आइसक्रीम" रख दिया। सचमुच आप आइसक्रीम जैसे ही शीतल, सुरभित, मृदुल, मिष्ट एवं शिष्ट हैं।

स्व० पंडित चाँदमलजी चूड़ीवाल

पंडित श्री चांदमलजी चूड़ीवाल साहबका जन्म आजसे लगभग ८० वर्ष पूर्व मेनसर (बीकानेर) में हुआ था। आपने जैन पाठशाला एवं विद्यालयमें अध्ययन नहीं किया। फिर भी आप इतने बड़े विद्वान् बन

थे । यह आपकी बुद्धिमत्ताका परिचय है। आपने बचपन में ही शास्त्र स्वाध्याय करना प्रारंभ कर दिया था ।

कार्य व्रतोंका पालन करना, देवपूजा करना, लेख लिखना, सामायिक चर्चा या समाधानपर पुस्तक लिखनेका कार्य किया । आपने सचित्ताचित्त निर्णय, कानजीमत विवेचन भाग एक व दो, समवशरणमें शूद्र प्रवेश नही कर सकता, जैन तत्त्व की समीक्षा आदि पुस्तकें लिखी जो प्रकाशित हो चुकी है। आपने इनके अलावा और भी कई पुस्तकें लिखी जो द्रव्यके अभावसे प्रकाशित नही हो सकी ।

गुरु सेवा : पहले वर्ष आपने श्री १०५ विमलमतीजी व इन्दुमतीजीका नागौरमें चातुर्मास कराया, दूसरे वर्ष श्री १०८ मुनि वीरसागरजीका सवाई माधोपुरसे विहार करवाकर नागौरमें चातुर्मास कराया था। आपकी धर्म प्रवृत्ति देखकर भागलपुरकी समाजने आपको मानपत्र देना चाहा पर आपने स्वीकार नही किया था। इसके बाद आपने श्री १०८ महावीरकीर्त्तिजीके संघको खण्डगिरि, उदयगिरि आदि की यात्राएँ करवाईं । आपके साथ ब्रह्मचारी दीपचन्द्रजी बडजात्या भी थे । संघको वहांसे विहार करवाकर फीरोजाबादमें चातुर्मास कराया । फीरोजाबाद समाजने आपकी इच्छा न होनेपर भी आप दोनो को भक्त शिरोमणिकी पदवी दी । इसके बाद आपने महावीर कीर्त्तिजी व वीरसागरजीको जयपुरसे विहार करवा कर नागोरमें चातुर्मास करवाया था ।

●

पंडित चतरसेनजी

●

पंडित श्री चतरसेनजीका जन्म आजसे लगभग ६८ वर्ष पूर्व ग्राम सूप (बड़ौत) में हुआ । आपका शिक्षा स्थान जैन हाई स्कूल-बड़ौत (मेरठ) ही रहा । आपने अंग्रेजी फारसी आदि में बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की । उर्दू साहित्य सहित इन्ट्रेन्सकी परीक्षा सन् १९२३ में पास की । आपने आगरा विश्वविद्यालय से दर्शन शास्त्रमें एम० ए० की परीक्षा १९३४ में उत्तीर्ण की । आपने जैन आध्यात्मिक ग्रन्थोंका अध्ययन भी किया । आपके धार्मिक शिक्षा गुरु पंडित तुलसीरामजी वाणीभूषण रहे । इस समय आप अध्यापन व पुस्तक लेखनका कार्य कर रहे है । आपने २० वर्ष से भी अधिक समय तक दिगम्बर जैन परीक्षा बोर्डके परीक्षकका कार्य किया । आपने बी० ए० के लिये मनोविज्ञानपर एक पुस्तक पद्यमें आध्यात्मिक विषयपर लिखी । हस्तलिपिके रूप में उनके पास कुछ लेख है । जिनको वे प्रकाशित नही करा सके । इस समय आप अवकाश प्राप्त प्राध्यापक व पेन्शनर है ।

●

आचार्य चन्द्रशेखरजी शास्त्री

●

आचार्य चन्द्रशेखरजी शास्त्रीजी देहली दर्शन शास्त्र, इतिहास और विज्ञान एवं राजनीतिके सुप्रसिद्ध विद्वान् है आप इसके साथ ही हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत व उर्दू भाषा के भी ज्ञाता।

रचनायें : आपने अभी तक करीब तीन दर्जन या ३६ ग्रंथ चारों भाषाओंमें लिखे हैं। आपने जैन तथा अजैन दर्शनोंका तुलनात्मक अध्ययन किया है। आपने बौद्ध ग्रन्थ "न्याय बिन्दु" का सम्पादन कार्य भी किया। आपने काशी नगरी प्रचारणी सभाको सुबोध जैन दर्शन नामक ग्रन्थ लिखकर दिया है। तत्वार्थसूत्र जैनागम समन्वय की भी आपने रचना की है।

●

श्री चाँदमलजी मुनोत

●

जैन जगत्के जाज्वल्य सितारे, धर्मके प्रति महान् आस्था रखनेवाले, कर्तव्यकी बलिवेदीपर सर्वस्व स्वाहा करनेवाले, समाज के रत्न, कर्मठ जनसेवक, बेसहारोंके सहारे, कई भाषाओंके ज्ञाता, रचनाम धन्य दानवीर सेठ श्री चाँदमल मुनोतका जन्म राजस्थान के सीजन जिलेके सरंगवास नामक गाँवमें २ मई १९२४ को हुआ।

आप इस युगके दानवीर कर्ण ही हैं। आपने आज तकमें कई लाख रुपये गुप्त दानके माध्यमसे समाज एवं संस्थाओंको प्रदत्त किया। आप विख्यात उद्योगपति हैं। कई फर्म कंपनियों एवं उद्योगोंमें विभक्त हैं।

अपार सम्पत्तिके मालिक होते हुए भी आप रहन-सहन एवं प्रदर्शनके क्षेत्रमें अत्यन्त सरल है। जब आप बोलते हैं तो पुष्प पतनका आभास होता है। आपकी उदार वृत्ति देखते ही बनती हैं। आपका जीवन अत्यन्त निर्मल है। लगता है कि "सादा जीवन उच्च विचार" इस कहावतको प्रोद्भाषित करनेवाले प्रमुख स्रोत आप ही है।

१९४०में आपने मैट्रिककी परीक्षा उत्तीर्ण की। आप संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, मराठी एवं गुजराती भाषाके पण्डित है। आपको अध्ययनसे गहरी रुचि है जिसका ज्वलन्त उदाहरण है कि आपने अपने अबतक के जीवनकालमें सहस्राधिक ग्रंथ आद्योपान्त पढ़े। आपने अनेक धार्मिक लेख लिखकर पत्रिकाओंके माध्यमसे जन-जनके पास पहुँचाया।

आपको भ्रमणका भी महान् शौक है। भारत यात्राका स्वप्न पूर्णकर आप आजकल विश्व यात्रापर उतारू हैं। आपको जेनरल की उपाधि मिली है। आप सचमुच समाजके ऐसे रत्न हैं जिसकी दिव्य आत्माके सामने सब निस्तेज प्रतिभाषित होते है। आपके विषयमें अधिक लिखना सूर्यको दीपक दिखाना ही होगा।

●

पं० चुन्नीलालजी शास्त्री

मध्यप्रदेशके सागर जिलेमें खुरई रेलवे स्टेशनके पास परसोन नामक छोटा-सा गाँव हैं। जिसमें लगभग बीस घर जैनोंके थे। श्री पूरनचन्द जैन अपनी उस ग्रामीण समाजके प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। मंदिरजीका कार्यभार उन्हींके ऊपर था। समाजमें उनका महत्त्व था। उन्हींके घर फाल्गुन कृष्णा अमावस्या संवत् उन्नीस सौ छप्पनमें आपका जन्म हुआ। आपकी माँका नाम प्यारीबाई था। आपके पिताश्री पूरनलालजी मध्यम परिस्थिति वाले व्यक्ति थे। दुकान एवं साहूकारीका कार्य होता था। आपके दादाजी लखपति थे। ३-४ गाँवकी मालगुजारी उनके अधीनस्थ थी। किन्तु निरन्तर दस्युओंकी लूटके कारण शनैः शनैः उनकी परिस्थिति गिरती गयी।

जब आप पाँच वर्षके हुए तब आपको पूर्व भवका जाति स्मरण हुआ। आपने बताया कि आप पहिले इसी गाँव (परसौन) में चौधरी परिवारमें थे। लडके, पत्नी एवं धन आदिके सम्बन्धमें आपने सब बातें बतायीं जो अक्षरशः सत्य निकली। उस समय आपके छोटे आजा श्री भुज्जीलालाजी जीवित थे। विवाद भयके कारण उन्होंने आपको गोबर घोल कर पिला दिया जिससे स्मरण शक्ति समाप्त हो गयी।

ग्यारह वर्षकी अवस्थासे आपके अक्षर ज्ञानका श्रीगणेश हुआ। अठारह वर्षकी अवस्थामें अभिनंदन दिगम्बर जैन पाठशाला ललितपुरसे आपने प्रवेशिका प्रथम एवं द्वितीय खंड उत्तीर्ण किया। बीस वर्षकी अवस्थामें आपने विशारद एवं बाईस वर्षकी अवस्थामें न्यायमध्यमा शास्त्री किया।

अध्ययन समाप्त करते ही आप श्री दि० जैन पाठशाला खुरईमें अध्यापक हो गये। उसी समय दलपतपुर निवासी सिंघई श्री चउदेलालकी सुपुत्री हीराबाईके साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। आपकी धर्मपत्नीकी योग्यता आठवीं तक है। वे एक सभ्य एवं सुशीला महिला है। धर्मप्रियता उनके हृदयमें कूट-कूटकर भरी हुई है। सन्१९२३से १९३६ पर्यन्त आपने विविध विद्यालयोंमें अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् दस वर्षोंतक दूकानदारीका कार्य किया। इसके उपरान्त कृषि एवं पत्थरकी ठेकेदारीका कार्य आरम्भ किया जो अब भी चालू है।

आपके अन्दर प्रारम्भसे ही रूढ़िविरोधी एवं समाजसुधारक विचारधारा रही। सर्वजनसुखाय एवं धार्मिक क्षेत्रोंकी उन्नति हेतु आपने अनेक क्षेत्रोंका जीर्णोद्धार कराया तथा दिगम्बर जैन औषधालय चन्देरी की स्थापना की।

आपको णमोकार मन्त्रपर प्रगाढ़ विश्वास है। उसी मन्त्रके चमत्कारसे आपने अनेक बार प्राणरक्षा एवं कष्ट निवारण किया। एक बार प्रेत एवं दूसरी बार सिंहसे प्राणरक्षा की जिसे आप णमोकार मन्त्रका मात्र चमत्कार बतलाते हैं।

स्व० चम्पालालजी सिंघई 'पुरन्दर'

'पुरन्दर'जीका जन्म मध्यप्रदेशके गुना जिलान्तर्गत चन्देरी नामक गाँवमें छः फरवरी १९१९ बुधवार को हुआ। आपके पितामह पूनमचन्दजीने सन् १८८६ में गजरथोत्सव कराया जिससे समाजने उन्हें सिंघई पदसे विभूषित किया। वे चन्देरीके लोकप्रिय नागरिक तथा संस्कृत, हिन्दी, फारसी एवं अरबी भाषाके विद्वान् थे। ज्योतिष कानून एवं संगीत कलाके भी ज्ञाता थे।

आपके पिता श्री रतनचन्द्रजी हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजीके विद्वान् थे। कानूनका बृहद् ज्ञान था। म्यूनिसिपल कमेटीके सदस्य एवं हिन्दू नवयुवक मण्डलके अध्यक्ष थे। वे बहुत ही रईस तबियतके आदमी थे। धनी पिताके एक मात्र पुत्र होने के कारण दृढ़ी एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे।

परम्परागत विद्वत्ताके सुपात्र आप भी बने। चौदह वर्षकी उमरमें आपने द्वितीय श्रेणीमें मिडिल उत्तीर्ण किया। गणित में विशेष योग्यता प्राप्त की। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें आप विवाह सूत्रमें बाँध दिये गये। मिडिलसे आगे शिक्षा प्राप्त करने हेतु आप उज्जैन पहुँचे। वहाँसे आपने १९३९ में इण्टरमीडिएट किया। १९५४ में बी० ए०, ५६ में एम० ए० (हिन्दी ६२ में बी० एड० ६६ में एम० ए० (इतिहास) किया। इसके पहले १९५२ में साहित्यरत्न (हिन्दी) तथा १९६३में संस्कृत कोविद भी कर चुके थे। अनेक धार्मिक परीक्षायें भी आपने पास की।

आपको मैट्रिक परीक्षामें मैरिट स्कालरशिप मिली तथा समाजद्वारा कई बार अभिनन्दन पत्र प्राप्त हुए। आपने १९५४ से शासकीय तथा अशासकीय विद्यालयोंमें अध्यापन कार्य भी किया। १९६९ से आप जूनियर कालेज अशोकनगरमें ही कार्यरत रहे। आप बहुश्रुत विद्वान् थे। हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत साहित्यके साथ इतिहास, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, भूगोल एवं राजनीतिपर आपका अधिकार है। निरन्तर इतिहासका अनुशीलन करते रहनेसे आपने उसमें प्रकाण्ड विद्वत्ता प्राप्त की।

मिडिल उत्तीर्ण करनेके बाद ही आपमें कवित्व शक्ति धीरेसे आ गयी। जब आप इण्टरमीडिएटके छात्र थे। तब आपको इस क्षेत्रके विकासार्थ स्व० प्रो० रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' एव सुख्यात साहित्यकार डा० प्रभाकर माचवेसे प्रभावोत्पादक प्रेरणाएँ प्राप्त हुई। आपकी लेखन शैली काफी प्रौढ एवं परिपक्व रही। आपकी शताधिक रचनाएँ, जैनमित्र, जैनसंदेश, सन्मति संदेश, दि० जैन, वीर, अहिंसा, वाणी और अनेकान्तादि जैन पत्रिकाओं तथा ज्ञानोदय, ज्ञानपीठ पत्रिका, कल्याण, माधुरी, मदारी, झुनझुना, आलोक स्वतन्त्र भारत, नवप्रभात आदि सार्वजनिक पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक सन्दर्भ ग्रंथोंमें आपका जीवन परिचय भी प्रकाशित हुआ।

एक कविता संग्रह (स्वरचित), एक कहानी संग्रह, यशास्य (खण्ड काव्य), तारण स्वामी (खण्ड काव्य) एवं लेखमाला आदि रचनायें अप्रकाशित हैं। मृत्यु समय एक शोध कार्यमें व्यस्त थे। जो अधूरा ही रह गया।

सार्वजनिक सेवाओंके रूपमें भी आपने उल्लेखनीय कार्य किये हैं। चन्देरी नगरमें कांग्रेस कमेटीके उपमन्त्री रहे। १९४२के आंदोलनमें सक्रिय रहे हैं, छः वर्षो तक नगरपालिकाके सदस्य रहे। तीन वर्ष तक

जैन विद्यालयमें कोषाध्यक्ष तथा १० वर्ष पर्यन्त मन्त्री रहे। २५ वर्षोंसे अ० क्षे० थोबनजीकी प्रबंधसमितिके सदस्य रहे।

आप कर्मठ समाजसेवी उच्चकोटिके विद्वान् और परमशिष्ट एवं सरल व्यक्तित्वके स्वामी रहे। आपने हिन्दी एवं जैन साहित्यकी विस्मरणीय सेवाओंके साथ-साथ इतिहासको समुन्नतिमें भी विशेष योग दिया है।

●

पं० चन्द्रशेखरजी वैद्य

●

आगरा जिलेमें रेलवे स्टेशन टूंडलाके पास जोधरी स्थान है। श्री १०५ ऐलक जानकोप्रसाद वहीके निवासी थे। उनके सुपुत्र श्री नेकीरामजी अत्यन्त धार्मिक एवं विद्वान् पुरुष हुए है। उनका अधिकाश समय श्री रायबहादुर सेठ टीकमचन्द्रजी सोनी (अजमेर)के पुत्रोंको पढ़ानेमें बीता। श्री नेकीरामजी उन्ही सोनी श्रीके मन्दिरजीमें शास्त्र प्रवचन भी करते थे।

इन्ही शास्त्री श्री नेकीरामजीके पुत्र चन्द्रशेखरजी हुए। आपका जन्म द्वितीय भाद्रपद मास, कृष्ण पक्ष पष्ठी भृगुवार विक्रम संवत् ११७४ को रोहिणी नक्षत्रमें माता श्रीमती कुसुमवतीजीकी पुनीत कुक्षिसे हुआ। आपके जन्मके ८ वर्ष बाद आपके अनुज इन्द्रसेनका जन्म हुआ पर १ वर्ष बाद ही उनका निधन हो गया। तबसे अपने माता-पिताके एकमात्र पुत्र आप ही रह गये।

सन् १९२९ मे १९३३ तकमें आपने धर्मशास्त्री तृतीय खण्ड, न्यायशास्त्री तृतीय खण्ड, साहित्य-शास्त्री तृतीय खंड एवं दि० न्यायतीर्थकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली। इसके पश्चात् श्वे० न्यायतीर्थ धर्म एवं न्यायशास्त्री चतुर्थ खण्ड तथा न्यायाचार्यकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की।

सन् १९३३ में आपका विवाह एटा निवासी लाला बाबूरामजी जैनकी सुपुत्री प्रकाशवतीके साथ हो गया। श्रीमती प्रकाशवती जैन एक विदुषी महिला हैं। धर्म विशारद और आयुर्वेद विशारदके अलावा सिलाई कटाईमें डिप्लोमा प्राप्त हैं।

आपकी रुचिका विषय प्रारम्भसे आयुर्वेद रहा। कई चिकित्सालयोंमें वैतनिक एवं अवैतनिक रूपसे कार्य करते हुए आपने अपने विषय क्षेत्रको अत्यन्त विस्तृत कर लिया। दो हजारसे अधिक लेख एवं चालीस पुस्तकोंकी रचना की।

जून १९३५ से मार्च ३६ तक आप महावीर दि० जैन विद्यालय किशनगढ़ (जयपुर) में प्रधाना-ध्यापक रहे। जैन संस्था होसी (हिसार) में मार्च ३६ से नवम्बर ३८ तक प्रवक्ता रहे। दिसम्बर ३८ से जून ४० गोपालगढ़में अध्यापन एवं चिकित्सा कार्य किया। जून ४० से अप्रैल बयालीस तक बोर्डिंग हाउस जबलपुरमें सुपरि० रहे। अक्टूबर ४२ से नवम्बर ४४ तक धन्वतरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ) में सम्पादक रहे। दिसम्बर ४४ से जून ४५ तक जैन समाज औषधालय रामगंज मंडी (कोटा) चिकित्सा कार्य किया। जून ४६ से जैन समाज जबलपुरमें चिकित्सा व प्रवचन कार्य कर रहे हैं।

अठारह वर्षकी अवस्थासे आपने लिखनेका समारम्भ किया। आपकी लेखनीका विषय प्रमुख रूपसे आयुर्वेद रहा। वैसे हिन्दी गद्य साहित्यको भी आपने अपनाया। अबतक करीब २० पत्र-पत्रिकाओंमें आपके

लगभग दो हजार लेख प्रकाशित हो चुके हैं। लगभग ४० पुस्तकोंकी रचना हुई जिनमें ३० के लगभग प्रकाशित हो चुकी हैं। शेष अप्रकाशित हैं।

प्रकाशित पुस्तकें

१. तत्कालफलप्रद प्रयोग (प्रथम भाग) १५१ योग, २. महिला रोग चिकित्सा (पूर्वार्ध) ३०१ प्रयोग, ३. महिलारोग चिकित्सा (उत्तरार्ध), ४. तत्कालफलप्रद (चौथा भाग) ३८८ स्वादिष्ट प्रयोग, ५ पुरुष रोग चिकित्सा, ६. सौ रोगोंका सरल इलाज, ७. प्राकृत-चिकित्सा, ८. धर्मार्थ औषधालयोंके प्रयोग (प्रथम भाग), ९. धर्मार्थ औषधालयोंके चिकित्सानुभव, १०. पथ्यदर्शक, ११. चिकित्सा चन्द्रशेखर (प्रथम भाग), १२. उपदंश—सुजाक चिकित्सा, १३. तिलस्मी औषध-भण्डार, १४ नवीन चिकित्सानुभव, १५. कुमारी विज्ञान, १६. सूखा रोग विज्ञान, १७. आठ औषधोंसे औषधालय चलाना, १८. अनुभव-भण्डार, १९. तीन खजाने, २०. कुकरकास विज्ञान, २१. अनुभव हजारा, २२. पाकभण्डार (प्रथम-द्वितीय भाग), २३. नारू रोग विज्ञान, २४ फार्मेसी, भवन, कार्यालयोंके गुप्तयोग, २५. धर्मार्थ औषधालयोंके प्रयोग (दूसरा भाग), २६ झाँसी विश्वविद्यालयके प्रयोग।

आप आयुर्वेदके महान् पंडित एवं धर्मके सम्मान्य विद्वान् हैं। आपने समाजकी अत्यधिक सेवा की।

●

पं० चन्द्रकुमारजी शास्त्री

●

आपका जन्म आजसे लगभग ६० वर्ष पहले मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत सरावन नामक गाँवमें हुआ था। धर्मप्रियता आपके परिवारकी परम्परा थी। आपके पिता एवं माता दोनों ही अत्यधिक धर्मप्रिय थे। आपमें भी धर्मप्रियता एवं समाज सेवाका अंकुरण बाल्यावस्थासे ही हुआ। आपने हिन्दी मिडिल पास करके न्याय मध्यमा शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की। हिन्दीके अलावा संस्कृत एवं गुजरातीका आपको अच्छा ज्ञान है। गणेश विद्यालय सागर जैसी उच्चतम संस्थामें शिक्षण प्राप्त कर आपने सचमुच गुरुजनोंके उपदेशों-को अपने जीवनमें उतार लिया। परिणामतः विद्यार्थी जीवनसे ही आप प्रतिभावान् एवं यशस्वी व्यक्तिके रूपमें सर्वसाधारणके सामने आए।

शिक्षणोपरान्त प्रतापगढ़ (राजस्थान) में प्रधानाध्यापक पदपर आपने चौदह वर्षों तक कार्य किया। इस बीच तक प्रतापगढ़के लोगोंके आप हृदयहार बन चुके थे। सागरबाड़ा बोर्डिंगमें आपने ३ वर्षों तक कार्य किया। वहाँ आप धार्मिक संस्थाओंमें इन्स्पेक्टर रहे। इस समयावधिमें आपने जितनी अथक लगनके साथ धर्म प्रचार जैसा पुनीत कार्य सम्पन्न किया वह अनुकरणीय विषय है। साथ ही आपके लिए प्रशंसाका कारण है। सलुम्बरमें आप दश वर्ष अध्यापक रहे। सलुम्बरमें भी आपने जी तोड़ मेहनतकर धर्म प्रचारके कार्यको सम्पन्न किया। तथा जसपुर नगरमें भी आपने जैन संस्थान्तर्गत कार्य किया।

आपके जीवनमें जो हमें बेशकीमती चीज परिलक्षित होती है वह है धर्मप्रियता। सचमुच आपने जैनधर्मकी समुन्नतिमें कुछ कसर नहीं लगा रखी। आप जैसे धर्म प्रेमी एवं कर्मठ प्रचारक आज समाजमें यत्र-तत्र ही दृष्टिगोचर होते हैं।

●

स्व० पं० चन्द्रकुमारजी शास्त्री

●

महरौनी भारतके शीर्षस्थ विद्वानोंकी जन्मभूमि रही है। गुरुणांगुरु पं० वंशीधरजी न्यायालंकार, प्रकाण्ड विद्वान् पं० गोविन्दरायजी शास्त्री जैसे इस सदीके शीर्षस्थ विद्वानोंने जन्म लेकर इस नगरको पावन कर दिया—उसी परम्परामें स्व० पं० चन्द्रकुमारजी शास्त्रीने महरौनीमें जन्म लेकर महरौनी नगरकी गरिमाको उन्नत कर दिया। सादा जीवन उच्चविचारकी उक्ति यथार्थत. स्व० पूज्य पण्डितजीमें साकार थी।

स्व० पं० चन्द्रकुमारजी शास्त्री अत्यंत प्रकाण्ड विद्वान्, साहित्यकार, प्रभावक वक्ता, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं क्षमता और समताके सागर थे। वर्तमान विद्वत् समाजमें उन जैसा व्यक्तित्व तो किसी भी विद्वान्में कम देखनेको मिलता है। उनका अन्तर मन और बाह्य प्रवृत्ति जीवंत एक रही। लेशमात्र भी दिखावा एवं प्रदर्शन नहीं था वर्तमान कालके जो प्रतिष्ठाचार्य हैं वह बोलियाँ लगाकर अथवा धार्मिक कार्य सम्पादन करानेके अपनी मजदूरी बड़ी मूढ़ताके साथ तै करके धर्म प्रभावनाका कार्य कराते हैं लेकिन पूज्य पण्डितजी इन क्रयों और पाप प्रवृत्तियोंसे सदैव परे रहे। यदि किसी व्यक्तिने उनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर जो भी अर्पण उनके लिए किया वह भी उन्होंने संस्थाओंको ही दिया। सदैव अध्ययन चिंतन और मननमें निरत वात्सल्यकी प्रतिमूर्ति स्व० पूज्य पण्डित जी थे। जिस संस्थामें उन्होंने नौकरी की उसे उन्होंने प्राणपणसे समुन्नत और विकासमय बनाया, मुरादाबाद और टीकमगढ़ पण्डितजीका प्रमुख कार्यक्षेत्र रहा। लीवरकी बीमारीके कारण लगभग ५० वर्षकी अल्पत्प आयुमें ही उन्हें इस नश्वर देहसे पृथक् होना पड़ा। वह अपने पीछे पत्नी, विधवा बहू, दो बच्चे एवं बच्चियाँ छोड़ गए।

अंतिम क्षण अपने सरल और समतापरिणामों बीच एक ही बात उन्होंने अपनी पत्नीसे कही कि "मैं युवा पुत्रीका पाणिग्रहण नहीं कर सका जो इसी वर्ष करा देना। दूसरे मेरे जीवनके अध्ययन चिंतनके समय जो भी मैंने उपयोगी सामग्रीका चयन किया उस सम्पूर्ण लिखित अप्रकाशित संकलनकी फाइलें श्री विमल-कुमार जैन सोंरया को दे देना, महान् व्यक्तित्वका यह अनुग्रह अवश्य उनकी यश कीर्तिकी प्रतीक संकलित और लिखित अप्रकाशित सामग्रीको निकट भविष्यमें प्रकाशित कर उनकी अंतिम अभिलाषाकी पावन पूर्ति करेगा।

स्व० उदारधनी बाबू छोटेलालजी

बाबू छोटेलालजी नामसे चाहे जितने छोटे रहे हों पर कामोंसे इतने बड़े थे कि विरले ही उनके समाजमें बड़े होंगे। उदारधनी छोटेलालजी इतने अधिक जनप्रिय मूक सेवक थे कि बाबूजी, जैन साहब, सरावगीजी कहने मात्रसे उनका बोध हो जाता था।

बाबूजीका जन्म १९ फरवरी १८९६ को कलकत्तामें हुआ था। आपके पिता श्री रामजीवनदासजी एक आदर्श सात्विक धर्म-समाजसेवीभावी पुरुष थे। आप परिवारमें दस भाई-बहन थे। चूँकि आपके पिता श्रीके समीप विद्वानों और व्यापारियोंका जमघट रहता था, अतएव आपको सहज ही विद्या-व्यापारका अनुराग बढ़ गया। आप अग्रवाल जातिके भूषण थे।

आपकी आरम्भिक शिक्षा दिगम्बर जैन पाठशालामें हुई। पं० कलाधरजी आपके सर्वप्रथम गुरु थे और पं० जयदेवजी आपके सुयोग्य साथी थे। विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयसे आपनी मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। कॉलिजमें भी प्रवेश किया पर पढ़ना छोड़कर व्यापारकी दिशामें ही बढ़ना उचित समझा। जब आप १५ वर्षके थे तब आपका विवाह खेतसीदासजीकी सुपुत्री मूँगाबाईके साथ हुआ। सौभाग्यसे आपको सहधर्मिणी भी अपनी प्रकृतिके अनुरूप मिली पर लगभग दो दशक बाद ही आपका दाम्पत्य जीवन समाप्त हो गया। १९ अगस्त ४० को आपकी पत्नीका देहावसान हो गया।

आपने अपने मनको व्यापार और समाजसेवामें लगा दिया। आपकी धार्मिक-सामाजिक-व्यक्तिगत सेवाओंका उल्लेख संक्षेपमें यों किया जा सकेगा—

१ आराके देवेन्द्रजी रईससे बाबूजीका घनिष्ठ सम्बन्ध था। आपने उनकी अपने यहाँ अविस्मरणीय सेवा की थी।

२. इसी प्रकार सखीचन्द्रजीकी भी आशासे अधिक सेवा करके आपने सबको चकित किया।

३ सन् १९१७ के इन्फ्लुएन्जामें कलकत्तेमें खोज-खोजकर गरीबोंकी सेवा की।

· पद्मराजजी रानीवालों व करोड़ीचन्दजीके सम्पर्कसे बाबूजी धर्म व पुरातत्त्व प्रेमी बने। आगे चलकर आप सुप्रसिद्ध साहित्यान्वेषी नाथूरामजी प्रेमी व जुगलकिशोरजी मुख्तारके कार्योंके समर्थक भी बने।

५. आप दिगम्बर जैन विद्यालयके ३० वर्ष तक अवैतनिक मन्त्री रहे।

६. दिगम्बर जैन मन्दिर व रथयात्रा कमेटीके आप जीवनपर्यन्त ट्रस्टी रहे।

७. जैनभवनके निर्माणमें संरक्षकसे सहयोगी रहे।

८. अहिंसा प्रचार समितिके संस्थापकोंमें आपका एक विशेष स्थान रहा।

९ सन् १९४४ में, विशाल स्तरपर वीरशासन जयन्तीका आयोजन आपने ही कराया था। आपके ही सत्प्रयत्नोंसे वीरशासन संघ और दिगम्बर जैन विद्वत्परिषदकी स्थापना हुई थी।

१०. आप सर्वदा संयुक्त रूपसे महावीर जयन्ती मनानेके पक्षमें रहे।
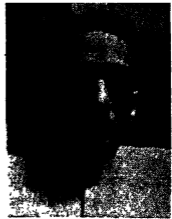
११. आप दिगम्बर जैन युवक समिति कलकत्ताके सहयोगी रहे। इसके जैनविजय नामक पत्रके सहायक सम्पादक भी रहे।

१२. सन् १९२२में बाढ़पीड़ितोंके लिए चन्दा संग्रह करनेवालोंमें आप अग्रसर रहे।

१३. आपने महावीर जैन समितिके तत्त्वावधानमें भारत जैन महामण्डलका अधिवेशन ब्र० शीतलप्रसादजीकी अध्यक्षतामें कराया। कांग्रेस अधिवेशनके समय All India Jain Association और Political Jain Conference का अधिवेशन कराया।

१४. बंगाल, बिहार, उड़ीसा, दिगम्बर जैनतीर्थ क्षेत्र कमेटीके मन्त्री रहे।

१५. कलकत्ता गनी ट्रेडस एसोसिएशनके ३२ वर्षों तक कार्यकारिणी समितिके सदस्य रहे।

१६. वीर सेवा मन्दिरको सरसावासे देहली लानेका श्रेय आपको ही था। अनेकान्तके संरक्षक थे।

१७. स्याद्वाद विद्यालय वाराणसीके स्वर्णजयन्ती महोत्सवके मूलतः सफल प्रेरक आप ही थे।

१८. साहू शान्ति प्रसादजीने सन् १९४४ में 'भारतीय ज्ञानपीठ' की स्थापना की, इसकी पृष्ठभूमिमें उन्हें आपने ही प्रेरणा दी थी। पं० नाथूरामजी प्रेमीके अनुरोधसे आपकी प्रेरणा पाकर भारतीय ज्ञानपीठने माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाका कार्य हाथमें लिया था।

१९. आप दरबारीलालजी सत्यभक्त और ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीके कार्योंसे प्रभावित थे। आप उन्हें धर्मप्रचार साहित्य सृजनके लिए सतत धनराशि देते थे।

२०. धार्मिक विद्वानों व उदीयमान नवयुवकोंके प्रति आपका असीम स्नेह था।

२१. आप इंडियन रिसर्च इन्स्टीट्यूटके सदस्य रहे।

२२. दिगम्बर जैन परिषद्‌की प्रबन्धकारिणी कमेटीके भी सदस्य रहे।

२३. आप ऑल इण्डिया कान्फ्रेंस (म्यूजिक) कलकत्ताके उपसभापति रहे।

२४. सन् १९२३ में जैन ग्रंथोंकी सूची तैयार करानेके लिए पंचायतोंको प्रेरणा दी थी।

संक्षेपमें बाबूजी स्वयं एक सजीव संस्था थे। पं० वंशीधरजी एम० ए० के शब्दोंमें आप जैन अजैन विद्वानोंको साहित्य संस्कृति सम्बन्धी सामग्री देकर प्रकाशमें लानेके लिए प्रेरित करते थे। बाबूजी पुरातत्त्व शिक्षा व संस्कृतिके अनन्य प्रेमी थे। अभावग्रस्त पीड़ितोंके मूल सेवक थे। लाखों रुपयेके दानी होकर भी विज्ञापनबाजीसे दूर रहते थे। आप प्रेमीजी व मुख्तार सा० जैसे परीक्षाप्रधानी थे। रुग्ण शय्यापर लेटे-लेटे आपने अगरचन्दजी नाहटाके निबन्धोंके प्रकाशनकी योजना बनाई थी।

अपना अभिनन्दन स्वीकार किये बिना ही, अपनी सेवायें समाजको समर्पित कर बाबूजी २६ जनवरी ६६ को चले गये।

●

पं० छोटेलालजी बरैया

●

आपका जन्म मध्यप्रदेशके शिवपुरी जिलेमें आमोल नामक गाँवमें भाद्रपद कृष्ण पंचमी रविवार संवत् १९६५ में हुआ। आपके पिताश्री मोतीलालजी एक अति साधारण गृहस्थीके मालिक थे। आपकी माता सुन्दर बाई बहुत सरल स्वभाव की थीं।

आपके पिताजीको उनके भाइयोंने अलग कर दिया इसी बीच जबकि आपकी उमर करीब १० वर्ष

की थी, आपकी माताका देहावसान हो गया जिससे दो छोटी बहिनों एवं एक भाईके लालन पालनका दायित्व आप पर आ पड़ा।

शिक्षा-दीक्षाके बाद आपने जैन पाठशालाओंमें अध्यापन कार्य किया, दुकानदारी तथा दलाली भी की। प्रारम्भसे ही आपको कविताओंसे प्रगाढ़ प्रेम था। दूसरोंकी कविताएँ पढ़ कर आपके मनमें उसी तरहकी कविता करनेकी ललक उमड़ा करती थी। आपने अनेक धार्मिक कार्य किए किन्तु आयसे सर्वथा दूर रहे। अनेकों वेदी प्रतिष्ठाएँ तथा पंचकल्याणक करवाए किन्तु कहीं पर मार्ग व्ययके अलावा एक पैसा भी अधिक (भेंट स्वरूप) आपने स्वीकार नहीं किया। आप अनेकों संस्थाओं जैसे श्रीभारतवर्षीय दि० जैन महासभा अजमेर, सिद्ध क्षेत्र कमेटी सोनागिरि, एवं श्री भा० व० दि० जैन शास्त्रि परिषदके सदस्य तथा लगभग १० संस्थाओंके मंत्री हैं।

संवत् १९८२ में आपका विवाह हुआ किन्तु संवत् १९९८ में पत्नीका स्वर्गवास हो गया। पत्नीके निधनके बाद लगातार आपके पाँच पुत्रोंके स्वर्गवास होते चले गये। आपकी पत्नी पाँच पुत्रोंको छोड़ कर परलोकगामिनी हुई थी किन्तु खेद है कि वे पुत्र क्रमशः, मृत्युको प्राप्त होते गए आज उस स्वर्गीय माँकी गोदीके निशानके रूपमें एक भी लाल शेष नहीं रहा। इन समस्त वियोगोंसे आपका हृदय छलनी हो गया।

बचपनसे ही आपको साहित्य सृजनका शौक था। गद्य तथा पद्य दोनोंको ही आपने अपनी लेखनीके विषय बनाये। आज तक आपने लगभग ४५ ग्रन्थ तथा शताधिक निबन्ध लिखे। आपकी रचनाएँ जैन गजट, जैनदर्शन, जैन बोधक, जैन मित्र आदि पत्रिकाओंमें सदैव प्रकाशित होती हैं। अब तक करीब १५, २० रचनाएँ प्रकाशित हुई। आपने श्रेयोमार्ग तथा जैनदर्शनका सम्पादन कार्य भी १०-१० वर्ष तक किए। आपकी सभी प्रकाशित पुस्तकें धर्म प्रचारार्थ निःशुल्क समाजमें वितरित की गयी जिससे समाजमें आपकी अत्यधिक ख्याति है।

आपकी धार्मिक सेवाओंके उपलक्ष्यमें समाज एवं विद्वत्वर्गने आपको विनोदरत्न, व्याख्यानभूषण, वाणीभूषण, समाजरत्न आदि अनेक उपाधियोंसे अलंकृत किया।

●

पं० छोटेलालजी शास्त्री

●

आपके दादा सागरके रहने वाले थे। सागरमें ही आपके पिताश्रीका जन्म हुआ। जब आपके दादा एवं दादीका निधन हो गया तब आपके पिता श्री चुन्नीलाल जैन अपने ननिहाल बाँदरी (होसंगाबाद)में रहने लगे तथा कास्तकारी करने लगे। वहीपर अगहन वदी पचमी संवत् १९६५ में माता श्रीमती गेरई बहूकी कोखसे आपका जन्म हुआ। आपके पिताश्री सज्जन व्यक्ति थे। उन दिनों बाँदरीमें डाकू धीरजसिंहका काफी बोल-बाला था। उसकी गिरफ्तारी हेतु बाँदरीमें पुलिसके सिपाही सदैव बने ही रहते थे यहाँ तककि कभी-कभी २००, ३०० तक पुलिसके सिपाही आ टपकते थे उन सबका भोजन प्रबन्ध वहींके वणिक समाजको ही करना पड़ता था। पैसे भी पुलिस द्वारा यदा-कदा ही प्राप्त होते थे। उनके प्रबन्धका अधिकतम दायित्व आपके पिताजीपर

ही था फलतः पुलिसके उस भीषण व्ययसे आपके प्रांगणमें अर्थाभावके दर्शन होने लगे। इसी बीच जानवरों-पर महामारीका प्रकोप हुआ और आपकी आठ भैंसे तथा छै बैल महामारीके शिकार हुए। इन सब आप-दाओं एवं पुलिससे तंग होकर आपके पिताश्री बाँदरी छोड़कर पुनः सागर चले आये। उस समय आपकी अवस्था ग्यारह वर्ष की थी।

आपने व्याकरण प्रथमा, न्याय मध्यमा, सर्वार्थसिद्धि, गोमटसार कर्मकाण्ड और मार्तण्ड, राजवार्तिक आदिका अध्ययनकर प्रवीणता प्राप्त की। आपने यदाकदा अध्यापन कार्य भी किया। किन्तु आधिक्य व्यापार व्यवसायका ही रहा।

समाज सेवाको आपने जीवनमें प्रथम स्थान प्रदान किया। आपको अध्ययनसे अगाध रुचि आज भी है। जैन धर्मके सभी ग्रन्थोंका आलोड़न कर आपने अपूर्व ज्ञान प्राप्त किया।

आप समाजके उन्नायक सेवी तथा सज्जनता की मूर्ति हैं। आपको गर्व तथा अहंकार छूकर भी नहीं निकला।

●

श्री छोटेलालजी प्राचार्य

●

आपका जन्म झाँसी जिलान्तर्गत चुनगी नामक गाँवमें १५ जून सन् १९२९ को हुआ था। आपके पिताजी श्री खेतसिंह जैन शा० प्राथमिक पाठशाला धनगौलमें अध्यापक थे अतः आपकी प्रारम्भिक शिक्षा धनगौल नामक गाँवमें हुई। इसके बाद धार्मिक शिक्षा प्रवेशिका तृतीय खण्ड व प्रथमा (वाराणसेय संस्कृत महाविद्यालय, नाभिनन्दन दि० जैन पाठशाला क्षेत्रपाल ललितपुरमें सम्पन्न हुई। पुनः उच्च धार्मिक शिक्षा (विशारद तृतीय खण्ड) तथा व्याकरण मध्यमा तृतीय खण्ड (संस्कृत महाविद्यालय बनारस और हिन्दी विशारद (प्रयाग) स्याद्वाद जैन महाविद्यालय बनारसमें रहकर उत्तीर्ण किया। इसी समय आपका ध्यान आंग्ल शिक्षाकी ओर हुआ परिणामतः आपने गोविन्द लाज बनारसमें रहकर हाई स्कूल परीक्षा सन् १९४८ में पास की। तत्पश्चात् उच्च शिक्षा जैन (नरिया) लाजमें रहकर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीमें पूर्ण हुई। अध्ययन काल ही में आप धार्मिक तथा सामाजिक कार्योंमें भाग लेने लगे थे। और व्याख्यान देनेकी रुझान भी यहींसे प्रारम्भ हुई। प्रशिक्षण कालमें आपका आकर्षण नई तालीमकी ओर हुआ यही कारण है कि आपने इसी समय बुनियादी शिक्षामें विशेष योग्यता प्राप्त की।

इसके बाद आपने विन्ध्य प्रदेशीय शा० बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय कुण्डेश्वर, टीकमगढ़में २६ जुलाई १९५४ से व्याख्याताके पदपर कार्य करना शुरू कर दिया था। यहाँपर करीब ८॥ वर्ष तक सैकड़ों अध्यापकोंका ध्यान नई तालीमकी ओर दिलाया तथा उनको सच्ची शिक्षा देने की ओर प्रेरित कर विभिन्न भारतीय उद्योगोंमें क्षमता हासिल करनेकी ओर इंगित किया। इसके बाद जनवरी सन् १९६३ में शा० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय देवसर, सीधीमें प्राचार्यके पदपर पदोन्नत होकर चले गये। जहाँ आदि-वासी और पिछड़े वर्गके बालकोंकी उन्नतिकी ओर विशेष प्रयत्न किया। इसके बाद १० वर्ष तक कई शा०

उ० मा० वि० और बुनियादी प्रशिक्षण संस्थाके प्राचार्य पद पर कार्य करते रहे। इस बीच जैन समाजकी सेवा करनेका भी अवसर प्राप्त हुआ।

सन् १९७३ के अक्टूबरमें राज्य शिक्षा संस्थान भोपालमें सहायक प्राध्यापक पदपर पदोन्नत होकर चले गये जहाँ राज्य स्तरीय शिक्षा व पाठ्यक्रम आदिपर अपने मन्तव्य प्रकट किए। वहाँ सेवा कालीन प्रशिक्षण क्लास २ आफीसर्सको ट्रेनिंग देनेका भी अवसर प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् जून, १९७५ में शा० बहु० उद्देशीय उ० मा० वि० टीकमगढ़के प्राचार्य पदपर परिवर्तित होकर आए, उच्चपदोंपर शासकीय सेवा करते हुए आपका दैनिक जीवन धार्मिक एवं सामाजिक कार्योंमें व्यतीत होता है।

●

स्व० पं० छोंगालालजी बज

●

तरुणाईसे लेकर जीवन पर्यन्त समाज सेवा करने वाले निःस्वार्थ सेवी छोंगालालजी आज हमारे बीच नही हैं किन्तु उनकी सेवाएँ हमारी स्मृतियोंसे कुछ इस तरह चिपटी हुई हैं कि हम उन्हें विस्मृतके गर्तमें नही ले जा सकते। यथार्थतः उनकी सेवाओं तथा मृदुल व्यवहारको कोई भी सहृदय व्यक्ति भूल नही सकता।

आपका जन्म सवाई माधोपुरमें हुआ था। आपके पिताश्री भी एक कर्मठ एवं विद्वान् व्यक्ति थे। उनके व्यक्तित्वको आपने अपने जीवनमें पूरी तरहसे उतार लिया। धार्मिक शिक्षाके साथ-साथ आपने श्री दि० जैन संस्कृत विद्यालय जयपुरमें संस्कृतका अध्ययन किया।

अध्ययनोपरान्त आपने कलकत्तामें दलाली एवं दि० जैन पाठशाला दौसा, लवान एवं सवाई माधोपुर आदि विद्यालयोंमें अध्यापन कार्य भी किया। आप संस्कृत एवं प्राकृतभाषाके अच्छे विद्वान् थे। कलकत्तामें मंदिरका कार्यदायित्व भी आपने कई वर्षों तक सम्हाला। इस अवधिमें आपका कार्य व्यवहार इतना सुन्दर रहा कि सचमुच जन सामान्यके हृदय हार बन कर आपने काफी प्रतिष्ठा उपलब्ध की। लगभग सत्तर वर्षकी अवस्थामें आपका स्वर्गवास हो गया।

●

स्व० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार 'युगवीर'

●

जैन इतिहास वाङ्मय और पुरातत्त्व, गुफाओं, मन्दिरों और आलमारियोंमें बन्द घुटनकी साँस ले रहे थे। इस अन्वेषण कार्यके लिए स्व० श्री नाथूरामजी प्रेमी जैसे अनेक मेधावी मनीषियोंकी आवश्यकता थी। श्री युगवीरजीका जन्म इसी अभावकी पूर्ति-पूरक बनकर सरसावा जिला सहारनपुरमें श्री चौ० नत्थूमल जैनके घर एक नयी अरुणिमाके रूपमें हुआ। मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी वि० सं० १९३४ को माता भुईदेवी इस नौनिहालको प्राप्त कर धन्य हुई थी।

शैशवसे ही इस बालकमें ऐसी कौन-सी चुम्बकीय शक्ति थी कि माता-पिता, पास-पड़ौस तथा सभी सम्पर्की व्यक्तियोंको यह अनुरंजित किये बिना नहीं रहता था।

शिक्षा—पाँच वर्षकी अवस्थामें उर्दू-फारसीकी शिक्षा प्रारम्भ की। मौलवी साहबकी दृष्टिमें बालक जुगलकिशोर दूसरा विद्यासागर था। उसकी विलक्षण प्रतिभा दैवीशक्ति-सम्पन्न लगती थी। दूसरा गुण जो बालकमें था वह थी—इनकी तर्कणा शक्ति। अध्ययनके अलावा खेल-कूदमें वे किसीसे पीछे नही थे।

श्री जुगलकिशोरजी बाल-विवाहके शिकार हो गये परन्तु उनकी ज्ञान पिपासा अपनी सह-धर्मिणीके आनेसे कम नहीं हुई अपितु अधिक बलवती हो उठी जैसे हीरेपर शान रख दी गई हो।

सरसावामें हकीम उग्रसेन द्वारा स्थापित पाठशालामें आपने हिन्दी और संस्कृतका अध्ययन प्रारम्भ किया तथा संस्कृतमें बढ़ती अभिरुचिने आपको जैनशास्त्रोंके स्वाध्यायके लिए प्रेरित किया।

अंग्रेजी स्कूल खुल जानेसे आपने नौवी कक्षा तक इसका विधिवत् अध्ययन कर स्वाध्यायी रूपसे इन्ट्रेंसकी परीक्षा दी।

सत्यके प्रति एक अपूर्व निष्ठा तथा जिनवाणीकी रक्षाका भाव दिनोंदिन सघन होता गया। आपका उद्देश्य ग्रन्थोंका मात्र अध्ययन ही नहीं रहा अपितु धारणा और मनन भी साथ-साथ चलता रहा यही कारण था कि जब भी वे लिखने बैठते उनके मानसके भावोंका प्रवाह, सरिता प्रवाहके उछाह वेगके समान फूट पड़ता था।

अध्ययन कालसे लिखना प्रारम्भ कर दिया था जो कुछ अप्राप्य हैं परन्तु एक रचना १८ मई १८९६ में जैन गजटमें प्रकाशित हुई थी उससे इनकी देशोत्थानके लिए कृतसंकल्पी होनेका आभास मिल गया था।

जीवन-संघर्ष एवं कार्य-क्षेत्रमें प्रवेश

मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करनेके पश्चात् आपने स्वयं जीविका निर्वाह करनेकी सोची क्योंकि अभिभावकोंपर निर्भर रहना आपने अकर्मण्यता समझी। अतः १८९९में आपने प्रान्तिक सभाकी ओरसे उपदेशकका कार्य प्रारम्भ किया। जिसके मूलमें समाज, साहित्य और देशकी पतनावस्थाका भावात्मक साक्षात्कार हो जानेसे उसकी सेवामें निरत रहनेका था। परन्तु दो माह बाद यह विचार आया कि धर्मप्रचार जैसा पवित्र कार्य वेतन लेकर न किया जाये। फलतः उपदेशक वृत्तिसे त्यागपत्र लेकर मोख्तारीका प्रशिक्षण प्राप्त कर स्वतन्त्र वृत्तिपूर्वक इस पेशेमें सफल हुए।

आपने इस पेशेमें सदा न्याय और सत्यका आधार लिया। लगभग १० वर्ष मुख्तारी करके आपने धन और यश दोनों अर्जित किये।

इधर आपका अधिकांश समय साहित्य, कला एवं पुरातत्त्वके अध्ययन अन्वेषणमें व्यतीत होता था।

जब वाङ्मयका स्वाध्याय आपके मुख्तारी पेशेमें बाधक होने लगा तो इसे छोड़कर एकमात्र ज्ञान साधनामें संलग्न हो गये।

वे भट्टारकोंके द्वारा साहित्य एवं कर्मके क्षेत्रमें फैल रहे अनाचारकी आन्तरिक पीड़ासे छटपटा रहे थे और उन्होंने मित्र सूरजभान वकीलसे अपनी व्यथाका उल्लेख कर सम्मिलित रूपसे जैन वाङ्मयकी सेवा का व्रत लिया और १२ फरवरी १९१४ आपके लिए एक ज्योतिपर्व जैसा था जिस दिन उन्होंने अपने पेशेसे त्यागपत्र दे दिया था।

भट्टारक लोग अपनी यशोगाथा फैलानेकी भावनासे कवित्वके प्रदर्शनके लिए विभिन्न प्राचीन ग्रन्थोंके अंश चुराकर, भानुमतीका कुनबा तैयार कर देते थे। हजारों वर्षोंके इतिहासमें पं० जुगलकिशोरजी ऐसे प्रथम व्यक्ति हुए जिन्होंने इस साहित्यिक चोरीको पकड़ा और दिन-रात अथक परिश्रम करके ग्रन्थ परीक्षा के नामसे एक शोध खोज ग्रंथ प्रकाशित करवाया, जिससे लोगोंको वास्तविकताका पता चला।

पारिवारिक दुश्चक्र एव संकल्पकी अडिगता

श्री पंडित 'मुख्तार' साहबके कार्योंमें उनकी धर्मपत्नी बडा योगदान करती थी। उन्होंने पत्नीकी यथार्थ सेवा प्राप्त कर अपना बौद्धिक-विकास किया। आपके ७ अक्तूबर १८९९ में एक कन्याका जन्म हुआ जो बचपनसे ही सत्यवादिता, निर्भयता, कार्यकुशलतामें निपुण थी। यह बालिका बड़ी कुशाग्र बुद्धिकी थी अत: इसका 'सन्मतिकुमारी' नाम पंडितजीने रखा। परन्तु पंडितजीको ज्यादा दिन इसका सुख नही लिखा था। ८ वर्षकी बालिका सन् १९०७ में फैली प्लेगकी बीमारीसे कालकवलित हो गयी। सन् १९१७ में आपको दूसरी बेटीका सौभाग्य प्राप्त हुआ परन्तु ठीक सवा तीन माह पश्चात् आपपर दूसरा अनभ्र वज्रपात हुआ और पच्चीस वर्षोंकी जीवनसंगिनी आपका साथ छोड चल बसी। पत्नीके इस वियोगने पंडितजीको झकझोर दिया। कहावत है—विपत्ति अकेले नही आती। ठीक ३ वर्ष बाद १९२० में मोतीझराके असाध्य ज्वरसे उनका शेष नीड भी उजड गया। जिसके सहारे वह जी रहे थे—कल्पनाओंका वह महल भी ढह गया।

परन्तु पडितजीने प्रकृतिकी इस ललकारका सीना तानकर सामना किया और आप निर्लिप्त कर्मयोगी बन अपनी साहित्य साधनामें पहिलेसे भी दूनी गतिसे संलग्न हो गये।

साहित्य-साधना और अन्य कार्य-प्रवृत्ति

स्वाध्याय तपस्वी मुख्तार साहब अपने क्रान्तिकारी भाषणों और लेखनसे समाज-सुधार, कुरीतियों और अंधविश्वासोंका निराकरण कर यथार्थ आर्ष मार्गका प्रदर्शन करने लगे। राष्ट्रीय भावना इतनी कि प्रतिदिन सूत कात कर ही भोजन ग्रहण करते थे।

समन्तभद्र आश्रम या वीर सेवा मन्दिरकी स्थापना—२१ अप्रैल १९२९ में आपने दिल्लीमें समन्तभद्राश्रमकी स्थापना की और यहीसे 'अनेकान्त' मासिक पत्रिकाका प्रकाशन आरम्भ किया। बादमें यही वीर सेवा मन्दिरमें परिवर्तित हो दिल्लीसे सरसावा चला आया जो एक शोध प्रतिष्ठानके रूपमें वाङ्मयकी विभिन्न शोध प्रवृत्तियोंका प्रकाशन और अनुसंधान करने लगा। ज्ञानपीठकी स्थापनाके पूर्व यही एक ऐसी दिगम्बर संस्था थी। मुख्तार साहबने अपनी समस्त सम्पत्तिका ट्रस्ट कर दिया और उस ट्रस्टसे वीर सेवा मन्दिर अपनी बहुमुखी प्रवृत्तियोंका संचालन करने लगा।

बाबू छोटेलालजी रईस कलकत्ताने मुख्तार सा० जैसी विभूतिका मूल्यांकन किया और कलकत्तेमें 'वीर शासन महोत्सव' पर उन्हें 'वाङ्मयाचार्य' की उपाधिसे विभूषित किया। पूज्य पाद पं० गणेशप्रसादजी वर्णी, पं० नाथूरामजी प्रेमी, बाबू सूरजभान वकील, ब्र० पं० चन्दाबाई आरा, बाबू राजकृष्णजी दिल्ली, साहू शान्तिप्रसादजी आदि प्रमुख व्यक्तियोंने मुख्तार सा० के अगाध पांडित्य और ज्ञानसाधनाकी प्रशंसा की।

व्यक्तित्व—मुख्तार सा० का व्यक्तित्व-नारिकेल सम था। सामाजिक दायित्वोंकी रक्षा हेतु कड़ा कदम उठानेके लिए तैयार परन्तु स्वभावमें नवनीतकी भाँति। आपमें महावीरप्रसादजी द्विवेदी जैसी निर्भीकता और निरालाजी जैसी अक्खड़ता थी। सरस्वतीके इस वरदपुत्रने लेखन सम्पादन और कवित्व प्रणयन द्वारा माँ भारतीका भण्डार समृद्ध किया।

कवि 'युगवीर'—आपकी काव्य रचनाओंका संग्रह 'युग-भारती'के नामसे है। आपकी सबसे प्रसिद्ध और मौलिक रचना—'मेरी भावना' एक राष्ट्रीय कविता बनकर प्रत्येक बालकके हृदयको गुंजित किये है।

निबन्धकार—आपके निबन्धोंका संग्रह—युगवीर निबन्धावलीके नामसे दो खण्डोंमें प्राप्त है। जिसमें समाज सुधारात्मक एवं गवेषणात्मक निबन्ध हैं। इसके अलावा अपने 'जैन साहित्य और इतिहासपर विशद प्रकाश' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया जिसमें ३२ निबंध हैं। आपके निबन्धोंमें सामाजिक, राष्ट्रीय, आचारमूलक, भक्तिपरक, दार्शनिक एवं जीवनशोधक निबंध हैं जो आपके सम्पूर्ण व्यक्तित्वको उजागर करते हैं। आप एक सामाजिक क्रान्तिद्रष्टा थे और वे विवाहके लिए वर्ण, जाति, गोत्र आदिका बन्धन स्वीकार नहीं करते थे।

भाष्यकार—आप केवल मौलिक लेखक ही नहीं एक मेधावी भाष्यकार भी थे। आपने आ० समन्तभद्रकी प्रायः समस्त कृतियोंपर ग्रन्थ लिखे हैं।

भाष्य ग्रंथोंमें आपके द्वारा लिखित प्रत्येक ग्रंथमें महत्त्वपूर्ण प्रस्तावनासे वे और भी अधिक उपयोगी बन गये हैं।

समीक्षक एवं ग्रन्थ परीक्षक—आपके साहित्यिक जीवनका प्रारम्भ ग्रंथ परीक्षा और समीक्षासे ही आरम्भ होता है। ग्रंथ परीक्षाके दो भागोंका प्रकाशन १९१६ में हुआ था। आपने साहसपूर्वक ग्रन्थोंके नकली रूपको ज्ञात किया और डंकेकी चोटसे उन्हें जाली सिद्ध किया।

इतिहासकार—अनेक ऐतिहासिक शोध निबन्धोंको लिखकर आपने अपनेको एक सच्चा इतिहासकार प्रमाणित कर दिया। कुछ निबन्ध जैसे—'वीर शासनकी उत्पत्ति और स्थान' 'श्रुतावतार कथा' तत्त्वार्थाधिगम भाष्य और उनके सूत्र, कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा और स्वामिकुमार' आदि शोध निबन्ध विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तावना लेखक—आचार्य श्री मुख्तार सा० ने स्वयम्भूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन, देवागम, अध्यात्म रहस्य, तत्त्वानुशासन, समाधितन्त्र, पुरातन जैन वाक्यसूची, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह (प्रथम भाग) समन्तभद्र भारती प्रभृति ग्रन्थोंका सम्पादन कर महत्त्वपूर्ण प्रस्तावनायें लिखीं जो अध्येताओंके लिए अत्यन्त उपयोगी एवं ज्ञानवर्द्धक हैं।

पत्रकार एवं सम्पादक—आ० युगवीर निःसन्देह प्रथम श्रेणीके पत्रकार और सम्पादक रहे। आपका पत्रकार जीवन साप्ताहिक मुखपत्र—"जैन गजट"के सम्पादन कार्यसे प्रारम्भ हुआ। जनताने आपकी सम्पादन कलाकी मुक्तकंठसे प्रशंसा की। ९ वर्ष तक इसका सफल सम्पादन करनेके बाद 'प्रेमी'जीने आपको "जैन हितैषी" का सम्पादक नियुक्त किया। जिसका सम्पादन उन्होंने १९३१ तक किया। समन्तभद्राश्रम की स्थापनाके पश्चात् 'अनेकान्त' नामक मासिक पत्रका सम्पादन एवं प्रकाशन भी प्रारम्भ किया जो उस समयकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका थी।

व्यक्तित्व एवं कृतित्वकी उपलब्धियाँ—आप एक साधक स्वाध्याय तपस्वीके रूपमें रहे। जिन्होंने सदा देना ही सीखा था लेना नहीं। श्रम और अध्यवसाय जैसे गुण आपके व्यक्तित्वमें सहज अनुस्यूत थे। उनका मस्तिष्क ज्ञानीका हृदय, योगीका और शरीर कृषकका था।

आपने लोक सेवा और साहित्य सेवा द्वारा ऐसे ज्ञान मन्दिरोंका निर्माण किया जो युग-युगान्तर तक दिगम्बर परम्पराको संजोये रहेगा। निःसंदेह आपका व्यक्तित्व उदात्त था। उनका जीवन-निष्कम्प दीप-शिखाके समान तिल-तिलकर ज्ञान प्राप्तिके लिए जला और वे एक ज्ञानी, समाजसुधारक, दृढ़ अध्यवसायी, एवं साधक तथा पाण्डुलिपियोंके अध्येता ही नही अपितु वे आँगनकी तुलसीका वह चौरा हैं जिनकी सुरभिने सभी दिशाओंको हर्षविभोर बना दिया था। आपने युगकी नाड़ीको परखा था, सम्मान था अतः दिगम्बर परम्पराके मिथ्या व्यामोहसे पृथक् हो एक नयी दिशा और नया आलोक प्रशस्त किया था।

आप अनेक विरोधोंके समवाय थे। जो कवि होता है वह चिन्तनशील गवेषणापूर्ण निबन्ध नहीं लिख सकता। अतः डा० ज्योतिप्रसादजीने आपको साहित्यका भीष्म पितामह कहा है। कविता, निबन्ध, भाष्य, वैयक्तिक निबन्ध, संस्मरण महत्त्वपूर्ण विस्तृत प्रस्तावनायें एवं आचार्य एवं कवियोंकी निर्धारित तिथियाँ आदि ऐसे कार्य हैं जो एक व्यक्ति द्वारा शायद ही एक जन्ममें सम्भव हो सकें जो आचार्य मुख्तार सा० 'युगवीर' जीने करके दिखा दिया। आप जितेन्द्रिय, संयमी, निष्ठावान् एवं ज्ञानतपस्वी थे।

●

एक कर्मठ संयमी श्री जिनेन्द्रजी वर्णी

●

पानीपत (पंजाब) के सुप्रसिद्ध वकील, जैनसिद्धान्तके मर्मज्ञ, जैनसाहित्य एवं वैदिक साहित्यके अन्वेषक विद्वान् बा० जयभगवानजीके घर अक्टूबर सन् १९२१ ई० में वर्णीजीका जन्म हुआ।

आप जन्मसे ही सरल तथा प्रतिभावान हैं। इलेक्ट्रिक तथा वायरलेसमें उच्च शिक्षा प्राप्तकर कुछ समय तक आपने एम० ई० एस० की ठेकेदारी की। पश्चात् व्यापारका भार अनुजोंपर डालकर स्वाध्यायमें जुट गये।

आप बाल्यावस्थासे ही रोगी रहते थे। आगे जाकर आपको एक भयंकर रोगने ग्रस लिया। सन् १९३८ में दुर्भाग्यसे क्षय रोगके कारण एक फेफड़ा बन्द करा दिया गया डाक्टरोंने मांसाहारकी सलाह दी किन्तु जीवनके मूल्यपर भी मांसाहार स्वीकार नहीं किया। इस संकल्प शक्तिने जीनेकी एक अपराजेय शक्ति प्रदान की। संयमित आहार बिहारसे ही इससे विमुक्त हो सके। परन्तु इस लम्बी बीमारीने आपके विचारोंमें एक भारी परिवर्तन कर दिया। उन्होंने विचारा—'कि जब पराधीनतामें मुझे इतने संयमसे रहना पड़ता है तब स्वेच्छासे संयमका पालनकर आत्माका ही भला क्यों न किया जाय। अब तक हम इसके गुलाम रहकर आत्मभूत तत्त्वको भूले रहे। अब हमें इसकी गुलामीको भूलना चाहिये।' बस इसी संकल्पने आपके हृदयमें दृढ़ संयम पालन करनेका विचार बनाया। इस प्रकार प्रारम्भसे ही सांसारिकताके प्रति उदासीन भाव रखकर विरक्तिके मार्गपर चल पड़े और जीवनका जैसे एक ही उद्देश्य रह गया—ज्ञानकी प्राप्ति।

कृश काया, तेजस्वी चेहरा, सरल स्वभाव, मधुर वाणी, नित्य वर्धमान ज्ञान पिपासा, शान्तचित्तवृत्ति और करुणासे ओतप्रोत हृदयका अपूर्व संगम ही आपके विशिष्ट व्यक्तित्वका द्योतक है।

अनवरत स्वाध्याय और चिन्तनसे प्राप्त ज्ञानके नवनीतका वितरण आपके जीवनका मुख्य ध्येय बन गया है। प्रवचनका ढंग निराला है। वैज्ञानिक ढंगसे वस्तुतत्त्वको इस प्रकारसे जनसाधारणके समक्ष रखते हैं

कि श्रोता भाव विभोर हो उठता है। जिस विषयका विवेचन करने बैठ जाते हैं तो उसका ऐसा सुन्दर चित्र खींचते हैं कि श्रोता उसी आनन्दका अनुभव करता है जो फिल्म-रीलसे प्राप्त होता है। कुछ स्थानोंमें भ्रमण करनेके बाद एकान्तवासके उद्देश्यसे ईसरी चले गए वहाँ आध्यात्मिक संत क्षु० गणेश प्रसादजी वर्णीके सान्निध्यमें रहनेका अवसर मिला। सन् १९६३ में ईसरीमें पार्श्वप्रभुको साक्षी करके आपने क्षुल्लक दीक्षा ले ली तबसे अनवरत ज्ञान और आत्मसाधनामें तत्पर हैं। पूर्णरूपसे विरक्त और निस्पृह जीवन, ज्ञान पिपासु वृत्ति, मौन एवं एकान्त प्रिय, अत्यंत सरल व कोमल प्रकृति, मृदुभाषी, सर्वथा अनाग्रही और वैज्ञानिक दृष्टि, स्वतंत्रचेता एवं कुशल प्रवक्ता।

यह एक धोतीका परिग्रह धारक साधक निरन्तर ज्ञान साधनामें लवलीन रहता है। यही कारण है कि जो काय कई विद्वान् मिलकर अपने जीवन भरमें पूरा कर पाते, वह 'जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष' का चार भागोंमें निर्माण पूर्णकर अपनी अनूठी कार्यशक्ति और विद्वत्ताका परिचय दिया। 'शान्ति पथ प्रदर्शन' ग्रन्थ तो आपका वास्तवमें आत्माको अपूर्व शान्ति देता है। इसके अलावा आपने 'नय दर्पण' जैन सिद्धान्त-शिक्षण, कर्म सिद्धान्त, श्रद्धाबिन्दु, द्रव्य-विज्ञान, कुन्दकुन्द-दर्शन इत्यादि ग्रन्थोका सृजन किया।

आपके विचार साम्प्रदायिकताके परे होते हैं। हृदय जैन अजैन सभीके प्रति व्यथित है। और मानव मात्रके लिए आपका जीवन अर्पित है।

●

स्व० पं० जीवन्धरजी न्यायतीर्थ

●

स्वर्गीय विद्वत् वरेण्य पण्डित प्रवर जीवन्धरजी न्यायतीर्थ प्रथम श्रेणीके विद्वानोंमें एक हैं। आपके पढ़ाए हुए सैकड़ों विद्वान् आज आपको अपना गुरु मानते हुए गौरवका अनुभव करते है। वर्तमान विद्वत् मण्डलके गुरूणां गुरुके रूपमें आप सदैव वन्दनीय रहेंगे।

आपका जन्म सागर म० प्र० जिला अंतर्गत शाहगढ ग्राममें परवार कुलमे हुआ था। तथा विवाह ग्राम मड़ावरा (ललितपुर) में श्रीमान् सिंघई मथुराप्रसादजीकी सुपुत्री श्रीमती रजनबाईजीके साथ हुआ था। आपकी धर्मपत्नी अत्यंत विदुषी नारीरत्न धर्मात्मा है। आप आरम्भसे ही इन्दौरमें रहने लगे। बीसवी शताब्दीमें नव्य न्याय और प्राचीन न्यायके आप जैसे प्रकाण्ड विद्वान् अन्य कोई नही हो सका। न्यायके तो आप अनुपम विद्वान् रहे। सर सेठ हुकमचन्दजीके विद्यालयमें कई वर्ष तक आपने प्रधानाध्यापक पदपर कार्य किया। पश्चात् स्वतंत्र व्यवसाय करने लगे थे।

जैसा विशाल आपका ज्ञान था तदनुसार आपका उन्नत व्यक्तित्व सरल, और सहृदयी स्वभाव एवं शान्त प्रिय प्रकृतिके महापुरुष थे।

गतवर्ष सन् १९७४ में आप अपने पीछे विधवा पत्नी एवं चार सुयोग्य पुत्रों तथा प्रपुत्र प्रपुत्रियोंसे युक्त भरा-पूरा परिवार छोड़कर असमयमें चले गए। धर्मोपदेश, शिक्षण पद्धति एवं साहित्य रचना द्वारा आपने समाज व्यक्ति और धर्म तथा जिनवाणीकी जो सेवा की है युगों-युगों तक वह सदैव आपके यशोगीत गाती रहेगी। तथा आपका व्यक्तित्व अभिनन्दनीय और कृतित्व वंदनीय रहेगा।

●

सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमारजी

जीवन परिचय

जिनके नाममें ही जैन जुडा और शायद इसीलिए जिन्होंने कभी अपने नामके आगे जैन नही लिखा, उन जैनेन्द्रकुमारजीका मूलभूत नाम आनन्दीलाल है। आपका जन्म सन् १९०५ में कौड़ियागंज (अलीगढ़) में हुआ। आपके पिता लाला प्यारेलालजी थे और माता रामदेई थी। शैशवकालमें ही आपके पिताकी मृत्यु हो गई थी, जिसकी बहुत कुछ पूर्ति आपके मामा महात्मा भगवानदीनने कर दी थी। आपकी उल्लेखनीय शिक्षा ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुराके पवित्र स्वतंत्र निष्ठामय वातावरणमें हुई, जिससे बालक जैनेन्द्र प्रखर मेधावी बने। सन् १९१९ में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें पढ़ने गये पर गांधीजीके असहयोग आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेकर जेल गये। असहयोग आन्दोलनने उन्हें राष्ट्र सेवा की दिशामें बढाया। कारागृहके कठिन कष्टोंको झेलनेके बाद आजीविकाके अभावमें आर्थिक समस्याओंसे संघर्ष करते रहे। फिर ममतामयी माँ और मामाके निर्देशनमें आपने साहित्य लेखनमें प्रवेश किया। लगभग साढ़े चार दशको तक साहित्य साधनाके बाद आज आपके काले अक्षर साहित्य साधनाकी दृष्टिसे स्व० गुलाबराय जीके शब्दों दुधारू गाय बन पाये हैं।

साहित्य समाज सेवा : जैनेन्द्रजीकी पहली कहानी खेल है जो सन् १९२८ में विशाल भारतमें छपी थी। इसके बाद तो आपने वातायन, नीलम देशकी राजकन्या, दो चिड़ियाँ, स्पर्द्धा, ध्रुवयात्रा, एक दिन एक रात, फाँसी, जय सिन्धु आदि कहानी सग्रह लिखे। आपकी कहानियाँ मनोवैज्ञानिक स्तर लिये प्राजल भाषामें लाक्षणिकताका निदर्शन है। परख नामक पहला उपन्यास आपने लिखा, जिसे सर्वप्रथम नाथूरामजी प्रेमीने प्रकाशित किया और जिसपर आपको अकादमीने ५०० रुपयोंका पुरस्कार भी दिया था। सन् १९३६ में आपने जो 'त्याग पत्र' उपन्यास लिखा, उसने हिन्दी जगत्में धूम मचा दी। उसकी नई टेकनीकसे स्व० राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त इतने प्रभावित हुए कि आपको रवि व शरद बाबूके समकक्ष मानने लगे। आपके इस उपन्यासका न केवल भारतीय, तामिल, तेलगू, मराठी, बंगला आदि भाषाओंमें ही अनुवाद हुआ बल्कि अग्रेजी, जर्मनी, अरबी भाषाओंमें भी अनुवाद हुआ। त्याग पत्रके २० वर्षोंमें २० सस्करण निकले। यह रचना और रचयिताकी महत्ताका द्योतक है। आज तो वह हिन्दीका कीर्तिस्तम्भ जैसा बना है। आपके अन्य उपन्यासोंमें कल्याणी, विवर्त, सुखदा आदि हैं। आपके कुछ उपन्यास धारावाहिक रूपमें साहित्यिक पत्रोंमें प्रकाशित हुए हैं।

कहानी और उपन्यासकी भाँति निबन्ध लिखनेमें भी जैनेन्द्रकुमारजी एक ही है। उनके अनेक निबन्ध भारतके सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंमें छपे हैं। जैनेन्द्रजीका दर्शन-चिन्तन अपने ढंगका अनूठा अद्वितीय है। गाँधी दर्शनको उन्होंने अपनी मौलिक दृष्टिसे परखा व जीवनमें प्रयोग किया। उनकी भारतीय वेशभूषा इस बातका प्रबल प्रतीक है कि उन्होंने आर्थिक संकट झेले पर साहित्यिक व समाज सेवासे मुख नही मोड़ा।

व्यक्तित्वका मूल्यांकन : जैनेन्द्रजीका व्यक्तित्व कुछ ऐसे जादू भरे तिलस्मी तन्तुओंसे गुँथकर बना है कि जिसमें उलझन-सुलझन, सरलता-जटिलता, अहंता-विनम्रता, आस्तिक-नास्तिक, अर्थी-दानी जैसे विभिन्न भावोंकी अभिव्यक्ति-सी प्रतीत होती है। बाबूजी एक अनबूझ पहेली बने हैं, साहित्य जगत्के समक्ष विशाल प्रश्न चिह्न सदृश हैं। जैनेन्द्रजी वर्षों एशियाई लेखन संघके सदस्य रहे। यूनेस्को साहित्य अकादमी जैसी साहित्यिक संस्थाओंसे सम्बद्ध रहे। चीनके प्रसिद्ध लेखक लुशुनके जन्म दिवसपर (जो अक्स-

राष्ट्रीय स्तरपर मनाया गया था) आप भारतसे पेकिंग गये थे। टाल्सटायकी ५०वीं पुण्य तिथिपर आयोजित-अन्तर्राष्ट्रीय लेखक समितिमें भाग लेनेके लिये आप भारतकी ओरसे वेनिसमें सम्मिलित हुए थे। आप सर्वोदयी विचारधाराके समर्थक हैं। उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द्रजी तो उन्हें भारतका मैक्सिम गोर्की मानते थे। जैनेन्द्रजीने प्रेमचन्द्रजीके मानस पुत्र हंसका भी सम्पादन किया था। आपकी प्रसिद्धिका कारण सत्यनिष्ठ जीवनके विविध अंगोंको छूने वाला सरल शान्तिमय तपोनिष्ठ व्यवहार है। सिद्धान्तवादी जैनेन्द्रजी कहानीकारके रूपमें मुमुक्षुकी भाँति अनन्त विश्वकी दीर्घ शृंखलायें खोलते हैं। बीसवीं शताब्दीके शीर्षस्थ प्रतिभाशाली साहित्यिक विद्वानोंमें जैनेन्द्रजीका नाम चन्द्रमा सा चमक रहा है।

●

डा० जगदीशचन्द्रजी

●

जन्मस्थान एवं जन्म तिथि : बम्बई २० जनवरी १९०९।

शैक्षणिक योग्यतायें · बौद्ध और जैनदर्शन विशेष अध्ययनके रूपमें *एम० ए० दर्शन* विषयसे। शास्त्री (संस्कृत) तथा 'जैन विधानके अनुसार प्राचीन भारतमें जीवन' विषयपर शोध प्रबन्ध लिखकर समाजशास्त्रमें पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। १९३२-३३ में शान्ति निकेतन (रवीन्द्रनाथ टैगोरकी विश्व-भारती विश्वविद्यालय) में शोध स्नातक रहे।

शिक्षकके क्षेत्रमें अनुभव एवं प्रतिभा :

रमनारेन रुया कालेज (बम्बई-विश्वविद्यालसे सम्बद्ध) में हिन्दी विभागाध्यक्षके पदपर लगभग ३० वर्ष प्रोफेसर रहे। जहाँ आपने स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओंके लिए संस्कृत और प्राकृत विषय भी पढ़ाये। १९६० से शोध स्नातकोंके निर्देशक और लगभग ८ स्नातकोंको उपाधियाँ दिलवायीं। १९५८-५९ में मुजफ्फरपुर (बिहार) के प्राकृत जैन इन्स्टीट्यूटमें प्राकृत और जैनदर्शनके शोध-निर्देशक। १९५२-५३ में पेकिंग (चीन) में भाषा विज्ञान एवं साहित्य विभागमें हिन्दी विषयके प्राध्यापक रहे।

साहित्यके क्षेत्रमें महती सेवायें :

आपने भारतीय दर्शन, अर्वाचीन भारतका इतिहास और संस्कृति, हिन्दी साहित्य, साहित्य-आलोचना, साहित्यिक जीवन परिचय, प्राकृत-अध्ययन, बाल साहित्य और कई शोध-लेखों तथा हिन्दी एवं अंग्रेजी भाषामें कई महत्त्वपूर्ण लेखोंको मिलाकर उक्त सभी विषयोंपर लगभग पचास पुस्तकें लिखी हैं। जिसमें ६ पुस्तकें पिछले तीस वर्षसे महाराष्ट्र प्रान्तके शिक्षा संस्थाओं व विद्यालयोंमें पाठ्य पुस्तकोंके रूपमे चल रही हैं। इसके अतिरिक्त आपने संस्कृत भाषाकी मूल पुस्तकोंका प्राकृत, पाली और अपभ्रंश तथा गुजराती, मराठी और अंग्रेजी पुस्तकोंके हिन्दीमें अनुवाद किये हैं।

आपकी कुछ पुस्तकें जैसे—'Life in Ancient India as depicted in Jain Canons' (अंग्रेजी), प्राकृत-साहित्यका इतिहास, पश्चिमी साहित्य समीक्षा एक सर्वेक्षण आदि विभिन्न विश्वविद्यालयों

द्वारा एम० ए० के लिए निर्धारित है। आपको 'प्राकृत साहित्यका इतिहास' ग्रन्थपर उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इसके अलावा विश्वविद्यालय अनुदान कमीशनके अन्तर्योजनामें एक पारितोषिक प्राप्त हुआ है।

आप १९७० सितम्बरमें अहमदाबाद विश्वविद्यालयके एल० डी० इन्स्टीटयूट आफ इण्डोलॉजी द्वारा आयोजित 'जैन प्राकृत साहित्यके विकास' विषयपर व्याख्यानमाला हेतु आपको सादर आमन्त्रित किया था। आप पश्चिमी जर्मनीके कील विश्वविद्यालयके इण्डोलोजी विभागमें उच्च अध्ययन एवं शोध हेतु गये थे।

●

पं० जयन्तीप्रसादजी शास्त्री

●

जीवन परिचय

शास्त्रीजीका जन्म २३ दिसम्बर १९२९ को बिलराम (एटा) उत्तर प्रदेशमें हुआ। आपके पिता श्री मुन्नीलालजी है व माताजी कर्पूरीदेवी हैं। आप अग्रवाल समाजके भूषण हैं। तीर्थ भक्त पं० जिनेश्वरदासजी शास्त्री आपके ममेरे भाई हैं। आयुर्वेदाचार्य पं० राजेन्द्रकुमारजी कुमरेश चन्देरो, आपके बड़े भाई है। इनके अतिरिक्त चार छोटे भाई और आपके परिवारमें हैं। ५ मार्च सन् १९४६ में प्रेमलता जैन से आपका विवाह हुआ। आपके दो पुत्र व पाँच पुत्रियाँ हैं। पुत्र, पुत्रियाँ सभी शिक्षाकी दिशामें बढ़ रहे हैं।

शिक्षा कार्य

आपकी आरम्भिक शिक्षा बिलराममें हुई। इसके बाद मथुरा, इन्दौरमे रहकर आपने शास्त्री, साहित्यरत्न किया। कुन्दकुन्द जैन हाई स्कूल खतौलीमें कार्य करते हुए आपने हाई स्कूल, इण्टरमीडिएट, बी० ए०, एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) किया। जैन चम्पू पर आपका शोध ग्रन्थ भी टंकित हुआ पर प्रस्तुतीकरणका प्रसंग अपरिहार्य कारणोंसे अब तक नही आया। आप धार्मिक क्रियाकाण्डमें भी निपुण है। आपने जैन पाठशाला नसीराबाद, अंकलंक जैन पाठशाला कोटा, कुन्दकुन्द जैन कालेज खतौलीमें अध्यापन कार्य किया व कर रहे हैं। आपने रायगंज मण्डी आलोद, सरधना, खतौली स्थानोंपर वेदी प्रतिष्ठायें कराई। शुद्धि विधान व सिद्ध चक्र विधान तथा शान्ति विधान भी समाजमें कराये। आपको रविवारके व्रतपर और चाँदनपुरके महावीरपर अखण्ड अपार आस्था है। आपने समाजमें अनेक विवाह कराये, यथावसर धार्मिक प्रवचन दिए फलतः समाजने अभिनन्दन पत्रोंसे सम्मानित कर आपको वाणीभूषण, व्याख्यान वाचस्पति पदों से विभूषित किया।

साहित्यिक सेवा :

पंडितजीने अनेक प्रतियोगिताओंमें भाग लिया, पुरस्कृत हुए। आपने लगभग ५० निबन्ध लिखे, जो अनेकान्त, जैन सन्देश, जैन गजट, खण्डेलवाल जैन हितेच्छु, अहिंसावाणीमें समय-समयपर प्रकाशित हुए। सम्राट् खारवेल, वीरदर्शन, भक्ति सुमन पुस्तकें छप चुकी हैं। संस्कृत जिनसहस्रनाम, जैन चम्पूकाव्य (शोध प्रबन्ध) प्रकाशनकी प्रतीक्षामें हैं। आप १९३६ से आज तक क्रमशः यदा-कदा लिखते ही रहते हैं। आप समाजमें स्वाध्यायके प्रचारके लिए बड़ा महत्त्व देते हैं। आपका विचार है कि—

१ अपनी परीक्षायें सर्वमान्य हों इसके लिए सर्वमान्य पाठ्यक्रम हो।

२. अन्तरजातीय विवाह होने लगे तो दहेज प्रथा रुके, विवाहमें व्यय भी अल्प हो।

३ जैन श्रीमन्त प्रतिज्ञा करें कि जैन युवकोंको कार्य दिलाकर ही रहेंगे।

पंडितजीके ये विचार वस्तुतः सामयिक ग्राह्य व काम्य हैं।

●

स्व० श्री जयभगवानजी एडवोकेट

●

श्री जयभगवानजीका जन्म ला० सुल्तानसिंहजी जैन पानीपत निवासीके घर १४ अक्टूबर १८९८ को हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा पानीपत में, इन्टर मिशन कालिज देहली तथा बी० ए० एवं एल० एल० बी० लाहौरसे प्राप्त की।

१९२० में आपका विवाह श्रीमती गुणमाला देवी से हुआ। आपकी प्रथम सन्तान श्री क्षु० जिनेन्द्र वर्णी हैं जिन्होंने अपने गुणों व कीर्ति के द्वारा माता पिता का नाम रोशन किया। दूसरे पुत्र श्री नरेश-कुमारजी कलकत्तामें ठेकेदारीका काम करते है। आपको तीन पुत्रियों का भी सुयोग प्राप्त है।

१९२४ से करनालमें वकालतका कार्य प्रारम्भ किया तथा पानीपतमें कोर्ट कायम होनेपर १९२७ से अन्त तक वहीं वकालत की प्रेक्टिस की। आपकी गणना उच्च कोटि के वकीलों में थी। १९४४ में एडवो-केट का लाइसेन्स प्राप्त हुआ था।

१९२० से ही आपको धार्मिक व ऐतिहासिक ग्रन्थोंके अध्ययनका शौक था। १९२३ में चातुर्मासके समय ब्र० शीतलप्रसादजीकी संगतिसे कई ग्रन्थोंका अध्ययन किया और तभी से सामाजिक कार्यों में भी दिलचस्पी लेने लगे। जैन हाई स्कूल की मैनेजिंग कमेटीके सदस्य बने और बहुत समय तक प्रेसीडेन्ट रहे। आपकी समाज, साहित्य, धर्म क्षेत्र में की गई सेवाएँ सदैव जैनपरम्परामें स्मरणीय रहेगी।

भा० दि० जैन परिषद् के आप प्रारम्भ से ही सदस्य रहे भा० दिगम्बर जैन संघके आप प्रारम्भसे मैनेजिंग कमेटीके सदस्य रहे। विश्व जैन मिशनके आप प्राण थे। उपरोक्त संस्थाओंकी नियमावलि आपने ही बनाई थी।

आप एक उच्चकोटिके विचारक व सुधारक थे। केवल रूढ़ीके आधारपर व्यक्ति व समाजके हितों की बलि चढ़ाने को कभी तैयार न थे। अतः आप रूढ़वादी न थे किन्तु द्रव्य क्षेत्र काल भावके आधारपर

हितोंका मूल्यांकन करते थे। तथा निर्भय होकर सुधारोंके तथ्योंको कह देते व लिख देते थे। धर्मके सिद्धान्तों तथा ऐतिहासिक तथ्योंके सम्बन्ध में भी वे युक्ति तथा प्राचीन व आधुनिक लेखकोंके मतोंको समन्वयात्मक दृष्टि से मन्थन करके अपना मत स्थापित करते थे। तथा उनमें अपने निजी अनुभवों को भी शामिल कर देते थे। इसका कारण यह था कि वे अनवरत स्वाध्यायशील थे।

मत विभिन्नता होते हुए भी लौकिक धार्मिक, सामाजिक तथा अन्य भी किसी क्षेत्र में वे किसी की भावनाओं तथा विचारोंका कभी निरादर नही करते थे। आप समन्वय व वस्तुस्थिति को स्पष्ट करने कराने का प्रयत्न करते थे।

●

पंडित जयकुमारजी शास्त्री

●

जीवन-परिचय समाजरत्न पंडित जयकुमारजी शास्त्रीका जन्म ९ नवम्बर १९११ को हुआ। आपने सत्तर्क सुधातरंगिणी दिगम्बर जैन पाठशाला सागरमें शिक्षा प्राप्त की। आप न्याय, व्याकरण, धर्मशास्त्रविद हैं। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, बँगला, गुरुमुखी भाषाओंके ज्ञाता हैं। आपने धवल, महा-धवल जैसे सैद्धान्तिक ग्रन्थों का आलोडन किया। आचार्य कुन्द-कुन्द व नेमिचन्द्र के सभी ग्रन्थो का पद्यानुवाद किया। राजेन्द्र सुमनके शब्दोंमें ४५ ग्रन्थोंका पद्यानुवाद किया।

आप प्रसिद्ध प्रवचनकार, अध्यापक, पत्रकार, कवि, टीकाकार हैं। आपने वीर शासन पाक्षिक पत्र निकाला। सन् १९२९-३० में आपने राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लिया। सेवाग्राम भी गये। शिक्षण संस्थाओंमें अनेक वर्षों तक अध्यापन करनेके बाद अब आप स्वतंत्र व्यवसायी बन गये हैं। आपने देहली, सागर, सिवनी, खुरई, जबलपुर, भोपाल जैसे अनेक नगरोंमें जाकर पर्यूषण पर्वपर धर्म प्रभावना की व अभिनन्दन पत्र पाये, जिनमें आपको वाणी भूषण, व्याख्यान वाचस्पति, समाजरत्न कहा गया।

●

वाणीभूषण पं० जमुनाप्रसादजी शास्त्री

●

जीवन-परिचय : वाणीभूषण पंडित जमुनाप्रसादजी शास्त्रीका जन्म संवत् १९१४ में खुरई में हुआ था। आपके पिता श्री रतीरामजी गल्लेकी माप तौल करते थे। और अपनी सुखसुविधा समाप्त कर किसी प्रकार बडा किया पर नव वर्षकी अवस्थामें ही पितृ सुख से वंचित हो गये। आपकी आरंभिक शिक्षा खुरई में हुई। इसके बाद आप कुण्डलपुरमें पं० खूबचन्द्रजीके समीप पढ़े। फिर इन्दौर में पं० वंशीधरजी एवं पं० जीवन्धरजीके समीप पढे। अनन्तर सागर विद्यालय में भी अध्ययन किया।

कार्य-परिचय : आप आगरा में प्राथमिक अध्यापक रहे, अनन्तर पाठशालामें शिक्षक रहे। इसी प्रकार टिकैतनगरमें प्राइवेट पाठशालामें धार्मिक व लौकिक विषय पढाते रहे। कटनीमें २४ वर्ष तक छात्रावासके गृहपति रहे व शान्ति निकेतन विद्यालयमें अध्यापक रहे। आपने बचपनमें राष्ट्रीय सेवा कार्य भी काफी किया। वीर निर्वाण संवत् २४९७ में जब बाराबंकी में १०८ मुनि श्री निर्मल सागरजीका चातुर्मास हुआ तब आपको अवधकी समाजने वाणीभूषणकी उपाधिसे सम्मानित किया।

स्वावलम्बन और अध्यवसायके बलपर पंडितजीने सारे दिगम्बर समाजको अपना परिवार बना लिया।

●

पंडित जम्बूप्रसादजी शास्त्री

●

जीवन-परिचय : सिंघई पंडित जम्बूप्रसादजी शास्त्री का जन्म ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी विक्रम संवत् १९७२ में मडावरा (झाँसी) उ० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री हरिसिंह जी जैन थे व माता सीता देवी थी। आपके पिताश्री सुयोग्यविद्वान्, सद्‌गुण सम्पन्न, प्रतिभाशाली जागीरदार थे। आपके बडे भाई भागचन्द्रजी सोंरया गृह विरत कार्यमें दक्ष है। आपके परिवार-में तीन भाई व तीन बहनें है। आपके मझले भाई स्व० श्रीमान् पं० सिंघई गुलझारीलालजी अपने समयके संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान् वक्ता थे। मौजीलालजी अच्छे आयुर्वेदविद् थे। सुन्दर-लालजी शास्त्री ने तो अनेक संस्थाओंकी सेवा में ही जीवन लगा दिया था। आपके भतीजे श्री विमलकुमार-जी सोंरया व श्री निहालचन्द्र जी भी बड़े उत्साही और धर्म-समाज सेवा भावी साहित्यिक विद्वान् है।

शिक्षा कार्य . आपने सभी शिक्षा हितवर्द्धनी दिगम्बर जैन पाठशाला मड़ावरा में ही प्राप्त की। आपके शिक्षा गुरुओं में पं० नाथूरामजी उर्फ सिद्धसागर जी, पं० सुन्दरलालजी शास्त्री, पंडित नन्दकिशोरजी न्यायतीर्थ रहे। आप आरंभ से ही अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि व प्रतिभा सम्पन्न थे। अकलंक सदृश एक बारमें

ही पाठ कण्ठस्थ कर लेते थे। आपने नेत्र विहीन होकर भी इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त की व यथावश्यक धर्म-समाज की भी सेवा की; विचारके इस बिन्दुसे आप वास्तवमें विद्वान्-विभूति बन सके। आप १९५२ से ही अखिल भारतीय विद्वत्परिषद् के सदस्य हैं। आपने अपनी पाठशाला में छह वर्ष तक अवैतनिक अध्यापकके रूपमें सेवायें दी। आपने अपने प्रवचनों द्वारा समाज-सुधार के लिए बड़ा प्रयास किया। समाजके साथ राष्ट्रीय कार्यक्रमों में भी आप कांग्रेस कमेटीके सदस्य बनकर सहयोग देते रहे। आप २० वर्षकी अवस्था से ही गद्य व पद्य में लिखने लगे थे। आपकी रचनायें दिगम्बर जैन, जैनमित्र, परवार बन्धु, जैन गजट आदि पत्रोंमें प्रकाशित हुईं। आपने परवार बन्धुमें एक गम्भीर लेख छपवाया था—दिगम्बर जैन मूर्तिपूजापर शंकाओंका समाधान। इसी प्रकार जिनेन्द्र पूजनके महत्त्वपर आपने जैनमित्रमें एक विस्तृत लेख माला लिखी थी। अभी कुछ समय पहले उपासक आचार विषयक एक निबन्ध मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ में भी आपने लिखा है जो आपकी प्रतिभाका प्रतीक है।

आपकी विद्वत्ता और कार्योंका मूल्यांकन करते हुए दिगम्बर जैन समाज मड़ावरा ने पूज्य श्री गणेश-प्रसादजी वर्णीके करकमलों द्वारा आपको सम्मानित किया था। आपके पिता श्री क्षु० गणेशप्रसादजी वर्णीके बालमित्रोंमें प्रमुख है। जिन्हें वर्णीजीने मेरी जीवन गाथा में लगुटया मित्रके रूपमें अनेक जगह स्मरण किया।

●

पं० जयकुमारजी शास्त्री

●

ब्रह्म० पंडित जयकुमारजी काव्यतीर्थ शास्त्रीका जन्म, आजसे लगभग अड़सठ बरस पहले हुआ। आपकी जन्म भूमि सिरगन (ललितपुर, झांसी) उत्तर प्रदेश है। आपके पिता स्व० वंशीरेलालजी बजाज थे। परिवार भरा-पूरा था; छह भाई थे (अब तीन हैं) आर्थिक स्थिति सामान्य थी। आपकी आरम्भिक शिक्षा स्थानीय जैन पाठशालामें हुई, आगे अध्ययन करनेके लिये आप सागर गये, वहाँ गणेशप्रसादजी वर्णी जैसे गुरु मिले, वहीसे काव्यतीर्थ और शास्त्री परीक्षायें पास की। आप अंग्रेजी गुजराती, हिन्दी, भाषायें जानते हैं। वर्तमानमें आपके एक पुत्र व एक पुत्री है। आपने मऊ (रानीपुर) में जैन पाठशालामें अध्यापकका काम किया। अनन्तर मऊमें कपड़ेका व्यवसाय किया। तत्पश्चात् सोनागिरि और मोरेना विद्यालयोंके लिये आशासे भी अधिक प्रचारकका कार्य किया। इसके बाद भवानीगंज, खातेगाँवमें काफी काल तक कार्य किया। एक दशक नीमच पाठशालामें पढ़ाया। श्री १०८ मुनि जयसागरजीकी प्रेरणासे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ले ली। पिछले दो वर्षोंसे अशोकनगरमें हैं। आप उच्चकोटिके अध्ययनशील सुलझे हुए विद्वान् हैं। स्वाभिमान और सौजन्यके स्रोत है। आगमके अनुकूल आचरण पर आपकी अधिक आस्था है।

आपके सैद्धान्तिक सामाजिक निबन्ध जैनदर्शन, जैनमित्रमें प्रकाशित हुए हैं। आपने अपने जीवनमें अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। सामाजिक जीवनमें आपको गृहस्थोंसे नहीं बल्कि मुनियोंसे भी संघर्ष करना

पड़ा। वेद-पूजा और शास्त्रस्वाध्याय आपके लिये अतीव अभीष्ट है। आप ज्योतिष और वैद्यक तथा मन्त्र-तन्त्रमें निपुण हैं। आप चाहकर भी आर्थिक असुविधाओंसे, अयाचक वृत्तिसे कोई पुस्तक समाजके लिये नहीं लिख सके हैं। अमीरोंकी अपेक्षा आप गरीबोंके अधिक समीप हैं। कर्ण दोषने आपकी उन्नति काफी कम कर दी पर फिर भी आप एडीसनकी भाँति अपनी दिशामें अविराम बढ़ रहे हैं। आप आत्मनिष्ठ जो हैं।

आपके सुपुत्र लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज' भी आपके पद-चिह्नों पर चलनेका प्रयास कर रहे हैं।

●

श्री जयकुमारजी 'जलज'

●

जीवन-परिचय : सुकवि श्री जयकुमारजी जलजका जन्म २ अक्टूबर, १९३४ को ललितपुर (झाँसी) उत्तर प्रदेशमें हुआ था। आपके पिता श्री सिंघई धन्नालाल जैन हैं। आपने प्रयाग विश्वविद्यालयसे एम० ए० किया और स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

कार्य परिचय : आपने महाविद्यालय बड़ौत, विश्व-विद्यालय प्रयाग, शासकीय महाविद्यालय सतना, रीवाँ, बरेलीमें अध्यापन कार्य किया। सम्प्रति महाविद्यालय रतलाम में हैं।

साहित्यिक सेवा : आपका सर्वप्रथम गीत कुमार पाशितके नामसे अमरभारतमें सन् १९४९ में छपा। आपने त्रिवेणी बुन्देल भूमि पत्रिकाओंका डा० रामकुमार वर्माके साथ सम्पादन किया। आपके कतिपय प्रकाशित ग्रन्थोंके नाम ये हैं—

१. सूरज सी आस्था (कविता-संग्रह) २. संस्कृत नाट्य शास्त्र एक पुनर्विचार (शोध ग्रन्थ) ३. तुम कहाँसे आये (जन्म विकास) ४. ऐतिहासिक भाषा विज्ञान . सिद्धान्त और व्यवहार क्रमांक २,३ पर अंकित पुस्तकें मध्यप्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत हैं। किनारेसे धारतक संस्कृत नाटक : आधुनिक दृष्टि पुस्तकें प्रकाशनकी प्रतीक्षा में हैं।

'जलज' अतीव सरल हृदय गम्भीर मनस्वी हैं। समय-समय पर समाज व धर्मकी सेवा करनेके लिये उत्सुक रहते हैं पर अनावश्यक रूपसे विवादोंमें नहीं पड़ते हैं। कवि सम्मेलनोंकी अपेक्षा कवि गोष्ठियाँ, आम सभाकी अपेक्षा विचार गोष्ठियाँ उन्हें रुचिकर हैं।

●

श्री जमनालालजी जैन साहित्यरत्न

●

जन्म विक्रमाब्द १९७९, पौष कृष्ण ३०,
दिनांक १८-१२-१९२२।
स्थान : वर्धा (महाराष्ट्र)।
पिता श्री चम्पालालजी।
जाति खण्डेलवाल, गोत्र बैद।
शिक्षा-उपाधि . साहित्यरत्न।

श्री जमनालालजीका जन्म एवं विकास एक साधारण परिवारमें हुआ। पिताका कपड़ेका व्यवसाय था, अतः छोटी वयमें ही पिताकी देखरेखमें कपड़ेकी दूकानपर काम सीखने लगे। १९ वर्षकी आयु तक पहुँचते-पहुँचते इनके पिताका निधन हो गया और साहित्यिक अभिरुचिके कारण कपड़ेका व्यवसाय बंद कर दिया। बादमें ये देशभक्त स्व० सेठ जमनालालजी बजाजके दियासलाईके उद्योगमें काम करने लगे और वहाँ इनको साहित्यिक विकास एवं राष्ट्रचिन्तनका अवसर मिला। सन् १९४४ में वर्धाके सुप्रसिद्ध समाजसेवी श्रीचिरंजीलालजी बड़जातेने आपको भारत जैन महामंडलकी ओर आकर्षित किया और सन् १९४७ से प्रकाशित होनेवाले मासिकपत्र जैनजगतका सम्पादन भार इन पर डाला। भारत जैन महामंडलमें मन्त्री तथा सम्पादकके रूपमें सुप्रसिद्ध समाजसेवक श्रीरिषभदासजी राकाके साथ सन् १९५५ तक कार्य किया। भारत जैन महामंडलके द्वारा इस अवधिमें अनेक प्रकाशन किये गये।

सन् १९५४में आप विनोबा-प्रेरित सर्व सेवा संघके प्रकाशन-विभागमें जुड़ गये। सन् १९५५ में यह प्रकाशन विभाग वर्धासे वाराणसी आया और तबसे आपने लगातार २० वर्षों तक सर्वोदय-विचारके प्रकाशन का कार्य किया। २० वर्षोंकी इस अवधिमें आपके तत्त्वावधानमें लगभग एक हजार रचनाओंका प्रकाशन हुआ। सन्त विनोबाकी सर्वधर्म समभावकी नीतिके अनुसार सर्व सेवा संघसे आपने 'महावीर वाणी' तथा 'समणसुत्तं'का प्रकाशन करवाया। समणसुत्तंके संयोजनमें तो प्रारम्भसे ही आप मुख्य भूमिकामें रहे। सर्वोदय-क्षेत्रमें आपका आचार्य विनोबाजी, श्रीदादा धर्माधिकारी आदि वरिष्ठ नेताओं और विचारकोंसे निजी सम्पर्क रहा है।

सन् १९७४ के प्रारम्भसे आप पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसीमें कार्यरत हैं। वहाँसे प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र श्रमणके सह-सम्पादक हैं तथा आजकल जैनागम पदानुक्रम अर्थात् जैन आगमोंके विशिष्ट शब्दोंका सन्दर्भकोश तैयार करनेमें संलग्न हैं।

श्री जमनालालजी प्रारम्भसे ही स्वतन्त्र चिन्तक रहे हैं। आपके लेख प्रायः पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहते हैं।

विश्वपुरुष जे० कृष्णमूर्ति की 'कॉमेंटरीज ऑन लिविंग' पुस्तकके हिन्दी अनुवाद 'जीवन-भाष्य' (पृष्ठ ४००) पर उत्तर प्रदेश सरकारने सन् १९७४ में आपको रु० २०००—०० का विशेष पुरस्कार प्रदान

किया है। इसी तरह भारत जैन महामंडलने आपकी नैष्ठिक समाजसेवाओंके उपलक्ष्यमें 'समाज-गौरव' के अलंकरणसे सम्मानित किया है।

रचना-परिचय

स्वतंत्र पुस्तकें—जीवनकी क्रान्ति, मानवताके मन्दराचल भगवान् महावीर, चैतन्य-चिन्तन, आदर्श विवाह-विधि आदि।

संकलन—धर्म और संस्कृति, समाज और जीवन, जो सन्तोंने कहा।

सम्पादन—१. गीता तत्त्वबोध (मूल० बालकोबा भावे)।

२. ब्रह्मसूत्र-भाष्य (मूल० बालकोबा भावे)।

३. जीवन-साधना (मूल० बालकोबा भावे)।

४. महादेवभाईकी डायरी (भाग १–१०) मूल—महादेव भाई देसाई

तत्त्वार्थसूत्र . विवेचन (पं० सुखलालजी), छन्दशतक (वृन्दावन दास)।

अनुवाद—बुद्ध और महावीर, जीवनभाष्य, विनोबाके प्रेरक पत्रांश, गांधीजी : जैसा देखा-समझा, धर्मसार, विनोबाके साथ मेरा बचपन आदि।

पत्रसम्पादन—जैनजगत (मासिक), वीर (साप्ताहिक), जैन सन्देश (साप्ताहिक), श्रमण (मासिक)।

श्रीजमनालालजी प्रसिद्धि या दिखावेकी लिप्सा-लालसासे दूर, अपनी रुचिके चिन्तन अध्ययन तथा लेखन-सम्पादनमें लगे रहते हैं। श्रमण संस्कृति एवं सर्वोदयविचारका समन्वय आपके चिन्तनका क्षेत्र है।

●

स्व० समाज-सेवाभावी जुगमंदिरदासजी

जीवन-परिचय : आपका जन्म सन् १९१२ में एटा उत्तर प्रदेशमें हुआ था। तेरह वर्षकी अल्प आयुमें ही आप नौकरीके लिये कलकत्ता आये। शिक्षा होनेपर भी जब आप अर्थाभावसे पढ़ नहीं सके तो आपने शास्त्र-स्वाध्याय और जन-सम्पर्कसे शिक्षा ली। सन् १९३० के स्वतन्त्रता संग्राम हेतु राजनीतिमें भाग लेने देहली आये। वहाँसे बंगाल गये। १९३४ के षड्यन्त्र केसमें गिरफ्तार हुए। विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनोंमें सक्रिय भाग लेकर भी आपने चरित्र, निष्ठा, धैर्यको सुरक्षित रखा।

कार्य परिचय . १९३७ से पुनः व्यापार शुरू किया। १९४० में पत्नीके शोकको शान्तिसे सहन किया। १९५३ में स्व० बाबू छोटेलालजीकी प्रेरणासे समाजसेवाकी दिशामें आगे बढे। सरल स्वभाव कार्य-निष्ठ होनेके कारण सेठ जुगमंदिरदासजी अनेक संस्थाओंके जन्म और जीवनदाता रहे। एकता और संगठन आपके जीवनके मूलमन्त्र रहे। स्टेनलेस स्टीलके बर्तनोंके उत्पादन कर्ता होकर आपने काफी कीर्त्ति कमाई। पद्मावती पुरवाल जैन डायरैक्टरीका प्रकाशन कर आपने अपनी निष्ठा, विद्वत्ता एवं कर्मठताका परिचय दिया। व्यक्तित्व-सौम्य मुखमुद्रावाले बाबूजी विद्वानोंके अनुरागी थे। आप पद्मावती पुरवाल जातिके भूषण थे। 'पद्मावती सन्देश' के जन्म और जीवनदाता आप ही थे। इस पत्रने आपके विषयमें विशेषांक निकाला था, जिसमें आपके पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय कार्योंका उल्लेख है।

●

श्री जगरूप सहायजी

जीवन-परिचय

जगरूप सहायजीका जन्म उम्मरगढ एटा उत्तर प्रदेशमें हुआ। आपके पिता श्री बहोरीलालजी हैं और माताजी मुन्नो देवी हैं। आपके पिताश्रीकी आर्थिक स्थिति साधारण थी पर बाबाजीकी समाजमें बडी प्रतिष्ठा थी। आपकी आरम्भिक शिक्षा जम्बू विद्यालय सहारनपुरमें हुई। अनन्तर माधव कॉलेज उज्जैनमें पढ़ते हुए हाईस्कूल व इण्टर किया। होल्कर कॉलेज इन्दौरमें एम० ए० (अर्थशास्त्र) का, विद्याभवन सासनीमें एम० ए० (अंग्रेजी)का अध्ययन किया। बी० आर० कॉलेज आगरासे एल० टी० किया। आपके परिवारमें दो भाई हैं। इनमेंसे राजेन्द्रकुमारजी हिन्दी संस्कृतमें एम० ए० शास्त्री हैं व

पी० डी० इण्टर कॉलेज फीरोजाबादमें ही संस्कृतके प्राध्यापक हैं। आपके ताऊ बनारसीदासजीने मरसल-गंजमें कई कमरे बनवाये।

कार्य-परिचय : सन् १९५३ से आप आज तक अध्यापन कार्य कर रहे हैं। विद्याभवन इण्टर कॉलेज सासनीमें अध्यापन करनेके बाद आप सन् १९५७ से आज तक पी० डी० इण्टर कालेजमें अध्यापन कार्य कर रहे हैं। आप पर्यूषण पर्वके अवसरपर फीरोजाबाद महेश्वर शिकोहाबादमें विशेष सम्मानित हुए। आप महात्मागांधी स्मारक ट्रस्ट जलेसर, मानसरोवर साहित्यसंगम फीरोजाबाद, वीर समिति उज्जैन, वर्द्धमान मंडल इन्दौरके सदस्य रहे। पद्मावती सन्देशकी स्थापनामें सहयोग ही नही दिया बल्कि आज कल उसके सहायक सम्पादक भी हैं। आपने जैन दर्शन, जैन सन्देश, जैन गजट, पद्मावती सन्देशमें अनेक निबन्ध लिखे। आपने अँगरेजीमें पाठ्यक्रमके अनुरूप कुछ पुस्तकें भी विद्यार्थियोंके लिये लिखीं।

●

स्व० सुकवि ज्योतिप्रसादजी 'प्रेमी'

●

जीवन परिचय प्रेमीजीका जन्म आश्विन कृष्णा दशमी सवत् १९३९ मे देववन्दमे हुआ था। आपकी आरंभिक शिक्षा स्थानीय जैन पाठशालामें हुई। स्वाध्यायके बलपर आपने हिन्दी-उर्दू मे गद्य-पद्य लिखनेमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। बाबू सूरजभानजीसे प्रोत्साहन पाकर आप शीघ्र ही साहित्य और समाज सेवामें लग गये थे।

साहित्य सेवा : हिन्दीमें जैन गजटमें आपकी कविताएँ छपी और जब उर्दू का जैन प्रचारक निकला तब आप उसके सम्पादक (सन् १९०८ में) बने। चार वर्ष तक इसका सम्पादन किया। अनन्तर जैननारी हितकारी पत्रिका निकाली। फिर 'जैन प्रदीप'को जन्म दिया उसके माध्यममे समाजमें अपूर्व जागृति पैदा की। उस जैसा पत्र अभी तक निकला नही। ऐसा बाबू माईदयालजीका अभिमत है। देश सेवाके विचारसे आपने उर्दू भाषामें पारस पत्र निकाला; जो अकाल मृत्युको (७ महीनेमें ही) प्राप्त हुआ। आपकी पुस्तकोंमें ज्योतिप्रसाद भजन माला व काया पलट उपन्यास उल्लेखनीय है।

समाज सेवा : आप महासभा, परिषद्, ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर, जैनेन्द्र गुरुकुल पंचकूलासे सम्बद्ध रहे। आपकी कुछ कविताएँ बहुत ही अच्छी हैं। दिगम्बर जैन महासभाने आपको जैन कवि उपाधि सन् १९०७ में दी थी। बाबू माईदयाल जी देहलीने 'ज्योतिप्रसाद' पुस्तक आपके विषयमें लिखी है। आपने द्वितीय विवाह नही कर ब्रह्मचर्यव्रतका पालन किया था। २८ मई १९३७ को आपने अंतिम साँस ली।

●

सिंघई जिनेन्द्रकुमारजी

●

जीवन-परिचय

सिंघई जिनेन्द्रकुमारजीका जन्म १९ जुलाई १९४१ को रेवाड़ीमें हुआ। आपके पिता श्री पं० सुखनन्दनजी शास्त्री हैं और माताजी यशोदा देवी। आप मूलतः बुन्देलखण्डके सम-गौरया ग्राम (छतरपुर) म० प्र० के निवासी हैं। घरमें शैक्षणिक वातावरण मिला तो आप सहज ही बी० काम, साहित्यरत्न, एम० जे० पी० एच० कर सके।

कार्य-परिचय

आपने स्वर्णकमल जैनजागरण और मूल्यांकन पत्र निकाले। हिन्दीके जैन साहित्यकार, भगवान् महावीर जीवन दर्शन, विहार जैन निर्देशिका पुस्तकें लिखी। आप पत्र-कार, सम्पादक और प्रकाशकके रूपमें देश व समाजकी सेवा करनेमें संलग्न हैं। आप स्थानीय एकसे अधिक संस्थाओंके सदस्यसे लगाकर मंत्री व उपाध्यक्ष हैं। आप विद्वत्परिषद व वर्णी स्नातक परिषद्के भी सदस्य हैं।

●

पं० जिनेश्वरदासजी शास्त्री

●

श्रीमान् पंडित जिनेश्वरदासजी निजानन्द शास्त्रीका जन्म आश्विन शुक्ला अष्टमीको वि० सं० १९५८ मे रामपुरमें हुआ। आपके पिताश्री पं० मथुरादासजी थे व माता श्री कस्तूरी देवी थी। आपके जन्मके समय परिवारकी आर्थिक स्थिति सामान्य थी। पिता जैन पाठशालामें अध्यापक थे पर बाबा धर्नासिह जी माने व्यापारी थे। आरंभिक शिक्षा घर पर हुई। अनन्तर प्लेगके प्रकोपसे जब भाई भाभी व पिता स्वर्गवासी हुए तब ममतामयी माँने आपके भावी जीवन पर विचार करके आपको बनारस भेज दिया। आप भी प्लेगके शिकार होते-होते बचे; कण्ठस्थ की गई, श्रद्धासे पढी गई पार्श्वनाथ स्तुति सहायिका बनी। आपके परिवारमें चाचा ब्र० रामप्रसादजी हुए, जिन्हे बनारसीदास जीका समयसार कण्ठस्थ था। आपकी बुआ जया देवी बाई ब्रह्मचारिणी थी। बनारसमें व्याकरण, काव्य सिद्धान्तका अध्ययन किया। अनन्तर मथुरा, इन्दौर, हस्तिनापुर, खुर्जामें अध्ययन किया। आपने वैद्यक व ज्योतिषका भी अभ्यास किया।

आपने रिवाड़ी गोहानामें अध्यापन कार्य किया। पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी व भागीरथजी वर्णी की प्रेरणासे समाज-सेवामें लगे। आपने अपनी सेवाओंके कारण राष्ट्रीय विद्यालय आगरा, आयुर्वेद शिक्षा केन्द्र पंजाब अहिच्छत्र रामनगर किलासे क्रमशः जैनधर्मभूषण, वैद्यशास्त्री तीर्थभक्त होनेके प्रमाण व अभि-नन्दन पत्र पाये। आपने फिरोजपुर, देवबन्द, अलवर, अम्बाला, सरधना, गुड़गांवामें भी अध्यापन कार्य किया। आजीविकाके लिए कपड़ा व चाँदीका व्यापार भी खुर्जा फिरोजपुरमें किया था। आपको बच-पनसे ही तीर्थक्षेत्रोंकी वन्दना का शौक रहा। नवीन निर्माणके स्थानमें जीर्णोद्धारको आप महत्त्व देते हैं। अहिच्छत्रके आप ३५ वर्षोंसे विशेष सदस्य हैं। आपकी ही भाँति आपके दोनों सुपुत्र समाज सेवाभावी हैं। बड़े पुत्र देवेन्द्रपाल नवभारत टाइम्समें साक्षिवाचक हैं। छोटे नरेन्द्रपाल माध्यमिक विद्यालय दिल्ली नगर निगममें कार्यरत हैं। ●

श्री जयप्रकाशजी

●

आप श्री जैनी इण्टर कालेज खेकडा जिला मेरठ (उ० प्र०)में सन् १९६५ से प्रधानाचार्यके पदपर रहकर जैन समाजकी महती सेवा करते आ रहे है। उच्च शिक्षित होनेपर भी जैनत्वके सभी नियमों जैसे रात्रिभोजन त्याग, चमड़ा, धूम्रपान आदिका त्याग कठोरतापूर्वक करते हैं।

आपका जन्म वि० सं० १९९० कार्तिक कृष्णा १३ को जिला मेरठके शबगा नामक ग्राममें एक समृद्ध जैन जमीदार परिवारमें हुआ था। आपके पिता श्री अंगूरचन्द व मातु श्री जैनमतीजी धर्मनिष्ठ थे। जैन कॉलिज बडौतसे बी० ए०, बी० टी० तथा मेरठ कालेज मेरठसे अंग्रेजीमें एम० ए० उत्तीर्ण किया। आप लेखन प्रिय अपने विद्यार्थी जीवनसे रहे। आपको आगरा विश्वविद्यालयने एक निबन्ध प्रतियोगितामें द्वितीय स्थान प्राप्त करनेके फलस्वरूप १५० रु०का पुरस्कार दिया।

१९५९-६३ तक जैन इण्टर कालेज बडौतमें अँग्रेजीके प्रवक्ता, एक वर्षके लिए टीकरी जैन इण्टर कॉलिजमें प्रधानाचार्य और अब खेकड़ामें इसी पदपर कार्यरत हैं।

समाजसेवाके क्षेत्रमे श्री महावीर जैन पुस्तकालय बड़ौतके चार वर्ष तक मन्त्री एवं जैन छात्रवृत्ति कोष मेरठके सहायक मन्त्री कई वर्ष तक रहे। वर्तमानमें जैन कन्या माध्य० स्कूल मडी बडौतके सचालनमे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। कालेजकी निकली पत्रिकाओंके आप सरक्षक हैं।

आपके जीवनमे सर्वश्री प० लीलाधर 'वत्सल', डा० प्रेमसागर जैन, डा० हरिश्चन्द्र जैन जैसे गुरुओ की छाप लगी है। आप कर्त्तव्यनिष्ठ, ईमानदार और धर्मनिष्ठ व्यक्ति है।

●

श्री जेठमलजी

●

श्री जेठमलजीका जन्म आजसे ७५ वर्ष पूर्व नरायणगढ जिला मन्दसौर मध्य प्रदेशमें हुआ था। आप कपड़ेके एक सफल व्यापारी हैं। आप बचपनसे ही कविता करने लग गये थे। आपको धामपुर उत्तर प्रदेशमें हुए एक जैन कवि सम्मेलनमें स्वर्णपदक भी मिला। आपकी लिखी एक पुस्तक आराधनामयी प्रकाशित हो चुकी है। तथा आपके आध्यात्मिक पदोंकी एक पुस्तक प्रकाशित होने वाली है। इसके कुछ पद सोनगढ़ स्वाध्याय मन्दिर द्वारा टेप किये गये है। जिन्हे आपने मधुर स्वरोंमें गाया है। आपने जैन शास्त्रों की मान्यताके अनुसार जैन रामायणकी रचना की। यह अप्रकाशित व अपूर्ण है। आज जैन शास्त्रोंके ज्ञाता एवं मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आपकी वक्तव्य शैली अनूठी है। आप आध्यात्मिक विषयोंमें बड़ी रुचि रखते हैं।

पं० जानकीप्रसादजी

पं० श्री जानकीप्रसादजी शास्त्रीजीका जन्म भादों शुक्लपक्षकी अष्टमीको विक्रम संवत् १९७३ में केरवाला (सागर) में हुआ था। आपके पिता श्री लोकमनलालजी थे जो कि गाँवके गणमान्य व्यक्ति थे। आपकी प्राथमिक शिक्षा कर्रापुरमें हुई। इसके बाद श्री गणेश दिगम्बर जैन महाविद्यालय सागरसे बनारस की संस्कृत विशारद तृतीय खण्डकी परीक्षा श्री पं० माणिकचन्द्रजी न्यायतीर्थकी सहायतासे पास की। इसके बाद आप शास्त्रीका भी अध्ययन करने लग गये।

आपने १९३६ में श्री गुलाबबाई दिगम्बर जैन पाठशाला भगवामें अध्यापन कार्य किया। आपने हीरापुर, पटना, मलहारगंज, कर्रापुर आदि स्थानोंपर धर्माध्यापकके रूपमें कार्य किया। परन्तु आपके बडे भाईका आकस्मिक निधन हो जानेसे आपने पिताजीके पास रहना उचित समझा व गाँवमें दूकान खोल ली। आपको समाज सेवासे अत्यन्त प्रेम है। जब भी समाजको आपकी जरूरत होती रहती हैं। आप सामाजिक धार्मिक कार्योंके सम्पादनमें सदैव अग्रणी रहते है। ग्राममें सिर्फ एक आपका ही घर है। आप ही श्री दिगम्बर जैन चैत्यालय कर्रापुरकी देखरेख करते हैं व धर्म प्रभावना करते है। वर्तमानमें आप सात्त्विक जीवन यापन करते हुए धर्म, समाज, स्वाध्यायमें सलग्न हैं।

धर्मनिष्ठ श्री जीवराजरावजी कोठाडिया

श्री जीवराजरावजी कोठाड़िया सोलापुर जैन समाजके उल्लेखनीय व्रती श्रावकोंमेंसे एक हैं। आपने पूज्य आदिसागरजी महाराजसे दूसरी प्रतिमाके व्रत धारण किये व आप उनका पूरी तरहसे निर्वाह कर रहे हैं। एव चारित्रमें आगे बढनेकी आपकी तीव्र अभिलाषा है। आपका लौकिक शिक्षण पूर्ण होनेपर भी धार्मिक विद्वानोंके प्रति आपके हृदयमें पूर्ण आस्था है। आपने स्वाध्यायके बलसे धर्मके ज्ञानको वृद्धिगत किया है। यदि कोई विद्वान् या पडित सोलापुरमें आवें तो आप उनका स्वागत करनेके लिए सबसे आगे रहते है। व्यापार कार्यमें प्रामाणिकता आपका ध्येय है। सहृदयता आपकी दिन प्रति बढती जा रही है। जैनधर्मकी प्रभावना व जैनधर्मके प्रचारमें आप सदैव अपना आर्थिक योगदान देते रहते हैं। धर्म प्रभावनाके कार्यमें आप अग्रणी रहते है।

आप एक सरल निरभिमानी, निरालस्य एवं सात्त्विक वृत्तिके हैं। आपकी दृष्टि विशाल एवं व्यापक है। आप उदार चरित्र एवं गुरु परम्पराके निष्ठावान सेवक हैं। व्यापार जगत्में रहनेपर भी आप सदैव धर्मचर्चा, तत्त्व चिन्तन, व विषय मननमें मग्न ही रहते हैं। आपका जीवन चरित्र एवं विद्वत्ता सब श्रावकोंके लिए अनुकरणीय है।

पं० जयनारायणजी

●

आप पानीपतके निवासी हैं। तथा आजकल सदरबाजार देहलीमें स्टैनलैस स्टीलके बर्तनोंके बड़े व्यापारी हैं। आप बड़े धर्मात्मा, ज्ञानी तथा कांचके मन्दिर देहलीके प्रबन्धक भी है। आप नित्यपूजन व शास्त्र स्वाध्याय करते हैं तथा जैन विद्वत् समितिके सदस्य भी हैं।

आप मुनियोंके परम भक्त है तथा देहलीमें मुनियोंका चातुर्मास करानेमे आपका विशेष प्रयत्न रहता है। आप प्रतिवर्ष सैकड़ों रुपयोंका दानकर अनेक पाठशालाओं, तीर्थक्षेत्रों आदिको आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। आप पार्श्वनाथ युवक मण्डलके अध्यक्ष भी है। सामाजिक तथा धार्मिक कार्योंमे व समाज सेवाके कार्योंमें सदैव आगे रहते है।

●

स्व० बैरिस्टर जुगमन्दरलालजी जैनी

●

ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी साहित्य सेवामें सहयोग देनेवालोंमें बैरिस्टर जुगमन्दरलालजीका नाम उल्लेखनीय है।

जैनीजीने शिक्षक और बैरिस्टर तथा राजकीय कर्मचारीके रूपमें देश और समाजकी जहाँ अभूतपूर्व सेवा की वहाँ आपने अवकाशका समय ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीकी साहित्य-साधनाके लिये भी दिया। आपने रोमन ला, जैनधर्मकी रूपरेखा पुस्तकें छपवाई। पचास्तिकाय, समयसार, गोमट्टसार (जीवकाण्ड), आत्मानुशासन, तत्त्वार्थाधिगमसूत्र आदि ग्रन्थोंका अनुवाद अंग्रेजीमें किया।

जैनीजीने १९०४ से अंग्रेजी जैन गजटका सम्पादन कार्य किया।

भारत जैन महामंडल जैसी असाम्प्रदायिक संस्थाको जन्म और जीवन दिया।

जैनीजी अपनी जातिका उद्धार करनेके इच्छुक थे। वे वात्सल्यभावकी मूर्त्ति थे।

●

स्व० पं० जिनेश्वरदासजी

●

आपका जन्म अग्रवाल समाजमें हुआ। आप सहृदय भावुक कवि थे। आपने दौलतरामजीके कुछ पदोंका उर्दू में अनुवाद किया। आपने सार्वजनिक दृष्टिसे एकसे अधिक नाटक लिखे।

आपकी जैनधर्म सम्बन्धी रचनाओंमें 'अंजना' नाटक उल्लेखनीय है पर दुर्भाग्य यह है कि वह अभी तक प्रकाशित ही नही हो पाया है। आपकी अन्य कृतियोंमें हुस्न अव्वल, हुस्नफितरह, सुबह सादिक हैं।

●

पं० जैनेन्द्रकुमारजी

●

जैनेन्द्रकुमारजीका जन्म आजसे लगभग चालीस बरस पहले हुआ। आपने गोपाल दिगम्बर जैन विद्यालय मोरेनामें अध्ययन किया। धर्मशास्त्रमें विशारद और बी० ए० तकका अध्ययन है। आपने १९५३-६२ तक पारसनाथ दिगम्बर जैन हायर सेकण्डरी स्कूल ईसरी बाजारमें अध्यापन कार्य किया। इसके बाद पन्नालाल दिगम्बर जैन विद्यालय फीरोजाबादमें अध्यापन कार्य कर रहे हैं। धर्म और समाजके सभी कार्यों-को आप बड़े उत्साहपूर्वक करते हैं।

●

श्री जमुनाप्रसादजी कलरैया

●

आप इतिहास प्रसिद्ध परिषद्के इटारसी अधिवेशनके सभापति रहे हैं। जैन समाजमें क्रांतिके अग्रदूत नामसे प्रसिद्ध हैं। दस्सा पूजाधिकार, अन्तरजातीय विवाह, जैनियोंके तीनों सम्प्रदायोंका एकीकरण, आदर्श सामूहिक विवाह आदि क्रांतियोंके जन्मदाता हैं। क्रान्तिकी कथनी और करनी दोनोंका समन्वय आपका जीवन रहा है। ये बैरिस्टरी जजकी कुर्सीपर पंचायत, सभाका पैंडाल, मित्रोंकी गोष्ठी यहाँ तक कि तूफानी दौरा या प्रवासमें भी क्यों न हो, इसी सामाजिक क्रान्तिके ताना-बानेमें जुटे रहते हैं। क्रान्ति पथके पाथिव कलरैयाजीकी नीति "अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न च दैन्यं न च पलायनं" की तो है ही, साथ ही साथ वे अपने क्रान्ति प्रोग्राममें कुछ कमीका समझौता पसन्द नहीं करते। बड़े-बड़े उद्योगपति, व्यापारी, धनिक, विद्वान् और पंडितोंका इनके साथ जीवनमें सम्पर्क हुआ, किन्तु इनपर उनका प्रभाव नहीं पड़ा, बल्कि उनको आपने अपने क्रान्तिके प्रोग्राममें अनुगामी बनाया है। आयुके कारण सरकारी नौकरीसे रिटा-यर्ड हैं, किन्तु आपके क्रान्तिके प्रोग्रामोंको देखकर जब आपके चेहरेकी ओर दृष्टि जाती है तो आप नवयुवक जँचते हैं। देवगढ़ अधिवेशनमें आपका एक-एक क्षण सामाजिक क्रान्तिके कार्यों और इसके प्रोगामोंका विचार-विमर्शमें ही गया। आपका परिचय, व्यक्तित्व और प्रभाव जैनसमाजमें व्यापक है। कलरैयाजी परिषद्की विभूति हैं, इनसे परिषद्-प्रगतिको अबतक बल मिला है और आगे भी मिलेगा।

●

सुश्री जया जैन

●

जन्म : ९ जून १९४२।

शिक्षा : एम० म्यूज, (१९६४) प्रयाग संगीत समिति, एम० ए० (हिन्दी) एवं एम० ए० (प्राकृत एवं जैन विद्या) १९७२ मगध विश्वविद्यालय-स्वर्णपदक प्राप्त।

शोध प्रवृत्ति : 'संत काव्यपर अपभ्रंशका प्रभाव' विषयपर पी० एच०डी० की उपाधि हेतु शोध

प्रबन्ध विचाराधीन प्रस्तुत किया जा चुका। 'प्राकृत कथाओंपर मगध विश्वविद्यालयमें एक अधिशोध प्रबन्ध एम० ए० (हिन्दी) के सन्दर्भमें प्रस्तुत किया था।

प्रकाशन : शोध पत्र—लगभग एक दर्शन शोध पत्र भारतके प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं जैसे जैन सिद्धान्त भास्कर, राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका, तीर्थंकर, सन्मति वाणी आदिमें प्रकाशित।

पुस्तकें : १. आध्यात्म काव्य द्वय—पाण्डेय रूपचन्द्रके हस्तलिखित आध्यात्मिक काव्योका सम्पादन २. संगीत शती।

गति विधिया (१) आरा, लखनऊ, वाराणसी आदि स्थानोंमें हुए कई प्रमुख अखिल भारतीय सगीत सम्मेलनोंमें सक्रिय भाग लिया।

उज्जैनमें २६ वें अ० भा० प्राच्य विद्या सम्मेलनमें भाग लेकर उसके प्राकृत एव जैन विद्या विभागमें गीत वीतरागमें सगीत तत्त्व विषयपर शोध-पत्र पढा।

(२) विद्वत्संस्थाओंमें सम्बद्धता : अ० भा० दि० जैन विद्वत्परिषद् एवं बिहार सरकार द्विवर्षीय सघन शिक्षण योजनाकी सदस्या एवं भोजपुर महिला परिषद् की महासचिव।

पुरस्कार : १९७२ में प्राकृत एवं जैन विद्या विषयमे सर्वोच्च स्थान प्राप्त करने एवं प्रतिमान अकोकी सस्थापनाके उपलक्ष्यमें मगध वि० वि० द्वारा स्वर्ण पदक प्राप्त। शिखर सेवा सदन मेरठ द्वारा आयोजित भ० महावीरपर अ० भारतीय प्रतियोगिता, अन्य भाषण प्रतियोगिताओं एवं निबन्ध प्रतियोगिताओंमें पुरस्कृत।

वर्तमान स्थिति : विगत दस वर्षोंसे बिहारके शान्ति निकेतन श्री जैन बाला विश्राम आराकी उप-प्राचार्या।

●

वैद्यराज पं० जयचन्द्जी आयुर्वेदाचार्य

●

आप भी फिरोजाबाद निवासी प्रसिद्ध वैद्य एवं विद्वान् हैं। धर्मशास्त्रके पारंगत एव कुशल वक्ता हैं। देशके प्रसिद्ध नगरोमें श्री पर्यूषण पर्वपर जाकर शास्त्र प्रवचन आदि करते हैं। अनेक मुनिराजो, त्यागियों एवं विद्वानोको अपनी शुद्ध औषधियों द्वारा औषधदानका शुभ-पुण्य लिया। कुशल समाज सेवक, धार्मिक प्रकृतिके भद्र पुरुष हैं।

●

श्री जिनेन्द्रप्रकाश जैन

●

मध्यमवर्गीय पद्मावती पुरवाल दि० जैन परिवारमें २६ जनवरी १९३७ को जन्मे श्री जिनेन्द्र प्रकाशजो एक उत्साही, शिक्षित एवं धार्मिक विचारोंसे ओत-प्रोत नवयुबक हैं। आपके पिता श्री दयाशंकर-जीका जैसा नाम है वैसा ही करुणासे परिपूर्ण संवेदन शील हृदयी पुत्र आपने समाजको प्रदान किया है।

श्री जिनेन्द्र प्रकाशजीने बी० ए०, एल० एल० बी० तक आगरा और दिल्ली विश्वविद्यालयोंमें शिक्षा प्राप्त की। १३ वर्ष तक रेलवे विभागमें सेवा की। आपकी कार्यपटुता एवं लगनशीलताके कारण रेलवे अधिकारी वर्ग आपसे बहुत प्रसन्न रहा। नौकरी छोड़कर आपने एटामें वकालत प्रारम्भ की और साथ ही अपने सुपुत्र चि० कुलदीप कुमार जैन बी० ए० की देखरेखमें १९६८ में करुणा प्रिन्टिंग प्रेसकी स्थापना की; जो कि आज उन्नतिशील दशामें निरन्तर गतिमान है।

करुण-भावनाओंका हृदयमें संचार होनेके कारण आपको पशु पीडाकी वेदना सताने लगी। आपके अनुज श्री विचित्र प्रकाश जैन बी० ए० एवं श्री पुष्पेन्द्र प्रकाश जैन भी आप ही के विचारों के हैं इन तीनों भाइयोंने चमड़ेका त्याग करानेका एक अभियान १९६६ मे प्रारंभ किया जो कि पूरी जैन समाजमें भली प्रकार समझा जा रहा है। आपकी प्रेरणासे ६० हजारसे अधिक व्यक्तियोंने अब तक चमड़ेकी वस्तुओंका त्याग करके प्रतिज्ञा फार्म भर दिये हैं।

श्री जिनेन्द्र प्रकाशजी एक संवेदनशील पत्रकार हैं। आपके सम्पादनमें १९६९ से करुणादीप पाक्षिक पत्रका प्रकाशन एटा से हो रहा है। आपकी तर्क पूर्ण शिष्ट भाषा युक्त लेखन शैली चित्तपर एक-दम प्रभाव डालती है। आपकी कवितायें करुण रस से परिपूर्ण होती हैं जिनमें पशुकी मर्मान्तिक पीड़ाका सुनने वालोंको बोध होता है।

आप एक लगनशील सामाजिक कार्यकर्त्ता है। आप १९७२ से अखिल भारतीय पद्मावती पुर-वाल दि० जैन पंचायतके महामंत्री पदपर कार्य कर रहे है। दि० जैन मुनि संघकी आहार-वैयावृत्ति विहार आदि की व्यवस्थामें आपका बड़ा योगदान रहता है।

●

स्व० ज्योतिषरत्न पं० जियालालजी

●

आप उन प्राचीन पण्डितोंमेंसे एक थे जिन्होने सोती हुई समाजको जगाया था। आपने धर्म और समाजके हितमे जो साहित्यिक कार्य किये, उनको अंकित प्रवृत्तियोमें मापा जा सकता है।

१ आपने जैन कल्पतरु कार्यालयकी स्थापना की।

२ जैन पंचाग सं० १९३४ से निकालना आरम्भ किया था।

३ सं० १९४१–५१ तक दो भाषाओंमें उर्दू और हिन्दीमे जैन प्रकाश पत्र निकाला।

४ १९५३–६० तक जियालाल प्रकाश निकाला था।

वर्तमानके अधिकांश जैन तिथि दर्पण आपके पंचांगोंपर आधारित होते हैं। आप आगमके ठोस विज्ञान एवं जैन धर्म और जैन समाजके कर्मठ सेवाभावी व्यक्ति रहे।

●

स्व० लाला जौहरीलालजी सर्राफ

●

जैन समाजमें प्रगतिशील सुधार सम्बन्धी साहित्य और विचारोंका प्रचार करने वाले लोगोंमें जौहरीलालजी सर्राफ देहलीका नाम उल्लेखनीय है। आपने एक दो नहीं पूरे ४० वर्षों तक लगन, परिश्रम, धैर्य, उत्साहसे नि स्वार्थ भावसे समाज सेवा की, विरोधोंका सामना किया।

आपने प्रगतिशील सुधार मूलक साहित्यका प्रकाशन करके अपने युगमें एक अतीव प्रशंसनीय कार्य किया। विवाह क्षेत्र प्रकाश, जैन जाति सुदशाप्रवर्तक, दान विचार समीक्षा, जैन धर्मकी उदारता जैसी पुस्तकें आपने ही छपवाई। अयोध्याप्रसादजी गोयलीय और ब्र० शीतलप्रसादजी तथा सव्यसाची द्वारा रचित साहित्यका भी प्रकाशन आपने कराया।

●

स्व० कविवर जगदीशरायजी

●

आपका जन्म संवत् १९०२ में अग्रवाल समाजमें हुआ। आप नागरी भाषाके साथ फारसी भाषाके भी अच्छे जानकार थे। आप जैन सिद्धान्तोंके ज्ञाता थे। ज्योतिष और रमलकी दिशामें भी आपकी गति-मति थी।

आपकी रचनाओंका सकलन 'जगदीश विलास' शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था, इसमें लावनी भजन गजल जैसी चीजें हैं।

कवि अपने युगका प्रतिनिधि होता है। विचारके इस बिन्दुसे ६१ वर्षके जीवनमें आपने जो कार्य धर्म व समाजके हितमें किया था वह आज भी अनुकरणीय है।

●

श्रीमती जीवन्धरा देवी

●

श्रीमती जीवन्धरा देवी उन महिलाओंमेंसे हैं जो विवाहके पश्चात् उच्च धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर समाज सेवामें लगी हुई है। आपका जन्म संवत् १९८७ में कार्तिक शुक्ला अष्टमीको हुआ। १४ वर्षकी आयुमें आपका विवाह श्री रामजीलालजी जैनके साथ हो गया। इसके पश्चात् आपमें धार्मिक शिक्षाकी ओर रुचि जाग्रत हुई। सन् १९६७ में राजस्थान जैन साहित्य परिषद् परीक्षालयकी धर्मालकार परीक्षा उत्तीर्ण की। तथा गोमट्टसार, पंचाध्यायी, प्रवचनसार, द्रव्यसंग्रह जैसे ग्रंथोंका गम्भीर अध्ययन किया। स्वाध्यायकी ओर आपकी विशेष रुचि रहती है। आप अच्छी वक्ता हैं तथा आध्यात्मिक प्रवचन करनेमें कुशल है। जयपुरकी कितनी ही सामाजिक संस्थाओंसे आपका सक्रिय सम्बन्ध है। सास्कृतिक कार्यक्रमोंमें भाग लेनेमें आप खूब रस लेती हैं। वर्तमानमें आप महिला जाग्रति संघ जयपुरकी सक्रिय सदस्य हैं।

●

श्रीमती जयवन्ती देवी

श्रीमती जयवन्ती देवीका जन्म ननौता सहारनपुरमें हुआ था। आपके पिता लाला श्री प्रभुदयालजी थे। जब आपकी उम्र दो वर्षकी थी प्लेगकी बीमारीके कारण आपके माता-पिताका देहान्त हो गया था। आपका लालन-पालन आपकी दादी माँ व बुआजीने किया था। आपकी दादी माँ एक धार्मिक प्रकृति व उच्चविचारों वाली महिला थीं। आपकी धार्मिक शिक्षा पंडित जुगलकिशोर मुख्तार व पूज्य बाबा भागीरथजी वर्णीके देखरेखमे वीरबाला विश्राम आरामें हुई। आपको बचपनसे ही पढ़ने व पढ़ानेका काफी शौक था। १६ वर्षकी अवस्थामें आपका विवाह श्री त्रिलोकचन्द्रजी वकील कैरानाके साथ हो गया। परन्तु ३१ वर्षकी अवस्थामें ही आपको अशुभ कर्मोंके उदयमे वैधव्य प्राप्त हुआ।

सन् १९३६ मे आपने सरसावामें एक पाठशाला खोली व आपने अध्यापिका कार्य किया। जिसमें कई महिलाएँ बालक बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करती थी। आप एक साप्ताहिक महिला सभा भी आयोजित करती थी तथा उसमें आप निर्भय होकर भाषण देती थी। इस प्रकार वहाँकी महिलाओंमें काफी जागृति हुई। आप जैन महिला परिषद्की सदस्या भी रही। तथा आपने स्थान-स्थानपर भ्रमण किया। झाँसी, मेरठ, सहारनपुर आदिमें सभाकी शाखाएँ स्थापित कराईं। आपने सरसावा, सहारनपुर, रामपुर, कैराना आदि स्थानोंपर पाठशालाएँ खुलवाकर धर्मप्रचार किया। आपने जैन महिलादर्श पत्रिकामें १० वर्ष तक सह-सम्पादिकाके रूपमें कार्य किया व कई लेख व कहानियाँ लिखीं। दरियागजमे जैन महिला आश्रम भी खोला जिसकी सहायतासे कई असहाय बहिने शिक्षित होकर अपने पैरोंपर खड़ी हुई। आप एक कुशल लेखिका व वक्ता हैं। समाज सेवाके लिये हमेशा तैयार रहती है।

स्व० पं० ठाकुरदासजी शास्त्री

●

शास्त्रीजी समाजके उन विद्वानोंमेंसे एक थे, जो एक ओर लौकिक शिक्षामें अग्रसर थे और दूसरी ओर धार्मिक शिक्षामें समुन्नत थे। शासकीय सेवामें रहते हुए भी उन्होने धर्म और साहित्य, देश और समाजके लिए जो कार्य किया, वह सर्वदा स्मरणीय रहेगा।

पंडित ठाकुरदासजीका जन्म तालबेहट (झाँसी) उ० प्र०में हुआ था। आपने धार्मिक शिक्षा शास्त्री तक जहाँ प्राप्त की वहाँ लौकिक शिक्षामें भी बी० ए० कर लिया। परिणामतः आप समाजपर आश्रित नहीं रहे और शासकीय सेवा अध्यापकके रूपमें करने लगे। पंडित कम बाबू अधिक होनेके कारण आप वस्तु-स्थिति बखूबी समझ समझा सके।

शास्त्रीजी बहु श्रुताभ्यासी और विद्याव्यसनी थे। जब गणेशप्रसादजी वर्णीके मनमें समयसारका एक प्रामाणिक संस्करण निकालनेकी बात ध्यानमें आई तो समयसारके दो अनुभवी विद्वानोंमेंसे एक आपको भी चुना। वर्णीजीने अपनी जीवनगाथामें भी आपका यथोचित उल्लेख किया है। अपनी उत्कृष्ट विद्वत्ता और आदर्श साहित्यिक अभिरुचिके कारण आपसे महाराजा वीरसिंह जू देव, पत्रकार बनारसीदासजी, यशपालजी जैन तक प्रभावित थे।

पंडितजी एक प्राणवान संस्था थे। दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पपौरा व वीर विद्यालयकी आपने अठारह वर्षों तक मन्त्रीके रूपमें सेवा की। स्व० राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी भी आपकी प्रेरणासे पपौरा पधारे थे। महाराजा वीरसिंह जू देव द्वारा संस्थापित साहित्य परिषद्के आप एक प्रमुख साहित्यकार थे। आपका हिन्दी संस्कृत अँग्रेजी व गणितपर असाधारण अधिकार था। एक बहुत बड़ी मात्रामें आपको श्लोक कण्ठस्थ थे। जैनधर्म और दर्शनके तो आप मर्मविद् ही थे।

"बाबूजीने धर्म-समाज तीर्थ-साहित्य एवं देशकी सेवामें असाधारण रूपसे तत्पर रहकर जिस निःस्वार्थ त्यागवृत्तिका परिचय दिया है उससे विद्वत्ता गौरवान्वित हुई है। आध्यात्मिक ज्ञान, तदनुकूल प्रवृत्ति और परोपकारकी प्रवृत्तिसे आपने अपने जीवनको समुज्ज्वल बनाकर बाबूजीने सभीके समक्ष आदर्श उपस्थित किया था। गृहस्थ धर्ममे रहते हुए, राजकीय सेवा कार्य करते हुए आपका आचार-विचार सदा आगमके अनुकूल रहा। भयंकर बीमारियों और कठोरतम कठिनाइयोंमें भी आपने चारित्र और संयमकी पूर्ण रक्षा ही नही कि बल्कि अन्य जनोंको प्रेरणा दी।"

●

स्व० पं० तुलसीरामजी

पं० तुलसीरामजीका जन्म कार्तिक शुक्ला दोज विक्रम संवत् १९६८ में हुआ था। आपके पिता श्री हीरालालजी सिंघई थे व माता श्री जानकीबाई थी। आप गोलापूर्व जातिके भूषण व सिंघई गोत्रज थे। आपकी धार्मिक व लौकिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपने लगभग बीस वर्षकी अवस्था तक दिगम्बर जैन मन्दिर बरौदिया कलासे प्राप्त शास्त्रोंका अध्ययनकर अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। आपने २५ वर्षकी अवस्थासे कविता करना भी प्रारम्भ कर दिया था।

आपका विवाह विक्रम संवत् १९९० में श्री काशीबाईजीके साथ हुआ था। आपके परिवारमें एक भाई एक बहन व दो पुत्र तथा एक पुत्री हैं। आजीविका चलानेके लिए आपने किरानेकी दुकान व सिलाई का कार्य किया था।

आपने स्वतन्त्र व्यवसाय करते हुए स्वतन्त्रता पूर्वक एकसे अधिक सामाजिक-धार्मिक कार्य किये। आपने बरौदिया कलामें धार्मिक पाठशाला इस दृष्टिसे स्थापित की कि बालकोंमें धार्मिक संस्कार पड़े, आपने पाठशालामें अपनी सेवाएँ दी। आपने पंचपरमेष्ठी विधानकी रचना सुन्दर प्राचीन छन्दोंमें की, जो प्रकाशित नहीं हुआ है और आपने गीत गुच्छा तथा संक्षिप्त पार्श्वनाथ चरित्र भी लिखा परन्तु अर्थके अभावके कारण आपकी ये कृतियाँ प्रकाशमें नहीं आ सकी हैं। सन् १९५६ में नवम्बर मासमें ४४ वर्षकी अल्पायुमें ही आपका स्वर्गवास हो गया।

●

स्व० पं० तुलसीरामजी

आपका जन्म अग्रवाल समाजमें संवत् १९१६ में हुआ था। आपने धर्मके साथ व्याकरण भी पढ़ा था। आपने अपने जीवनकालमें लगभग एक हजार पुरुषोंको धार्मिक ज्ञान दिया था। आपने भट्टारक सकल-कीर्तिके आदिनाथ पुराणपर आधारित इसी नामसे पद्यमें हिन्दी भाषामें रचना लिखी। आपका संवत् १९५७ में स्वर्गवास हो गया।

आपके पुत्र पंडित सागरचन्दजी सर्राफ भी अच्छे विद्वान् है। आशा है पंडितजी भी अपने पिताकी तरह धर्म व समाज तथा साहित्यकी सेवा करते रहेंगे।

●

पंडित ताराचन्द्रजी जैनदर्शनशास्त्री

पंडितजीके पिता श्री रामप्रसादजी मंगई निवासी है। यही आजसे लगभग पचपन बरस पहले आपका जन्म हुआ व प्रारम्भिक शिक्षा पाई। अनन्तर आपने स्याद्वाद विद्यालय बनारसमें अध्ययन किया। आपने बम्बई परीक्षालयसे धर्म-न्याय-साहित्य-शास्त्री किया, संस्कृत कॉलिज बनारससे जैनदर्शनाचार्य (पंचम खंड) किया। कलकत्तासे दिगम्बर श्वेताम्बर न्यायतीर्थ किया।

आपने काफी काल वीरसेवा मन्दिरमें अन्वेषण कार्य किया। आपको हिन्दी संस्कृतके साथ अंग्रेजी व मराठी भाषाओंका भी ज्ञान है। पिछले पन्द्रह-बीस वर्षोंसे आप नागपुरकी रात्रि पाठशालामें धर्म शिक्षक हैं व स्वतन्त्र कपडेके व्यवसायी हैं, एक दीर्घकालसे आप शास्त्र स्वाध्याय द्वारा समाजमे धार्मिक भावनाओं-का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

●

पं० तनसुखलालजी काला

परिचय : काला साहबका जन्म २ दिसम्बर १८७६ को डेह (मारवाड) में हुआ। आपके पिता श्री चन्द्रभानजी काला अपने समयके मान्य विद्वान् थे। उन्हे ग्रन्थोंके संग्रह करनेका बडा चाव था। वे प्रभावक वक्ता व व्यापारी थे। पंडितजीकी प्राथमिक शिक्षा अमरावतीमे हुई। मराठीमें भाषण व निबन्ध लिखनेमें आप पटु हैं। अपने समयके सभी विद्वानोंसे आप सुपरिचित हैं। आरंभिक शिक्षा समाप्त कर जब बनारसमें अध्ययन करने गये तब पूज्य वर्णीजी, पं० गजाधरलालजी, पं० खूबचन्द्रजी, श्रीलालजी, पं० उदयलालजी, कुमारम्भाजीसे परिचित हुए। बम्बईमें पंडित नन्दलालजी, पंडित रामप्रसादजीके सम्पर्कसे आर्ष मार्गके अनुगामी हुए।

कार्य : पंडितजीने तीन चार दशकों तक, श्री गोपाल दिगम्बर जैनसिद्धान्त महाविद्यालय मोरेनाका अवैतनिक मन्त्रीके रूपमें कार्य किया। आपने जैनमित्र, खण्डेलवाल, जैन हितेच्छु, जैनदर्शन, जैनबोधक आदि पत्रोंमें हिन्दी मराठीमें रचनायें लिखी। आप चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराजके प्रतिनिधि बनकर देहली गये थे। अमित प्रयत्नकर जनगणनामें जैनोंके लिये पृथक् खाना रखवानेमें समर्थ हुए थे अतएव देहलीकी गुणग्राही समाजने धर्म प्रभावक पंडितजीका सम्मान किया। आप नागपुर प्रान्तीय खण्डेलवाल जैन सभाके सभापति भी चुने गये थे। आपकी जैनदर्शन पुस्तक बड़ी लोकप्रिय हुई। जैन

सिद्धान्त संरक्षिणी सभाके भी आप वर्षों मन्त्री रहे। कुन्थुसागर ग्रन्थमाला व गोपाल दि० जैन महाविद्यालय मोरेनाके आप ट्रस्टी हैं।

संयम : आपने आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजीसे ब्रह्मचर्य व्रत किया। १०८ मुनि श्री चन्द्रसागरजीसे दूसरी प्रतिमाके व्रत लिए, आचार्य श्री १०८ शिवसागरजीसे कम्लूमें पाँचवीं प्रतिमाके व्रत लिये थे व उन्ही आचार्य श्रीसे लाडनूंमें सातवी प्रतिमाके व्रत लिये थे। पंडितजी ज्ञानके साथ संयमकी दिशामें भी बढ़े हैं, यह वास्तवमें बिद्वानों, श्रीमानों, सभीके लिये अनुकरणीय बात है।

आप एक वयोवृद्ध समाजमान्य प्रखर वक्ता व सेवाभावी हैं।

●

जीवबन्धु टी० एस० श्रीपाल

●

जीवन परिचय : जीवबन्धु श्री टी० एस० श्रीपालजीका जन्म ५ जुलाई सन् १९०० में तिरुप्पे रम्बूर नामक गाँवमें हुआ था। आपके पिताका नाम गुणपाल नैनार था और माताका नाम कुलन्दैयमाल था। इनके गाँवको अब अकलंक बस्ती कहने लगे हैं, शायद इसलिये कि यहाँ कभी अकलकदेवने बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ किया था और जैनधर्मका पुनरुद्धार प्रचार-प्रसार किया था। यदि टी० एस० श्रीपालजीको भी हम आजके युगका अकलक कह दें तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी।
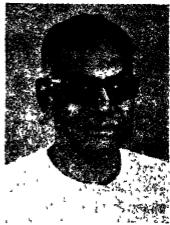
शिक्षा कार्य : श्रीपालजीने अपना विद्यार्थी जीवन काचीपुरम्मे बिताया। उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके बाद—आप गाँवके पंचायती विद्यालयमें अध्यापक हो गये। आपने जैनधर्मके तत्त्वोंका चिन्तन, तमिल साहित्यका अध्ययन कर विद्वत्ता बढाई। सन् १९२७ में मद्रासमें दक्षिण भारत जीवरक्षक प्रचार सभाकी स्थापना की। आपने इस सभाके माध्यमसे जीव-दयाका स्वर्णाक्षरोंमे लिखे जाने योग्य कार्य किया। आपने एकसे अधिक स्थानोके मन्दिरोंमे जाकर वलिदानकी प्रथाका ही बलिदान करा दी। बलि प्रथाको दूर करनेके लिये आप तमिलनाडके गाँव-गाँवमे घूमे। कविता-कहानी सुनाकर, नाटक दिखाकर, हृदय परिवर्तन करके आपने १८ वर्षोंके अथक श्रमसे तमिलनाडके अनेक मन्दिरोंसे बलिदानकी कुप्रथा सदैवके लिए समाप्त करा दी और इसीलिये सन् १९४३ में महावीर जयन्तीके पुनीत अवसर पर, अर्थ मन्त्री षण्मुखम् चेट्टियार की अध्यक्षतामे आपको 'जीवबन्धु' की उपाधि देकर सम्मानित किया गया।

जीवबन्धुकी उपाधि पाकर तो आपने और भी द्रुत गतिसे कार्य आरम्भ किया। आपने राज्यके मंत्रियों, विधान सभाके विधायकोंसे आग्रह किया कि जीवबलि बन्द कानून बनावें। सन् १९५१ में राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसादजी ने भी आये कानूनको स्वीकार कर लिया था। अगर जीवबलि बन्द कानून भारत संघ की सभी प्रान्तीय सरकारें स्वीकार कर लें तो अनेकानेक जीवोंको अभयदान मिले।

साहित्य सेवा

आपने जैनधर्मके महत्त्वको प्रदर्शित करने वाली अनेक पुस्तकें तमिल भाषामें लिखी। तमिल लेखक संघ और कवि संघके प्रधान रहे। आपने जैन धर्म इतिहास-पुरातत्व विषयक अनुसन्धान करके समाजको सुपरिचित किया। सन् १९६६ से आप अब तक आप जैनधर्म सम्बन्धित विषयोंपर भाषण प्रसारित करते रहे हैं। सन् १९६८ में मद्रास में जो विश्व तमिल सम्मेलन हुआ उसपर आपने एक ही विद्वत्तापूर्ण टिप्पणी लिखी। आपकी साहित्यिक सेवाओं और कार्य-कुशलताओंसे प्रसन्न होकर समाजने आपकी हीरक जयन्तीका उत्सव मद्रासमें उच्चस्तरपर मनाया। इसकी अध्यक्षता तमिलनाड विधान सभाके सभापति डा० कृष्णराव ने की थी। इस दिव्य अवसरपर आपका जीवन-चरित्र व कार्य स्मृति ग्रन्थ भी प्रकाशित किया था। आपने अपने साथ अनेक श्रेष्ठतम विद्वानोंके प्रवचनों का भी प्रबन्ध जैन धर्म व साहित्यके प्रचारके लिए किया। जैनधर्म विषयक अनेक भजन भी आपने लिखे व उनका प्रचार किया। आज कल सद्धर्म (नल्लाम) नामक तमिल मासिक पत्रिकाका संपादन कर रहे हैं। इस पत्रिकाके माध्यमसे आप सुप्त जीव-दया की प्रवृत्तिको पुन पनपा रहे हैं।

जीवन-साधना

१. तिरुप्पारम्बूर अपनी जन्म भूमिमें धर्मसागर स्वामि पुस्तकालय स्थापित किया। इसमें ३०० मुद्रित ५० ताडपत्रोंपर लिखित ग्रन्थ हैं। इसकी आर्थिक सहायतासे जिनानन्द (महावीरकी जीवनी) प्रकाशित हुई। इसी पुस्तकालयमें अनेक धार्मिक भाषण हुए, जो जनसाधारणके लिए सुरुचिपूर्ण सिद्ध हुए।

२. सन् १९२१-२५ में आप कांग्रेस महासभाके सदस्य बने। लोगोंमें स्वतन्त्रताकी चेतना जगाई। नेल्लि ग्राम पंचायतबोर्डके स्कूलके अध्यापक बने। अपनी कर्त्तव्यनिष्ठासे छात्रोंमें ख्याति प्राप्त की। नाटककार श्री मासिलामणिजी मुदालियारके लिये केवल आवास-भोजन की ही व्यवस्था की बल्कि गोखले मडपमें उनका नाटक भी करा दिया जब कि वे पूर्णतया हताश हो गये थे।

३. ताड़पत्रीय सामग्रीके आधारपर आपने धर्म परीक्षा धारावाहिक निबन्ध पेरियार साप्ताहिकके गणतन्त्र विशेषांकमें लिखा जिसकी बडी सराहना हुई।

४. जीव रक्षक पत्रिकाके माध्यमसे जीव वध रोकना चाहा, अहिंसाका प्रचार करना चाहा, जीव रक्षाकी दृष्टिसे बालसुन्दर व कलियुगका प्रहलाद नाटक लिखे, जो रंगमंचके अनुरूप होनेसे जनतामें अतीव लोकप्रिय हुए और जीवदयामें सहायक बने। एक बार जब आप भजन मंडली सहित जीव वध रोकने जा रहे थे तब मस्जिदके सम्मुख बाजा बजानेके अपराधपर कुछ लोगोंने आपके साथियोंपर प्रहार किया तो आपने साथियोंकी रक्षा के लिये मुसलमानोंसे संघर्ष किया, सफलता पाई।

५. धार्मिक वैमनस्य दूर करनेकी नियत से वेल पिक्चर्स कम्पनीवालोंको अय्यरकी जीवनीका चित्रपट न बनानेकी प्रेरणा दी। हिजमास्टर्स वायस कम्पनी कलकत्ता के जैन धर्म विरोधी रिकार्डका प्रचार रुकवाया, रिकार्ड जब्त कराये।

६ आयिरत्तम्मन मंदिरकी बलिको आपने रोका। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरूके प्रोत्साहन भरे तार दिखलाकर विरोधियोंका मुख बन्द किया।

७. तिरुत्तक्कदेव साहित्यानुशीलन समिति स्थापित की। इसमें अनेक विद्वानोंके भाषण तथा वार्षिकोत्सव हुए। जैन सम्प्रदायको विकृत सिद्ध करने वाली, कल्कि पत्रिकाके संपादककी दोनों कहानियों में से विवाद ग्रस्त भाग भी निकलवाये।

८. मदुराके श्रमण पर्वतकी सुरक्षाके लिये श्रमण पर्वत जाये पुस्तिका प्रकाशित की।

९. कांचीपुरम् के जैन समाजके सहयोगसे जीवक चिंतामणि व स्मृतिमंजरी पुस्तकें प्रकाशित कराईं। प्रो० ए० चक्रवर्ती नैनारके तिरुकुरल (अंगरेजी अनुवाद) के विमोचन समारोहका आयोजन भी आपने किया।

१०. जैन साहित्य शोध समितिका गठन किया। इससे लगभग १५-२० ग्रन्थ प्रकाशमें आये।

११. आपने महावीर जयन्ती दीपावली वृषभदेव मुक्ति दिवसपर विशेष आयोजन किये।

१२. निष्पक्ष निःस्वार्थ भावसे आपने अनेक विद्यार्थियोंको उनके पढ़नेमें सुविधायें दिलाईं।

१३. राजमणि पिक्चर्सको तिरुज्ञान सबंधर कथाका बोलपट बनानेसे इसलिए रोका कि यह जैन संघ धर्मपर आक्षेप मूलक थी। इसी कथाको आकाशवाणी मद्रासमे प्रसारित होनेकी बात सुनकर आपने निर्देशकसे आक्षेप मूलक अंश अलग करा दिए।

१४. एस० के० रामराजनकी कंबन और जैनधर्म शीर्षक कवितापर आपने उन्हें ऐसी और भी कवितायें लिखनेको प्रोत्साहन दिया, अभिनन्दन किया।

१५ चूलामणि ग्रन्थके रचयिता तोलामणि देवरका स्मृति-दिवस मनानेका प्रबन्ध किया। इस ग्रंथ का विद्वानों द्वारा प्रचार भी कराया।

१६ प्रधान मंत्री भरतवत्सलम्से मिल तीन जैन मंदिरोंके जीर्णोद्धारकी भी योजना आपने बनवाई।

१७. आपने विजयमंगलम् पुस्तकमे इस मंदिरके साथ अन्य भी मंदिरोंकी पर्याप्त आवश्यक जानकारी दी।

१८. तिरुज्ञान सम्बन्ध और तिरुना बुक्कसर कथापर आधारित नाटकोंको रंगमंचपर अभिनीत होने से पूर्व रुकवा दिया। कारण, ये दोनों कथाएँ जैनधर्म विरोधिनी थीं।

१९. तमिल संगीत सभामें जीवक चिन्तामणि नृत्य नाटिकाके आयोजनमें सहयोग दिया। सभीने जैनधर्म संगीत नृत्यकलाकी मुक्त कण्ठसे सराहना की।

२०. आपने अन्तर्राष्ट्रीय तमिल सम्मेलन मद्रासमे चर्चा की कि तमिल साहित्यकी उन्नति व श्रेष्ठता का मूलकारण जैनाचार्य हैं। द्वितीय अन्तर्राष्ट्रीय तमिल सम्मेलनकी प्रदर्शिनीके प्रकाशनमें भी आपने निबन्ध लिखा।

अद्वितीय-साधक :

जीवक बन्धुकी संक्षिप्त जीवन साधनापर दृष्टिपात करनेसे पता चलता है कि श्री टी० एस० श्रीपाल एक अद्वितीय साधक हैं। उन्होंने व्यक्तिगत रूपसे अपने धर्म और समाजकी सेवाके लिए वह कार्य किया है कि जिसपर आगामी लोग मुश्किलसे विश्वास कर सकेंगे।

●

स्व० कविवर पं० तुलसीरामजी

●

स्वनामधन्य कविवर पं० तुलसीरामजीका जन्म देहलीमे सं० १९१६ में अग्रवाल वंशके गोयलगोत्रमें हुआ था। बचपनसे आपकी रुचि जैन ग्रंथोंके मनन और अध्ययनकी ओर थी। सौभाग्यसे आपको संस्कृतके

विद्वान् पं० ज्ञानचन्द्रजीका सम्पर्क हुआ। उनके पास व्याकरण छन्द और सिद्धांत ग्रंथोंका अध्ययन चालू किया। थोड़े समयमें आपने गोम्मटसार, सर्वार्थसिद्धि, चर्चाशतक, समयसार, श्रुतबोध और सारस्वत व्याकरण आदि ग्रंथोंका अध्ययन कर डाला। धीरे-धीरे उनकी अभिरुचि बढने लगी व अधिकांश समय शास्त्रोंके विचार पठन-पाठनमें बीतने लगा। जिससे आप संस्कृत और भाषा ग्रंथोंके कुशल अनुभवी विद्वान् हो गये।

स्वाध्यायकी परिपाटी चालू हुई। उसी परिपाटीने कुछ ऐसी शैलियाँ प्रकट की जिनसे विद्वानोंकी संख्या बढ़ी। किसी समय दिल्ली, आगरा, जयपुर, अजमेर, कोटा और ग्वालियरकी शैली अधिक प्रसिद्ध रही। पण्डितजीके ज्ञानका विकास भी ऐसी शैलीके प्रभावके कारण ही हुआ।

दिल्ली भारतवर्षका हृदय है। बहुत समयसे विद्वानोंकी परिपाटी यहाँ लगातार होती चली आई है। पं० तुलसीरामजीका भी इसमें महत्त्वपूर्ण भाग रहा है।

जैनधर्मका प्रचार अधिकांशतया ऐसे उदार, निस्पृह, विवेकी, स्वावलम्बी सद्गृहस्थ विद्वानों द्वारा ही हुआ। जो आवश्यक समय आजीविकाके लिए निकालकर बचे हुए अवकाशमें दृढ़ अध्यवसाय और असाधारण उत्साहके साथ शक्तिभर कार्य करते रहे। पं०जीने भी जैनधर्मकी विभूति पाकर उसके आनन्दमें दूसरोंको भी आस्वादन करनेका पूरा-पूरा अवसर दिया। उनके धर्मप्रचारकी प्रवृत्ति बहुमुखी थी। वे स्वय कुशल वक्ता, चतुर व्याख्याता और ज्ञानगोष्ठीके लिए विशेष मर्मज्ञ थे।

जैन पाठशाला नया मन्दिर सेठ हरसुखराय सगुनचन्दजी जो दिल्लीके सभी संस्थाओंमे प्राचीन सस्था है उसके आप मन्त्री थे। सेठके कूचेके सरस्वती भण्डार और सामग्री भण्डारका प्रबन्ध आप ही करते थे। दोनों समय शास्त्र सभा करना, साधर्मी भाइयोंको प्रेरणा करके उनमें स्वाध्यायकी अभिरुचि जगाना, जिज्ञासु पुरुषोंसे तत्वचर्चा करना आपका दैनिक कृत्य था। उनकी प्रबल इच्छा रहती थी कि मेरे द्वारा ज्यादा से ज्यादा जनसमुदायमे जैनधर्मका ज्ञान फैले।

पण्डितजीके जीवनकी सबसे महत्त्वपूर्ण घटना अजैनोंको जैनधर्ममे दीक्षित करने की है। अपने अलौकिक गुणोंद्वारा अजैनोंमें जैनधर्मके प्रति श्रद्धा पैदा करना महान धर्म है और प्रभावनाका सर्वोत्तम गुण है। आपके सम्पर्कमे आकर कई व्यक्ति जैनधर्मके अनन्य भक्त हो गए। त्यागमूर्ति सौम्य हृदय बाबा भागीरथजी वर्णी उनमें प्रमुख हैं। पंडितजीने दीक्षा देकर एक श्लाघनीय और अत्यावश्यकीय कार्य किया। शुद्धि और दीक्षाके बिना जैन समाज सकीर्ण विचारोंके दलदलमे फँसी रहेगी। उसमें उदारता और कर्तव्य-निष्ठाकी भावना बलवती न होगी यह सभी जानते है। इसलिए आवश्यक है कि आप विद्वानोंको बिना किसी संकोच और भयके दीक्षाकी प्रवृत्ति चालू करना चाहिये जिससे जैनधर्मके तत्त्वज्ञानका यथार्थ फल सर्वसाधारण जिज्ञासुगण ले सकें और अपना वास्तविक हित कर सकें।

आपका व्यवसाय सराफेका था। 'तुलसीराम सागरचन्द' के नामसे आरंभमें चाँदनी चौकमे व वर्तमान में दरीबाकलामें फर्म है जिसपर बड़ी ईमानदारीके साथ काम होता है।

पं० जीकी प्रमुख रचना आदिपुराण है जिसे अपभ्रंश भाषामें पुष्पदंत आचार्यने बनाया और संस्कृतमें श्री सकलकीर्ति आदि भट्टारकोंने बनाया। उन्हींके आधारपर भाषामें दोहा, चौपाई छन्दोंमें आपने रचा है। ऐसे परोपकारी धर्मनिष्ठ महानुभावका ४० वर्षकी अवस्थामें सन् १९६५में स्वर्गवास हो गया।

●

डॉ० ताराचन्दजी बख्शी

●

डॉ० ताराचन्द्र जैन बख्शी —एम० एस-सी०, एल० एल० बी०, एन० डी० वाई, आर० ए० एस० का जन्म १० मई १९२० को जयपुरमें हुआ। सुपुत्र श्री केसरलालजी बख्शी। प्रारंभसे ही सामाजिक कार्यों में रुचि। जैन नवयुवक मंडल एव श्री महावीर क्लबके संस्थापक सदस्य एवं सन् १९३५ से १९४२ तक मंत्री रहे। सन् १९४३ में प्रथम श्रेणीमें एल-एल० बी० पास किया और बार कौंसिलके संयुक्त मंत्री बने। फिर जयपुर नगरपालिकाके कौंसिलर दो बार भारी बहुमतसे चुने गये तब आपकी आयु केवल २३ वर्ष होनेसे आप सबसे कम उम्रके कौंसिलर थे—सन् १९४५ में जे० जे० एस० परीक्षामें सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त होनेसे आप मुंसिफ मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए—और विभिन्न स्थानोंपर एस० डी० ओ०, डिप्टी कलेक्टर एवं कलेक्टरके पदोंपर कार्य किया। आपकी सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रवृत्तियोंमें बराबर रुचि बनी रही। आपने सन् १९४७ में प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग विज्ञानमें डाक्टरीकी उपाधि प्राप्त की। और सन् १९४८में जयपुरमें अ०भा० कांग्रेस महाधिवेशनके शुभावसरपर अ० भा० प्राकृतिक चिकित्सा सम्मेलनका आयोजन कराया, जिसका उद्घाटन श्री मुरारजी देसाईने किया था, उस सम्मेलनके आप स्वागत मंत्री थे। प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा तबसे आप नि.शुल्क स्वास्थ्य सेवा कार्य करते रहे हैं—सामाजिक क्षेत्रमें वीर संघके अध्यक्ष रहे। आपने अनेक पत्रोंमें सामाजिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख लिखे हैं। सन् १९६५ से आप 'वीरवाणी' पाक्षिक पत्रिकाके सम्पादक है। आप हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, बंगला, गुरुमुखी आदि अनेक भाषाओंके ज्ञाता हैं और संगीत तथा ज्योतिषका अध्ययन भी किया है। आप महावीर प्रचार समितिके माध्यमसे सभी जैन पत्रोंमें सामयिक विशेष समाचार भेजते रहते हैं। आप राजस्थान दि० जैन परिषद्, भारत जैन महामंडल (राज०), श्रीमहावीरके २५०० वें निर्वाणोत्सव समिति, राज० दि० जैन विद्वत् परिषद्, राज० जैन गणना समिति महावीर व्यायामशालाके मंत्री है। भाखरोटा जैन मंदिर कार्य समितिके अध्यक्ष हैं। श्री केसरलाल बख्शी सहायता कोषके मंत्री एवं जैन संस्कृत कालेजके संयुक्त मंत्री हैं। पं० चैनसुखदासजी स्मारक समिति एवं श्री जैन औषधालयकी कार्य समितिके सक्रिय सदस्य हैं। श्री दि० जैन मुमुक्षु मंडल जयपुरके प्रचार मंत्री है। श्री केसर पुस्तकालय, वाचनालयके सचालक तथा जैन विवाह सूचना केन्द्रके आप सयोजक है। अ० भा० जैन डायरेक्टरीके प्रकाशनका भरसक प्रयास कर रहे हैं, जिसके आप सम्पादक एवं प्रकाशक हैं।

●

श्री ताराचन्द्र 'मकरंद'

●

'मकरन्द'जीकी कविता प्रायः जैन-पत्रोंमें छपती रहती हैं। इनकी कविताएँ शैलीमें छायावादी ढंग की होती है। जहाँ कविताओंका अभ्यन्तर कुछ अस्पष्ट हो जाता है। वहाँ छायावादी शैली कवि और पाठक दोनोंके लिए बाधक हो उठती है। आशा है प्रगतिकी सीढ़ियोंपर दृढ़तासे पग रखते हुए 'मकरन्द' अभी आगे और बढ़ेंगे। प्रतिभावान साहित्यिकके रूपमें श्री मकरंदजी सदैव याद रहेंगे। ●

विदुषीरत्न श्रीमती ताराबाईजी

मड़ावरा नगरके स्वनाम धन्य स्वर्गीय सिंघई पण्डित गुलझारीलालजी सौंरया, अपने समयके ख्याति प्राप्त प्रतिष्ठित विद्वान् थे। संस्कृत और प्राकृत भाषाके तो वह अद्भुत विद्वान् थे। श्रीमती ताराबाई जी स्वर्गीय पं० गुलझारीलालजीकी ही ज्येष्ठ पुत्री हैं। आपका जन्म श्रावण शुक्ला १४ सं० १९८३ को रविवारके दिन हुआ था। माता पिताके सत्संस्कारोंका प्रभाव आरंभसे ही बहिन ताराबाईके ऊपर पड़ा, गृहकार्यमें कुशल, आतिथ्यमें निपुण विनम्र सरलस्वभावी आपके स्वाभाविक गुण हैं।

आपका पाणिग्रहण संस्कार ऐतिहासिक नगरी चन्देरीके सुप्रतिष्ठित समाजरत्न श्रीमंत चौधरी दयाचंदजीके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् चौधरी गुलाबचंदजी बजाजके साथ सं० १९९८ में माघ शुक्ला १३ को सुसम्पन्न हुआ था। धार्मिक कार्य तो आपके स्वाभाविक संस्कार हैं। यही कारण है आपके परिवारमें सदैव महत्त्वपूर्ण धार्मिक आयोजन धर्म प्रभावनाके साथ सम्पन्न होते आये हैं। स्वाध्याय आपका दैनिक और नियमित कार्य है। जैनागमका गहन अध्ययन और चिन्तन ही आपके विशुद्ध ज्ञानका कारण है। गत अनेक वर्षोंसे स्थानीय महिला समाजके बीच शास्त्र प्रवचन करना आपका अपना कर्त्तव्य रहा है। एक पुत्री और ६ पुत्रोंका सौभाग्य आपको प्राप्त है। ज्येष्ठ पुत्र चिरंजीव विजयकुमारजी चौधरी वर्तमानमें प्रथम श्रेणीके मजिस्ट्रेट है जो एक सुकवि एवं दार्शनिक चिंतक है। आप जैसी विदुषीरत्न समाज सुधारक महिला पर जैन समाजको गर्व है।

स्व० बाबू दयाचन्दजी गोयलीय

बाबू दयाचन्दजी गोयलीयका जन्म मौजे गढी अब्दुल्ला खाँ जिला मुजफ्फरनगरके एक मध्यम श्रेणीके अग्रवाल लाला ज्ञानचन्दके यहाँ मार्गशीर्ष शुक्ला पूर्णिमा संवत् १९४५ को हुआ था। आपने देहरादूनसे १९०७ में प्रथम श्रेणीमें एन्ट्रेंस, क्विन्स कालेज बनारस से एफ० ए० और महाराजा कालेज जयपुर से बी० ए० की परीक्षाएं अच्छे अंकोंमें उत्तीर्ण की थी। छात्रावस्था में देहरादूनमें ही सभा सोसाइटीजको देखकर आपके हृदयमें समाज सेवाके भाव जागृत हो गए।

तब आपने भी विद्यालयके छात्रोंकी एक जैन सभाकी स्थापना की। इन्ही दिनोंमें आप देहरादूनके ला० चिरञ्जीलालजी संस्थापक जैन अनाथाश्रमके सम्पर्कमें आए और उर्दू जैन प्रचारकमें लेख लिखने लगे। चूंकि बनारसमें स्याद्वाद पाठशालाके छात्रावासमें और जयपुरमें जैन शिक्षा प्रचारक समितिके वर्द्धमान जैसे बोर्डिंग हाउसमें रहते थे। वहाँके वातावरणसे आपको जैनधर्मके अध्ययनमें रुचि उत्पन्न हुई। पहले आपने ललितपुरमे अध्यापन कार्य किया और वहाँकी अभिनन्दन जैन पाठशालाके मन्त्री पदको ग्रहण कर उसको खूब उन्नति की। वे दिन आपके अर्थकष्टके दिन थे—अस्तु, आपने अध्यापन कार्य छोड कर वकालत करनेका विचार किया परन्तु पण्डित नाथूरामजी प्रेमी आदि अनन्य मित्रोंके विरोध करनेसे आपने वकालत करनेके विचारको त्याग दिया।

साहित्य सेवाके लिए यह एक अद्वितीय स्वार्थ त्याग था।

आप ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरकी प्रबंधकारिणी सभाके सदस्य थे। और आप ही उसके वार्षिक उत्सवोंपर चन्देके लिए अपील किया करते थे। भारत जैन महामण्डलके जीवदया विभागके आप मंत्री थे। आपने बहुतसे जीवदया उपयोगी ट्रैक्ट लिखे तथा प्रकाशित किए। आपकी जैन साहित्य तथा हिन्दी साहित्य सम्बन्धी ठोस सेवायें कभी विस्मृत न होंगी।

आपने जाति प्रबोधक मासिक पत्र द्वारा तीन वर्ष तक 'जैन समाजमें खलबली मचा दी। जीव दया सम्बन्धी, जैन धर्म सम्बन्धी तथा हिन्दी साहित्यके ग्रन्थ और ट्रैक्ट ४६ से अधिक लिखे हैं। निम्न प्रमुख हैं (१) बालबोध जैन धर्म (४ भाग) (सादगी, प्रगति, सदाचार और देश सेवाके भाव जागृत करनेवाली कृति) (२) शांति मार्ग (३) आत्म रहस्य (४) जैसे चाहो वैसे बन जाओ (५) मुक्ति मार्ग (६) विजयी जीवन (७) तन मन और स्थितिके प्रणेता मनुष्य (८) प्रातः काल और सायंकालके विचार (९) सुखकी प्राप्तिका मार्ग (१०) सन्तान पालन (११) अब्राहिम लिङ्कन (१२) मितव्ययिता (१३) पिताके उपदेश (१४) चरित्र-गठन (१५) स्त्री चरित्र गठन व मनोबल (१६) भारतीय शासन पद्धति (१७) सदाचारी बालक (१८) विद्यार्थी जीवनका उपदेश (१९) युवकोंको उपदेश (२०) शांति वैभव और (२१) अच्छी आदतें डालनेकी शिक्षा आदि।

अन्तमें कहना होगा कि आप जैसा निर्भीक लेखक, जोशीला वक्ता, सुयोग्य शिक्षक और निःस्वार्थ समाज सेवक बहुत ही सौभाग्यसे मिलता है। खेद है कि अक्टूवर सन् १९१९ में सिर्फ ३० वर्षकी आयुमें आप चल बसे।

इतने कम वयमें ऐसा महान् कार्य करनेके लिए महान् साधना, दृढ निश्चय अपार मनोबल और कर्मठताकी आवश्यकता होती है।

श्री दिगम्बरदासजी जैन एडवोकेट

●

जन्म

श्री दिगम्बरदासजीका जन्म ६ जुलाई १९०६ में सहारनपुर जिलाके सरसावा नामक ग्राममें हुआ। आपके पिताजीका शुभनाम श्री हेमचन्द जैन एवम् माताजीका झूमीदेवी था। आप अपनी छै माहकी उम्रमें ही पितृ हीन हो। आपके पिता एक बहुत बड़े दानी, धर्मनिष्ठ एवं समाज सेवी थे।

शिक्षा

शिक्षा ग्रहण करने हेतु आपको अपनी जन्मभूमि छोड़ कर अपने फूफाजीके घर बुड़िया जिला अम्बाला जाना पड़ा। आपकी प्रखर बुद्धिको देखकर दर्शक दंग रह जाते थे। आप युनिवर्सिटी पंजाबसे मिडिलकी परीक्षामें बैठे। ११ वर्षकी आयुमें आपने मिडिल पास किया जिसमें प्रथम रहे। १९२५ में वी० डी० हाईस्कूल अम्बालासे हाई स्कूल परीक्षा पास की जिसमें सर्व प्रथम रहे। आप हर वर्ष प्रथम श्रेणी प्राप्त कर पुरस्कृत होते आए। १९२६ में हाई कोर्ट इलाहाबादसे मुख्तारकारी की परीक्षामें १० हजार सहपाठियोंके साथ बैठे जिसमें एक हजार पास हुए और शीर्ष स्थान पुन: आपने ही अधिकृत किया। १९५८ में हाईकोर्ट बार कौन्सिलसे एड-वोकेटकी परीक्षा पास कर आप वकील बने।

जब आप मैट्रिकमें थे तभी आपका विवाह श्रीमती अंगूर माला जैन आत्मजा श्री रघुवीर सिंह जैनके साथ सम्पन्न हुआ। आपकी धर्मपत्नी अधिक पढ़ी लिखी न होनेपर भी बहुत अच्छी लेखिका एव वक्ता हैं।

प्रशंसा पत्र

आप अपनी प्रखर प्रज्ञाके बलपर एक नहीं अनेकों प्रशंसा पत्रोंसे छात्र जीवनमें ही विभूषित हुए। आपकी योग्यताका ज्वलन्त उदाहरण है कि आपने सिर्फ छ माहमें माल और फौजदारीकी दर्जनों मोटी-मोटी कानूनी पुस्तकोंका अध्ययन करके हाई कोर्ट इलाहाबादसे मुख्तारकारी और रेवेन्यू एजेन्टी दोनों परीक्षाएँ प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण कर सहारनपुरमें माल और फौजदारीमें अभ्यासारम्भ कर अल्प दिवसोंमें ही कलेक्टरेट बार सहारनपुरके प्रसिद्ध मेम्बरोंमें गिने जाने लगे।

वी० डी० हाईस्कूलके संस्थापक राय बहादुर ला० बनारसीदासके अनुसार, "इसके गाने देश भक्ति और समाज सेवासे भरे हुए हैं। पंजाबके शिक्षा मंत्री तथा अनेक महान् व्यक्तियोंके सम्मुख खेलते हुए मैंने इसे स्वयं देखा है। इसकी भाषा प्रभावशाली और प्लाट सुन्दर है। सबने इसकी प्रशंसा की है।"

हमदर्द-ए-मुल्क ड्रामेमें आपको सैकड़ों सम्मान पत्र प्राप्त हुए यहाँ तक कि समस्त संसारके प्रधान स्काउट सर रॉबर्ट बेडेन पावेलने लन्दन हेड क्वार्टरसे लिखा,

"इस ड्रामेसे आपकी शुभ भावनाएँ और देश सेवाके उत्तम विचार झलकते हैं। आपका यह उत्साह बहुत ही प्रशंसाके योग्य है।

इस तरह विद्यार्थी जीवनसे आज तकमें आपने जितनेकी कदम उठाए उनमेंसे हर कदम अनुकरणीय और पूज्य रहा। हर कदमपर आप शत-शत वन्दन, अभिनन्दन और सम्मान पत्रों द्वारा विभूषित होते हुए

आप जन साधारणके रोम-रोमको अनुप्राणित करते आये हैं। आपकी प्रतिभा और प्रज्ञा अपने कोटिकी अकेली है।

समाज सेवा

असहयोग आन्दोलनमें सहारनपुर निवासी सबसे प्रथम कांग्रेसी कार्यकर्त्ता श्री त्रिपाठीजी जब गिरफ्तार हुए तब आपने इन्हें मुक्त करानेकी कोशिश की। किन्तु जब चेयरमैनने उनकी आवाजको कमेटी तक पहुँचने ही न दिया तो आपने वाइस चेयरमैनीसे त्यागपत्र दे दिया और स्पष्ट लिख दिया कि जब यहाँ मुझे जनताकी माँगको अफसरों तक पहुँचानेका भी अवसर नहीं दिया जाता तो इसकी कुर्सीसे चिपटे रहनेसे क्या लाभ?

आपने सहारनपुर जैसे बड़े शहरमें जैन पुस्तकालयके अभावको दृष्टिगोचर कर कुछ सज्जनोंके सहयोगसे १० मई १९३१को पब्लिक जैन लाइब्रेरीकी नींव डाली जो आज समुन्नत परिस्थितिमें है।

वीर निर्वाण दिवस मनाने हेतु आपने प्रेमवर्द्धिनी सभा स्थापित की।

श्री पार्श्वनाथजीके रेलवे स्टेशनपर जो ऊँचा और उन्चकाय प्लेटफार्म आज दृष्टि गोचर होता है वह आपके उद्योगोंका ही परिणाम है।

द्वितीय विश्व युद्धमें आंग्लदेशपर जर्मनीने बम पात किया। आपके दोस्त रूडामल शामियानेवालोंके दामाद वहाँ रहते थे। वर्षोंसे उनकी कोई खबर न मिलनेपर उनके घरवाले बहुत दुखी हुए। आपने वाइसरायको पत्र लिखा। वाइसरायने वजीर हिन्द लन्दनको लिखा और हुआ यह कि प्रत्युत्तरके रूपमें लन्दनसे हाई कमिश्नरका पत्र आया कि, "हमने श्रीपालचन्दको अपने दफ्तरमें बुलाया था। वह बिल्कुल राजी खुशी है। हमने आपके पास उन्हें पत्र भेजने को भी कह दिया।" और कुछ ही दिनोंमें श्रीपालचन्दका पत्र और ३०००) भी आए।

वीरप्रभुके अनन्यभक्त

भगवान् वर्द्धमानकी पावनभक्तिसे आपका रोम-रोम अनुप्राणित अथच स्नात है। २८ अक्टूबर १९४० को वीर निर्वाणके उपलक्षमें आपने दैनिक उर्दू मिलापका सचित्र महावीर अक निकलवाया जिसे जैनोंने ही नहीं अपितु सबने माथेसे लगाया।

अद्वितीय साहित्यकार

Historicity of Rishabh Deve, लोक धर्मके अनमोलरत्न पं० टोडरमल, सम्मेद शिखर आदि की यात्रा, कालिज और स्कूलोंमें धर्म शिक्षा, श्रद्धाके फूल, श्री कृष्णकी गीता और जैन धर्म, भगवान् महावीर, वीरका निर्वाण, अजैन दृष्टिसे जैन धर्म, हिंग लगे ना फिटकरी और रंग चोखा आवे, भ० महावीर और दीपावली, दिव्य ध्वनि महात्मा गांधी और अहिंसा, अयोध्याजी, पैसेके चमत्कार, ॐ के चमत्कार, णमोकारके चमत्कार, संभवनाथ और सिन्धु घाटी, रघुवंश और जैन धर्म, ऐतिहासिक महापुरुष शान्तिनाथ, देव दर्शन, शान्तिनाथ तीर्थंकरकी ऐतिहासिकता और दूसरा चक्रवर्ती सम्राट् सगर आदि आपकी प्रकाशित कृतियाँ है।

अप्रकाशित कृतियोंमें (१) अशोक जैनधर्मी था (२) २४ तीर्थंकरोंकी ऐतिहासिकता (३) पुरातत्त्वका महत्त्व (४) विदेशोंमें जैनधर्म (५) विदेशोंमें जैन मूर्तियाँ (६) उत्तर प्रदेशमें जैन धर्म (७) मैसूर प्र० में जै० ध० (८) बिहार प्र० में जै० ध० (९) बंगाल प्र० में जै० ध० (१०) राजस्थान प्र० में जै० ध० (११) म० प्र० में जै० ध० (१२) पंजाब में जै० ध० (१३) गुजरातमें जैन धर्म (१४) उड़ियामें जैन धर्म (१५) देहलीमें जैन धर्म (१६) भरत और भारतवर्ष (१७) अकबर और जैन धर्म (१८) मथुरामें जैन धर्म आदि प्रमुख हैं।

●

पं० दयाचन्द्रजी साहित्याचार्य

●

जन्म

सागर जिलाके शाहपुर नामक स्थानमें ११ अगस्त सन् १९१५ को आपका जन्म हुआ। आपके पिताका नाम ब्रह्मचारी श्री भगवानदासजी भाई जी अध्यात्म वेत्ता एवं माताजीका नाम नाम श्रीमती भगवतीबाई "इन्द्राणी" था।

शिक्षा

आपने ९ वर्ष की उम्रमे प्रायमरी हिन्दी स्कूलकी परीक्षा उत्तीर्णकर १४ वर्षकी अवस्थामें धर्म व्याकरण, साहित्य, न्याय, विशारद तथा शास्त्री कक्षाएँ पास की। आप साहित्याचार्य तथा जैन दर्शन शास्त्री जैसी विभूतियोंसे विभूषित हैं। संस्कृत, हिन्दी, आँग्ल तथा प्राकृत भाषाओंपर आपका अधिकार है।

आप स्काउटिंगके एक श्रेष्ठ शिक्षक हैं।

शिक्षण कार्य

आप सन् १९३७ में श्री दिगम्बर जैन अकलंक विद्यालय बामोरामे प्राध्यापक नियुक्त हुए। १९४५ से आप श्री ना० दि० जैन विद्यालय बीनामें प्राध्यापक रहे। ४७ से ५० तक आप वर्णी गुरुकुल मढ़िया क्षेत्र जबलपुरमें प्राचार्य रहे तथा १९५० में आप श्री गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालयमें प्राध्यापक नियुक्त हुए जहाँ अब भी आप कार्यरत हैं।

सामाजिक कार्य

१९३५ में आपने शाहपुरमे वीर सेवा दलकी स्थापना की जिसका उद्देश्य छात्रों एवं युवकोमे धार्मिक प्रवृत्ति एवं सेवाभाव जागृत करना था। यह संस्था आज भी अपनी उन्नत दशा में है। १९३४ मे आपने कांग्रेसकी सदस्यता स्वीकृत की जिसके फलस्वरूप आपने स्वराज्य आन्दोलनमें भाग लिया। १९३५-३६ में आपने छात्र हितकारिणी सभा श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय सागरका संचालन किया। आपने जैन संस्कृतिके प्रचार तथा उसकी उन्नति हेतु अथक परिश्रम किया।

पारिवारिक जीवन

सन् १९४० में सागरके खुरई नामक स्थानके निवासी श्रीमान् रतीरामजी देगुडियाकी सुपुत्री सौ० ललिता देवी जैनके साथ आपका विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। श्रीमती ललिता देवी धर्मपरायण महिला थी। सन् ५८ में जब सन्निपातके कारण ललिता देवीका स्वर्गारोहण हो गया तबसे दयाचन्दजीकी कौटुम्बिक परिस्थिति अपूर्ण एवं असहाय हो गई।

रचनाएँ

आप समाज सेवी होने के साथ ही एक अनन्य साहित्योपासक भी हैं। अपनी छात्रावस्था में ही आपने "छात्र-हितैषी" पत्रका सम्पादन एवं प्रकाशन किया। अबतक स्वतंत्र मौलिक विषयोंपर आपके करीब ३० निबन्ध एवं अनेक कविताएँ प्रकाशित हो जन-जनके अन्तः प्रदेशमें प्रेरणा एवं स्फूर्तिका बीजा-

रोपण किया। आपके अनेक निबन्ध अभी अप्रकाशित हैं जिनमें 'विश्व तत्त्व प्रकाशक स्याद्वाद, महाव्रत और अणुव्रत, गुरु पूर्णिमा और उसका महत्त्व, जैन धर्ममें भगवत् उपासना, रक्षा बन्धन पर्वकी महत्ता और बाल गङ्गाधर तिलक आदि प्रमुख हैं। अप्रकाशित रचनाओंमें अमर भारती भाग १, २, ३, नामक पुस्तकें जो कि कक्षा ६, ७ एवं ८ को पाठ्य विषय हैं आपकी अनूठी रचनाएँ हैं।

इस तरह आप उच्चकोटिके विद्वान् एवं सफल स्काउट एवं व्यायाम शिक्षक, महान् समाज सेवक एवं निःस्वार्थ राष्ट्रीय नेता, अनन्य साहित्य-पुजारी हैं।

●

श्री दौलतरामजी मित्र

●

मित्रजी प्राचीन साहित्यकारोंमेंसे एक हैं। लगभग पचास वर्षोंसे वे पत्र-पत्रिकाओंमें लिख रहे हैं। उनका अध्ययन-अनुभव-अभ्यास विशाल है। उनका संक्षिप्त परिचय देनेका विनम्र प्रयास आगेकी पंक्तियोंमें किया जायेगा।

जीवन-परिचय

श्री दौलतरामजी मित्रका जन्म फाल्गुन कृष्णा षष्ठीको वि० सं० १९४७ में हुआ। आपके पिता श्री नैनमुखजी थे और माता श्रृंगारबाई थी। आपकी जन्म-भूमि गरोठ (म० प्र०) है। आप धर्मसे दिगम्बर जैन है और जातिसे बघेरवाल हैं। आपकी माताजीका बचपनमें ५ वर्षमें ही स्वर्गवास हो जाने पर भी आपके पिता श्रीने आपके जीवनकी सुरक्षाकी दृष्टिसे दूसरा विवाह नही किया, जिसमे आप प्रभावित हुए। तेरह वर्षकी अल्पायुमें आपने जहाँ प्राथमिक शिक्षा समाप्त की वहाँ एकसे दो भी विवाह करके हो गये और सत्रह वर्षकी आयुमें सात रुपये मासिक नौकरी करने लगे तथा उन्नीस वर्षमें सुपुत्री कस्तूरीबाईके पिता बन गये। आर्थिक कठिनाई दूर करने इन्दौर आ गये।

२४ वर्षकी अवस्थामें जब द्वितीय पुत्रीका जन्म हुआ तब वह अपने साथ ही अपनी माँको भी पृथ्वी से स्वर्गमें लेती गयी। प्रथम पुत्रीका पालन मान्य भाभी ज्ञानचन्द्रिका भूरीबाई तथा भाई केशरीमलजीने किया। २५वें वर्षमें दूसरा विवाह किया तो पुत्रके जन्मके समय द्वितीय सहधर्मिणी भी चल बसी और नव मास बाद पुत्र भी अपनी माँके मार्गपर चला गया। लगभग ३५ वर्ष तक नौकरी की। जब मासिक वेतन लगभग २१० रुपये मिल रहा था तब ही स्वेच्छासे अवकाश ही नही लिया बल्कि पाँच हजार रुपयेका परिग्रह परिमाण व्रत रखकर शेष धनराशि सहायतार्थ दे दी। आप ५० वर्ष तक इन्दौरमें रहे और बादमें भानपुरामें आ गये व वही अभी है।

ज्ञान संकलनकी प्रेरणा

जब बाल-विवाहके कारण साथी चिढ़ाने लगे तब आप पिताजीके साथ मन्दिर जाकर शास्त्र पढ़ने

लगे। ३५ वर्षमें गद्य-पद्य लिखने लगे। 'विचार पुष्पोद्यान' शीर्षक पुस्तिकामें १५०० आदर्श वाक्योंका संकलन किया। आपकी यह ज्ञान सकलनकी प्रेरणा आज भी आपकी कृतियोंमें दृष्टिगोचर होती है।

आदर्श के साथ यथार्थ

परोपकारका आदर्श बतलाने वालोंकी कमी नहीं है पर आदर्शके साथ यथार्थका समझौता करानेका प्रयत्न करनेवाले कम ही हैं। आपने दो फण्ड ऐसे स्थापित किये जिनसे समाजकी आर्थिक अवस्था सुधरी, वे ये हैं :

१. दिगम्बर जैन विद्यार्थी सहायक कोष

२. केशरीमल बघेरवाल दिगम्बर जैन सहायता कोष।

चूँकि आपको चाँदी, सोने, जवाहरात सम्बन्धी अच्छा ज्ञान है अतएव आपने परिचित लोगोंको अपने ज्ञानका लाभ निःशुल्क निष्काम भावसे दिया। आप आजीविकाकी दृष्टिसे सर्वदा शुद्ध धनकी लालसा करते रहे। मनुस्मृतिकारके शब्दोंमें योऽर्थशुचिः स शुचिः विचारते रहे पर कुछने आपको ठग भी लिया। एक तो हीन संहनन और उसमें भी विकृति (बीमारी) अतएव आप चाहकर भी चारित्र (संयम) स्वीकार नहीं कर सके फिर पाक्षिक श्रावक जैसे व्रत आप ग्रहण किये हैं।

●

पंडित दयाचन्द्रजी शास्त्री

●

जीवन-परिचय

न्यायतीर्थ पंडित दयाचन्द्रजी शास्त्री उज्जैनका जन्म पौष शुक्ला सप्तमी वि० सं० १९६७ में विदवासन (सागर) मध्यप्रदेशमें हुआ था। आपके जन्मके समय अँग्रेजोंका शासन था। जीवनोपयोगी वस्तुओंकी बहुलता थी पर अर्थाभावके कारण जन-जीवन अस्तव्यस्त ध्वस्त त्रस्त था। आपके पिता श्री चिमन-लाल गाँवमें लेन-देन दुकानदारी करते थे। आपकी माता भाग-वतीबाई थी। आपके माता-पिता धार्मिक प्रकृतिके थे उन्होंने दीर्घायु पाई। आप पाँच बहनोंमे एकमात्र पुत्र थे, अतएव सभी का आपपर अपार अनुराग रहा। आपके पिता श्रीकी मृत्यु दर्शन कथा सुनते-सुनते हुई, आप उस समय मुंगावलीमें धर्मशिक्षक बन गये थे।

बचपन-शिक्षा

पंडितजीका बचपन अनेक दुर्घटनाओंका केन्द्र रहा। एक बार आप पानीमें डूबनेसे बचे तो दूसरी बार आपके दोनों पैरोंमें नागिन लिपट गयी और तीसरी बार आप प्राणान्तक मोतीझरा व चेचकके प्रकोपसे बचे तो चौथी बार काफी ऊँचाईसे गिरा सिरपर पैना पत्थर खाकर भी सकुशल सुरक्षित रहे, जिसे आपने प्रबल पुण्य कर्मका फल जीवन ही समझा। पंडितजीकी प्रारम्भिक शिक्षा उस मालथौनमें हुई जहाँ

अनेक पंडितोंसे जन्म और जीवन पाया (उदाहरणके लिए, पंडित पन्नालालजी, शिखरजी, पं० किशोरी-लालजी टीकमगढ़, प० मुन्नालालजी इन्दौर (प्रतिष्ठाचार्य), पं० क्षेमंकरजी बड़वानी, पं० मूलचन्द्रजी महावीरजी, पं० कुन्दनलालजी सिवनी, पं० भुवनेन्द्रकुमारजी खुरई, पं० निर्मलकुमारजी सनावद पर्याप्त होंगे। सन् १९२३में पंडितजी सर से० हु० दिगम्बर जैन महाविद्यालयमें पढ़ने लगे। अपने विद्यार्थी जीवन-कालमें पंडितजीने दरबारीलालजी सत्यभक्तको स्वच्छन्द विचारोंके कारण संस्थासे पृथक् होते देखा व सर सेठ सा० को अपनी महत्वाकांक्षाके अनुरूप पं० वंशीधरजीको महाविद्यालयमें प्रधानाध्यापक पदपर प्रति-ष्ठित होते देखा। पंडितजीने देखा कि सामाजिक उपेक्षा और आजीविकाकी असुविधा देखकर अब विद्यार्थियोंकी मनोवृत्ति बदलने लगी।

कार्य-क्षेत्र

सन् १९३२में आपने न्यायतीर्थकी उपाधि प्राप्त की और स्व० पं० इन्द्रचन्द्रजी शास्त्री, स्व० पं० अनन्तराजजी और स्व० पं० रतनचन्द्रजी न्यायतीर्थके साथ ही विद्यालय छोड़कर समाज-सेवाके कार्य-क्षेत्रमें अग्रसर हुए। सौभाग्यसे आपको विमलाबाई जैसी विदुषी पत्नी मिली। आपके एक पुत्री शकुन्तला हुई जिसने बी० ए० तक शिक्षा पाई और जिसे जैन समाजके सुप्रसिद्ध लेखक स्व० चम्पालालजी सिंघई पुरन्दरकी पुत्र-वधू बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा जो आज दो पुत्रियों व एक पुत्रके साथ सानन्द झीलोंकी नगरी उदयपुरमें जीवन व्यतीत कर रही है।

आपने कटंगी मुंगावलीकी धार्मिक पाठशालाओंमें लगभग ९ वर्षतक कार्य किया। सन् १९४२में आप उज्जैन आ गये। हेमराज धन्नालाल दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउसमें गृहपति बन गये। आपके आते ही विद्यार्थियोंकी संख्या २५ से ६० तक हो गई। यहाँ आपने १३ वर्ष तक कार्य किया। यहाँसे अनेक विद्यार्थी विद्वान् बनकर निकले, उच्च पदोंपर प्रतिष्ठित हुए, एक मुंगावलीके दुलीचन्द्रजी तो डी० फिल० होकर शोधकार्य हेतु अमेरिका भी गये। पंडितजीने अपने श्रेष्ठ आचरणसे विद्यार्थियोंको यह अनुभव ही नही होने दिया कि वे अपने घरमें नहो बल्कि परदेशमें हैं। छात्रावासमें छात्रोंके हेतु आपने वीर समिति स्थापित की। सन् १९५४ में जब आपने व्यक्तिगत कारणोंसे बोर्डिंग हाउस छोड़ दिया और कही अन्यत्र जानेका विचार किया तब उज्जैनके गुणग्राही समाजने आपको नही जाने दिया। समाजने नवोदित विद्यालयमें कार्य करनेके लिए कहा तो आपके सत्प्रयत्नोंसे वह विद्यालय भी आज सूर्यसागर उच्चतर माध्य-मिक विद्यालय बन गया है जहाँ २५ अध्यापक ७०० विद्यार्थी हैं और जो शासन द्वारा सहायता तथा मान्यता प्राप्त विद्यालय है एवं जहाँ आज भी बखूबी धार्मिक शिक्षा दी जा रही है।

पंडितजीने जैन-सन्देश, सन्मतिवाणी, सन्मतिसन्देशमें अनेक रचनायें लिखीं आपकी प्रबल कामना है कि धर्म और समाजके लिए एकाध मौलिक ग्रन्थका सृजन कर सकूँ तो जीवन सफल हो। पंडितजीकी अनु-भूति है कि धार्मिक शिक्षासे विद्यार्थियोंमें मानवीय गुणोंका विकास होता है। विद्वानोंको आत्मसम्मानके लिए हमेशा सावधान रहना चाहिए। दैन्य और लोभ, ये दोनों दुर्गुण विद्वानोंके दुश्मन हैं, अतएव वे इनसे जितना बचेंगे उतना ही श्रेष्ठ कार्य होगा।

●

डा० देवेन्द्रकुमारजी जैन साहित्याचार्य

●

शारीरिक आकार प्रकार भारसे विद्यार्थी सदृश, स्वभावत: मक्खनसे मृदु और बालमनसे सरल तथा शशिसे सौम्य डा० देवेन्द्रकुमारजीका जन्म १८ फरवरी १९३३ को सुजालपुरमें हुआ था पर मूलत: डा० साहब चिरगाँव (झाँसी) उ० प्र० के निवासी है।

आपके स्वभावमें तो एक अपूर्व अध्यवसाय है। उसने आपके व्यक्तित्व और कृतित्वको निखार दिया है। आप निसर्गत: बहुश्रुत विद्याभ्यासी है। यह आपकी शैक्षणिक योग्यतासे ही बताया जा सकता है। आपने जैनधर्म शास्त्री, साहित्यरत्न, साहित्याचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी० कभीका हो कर लिया है और डी० लिट्के शोधकार्यमें वर्तमानमें संलग्न हैं। आपका विस्तृत अध्ययन विद्वानोंके लिए स्पर्धाकी वस्तु बना है।

आपने एकसे अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका सम्पादन किया है, कतिपय स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे और कुछ पर पुरस्कार भी मिले हैं। आपके प्रकाशित कुछ ग्रन्थ ये हैं—

१. भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश काव्य, २ अपभ्रंशभाषा और साहित्यकी शोध पर्वृत्तियाँ, ३ भाषा शास्त्र तथा हिन्दी भाषाकी रूपरेखा, ४. रयणसार (आ०कुन्दकुन्द) सम्पादन, ५. वड्ढमाणचरित (नरसेनकृत) सम्पादन, ६. अपभ्रंश काव्य एक प्रतिनिधि संकलन, ७. अपभ्रंश कोश सम्पादन कार्य चल रहा है।

रयणसार ग्रन्थके सम्पादनके उपलक्ष्यमें वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति व इन्दौर समाजकी ओरसे सार्वजनिक सम्मान हुआ। अपभ्रंश भाषा और साहित्यकी आधुनिक शोध व प्रवृत्तियाँ पुस्तकपर दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद् द्वारा चाँदमल पांडया पुरस्कार प्राप्त हुआ।

पूर्वोक्त पुस्तकोंके अतिरिक्त आपने अनेक पत्र-पत्रिकाओंमें लगभग २०० निबन्ध भी लिखे हैं। दैनिक जीवनकी विषय स्थितियोंमें भी आप जिस निष्ठा और उमंगके साथ धार्मिक-सामाजिक-साहित्यिक सेवाओंमें संलग्न रहते हैं वह हम सभीके लिये अतीव प्रेरणास्पद बनी है। डा० सा० से देश और समाजको बहुत बड़ी-बड़ी आशायें हैं। जैन साहित्यकी श्री वृद्धिमें आपने जो योगदिया युगों-युगों तक साहित्यके इतिहासमें सदैव स्मरणीय रहेगा।

●

पंडित दामोदरदासजी

●

अपने आपको साधारण व्यक्ति समझने वाले पंडित दामोदरदासजी उन व्यक्तियोंमेंसे एक हैं जिन पर यह कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है कि 'हीरा मुखसे ना कहे लाख हमारो मोल'।

पंडित दामोदरदासजीका जन्म ज्येष्ठ मासमें वि० सं० १९६१ में हुआ। आपके पिता श्री गुंचेलालजी बुड़वार (ललितपुर) झाँसी उ० प्र० के निवासी थे। आप गोलालारीय समाजके भूषण हैं। आपके

पिताश्रीने आपको लौकिक शिक्षाकी अपेक्षा धार्मिक शिक्षा ही अधिक देनी चाही थी, इसलिए उन्होंने स्वयं ही अपने पुत्रको अनेक धार्मिक पाठ कण्ठस्थ कराये थे।

प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर आप दिगम्बर जैन पाठशाला ललितपुरमें पढ़ने लगे। आपके धर्म-शिक्षक पंडित निद्धामलजीने क्षत्र चूडामणि (वादीभीसिंह कृत) की टीका लिखी सो उसकी मुद्रण पुस्तिका आपने तैयार की, जो सूरतमें छपी। जब जैनमित्रके प्रकाशक कापडियाजी महासभाके अधिवेशनमें भाग लेकर कानपुरसे लौटे तो क्षेत्रपाल (ललितपुर) में ठहरे। उनके साथ पंडितजी भी गुरुजीसे आज्ञा लेकर चन्देरी गये और वहाँकी भारत-प्रसिद्ध चौबीसीको देखकर परम पुलकित हुए। पं० जीका और कापड़ियाजीका क्षणिक मिलन आगे चलकर लाभप्रद सिद्ध हुआ।

पंडितजी गुरुजीके सुझावके अनुसार १९२१ में सूरतमें ग्रीष्मावकाशमें कुछ काम करने कापड़ियाजीके समीप गये और गुजराती भाषा सीख ली तथा ५।। वर्ष तक जैनमित्रमें सहायक सम्पादकके रूपमें कार्य किया। आपने सामाजिक धार्मिक संघर्षमें भी समाजकी स्वस्थ सेवा की। नाथूराम लमेचूकी रक्षाबन्धन कथाका भी अनुवाद किया जिसके एकसे अधिक संस्करण निकले।

सन् १९२७ से सागरमें बस गये। गणेशप्रसादजी वर्णीके सान्निध्यमें जीवन आरम्भ किया। आप गणेश विद्यालयके सदस्य रहे, संस्कृत शिक्षा समितिके मंत्री रहे, दिगम्बर जैन शान्ति निकुंजके मंत्री रहे। दो-दो युगों तक संस्थाओंकी अवैतनिक रूपसे सेवा करना पंडितजीकी शुद्ध मनोवृत्तिका परिचायक है। आपका मानव-जीवन विषयक दृष्टिकोण सभीके लिये काम्य व ग्राह्य है।

●

वैद्य दामोदरदासजी 'चन्द्र'

●

जन्म : वैद्य श्री दामोदरदासजी जैन 'चन्द्र' का जन्म पौष कृष्ण ८ वि० १९७३ में घुवारा (छतरपुर) में विद्वत् प्रसूता जननी सुश्री कमलादेवीकी पवित्र कोखसे हुआ। आपके पिता श्री गिरधारीलालजी राजवैद्य बाल्यकालसे जीवन पर्यन्त जिनेन्द्र पूजक, सामायिक स्वाध्यायके दृढ़ प्रतिज्ञ, तत्त्वज्ञ, विज्ञ सज्जन अथच सरल रहे। अपने पिताके चरण चिह्नोंका सच्चा अनुकरण करते हुए आपने जीवनका ध्येय समाज सेवा बनाया।

शिक्षा : लौकिक शिक्षाके रूपमें प्राथमिक शाला घुवारा से ९ वर्षकी अवस्थामें कक्षा ४ की परीक्षामें बैठे। किसी कारण वश आप परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सके। पाँच वर्ष बाद आपने श्री गुरुदत्त दि० जैन द्रोणगिरिसे विशारदकी परीक्षा उत्तीर्ण की तथा काव्यकला आयुर्वेद एवं ज्योतिष-शास्त्रमें स्वाध्याय रूपसे ही निपुणता प्राप्त की। आपका पाणिग्रहण-संस्कार संवत् १९८३ में रामबाई तनया श्री शंकरलालजी कुटौरा (छतरपुर) से सम्पन्न हुआ।

आर्थिक उपार्जन : पिताजीके जीवनकालमें आपकी आर्थिक स्थिति सम्पन्न रही। ३० वर्षकी

अवस्थामें मातृ सुख एवं ३१ वर्षकी अवस्थामें पितृ सुखसे आप सदैवके लिए वञ्चित हो गये। इन घोर आपत्तियोंके ५ वर्ष बाद ही नियति आपके द्वितीयने पुत्रको भी छीन लिया। इनके बावजूद आपपर भी कई बार संक्रामक व्याधियाँ आयी जो यथोचित उपचार एवं पुण्योदयसे शान्त होती रही। वर्तमान समयमें आप आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न है। आपके सुपुत्र श्री ज्ञानचन्द जैन चन्द्र मेडिकल स्टोर्स तथा आप महावीर औषधालय चला रहे है। किराना की दुकान भी चलती है। इन सबसे अच्छी खासी आय हो जाती है। आपके एक पुत्र एवं त्रिवेणी तुल्य तीन कन्यायें हैं।

साहित्य सेवा : दश धर्म, आरोग्यता एवं ब्रह्मचर्य नामक निबन्ध तथा कविताके रूपमें हीरोंका खजाना, नीतिरत्नाकर, महिला गीत संग्रह, ज्ञान चन्द्रोदय, बारह भावना, सन्त वर्णीजी और पञ्च कल्याणक दर्पण आदि कृतियाँ प्रकाशित हुई। आपकी अप्रकाशित रचनाओंमें हीरोंका हार, नीतिसागर, रामबाण चिकित्सा, आयुर्वेद शब्द कोष, भजन संग्रह, स्तुति संग्रह तथा श्री नवागढ़ क्षेत्र पूजन आदि प्रमुख है।

सामाजिक कार्य : आपने समाज कल्याण हेतु द्रोणप्रान्तीय सेवा परिषद् सि० क्षे० द्रोणगिरि (छतरपुर) की अगस्त १९५० में स्थापना की। आप सागर द्वारा प्रकाशित वर्द्धमानके सम्पादक रहे। ग्राम-कुटौरा जि० छतरपुरमें सन् १९५४ मे आपने जैन पाठशाला सचालित की। श्री सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरि गिरिराजपर सरलता पूर्वक चढ़नेके लिए आपने सीढ़ियाँ बनवायी जिनके लिए आपको गाँव-गाँवमे घूमना पडा।

आप एक धर्मनिष्ठ समाज कल्याणक एवं साहित्य सेवी विद्वान् है। आप दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुरीतियोके घोर विरोधी है। जन सेवाकी भावनाका सुन्दर सरोवर आपके हृदय प्रदेश पर हिलोरें ले रहा है।

●

पं० दयाचन्दजी शास्त्री

●

मध्य प्रदेशके सागर जिलेमें विदवासन नामक गाँवमें संवत् १९६७ पौष शुक्ल सप्तमीको आपका जन्म हुआ। आपके पिताका नाम श्री चिमनलालजी एवं माताका नाम श्रीमती भगवतीदेवी था।

दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंके प्रखर उत्पीडनसे निरन्तर सहास संघर्ष करते हुए आपने अपने व्यक्तित्व और कर्मठताका जो आदर्श हमारे सामने रखा वह सदैव स्मरणीय एव प्रेरणाप्रद रहेगा।

आपका जन्म स्थान शैक्षणिक दृष्टिसे नगण्य था। अस्तु प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने आप अपने बहनोई साहबके घर मालथौन पधारे। प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करनेके उपरान्त आप इन्दोरके सर हुकुमचन्द दिगम्बर जैन महाविद्यालयमे प्रविष्ट हुए। आपने वहाँसे शास्त्री, न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। सिद्धान्त व न्याय विषयमें ही विशेषत: शिक्षा ग्रहणकर आपने पटुता प्राप्त की। अध्ययन कालमें गुरुओंका स्नेह आप पर सदैव रहा क्योंकि आप एक तो उत्तम श्रेणीके छात्र थे और दूसरी बात आपमें गुरु भक्ति भी थी।

जैन बोर्डिंग हाउसकी छात्र परिषद् "वीर समिति" से विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनके वर्तमान कुलपति श्री शिवमगलसिंहजी सुमन की अध्यक्षतामें अपनी प्रतिभा, योग्यता और कर्मठतासे सबको अनुप्राणित कर आपने ससम्मान अभिनन्दन पत्र प्राप्त किया था।

आप अध्ययन समाप्त कर निकले ही थे कि दमोह निवासी श्री माणिकलालजी इटौरयाकी सुपुत्री श्रीमती विमलाकुमारीके साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। इसके बाद आप नौकरीमे आए। आप इस समय श्री सूर्यसागर दि० जैन उ० मा० वि०में प्रधानाध्यापक हैं।

उक्त संस्था आपके ही प्रयत्नसे संस्थापित होकर विकसित हुई है। संस्था समुन्नतिमें अभिनन्दनीय मानपत्रों द्वारा समय-समयपर आप जिस भाँति सम्मानित होते रहे वह वर्णनातीत है। आपके द्वारा शिक्षा प्राप्त छात्रोंको छात्रावस्थामें आपके ही द्वारा जो प्रेरणा प्राप्त हुई थी उसे वे आजीवन न भूलेंगे।

एक लक्ष्य होकर सामाजिक सेवामें लगे रहनेके कारण आपको साहित्य साधनाका अवसर ही नही प्राप्त हो सका। यही कारण है कि लेखनीकी ओर आपका ध्यान करीब ४० वर्ष की अवस्थाके बाद गया। आपके लेख और कहानियाँ सन्मति सन्देश, जैन सन्देश, जैन दर्शन और अहिंसा वाणी आदिमें प्रकाशित होती रही है। जब आपने लेखक एवं कहानीकारके रूपमें साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया तब आपका वह रूप भी अग्रणी रहा।

●

पं० दरबारीलालजी जैन

●

वर्णी इन्टर कालेजके सुयोग्य प्रतिभाशाली हिन्दी व्याख्याता, समुन्नत विचारों, समाजकी कुरीतियोके कठोर विरोधी, आर्ष मार्गके सफल अनुयायी, समाज साहित्य और धर्मकी सेवाके कर्मठ सेनानी श्री पं० दरबारीलालजी जैनसे प्राय. मास्टर साहबके नामसे अधिक परिचित है।

आपका जन्म ग्राम डोगरा खुर्द (जामनी बाँध) ललितपुर मे हुआ। आपकी शिक्षा आरम्भिक रूपमे डोगरामे हुई पश्चात् ललितपुर और स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीमे हुई। एम० ए०, एल० टी०, शास्त्री, साहित्यरत्न और साहित्यालकार जैसी उपाधि पूर्ण परीक्षाएँ आपने अपनी प्रतिभाके अनुरूप उत्तम श्रेणीमें उत्तीर्ण की।

आपमे आरम्भमे ही साहित्यिक अभिरुचि रही। परिणामत: साहित्यके सभी अंगों जैसे कविता, कहानी, निबन्ध लेखनमें आपने अपनी प्रतिभाका गौरवपूर्ण परिचय दिया। सैद्धान्तिक प्रवचन एवं भाषण देनेमें भी आपकी क्षमता प्रभावक है। धर्म समाज और साहित्य सेवाके साथ-साथ देश भक्तिका गहरा भाव आपमें समाया है। अपने जीवनमें देशके ऊपर आये संकटोपर आपने जहाँ साहित्यके माध्यमसे हुँकार की तो तन मन धनसे भी सब कुछ देश हितके लिए कर सकनेको सदैव तत्पर रहे।

आपकी धर्म विदुषी पत्नी एवं पुत्र भी आपके अनुकूल प्रतिभावान है। वर्तमानमे आप वर्णी स्वाध्याय मण्डल जैसी आगम परम्परा पोषक महत्त्वपूर्ण संस्थाके मंत्री है। जिसके माध्यमसे आपने एकातवादी मिथ्या मतके प्रचारकों, उनके अगमपरम्परामें किए गए अनैतिक कृत्योका खुले रूपसे विरोध कर अगम्य परम्पराकी रक्षाका कार्य किया।

●
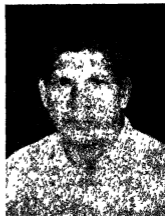
श्री दामोदरजी शास्त्री

●

परिचय

राजस्थान (चिरावा, झूझनू) के विख्यात संस्कृत सेवी परिवारमें जन्म १९४२ ई० में।

शिक्षा

वैशाली स्थित प्राकृत व जैनविद्या शोधसंस्थान (बिहार विश्वविद्यालय) से 'प्राकृत व जैनोलॉजी' में प्रथम श्रेणीमें एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण। इसके अतिरिक्त वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयसे व्याकरणाचार्य, काशी हिन्दू विश्वविद्यालयसे बी० ए०, एम० ए० (प्र० व० प्रा० भा० इतिहास, संस्कृति व पुरातत्त्व विषयमें) तथा न्याय शास्त्री (प्र० व०) उत्तीर्ण। भागलपुर विश्वविद्यालयसे हिन्दी साहित्यमें भी एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण। डा० लालबहादुर शास्त्रीके निर्देशनमें जैन दर्शनमें वाचस्पति (पी-एच० डी०) उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत।

कार्य क्षेत्र :

भारतीय ज्ञानपीठ, (दिल्ली) तथा श्री जै० श्वे० ते० महासभा (कलकत्ता) आदि जैन संस्थाओंमें अनेक ग्रन्थोंका सम्पादन-कार्य। लोकमान्य (प्रमुख हिन्दी दैनिक) के उपसम्पादक पदपर अनेक वर्ष तक कार्य। महावीर विश्वविद्यापीठ तथा भगवान् महावीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्लीमें प्राकृत व पालि विभागके अध्यक्ष पद पर कार्य।

वर्तमान

श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ (राष्ट्रीय सस्कृत सस्थान, भारत सरकार) मे जैन दर्शनके व्याख्याता।

●

बापू दीपचन्दजी

●

सुमधुर, स्पष्ट वक्ता, निष्पक्ष तथा कुशल लेखक एवं जैन समाजके स्वार्थी, ढोंगी और छद्म-वेषी व्यक्तियोंके निर्भीक समालोचक बापू दीपचन्दजीने संवत् १९४९ की दीपमालिकाको ही अपनी अनूठी एवं भव्य ज्योतिके साथ इस नश्वर और असार संसारमें अमर एवं सारगर्भित व्यक्तित्वकी छाप छोडने एवं आडम्बरियोंके मान मर्दन तथा सर्वसाधारणके पथ प्रदर्शन हेतु जन्म लिया।

आपने अपने नामकी सत्यताको अपनी चमत्कारिक कर्मठताके द्वारा प्रमाणित कर दिखाया। आप एक साथ कई भाषाओंके अधिकारी विद्वान् हैं जिनमें हिन्दी, उर्दू, अँग्रेजी एवं फारसी प्रमुख हैं। ज्योतिष एवं आयुर्वेद भी आपसे अछूते नहीं रहे।

जैन समाजमें लगन एवं धुनके पक्के कर्मठ व्यक्तियोंमें आपका नाम यदि सर्वप्रथम लिया जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। जैन समाजके ऊपर आपकी सेवाओं एवं ममत्वका इतना अधिक भार है कि आपको प्रतिफल देने की भावनाका उदय ही उस समाजका दुस्साहस करना होगा।

आप एक श्रेष्ठ पत्रकार भी है। दैनिक 'ताज' में तथा दैनिक 'वतन' में आप सहायक सम्पादक रहे और एक पत्रकारकी दृष्टिसे सबसे बड़ी बात तो यह है कि "जैन संसार" नामक पत्रको निरन्तर घाटा सहते हुए भी आप सन् १९२८ से बराबर सम्पादित तथा प्रकाशित कर रहे हैं। जैन समाजके प्रति इससे बड़ी ममत्व भरी भावना और क्या हो सकती है। चार वर्षों तक आपने उर्दू में 'देहली पंच' भी निकाला। आपने 'शमाली हिन्द' की 'जैन डायरेक्टरी' भी संकलित करके प्रकाशित की है।

आप यथार्थमें कर्मठताकी मूर्ति, सच्चे साहित्य सेवी, समाज सुधारक एवं मानवताकी प्रतिमूर्ति हैं। जैन समाज बडी-बडी आशाओंके साथ आज भी आपका मुखापेक्षी बना है।

●

श्री दद्दूलालजी

●

आप अमरावतीके निवासी है। अमरावती (बरार), जहाँकी खास भाषा मरहठी है। और जहाँपर एक भी हिन्दी स्कूल नही था। वहाँ आपने प्रयत्न करके अनेक हिन्दी स्कूल खुलवाये है। हेड-मास्टर-के पदपर रहकर हिन्दी साहित्यका अभूत पूर्व प्रचार किया। समाज साहित्य और संस्थाओंकी सेवा आपका मूल व्रत रहा है। साहित्यके क्षेत्रमें लेखक और कविके रूपमें सदैव स्मरणीय रहेगे। आपकी कविताएँ जैन-पत्रोंमें प्रकाशित होती रही। आप अपनी रचनाओमें पारमार्थिक भावोंका बडी सुन्दरतासे आधुनिक शैलीमें दिग्दर्शन कराते हैं।

विद्वत्ताके साथ सरलता, स्वाभाविकता और परहितकी भावना आपके विशिष्ट गुण रहे हैं।

स्व० धन्यकुमारजी 'सुधेश'

जन्म

स्वनाम धन्य श्री धन्यकुमार जैन सुधेशजीका जन्म सतना जिलेके नागौद तहसीलमें ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष तृतीया सवत् १९८४ तदनुसार उन्नीस मई उन्नीस सौ सत्ताईसको हुआ था। आपके पिता श्री स० सि० बाबूलालजी जैन मध्यम श्रेणीके सद्गृहस्थ थे। उन्होंने संवत् १९३७ में नागौदमें तथा संवत् १९४२ में खजुराहोमें गजरथ महोत्सव करवाया जिससे स० सि० की उपाधिसे विभूषित हुए। आपकी माँ श्रीमती सिगैन सोनाबाईजी धार्मिक विचारोंकी सुसभ्य महिला थी।

बचपन

'होनहार विरवानके होत चीकने पात' वाली उक्ति जब आपके बाल मुखमण्डलपर प्रतिभासित हुई तो आप माँ बापके ही नही हर दर्शकके नैनोंके तारे बने। आप अपने भाई बहनोंमे सबसे छोटे भी थे अस्तु माँ बाप क्या घरके सभी सदस्योंको स्वाभाविक रूपसे ही प्यारे थे। जन्म कालमें आपके शरीरपर छोटी-छोटी फुन्सियाँ थी बादमें ठीक हो गयी थी। जब आप पाँच या छः वर्षके थे तब आपको गठिया वात हुआ था जिससे हृदयका चतुर्थांश सिकुड गया था फलतः शरीरका यथेष्ट विकास नही हो पाया फिर भी शरीर अपने सभी आवश्यक कार्योंके लिए सक्षम रहा। आपका बचपन सुखमय था।

शिक्षा

आपकी शिक्षाका श्री गणेश स्थानीय विद्यालयसे ही हुआ। प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा नागौदमें ही सम्पन्न करके जुलाई १९४२ मे आप दरबार कालेज रीवाँमें प्रविष्ट हुए परन्तु उसी वर्ष भारतव्यापी स्वतंत्रता आन्दोलन हुआ जिससे प्रभावित होकर आपने आग्ल शिक्षा न लेनेका दृढ संकल्प किया। तदनन्तर १९४४ मे श्री गणेश दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय सागरमें प्रवेश लेकर पाँच वर्षों तक निरन्तर अध्ययन किया फलतः साहित्यरत्न एवं काव्यतीर्थ उपाधियाँ प्राप्त की। सागरमें अपने छात्र जीवनमें आप बहुत ही सम्मानित एवं प्रतिष्ठित रहे।

साहित्याङ्कुरण

आप नागौदमें सातवी कक्षाके छात्र थे। हाई स्कूल नागौदमें उसी वर्ष एक कवि महोदय पधारे। उनकी कविताओंको श्रवण करनेसे आपके सुषुप्त शिशु किन्तु कविहृदयमें ऊभ-चूभ हुई और हृदय कवि बनने हेतु मचल उठा। आखिर हाथको लेखनी उठानी पडी और इस ढंगसे उठानी पड़ी कि मरते दम तक उसने साथ नही छोडा। आपने जब सर्व प्रथम कविता लिखी उस समय आप तेरह वर्षके थे।

व्यवसाय

नौकरी करना आपने कभी भी पसंद नही किया। अपने ज्ञान और विद्वत्ताको भी आपने अर्थोपार्जन का साधन नही बनाया। आपकी व्यवसायिक अभिरुचि प्रारंभसे ही वस्त्रव्यवसायमें रही। यह व्यवसाय आपके यहाँका पैतृक व्यवसाय था। सन् १९४९ में शिक्षा पूर्ण कर आते ही आप कपड़ेकी दूकानपर बैठने

लगे और कार्य सम्हाल लिया तबसे आजीवन यही व्यवसाय करते रहे। सन् १९६५ में भारती प्रेस नामक प्रेस भी खोला था जिसे आपके भतीजे श्री विमल कुमार एवं वीरेन्द्र कुमार अब भी चलाते हैं।

विवाह

फाल्गुन शुक्ल पक्ष संवत् २००६ में श्री सिं० खेमचन्द जैन जबेरा वालों (वर्तमान निवास स्थान दमोह म० प्र०) की सुपुत्री श्रीमती ताराबाईके साथ आपका विवाह हो गया। उनका ससुरालका नाम सुधारानी है। वे ६वी कक्षा पास मृदुल स्वभाव वाली, सहनशील, धर्मप्रिय, गृहकार्योंमें दक्ष प्रेम-सन्तोष, आदि नारी गुणोंसे समन्वित हैं।

कृतित्व

आपकी प्रथम रचना जैन गजटमें प्रकाशित हुई गद्य और पद्य दोनोंमें आपका समानाधिकार था। आपने लगभग ४००० पृष्ठ साहित्य लिखा। ५९ पत्र पत्रिकाओमें आपकी ४५० कविताएँ प्रकाशित हो चुकी है। आपने छोटी बड़ी मिलाकर २८ पुस्तकोंकी रचना की जिसमें १५ प्रकाशित तथा तेरह अप्रकाशित है। प्रकाशित पुस्तकोंकी सूची निम्न है—

१. परम ज्योति महावीर (महाकाव्य), २. करुणाके फूल (कविता संग्रह), ३ भामाशाह (नाटक), ४ आर्यिका (गीत काव्य), ५. पुण्य तीर्थ पपौरा (काव्य), ६ शहीद गाथा (उदय काव्य), ७ विराग (खंड काव्य), ८ वीरायण (काव्य), ९ जैन कला तीर्थ खजुराहो, १० मुण्डमाल ११ आचार्य शांतिसागर पूजन, १२ मनुज प्रकृतिसे शाकाहारी, १३ खजुराहोकी शांति नाथ पूजन, १४ मंगल गान।

अप्रकाशित पुस्तकोंमें अन्तर्ध्वनि, कल्पलता, कुछ पानी कुछ दूध, मधुवनकी ओर और शूलोंके गजरे तथा क्षत्र चूडामणि अतीव सौम्य कृतियाँ है।

पुरस्कृत रचनाएँ

'विराग' नामक काव्यपर विन्ध्य प्रदेश शासनकी ओरसे आपको 'लाल पुरस्कार' सम्मान पत्र सहित प्राप्त हुआ। भामाशाह (ऐतिहासिक नाटक) पर आपको मध्य प्रदेश शासनने 'व्यास पुरस्कार' प्रदान किया। परम ज्योति महावीर (महाकाव्य) पर ०००) रुपएका श्री गोपालदास बरैया पुरस्कार प्राप्त हुआ।

उत्कीर्ण रचना

आपने 'सोनागिरि माहात्म्य' नामक रचना लिखी। यह रचना जैन तीर्थ क्षेत्र सोनागिरिके मुख्य द्वारपर संगमरमरपर उत्कीर्ण है।

विदेशोंमें प्रचारित रचना

करुण रसकी कविताओका उत्कृष्ट संकलन 'करुणाके फूल' इतना लोकप्रिय हुआ कि भारत क्या अमेरिकाकी अठारह लाइब्रेरियोमें प्राप्त है। सचमुच वह कृति करुणाका ही पुष्प है।

कवि सम्मेलन

उत्तर प्रदेश, बंगाल, मध्यप्रदेश और राजस्थानके २० जिलोंके लगभग ५० स्थानोंपर सम्पन्न होने वाले कवि सम्मेलनोंमें आपने भाग लिया तथा लगभग सभी जगह उच्चतम स्थान प्राप्त किया। आपकी भाषा तथा भावके अनुकूल ही आपकी मधुर आवाज भी थी जिसे सुनकर लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

आपके साहित्य प्रेमी

मध्यप्रदेशमें शिवपुरी, रतलाम, झाबुआ, खरगोन, बैतूल और रामपुरको छोडकर हर जिलेमें आपके साहित्य प्रेमी उतनी अधिक मात्रामें नहीं मिलते बाकी सभी स्थानोंमें आपके साहित्यके पुजारी मौजूद हैं।

आपके द्वारा संशोधित पुस्तकें

आपने अनेक पुस्तकोंका संशोधन कार्य भी किया है जिनमेंसे 'सरस'की अहार गौरव, योगेन्द्र दिवाकर की "आँसूकी गीता" धरणेन्द्र कुमार हटा की जीवंधर ज्योति एवं द्रोण गिरि दर्पण, दयाचन्द्रजी जबलपुरकी निकलंकका उत्सर्ग, कातिकुमार करुणकी नेमि वैराग्य एव बाहुबली वैराग्य तथा धरणेन्द्रकुमार जैनकी श्री धन्यकुमार चरित्र आदि प्रमुख हैं।

संस्थापक

नागौदमें जैनधर्मका ज्ञान कराने हेतु कोई पाठशाला आदि नही थी। अस्तु आपने श्री वर्णी जयन्ती सन् १९५३को वर्णी विद्यामन्दिर नागौदकी भी स्थापना की। यह संस्था आज भी उनकी स्मृतिके रूपमें विद्यमान है तथा सुचारु रूपसे कार्य रत है।

नागौदमें साहित्यिक चेतना जागृत करनेके उद्देश्यसे साहित्य सगम नामक संस्थाकी स्थापना भी आपने की। चीनी आक्रमणके समय इस संस्था द्वारा टिकटसे एक कवि सम्मेलन किया गया जिससे प्राप्त ४०१) की धनराशि राष्ट्रीय रक्षा कोषको समर्पित की गयी।

नागौदमें शासनकी ओरसे कोई महाविद्यालय नही था अस्तु आपके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप १९६४ में जनता महाविद्यालयके नामसे एक शिक्षण संस्थाकी स्थापना हुई। प्रारंभमें शिक्षक तथा भवनकी कमीको पूर्ण करने हेतु आपने दो साल अवैतनिक रूपसे हिन्दीका अध्यापन किया तथा अपना निजी भवन नि.शुल्क प्रदान किया।

●

पं० धरणेन्द्र कुमारजी शास्त्री

●

आपका जन्म भाद्रपद कृष्ण पक्ष दशवी सवत् १९८० में मध्य प्रदेश के छतरपुर जिलान्तर्गत बरदु बाहा नामक गाँवमें हुआ। जब आप दस वर्ष के थे तभी आपकी माता श्रीमती उजयारी बहूका निधन हो गया था। पन्द्रह वर्षकी अवस्थामे पिताश्री नन्हेलालजी का भी स्वर्गवास हो गया। पिताश्री के निधनके कारण आपके अध्ययनमें अनेक बाधाएँ उपस्थित हुई किन्तु गुरु गोरेलालजीकी कृपासे सहयोग प्राप्तकर आप अध्ययन पथ पर अग्रसित होते रहे।

धर्ममें शास्त्री, साहित्यमें सम्पूर्ण मध्यमा तथा न्यायमें न्याय मध्यमा तक शिक्षा प्राप्तकर आप श्री पार्श्वनाथ दि० जैन पाठशाला छतरपुरमें प्रधानाध्यापक हो गए। इसके बाद श्रीमहावीर दि० जैन पाठशाला हीरापुर तथा श्री पार्श्वनाथ दि० जैन पाठशाला हटामें भी आपने अध्यापन कार्य किया है।

आप द्रोणगिरि नवयुवक सेवा संघके उपाध्यक्ष, भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषद सागरके सदस्य तथा श्री भारतवर्षीय दि० जैन शास्त्रि परिषद् बड़ौतके सदस्य हैं।

आपने साहित्यिक कार्यको भी अपनाया। तीन पुस्तकें श्री द्रोणागिरि दर्पण, श्री धन्यकुमार चरित्र एवं जीवन्धर ज्योति प्रकाशित हो चुकी है। हनुमान चरित्र अप्रकाशित है। श्री धन्यकुमार जैन के पथ प्रदर्शनमें आपने कविता करना शुरू किया था।

●

स्व० धूपचन्द्रजी

●

सम्पत्ति और सेवावृत्तिमें प्रायः लक्ष्मी और सरस्वती जैसा विरोध देखनेको मिलता है पर जैन समाज कानपुरके ज्योतिपंज बाबू धूपचन्द्रजी इसके एकदम अपवाद स्वरूप ही थे।

धूपचन्द्रजी का जन्म १ मई १९१७ को कानपुरमें हुआ था। आप अग्रवाल जैन जातिके भूषण थे। आपके पिताश्री कपूरचन्द्र जी थे, लकड़ीके सुप्रसिद्ध व्यापारी हैं। आपके प्रपितामह मूलचन्द्रजी भी अतीव धर्मनिष्ठ थे। धार्मिकताकी भावनाको आपने सही अर्थोंमें उत्तराधिकारी बनकर बढाया। पार्श्वनाथ चैत्यालयकी बखूबी व्यवस्था आप ही करते थे। इसकी ही एक शाखा दिगम्बर जैन मन्दिर सीसामऊके रूपमें परिणत हुई। इस मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय आपने जो अद्‌भुत अपूर्व उत्साह दिखलाया था, वह काफी काल तक लोगोंके लिए स्मरणीय रहा। बाहरके प्रायः सभी विद्वान् आपके मेहमान होते थे।

धूपचन्द्रजी धर्मनिष्ठ तो थे पर पदलोलुप नही थे। इसलिये बड़ी मुश्किलसे प्राध्यापक प्रकाशचन्द्रजी की बातको मानकर उन्होंने दिगम्बर जैन पंचायती मन्दिर (बड़ा) की समितिका विशिष्ट सदस्य होना स्वीकार किया था। जब वे दिगम्बर जैन नवयुवक संघके सभापति बने तब कुछ समय बाद ही उन्होने कानपुरमें दिगम्बर जैन परिषद्‌की शाखा स्थापित की। कालान्तरमें आप दिगम्बर जैन औषधालयके सभापति बने और दिगम्बर जैन विद्यालयकी समितिके सदस्य बने। आपने अपने जीवनकालमें दो वर्षोंमें वह कार्य किया, जो दूसरे दो दशकोंमें भी नही कर सके थे। आपकी कार्य करनेकी प्रणाली एक ही थी, जहाँ किसीने सहयोगके लिये स्वीकृति दी कि आप तत्काल उससे पूछते—कहिये, कार्यमें सहयोगहेतु कब आपके पास आ जाऊँ?

अपने सहयोगियोंकी सराहना करना उन्हें खूब आता था। वे कभी प्राध्यापक प्रकाशचन्द्रजीसे कहते कि आप तो मेरे मस्तिष्क हैं और सरजूप्रसादजी मेरे हाथ हैं। वे अपने किसी भी साथीका असुविधा होनेपर त्याग पत्र स्वीकार नही करते थे उसे पद पर रखते और उसका कार्य अन्यसे करा दिया करते थे। सास्कृतिक कार्यक्रमोंमें उनकी सुरुचि पूर्ण गति-मति थी।

अपनी विनम्रता और शालीनताकी धूपको धूपचन्द्रजीने अपने जीवन-कालमें दशों दिशाओंमें महकाया उनके उदार चरित्रको पढकर अनेक सामाजिक कार्यकर्त्ता बन सकेंगे। १ जुलाई १९६८ को हृदयकी गति रुक जानेसे आपका देहावसान हुआ।

●

पण्डित धर्मचन्द्रजी आयुर्वेदाचार्य

●

आपका जन्म देवरान ग्राम (झासी) उ० प्र० में माघ वदी द्वादशी विक्रम संवत् १९७४ में हुआ था। आपके पिता श्री स्व० फुन्दीलाल जी थे, जो सरल स्वभावके कुशल नाड़ी वैद्य थे। आप गोलालारीय जातिके भूषण हैं। आपके परिवारकी आर्थिक स्थिति दयनीय थी। आपने गाँवमें ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की फिर अपने बहनोई परमानन्दजी न्यायतीर्थके समीप धार्मिक शिक्षण लिया।

सन् १९३३ में आप विशेषतया अध्ययन करनेके लिये सरूपचन्द्र हुकमचन्द्र दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउसमें प्रविष्ट हुए। यहीं संस्कृत महाविद्यालयमें साहित्य, धर्म, न्याय, व्याकरण, आयुर्वेद तथा काव्यका अध्ययन किया। आपने शास्त्री तथा काव्यतीर्थ भी किया। स्व० पं० वंशीधरजी न्यायालंकार, पं० जीवन्धर जी न्यायतीर्थ तथा शम्भुनाथ त्रिपाठी की कृपासे आप व्युत्पन्न हुए।

सन् १९४३ से आपने सर सेठ सा० के प्रिंस यशवन्तराव आयुर्वेदिक जैन औषधालयमें कार्य आरम्भ किया। इसके साथ ही आप राजकुमार सिंह आयुर्वेदिक कॉलिजमें भी कार्य करने लगे। अपनी कुशलतासे वहाँके प्राचार्य बन गये व औषधालयमें प्रधान चिकित्सक बन गये। आप कार्य करते हुए जैनदर्शन, जैनमित्र-दिगम्बर जैन एवं अन्य पत्रोंमें निबन्ध भी लिखते रहे।

आप एक अच्छे वक्ता है। सर्वज्ञ प्रणीत अनेकान्तमूलक आर्षमार्गके कट्टर समर्थक है और एकान्त मार्गके प्रबल विरोधी हैं।

●

श्री धन्यकुमारजी कटनी

●

आप श्रीमान् और विद्वान् दोनों ही एक साथ है। आपको एकसे अधिक रचनायें विशालभारत, माधुरी, सुधा आदि सुप्रसिद्ध पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुई थी।

आपने एक जातीय पत्र 'परवारबन्धु' का वर्षों तक कुशलतासे सम्पादन किया। आपने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साहित्यका हिन्दीभाषामें सही प्रामाणिक अनुवाद किया।

आप जैन साहित्यके प्रचार और प्रसारके लिये सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। आपने उदारता पूर्वक एक बहुत बड़ी मात्रामें दान भी दिया है। लक्ष्मी और सरस्वतीके ऐसे सपूतको पाकर जैन समाज अपने लिये गौरवान्वित अनुभव करता है।

●

पं० धन्नालालजी न्यायतीर्थ

●

जन्म एवं शिक्षा

पं० धन्नालालजीका जन्म भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी संवत् १९६० में बुन्देल भूमिके अन्तर्गत ललितपुर रेलवे स्टेशनके पास मालथौन नामक गाँवमें हुआ। आपके पिता श्री आसाजीतजी अच्छी अर्थ परिस्थितिके व्यक्ति थे। दानधर्ममें उनकी अच्छी रुचि थी। समाजमें भी अच्छी प्रतिष्ठा थी।

आप भा० दि० जैन महाविद्यालय मथुरामें अध्ययन कर रहे थे उसी समय आपके दादीका स्वर्गवास हो गया फलतः आप मथुरासे बुला लिए गए इस तरह मथुराका अध्ययन स्थगित हो गया। कुछ वर्षों बाद आप अध्ययनार्थ मोरेना भेजे गए। आपकी पन्द्रह वर्षकी आयुमें पिताजी भी चल बसे परिणाम स्वरूप आपका अध्ययन समाप्त हो गया।

पिताश्रीके निधनसे परिवारके सभी कार्य छिन्न-भिन्न हो गए। आपको ब्यावर महाविद्यालयमें अध्यापन कार्य कर लेना पडा। अध्यापनके साथ-साथ आप अध्ययन भी करते रहे। आपने न्यायतीर्थ, शास्त्री तथा हिन्दी-साहित्य विशारदकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की।

व्यवसाय

आपने ब्यावर महाविद्यालयमें पाँच वर्ष अध्यापन कार्य किया। इसके उपरान्त सेठ देवीसहायजी रईश फीरोजपुर वालोंके यहाँ गृह शिक्षक रहे। बारह वर्षों तक मारवाड़ी हाईस्कूल डिबरूगढ़ (आसाम) में आपने हिन्दीका अध्यापन किया। इसके बाद एक वर्ष पपौरा विद्यालयमें कार्य करनेके बाद अब श्री दिगम्बर जैन स्कूल लालगढ़में प्रधानाध्यापक हैं।

व्यक्तित्व

आप बहुत ही मृदुल एवं विनम्र स्वभावके व्यक्ति हैं। धर्ममें आपकी काफी आस्था है। धार्मिक कार्योंको सम्पन्न करानेमें आपने आज तक पारिश्रमिकके रूपमें एक पैसा भी स्वीकार नही किया। आपकी आजीविकाका साधन सिर्फ अध्यापन कार्य ही रहा है। आपने यथाशक्ति समाजसेवा भी की है।

●

धर्मचन्दजी जैन विशारद

●

श्री पूज्य ब्र० भगवानदासजीके सुपुत्र श्री धर्मचन्दजीका जन्म म० प्र० के सागर जिलान्तर्गत शाहपुर नामक स्थानमें हुआ। आपके पूज्य पिता श्री ब्र० जी थोडेसे व्यापारसे गृहस्थाश्रमका व्यय वहन करते हुए सभी धार्मिक कार्य सम्हालते थे। पूज्य ब्र० जीको चारों अनुयोगोका उच्चकोटिका ज्ञान था। इसी कारण शाहपुर ग्राममें अब भी बारहों महीने दिनमें तीन बार प्रवचन होता है।

आपकी सत्रह अठारह वर्षकी उम्र तक आर्थिक परिस्थिति विचारणीय थी बादमें श्रद्धेय वर्णीजीकी सलाहसे व्यापार पर ध्यान दिया गया जिससे अब आर्थिक परिस्थिति संतोषप्रद है।

आपने स्थानीय विद्यालय श्री पुष्पदन्त दिगम्बर जैन पाठशालासे शिक्षा ग्रहण की। अध्ययन कालमें प्रवचन एव संगीतका अभ्यास भी किया। गोमट्टसार तक धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर आपने विशारद किया।

आप पाँच भाई है जिनमें ३ आपसे बड़े एवं एक छोटे है। अध्ययन कालमें ही आपका विवाह सिंघई श्री मूलचन्द (करापुर) की सुपुत्री फूलाबाईसे हो गया। वे दूसरी प्रतिमा धारिणी है। श्री रत्नकरण्ड-श्रावकाचार एवं मोक्षशास्त्र तक उनका अध्ययन है। वे बडी ही धार्मिक वृत्तिकी श्राविका हैं। पूज्य ब्र० जीके

निरन्तर धर्मोपदेशका आपके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनसे ही आपने संगीतकी शिक्षा प्राप्त की। आपके पूज्य पिता संगीत रत्न थे।

आपने सन् १९३२ से ४९ तक स्थानीय विद्यालयमें ही अध्यापन कार्य किया। अब आप स्वतन्त्र व्यवसाय कर रहे हैं। आपका धर्मके प्रति गहन लगाव है। निरन्तर स्वाध्याय तथा सत्संगसे आपको धर्मका अच्छा ज्ञान है।

आप समाज एवं धर्मको प्राणोंसे भी अधिक मानते हैं। धर्मके प्रति ऐसी रुचि विरले ही दृष्टिगत होती है। आप समाजके गौरवशाली व्यक्ति हैं।

●

पं० धर्मदासजी न्यायतीर्थ

●

जन्म

आपका जन्म माघ शुक्ला चतुर्थी संवत् १९६८ में झाँसी जिलान्तर्गत भोंडी नामक गाँवमें हुआ। आपके पिता स्व० श्री अयोध्याप्रसादजी धर्म कार्योंमें अध्यधिक रुचि रखते थे। प्रतिवर्ष विधान एवं जल यात्रादि करना तथा बाहरसे आए साधर्मी बन्धुओंका भोजनादि द्वारा सत्कार करना आदि वात्सल्यके कारण समाजमें उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। आपकी माँका नाम श्रीमती सीताबाई जी है।

शिक्षा

आपकी शिक्षाका श्री गणेश श्री म० दि० जैन पाठशाला साढ़ूमलसे हुआ। वहाँ पर आपने चार वर्षों तक विद्याध्ययन किया। इसके उपरान्त आप दो वर्षों तक श्री स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें पढ़ते रहे। इस तरहसे आपने धर्मशास्त्री और न्यायतीर्थ आदि परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। अध्ययनके समय कक्षामें धर्म न्याय एवं व्याकरणके विषयमें विशेष कुशल माने जाते थे।

व्यवसाय

अर्थ उपार्जन हेतु आपने दिगम्बर जैन संस्थाओंमें अध्यापन कार्यको अपनाया। श्री गुरुदत्त दि० जैन पाठशाला द्रोणगिरिमें आप अध्यापन कार्य करते रहे।

सामाजिक सेवायें

नैनागिरि सिद्ध क्षेत्र पर आदिवासियोंके हितार्थ आपने सरकारी विद्यालय खुलवानेका भगीरथ प्रयत्न किया तथा सफलता प्राप्त की। गजरथोत्सव आदि सांस्कृतिक कार्योंमें सदैव हाथ बटाते रहे। वैद्यक ज्ञान होनेके नाते आपने गरीबोंकी नि:शुल्क चिकित्साएँ भी उदार हृदयसे कीं। आपने अनेकों मांसाहारी तथा मद्यप व्यक्तियोंको कुपथसे हटाकर सन्मार्गमें खड़ा किया।

साहित्य सेवायें

सन् १९३४ में बड़नगर अनाथालयमें प्रधानाध्यापक पद पर कार्य करते हुए जैन गजटमें लेख लिखा करते थे। श्री लाला भगवानदासजीके मन्त्रित्व कालमें मालवा प्रान्तीय सभाश्रित अनाथालय एवं औषधालय की ओरसे निकलने वाले "आरोग्य" पत्रका प्रकाशन भी कुछ काल तक किया है। ●

श्री धन्नालालजी एडवोकेट

•

वयोवृद्ध बाबूश्री धन्नालालजी एक कुशल मजिस्ट्रेट और प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपका जन्म चैतवदी २ सं० १९५९ तदनुसार दिनाक १९-३-१९०३ को बीना इटावामें हुआ था। आपके पिता श्री जानकीदासजी एवं माँ श्रीमती लाड़ूबाईजी बडी धर्मात्मा महिला थी। पूर्व माध्यमिक परीक्षा सिवनीसे उत्तीर्णकर आपने रजत पदक प्राप्त किया और जबलपुरसे हाईस्कूलकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। मिडिल स्कूल उत्तीर्ण होनेके बाद आपका विवाह श्रीमती मन्नूबाई ऊर्फ मानबाई झाँसीके साथ सम्पन्न हुआ। मैट्रिक पास करनेके उपरांत आप झाँसी अपनी सुसरालमें रहने लगे। १९२४ से १९२६ तक इन्दौरमें श्रीमान् पं० जीवन्धरजी शास्त्री एवं श्रीमान् पं० दरबारीलालजी सत्यभक्तके समीप धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। इसी समय आपने ग्रेजुएसनकी शिक्षा भी प्राप्त की। १९२७ में इलाहाबादमें जैन होस्टलमें रहकर एल० एल० बी० की शिक्षा प्राप्त की। उस समय बैरिस्टर चम्पतरायजी, महामहोपाध्याय गंगानाथ झा जैसे युगपुरुषोंके सान्निध्यमें आपका अध्ययन सम्पन्न हुआ। उस समय जैन होस्टलके आप मानसेवी सेक्रेट्री रहे।

प्रारम्भमें आपने एल० एल० बी० पासकर वकालत की। निष्ठा, सत्य और कुशलता तथा विशाल विवेकके कारण आपकी वकालत चरमसीमापर चलती थी। पश्चात् आपकी ख्यातिको देखकर शासनने सन् १९५१ से १९५७ तक झाँसी कोर्टमे प्रथम श्रेणीके मजिस्ट्रेटके पदपर ससम्मान मनोनीत किया। गल्ला व्यापार मण्डल झाँसीकी स्थापना एवं मानबाई धर्मार्थ औषधालयका स्वयं अपनी ओर से सचालन करना आपकी उदार वृत्तिका प्रतीक है।

आप हास्य प्रकृतिके तत्त्व चिंतक व अन्वेषक विद्वान् है। फोटोग्राफी एव मैकनीकल निपुणता आपकी नैसर्गिक प्रतिभा है। झाँसीमें आपका निजी विशाल भव्य जिनालय है जिसकी व्यवस्था आपकी ओर से है।

सन् १९६९ में आपको अधिक मानसिक कार्य करनेके कारण विस्मृतिका रोग हो गया था। जो लगभग एक वर्ष बाद ठीक हुआ। आपके सहपाठी मित्र श्री सुमेरुचन्दजी दिवाकर है।

वर्तमानमें आप निराकुल वृत्ति पूर्वक ज्ञानध्यान और अध्ययनमें निरत रहते है। आप झाँसी नगरके प्रतिभावान् प्रतिष्ठित व्यक्ति है।

स्व० सुप्रसिद्ध साहित्यकार पं० नाथूरामजी प्रेमी

●

भारतीय वाङ्मयके महामनीषी सुप्रसिद्ध साहित्यकार और समाज सुधारक पंडितप्रवर नाथूरामजी प्रेमीका जन्म देवरी (सागर) म० प्र० में अगहन शुक्ला षष्ठी विक्रम संवत् १९३८ में हुआ था। यद्यपि आपका परिवार आर्थिक दृष्टिसे अतीव साधारण ही था पर आपने अपूर्व अध्यवसायसे जीवन-संघर्षमें साहस और कौशलसे जूझते हुए असाधारण बने थे और कीचडसे कमल जैसी उत्पत्ति लिए सभी को अपने जीवन-चरित्रसे सिखला रहे थे कि कठोर परिश्रम सर्वदा मंगलमूलक होता है।

जब आपको लेन-देनका धन्धा नहीं जँचा तो उसे छोडकर आप अपने ही गाँवके विद्यालयमें अध्यापक बन गये। कालान्तरमें उसे छोड़कर बम्बई प्रान्तीय दिगम्बर जैन सभाके कार्यालयमें लिपिक हो गये। चूँकि जैन मित्रके सम्पादक पं० गोपालदासजी बरैया मोरेना रहते थे अतएव जैन मित्र सम्बन्धी सभी कार्य आप ही सम्हालते थे। बादमें सभाको छोडकर रायचन्द्र जैन शास्त्रमालामे कार्य करने लगे और अवैतनिक रूपसे जैन मित्रको भी सेवाएं देते रहे।

जब पंडित पन्नालालजी बाकलीवालने जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय स्थापित किया तब उसके जैन हितैषी मासिकका आपने आठ वर्षों तक इतना सुन्दरतम सुव्यवस्थित सम्पादन किया कि वह अपने युगका स्मरणीय पत्र हुआ। सन् १९१२ में जब आपने हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालयको जन्म और जीवन दिया तब आपने परतन्त्र भारतमें 'स्वतन्त्रता' नाम प्रथम ग्रन्थसे उसकी नीवकी ईंट रखी। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय द्वारा प्रकाशित ग्रन्थोंके लिए उन्होंने जितना परिश्रम किया, यदि वे इतना परिश्रम अन्य दिशामें करते तो सम्भवतः पच्चीस तीस मौलिक ग्रन्थोंको लिखकर काफी कीर्ति प्राप्त कर लेते पर यों उन्होने एकसे अधिक नवीन लेखकोको प्रोत्साहन दिया। जैन समाजके सपूत और हिन्दी साहित्यके यशस्वी विद्वान् बाबू जैनेन्द्रकुमारजी की प्रथम कृति परखकी सबसे पहले परख प्रेमीजीने ही प्रकाशित करके की थी। इसी प्रकार जैन संसार और मुनि मासिकके सम्पादक कृष्णलाल वर्माको भी प्रेमीजीने निष्काम भावसे काफी सहयोग दिया था।

प्रेमीजीने संस्कृत, अँग्रेजी, मराठी, गुजरातीसे अनुवाद करके १९ ग्रन्थ प्रस्तुत किये और स्वतन्त्र रूपसे १२ ग्रन्थ लिखे हैं। आपके अनूदित ग्रन्थोंमेंसे कुछके नाम यहाँ उल्लेखनीय हैं :—

१. प्रद्युम्न चरित, २ पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, ३. सज्जनचित्तवल्लभ, ४. पुण्यास्रवकथाकोष, ४. प्रतिभा (उपन्यास), ६. रवीन्द्रकथाकुंज, ७. शिक्षा, ८. धूर्ताख्यान, ९. कर्णाटक जैन कवि।

इसी प्रकार आपके स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थोंमेंसे कुछके नाम इस प्रकार है—

१. विद्वद्रत्नमाला, २. हिन्दी जैन साहित्यका इतिहास, ३. भट्टारकमीमासा, ४. अर्धकथानक, ५. जैन साहित्य व इतिहास, ६ तारण ग्रन्थ, ७. जैनधर्म और वर्णव्यवस्था, ८. दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ।

आप माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमालाके आरम्भसे ही सम्पादक और मन्त्री रहे थे। आपके एकसे अधिक गुणोंको देख व लेखकर समाज और साहित्य प्रेमियोंने आपको 'प्रेमी-अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पित किया। आपके जीवनकालमें ही आपकी महानताका मूल्यांकन हो गया था। प्रेमीजीका धर्म व समाज तथा साहित्यके प्रति प्रेम प्रशंसनीय ही नहीं बल्कि आजके युगमें अतीव अनुकरणीय बना है।

प्रेमीजीके व्यक्तित्व और कृतित्वके विषयमें जैनेन्द्रकुमारजीने जो बातें लिखी थी वे एक रुपयेके सौ

पैसों सी आज भी सही हैं; हम उन्हें दुह सकें; भूल न जावें बल्कि अपने दैनिक जीवनमें प्रयोग करनेके लिए चुनें।

१. प्रेमीजी व्यवहारमें अत्यन्त प्रामाणिक व्यक्ति थे। वे अपना लाभ छोड देते थे पर प्रामाणिकता बनाये रखते थे। इसलिए वे पूज्य बने।

२. वे अपनी सहज बुद्धिसे सत्-असत्में भेद कर लेते थे। उनकी शिक्षा भले कम रही हो पर उनकी बुद्धि पैनी थी। बारीकसे बारीक बातमें भी वे खोते नही थे।

३. वे उपदेशक नहीं थे। चुपचाप सबके काम आ जाते थे। आजके प्रचारवादी युगमें यह विशेषता दुर्लभ है, अतएव आज प्रेमी जैसे व्यक्ति चाहिए।

४ वे सहज स्वाभाविक चिन्तनशील वक्ता थे। उनकी वक्तृता अतिशय सुसंगत और सन्तुलित होती थी। उसमें युवकोचित जोश नही प्रौढ़ोचित अनुभव होता था।

५. प्रेमीजी काममें चुस्त व्यवहारमें तत्पर सभीके सुहृद धर्म-भीरु व्यक्ति थे।

६. प्रेमीजी की दृष्टिमें विस्तार था। नईसे नई प्रगतिका उसपर प्रभाव था।

७ प्रेमीजीने बिना पूँजी जुटाये प्रामाणिकताके बलपर बम्बई जैसी नगरीमें हिन्दी भाषाके ग्रन्थोंका प्रकाशन कार्य सफलतापूर्वक किया था।

८. प्रेमीके व्यक्तित्व और कृतित्वमें अतीत-वर्तमान और अनागत प्रेमी विद्वानोंका मूर्त्तरूप देखनेके लिए मिलता है।

९. प्रेमीजी एक ऐसे विद्वान् थे जिनमें झूठी लज्जा न थी और जिनका हृदय कभी भी सहानुभूतिसे शून्य नही हुआ था।

१०. प्रेमीजीमें उग्रता नही दृढता थी। वे गतिशील आन्दोलनोंके साथ रहे पर उसकी गर्मीके शिकार नही हुए।

११. वे समय की लहरमें नही बहे। सकटमे भी कार्य करते रहे।

●

पं० नाथूरामजी डोंगरीय

●

जन्म : आपका जन्म मुंगावलीमे पौष कृष्ण अष्टमी शनिवार संवत् १९६७, ११ जनवरीको हुआ था। पिताका नाम स्व० श्री चैनसिंह एवं माताका नाम श्रीमती बेटीबाई था। आपके पिताजी चार भाई थे। जिनमें से छोटे भाईका स्वर्गवास हो गया था। आपका परिवार श्री सम्पन्न एवं विद्यावान है।

शिक्षा : आपकी प्रारम्भिक शिक्षा मुंगावलीमें हुई। इसके पश्चात् श्री दि० जैन विद्यालय शांति निकेतन कटनीमें अध्ययन कर न्यायतीर्थ शास्त्रीकी परीक्षाएँ पास की। आगराके तत्कालीन राष्ट्रीय विद्या-भवन एवं सरस्वती सम्मेलनसे जैन धर्म भूषणकी परीक्षा उत्तीर्ण की। कुछ दिन मोरेनाके श्री गोपाल दि० जैन सिद्धान्त विद्यालयमें एवं श्री नाभिनन्दन दि० जैन विद्यालय बीनामें भी अध्ययन किया।

अध्यापन-कार्य : श्री दि० जैन पाठशाला बडगाँव (जबलपुर), श्री वीरनाथ दि० जैन पाठशाला मुंगावली तथा श्री दि० जैन पाठशाला राघोगढमें एक-एक वर्ष अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् बिजनौरमें आपने आठ वर्ष अध्यापन कार्य किया। १९४३में जैन हाईस्कूल इन्दौरमें धर्म एवं संस्कृतके अध्यापकके रूपमें आठ वर्ष कार्य किया। अब सन् १९५२ से आप व्यापार कर रहे हैं।

साहित्य-सेवा : सर्वप्रथम कटनीमें अध्यापन करते हुए श्री रक्षाबन्धन कथाको छन्दवद्ध किया। कटनीमें रहते हुए आपने और भी जो निबन्धादि लिखे वे सब समय-समयपर पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते रहे। आपने 'वीर प्रतिभा' नामक एक काव्य लिखा जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।

बिजनौरमें रहते हुए आपने भक्तामरका रुबाइयात उमर खय्यामके ढंगपर काव्यके रूपमें अनुवाद किया। यह कार्य १९३७ में किया गया। इसके बाद आपने अहिंसा और विश्वशांति नामकी पुस्तक लिखी जो अभी अप्रकाशित है। बिजनौरमें रहते हुए आपने कुछ कालतक 'प्रकाश' नामक पत्रका सम्पादन भी किया। उसी समय तत्कालीन जैन दर्शन, परवार बन्धु, जैन मित्रादि पत्रोंमें अनेको लेखोंका प्रकाशन करवाया।

सर्व साधारणको जैन धर्मका परिचय देनेके लिए आपने १९३९ में जैन धर्म नामक एक पुस्तक लिखी जिसकी दस हजार प्रतियाँ समाजके दानवीरों द्वारा वितरित की गईं तथा जैन पत्रोंके ग्राहकोंको उपहार स्वरूप भेंट की गई। इस पुस्तकके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और अब तीसरा संस्करण दानवीर स्व० रावराजा श्री मंत सेठ रा० ब० स्वरूपचन्द हुकुमचन्दजी की पारमार्थिक संस्थाओंके अन्तर्गत श्री प्रेम कुमारी ग्रंथमालासे प्रकाशित होने जा रहा है।

इन्दौर में व्यावसायिक कार्योंमें सलग्न रहनेके कारण आप रुचिके अनुसार साहित्यसेवा नही कर सके फिर भी समयसारका स्वाध्याय करते हुए आपने एक काव्य ग्रन्थ लिखा जो समयसार वैभवके नामसे मुद्रित हो चुका है। इस ग्रन्थका प्रथम संस्करण रावराजा दानवीर लेफिटनेंट कर्नल राज्यभूषण श्री मंत सेठ हीरालालजीने अपनी स्वर्गीय पूज्य माँ की पूज्य स्मृतिमें प्रकाशित करवा कर समाजको भेंट किया।

आपके इस ग्रन्थ तथा स्वत आपका अभिनन्दन इन्दौरकी समस्त दि० जैन समाज एवं समाजके मूर्धन्य विद्वान् माननीय जैन सिद्धान्त महोदधि ब्र० पण्डित वंशीधर जी, पण्डित पन्नालाल, पण्डित नाथूराम जी शास्त्री इन्दौर, दानवीर श्रीमंत सेठ राजकुमार सिंह जी इन्दौर एवं रावराजा श्रीमंत सेठ हीरालालजी द्वारा सम्मानके साथ सम्पन्न किया गया।

इस तरहसे आपकी प्रतिभा योग्यताका वन्दन व अभिनन्दन ही आपकी कर्मठ विद्वत्ताका परिचायक है। आपने जैन साहित्यकी जो सच्ची सेवा की वह चिरस्मरणीय रहेगी।

पं० नन्हेंलालजी शास्त्री

●

जन्म : आपका जन्म उत्तरप्रदेशके झाँसी जिलेमें स्थित सेरवास नामक गाँवमें अगहन सुदी त्रयोदशी संवत् १९५३ में हुआ। पिता श्री मोहनलालजी एवं माताश्री कञ्चनबाईके आप सबसे छोटे पुत्र है। आपसे बडे दो भाई एवं बहिन है। आपके जन्मके समय पिताजीकी आर्थिक स्थिति मध्यम थी। लेन-देनका व्यवसाय ही प्रमुख था।

बचपन : आपका बचपन सुखमय ढंगसे बीता। एक तो आप माँ-बापकी अन्तिम सन्तानके रूपमें आए दूसरे बचपनमें ही आपके चेहरे पर ऐसी कुछ विशिष्ट प्रतिभाके लक्षण दिखाई देते थे कि घरवाले क्या हर कोई आपको अपने हृदयका प्यार एव दुलार देकर अपनी ममताको धन्य समझता था। पाँच वर्षकी आयुमे आप शालामें प्रविष्ट हुए और दसवर्षकी आयु सीमा पार करते-करते आपने कक्षा ५ उत्तीर्ण कर लिया। तेरह वर्षकी उम्रमें आप तालाबमें डूबनेसे बचे।

शिक्षा : प्राइमरी कक्षायें उत्तीर्ण कर आप दि० जैन अभिनन्दन पाठशाला ललितपुरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ आपने प्रवेशिकासे विशारद प्रथम खण्ड तक शिक्षा प्राप्त की इसके उपरान्त आप दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरेना पहुँचे। वहाँ अपने विशारद द्वितीय खण्डसे लेकर शास्त्री पूर्ण तककी समस्त परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। जब आपकी अवस्था १२-१३ वर्षकी थी तब आपके सिरसे पिताश्री का ममत्व भरा साया उठ गया।

विवाह : आप सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेनामें अध्ययन एवं अध्यापन कार्य कर रहे थे उस समय आपका आयु २२ वर्षकी था। तभी संवत् १९७५ में आपका शुभ विवाह सिवनी सेरवास निवासी श्रीराम-प्रसादजीकी सुपुत्री तुलसाबाईके साथ सम्पन्न हुआ। आपकी धर्मपत्नी प्रवेशिका पूर्ण तक धार्मिक एवं कक्षा ५ तक लौकिक शिक्षा प्राप्त है। तुलसाबाईजी सुलक्षणी एवं सुयोग्य गृहिणी है।

आर्थिक उपार्जन : आपकी आयु २४ वर्षकी थी तब आपने सिद्धान्त विद्यालय मुरेनामें संवत् १९७७ में सहायक अध्यापकके रूपमें कार्य आरम्भ किया। २ वर्ष तक आप वहा कार्यरत रहे उस समय आपका वेतन २५) था। सवत् १९८० में आप ७०) वेतन पर महाविद्यालय ब्यावरमें प्रधानाध्यपक पद पर नियुक्त हुए। इसके बाद वहाँकी जलवायु अनुकूल न होनेके कारण आप वहाँसे फिर सिद्धान्त विद्यालय मोरेना चले आए। वहाँ आप संवत् १९८६ से ९३ तक ७३) वेतन पर प्रधानाध्यापक रूपमें कार्यरत रहे। इसके बाद आपने आरा, कलकत्ता एव कुचामन आदि विद्यालयोंमे भी कार्य किया। आजकल आप कु० कु० दि० जैन विद्यालय राजाखेडा (भरतपुर) में २००) मासिक वेतन पर प्रधानाध्यापक पद पर कार्यरत है।

सन् १९३७ में आपकी माताजी व सन् १९६७ में आपके बड़े भाई साहबका स्वर्गवास हो गया। आपको तीन पुत्र रत्नों एवं दो कन्याओंकी प्राप्ति हुई। तीनों पुत्र शिक्षक है।

साहित्य परिचय : आपने अभी तक निबन्धोंको छोडकर अन्य साहित्यिक विधाओंकी ओर ध्यान ही नही दिया। आपके निबन्ध समय-समय पर अनेकों पत्र एवं पत्रिकाओंमें छपते रहे हैं।

आपके निबन्ध मौलिक ठोस एवं ओजस्वितासे परिपूर्ण होते हैं। आपकी भाषा सुसंस्कृत एवं परिमार्जित है।

सामाजिक परिचय : आप कर्मकाण्ड पंडित हैं। अनेकों स्थानों पर वेदी प्रतिष्ठा, मंदिर प्रतिष्ठा, सिद्धचक्रके पाठ एवं अनेक सामाजिक उत्सवोंके अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य कर आपने सम्मान पत्र एवं अभिनन्दन पत्र प्राप्त किया। पर्यूषण पर्वोंमें आप अनेक सुदूर स्थानों पर जाते है तथा अपने उपदेशामृत द्वारा अनेकों हृदयोंको आप्लावित करते है।

संक्षेपमें कहा जा सकता है कि आपकी वाणीमें ओज है। आपके उपदेशमें अज्ञानी मनुष्योंमें भी चेतना जागृत हो जाती है। गहन से गहन विषयोंको समझनेकी आपकी शैली बहुत ही रोचक है। यद्यपि आप शरीरसे कृश हैं पर आपका व्यक्तित्व भव्य और तेजस्वी है। समय और तपकी ज्योतिसे प्रकाशवान हैं। आप जैन समाजके एक अमूल्य रत्न हैं।

●

स्व० साहित्यरत्न बाबू नारायणप्रसादजी

●

"भाई साहब ! मैं शादी नही करूँगा। मैं कुछ कमा धमा नही सकूँगा। पत्नी व बच्चोका भरण-पोषण अशक्य दीखेगा तो आत्महत्याके सिवाय मेरे पास दूसरा कोई मार्ग नही रहेगा।" ये वाक्य है सुप्रसिद्ध साहित्यकार ज्ञानगंगाके भागीरथ नारायण प्रसादजीके, जो उन्होने पंडित परमेष्ठिदासजी न्यायतीर्थ सम्पादक 'वीर' को उस समय लिखे थे, जब वे उनका वाग्दान भारत-विख्यात इतिहासवेत्ता डा० वेणीप्रसादकी सुपुत्रीसे करा चुके थे।

बाबू नारायणप्रसादजीका जन्म आजसे ६४ वर्ष पूर्व हुआ था। वे पिंडरावल निवासी और पल्लीवाल जातिके भूषण थे। अपनी आरम्भिक शिक्षा समाप्तकर सर सेठ हु० दिगम्बर जैन छात्रावास इन्दौरमे रहकर आपने साहित्यरत्न और बी० एस-सी० की परीक्षायें उत्तीर्ण की थी। छात्रावासमें सन् १९२६ में, जब बैरिस्टर चम्पतरायके प्रेरक उपदेश हुए तब नारायणप्रसादजीने संकल्प घोषित किया—'मैं विवाह नही कराऊँगा और अपना जीवन धर्म-प्रचार और समाज-सेवामें लगाऊँगा।' बाबूजी अपनी प्रतिज्ञाके पालनेमें समर्थ रहे, सफल हुए।

चूंकि वे मूलत: स्वतन्त्र प्रकृतिके थे अतएव सुस्थिरता पूर्वक आजीविकाके लिए व्यापार या नौकरी नहीं कर सके और भगवतीचरण वर्माकी 'हम दीवानोंकी क्या हस्ती, है आज यहाँ कल वहाँ चले' जैसी प्रवृत्ति लिये रहे। उन्होंने कुछ समय भा० दिगम्बर जैन संघमें कार्य किया, फिर राष्ट्रभाषा प्रचारक मण्डल सूरतमें कार्य किया। इसके बाद राज्य मन्त्रालय बम्बईमें अनुवादक बने, तत्पश्चात् साहू श्रेयास प्रसादजीके निजी सचिव बन गये, दिगम्बर जैन परिषद्के माध्यमसे धर्म और समाजकी सेवा करनेमें लगे।

उन्हें विद्यार्थी जीवनसे ही सूक्तियोंको संकलन करनेका शौक था, अतएव उसने ज्ञान गंगाके दो भागोंका रूप धारण कर अतीव लोकप्रियता पाई। उनके अन्य ग्रन्थों सन्त विनोद और हास्य मन्दाकिनीके नाम लिये जा सकते हैं। उनका उर्दू शायरी ज्ञान भी उच्च कोटि का था। नाथूरामजी प्रेमीने आपके द्वारा

संगृहीत उर्दू शायरीका प्रकाशन किया, इसमें आपने उर्दू शेरोंका हिन्दी शब्दानुवाद भी प्रस्तुत किया था। आपने मराठी गुजराती अंग्रेजी भाषाके अनेक लेखों व पुस्तकोंका अनुवाद किया। आपकी अनूदित पुस्तकोंमेंसे एक डा० पट्टाभि सीता रमैयाकी अंग्रेजी पुस्तक (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ६० वर्ष) उल्लेखनीय है। आपने जैनधर्म सम्बन्धी अनेक निबन्ध लिखे। संस्कृतके ज्ञानार्णव ग्रन्थका भी हिन्दीमें भावानुवाद किया जो 'वीर' में धारावाहिक प्रकाशित हुआ था।

ज्ञानगंगाके प्रथम भागमें आपने अपने अन्तरंगकी एक अद्वितीय मर्म-स्पर्शी बात लिखी थी—चक्रवर्तीकी फानी सम्पदा और इन्द्रलोकके क्षणिक भोग मिलना आसान है मगर अपने शाश्वत सच्चिदानन्द स्वरूपको पा लेना बडा मुश्किल है। इसलिए सारी कलायें व्यर्थ हैं तमाम ज्ञान फिजूल हैं अगर वे इन्सानको आत्मदर्शनकी ओर नही ले जाते है। आत्मदर्शन होता है निर्मल अन्त.करण वालों को।

बाबू नारायणप्रसादजीने जीवन भर लेखन कार्य किया। स्वाभिमानकी सुरक्षा किये जैसे तैसे भी जीवन निर्वाह किया पर अत्यन्त गरीबीमें भी किसीके समक्ष हीनता प्रकट नही की। उनके परिग्रहमें कुछ पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाओंके ढेर, लिखित, अलिखित, अर्धलिखित ग्रन्थ मात्र थे और प्रेरणादायी माँ।

प० परमेष्ठीदासजीके शब्दोमें बाबूजीने अनेक बृहत्काय पुस्तकोंका लेखन कार्य किया। वे अपनी धुनके आधुनिक विचित्र व्यक्ति थे उनके लेखनकी भाँति उनकी स्वयंकी ख्याति नही हो पाई।

●

स्व० डॉ० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य

●

जीवन परिचय

विद्वत्परिषद्के विख्यात अध्यक्ष और विद्वानोंकी विभूति जैसे डॉ० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्यका जन्म बावरपुर ग्राम (राजाखेडा, धौलपुर) राजस्थानमें १६ सितम्बर १९२२ को हुआ था। आपके पिता श्री बलवीरजी थे और माताजी सावित्रीबाई है। आप जायसवाल समाजके भूषण थे। जब आप छह माहके थे तब ही पिताश्रीका देहान्त हो गया था इसलिए आप बसई घियाराममें मामाजीके पास रहे। यही आपने प्राथमिक शिक्षा पाई। इसके बाद राजाखेडा माध्यमिक शालासे मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की। यही कुन्दकुन्द विद्यालयसे प्रवेशिका परीक्षा पास की। अनन्तर स्याद्वाद विद्यालय वाराणसीसे जैनधर्म शास्त्री, ज्योतिषतीर्थ, न्यायतीर्थ किया। इसके बाद आपने स्वतन्त्र स्वाध्यायी विद्यार्थीके रूपमें हिन्दी संस्कृत प्राकृतमें एम० ए० किया। १९६१में भागलपुर विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी की और १९६५ में मगध विश्वविद्यालयसे डी० लिट्की उपाधि ली। सन् १९३७में, चिरंजीलालजीकी सुपुत्री सुशीलादेवीसे आपका विवाह हो गया। आपके एक पुत्र नलिनकुमारजी हुए जो आपकी ही भाँति लौकिक और धार्मिक शिक्षामें प्रवीण हैं।

कार्य-क्षेत्र

आरम्भमें ज्योतिषाचार्यजीने रात्रि पाठशालामें आरामें अध्यापन कार्य किया। फिर जैन बाला-विश्राममें प्रधानाध्यापक पदपर कार्य किया। इसके बाद जैन सिद्धान्त भवनमें पुस्तकालय अध्यक्षके रूपमें सेवायें दीं। अनन्तर शासकीय संस्कृत विद्यालय सुल्तानगंजमें ज्योतिषका अध्यापन किया। अनन्तर एच० डी० जैन कॉलेजमें कार्य किया। आपके निर्देशनमें १५ व्यक्तियोंने पी-एच० डी० कर ली थी। सन् १९३९ से १९७४ तक लगातार ३४ वर्षों तक आपने कुशल शिक्षकका कार्य किया।

साहित्यिक उपलब्धि

सन् १९४१ में ज्योतिष विषयक "मुहूर्त्त मार्तण्ड" पुस्तक लिखी, जो जैन ग्रन्थोंके आधार पर गद्यमें थी। सन् १९५२ में आपने भारतीय ज्योतिष ग्रन्थ लिखा जिसे उत्तर प्रदेश सरकारने पुरस्कृत किया। सन् १९७० में आदिपुराणमें प्रतिपादित भारत ग्रन्थ लिखा, जिस पर भी उत्तर प्रदेश सरकारने पुरस्कार दिया। सन् १९७१ में संस्कृत गीतकाव्यानुचिन्तनं लिखा, जिसे पुरस्कार मिला। संस्कृत काव्यके विकासमें जैन कवियोंका योगदान ग्रन्थ भी लिखा, जो पुरस्कृत हुआ। भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा ग्रन्थ २००० पृष्ठों में लिखकर आपने भारत भारतीका गौरव बढाया है।

इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त अनेक छोटे-मोटे ग्रन्थ लिखे। पत्र-पत्रिकाओंमें निबन्ध लिखे। 'भाग्य फल' पुस्तक धारावाहिक रूपसे 'वीर' साप्ताहिकमें प्रकाशित हुई थी। आपने अनेक ग्रन्थोंकी चिन्तनपूर्ण भूमिकायें लिखी; जिनमेंसे कुछके नाम ये हैं—विष्णुपुराणमें प्रतिपादित भारत, अभिधानचिन्तामणि, वैजयन्ती कोष, ज्वलित प्रदीप, रूपक, शब्द रत्नावली, युग और साहित्य आदि।

संस्था-सम्बन्ध

यों तो डा० सा० स्वयं एक सजीव संस्था थे पर साथ ही उन्होंने अनेक संस्थाओंके माध्यमसे भी देश और समाजकी सेवा की। जहाँ वे भोजपुर जनपदीय हिन्दी स० स० के १९६९ में अध्यक्ष रहे वहाँ आरा नागरीप्रचारिणी सभाके भी उपाध्यक्ष रहे। विहार प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी कार्यकारिणीके सदस्य १५ वर्ष तक रहे। हिन्दी परामर्शदात्री समिति भोजपुरके सक्रिय सदस्य रहे। दिगम्बर जैन विद्वत्-परिषद्के छह वर्ष तक अध्यक्ष रहे। आपके कालमें विद्वत्परिषद् सही अर्थो विद्वत्परिषद् बन सकी। आपके अध्यक्षीय भाषण अतीव उच्चकोटिके थे। आज भी अविस्मरणीय बने हैं। इसके साथ ही वर्णी ग्रन्थमालाके सहायक मन्त्री रहे। वैशाली प्राकृत शोध संस्थानकी अधिष्ठात्री वार्षिक कार्यकारिणीके सदस्य भी रहे। आपने मनीषाका लगभग १५ बर्ष सम्पादन किया। संस्कृतके मागधम् पत्रका भी सम्पादन किया। आप सन् १९४५ से जैन सिद्धान्तभास्करका सम्पादन कर रहे थे। संक्षेपमें डा० सा० एकसे अधिक संस्थाओंके सूत्रधार थे और अनेक पत्रोंके वर्षों तक सुयोग्य सम्पादक रहे थे।

प्रेरणाके स्रोत

डा० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य समकालीन विद्वानोंके लिये प्रेरणाके स्रोत थे। धर्म और दर्शन, साहित्य और ज्योतिष उनके रुचिकर विषय थें। उनके अध्ययन-अनुभव-अभ्यासकी थाह पाना बड़ा मुश्किल था। वे एक ऐसे जैन विद्वान् थे जिन्होंने जैनधर्म और जैन समाजको ही नहीं बल्कि भारतीय धर्म-संस्कृति-समाजको भी प्रभावित किया था। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर जिनवाणी माता जितना गर्व करेगी; भारत माता भी उतना गौरव अपने सपूत कर सकेगी। वे सही अर्थोंमें सरस्वतीके सफल सिद्ध हस्त वरद पुत्र थे। १० जनवरी १९७४ को आपका अवसान हो गया है।

●

रावजी नेमचन्द शाह वकील

•

बी० डी० वैद्यके शब्दोंमें 'शाह वकीलकी धार्मिक व सामाजिक सेवायें सराहनीय हैं।' उनका कृतित्व धर्म प्राण जनताके लिये जागृति बना है और साहित्यके अनुरागियोंके लिये प्रेरणा बना है।

वकील साहबकी पहली मराठी वाङ्मय कृति जैन धर्मादर्श है जिसकी बडी प्रशंसा हुई। डा० केतकरने उद्धरण लेकर इसे गौरवान्वित किया। ज्ञानकोषमें शाह साहबकी दूसरी कृति सामायिक पाठ है। यह अनुवाद आशा से भी अधिक सफल हुआ। अध्यापक भड़कमकर बम्बईने इसका नित्य पाठ करनेके लिये कहा। समाधिशतक तीसरी रचना है, जिसकी पी० एल० वैद्य तकने प्रशसा की है। 'महापुराणामृत' नामक चौथा ग्रन्थ है जो आपका कीर्तिस्तम्भ ही बना। पाँचवी पुस्तक जैन धर्मपर आक्षिप्त और निरसन है। इसमें इतिहासकारोंसे उन भूलोंको सुधारनेके लिये सुझाव दिये गये जो उन्होंने अज्ञान लिये अनजान होकर जैनधर्मके विषय में की। वस्तुस्थितिके स्पष्टीकरणकी दृष्टिसे आपका यह प्रयास आजके युग में भी अनुकरणीय बना है।

पुरुषार्थ सिद्धयुपायका आपने मराठीमें अनुवादकर अपनी प्रस्तावनामें अहिंसापर तुलनात्मक गंभीर दृष्टिसे विचार किया। वृषभदेव पुस्तकमें भगवान् ऋषभदेव जैन वाङ्मयके जैन तीर्थकर जैन क्षेत्र, जैन सन्त भी पाठ्य पुस्तकोंमें विशेषतया रहें, यह सुझाव बम्बई सरकारको दिया। आपने वीर शासन ग्रन्थकी प्रस्तावनामे महावीराची जगन्मान्यता निबन्ध लिखकर अपूर्व कीर्त्ति कमाई। आपने कोल्हापुरसे प्रकाशित सत्यवादी पत्रका ६ वर्ष तक सम्पादन किया। प्रगति आणि जन विजय पत्रके भी आप ६ वर्ष तक सम्पादक रहे। आपके द्वारा सम्पादित पत्र आज भी प्रेरक हैं।

रावजी साहबने सन् १९३८ में द्वितीय जैन साहित्य सम्मेलन स्तवनिधि में अध्यक्षपदसे सुरुचिपूर्ण भाषण दिया था जिसकी प्रशंसा प्रो० लडड् तक ने की थी। कोल्हापुरमें भट्टारक लक्ष्मीसेनजीकी अध्यक्षतामें आपको अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया था। एकबार वाशिममें, महावीर जयन्तीकी सभाके आप अध्यक्ष थे। और धर्मानन्द कौशाम्बीने भगवान् बुद्ध ग्रन्थके आधारपर महावीर तीर्थकरपर मिथ्या रोष प्रकट किया तो आपने तत्काल उसका खण्डनकर कौशम्बीजीका मुख दस हजार लोगोंके समक्ष बन्द कर दिया था। ब्र० शीतलप्रसादजी की प्रेरणासे आपने जैन शुद्धि सगठनका कार्य किया। सोलापुरमें महाराष्ट्रके साहित्य सम्मेलनके रौप्य महोत्सवपर आपने अनेक जैन ग्रन्थकारों व उनके ग्रन्थोंका विद्वत्तापूर्ण परिचय दिया था।

वकील साहब सदृश धर्म-समाज-साहित्य सेवाभावी घर-घर हों।

•

पंडित नागकुमारजी शास्त्री

●

जीवन-परिचय पंडितजीका जन्म २९ अक्टूबर १९१८ को बेल्लियागुलम् (नाथार काड) में हुआ। आपके पिता श्री जयन्धरजी और माता अम्मणि अम्माल है। आपकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला श्रवणबेलगोलमें हुई। प्रवेशिका परीक्षा पासकर संस्कृत विद्यालय कटनीमें रहकर विशारद किया। अनन्तर स्याद्वाद विद्यालय बनारससे सिद्धान्त शास्त्री और न्यायतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण की। आपने मद्रासमे प्राइवेट स्कूलसे मैट्रिक भी किया। आपको तमिल, कर्नाटक, हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी भाषाओंका ज्ञान है।

पारिवारिक विशेषता शास्त्रीजीका समग्र परिवार शिक्षा–दीक्षारत रहा है। आपके ही शब्दोंमें बडे भाई भूपाल जैन क्षुल्लक पुष्पदन्तसागरजी है, जो उपवास व स्वाध्याय प्रेमी है। छोटे भाई नाभिराज जैन विशारद हैं उन्होंने धर्म व समाजकी सेवा करके काफी नाम कमाया व मद्रास मे है। दायादी भाई समन्तभद्रजी शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य तमिलनाड में है। चक्रवर्ती नैनार एम० ए० मद्रास मे हैं उन्होंने समयसारका अँगरेजीमें अनुवाद किया। आपने नीलकेशीके एक ग्रन्थ (दर्शन विषयक) का तमिलमे अनुवाद किया था। अप्पाण्डे नैनार काजीवरम में हैं। आपने सर्वार्थसिद्धिका अँगरेजीमें अनुवाद किया। अप्पाण्डे नैनार सेवानिवृत्त हुए हैं व आजकल मद्रास मे है। अप्पाण्डे नैनार शास्त्री आशु कवि थे।

सेवा-कार्य पडितजीने यस० यस० जैन हाईस्कूलमें धर्म शिक्षकका कार्य किया। बादमें पोरवाल ब्रदर्स चस्माहलामें काम किया व आज तक कर रहे है। आप जैन मन्दिर व सघ की कार्यकारिणी मे है। सन् १९६२ में योगसार (आचार्य योगीन्दुदेवका तमिल भाषामे अनुवाद कर छपाया था। अपनी माता जी की पुण्य स्मृतिमें सम्मेद शिखर पूजाविधान प्रकाशित कराकर शिखरजी जाने वाले यात्रियोको वितरित किया था। आप लगभग तीन दर्शकोंमे धर्म व समाजकी सेवा कर रहे हैं।

●

स्व० नरसिंहदासजी शास्त्री कौन्देय

●

आपका जन्म आगरा जिलान्तर्गत चावली ग्राममे हुआ। चावली ग्राममें विगत ५० वर्षोसे एक न एक विद्वान् जन्म लेते रहे। उन्हीं में से एक चोटीके विद्वान् पंडित नरसिंहदासजी भी है। आपके पिताजी श्री ला० हेतसिंहजी एक धर्मानुरागी व्यक्ति थे। वैद्यकका व्यवसाय था। स्थिति साधारण थी किन्तु जिन भक्ति एवं स्वाध्याय आदिमें विशेष रुचि थी।

आपकी प्रारंभिक शिक्षा चावली ग्राम में ही हुई। बादमें आपने अलीगढ़ और खुरजा आदि स्थानोंमें

शिक्षा ग्रहण की। उस समय कोई जैन विद्यालय नहीं थे। धर्मकी पिपासा आपके हृदयमें अंगड़ाइयाँ ले रही थी। वह ऐसा जमाना था जब ब्राह्मण विद्वान् जैन छात्रोंको पढ़ाते नहीं थे। आपके पिताश्रीके हृदय-में तथा स्वयं आपके हृदयमें शिक्षा प्राप्त करनेकी अत्यन्त ललक थी। फलतः आप पंडित गौरीलालजी शास्त्री एवं पंडित रणछोरदास जी के साथ काशी गए और वेश बदलकर एक अजैन छात्रके रूपमें व्याकरण, न्याय और साहित्य आदि का अध्ययन करने लगे। पिताश्रीकी प्रेरणा और अपनी लगनसे आप दिन दूनी रात चौगुनी मेहनत करनेमें निरत रहे। संयोगवश एक बार आपके छद्मवेषका पता चल गया और तब आप वहाँसे प्राण बचाकर भागे। अध्ययनकी ऐसी ललक और अनवरत परिश्रम आजकी पीढ़ी क्या किसी पीढ़ीके छात्रोंमे दर्शन मात्रको नही मिलता। आप काशीसे भागकर नदिया पहुँचे किन्तु कुछ समय बाद ही वह स्थान भी आपको छोड़ना पडा।

१९ वर्ष की आयुमें आपको अजमेरके स्वनाम धन्य रा० ब० सेठ मूलचन्दजी सोनीने अपने यहाँ धर्म शिक्षण और निजी स्वाध्यायार्थ नियुक्त किया। उस अवसरपर आपने ग्रन्थोंका गम्भीर मनन किया। साथ ही परंपरागत कर्मकाण्ड ग्रन्थोंका गहन मनन और शास्त्रीय विधि विधानोंका अवलोकन किया। आपके हृदय प्रदेशपर अध्ययन की कितनी अथक लालसा थी कहा नही जा सकता। अपनी प्रतिभाके कारण आप निरन्तर जनताके हृदयहार बनते गए और कर्मकाण्ड सम्बन्धी ज्ञान और यश अहर्निश बढता ही गया।

अजमेरमें उस समय अच्छी ज्ञान गोष्ठी हुआ करती थी जिसमें स्वय सेठ मूलचन्दजी बैठकर ज्ञानास्वादन किया करते थे। श्री फूलचन्दजी पाण्डया आदि कई स्वाध्याय प्रेमी ऐसे थे जो गोम्मटसारादि ग्रन्थोका मनन किया करते थे। आपको उस ज्ञान गोष्ठीसे बहुत कुछ सीखनेका अवसर मिला। आपका ज्ञान कोप बढता गया आपके पाण्डित्यपर निखार आता गया और आप लोक प्रिय और यश-भाजन बनते गये।

अजमेरमे आपने त्रयोदश वर्षों तक कार्य किया इसके उपरान्त पिताश्री का निधन हो जानेके कारण आपको अजमेर छोडना पडा। रा० ब० सेठ मूलचन्दजी सोनी व उनके सुपुत्र श्री रा० ब० सेठ नेमिचन्दजी सोनीने आपसे बहुत ही आग्रह किया परन्तु आप फिर अजमेरमें रुक नही सके। परिणामतः आप अजमेरसे चावली चले आये और व्यवसाय करने लगे। व्यवसायकी उलझन ने भी आपकी ज्ञानपियासाको स्वल्प भी कम नही होने दिया। व्यवसायमें निरत रहनेपर भी आपकी स्वाध्यायकी लगन अजस्र रूपसे बनी रही और यही कारण है कि आपके निरन्तर बढते हुए ज्ञान प्रगतिके चरण क्षणैकार्थ भी नही सके।

आप कर्मकाण्डके पण्डित बन गए। कर्मकाण्ड .सम्बन्धी पाण्डित्यके द्वारा आपने जो कीर्ति हस्त गत की वह कहनेका विषय नही। आपकी प्रतिष्ठादिकी विधि उस समय अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती थी। श्रद्धालु धार्मिक जन चावली ग्राम तक पहुँचते और आपको ससम्मान आमन्त्रित कर ले जाते थे। आपके द्वारा लगभग ५० पंचकल्याणक एवं गजरथ सम्पन्न हुए। इसका ज्वलन्त उदाहरण यह है कि गजरथ क्षेत्र बुन्देलखण्डमें आज भी आपका नाम ससम्मान स्मरण किया जाता है।

संवत् १९९२ में अजमेरके धार्मिक सर सेठ भागचन्दजी सोनीने इन्हें पुनः अपने यहाँ निजी स्वाध्यायार्थ बुला लिया। आपको इस परिवार से जो भी सम्मानवर्द्धक वात्सल्य मिला वह अब शायद विरले विद्वानों को ही मिलता होगा वह भी सौभाग्य से। जीवनके अन्त तक आप अजमेर में ही रहे। कार्तिक सुदी त्रयोदशी संवत् २००१ में आपका देहावसान हो गया।

अजमेरमें रा० ब० सेठ टीकमचन्दजी सोनीने पूज्य १०८ मुनिराज चन्द्रसागरजी महाराजकी मङ्गल-

मयी प्रेरणासे ८४ फुट ऊँचा विशाल मानस्तंभ सिद्धकूट चैत्यालयमें बनवाया था। उसका सम्पूर्ण विधि कार्य आपकी शास्त्रीय सम्मति से ही सम्पन्न हुआ था।

आप पर्यूषण पर्वमें कई स्थानोंपर गये और अपने सुवासिक्त-प्रवचनोंसे बड़े-बड़े धुरन्धर विद्वानों मन लुभाया। आपकी शैली रोचक एवं गभीर थी। आपके चार पुत्र रत्न हुए किन्तु खेद है कि अब उनमेंसे द्वितीय पुत्र नही है। आपका लगभग ८० व्यक्तियोंका सुशिक्षित परिवार है।

आप कर्मकाण्ड सम्बन्धी ज्ञान उत्तराधिकारमें अपने तृतीय पुत्र श्री हेमचन्द जैन कौंदेय शास्त्री M. A. न्यायकाव्यतीर्थ "प्रभाकर" को सौंप अपनी कीर्ति और पाण्डित्यको अमरत्व प्रदान कर इस असार संसारसे पलायन कर गये।

●

श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन एम० ए०

●

आपका जन्म आगरा जिलेके फिरोजाबाद नामक शहरमें ३१ दिसम्बर १९३३को पिता श्री रामस्वरूपजी जैन शास्त्री प्रतिष्ठाचार्यजीके घरमें हुआ। आपकी माताश्रीका नाम श्रीमती चमेलीबाई है। आपका गोत्र पद्मावती पुरवाल है।

आपके पिता समाजमें सदैव समादर तथा प्रतिष्ठा पाते रहे है। आज भी उनका समाजमे अच्छा सम्मान है। मात्र पिता ही नही अपितु पूरा परिवार अपनी विद्वत्ताके लिए प्रख्यात रहा है।

आपके पिताजीने हमेशा जिन्दादिलीके साथ आर्थिक आपदाओंका सामना करते चले आये। आपके ऊपर नियतिकी कुटिल दृष्टि तो थी ही साथ ही आजके समाजमें निगूढ छद्मवेशी पुरुषोंने भी आपके ऊपर कम वज्रपात नही किया। तीन बार चोरियाँ हुई जिसमें दूसरी बारकी चोरीमे कुछ भी शेष नही बचा था चोर सब कुछ ले गये थे और हुआ यह कि तदुपरान्त आपके पिताश्रीको नये सिरेसे गृहस्थीका समस्त प्रबन्ध करना पडा। माताजी बहुत दिनोंसे बीमार है। उनकी दवाई आदिमें बहुत पैसे खर्च हुए परन्तु आज भी स्वास्थ्य लाभ नही हुआ। अब आपकी आर्थिक स्थिति सामान्य है।

आठ साढे आठ वर्षकी उम्रमें आप अध्ययनार्थ श्री पन्नालाल दि० जैन विद्यालय फिरोजाबादमें प्रविष्ट हुए। १९४५में आपने कक्षा चारकी परीक्षा अच्छे अंकोमें उत्तीर्ण की। जब आप कक्षा चारमें थे। तब आपके ऊपर ऐसी भयंकर बीमारीका प्रकोप हुआ कि आप मृत्युके मुँहसे ही लौटे। लोगोंने आपको मृत समझ लिया। घरमें कुहराम मच गया किन्तु कुछ ही क्षणों बाद देखा गया तो आपकी श्वास चलती हुई प्रतिभासित हुई और आपने नया जीवन प्राप्त किया।

इसके बाद आप एस० आर० के० इण्टर कालेज फिरोजाबादमें प्रविष्ट हुए वहाँ आपको मैट्रिककी परीक्षामें (सन् १९५१में) प्रथम श्रेणी मिली।

साहित्यके प्रति आपकी रुचि दिन प्रतिदिन बढती गई। इण्टर कालेज फिरोजाबादमें आप अपने समयके सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे। आपको १९४८से १९५३ तक बराबर सर्वश्रेष्ठ वक्ताके प्रमाणपत्र एवं पुरस्कार मिलते रहे। आप जब इण्टरके विद्यार्थी थे तब आपका विवाह राजेश्वरी देवी आत्मजा श्री जय-कुमार दासजी जैन (एटा निवासी) से सम्पन्न हुआ।

१९५३में आपने श्री पी० डी० जैन इण्टर कालेज फिरोजाबादमें सहायक अध्यापकके रूपमें कार्य शुरू किया और आज भी आप इसी विद्यालयमें प्रधानाचार्यके पदपर कार्यरत है। स्वाध्यायी रूपसे आपने बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षायें उत्तीर्ण की।

तीर्थ क्षेत्र कमेटी, जैन समाज बुरहानपुर, जैन समाज फिरोजाबाद, मानसरोवर साहित्यसंगम फिरोजाबाद एवं श्री गोपीनाथ इण्टर कालेज फिरोजाबाद आदि अनेक संस्थाओंसे विद्वत्ता एवं समाजसेवाके उपलक्ष्यमे आपको एक नही अनेकों अभिनन्दन एव सम्मानपत्र प्राप्त हुए है।

आप अ० भा० विद्यार्थी परिषद्की शाखा फिरोजाबाद, एस० आर० के० कालेजकी छात्रपरिषद् तथा महावीर जयन्ती सभा फिरोजाबादके अध्यक्ष रहे। इसका कारण आपकी विद्वत्ता एवं लोकप्रियता ही है।

आप गत पन्द्रह वर्षोंसे विद्यालय पत्रिकाके सम्पादक मण्डलमें है तथा कालेजकी हिन्दी परिषद्के अध्यक्ष है। नगरके बुद्धिजीवियोकी प्रतिनिधि संस्था 'मान सरोवर साहित्य संगम' के मुख्य सचेतक तथा उ० प्र० शिक्षक सघ जनपद आगराके अध्यक्ष हैं। आपने अनेकों पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन किया।

इतना ही नही आपकी योग्यतासे प्रभावित हो अनेकों बडी-बड़ी संस्थाएँ आपसे सहयोग प्रार्थिनी हुई। आपने सभीकी कुछ-न-कुछ सेवायें की। आप अखिल भारतीय शाति वीर सिद्धांत संरक्षिणी सभा, अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद् तथा अ० भा० जैन परिषद् परीक्षा बोर्डके सदस्य हैं। तथा बैठकमें आवश्यक रूपसे पहुँचते है। उक्त संस्थाओंमें आप नामके लिए तो सदस्य है किन्तु काममें सबसे एक कदम आगे है।

उ० प्र० माध्यमिक शिक्षक संघ द्वारा संचालित आन्दोलनमें आपने सर्वप्रथम हाथ बटाया। शायद इसीके फलस्वरूप १९६९मे आपको एक माह जेलकी हवा खानी पडी। सत्याग्रह एवं जेल जीवनकी सुखद स्मृतियाँ आज भी आपको प्रेरणा देनेमें नही चूकती। आपको फिरोजाबादके प्रसिद्ध जैन सत्याग्रहको संचा-लित करनेका अवसर मिला।

आपने अनेको समारोहोंका संचालन व सयोजन किया जिनमेंसे निम्न समारोह सचमुच चिरस्मरणीय बन गये है। अग्रसेन जयन्तीका कवि सम्मेलन, फिरोजाबादके जैन मेलेमे जैन समाजके उत्कृष्ट विद्वान् पडित इन्द्रलालजी शास्त्री, जयपुरकी अ० भा० शास्त्रि परिषद् द्वारा अभिनन्दन, मानसरोवर साहित्य संगम द्वारा न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्द्रजी कौन्देयका अभूतपूर्व सम्मान और फिरोजाबादका जैन सत्याग्रह।

लौकिक शिक्षाके साथ ही धार्मिक शिक्षाके प्रति भी आपका प्रगाढ स्नेह रहा और स्नेह मात्र ही नही रहा बल्कि धार्मिक शिक्षा एवं सद्गुणोंके प्रसार हेतु आपने आचार्य विमलसागर जैन विद्यालयके नामसे एक धार्मिक पाठशाला नईबस्ती फिरोजाबादमें संस्थापित की जिसमे आज भी अनेकों छात्र अध्ययन करते हैं। उस शालामें उन्हें धार्मिक शिक्षा दी जाती है।

साहित्यके क्षेत्रमें आपने सराहनीय काम किया। आपके पचाससे अधिक निबन्ध प्रकाशित हो चुके

हैं। मुनि विद्यानन्दजी (कृतित्व और व्यक्तित्व) आचार्य विमलसागरजी (परिचय) एवं आचार्य विमलकीर्ति जी (परिचय) ये तीन रचनायें प्रकाशित हैं तथा अपनी कोटिकी अद्वितीय हैं।

हिन्दी दिग्दर्शन, हिन्दी रचना कल्पद्रुम, रचनारश्मि, चन्द्रप्रभा वैभव एवं व्याकरण प्रदीप नामक आपकी पुस्तकें आपकी प्रकाशित अमर रचनायें हैं। "समाज किधर ?" और "यह फिरोजाबाद है" नामक दो निबन्ध संग्रहोंका प्रकाशन विचाराधीन है।

आपने अब तक जितने पत्र-पत्रिकाओंका सम्पादन किया वे निम्न हैं १. पद्मावती संदेश, २. अमृत ३. जैन संस्कृति, ४. युग परिवर्तन।

इस तरह आपको उदीयमान प्रतिभा और व्यक्तित्वपर विहंगम दृष्टि डालते हुए कहा जा सकता है कि आप एक उच्चकोटिके विद्वान्, अनन्य साहित्य प्रेमी एवं अनुपम साहित्य सेवी, कर्मठ समाज सेवक तथा धार्मिक पंडित हैं।

●

श्री नीरजजी

●

जन्म रीठी (जबलपुर) ३१-१०-१९२६ वर्त्तमान निवास सतना (म० प्रदेश)।

फरवरी १९४४ से लिखना आरम्भ किया। साप्ताहिक 'प्रकाश' जबलपुर जैन सन्देश आगरा 'विन्ध्यकेशरी' तथा देहाती दुनियाँ (सागर) में कई वर्षों तक निरन्तर लिखते रहे।

हिन्दी, उर्दू तथा लोक भाषा (बुन्देलखंड) के प्रसादीय कवि। सतनाकी साहित्यिक जागृतिके अग्रदूत तथा 'अभिनव' साहित्य गोष्ठीके स्तंभ। लोक साहित्यके संकलनको रुचि। गाँधीसे प्रभावित, नगर पालिका सतनाके कांग्रेसी सदस्य एवं बिक्रीकर सलाहकार। प्रकाशित पुस्तकें—अहिंसाके अग्रदूत, वर्णी बन्दना, कुंडलपुर, तुलादान, आजादी की दुलहन। अप्रकाशित रचनाएँ—राजा हरदौल, एम० एल० ए० की बीबी, पानी और पाषाण, ऐसा दीप धरो, एक ऐसा दर्द है (उर्दू)।

जैनागमके गहन अध्येता, उच्चकोटिके वक्ता, उन्नत व्यक्तित्व एवं सफल समाज कार्य कर्त्ता। मध्यप्रदेशके लोकप्रिय समाजसेवी मिलनसार व्यक्ति श्री नीरजजी अब भी जन-जनके आत्मीय है।

●

श्री नरेन्द्रपालजी

●

आपका जन्म उत्तरप्रदेशके एटा जिलेके अन्तर्गत गहेतू नामक गाँवमें १५ जनवरी सन् १९३६ को हुआ। आपके पिता श्री वासुदेव प्रसादजी मध्यम आर्थिक स्थितिके व्यक्ति थे।

सन् १९४७ में आपने स्थानीय विद्यालयसे कक्षा ४ पासकर भारतीय विद्यालय निधौलीमें प्रविष्ट हुए। १९४८ में तीन माहकी लम्बी बीमारीने आपके स्वास्थ्यको तहस-नहस कर दिया।

१९५७ तक आपने बनारससे शास्त्री, कलकत्तासे काव्यतीर्थ एवं आगरा विश्वविद्यालयसे बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। इन्ही दिनों आपने आदर्श हाईस्कूल जीवाजीगंज मोरेनामें हिन्दी अध्यापनका कार्य किया तथा आत्मनिर्भर रहे।

माघ कृष्ण ३ संवत् २०१६ में आपका विवाह एटा जिलेके तखामन ग्रामवासी श्री हुण्डीलालजी जैनकी पुत्री सौ० चन्द्रप्रभा जैनके साथ बडी धूमधामसे सम्पन्न हुआ। उस समय आप अध्ययन एवं अध्यापन कार्य कर रहे थे।

१९६१ में आपने बारहसेनी डिग्री कालेज अलीगढ़से एम० ए० (हिन्दी) की परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। विद्यालयमें आपका प्रथम स्थान आया तथा आपको कालेजका स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। इसके बाद १९६६ में आपने एल० टी० किया।

१९६६ में ही आपके पिताका स्वर्गवास हो गया। इससे आपके हृदय पटलपर गहरा आघात हुआ।

साहित्य क्षेत्रमें संस्कृतकी अपेक्षा हिन्दी आपको अधिक रुचिकर लगी यही कारण है कि आपने हिन्दीके क्षेत्रको ही अपनाया। हिन्दीमें आपने अनेकों निबन्ध लिखे तथा छात्रोंके लाभार्थ कुछ हिन्दीकी सहायक पुस्तकोंकी भी रचना की। उनमें प्रमुख पुस्तकें निम्न हैं—

१. कमल हिन्दी दिग्दर्शन, २. रचना राजीव, ३. आलोचनात्मक-आहुति।

विद्यालयके छात्रोंकी सर्वाङ्गीण उन्नतिको ध्यानमें रखते हुए आपने विद्यालय पत्रिकाका सम्पादन एवं प्रकाशन भी किया। आपके लगभग २० निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं।

आप जैन समाजके एक दिग्गज विद्वान् एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। विद्यार्थी जीवनमें आपने स्वर्ण पदक प्राप्त किया। दि० जैन समाज एटासे श्री ऋषभ निर्वाणोत्सव सन् १९५४ में आयोजित वाक् प्रतियोगितामें आपने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया।

आप एक सच्चे समाजसेवी हैं।

●

पं० नरेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ

●

जन्म आपका जन्म महाराष्ट्र प्रान्तके अकोला जिलान्तर्गत कारंजा नामक स्थानमें हुआ। आपकी जन्मतिथि उन्नीस जून १९०६ है। आपके पिताका नाम श्री जयवत साव भिसीकर एव माताजीका नाम केशरबाई था। जन्मके समय आपके पिताजीकी आर्थिक स्थिति साधारण थी। आपके पिताश्री कपास का व्यापार करते थे।

शिक्षा : १९१२ ई०में आप स्थानीय म्यूनिसिपल स्कूलमें प्रविष्ट हुए तथा वहाँसे चौथी कक्षा तक शिक्षा ग्रहण कर आपने सन् १९१८में महावीर ब्रह्मचर्याश्रम जैन गुरुकुल कारंजा में प्रवेश लिया। वहाँ आपने ब्रह्मचारी देवचन्दजीके गुरुत्वमें संस्कृत, धार्मिक गोम्मटसार, राजवार्तिक, व्याकरण और

लघुकौमुदीका अध्ययन किया। १९४२में बंगीय संस्कृत परिषद् सेंटर इन्दौरसे आपने न्यायतीर्थ किया। आपने गुरुकुलमें अध्ययनके साथ-साथ अध्यापन कार्य भी किया।

विवाह—सन् १९२८में हिरासाव मालासा डोणगावकर-नागपूर वालोंकी सुपुत्री सौ० मन्दोदरी बाईके साथ आपका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। विवाहके समय आप व्यापार-रत थे। आपकी धर्म-पत्नी यद्यपि साधारण धार्मिक शिक्षा प्राप्त ही महिला हैं किन्तु धर्मानुराग एवं व्यवहारिकताका जो अनुपम गुण उनमें विद्यमान है वह बहुधा आजकलकी महिलाओंमें विरलोंमें ही देखनेको मिलता है।

अर्थोपार्जन : आपके पिताश्री जयवंत सावजी कपासके व्यापारी थे। आपने अध्ययन समाप्त कर गृहस्थीकी ओर दृष्टिपात किया। सन् १९३४ से १९४७ तक आप म० प्र० आश्रम (जैन गुरुकुल)में अध्यापन कार्य करते रहे। उक्त संस्था सामाजिक थी और आप वहाँ धर्माध्यापकके रूपमें नियुक्त किये गये थे। सन् १९४०में आपने किरानाकी दूकानका समारम्भ किया। अच्छी आय हो जाती थी तथा व्यापारके साथ अध्ययन एवं मनन कार्य भी चलता रहता था।

सन् १९६४से १९६९ तक आप पुनः पाँच वर्ष श्री म० ब्र० आश्रम जैन गुरुकुलमें धर्माध्यापकके रूपमें सेवारत रहे। इस तरहसे अर्थोपार्जनके मामलेमें आपने अर्थलोलुपताका प्रदर्शन कभी नही किया। आप गम्भीर प्रकृतिके व्यक्ति हैं तथा मात्र पैसा कमाना ही अपने जीवनका ध्येय नही मानते। यही कारण है कि कभी गुरुकुलसे त्यागपत्र दे आप घर आकर व्यापारमें लग जाते थे और कभी व्यापारको छोड पुन. गुरुकुल पहुँच जाते थे। संक्षेपत. आपको अर्थ कष्टके दिनोके दर्शन कभी नही करने पडे।

साहित्य सेवा : आध्यात्मिक ग्रन्थोंका यथार्थ अनुवाद करना ही आपका दृष्टिकोण था। आपकी रचनायें कल्याण मासिकमें और सन्मति मासिकमें प्रकाशित होती रही है। आपने स्वामी कार्तिकेय अनुप्रेक्षा ग्रन्थ, पञ्चाध्यायी ग्रंथराज, अष्ट सहस्त्री, प्रमेय कमलमार्तण्ड, मोक्षमार्ग प्रकाश, अष्ट पाहुड, जैन सिद्धान्त प्रवेशिका और क्षत्र चूडामणिका मराठी अनुवाद कर लोगोंके लिए हृदयग्राह्य विषय बनाया।

आपकी लेखन कला चमत्कारपूर्ण है। जितनी चतुरता आपको वक्तृत्व हेतु मिली है कही उससे अधिक लेखनी चलाने हेतु। आपने उक्त ग्रन्थों एवं रचनाओंका मराठी अनुवाद कर अनगिनत लोगोंका महान् उपकार किया ऐसा उपकार जो चिरस्मरणीय रहेगा।

●

श्री नेमिचन्द्जी वकील

●

आपका जन्म सहारनपुर नामक स्थानमें १० जनवरी १९०६ में तेरह पथी दिगम्बर जैन परिवारमें हुआ। आपके पिताश्रीका नाम ला० धवलकीर्ति था। जब आपकी अवस्था पाँच वर्षकी थी तब आपके पिताश्रीका निधन हो गया।

आपने बी० काम० एवं एल० एल० बी० की परीक्षा पास की तथा सन् १९३० में वकालत करने लगे। यद्यपि धार्मिक विद्यालयोंमें आपने शिक्षा नही पायी किन्तु फिर भी आपकी रुचि प्रारम्भसे ही स्वाध्यायकी ओर उन्मुख रही जिसके फलस्वरूप श्री धवल, जयधवल, महाबन्ध, गोमटसार, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, पंचसग्रह प्राकृत व संस्कृत आदि सिद्धान्त ग्रन्थोंका समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्ति-

काय, समाधिशतक आदि अध्यात्म ग्रन्थों एवं परीक्षामुख, प्रमेयरत्नमाला, न्यायदीपिका और न्यायचक्र आदि न्याय ग्रन्थोंका गहन अध्ययन किया। स्वाध्यायसे आपने ऐसी पाण्डित्यपूर्ण प्रतिभा प्राप्त की कि श्री धवलजी आदि ग्रंथोंकी शुद्धि-अशुद्धियाँ भी आपने प्रकाशित कराईं।

सन् १९४८ में आपने पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णीके समक्ष पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। स्वाध्याय और धर्मसाधना की ऐसी अटूट लगन आपके हृदय प्रदेशमें अंकुरित हुई कि १९५५में अपना कुल समय स्वाध्याय एवं धर्मसाधनामें व्यतीत करनेकी दृष्टिसे आपने वकालत करना छोड़ दिया और दूसरी प्रतिमा का व्रत ग्रहण किया।

आपने सामाजिक क्षेत्रमें भी कार्य किया है। आप श्री दि० जैन गुरुकुलके मन्त्री रहे। उस समय आपने अपने व्यक्तित्वकी जो छाप समाजमें डाली वह आज भी अमिट है। आप जैन इण्टर कालेज एवं जैन डिग्री कालेजके भी मन्त्री रहे। आप जैन चेरिटेबिल डिस्पेन्सरी सहारनपुरके मन्त्री एवं अध्यक्ष रहे। स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, भा० दि० जैन विद्वत् परिषद् एवं भा० शास्त्रीय परिषद्‌की कार्यकारिणी कमेटियोंमें आपने एक सदस्यके रूपमें ही जैसी सेवायें की हैं उनसे कमेटी और समाज उऋण नही हो सकता।

अपनी बहुमुखी प्रतिभा, समाज सेवाके प्रति अथक लगनशीलता और उदार भावनाओंके फलस्वरूप १९५७में श्री सम्मेद शिखरजी पर समाजकी ओरसे आपने ससम्मान "सिद्धान्तभूषण"की उपाधि प्राप्त की।

व्यवहार एवं निश्चय रत्नत्रयपर आपका एक ट्रेक्ट भी कलकत्तेसे प्रकाशित हुआ।

आप अपनी प्रतिभा तथा विद्वत्ताको सदैव छिपाते रहे ताकि आपकी विद्वत्ताकी चर्चा न हो पाये क्योंकि अपनी प्रशंसा सुनना आपकी सामर्थ्यसे परे है। अपनी बड़ाई आप किसी भी पुस्तकमे प्रकाशित नही होने देना चाहते। यह बात दूसरी है कि गुलाबकी सुगन्धिको कोई भी आवरण रोक नही सकता यहाँ तक कि वह स्वत अपनी सुगन्धिके प्रसारणको रोकनेमें असमर्थ रहता है। पाठक इतने ही सूक्ष्म परिचयसे अनुभव करेंगे कि आपकी प्रतिभा योग्यता और विद्वत्ता किस श्रेणीकी होगी।

●

श्री नेमिचन्द्र एम० ए० द्वय साहित्याचार्य

●

आपका जन्म पंद्रह दिसम्बर सन् १९३८ में मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत पलेह नामक गाँवमें हुआ। आपके पिताजीका नाम श्रीमान् लालचन्द्रजी एवं माताजीका नाम श्रीमती सुखरानी है। आपके जन्मके समय आपके घरकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी रही परन्तु घरकी फूट एवं लुटेरोके कारण सारी सम्पत्ति लुट गयी।

आपकी शिक्षाका श्रीगणेश स्थानीय प्राथमिक शालासे ही हुआ। १९५८में आपने शास्त्रीकी परीक्षा पास की। उस समय आप अनुशासनशीलता एवं अपनी धार्मिक अभिरुचिके कारण विद्यालयके पुस्तकाध्यक्ष भी थे। २४ जून सन् १९५८ में आपका विवाह भी दमोह निवासी श्री छोटेलालजी जैनकी सुपुत्री सरोज जैनके साथ हो गया। इसके बाद आपने साहित्य विशारद, साहित्यरत्न, साहित्य शास्त्री और बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। हिन्दीसे एम० ए० और साहित्याचार्य करनेके उपरान्त आपने संस्कृतसे एम० ए० किया।

आपने आरम्भसे ही अपने जीवनका लक्ष्य समाज सेवा बनाया था। अपनी योग्यता एवं विद्वत्ताकी निरन्तर प्रगति करते हुए आपने अपने लक्ष्यके अनुकूल ही कार्य किया और आज की सामाजिक संस्थाओंमें कार्यरत हैं। जीवन निर्वाहके लिए सितम्बर १९५८ से श्री जैन पाठशाला बिजनौरमें आपने अध्यापन कार्य शुरू किया और वहींपर आपने सितम्बर १९६२ तक कार्य किया। इसके बाद अक्टूबर १९६२से अक्टूबर १९७१ तक श्री जैन बाला विश्राम आरामें हाईस्कूल शिक्षक एवं धर्माध्यापक रहे साथ ही जैन सिद्धान्त भवनमें पुस्तकालय अध्यक्ष भी रहे।

आपने श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुलमें प्राचार्य पदपर कार्य किया। अनुशासनप्रियता एवं धार्मिक अभिरुचिके कारण सागरमें श्री बाबूलालजी द्वारा सम्मानित किये गये।

आपकी लेखन कलाका श्रीगणेश संस्कृत पद्यसे हुआ। २७ वर्षकी अवस्थामें संस्कृतके छन्दोंमे पिरोकर आपने श्रीगुरु गोपालदासजी बरैयाको श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। तथा ३३ वर्षकी अवस्थामें संस्कृतके पद्योंमें ही सजाकर आपने श्री परमेष्ठीदासको भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। मुनि कनककीर्तिजी कृत 'कषाय जय भावना' नामक लघु ग्रन्थका आपने हिन्दी अनुवाद किया और उसे जैन सिद्धान्त भास्करमें प्रकाशित कराया।

समाजमें फैली हुई कुरीतियों तथा आडम्बरोंकी ओर आपका सदैव ध्यान रहा तथा अपनी सामर्थ्य भर आपने उनका उन्मूलन किया। आज भी आप इस दूषित वातावरणके अन्त करनेमें लगे रहे। समाजके महान् अभिशाप दहेज प्रथाका उन्मूलन आपका प्रमुख लक्ष्य रहा तथा उसमें आपने सफलता भी प्राप्त की। आप जैन समाजको अपना परिवार समझ कर उसकी समस्त कुरीतियोंका अन्त कर देना चाहते तथा आपकी सेवाएँ चिरस्मरणीय एवं आदरणीय रहेंगी।

●

श्री नेमीचन्दजी एम० ए०

●

मातुश्री भूरीबाईकी पूत कुक्षिसे देलवारा (झाँसी उ० प्र०) में ८ मई सन् १९३४ में आपका जन्म हुआ। आपके पिताजीका शुभ नाम पलटूरामजी है। आपके पिताजीकी प्रबल इच्छा थी कि आप उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक समाज सेवी तथा कर्म निष्ठ पुरुष बनें। पिताजीके इस स्वप्नको आपने साकार किया।

आपने बनारससे साहित्याचार्य, कानपुरसे संस्कृतमें एम० ए०, इन्दौरसे जैन दर्शन सिद्धान्त शास्त्री, कानपुरसे बी० एड०, प्रयागसे सा० र०, कलकत्तासे काव्यतीर्थ और ग्वालियरसे हिन्दीमें एम० ए० किया।

निरन्तर अध्ययन करते रहनेसे आपके हृदय प्रदेशपर सदैव महान् विद्वानोंका निवास रहता था। परिणामतः आपके हृदयमें उत्तमसे उत्तम संस्कारोंने घर कर लिया और वह अलौकिक आभासे जगमगा उठा।

आप एक सच्चे साहित्य सेवी एवं कर्मनिष्ठ पुरुष हैं। आपकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित और मृदुल है। संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओंके आप चोटीके विद्वान् हैं।

जीविका निर्वाह हेतु आपने अबतक सिर्फ शिक्षण कार्य ही किया है। आप दो वर्ष अपनी जन्मभूमिमें ही अध्यापक रहे। इसके उपरान्त पन्द्रह वर्षतक संस्कृत विद्यालय बरुआसागरमें प्रधानाध्यापक रहे और आजकल आप जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेनामें प्रधानाध्यापक पदपर कार्य रत हैं।

●

पंडित निर्मलकुमारजी बोहरा

●

जीवन-परिचय

आपका जन्म भारतके गुलाबी नगर जयपुरमें हुआ । आप की जन्मतिथि माघ शुक्ला पचमी विक्रम सवत् २००२ है । आपके पिता श्री कपूरचन्द्रजी बोहरा जयपुर राजघरानेमें मोदी थे । बोहराजीका परिवार भरा पूरा है । स्वयं आपके एक पुत्र व दो पुत्रियाँ है ।

शिक्षा-कार्य

आपकी आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई । असंस्थागत विद्यार्थीके रूपमें आपने सन् १९६२ मे माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान अजमेरसे हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की । जब जैनदर्शनकी रुचि बढी तब ही अठारह वर्षकी अल्प आयुमें आपको दिगम्बर जैन संस्कृत कॉलेजमें शिक्षकका कार्य मिल गया । सन् १९६७ मे राजस्थान जैन साहित्य परिषद जयपुरसे धर्मालकार परीक्षा दी, सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया । १९६९मे शिक्षा विभागीय संस्कृत परीक्षा राजस्थान जयपुरसे शास्त्री परीक्षा जैनदर्शन लेकर उत्तीर्ण की । बादमें राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुरसे जैनदर्शनाचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की । आपके गुरु गुलाबचन्द्रजी छावडाने आपको बडी प्रेरणा दी । वर्तमानमें आप निजी व्ययसे शिक्षा शास्त्रीका प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं ।

सामाजिक धार्मिक सेवा

बोहराजी धार्मिक-सामाजिक अभिरुचिवान उदीयमान विद्वान् है । वे वेदी प्रतिष्ठा कलशारोहण सिद्ध चक्र विधान, विवाह शिलान्यास-गृहप्रवेश जैसे कार्य भी निःशुल्क कराते है । पर्यूषण पर्वपर भी निमन्त्रित होकर बाहर प्रवचन करनेके लिये जाते हैं ।

●

साहित्यकार नीहार स्नातक

●

जीवन-परिचय

नीहारजीका मूल नाम श्रवणकुमार है पर लेखनके क्षेत्रमें वे इसी नामसे प्रसिद्ध हैं । आपका जन्म १५ अप्रैल १९३६ को हुआ । जन्म भूमि खुरई है । पिता श्री मूलचन्द्रजी और माताजी पार्वती देवी है । आपके सम्बन्धी साहित्यकारोंमें प्रो० सरोजकुमार इन्दौरका नाम उल्लेखनीय है । आपके परिवारमें डॉ० मोतीलालजीने खुरईमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है ।

शिक्षा-कार्य

आपने जैन विद्यालय सोनागिरिमें प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की । माध्यमिक शिक्षा दिगम्बर जैन संस्कृत महाविद्यालय सागरसे प्राप्त की । जब आप कलकत्ता
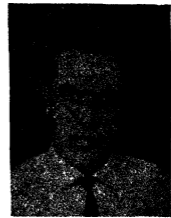
व बनारससे प्रथमा व प्रवेशिका चतुर्थ खण्ड कर चुके तब सागर व कोतमामें सीवन कला केन्द्रके माध्यमसे कार्यमें लगे। स्वाध्यायी छात्रके रूपमें १९५९में मैट्रिक किया। इसी वर्षसे शिक्षक हुए और १९६१ में अम्बिकापुरमें बुनियादी प्रशिक्षण प्राप्तकिया। राजेन्द्र 'चंचल' जीकी प्रेरणासे आपने 'नीहार' उपनामसे लिखनेका श्रीगणेश किया। लेखन-अध्यापनके साथ अध्ययनका क्रम चलता रहा। आपने एम० ए० बी० टी० साहित्यरत्न कर लिया।

सेवा-कार्य

वीर सेवा समिति, सिद्ध चक्र मण्डल विधान समितिकी सभाके मंत्री रहे। अम्बिकापुरमें सांस्कृतिक परिषद्के सचिव रहे। ज्योत्स्ना साहित्य परिषद कोतमाके मन्त्री रहे। बाल मेला समिति कोतमा, आदिवासी मेला, प्रदर्शनीमें सहयोग दिया। कोतमा बिगवानीमे शिक्षकके रूपमें कार्य किया। शब्द किरण पुस्तकका सम्पादन किया। लेनिन संग्रह आपकी अनूदित रचना है। शब्द किरण विजय ज्योति शीर्षक कृति भी संकलित की। समय-समयपर साहित्यिक गोष्ठियोंमें भाग लेते रहे। आप शोध प्रबन्ध लिखनेके लिए यत्नशील हैं। चित्रकलामें आपकी अभिरुचि है। कवि होनेके नाते प्रकृतिके लगाव होना स्वाभाविक ही है। आप अपनी साहित्यिकता और शैक्षणिक योग्यताके लिए रतन जैन प्राध्यापक भोपालको प्रेरणा स्रोत मानते हैं।

●

पं० निर्मलचन्द 'आजाद'

●

आपका जन्म जबलपुर (म० प्र०) में ११ नवम्बर १९३८ को हुआ था। आपकी लौकिक शिक्षा-इण्टर तक दा० ना० जैन कालेज जबलपुरसे ही हुई। आपकी प्रतिभा एक राष्ट्रीय वीर रसके कविके रूपमें उदित हुई और अनेक कवि सम्मेलनोंके मंचपर जानेका सुयोग प्राप्त हुआ है।

आप एक उत्साही सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं विभिन्न स्थानीय संस्थाओके पदाधिकारी हैं। आप योगासन विशेषज्ञ है।

सांस्कृतिक अभिरुचिके रूपमें 'नाटक' अभिनयमें विशेष रुचि रखते है। स्वतन्त्र नाटकोंकी रचना भी की है। आप स्थानीय 'अनेकान्त' संस्थाके भू० पूर्व उपाध्यक्ष तथा वर्तमानमें प्रान्तीय संयोजक एवं महामंत्री हैं। समय-समयपर देश व प्रदेशकी पत्रिकाओंमें आपकी रचनायें प्रकाशित होती रहती हैं।

●

श्री निहालचन्द्रजी एम० एस-सी०

नयी पीढीको आध्यात्म और दर्शनके प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टि देने वाले नयी पीढीके प्रभावक व्यक्तित्व, निहालचन्द जैन एक चिन्तनशील युवक हैं।

आपका जन्म मडावरा (ललितपुर) उ० प्र० में एक सम्भ्रान्त परिवारमें १५ जुलाई १९४२ को हुआ था। आपके पिता श्री गुलझारीलालजी अपने समयके संस्कृत और प्राकृतके विशिष्ट विद्वान् थे। बुन्देलखण्ड पूज्य गणेश वर्णीको अवतरित कर धन्य हुआ है। जिन्होंने अपनी आत्मकथामें सिं० हरिसिंह सोंरयाजी को अपना लगोटिया मित्र कहा। श्रीहरिसिंह श्री गुलझारीलालके पिता श्री थे। अत वर्णीजीका वरद हस्त आपके पिताजी पर प्रारम्भसे रहा। और यही कारण था कि श्री गुलझारीलालजी अपने समयमें अपने क्षेत्रके एकमेव ऐसे अधिकारी विद्वान् थे जो धारावाहिक शैलीमें आध्यात्म-प्रवचन करते थे। विरासतमें आपको सस्कृत और अध्यात्मका ज्ञान मिला।

प्रारम्भिक शिक्षा

दिगम्बर जैन गुरुकुल अयोध्यामें स्नातक (विज्ञान) शासकीय महाविद्यालय टीकमगढ़ एवं स्नातकोत्तर शिक्षा रीवाँ (सागर यूनिवर्सिटी) से १९६४ में प्राप्त की। १९७४ में बी० एड०।

अपने अध्ययन कालसे ही कहानियोंके माध्यमसे आप जैन-पत्रिकाओंमें उभरने लगे। महाविद्यालयोंमें आयोजित व्याख्यान प्रतियोगिताओंमें सदैव स्थान प्राप्त करना आपकी अभिरुचि हो गयी और अध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् तुरत शासकीय सेवा (शिक्षा-विभाग म० प्र०) में आकर अपनी अभिरुचिको जैनदर्शन और जैन-कलाकी सेवामें समर्पित कर दिया।

लेखन

अध्यवसाय निरन्तर बढने लगा और नयी पीढीकी चुनौतियोंको अपने माथेका तिलक समझकर यह संकल्प लिया कि जैनधर्मकी प्रचलित मान्यताओको वैज्ञानिक-सन्दर्भमें युवा पीढीको बताया जाये और फिर जो कुछ लिखा सभीमें क्रान्तिकारी आवाज अनुनादित हुई। जैन जातिकी फिरकेबाजीकी खाईको पाटनेके समर्थक तथा दहेज जैसी कुरीतिके विरोधमे आवाज उठाने वाले एक साहसी तरुण हैं।

साहित्यिक अभिरुचि

'तीर्थराज अयोध्या' 'पथानुगामी' तथा जीवनके आमन्त्रण प्रकाशित पुस्तकें तथा एक एकाकी-संकलन तथा एक काव्य सकलन अप्रकाशित पाण्डुलिपिके रूपमें आबद्ध पडी है। लगभग १०० लेख, कहानियाँ और एकाकी विविध जैन पत्रिकाओमें प्रकाशित।

कवि हृदय एवं संवेदनशील होनेके नाते इधर कुछ वर्षोंसे नई शैलीमें कवितायें प्रकाशित हुई हैं।

एकान्तिक नयके घोर विरोधी। और तद्जन्य विडम्बनाओंसे व्यथित हृदयी है।

आधुनिक शैलीके वक्ता तथा प्राञ्जल भाषाके धनी आप युवा पीढीके समर्थ-लेखक हैं।

सम्प्रतिशासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नौगाँव (छतरपुर) म० प्र० में विज्ञान विषयके व्याख्याता हैं। नाटक अभिनयमें विशेष अभिरुचि।

बुन्देलखण्डकी जैन डायरेक्टरीके निर्माणमें आपका सक्रिय सहयोग लिया जा रहा है। विद्वत् अभिनन्दन ग्रंथके संयोजनमें सहसयोजक और सहसम्पादकके रूपमें अनवरत तीन वर्ष श्रमसाध्य कार्य किया।

पं० नारेजी प्रतिष्ठाचार्य

आपका नाम पं० कन्हैयालाल है परन्तु आप अपने गोत्र 'नारे' के नामसे जाने जाते हैं। आपके पिता श्री हुकुमचन्द चौधरी पद्मावती पोरवाल हैं। आपने अपने जीवनमें मुख्य रूपसे पंच कल्याण प्रतिष्ठाएँ एवं वेदी प्रतिष्ठाएँ करवाकर जैनधर्मकी प्रभावना की।

लौकिक शिक्षणके रूपमें ज्योतिष विशारद, आयुर्वेदाचार्य, होम्योपैथी (एम० बी० एच०-डी० सी० एस०सी०) महाराष्ट्र सरकार बम्बईसे, आर० एम० पी० बिहारसे तथा पूना महाराष्ट्रसे की।

परम पू० १०८ आचार्य श्री शान्तिसागरजी महाराजके सम्पर्कसे आपमें धार्मिक भावना जाग्रत हुई। पं० शान्तिनाथजी शास्त्रीसे धार्मिक शिक्षणशास्त्री तक प्राप्त किया।

धार्मिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ :

आप माणिकचन्द्र हीराचन्द जुबलीबाग ट्रस्ट बम्बईके ८ वर्ष तक और जैन सिद्धान्त सरक्षिणी सभाके ३ वर्ष तक उपदेशक रहकर सम्पूर्ण देश-भ्रमणकर धर्म चेतना जाग्रत की। आप ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन बम्बईके भी दो वर्ष तक व्यवस्थापक रहे। नाँद गाँवमें चार वर्ष अध्यापन कार्य किया। आपको गुजराती, मराठी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत भाषाओंका ज्ञान है।

आपने लगभग ६३ पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें, ५०० वेदी प्रतिष्ठायें, १५५ सिद्धचक्र विधान करवा-कर जैनधर्मके ध्वजको कीर्तिमान रखा।

समाज उत्थान हेतु आष्टामें दिगम्बर जैन सन्मार्ग समितिकी स्थापना, जलगाँवमे महिला मण्डलकी स्थापना की।

सन् १९६९ से आप स्वतन्त्र व्यापार (प्रिन्टिग प्रेस) आष्टामे कर रहे हैं तथा विधान प्रतिष्ठा और कुण्डली रचना आदि करते रहते हैं।

समाज द्वारा सम्मान :

अपने विविध पचकल्याणक प्रतिष्ठाओंकी समयावधिमें आपको समाज द्वारा कई सम्मानित उपाधियाँ प्राप्त हुई। कवलाणा पचायत द्वारा—'जैन-रत्न' श्री देवेन्द्रकीर्तिजी महाराज द्वारा मत्र प्रतिष्ठा विशारद, नाँदगाँव समाज द्वारा 'ज्योतिष विशारद' तथा 'वाणी भूषण' तथा धर्म रत्न, वैद्य शास्त्री (कलकत्ता आयुर्वेद स्कूल) धर्म अनुष्ठान तिलक आदि।

जैन समाजके विद्यासागर
पं० पन्नालालजी बाकलीवाल

सन् १९१४-१५ की बात है। बा० धन्यकुमारजी जैन सम्पादक —'विशाल भारत' अजमेरने गुरुवर्य पं० पन्नालालजीके बारेमें एक घटनाका उल्लेख दिया कि उन्होंने मैंदागिनी बनारसकी जैनधर्मशालाके फाटकके पास स्थित भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्थाके कार्यालयसे जब एक किताबपर कवर चढाने हेतु एक कागज माँगा तो आपने उसकी भी कीमत माँगी और यह कहा कि इसका मालिक पूरी जैन समाज है पर लेनेके लिए नही बल्कि देनेके लिए। उस समय बा० धन्यकुमारजी स्याद्वाद महाविद्यालयमें शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। श्री धन्यकुमारजी लिखते है कि पहिले तो मुझे बुड्ढा बहुत कजूस दिखा परन्तु बाद मे जब गुरुवर्यके साथ १०-१२ वर्ष रहा और उक्त संस्थामें सेवा करनेका सौभाग्य मिला तब ज्ञात हो सका कि अवैतनिक कार्यकर्ताका क्या आदर्श होना चाहिए।

एक युग था जब जैन ग्रंथ छापने वालोंको लोग घृणाकी दृष्टिसे देखा करते थे। उस समय बाकलीवाल सा०ने जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालयकी स्थापना कर जैन साहित्यका प्रकाशन प्रारम्भ किया। बादमें श्रीमान् पं० नाथूरामजी 'प्रेमी' की विशिष्ट प्रतिभा देख आपने उन्हें जैन ग्रन्थ कार्यालयका साझीदार बना लिया और उनपर सारा उत्तरदायित्व छोड स्वय उच्चतर प्रकाशन संस्था और विद्यालयोंकी स्थापना जैसे महत्त्वपूर्ण कार्योंमे जुट गये।

१९१८ तक आपको जैन समाजके लिए अनन्य सेवायें प्राप्त हुई और आपके जीवनका कोई भी क्षण जैन समाजकी सेवाके सिवाय निजी कार्यमें व्यतीत नही हुआ।

जब आप 'जैन हितैषी' पत्रिका निकाला करते थे उसी समय श्री निर्णयसागर 'प्रेस' की प्रेरणासे 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' और 'यशस्तिलक चम्पू' जैसे महान् ग्रन्थ प्रकाशित कराये जब कि उस समय उनका प्रकाशन असम्भव सा लगता था।

बंगालमे जिनवाणी प्रचार

आप बनारससे 'भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था' कलकत्ता ले गये और वहाँ बंगाली जैन विद्वानों जैसे सर्वश्री महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य, पं० हरिहर शास्त्री, बा० शरचन्द्र घोषाल, पं० चिन्ताहरण चक्रवर्ती आदि अनेक विद्वानोंको जैन साहित्यकी ओर आकर्षित किया और अन्तमें उनके पास बंगाली जैन विद्वानोंका समूह सा जम गया।

इसी समय आपने एक 'बंगीय अहिंसा परिषद्' की स्थापना की तथा उसकी तरफसे 'जिनवाणी' नामक एक बंगला मासिक पत्रिका प्रकाशित करवायी। आपकी इच्छा इस जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थाको गीताप्रेस गोरखपुरकी भाँति बनानेका था। परन्तु आपके जानेके बाद न केवल बंगीय अहिंसा परिषद् और बंगला जिनवाणी पत्रिकाका नामोनिशान मिट गया बल्कि गीताप्रेसकी भाँति स्वप्नको मूर्तिमान करने वाली वह भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था कलकत्तेके किसी एक मकानमें पडी अपनी अन्तिम सांसे ले रही है।

काशीके स्याद्वाद महाविद्यालयकी स्थापना करनेमें भी आपका हाथ रहा था। आपने धर्म परीक्षाका अनुवाद एवं जैन बाल-बोधक (४ भाग), स्त्री शिक्षा (२ भाग) आदि जैनधर्मकी पुस्तकें लिखी। १९१६-१७ के बाद आपने और भी साहित्य सृजन किया और भावी जैन समाजको धर्मज्ञानकी सच्ची शिक्षा देने की महान् भावनासे जैन शिक्षालयोंके लिए पाठ्य पुस्तकोंके निर्माण-यज्ञको सतत जारी रखा।

आज जैन समाजको दीवान अमरचन्द और पं० बनारसीदासकी भाँति पं० पन्नालालजी बाकलीवाल जैसे महापुरुषोंकी आवश्यकता है। यदि उसकी पूर्ति हो जाय तो जैन समाज जिन्दा रह सकती है।

●

स्व० सिद्धान्तशास्त्री पं० पन्नालालजी सोनी

●

आप जैन सिद्धान्त शास्त्रोंके उद्भट विद्वान् थे। आपने संस्कृत प्राकृत भाषामें अनेक ग्रन्थोंका हिन्दी भाषामें अनुवाद किया। आपने श्री गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धान्त विद्यालयमें सिद्धान्त ग्रन्थ पढे और वहीं ही अध्यापकका कार्य किया। इसके बाद ऐलक पन्नालालजी दिगम्बर जैन सरस्वती भवन बम्बई और ब्यावरमें जिनवाणी की सेवा की।

आप सरल स्वाभिमानी निर्लोभ दृढ आगम श्रद्धानी प्रभावशाली चारित्रधारी पंडित शिरोमणि थे। जयपुर आचार्य श्री १०८ शिवसागरजी महाराजके संघके चातुर्मासके समय आपने काफी तत्त्व चर्चा की। तथा काफी धर्म वृद्धिकी। कुछ समय पूर्व आपका मूत्रकृच्छ्का आपरेशन होनेके कारण आपकी मृत्यु हो गई।

आपने जो देश और समाजकी सेवा की है उसे हम लोग कभी नही भूल सकते।

●

पंडित प्रद्युम्नकुमारजी शास्त्री

●

जीवन-परिचय

पंडितजीका जन्म आश्विन शुक्ला दशमी विक्रम सवत् १९७२ मे विलराम (एटा) उत्तरप्रदेशमें हुआ। आपके पिता श्री लाला बाबूरामजी लमेंचू जातिके भूषण थे और माता शरबती देवी अपने शरबत जैसे मिलनसार मधुर स्वभावके लिए प्रसिद्ध थी। आपके पिताश्री जैसे कुशल संगीतज्ञ थे वैसे ही चाचा श्रीपालजी कुशल शिक्षक थे और बडे चाचा जी तो देहली गद्दीके भट्टारक थे। आपके काका कुँवर-पालजी भी अपने समयके सामान्य विद्वान् थे। आपका विवाह द्रोपदी देवी कोविदसे हुआ। आपके चार पुत्र व तीन पुत्रियाँ हैं। जो सभी शिक्षित और धार्मिक प्रकृति के हैं।

शिक्षा और सेवा

पंडित कुँवरपालजीकी प्रेरणासे बडनगरमें आपने पंडित महेन्द्रसिंहजीके समीप अध्ययन किया।

आयुर्वेदमें वैद्य बने । ब्र० चिदानन्दजीके सम्पर्कसे सदाचारकी दिशामें बढ़े । सर सेठ हुकमचन्द्र महाविद्यालयमें शास्त्री न्यायतीर्थकी परीक्षा दी । पं० गुलझारीलालजी, निर्मलकुमारजी, हीरालालजी कौशल, बाबूलालजी जमादार, मनोहरलालजी रांवी आपके समयमें विद्यालयमें विद्यार्थी थे । पं० जयन्तीप्रसादजी, परमानन्दजी, देवकुमारजी (अब भट्टारक) भोजराजजी आपके सहाध्यायी रहे ।

अध्ययन करनेके बाद

आप छह बड़नगर दिगम्बर जैन विद्यालयमें रहे । फिर अ० भा० दिग० जैन परिषद्के छह माह तक प्रचारक रहे । सन् १९३९ में जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बालामें प्रचारक बन गये । सन् १९५६ भजनोपदेशक-तत्त्वोपदेशकके रूपमें कार्य करते हुए अनेक स्थानोंपर वेदी प्रतिष्ठा, सिद्धचक्रविधान, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराकर वीर-वाणीका विशेषतया प्रचार किया । अनन्तर ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा १९६७ तक प्रचारक-प्रधानाध्यापक पद पर कार्य किया । कुछ समय तक दिगम्बर जैन संस्कृति सेवक समाज (जिसकी पं० राजेन्द्र कुमारजीने स्थापना की) कार्य किया । ३६ वर्षोंके सेवाकालमें अनेक अभिनन्दन पत्र व उपाधियाँ मिली जिनमें प्रतिष्ठा दिवाकर, जैनधर्मभूषण, वाणीभूषण उल्लेखनीय हैं । आपने एकसे अधिक सामान्य विद्वानोंके अनुभव लेकर सेवाकार्यको आगे बढाया । कुछ स्थानोंपर प्रतिष्ठाओंके समय साधुजनोंने भी आपके श्रेष्ठ कार्यको देखकर शुभाशीर्वाद दिये । प्रत्येक वर्षमें पाँच छह स्थानोंपर तो आप प्रतिष्ठा करा ही देते हैं ।

●

मूकसाहित्यसेवी ला० पन्नालालजी अग्रवाल

●

श्री पन्नालालजी अग्रवाल—दिल्ली, जिन्होने बहुत प्राचीन ग्रन्थोंके उद्धार, अनुवाद और नवीन साहित्यकी तैयारीमे अपना जीवन लगा दिया । यद्यपि आपकी अपनी शिक्षा बडी ऊँची नही है, पर साहित्यकारो तथा विद्वानोंके सत्सगका लाभ आपको युवा-वस्थासे प्राप्त रहा इसलिए साहित्य सेवाकी भावना काफी है । दिल्लीके दो तीन प्राचीन जैन मंदिरोंमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दीके अनेक विषयोके सहस्रों प्राचीन ग्रन्थ, गुटके और पोथियाँ हैं जो हजार डेढ़ हजार वर्ष तकके पुराने है, उनकी देखरेख तथा रक्षाका काम जिन महानुभावोंने लिया है, श्री पन्नालालजी भी उनमेंसे एक हैं । आप ऐसे किसी विद्वान्को, जो जैन-साहित्यके उद्धार-कार्यमें अभिरुचि एवं संलग्न हैं चाहे वह भारतका हो या भारतसे बाहरका हमेशा आवश्यकतानुसार उन्हें ग्रंथ भेजते रहते हैं । अत. आपकी साहित्य सेवाका क्षेत्र बहुत व्यापक है ।

आपके सहयोगसे वीर सेवा मन्दिर सरसावा (सहारनपुर), माणिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई, अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रन्थमाला कारंजा, जीवराज ग्रंथमाला बम्बई, प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् और दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत, मद्रास विश्वविद्यालय, भारतीय ज्ञानपीठ बनारस आदि द्वारा लगभग चालीस ग्रन्थ प्रकाशित हुए । जिनमें ज्ञान सूर्योदय, दोहापाहुड़, तिलोयपण्णत्ति, विवाह क्षेत्र प्रकाश,

वरांग चरित्र, जर्मन विद्वान् द्वारा लिखित डेरजेनिज्म, हिन्दीका सर्वप्रथम आत्म चरित्र, मौर्य साम्राज्यके जैनवीर, आदिपुराण आदि प्रमुख हैं।

आप स्वयं भी लिखते रहे हैं। दिल्लीकी जैन संस्थायें नामक पुस्तक एवं १-२ स्थानीय जैन मन्दिरोंकी ग्रन्थ-सूची 'अनेकान्त' में प्रकाशित करवायी। आपके लेख जैन मित्र और जैन सन्देश आदिमें भी प्रकाशित होते रहे।

जिस प्रकार श्रद्धेय श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदीके पास प्रसिद्ध साहित्यकारोंके पत्र सुरक्षित है उसी प्रकार श्री पन्नालालजीके पास भी पिछले तीस-चालीस वर्षके सैकड़ों पत्र उन जैन विद्वानों, लेखकों तथा सुधारकोंके हैं, जिन्होंने जैन समाजमें नव जीवनका संचार किया है। जिनका प्रकाशन अपनेमें एक महत्त्वपूर्ण अर्थ रखता है।

साहित्यकारोंको प्रेरणा करके काम करवानेमें आप बड़े कुशल है। जिन दिनों आप जैन मित्र मण्डल दिल्लीके मंत्री थे, तब आपने महर्षि शिवलालजीसे जैनधर्म और बाबू सूरजभान वकील जो तत्कालीन बड़े समाज सुधारकोंमेंसे एक थे तथा ब्र० शीतलप्रसादजीसे अनेक महत्त्वपूर्ण ट्रेक्ट और पुस्तकें लिखवायी।

१९६६ में दिल्लीमें हुई लाल किलेके मैदानमे सास्कृतिक सम्मेलनके अन्तर्गत साहित्यिक प्रदर्शनीमें आपने जैन-भण्डारोंके कुछ अमूल्य प्राचीन ग्रन्थों और चित्रोंका प्रदर्शन किया था।

दिल्लीकी कई साहित्यिक तथा शिक्षा संस्थाओंके आप उत्साही कार्यकर्ता रहे है। आप अत्यन्त मिलनसार और 'गुणेषु प्रमोद' स्वभाव वाले व्यक्ति हैं।

आपका जन्म माघ शुक्ला द्वादसी संवत् १९६० को हुआ था। उस समय आपके पिता ला० भगवानदासजी नसीराबाद (छावनी) में रहते थे। बचपनमें ही आप दिल्ली चले आये थे। आपको स्वास्थ्य, योग्य पुत्र आज्ञाकारी धर्मपत्नी और आर्थिक-निश्चिन्तता आदि सभी सुख प्राप्त है। दूसरे साहित्यसेवी नवयुवकोको ला० पन्नालालजीके सेवा भावका अनुगमनकर उनके कार्यको जारी रखना चाहिये।

●

पं० परमानन्दजी शास्त्री

●

वीर सेवा मन्दिर, दरियागंज दिल्लीके साथ पं० परमानन्दजीका नाम जुडा है। और लगभग ३२ वर्षसे आप वहाँ रहकर ग्रन्थ सम्पादन और अनेकान्तके सम्पादनके साथ-साथ साहित्यिक एवं अनुसधानात्मक लेख लिखते रहे। आपका जन्म स्थान ग्राम निवार पो० बक्स्वाहा जि० सागर है। सवत् १९६५ श्रावण वदी चतुर्थीके दिन माँ श्री मूलाबाईके गर्भसे जन्म लिया। आपके पिता श्री स० सिंघई दरयावसिंह साधारण आर्थिक स्थितिके व्यक्ति थे।

गाँवमें प्रारम्भिक शिक्षा लेकर श्री ग० दि० जैन संस्कृत विद्यालयसे न्यायतीर्थ एवं न्यायशास्त्री तक अध्ययन किया। तथा पू० गणेशप्रसादजी वर्णीसे अष्टसहस्री और प्रमेयकमलमार्तण्डका भी अध्ययन किया।

प्रारम्भसे आपकी रुचि ग्रन्थोंके अध्ययनमें रही। १९२९ से ३५ तक आपने खतौली (मुजफ्फरनगर) सलावा (मेरठ) और साहपुर (सागर) की पाठशालाओंमें अध्यापन कार्य किया। १९३६ में वीर सेवा मन्दिर सरसावा (सहारनपुर) गये वहाँ श्री मुख्तार साहबके सान्निध्यमें रहकर एवं बाबू सूरजभानजी वकीलकी

प्रेरणासे ऐतिहासिक और शोध-खोजपूर्ण लेख लिखनेकी प्रवृत्ति जगी। और सन् १९४० से वीर सेवा मन्दिर दरियागंज दिल्लीमें कार्यरत हैं। अब तक आपने साहित्यिक सेवाके रूपमें अनेकान्तमें ही लगभग २२५ शोध-निबन्ध लिखे हैं। इसके अलावा 'जैन सिद्धान्त भास्कर', 'जैन सन्देश शोधांक' आदि शोधपूर्ण पत्रिकाओंमें सैकड़ों निबन्ध प्रकाशित हुए।

आपने मोक्षमार्ग प्रकाशक, चिद्विलास, अनुभव प्रकाश, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह (द्वितीय भाग), जैन तीर्थ यात्रा संग्रह, जिनवाणी संग्रह, पुरातन जैन वाक्य सूची आदि ग्रन्थोंका सम्पादन, एकीभावस्तोत्र, समाधितंत्र, इष्टोपदेशका अनुवाद तथा जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह (प्रथम भाग) का सह-सम्पादन किया। इसके अलावा नेमिनाथ पुराण एवं अर्थप्रकाशिका सदासुखकी प्रस्तावना लिखी है जो सूरतसे प्रकाशित हुए। अभिनन्दन एवं स्मृति ग्रन्थोंमें प्रकाशित आपके लेख विशेष पठनीय है।

आप विद्वत् परिषद्के स्थायी सदस्य हैं।

आपकी पत्नी श्रीमती इन्दुकुमारी प्रारम्भमें साधारण पढ़ी थी परन्तु पंडितजीके सहवाससे आपने धर्मशास्त्रमें गोम्मटसार और जीवकाण्ड तथा न्यायमें 'परीक्षामुख' व पंजाबकी 'हिन्दी रत्न' परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। परन्तु आपकी पत्नीके असामयिक निधनके कारण आपको पारिवारिक संकट बडा भोगना पडा और बच्चोंके लालन-पालनका सम्पूर्ण उत्तरदायित्वका स्वयं निर्वाहन करना पडा। आपको दो पुत्र और एक पुत्रीका योग लाभ मिला। आपके परिवारमें आपसे पाँच वर्ष बडे एक भाई काशीरामजी हैं जो सागरमें गृहकार्यमें संलग्न हैं।

●

डा० प्रेमसागरजी

●

परिचय

जन्म ४ जनवरी १९२४ कुरावली (मैनपुरी) उ० प्र०। गोत्र—कुँअरभरये आम्नाय—लमेंचू।

लाला बंशीधर जैन आपके पिता श्री है जो अपने समयके काँग्रेस नेता थे। राष्ट्रीय आन्दोलनमें जेलयात्रा की तथा विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कारकर खादी व्रत लिया था।

शिक्षा स्थान

स्याद्वाद जैन महाविद्यालय एवं राजकीय संस्कृत कालेज वाराणसीसे जैन सिद्धांतशास्त्री साहित्य सम्मेलन प्रयागसे—साहित्यशास्त्री, हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसीसे—एम० ए० (हिन्दी एवं संस्कृत) तथा आगरा विश्वविद्यालय आगरासे हिन्दीमें पी-एच० डी० शिक्षाकालके आपके प्रमुख गुरुजन सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, मुकुन्द शास्त्री, आचार्य केशव प्रसाद मिश्र एवं डा० वासुदेवशरण अग्रवाल रहे।
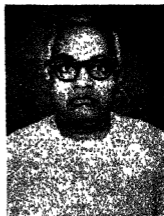
शिक्षा जगत्में आपकी सेवायें

बीस वर्ष विश्वविद्यालयीय शिक्षाके अध्यापनका अनुभव । वर्तमानमें दि० जैन कालेज बड़ौतमें हिन्दी स्नातकोत्तर विभागके अध्यक्ष तथा प्रोफेसर । 'अनेकान्त' के सम्पादक । भारतीय ज्ञानपीठ काशीकी परामर्शदातृ समितिके सदस्य । जैन शोध संस्थान आगराकी प्रबन्ध समितिके सदस्य । आगरा तथा मेरठ विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीके शोधनिर्देशकका महत्त्व पद सम्हाले हुए हैं ।

आपने साहित्यसृजनके द्वारा राष्ट्रीय चेतनामें विशेष योगदान दिया है ।

आपकी मौलिक कृतियाँ

'जैन भक्तिकाव्यकी पृष्ठभूमि', 'हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि' 'भरत और भारत', जैन शोध और समीक्षा इसके अतिरिक्त अनेकानेक शोध निबन्धोंके लेखक ।

संकलित एवं संपादित

'पार्श्वनाथ भक्ति गंगा' इसमें लिखी गयी भूमिका अपनेमें एक शोध निबन्ध है ।

आपकी पुरस्कृत रचना

हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि है जो उत्तर प्रदेश सरकारके पुरस्कारसे सम्मानित हुई ।

पत्रिका संपादन

अनेकान्त, वीर (शिक्षा विशेषांक), संगीत सम्मेलन पत्रिका ।

सामाजिक और सार्वजनिक सम्मान और मानपत्रके रूपमें आपको कई स्थानोंमे अभिनन्दनपत्र प्राप्त हुए तथा समय-समयपर रेडियो भाषण एवं समीक्षायें प्रसारित होती रहती है ।

●

श्री प्रकाश जैन

●

श्री प्रकाश जैन एक ऐसे निर्विवाद व्यक्तित्व वाले व्यक्ति है जिन्हें धनिकोंका धन और विद्वानोकी गुटबन्दी नही झुका पायी । आप सामाजिक कार्योंमें रुचि रखनेवाले कवि हृदयको लिये संवेदनशील और भावुक है । व्यंग्य लेखक और स्पष्टवादी होनेके कारण खरी बात कहनेवाले है । आप सरस, हँसमुख और बच्चों तथा बुजुर्गोंमें समान रूपसे घुलमिल जानेवाले व्यक्ति हैं । परन्तु हाँ पानीकी लकीरकी भाँति आपमें कभी-कभी क्रोधावेश भी नजर आ जाता है । पत्रकारिता आपका व्यसन है ।

आपका जन्म ९ जनवरी १९३४ को कलकत्तामें हुआ था । आपके पिता श्री नेमिचन्दजी कलकत्तामें घी का व्यापार करते थे । आपके परदादा जैन पद्मावती पुरवाल जातिभूषण फरिहा (मैनपुरी) के निवासी थे । सन् १९४०-४१ में कलकत्ता पर जापानी आक्रमण और बम्बोंके भयसे आपके पिता एवं ताऊ श्री तेजपालजी सपरिवार फरिहा आ गये ।

प्राथमिक शिक्षा समाप्त करनेके बाद फरिहामें ऊँची पढ़ाईका स्कूल न होनेके कारण आपकी आगामी

पढ़ाई व्यवस्थित क्रमसे एक जगह न हो सकी। फीरोजाबाद और मोरेना महाविद्यालयसे अप्रत्याशित अध्ययन क्रम टूट जानेके बाद अपनी ननहाल दिल्लीसे मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की। पिताजी एक ओर आपको व्यापारमें लगा लेना चाहते थे परन्तु आपके मनकी ललक उच्च अध्ययन करने की थी। फलस्वरूप आपने स्वाध्यायी रूपसे पंजाब विश्वविद्यालयसे आनर्स-इन-हिन्दी (बी० ए० समकक्ष) प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की। आपका विवाह १७ वर्षकी आयुमें ही एटा निवासी श्री इन्द्ररतनजी सर्राफकी सुपुत्री प्रमिला जैनसे हो गया परन्तु दो पुत्रों और एक पुत्रीको जन्म देनेके बाद भी आपकी शिक्षाकी लौ कम नहीं हुई और आपने एक लम्बे अन्तरालके बाद जबलपुर विश्वविद्यालयसे एम० ए० कर लिया।

कवि हृदयका विकास

वैसे तो जब आपकी आयु बारह वर्षकी थी, तुकबन्दी कविता करने लगे थे परन्तु कलकत्तेमें कवि रूपका विकास हुआ। दैनिक लोकमान्यके रविवासरीय परिशिष्टांकोंमें बराबर आपकी रचनायें प्रकाशित होने लगी थी। धीरे-धीरे कवि सम्मेलनोंमें एक युवा गीतकारके रूपमें आप प्रगट होने लगे।

पं० सूर्यनाथ पाण्डेयजीके सम्पादकत्वमें निकलने वाले 'सन्मार्ग' (रविवासरीय) के बाल विनोद स्तम्भके आप संयोजक बने। आपका कलकत्ताकी प्रमुख राष्ट्रीय साहित्यिक संस्थाओंसे सम्बन्ध जुड़ता गया।

कलकत्ता जैन प्रतिष्ठान द्वारा पटनामें अपनी शाखा खोले जानेके प्रस्तावके साथ आपका पर्दापण पटना हुआ। यहाँ आकर आपके व्यापारके साथ साहित्यिक प्रवृत्ति पुनः सक्रिय हो उठी। और आकाश-वाणीके पटना केन्द्रसे आपकी कवितायें रूपक, रेडियो-वार्ता आदि प्रसारित होनेके साथ पत्र पत्रिकाओंमें प्रकाशित होने लगी।

१९६४ में मरसलगंजमें रायसाहब सेठ चाँदमलजीके द्वारा एक पंचकल्याणक प्रतिष्ठामें आपको 'कविरत्न' की उपाधिसे विभूषित किया गया। कुछ दिनों बाद आपका मरसलगंज पर एक खण्डकाव्य भी प्रकाशित हुआ।

१९६५ से जैन शास्त्रि परिषद्की संरक्षतामें प्रकाशित होने वाले 'बाल-प्रभात' (मासिक) के आप सम्पादक नियुक्त हुए और इस रूपमें आपने काफी नाम अर्जित किया। कुछ व्यवधानोंसे यह मासिक बन्द हुआ परन्तु १९६८ से स्वतंत्र रूपसे आपने इसका प्रकाशन किया जो पुनः १९७३ में स्थगित हो गया।

१९७३ में "युगवीर" साप्ताहिकका प्रकाशन आपने प्रारम्भ कर दिया।

यद्यपि आपको लेखनसे अच्छी आय थी, परन्तु आप मसिजीवी नहीं बनना चाहते है। साहित्यिक वांछाको लिए आप घाटेको अपने ऊपर ओढ़कर भी निष्पक्ष रूपसे पत्रका प्रकाशन कर रहे हैं।

१९६६ में आपकी एक प्रिय साहित्यिक-कृति "वरमाला" का प्रकाशन हुआ। १९६७ में "आओ साथी करें वन्दना" नामक गीतपुस्तिकाका प्रकाशन हुआ। आपकी प्रथम पुस्तकाकार साहित्यिक कृति "द्वादस द्वादसी" प्रकाशित (१९६५) हुई थी। 'साहसो अरुण'—बाल-उपन्यास, आदीश-अर्चना (भावपूर्ण पूजन), बूझो तो जाने, नानीकी कहानो (८ पद्य कथायें) प्रकाशित हुई। आपके तीन उपन्यास, एक कहानी-संग्रह, एक व्यंग्य निबन्ध और तीन कविता संग्रह प्रकाशनार्थ तैयार हैं। इसके अलावा एक उच्चकोटिकी रचना "धरतीको वरदान" (आ० शान्तिसागरजी महाराजके जीवनपर आधारित महाकाव्य एक ऐति-हासिक ग्रन्थ प्रकाशनार्थ है।

●

लाला प्रेमचन्द्रजी

अहिंसा मंदिर दरियागंज दिल्लीके संस्थापक लाला राजकृष्णजी ऐसे कर्मठ समाज सेवी एवं धर्म सेवी व्यक्ति थे जिन्होंने अपना जीवन४०रु०प्रतिमाहकी नौकरीसे प्रारम्भ करके अम्बालासे शिमला, झरिया, रानीगंज प्रवास करते हुए दिल्ली आये थे और अपने पुरुषार्थसे लाखोंकी सम्पत्ति करके उसे लोकोपकार और धर्म सेवामें समर्पित कर दिया। जिनकी प्रशंसा पूज्य श्री गणेशप्रसाद-जी वर्णीने अपनी जीवनगाथा पुस्तकमें इस प्रकार व्यक्त की, "ला० राजकृष्णजी एक दक्ष व्यक्ति हैं। इन्होंने अपने पुरुषार्थसे अच्छीसे अच्छी सम्पत्ति संचित की है और अहिंसा मंदिरका निर्माण कराकर समाज सेवाके लिए उसका ट्रस्ट करा दिया।"

ऐसे आत्म पुरुषार्थी पुरुषके पुत्र लाला प्रेमचन्द्रजी अपने पिताके अनुरूप धार्मिक संस्कारोंके अनुगामी तथा समाज सेवाके व्रतके पालक हैं।

आपका विशाल हृदय विद्वानोंके आतिथ्य सम्मानके लिए हमेशा समर्पित रहता है। कोई भी विद्वान् दिल्ली आकर आपके शाकाहारी होटलका मेहमान हुए बिना नहीं रहता। यह आपके व्यक्तित्वकी एक विलक्षणता है कि ज्ञानके प्रति इतनी ममता कि ज्ञानियोंको समुचित श्रद्धा और आदर देते हैं।

आपका जन्म अम्बाला छावनीमें फाल्गुन सुदी त्रयोदशी (११ मार्च १९२२) को हुआ था। एक ओर श्रीसंपन्न हैं तो दूसरी ओर जैनदर्शन और धर्मके अनन्य प्रेमी और सेवाभावी व्यक्ति हैं।

राजकृष्ण जैन चेरिटेबिल ट्रस्ट के अन्तर्गत अहिंसा मंदिर जो अनेक भव्यात्माओंको आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त करता है, तथा दिल्ली जैसे महानगरमें अपनी शानीका एक ही जिनालय है, इसके अलावा ट्रस्ट अन्तर्गत अहिंसा मंदिर प्रकाशन—ऐसा महत्त्वपूर्ण संस्थान है जिसके द्वारा समयसार, आध्यात्म तरंगणी, युगवीर भारती, हरिवंशकथा, तनसे लिपटी बेल आदि महत्त्वपूर्ण लगभग १ दर्जन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं तथा हजारों प्राचीन एवं अर्वाचीन ग्रन्थोंका संग्रह है, जिसमे अनेक शोधार्थी लाभ उठाते हैं। छात्रोद्धार फण्ड द्वारा प्रतिभाशाली छात्रोंको छात्रवृत्तियाँ एवं पुस्तकें प्रदान की जाती है। इसके अलावा आयुर्वेदिक चिकित्सालय एवं नर्सिंग होम भी संचालित है। जैन धर्मशालाका सचालन तथा अष्ट-सहस्री, धवल ग्रन्थ एवं जैन तीर्थोंके परिचय जैसे ऐतिहासिक कार्योंका सूत्रपात आपके ही तत्त्वावधानमें आरम्भ हुआ। दिल्लीके इतिहासमें धर्म, समाज, साहित्य और सेवाके क्षेत्रमें जो कार्य आपने किये वह युगों तक कीर्तिमान रहेंगे। इतना ही नहीं आपने देशकी अनेक संस्थाओंके लिए अब तक लाखों रुपयोंका दान दिया है। तथा अनेक विश्वविद्यालयोंमें जैन चेयर एवं हरिद्वार जैसे तीर्थस्थलपर विशाल जिनालय धर्मशालाका निर्माण आपकी महान् यश-गरिमाका प्रतीक है।

वर्तमानमें आपकी चार पुत्रियाँ और तीन पुत्रोंका सौभाग्य प्राप्त है। श्री भारत भूषणजी एडवोकेट उच्चतम न्यायालय, डॉ० देशभूषणजी एम० बी० बी० एस० तथा धर्मभूषणजी जैसे प्रतिभावान सुयोग्य पुत्रोंसे युक्त भरापूरा परिवार धर्म संस्कृति और जिनवाणीकी सेवामें निरत है। आपके स्व० पूज्यपिताश्रीके सम्मानमें अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशनकी योजना कार्याधीन है।

पं० प्रकाशजी 'हितैषी' शास्त्री

●

जीवनके संघर्ष, जीवनको उत्कर्षतापर ला देते हैं। यही बात पं० हितैषीजीके जीवनसे प्रतिफलित होती है। 'सन्मति सन्देश' के साथ पं० प्रकाश 'हितैषी' का नाम जैसे जुड़ गया है। जहाँ-जहाँ यह पत्रिका जाती है पंडितजीका अप्रत्यक्ष व्यक्तित्व वहाँ एक सन्देश एक ज्ञानकी धारा ले आता है।

आपका जन्म भीष्मनगर जिला सागर (म० प्र०) में मातु श्री सरस्वतीदेवीके घर हुआ था। पिता श्री हीरालालजी आपको १५ माहकी अल्पायुमें ही छोड़कर स्वर्गवासी हो गये थे। अत: लालन-पालन एवं शिक्षण मामाके घर जालन्धर (सागर) में हुआ। बादमें उनके बीना चले आनेपर आप भी बीना आ गये और यहीं श्री नाभिनन्दन दि० जैन पाठशालामें, विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। इस समय सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्दजी प्रधानाध्यापक थे जिनके सौभाग्यका योग आपको बचपनसे प्राप्त हुआ। आगेकी शिक्षा श्री गणेश दिगम्बर जैन विद्यालय सागरमें हुई और शास्त्री तकके ग्रन्थोंका अध्ययन किया।

इन्दौर उदासीनाश्रममें ब्र० चिदानन्दजीके आग्रहसे छतरपुर जिलेके ग्राम दरगुवाँमें जैन पाठशालामें अध्यापन कार्य किया। उसी समय बम्हौरी और श्री सिद्धक्षेत्र रेंसदीगिरिमे भी अध्यापन कराते रहे। बुन्देलखण्डकी जैनाजैन जनतासे आपको अपूर्व सम्मान एवं प्रेम प्राप्त हुआ। दस वर्ष बुन्देलखण्डमें रहकर क्रमश मथुरा और जैन अनाथालय बड़नगरमें प्रधानाध्यापक पदपर रहे।

सन् १९४७-५० तक पू० वर्णी महाराज, श्रद्धेय प० जगन्मोहनलालजी कटनी आदि की प्रेरणा और अति आग्रहवश आपको जबलपुरमें मढ़िया स्थित जैन गुरुकुलमें आना पड़ा परन्तु यहाँ मलेरियाके अति प्रकोपके कारण तीन माहका वेतन कटाकर बीमार पड़े रहे और समाजके कटु अनुभवोंसे चेतकर स्वतन्त्र व्यवसाय करनेकी बात ठान ली।

१९५४ में छोटे वर्णीजीका जबलपुरमें चातुर्मास हुआ। और सन्मति सन्देशके प्रकाशनकी योजना बनी जिसके आप सम्पादक नियुक्त हुए तथा इसी समय दिगम्बर जैन देशव्रती सम्मेलन स्थापित किया गया जिसके सहमन्त्री पदके लिए आपका नाम मनोनीत किया गया। सन् १९५९ में सन्मतिसदेशका 'रामचरित' विशेषांक निकाला गया जो करीब २०० पृष्ठोंका था जिसमें राम और सीताको जैन बताते हुए तपस्वी बतलाया गया था तथा एक लेखमें यह था कि रामने शिवरमणी (मोक्ष) का वरण किया। एक साम्प्रदायिक विद्वेषी ब्राह्मण पं० नाथूराम व्यासने उसका अर्थ शिव (महादेव) की रमणी (पार्वती) से विवाह किया ऐसा लगाकर जनसघके दैनिकपत्रमें उत्तेजनापूर्ण समाचार प्रकाशित करा दिया और लोग भड़क उठे। दूसरे दिन जबलपुर शहरमें विद्वेषियों द्वारा कुछ उपद्रव किया गया जिसमें एक जैन मन्दिरको क्षति पहुँचायी तथा १-२ दुकानें लूटी। विवादको शान्त करनेके उद्देश्यसे जिलाध्यक्ष महोदयने यद्यपि पंडितजीको व्यक्तिगत बुलाकर पत्रकी सराहना की परन्तु वह अंक अपने कब्जेमे ले लिया। उपद्रवकारियों द्वारा आपकी दुकान लूटी गयी परन्तु जैन समाज जबलपुरने पंडितजीको यथोचित सहायता दी और इस काण्डकी घोर निन्दा की।

उक्त घटनाके पाँच माह बाद तक पंडितजी जबलपुर रहे परन्तु जैन समाज जबलपुर सम्बन्धित घटना

के भयसे 'सन्मति-सन्देश' प्रकाशित करनेके लिए तैयार नहीं हुई और दिल्लीके कुछ विशेष सज्जनों द्वारा आपको यह आश्वासन दिया गया कि 'सन्मति संदेश' का प्रकाशन दिल्ली से हो।

आप दिल्लीमें आकर आर्थिक दृष्टिसे बड़े परेशान रहे परन्तु मान्यवर प० हीरालालजी सिद्धान्त-शास्त्री, जो उनदिनों वीर सेवा मन्दिरके ग्रंथ सम्पादनका कार्य कर रहे थे, आपके लिए हर प्रकारसे मदद दी और आपको एक सीमित समयके लिए वीर सेवा मन्दिरमें व्यवस्थापकके रूपमें नियुक्त करवा दिया। इसी समय श्रीमान् पं० कुन्दनलालजी एम० ए० प्राचार्यका भी अविस्मरणीय सहयोग पंडितजीको रहा। इन्हीं सभी विद्वानोंके सहयोग एवं परामर्शसे आपने सन्मतिसंदेशके सम्पादनका कार्य द्विगुणित उत्साहसे किया जो वर्तमानमें जैन साहित्यकी अपूर्व सेवा कर रहा है। यह सब पंडितजीके सबल पुरुषार्थ और कठोर श्रमका प्रतिफल ही है।

आप गान्धीनगर दिल्लीके जैन समाजके कई वर्षों तक अध्यक्ष रहे। १९५९ में श्री अध्यात्म सन्त कानजी स्वामीसे आपने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लिया। इसके पूर्व पू० गणेश वर्णीसे आपने पहिली प्रतिमाका व्रत लिया था। आपको चार सुपुत्रों और तीन सुपुत्रियोंका सुयोग प्राप्त है। जैन आचार और विचारोंको आपका पूरा परिवार बड़ी श्रद्धा और विनयके साथ पालन करता है। आपकी धर्मपत्नी भी काफी धर्मज्ञानसे युक्त है और गार्हस्थिक कार्यमें दक्ष होनेके साथ-साथ पंडितके सम्पादन कार्यमें सक्रिय सहयोग देती रहती है। पंडितजीकी प्रवचन शैली बड़ी प्रभावक है और धर्मके प्रति गम्भीर चिन्तन लिए हैं।

●

प्रेम 'सुमन', सिद्धान्तशास्त्री

●

श्री प्रेम 'सुमन' नयी पीढ़ीके ऐसे प्रतिभाशाली युवक-विद्वान् है जो अपनी प्रतिभा और श्रमसे आगे बढ़े। पारिवारिक स्थिति उतनी सुदृढ नहीं थी कि बाहर जाकर अध्ययन कर सकें। फलत. १४ वर्षकी वय तक घरपर रहे। परन्तु ज्ञानकी पिपासाने भीतरके उत्सको जगाया और आप १९५५ मे श्री शान्ति निकेतन जैन संस्कृत विद्यालय, कटनीमें गये तथा वहाँसे हाईस्कूल और आयुर्वेद (विशारद) उत्तीर्ण कर श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी चले आये। जहाँसे आपने साहित्याचार्य, सिद्धान्तशास्त्री, एम० ए० (पालि) तथा डिप्लोमा (इन्डोनेशिया और सिंहली) प्राप्त किये। हिन्दू विश्वविद्यालयने एम० ए०, (पालि) में सर्वप्रथम आनेके उपलक्ष्यमें स्वर्णपदक प्रदान किया। इसके पश्चात् आपने प्राकृत शोध संस्थान वैशालीसे प्राकृतमें एम० ए० किया जहाँ रहकर प्राकतके मूल ग्रन्थोंका वाचन एवं शोधात्मक निबन्ध लिखे। चित्रकला और लेखनमें विशेष अभिरुचि है। विश्वविद्यालीय जीवनमें आप कबड्डीके केप्टन रहे। सम्प्रति श्री जैन स्नाकोत्तर महाविद्यालय बीकानेरमें प्राध्यापक पदपर कार्यरत है।

साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

लगभग तीस शोध-निबन्ध लिखे है। 'कुवलयमाला कहा का सांस्कृतिक अध्ययन' अप्रकाशित (शोध-ग्रन्थ) तथा 'प्राकृत साहित्य और संस्कृति' एवं 'जैन न्यायकी रूप रेखा' प्रकाश्य। 'राजस्थानका जैन साहित्य' (प्राकृत, अपभ्रंश) और 'पालि-प्राकृत आगमिक कथा साहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन'के बारेमें अध्ययन शील एवं लेखन कार्य चल रहा है। स्याद्वाद महाविद्यालयमें 'स्याद्वाद पत्रिका'का सम्पादन किया। 'पल्लव'

का प्रवेशाङ्क निकाला जो किन्हीं कारणोंसे बन्द करना पड़ा तथा 'पाण्डुलिपि' मासिक पत्रिकाके प्रकाशन योजनामें संलग्न। आपने अपना लेखन कार्य १९५५ से कविता और कहानियोंके माध्यमसे प्रारम्भ किया था बादमें 'जीवनके विभिन्न अनुभवोंको सूक्ष्मतासे पकड़कर लेखन द्वारा कलात्मक परिवेश देना ही साहित्य-सृजनका उद्देश्य बनाया है। 'विश्वम्भरा', जैन साप्ताहिक पत्रों, श्रमणोपासक, अनेकान्त, जैन जनरल आदि-में लिखते रहते हैं।

सामाजिक चेतनामें प्रवेश

१९५९में आदर्श शिक्षा-समिति कटनीकी स्थापना, १९६८ में अ० भा० जैन विद्या शोध-केन्द्र बीकानेरकी 'स्थापना की। इसके अतिरिक्त आप दो वर्षके लिए १९६४ में केशव साहित्य परिषद्, ओरछा (टीकमगढ़) म० प्र० के अध्यक्ष, १९६८-६९ में अ० भा० जैन विद्या शोध केन्द्र बीकानेरके सयोजक, जैनालाजीकल रिसर्च सोसाइटीके कार्यकारिणी सदस्य तथा छात्र जीवनमें वाराणसीकी कई समितियों और परिषदोंके संयोजक एवं संयुक्त मंत्री रहे।

आपका जन्म एक अगस्त १९४२में सिहुडी (जबलपुर) माता श्री भाग्यवतीके गर्भसे हुआ था। पिता श्री दरबारीलालजी सद्गृहस्थ हैं। आपके दो भाई और एक बहिन हैं तथा एक पुत्र व दो पुत्रियाँ।

●

पं० प्रेमचन्द्जी राँवका

●

जयपुरमें राँवका परिवार वह परिवार है जिसमें स्व० पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ जैसे प्रसिद्ध दार्शनिक एवं उद्भट विद्वान् हुए है। प० भवंरलालजी राँवकाकी साहित्यिक सेवाओंसे कौन जैन एव साहित्य प्रेमी परिचित नहीं। पं० प्रेमचन्दजी आपके तीन पुत्रोंमेंसे एक हैं। २० अक्टूबर १९४३ को श्रीमती छिगनी बाईने आपको जन्म दिया था। उस समय पं० भँवरलालजी जयपुर महाराजाके महारानियोंकी जनानी ड्योढ़ीमें 'कामदार-लेखक थे। मुनि श्री जयसागरजी महाराज आपके मामा हैं और पं० अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ एव पं० भँवरलालजी न्यायतीर्थ आपके मौसेरे भाई हैं।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जैन संस्कृत कालेज जयपुरमें हुई जहाँ मुनि विद्यानन्दिजीकी प्रेरणासे आपने जैन ग्रन्थों एवं पुराणोंका अध्ययन किया। १९६८ में राजस्थान विश्वविद्यालयसे हिन्दीमें एम० ए०, १९६९ मे बी० एड० तथा १९६९-७० से 'हिन्दीके जैन रूपक काव्य' में शोधकार्यमें संलग्न हैं। स्व० पं० चैनसुखदासजी आपके धार्मिक गुरु रहे और उन्हीके वात्सल्य एवं आशीषसे उत्तरोत्तर प्रगति पर रहे। सम्प्रति राजकीय संस्कृत कालेज मनोहरपुर (जयपुर)में प्राध्यापक है।

साहित्यिक गतिविधियाँ

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओंमें लगभग ४० निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। डा० कस्तूरचन्द कासलीवालजी के सानिध्यमें रहकर जिनदत्त चरित, चम्पा शतक, राज० के जैन सन्त आदिके सम्पादन कार्यमें सहायता। संगीतके साथ भारतीय प्राच्यविद्या एवं जैन साहित्यके अध्ययन अध्यापनमें अभिरुचि है एवं महाविद्यालयीय वाद-विवाद प्रतियोगिताओंमें सक्रिय भाग लेते रहे।

१९६६ से राजस्थान जैन सभाके एवं दि० जैन मन्दिर जोबनेरके कार्यकारिणी सदस्य हैं।

●

पं० पन्नालालजी न्यायतीर्थ

आपके पिता श्री अनूपलालजी पडरई (सागर)के मालगुजार थे परन्तु धार्मिक और सात्विक आचरणको ही जीवनका शृङ्गार माना और अपनी मालगुजारीके कार्यमें कभी भी किसी को नहीं सताया। आपका जन्म पडरई (मढी जुमनियाँ) पो० बहेरिया कलाँ तहसील रहली (सागर) म० प्र० में १९१० में हुआ था। माताजीका नाम श्रीमती पडमाबाई जैन।

प्रारम्भिक शिक्षा मिडिल तक गौरझामर जिला सागरमें तथा १९३२ में कलकत्तासे न्यायतीर्थकी परीक्षा उत्तीर्ण की।

जीविकोपार्जन हेतु आपका जीवन बड़ा गतिशील रहा। और साथमें सामाजिक सेवायें की। क्रमशः किशनगढ, लाकरोडा (गुजरात), अमरोहा (उ० प्र०), अम्बाला छावनी (पूर्व पंजाब) पर अध्यापन कार्य किया। इसके पश्चात् पं० चन्द्रमौलि शास्त्रीके साथ अनाथाश्रम दरियागंज दिल्लीमें गृहपति और प्रचारककी भाँति कार्य किया। गुजरात प्रान्तमें घूम-घूमकर आश्रमको हजारों रुपये इकट्ठे किये। संगीत पार्टीके साथ देशके मुख्य-मुख्य स्थानोंपर भ्रमण किया। पुनः हिसार (पंजाब) में पू० नेमिसागरजी महाराजकी प्रेरणासे धर्माध्यापक रहे। पुन १६ वर्ष तक हरदा (म० प्र०)में १९५२ से अध्यापन कार्य। वर्तमानमें हरदासे २३ मील दूर खातेगाँव (देवास)में निजी कार्य कर रहे है।

आप अ० भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्-सागरके सदस्य हैं। आपके कोई सन्तान नही है। और शान्ति एव धर्माराधनमें जीवनयापन कर रहे हैं।

प्रो० प्रकाशचन्द्रजी

एकलौते पुत्रके प्रति पिताका जो अगाढ प्यार होता है वही प्यार श्री प्रकाशचन्दजीको अपने पिता श्री प्यारेलालजीसे प्राप्त हुआ था। उस समय आपके पिता रेलवेमें सहायक स्टेशन मास्टर थे। स्व० श्रीमती सपूरकुँवर (स्वरूपकुँवर) की गोदमे आप १२ जुलाई १९२२में राया जिला मथुरामें आये। प्रारम्भिक धार्मिक अध्ययन जैन बोर्डिंग हरी पर्वत आगरामें किया और १९५५में आगरा विश्वविद्यालयसे अंग्रेजी साहित्यसे एम० ए०। छात्र जीवनमें भाषणकलामें प्रवीण तथा तत्सम्बन्धी कई पारितोषिक प्राप्त किये। एक अभिनवके अभिनयमें आपको 'केशरसिंह स्वर्ण-पदक' प्राप्त हुआ था। इसके अलावा काव्यमें रुचि रही और प्रारम्भमें धार्मिक विषयोंसे स्पर्शी कविताओं का प्रणयन किया।

प्रारम्भमें कपड़ेका व्यवसाय तत्पश्चात् अध्यापन कार्य प्रारम्भ में चालीस रुपये माहपर रमन इण्टर कालेज मथुरामें हिन्दी अध्यापक परन्तु उत्तरोत्तर अपने व्यक्तित्वका विकास करते हुए आजकल एस० आर० के० डिग्री कालेज फिरोजाबादमें अंग्रेजी विभागाध्यक्षके पदपर कार्यरत हैं। अपने जीवनके १५वें वर्षमें आपको यक्ष्मासे पीड़ित होना पड़ा। डाक्टरोंकी सलाहके बावजूद मृत्युको ज्यादा अच्छा समझा पर अण्डेको ग्रहण नहीं किया और भक्तामरके अचिंत्य पाठमें चमत्कारिक प्रभाव पड़ा।

एक पुत्र हुआ था परन्तु जन्मते चल बसा था। नि.सन्तान हैं।

१९५२ में कासगंजमें 'स्वाध्याय मण्डल' की स्थापना की। तथा १९५३-१९५८ तक श्री नारायन-लाल जैन ट्रस्टके मन्त्री रहे। १९६४ तक जैन कन्या इण्टर कालेज फिरोजाबादके प्रबन्धक रहे जो बादमें सेवामें होनेके कारण त्यागनी पड़ी।

साहित्य क्षेत्रमें ब्रजभूमिमें जन्म लेनेके कारण स्वभावत कविता लिखनेकी अभिरुचि बचपनसे है। एक अप्रकाशित कविता संग्रह 'गीत तुम्हारे मुक्तक मेरे' तथा स्फुट रचनाएँ लिखी हैं।

१९५५-५७ तक 'जैसवाल जैन' मासिक पत्रके प्रकाशक और १९५७-५९ तक सम्पादक रहे। आपकी इच्छा है कि जैन दर्शनकी वैज्ञानिक पृष्ठभूमि विश्वके समक्ष प्रस्तुत की जाय ताकि आजके सन्दर्भोंमें यह ज्यादा सामयिक और महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो और धर्मका जो सार्वजनीन रूप है वह विश्व-मंचपर उपस्थित हो सके।

●

पं० पूर्णचन्द्रजी शास्त्री

●

स्व० ला० हरिसिंह जैनने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठाके कारण 'चौधरी' पद पाया था और खेखड़ा जिला मेरठ (उ० प्र०) के आप सम्भ्रान्त जैन अग्रवाल परिवारोंमेंसे एक थे। आपके पुत्र प० पूर्णचन्द्रजीका जन्म १२ जुलाई १९१५ को हुआ था।

श्री वृषभ ब्रह्मचार्याश्रम चौरासी (मथुरा) में १९३१ में शास्त्री उपाधि प्राप्त की। वैद्यकमें भी शास्त्री प्रमाण-ग्रंथोंका एवं साहित्यमें साहित्य एवं हिन्दी-भूषणकी उपाधि (इलाहाबाद) प्राप्त की। अपने अध्ययन कालसे ही सर्विसमें आ गये थे। क्रमशः जैन-विद्यालय देहरादून, फतेपुर (गुजरात), तलोद (गुजरात), खतौली (मुजफ्फरनगर) में धर्माध्यापक पदपर कार्य किया। सम्प्रति जैन हायर से० स्कूल शाहदरा (देहली) में इसी पदपर कार्यरत हैं। इसके साथ आप पाणिग्रहण संस्कार, वेदी प्रतिष्ठा आदि कार्य भी सम्पन्न करवाते रहते हैं। १९४२ में शाहदराका उक्त हायर से० स्कूल एक जैन पाठशालाके रूपमें आपने स्थापित करवायी थी।

आप आल इण्डिया दि० जैन परिषद् दरीबां कला (दिल्ली) एवं दि० जैन शास्त्री परिषद् बड़ौत (मेरठ) के सदस्य है। धार्मिक प्रवचन और तत्त्व-चर्चामें विशेष रुचि। यदा-कदा जैन पत्रिकाओंमें लेख लिखना।

आपको पाँच सुपुत्रियाँ एवं दो पुत्रोंका सौभाग्य प्राप्त है। जीवन साधारण, सन्तोषी एवं शान्तिके साथ यापन कर रहे हैं।

●

श्री प्रेमकुमारजी

पिता श्री सुनहरीलालजी एवं आपके चाचाजी श्री बा० देवीप्रसादजी, फिरोजाबादके एक सामाजिक कार्यकर्ता एवं स्थानीय श्री पी. डी. जैन इंटर कालेजकी स्थापना एवं प्रगतिमें आपका सक्रिय योगदान रहा। मातु श्री जौमालाकी कोखसे आपका जन्म ६ अगस्त १९२९ को हुआ था। उस समय आपकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति दोनों अच्छी थी एवं पिताजी फिरोजाबाद तहसीलके प्रमुख वकील थे अतः लोग उन्हें 'मुख्तार' साहब कहकर पुकारते थे।

प्रारम्भिक शिक्षा फिरोजाबादमें, बी एस-सी आगरा कालेज आगरासे १९४९ में तथा स्वाध्यायी रूपसे अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्रमें एम. ए. उपाधियाँ ग्रहण की। विधि-उपाधि प्राप्त करनेके बावजूद धार्मिक प्रवृत्ति होनेके कारण संयमित जीवनके परिपालनार्थ अध्यापन कार्यको प्रमुखता दी और श्री पन्नालाल दि० जैन इण्टर कालेजसे सर्विस प्रारम्भ कर वहीं आज-कल प्रवक्ताके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

आप मुंशी वंशीधर जैन, धर्मशाला फिरोजाबाद, अतिशय क्षेत्र मरसलगंज (आगरा) एवं हाकिम मौजीराम बंगालीलाल जैन धार्मिक ट्रस्टके ट्रस्टी हैं तथा इण्टर कालेजके आजीवन सदस्य।

पद्मावती संदेश एवं पद्मावती पुरवाल जैसी सामाजिक पत्रिकाओंमें अपनी उम्रके २६ वर्षसे गद्यमें लिखते आ रहे हैं तथा फिरोजाबादके जैन मेलामें आपका सक्रिय योगदान रहता है। आपके तीन पुत्र व एक पुत्री हैं। आपके जीवनपर पूज्य १०८ श्री मल्लिसागरजी महाराजकी साधना एवं कठिन चर्य्याका प्रभाव पड़ा और बचपनसे ही धार्मिक प्रवृत्तिको जीवनका लक्ष्य बना लिया था।

श्री प्रकाशचन्दजी

परिचय

जन्म १८ अगस्त १९४० ग्राम केरवना (सागर) में।

परिपरिचय

पिता श्री जानकीप्रसादजी अच्छे विद्वान् हैं और जिनके प्रभावसे स्वयं आपका जीवन धर्मकी ओर प्रवृत्त हुआ।

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा कर्णपुर ग्राममें। १९५८ में जैन उच्च० माध्य० शाला सागरसे हाई स्कूल। १९६१ में साहित्यरत्न। १९६३ में बी० ए० एवं ६४-६५में बी० टी० आगरा विश्व-विद्यालय आगरासे उत्तीर्ण की। 'संस्कृत कोविद' परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

सेवायें

आर्थिक संकटके कारण १९५९ में नगरपालिका शाला बीनामें अध्यापन कार्य । १९६० में शासकीय शाला सागरमें शिक्षक पद पर । १९६१ में सेन्ट्रल स्कूल (केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालयके अन्तर्गत) में शिक्षक पद पर । एम० ए० (इतिहास) सागर विश्वविद्यालयसे ।

साहित्यिक सेवायें

इसी बीच ललितपुरसे प्रकाशित होनेवाले 'राजदूत' नामक पत्रमें लेख, कहानी और एकांकी लिखे ।

●

श्री प्रकाशचन्द् कासलीवाल

●

श्री कासलीवालजी जयपुरके अत्यधिक सम्मानित सामाजिक कार्यकर्ता हैं । वे विनम्रता, निरभिमानता एवं स्पष्टवादिताके लिए प्रसिद्ध हैं । आप नगरमें जैन पैलेस अथवा आगरावालोंके नामसे पुकारे जाते है । आपके पिता स्व० श्री मनीरामजी पहिले आगरामें रहते थे और वहाँसे करीब १९०८ में यहाँ आकर रहने लगे थे । श्री मनीरामजी उन समाजसेवियोंमेंसे थे जिनके निधनसे सारे समाजको गहरा धक्का लगा था । श्री प्रकाशचन्दजी अपने पिताके चाचा श्री प्रभूलालजीके गोद आये थे और इसप्रकार दोनोंके सेवाभावी सस्कार उनको पैतृक सम्पदाके रूपमें मिले है ।

शिक्षा

यद्यपि आपके पास कोई डिग्री या उपाधि नही है परन्तु आप संस्कृत कालेजके विद्यार्थी रहे हैं । अँग्रेजीके साधारण ज्ञानको लेकर जवाहरातके व्यापारमें लग गये । ज्वैलरीके कार्यमें रत्नपरीक्षा करना अत्यन्त कठिन है और लगातार इस दिशामें कार्य करनेसे इसकी दक्षता आती है । आपको इसकी शिक्षा कितने ही कुशल व्यापारियोंसे लेनी पडी ।

अपने व्यापारके प्रसगमें आपने यूरोप और अमेरिकाकी विदेश यात्रा की परन्तु वहाँ जैनाचारकी दृष्टिमे शाकाहारी भोजनमे भी कोई परेशानी नही आती ऐसा आपका अनुभव है ।

प्रारम्भिक जीवन

आपका जन्म १९१० में हुआ था । १३ वर्षकी अल्पायुमें आपका विवाह श्रीमती चाँददेवीके साथ हो गया जिनके पिता तत्कालीन प्रसिद्ध समाजसेवी एवं धनाढ्य परिवारवाले श्री बन्जीलालजी ठोलिया थे । आप अपने परिवारके सबसे बडे हैं । आपके एक भाई श्री लक्ष्मीचन्द जयपुर ज्वैलर्स एशोसियनके अध्यक्ष एवं दूसरे भाई श्री केवलचन्दजी एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं ।

समाज सेवा

नगरकी अनेक जैन एवं जैनेतर संस्थाओंसे आपका घनिष्ठ सम्बन्ध है । दि० जैन संस्कृत कालेज, दि० जैन औषधालय, विश्व जैनमिशन जयपुर शाखाके अध्यक्ष हैं । प्रसिद्ध तीर्थ क्षेत्र श्री दि० जैन अ० क्षेत्रकी महावीरजीकी प्रबन्धकारिणी कमेटीके कोषाध्यक्ष रहे । इसी प्रकार इण्डियन रेडक्रासकी राजस्थान शाखाके भी आप कोषाध्यक्ष रहे हैं । श्री पद्मपुरा क्षेत्र आदि कई समितियोंके सदस्य हैं ।

आपकी भावना एक ऐसी संस्थाको जन्म देनेकी है जो चारों प्रकारकी (शिक्षा, आरोग्यतालाभ, आर्थिक सहायता और आवास व्यवस्था) सहायता देकर जैन समाजके पिछडे वर्गके व्यक्तियोंको ऊँचा उठा सके। आपकी यह भी हार्दिक इच्छा रहती है कि सभी संस्थाओंको बिना किसी भेदभावके सहायता की जावे। इस उत्कृष्ट सामाजिक सेवाकी भावनाके कारण आपका नगरमें अत्यधिक सम्मान है। आप 'सत्त्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं तथा माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ'के सिद्धान्तमें विश्वास रखनेवाले व्यक्ति हैं।

●

कन्नड़ पं० डि० पद्मनाथ शर्मा

●

मैसूर प्रान्तके लब्धि-ख्यात एवं शीर्ष विद्वान् डि० पद्मनाथ शर्माका जन्म भुवनहल्लि (पिरिया पट्टण तालुक) जि० मैसूरमें मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीको माँ श्रीमती चन्द्रमतीके गर्भसे हुआ था। आपके पिता श्री देवचन्द्र जोइम संस्कृत और कन्नड भाषाओंके धुरन्धर विद्वान् है जिन्होंने सस्कृत भाषामे जैन सिद्धान्तानुसार 'सम्यग्भावफल' नामक दो हजार श्लोक प्रमाणित ज्योतिष ग्रंथका प्रणयन किया है जो तत्कालीन मैसूर महाराजसे सम्मानित हुए थे। श्री देवेन्द्रजी देवागम पूजा और प्रतिष्ठापनामें पूर्ण विज्ञ हैं। मैसूर प्रान्तके लब्धप्रतिष्ठित लोगोंमे गिने जाते है। अब वार्धक्यके कारण शान्तिपूर्वक जीवन बिता रहे हैं।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा विद्वान् पिताके संरक्षणमें की और घर पर ही अठारह वर्षकी उम्र तक कन्नड प्राकृत और संस्कृतका अध्ययन किया। १९४५ में सस्कृत काव्य परीक्षा तथा १९५३ मे कन्नड़ पंडित परीक्षा दी। जब आप हाईस्कूलमें पढ़ते थे तभीसे कन्नडमें कविता करने लगे थे। आपकी प्रतिभा दिनोंदिन वृद्धिगत होती गयी और आपने आरम्भमें कहानी और लेख लिखे। आर्थिक उपार्जन हेतु आप गवर्नमेंट हाईस्कूल फोर्ट, बैंगलूरमें शासकीय सेवामें आये और लगभग २५ वर्षमे आप वही कार्यरत है।

इस बीच आपकी साहित्यिक साधना शिखरपर पहुँची और आपने अब तक लगभग चालीस ग्रन्थोंकी रचना कर डाली जिनमें व्याख्यानोंका संकलन, नाटक, उपन्यास और कुछ अनूदित आदि पुस्तकें है। इसके अलावा रेडियो भाषण और आमन्त्रणपर हजारो स्थानोपर जाकर धार्मिक गम्भीरताके साथ जाकर प्रवचन करना आपके जीवनका अभिन्न कार्यक्रम बन गया। परन्तु इन सभी माध्यमोमें आर्थिक उपाजन हेतु नही रहा। निस्पृह वृत्तिसे वही स्वीकारा जो किसीने प्रसन्नतामे भेंटस्वरूप दिया।

मौलिक कृतियाँ

आपने 'त्यागवीर बाहुबलि', 'अभिनववाग्देवी कान्ति', 'अणुव्रत आन्दोलन', 'जैन संस्कृतिय पर्वगलु' 'जैन तेरा पथ दर्शन', जैन साहित्य कतेगलु' आदि करीब १० स्वतन्त्र कृतियाँ, 'समन्तभद्र सर्गात', 'विजय पार्श्वनाथ', कन्नडमेघदूत', 'गोमटेश्वर लावणी' 'प्राणप्रिय काव्य' आदि लगभग सात स्वतंत्र पद्य रचनायें, इष्टोपदेश, 'रयणसार', शब्दमणिदर्पण, कर्णाटक शब्दानुशासन, धनजय शब्दकोष आदि करीब आठ व्याख्यान

संकलित रचनायें, वसन्ततिलके, नाल्किरल, शान्तिसंदेश, मेष्टरमगलु, दुर्दैवि दाराषह, विडषि कन्ति कवयत्रि आदि सात नाटक, पतितपावने तथा निराशेष निहुसिरु दो उपन्यास, आत्मदर्शन, भक्तामर कथेगलुका सम्पादन, वस्तुविज्ञान सार तथा निर्ग्रन्थ प्रवचनका कन्नड़ी अनुवाद आदि लगभग चालीससे अधिक ग्रंथोंकी रचनाकर कन्नड़ साहित्यमें जैनदर्शनका सागर बाँध दिया।

इसके अलावा आप 'वीर भारती' मासिक पत्रिकाका सम्पादन भी करते हैं। कन्नड़ भाषाकी प्रायः सभी प्रमुख पत्रिकाओंमें आपके विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित होते रहते हैं। हिन्दीका अच्छा ज्ञान है तथा भावों की अभिव्यक्ति हिन्दी भाषामें आप कर सकते हैं और भाषण आदि हिन्दीमें हिन्दी भाषी क्षेत्रोंमें करते हैं। अंग्रेजीका आवश्यक ज्ञान आपको है।

बैंगलूर और मैसूरकी सभी प्रमुख संस्थाओंमें प्रवचन और भाषण हेतु आप आमन्त्रित किये जाते हैं तथा उनके सम्मानित सदस्य हैं। आपके इस कार्यमें मैसूर प्रांतके जैनधर्मावलम्बियोंमें एक सुदृढ़ संगठन बना है। दक्षिण भारतीय अणुव्रत प्रचार समितिके आप सदस्य एवं प्रचारक हैं।

आपकी दो बहिनें तथा चार भाई हैं। तथा परिवारमें तीन सुपुत्र तथा तीन पुत्रियोंका सौभाग्य प्राप्त है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती नागरलम्मा संस्कृत, हिन्दी और कन्नडकी साधारणविज्ञ सद्गृहिणी हैं और आपके साहित्य निर्माणमें काफी सहयोग देती रहती हैं।

आपने इच्छा, शक्ति और सकल्पकी एक मार्मिक जीवन घटना बतायी है। जब आपकी उम्र लगभग ग्यारह वर्षकी थी और अष्टाह्निका पर्व चल रहा था आपने एक दिन श्री जिनेन्द्रदेवके समक्ष खडे होकर भावना की कि मेरी आँखोंम दर्द हो और इसी दिनसे आँखोंमें दर्द शुरू हुआ। करीब पन्द्रह दिन आँख पोड़ासे परेशान होकर पुन. आपने भगवान्के सामने प्रार्थना की कि प्रभु अब आजीवन पर्यन्त आँखोंमें दर्द न हो। फिर आज तक इन्हें आँख की पीड़ा नही हुई। इस दैविक घटनासे आपकी प्रभुके प्रति भक्ति और गाढी हो गयी।

छात्र जीवनमें भारतीय काग्रेसके आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया। तथा म० गाँधीके 'क्विट इडिया' आन्दोलनमें भी भाग लिया। १९५४ से आ० श्री तुलसी महाराजके अणुव्रत आन्दोलनमें सक्रिय भाग ले रहे हैं।

●

श्री प्रेमचन्द शास्त्री

●

परिचय

जन्म १५ अक्टूबर १९३३ धारापुरा (भरतपुर) राजस्थान। पिता श्री सेठ पंचाराम अपने समयके प्रसिद्ध सेठ थे।

शिक्षा

राजाखेडा नामक कस्बेकी माध्यमिक शालासे माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण कर प्रो० नेमिचन्द्रजी शास्त्री आरावालोंके सौजन्य एवं सहयोगसे स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीमें प्रवेश लेकर पूज्य प० कैलाशचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीके पादपद्मोंमें बैठकर सिद्धान्त शास्त्री तक अध्ययन किया तथा साथ ही काशी

विद्यापीठसे बी० ए०, काशी विश्वविद्यालयसे एम० ए०, (हिन्दी) तथा मगध विश्वविद्यालय गयासे संस्कृतमें उच्चतम अंकोंके साथ द्वितीय श्रेणीमें विशिष्ट स्थान प्राप्त किया।

पुरस्कार

माणिकचन्द्र परीक्षालय द्वारा शास्त्री परीक्षामें सर्वोच्च अंक प्राप्त होनेके फलस्वरूप। हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित हिन्दी निबन्ध प्रतियोगितामें प्रथम स्थान प्राप्त कर पुरस्कार प्राप्त किया। तैराकी एवं साईकिल प्रतियोगिताओंमें सदैव विशेष स्थान मिलते रहे।

शासकीय सेवा

अध्ययन समाप्त कर हरप्रसाद जैन हायर सेकण्डरी स्कूल आरा (बिहार) में हिन्दीके सहायक शिक्षक बने। ६ वर्ष पश्चात् स्थानीय जगजीवन डिग्री कालेजमें हिन्दी विभागमें व्याख्याता पद पर कार्य किया। इसी संस्थासे केन्द्रीय विद्यालयके स्नातकोत्तर शिक्षकके लिये चयन हुआ परन्तु बादमें स्वतन्त्रताके अभावमें वहाँसे पलायन कर जैन स्नातक महाविद्यालय भिण्डमें व्याख्याता और बादमें सहायक प्राध्यापक पर पदोन्नति। वरिष्ठतम सहायक प्राध्यापक होनेके कारण समय-समय पर कार्यवाहक प्राचार्यका पद सम्हालते रहते हैं। वर्तमानमें उप-प्राचार्य होनेके साथ-साथ कार्यवाहक प्राचार्य है।

शोधकार्य

स्नातक परीक्षामे 'महाकवि बनारसीदास और उनका काव्य साहित्य' विषयपर विवेचनात्मक शोध-निबंध लिखा। स्नातकोत्तर परीक्षामें 'महाकवि अर्हद्दास एवं मुनिसुव्रतनाथ' एक विश्लेषण प्रस्तुत किया। जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियरमें आयोजित गान्धी सेमीनारमें 'गान्धीजी की नैतिक शिक्षा और समाजोद्धार' विषयपर गम्भीर शोधपत्र पढा तथा साथ ही 'जैसवाल जैनबन्धु' के सहायक सपादकका दायित्व तीन वर्ष तक सम्हाला।

समाज सेवा

१९६५ मे ६८ तक जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियरकी कला संकायके सदस्य। तथा विद्या-परिषद् जीवाजी विश्वविद्यालयके १९७० से आज तक सदस्य है। प्राध्यापक परिषद् जैन महाविद्यालयके १९६७-६८ में अध्यक्ष रहे। तथा १९६८ से ७० तक सचिव। सम्प्रति जैन महाविद्यालय भिण्डकी प्रबन्ध समितिके सदस्य। इसके अलावा जैन हाई एव हायर से० स्कूल आरा एव राजाखेडाकी प्रबन्ध समितिके सदस्य है।

●

पं० प्रभुलालजी 'प्रेमी' पोहरी

●

आपका जन्म जेष्ठ शुक्ला दशमी सं० १९६७ में ग्राम-पोहरी जिला-शिवपुरी (म० प्र०) में हुआ था। आपके पिता श्री अमरचन्दजी एवं पितामह श्री मूलचन्दजी पटवारी थे तथा समाजमें अच्छी प्रतिष्ठा थी। प्रारम्भिक शिक्षा ग्राममे ही हुई। तदुपरान्त उच्च शिक्षा हेतु आदर्श विद्यालय भटनावरमें हुई जहाँके सचालक गुरुवर पं० गोपालकृष्णजी पुराणिक ग्वालियर-गान्धी माने जाते थे। आपकी प्रेरणासे आपका जीवन सेवा और त्यागमय बन गया।

१९२९ में विदेशी वस्त्रोंकी होली जलाकर हमेशाके

लिए खादी पहिननेका व्रत लिया। आप हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजीके विज्ञ हैं। तथा आपकी लेखन शैलीमें मौलिक विचारधाराका समावेश है। विद्वद्वर्गने आपकी लेखन कलासे प्रभावित होकर 'हिन्दी-कवि कोविद भूषण', साहित्य-सम्राट्' आदि उपाधियोंसे विभूषित किया।

आपने १६ वर्षकी अल्पायुमें पोहरीमें 'अकलंक आश्रम' की स्थापना की तथा १९३९ में एक सामाजिक एवं धार्मिक जागरण 'वीर सेवा संघ' संस्थाकी स्थापना की। १९४४ में कलकत्तामें मनाये जाने वाले 'वीर द्वैसहस्राब्दि' अधिवेशनमें पं० श्री जुगलकिशोर मुख्त्यारके साथ अथक श्रम कर सक्रिय योगदान दिया। पचराई अतिशय क्षेत्रका सर्वप्रथम मेला करवानेका श्रेय आपको ही है। आप निस्पृह समाज-सेवी है।

आपके दो छोटे भाई हैं। आपका अधिक समय आत्मचिन्तनमें व्यतीत होता है। आपका जीवन अन्य लोगोंके लिए अनुकरणीय है।

●

श्री प्रेमचन्द्जी जैन 'विद्यार्थी'

●

नयी पीढ़ीके कवि श्री 'विद्यार्थीजी' अपने सीमित साधनों में श्रमके सोपानोंसे आगे बढे हैं और दमोहमें अच्छी प्रतिष्ठा है। आपका जन्म कुआखेडा नायक पो० मुडिया जिला-दमोहमें हुआ था। आपके पिता श्री कारेलालजी कृषिका कार्य करते हुए धार्मिक सद्गृहस्थ थे और ग्रामके मुखिया भी। बादमें पीतलका व्यवसाय दमोहमें आकर करने लगे। आपके परिवारमें आपके मँझले चाचा श्री लखमीचन्दजी व छोटे चाचा श्री कुन्दनलालजी सामाजिक चेतनाके अग्रणी एवं सांस्कृतिक कार्योंमें उत्साह रखने वाले व्यक्ति थे। आपके फफूरे भाई श्री स्व० पं० मूलचन्दजी वत्सल काव्यकला निधि एवं साहित्यशास्त्री थे, तथा समयानुकूल सुधारक वादी। दमोहमे प्रारम्भिक शिक्षासे लेकर इण्टरमीडिएट किया तथा धर्ममें रत्नकरंडश्रावकाचार तक अध्ययन किया था। आगेके अध्ययनमें प्रयत्नशील हैं। १९५५ में दमोहमे हिन्दी साहित्य समितिके द्वारा आपको 'विद्यार्थी' का सम्मान दिया गया था।

१९५६ मे लिखना प्रारम्भ किया और आज तक राष्ट्रीय धार्मिक तथा सामाजिक चेतनाको ऊपर उठानेके लिए बहुत लिखा है। एक खण्ड काव्य 'श्रमबाला' तथा अन्य दो पद्य रचनायें 'प्रेम काव्य संग्रह' एवं शेरे चुने गीत' अप्रकाशित है। 'जैनधर्म मेरी दृष्टिमें' एक गद्यात्मक पुस्तिका भी लिखी है। आपकी कई रचनायें रेडियोपर प्रसारित भी हुई जैसे मुक्ति दिवस, शहर और गाँव, जय बांगला, जय भारत इत्यादि।

आपने १९४६-४७ मे स्वतत्रता आन्दोलनमें आजाद हिन्द दलमें सैनिकके रूपमे कार्य किया। स्वतंत्रता सैनानी श्री रघुबीर प्रसाद मोदीकी प्रेरणा और निर्देशनमे यह राष्ट्रीय चेतना पायी थी। आपने अपने सहयोगियो सहित दमोहमे एक जैनसाहित्य और सांस्कृतिक संस्थाकी स्थापना की है। जिसने जन-जाग्रतिका बडा कार्य किया है। आप स्थानीय दमोहकी कई सस्थाओंके सदस्य हैं। वर्तमानमे आप भू-अभिलेख विभाग मे राजस्व-निरीक्षकके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

आपको चार पुत्रों एव एक पुत्रीका सुयोग प्राप्त है।

●

श्री पन्नालालजी मच्छरदानी वाले

बुन्देल और बघेल खण्डमें शाकाहारी प्रचारके लिए यदि किसी व्यापारीका नाम लिया जाय तो श्री पन्नालालजीका नाम अग्रणी होगा। आपके साहित्य लेखनका मुख्य उद्देश्य वर्तमान पीढीको शाकाहारी एवं अहिंसक बनानेका रहा है। इस हेतु आपने १९६१ से 'शाकाहारी' पत्रिका निकालना प्रारम्भ किया जो १९६५ तक अपने उद्देश्यमें आरूढ रही परन्तु आर्थिक बोझके कारण वह बन्द हो गयी।

आपके पिता श्री भगवानदासजी धार्मिक आचरण वाले कपडेके व्यापारी हैं। धार्मिक शिक्षणसे लेकर इण्टर तक की लौकिक शिक्षा रीवाँमें ही प्राप्त की। श्री मोतीलालजी तनय श्री कन्हैयालालजीकी सत्प्रेरणासे स्वाध्याय और सयमकी ओर प्रवृत्ति मुलटायी और प्रारम्भसे ही देवदर्शन आदिकी प्रतिज्ञा ली तथा रीवाँमें जैनियोंकी अल्पसंख्या होने पर भी १९२४ में मुनि शान्तिसागरके संघके समयसे श्री शान्तिसागर दि० जैन पाठशालाकी नीव डाली।

अपना व्यापार करते हुए आपकी अभिरुचि १९५१ से साहित्य-सृजनकी ओर जगी और आपने ज्ञान विज्ञान काव्य मुक्ता (छोटी पुस्तिका), कबीर वाणी (टीका ग्रन्थ), कबीर-वाणी (अमृत-मथन) अप्रकाशित, वर्णबोध पदावली तथा सेठ खटपटमल (नाटक) लिखा है। इसके अलावा विविध जैन मासिक और साप्ताहिक पत्रोंमें स्फुट-लेख लिखते रहते हैं।

१९६५ तक प्रान्तीय शाकाहारी सघ रीवाँ तथा स्थानीय विद्यालय, नवयुवक मण्डल आदिके मंत्री।

परिवारमें आपके चार भाई और दो बहिनें हैं। तीन पुत्ररत्न तथा दो पुत्रियोंका सौभाग्य मिला है। आप आध्यात्मिक, मननशील एवं भक्तामर पाठमें अटूट श्रद्धा रखनेवाले तरुण हैं। व्यापारमें मिले अतिरिक्त समयका पूरा उपयोग धार्मिक अध्ययन आदिमें लगाते हैं।

पं० परमानन्दजी न्यायतीर्थ

गोलालारे जैन आम्नायमें वि० स० १९६४ पौषकृष्णा अष्टमीको श्री परमानन्दजीका जन्म बुढवार (ललितपुर) जि० झाँसीमें हुआ था। आपके पिता श्री स्व० गुंचेलालजी जो गुणज्ञ-जनोंका हमेशा सम्मान करते थे तथा प० निद्धामलजी क्षेत्रपाल ललितपुरसे आपने धर्म प्रवृत्तिमें प्रोत्साहन किया। आपके बडे भ्राता प० दामोदरदासजी-मावर, अच्छे विद्वान् है तथा पाँच वर्ष जिन्होंने जैनमित्र सूरतमें मैनेजरका कार्य किया। प्रारम्भिक शिक्षा बुढवारमें पुनः गोपाल विद्यालय मोरेनामे विशारद एव महाविद्यालय ब्यावर (अजमेर) से न्यायतीर्थ तथा शास्त्री परीक्षा दी।

शिक्षा समाप्त करके सन् १९२७ मे फिरोजपुर छावनीमें पचायती मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन हेतु १ वर्ष रहे। इसके बाद जैनमित्र सूरत, जैनपाठशाला दमोह, नजीबाबाद, चन्देरी, खण्डवा और कोटामें सन् १९४७ तक धर्म शिक्षणका कायकर जीविकोपार्जन किया।

इसी बीच आपने अनेक महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थोका स्वाध्याय करके जैनाजैन साप्ताहिक पत्रोंमें छपने योग्य उपयोगी उद्धरणोंकी १०-१२ कापी लिखकर तैयार की। शुद्ध णमोकार मंत्रके जाप्यके लिए आप सभीको प्रेरणा देते है।

आपकी ३ पुत्रियाँ तथा २ पुत्र हैं जो मेधावी एवं सुयोग्य है। आपने बाल हितार्थ 'प्रारम्भिक धर्म शिक्षा' पुस्तक लिखी है।

स्व० पं० परमेष्ठीदासजी

●

श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई (सागर) के प्राचार्यके पदसे सामाजिक और धार्मिक सेवाका व्रत पालते हुए जीवनके अंतिम क्षणों तक अपनी निष्ठा पर अटल रहे और अंतमें जीवनका समर्पण उसी गुरुकुलकी पुण्य भूमिमें और वहाँ पल रहे, शिक्षा ले रहे विद्यार्थियोंके लिए कर दी। आपका जन्म विदिशा नगरीमें माँ श्री पं० भूरीबाईकी कोखसे हुआ था। आपके पिता श्री पं० मूलचन्दजी बिलौआ सद्गृहस्थ थे। जैन संस्कृत विद्यालय सागरसे प्रथमा और हाईस्कूल करनेके पश्चात् स्वाध्यायी रूपसे एम० ए० तक अध्ययन किया। इसी बीच प्रान्तीय शिक्षण महाविद्यालय जबलपुरसे १९५७ में बी० टी० शिक्षण-उपाधि ली और यही तक नही रुके अपितु १९६७ में आपने आचाराग सूत्र पर शोध प्रबन्ध लिखकर सागर विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी० की सम्मानित उपाधि प्राप्त की।

१९६३ तक आपने जैन हाईस्कूल सागरमें अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् श्री एस० पी० जैन गुरुकुल एवं जैन हायर से० स्कूलके प्राचार्य पदपर अधिष्ठित हुए। आप उक्त संस्थाके लिए वरदान स्वरूप हासिल हुए। और गुरुकुलके चतुर्मुखी विकास हेतु आपने जी तोड परिश्रम किया। जैनपर्वों पर प्रवचन हेतु जाकर अपनी वाग्चातुय एवं ओजस्वी वाणी द्वारा धर्मकी महती सेवा की है।

आपके स्फुट लेख प्राय सभी जैन पत्रिकाओं एवं अभिनन्दन ग्रन्थोंमें प्रकाशित होते रहते थे। इसके अलावा आपने तीन संस्कृत की, दो हिन्दी की, दो बीजगणित की और दो अंग्रेजी की शालेय पाठ्य-पुस्तकें लिखी है।

तर्ककी कसौटी पर खरी उतरनेवाली परम्पराओके आप पोषक रहे है।

सामाजिक सेवायें

आप दि० जैन महिलाश्रम सागरके शिक्षा मंत्री, श्री ग० दि० जैन संस्कृत महाविद्यालयके उपमंत्री तथा वर्णी स्नातक परिषद्के सयोजक रहे हैं जिनका उद्देश्य नवीन विद्वानोंका संगठन रहा था।

आपकी पाँच बहिनें थी। आप अपने पीछे २ पुत्रियो और ४ पुत्रोंको छोड़कर असमयमें ही केन्सर रोगके कारण काल कलवित हो गये।

●

पं० पूर्णचन्द्रजी 'सुमन' काव्यतीर्थ

●

ककरवाहा (टीकमगढ़) म० प्र० में दि० जैन गोलापूर्व समाजमें प० पूर्णचन्द्रजीके वैद्य-परिवारकी अच्छी प्रतिष्ठा है। आपके पिता श्री नन्हेंलालजी, चाचा श्री पं० मन्नूलालजी वैद्य, बड़े भाई पं० माणिकचन्द्र एवं पं० रतनचन्द्र भी अनुभवी वैद्य हैं। प० गुलाबचन्द्र 'पुष्प' ककरवाहा लब्ध प्रतिष्ठित प्रतिष्ठाकारक एवं ज्योतिज्ञ एवं वक्ता हैं आपके भाई हैं।

१९४२ में 'महावीर जैन' विद्यालय साढूमल (मडावरा) से न्याय प्रथमा एवं विशारद तथा श्री गणेश दि० जैन विद्यालय सागरसे १९४७ में मध्यमा, काव्यतीर्थ एवं धार्मिक शास्त्री
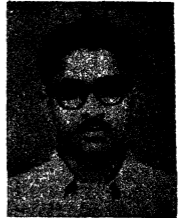
परीक्षा उत्तीर्ण की। पहिले दि० जैन पाठशाला शाहगढ़ (सागर) और नवापारा राजिम में अध्यापन कार्य किया। पुनः १९६० तक दुर्ग में जैन पाठशालामें धर्माध्यापक रहे। अब वही पुस्तक-विक्रयका स्वतंत्र व्यवसाय कर रहे हैं।

पू० वर्णी महाराजकी प्रेरणासे आपने कविता लिखना प्रारम्भ किया था। संगीत में भी अभिरुचि है तथा संगीतमें एक पुस्तक 'सुमन संगीत सरिता' रची थी। तथा नेमी काव्य, भक्तामर पद्यानुवाद, अभिनय नाटक एवं परिसंवाद आदि लिखे हैं जो अप्रकाशित है। सुधारवादी दृष्टिकोणके लेख प्राय. लिखे है।

राजनैतिक क्षेत्रमें दखल रखते हैं तथा दुर्ग नगर जनसघ कार्यकारिणी समितिके सदस्य हैं। कुछ समय तक दि० जैन समाज दुर्गके मंत्री भी रहे है। आपकी बहुधा रचनायें जैनमित्र, छत्तीसगढ केशरी एवं दैनिक नवभारत आदिमें प्रकाशित हुई हैं।

●

पं० पन्नालालजी विशारद

●

आपका जन्म पौष कृष्णा तृतीया सं० १९६५ को खैराना पो०—बहेरिया (सागर) म० प्र० में हुआ था। पिता श्री रामलालजी एवं मातु श्रीमती गौराबाई।

सस्कृत महाविद्यालय सागरसे प्रथमा एव विशारद पं० दयाचन्दजी सिद्धान्तशास्त्रीके चरणोंमें बैठकर उत्तीर्ण की। धार्मिक परिवेश मिलनेके कारण प्रारम्भ से ही धर्ममय एव सात्त्विक प्रवृत्ति रही है। आपके लेख 'गोलापूर्व जैन' में प्रकाशित हुए है। समाजके संगठित रूपसे कार्य करनेके पक्ष मे है। सार्वजनिक मंदिर निर्माणमें आपका स्तुत्य सहयोग रहा। आप स्वाध्यायी विद्वान् है।

●

डा० पवनकुमारजी 'सिंघई'

●

डा० पवनकुमारजी सागर विश्व-विद्यालयमे भाषा-विज्ञान विभागमें असिस्टेन्ट प्रोफेसरके पदपर कार्य करने वाले ऐसे विद्वान् है जो अपनी लग्न एवं अध्यवसायसे आगे बढ़े एवं इस पद को प्राप्त हुए। पारिवारिक सदस्य बुन्देली कहावत 'कम पढ़े सो हर से गये, ज्यादा, पढे सो घर से गये' चरितार्थ नही करना चाहते थे। परन्तु स्वयंके आग्रहसे आपने सागरमे श्री गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालयमें अध्ययन प्रारम्भ किया। और वहाँसे बंगीय संस्कृत परिषद् कलकत्ता, संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसीकी उत्तर मध्यमा (अँग्रेजी सहित) एवं न्याय एवं काव्य मध्यमा (साहित्य) उत्तीर्ण की। इसी बीच आपके विवाहका प्रस्ताव आया परन्तु आपने पूर्ण अध्ययनके पश्चात् अनुसंधानात्मक कार्य करने और फिर काममें लग जानेके बाद वैवाहिक बन्धन स्वीकार करनेको कहा।

ग्राम सोडरपुर जिला रायसेन (भोपाल) में सिंघैन ललिताबाईकी कोखसे ३० अगस्त १९३५ ई० में जन्मा यह पुत्र अपनेमें पूर्ण संकल्पी रहा और जहाँ धार्मिक अध्ययनमें यह अपनी मेधावी प्रतिभाके लिए पारितोषिक प्राप्त करते रहे वहाँ लौकिक शिक्षा में एम० ए० करनेके पश्चात् 'बुन्देली की व्यावसायिक शब्दावलि' शोधात्मक निबन्ध लिखकर पी०-एच० डी० का सम्मान प्राप्त किया। तथा आपने १९६५ में पहिले Language Division, Govt. of India, Ministry of Home Affairs कलकत्तामें अनुसंधान सहायकके रूप में और बादमें शिक्षा विभागके प्रति अभिरुचि होनेसे सागर विश्वविद्यालयमें आ गये।

आपका कहना है कि मैं साहित्यकार नहीं बल्कि भाषा विज्ञानी हूँ। परन्तु भाषाका सम्बन्ध साहित्य से ही है अतः साहित्यकार तो आप अपने स्वयं के कथन से हैं ही।

छात्र जीवनसे व्याख्यानमें कुशल रहे। भारत शासनकी ओरसे यूनिवर्सिटी ग्रान्ट कमीशनके सहयोगसे आप 'चम्बालाहूली' नामकी एक बोलीपर काम कर रहे हैं। बुन्देली शब्दकोषके अलावा आप 'ससारकी प्रमुख भाषायें' पुस्तकका प्रणयन कर रहे हैं। आप सागर विश्वविद्यालयके अन्तर्गत हिन्दी विभागकी 'बुन्देली पीठ' के सक्रिय सदस्य हैं। इसके अलावा आप 'लिंग्विस्टिक सोसाइटी आफ इंडिया' तथा मध्यप्रदेश ग्रन्थ रचना अकादमी भोपालके सदस्य हैं।

समाजमें व्याप्त कुरीतियोंके प्रति आपमें ज्यादा अकुलाहट है तथा नये मन्दिरों के निर्माणकी अपेक्षा पुरानोंका जीर्णोद्धार हो इस पक्ष में हैं। समाजके ऐसे लोगोंके प्रति बडा रोष है जो ऊपरसे बडे पद और धनका आवरण डाले भीतर पाप और जघन्य कार्य करते है।

आपकी पत्नी श्रीमती शान्ता जैन सुशिक्षित महिला एम० ए० हैं। आपके पिता श्री फदाजीलाल सिंघई एक सामाजिक प्रतिष्ठाके धनी व्यक्ति थे। आपके बड़े भ्राता सिं० लखमीचन्दजी सामाजिक कार्यकर्ता एवं सरपंच हैं। तीन भाइयों और चार बहिनोंका सौभाग्य मिला है।

●

पं० प्रकाशचन्द्रजी एम० ए०

●

आप युवा पीढीके विद्वान् हैं। जिन्होंने अपनी शिक्षा मुख्य रूपसे जैन गुरुकुल हस्तिनापुर (मेरठ) और स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीमें प्राप्त की। आपकी जन्मभूमि जलालाबाद जिला मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश है। अपनी कर्मठता और लगनसे जहाँ लौकिक शिक्षामें एम० ए० (हिन्दी और संस्कृत), बी० एड० तथा साहित्य शास्त्री एवं साहित्यरत्नकी उपाधियाँ प्राप्त की वहाँ दूसरी ओर धार्मिक शिक्षणमें जैन सिद्धान्त शास्त्री तक अध्ययन किया।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् आप दिगम्बर जैन श्री देशभूषण गुरुकुल अयोध्यामें एवं कैमोर हायर-सेकण्डरी स्कूलमें प्रधानाध्यापकके रूपमें दो वर्ष कार्य किया। पुनः आप विदुर हायर सेकण्डरी स्कूल दारानगर के प्राचार्य और आत्मानन्द जैन कालेज अम्बालामें ३ वर्ष प्रवक्ता रहे। सम्प्रति श्री समन्तभद्र संस्कृत महाविद्यालय दरियागंज दिल्लीमें प्रधानाचार्यके पदपर कार्य कर रहे हैं।

साहित्यिक अभिरुचि

बीजभूत आपमें साहित्यके प्रति अटूट प्रेम रहा । स्फुट कविताओंके अलावा कई निबन्ध लिखे। आप विजयानन्द (मासिक) के दो वर्ष सम्पादक रहे। वर्तमानमें "जैन प्रचारक"• (मासिक-दिल्ली) और 'अनेकान्त' (वीर सेवा मंदिर-दिल्ली) के सम्पादक हैं।

आप अध्ययनशील, मिलनसार एवं हँसमुख व्यक्ति हैं। सहानुभूति परक गुण आपके व्यक्तित्वका अंग है।

●

श्री प्रकाशजी सिंघई

●

आपका जन्म १९४० वैद परिवारमें मध्य प्रदेशके सागर जिला अन्तर्गत केरबना ग्राममें हुआ था, जहाँ आपके पिता पं० जानकीप्रसादजी शास्त्री अध्यापन कार्यको छोड़कर इसी ग्राममें रहने लगे थे। ग्राममें शिक्षाका साधन न होनेसे प्राथमिक शिक्षा कर्रापुर ग्राममें पायी और सागरके जैन संस्कृत विद्यालयसे हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण कर आर्थिक परिस्थिति कमजोर होनेके कारण अध्यापन कार्य शुरू करना पड़ा। पहिले बीनामें और बादमें १९६१ से मिलेट्री द्वारा संचालित बालविद्यालय सागरमें अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया जो बादमें केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय द्वारा 'Central School' में परिवर्तित होकर आपकी सेवाएँ केन्द्रीय सरकार द्वारा ग्रहण कर ली गयी। शासकीय सेवाके सन्दर्भमें आपको खडकवासला पूना और वर्तमानमें गिलनगर मद्रासमें स्नातकोत्तर शिक्षक (इतिहास) में कार्यरत हैं।

सागर विश्वविद्यालयसे एम० ए० और एम० एड० करनेके पश्चात् आपने जैन कला पर शोध-कार्य करनेका निश्चय किया और आजकल आप "बुन्देलखण्डकी जैन कलाका समीक्षात्मक अध्ययन" विषय पर अपना शोध प्रबन्ध लिख रहे हैं।

साहित्यिक गतिविधियाँ

१. अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलनकी रजत जयन्ती पर "जैन मूर्ति पूजा" पर शोध पत्र पठित।

२. इसी सम्मेलनके २६वाँ अधिवेशनमें पठित एवं प्रकाशित पत्र "शासनदेवी पद्मावती"।

३ सागरकी लहरें—'त्रिपथा' में प्रकाशित।

४. बुन्देलखण्डके गान्धी, बुन्देलखण्डके जैन-तीर्थ, स्वाधीनता इतिहासकी एक झलक आदि अनेक महत्त्वपूर्ण लेख उच्चस्तरीय पत्रिकाओंमें प्रकाशित।

शासकीय सेवाके दौरान दक्षिण भारतकी जैन संस्कृतिका अध्ययन करनेका आपको सुयोग प्राप्त हुआ है और उसका उत्तर भारतसे तुलनात्मक अध्ययन करनेकी आपमें अभिरुचि है।

●

स्व० पन्नालालजी प्रतिष्ठाचार्य

जीवन-परिचय

यद्यपि पंडितजीके जन्म-मृत्युका ज्ञान नहीं हो रहा तथापि उनके प्रतिष्ठित पिता श्री खुमानसिंहजी थे। उनकी पत्नी जानकीबाई थी और दो पुत्र तथा एक पुत्री हैं। दोनों पुत्र पिताके पद-चिन्होंपर चलने वाले पं० रतनचन्द्र शास्त्री और पं० भैयाजी शास्त्री हैं।

शिक्षा-कार्य

पंडितजीके गुरु पन्नालालजी गोधा इन्दौर थे। आपने अनेक शास्त्रोंका लेखन-शोधन कार्य किया। आपने समाजमें एकसे अधिक स्थानोंपर प्रतिष्ठायें कराईं। ललितपुर व देवरान उ० प्र० की प्रतिष्ठायें उल्लेखनीय हैं। आपका व्यवसाय जमींदारी था। आपने चंदेरी ईसागढ़में अध्यापन कार्य भी किया था।

एक वाक्यमें आप आचार-विचारके धनी थे। धर्म और समाजकी उन्नतिके इच्छुक थे।

पं० प्रेमचन्दजी सिद्धान्तशास्त्री

जीवन-परिचय

पण्डितजीका जन्म करैया (सागर) म० प्र० में हुआ। प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर सागर विद्यालय से विशारद, कटनी शिक्षा संस्थासे शास्त्री किया। आयुर्वेदकी परीक्षा भी यहीं उत्तीर्ण की।

कार्य-क्षेत्र

आरम्भमें एक माध्यमिक विद्यालयमें सहायक शिक्षक रहे। तत्पश्चात् बड़गाँव चिकित्सालयमें कार्य किया। १९५६ में स्थानान्तरसे तंग आकर त्याग पत्र दे दिया। १९५८ में कटनीमें वैद्यनाथ फर्मके वैद्य बनकर ९ वर्ष कार्य किया। फिर स्वतन्त्र दुकान मिल जानेसे स्वतन्त्र व्यवसाय शुरू कर दिया। आपने एकसे अधिक आयुर्वेदिक संस्थाओंकी एजेन्सी ले रखी हैं। जीवन संघर्षमें जूझते हुए आपने काफी उत्थान-पतन देखे-लेखे।

डॉ० प्रद्युम्न कुमारजी आर्यपुर

डॉ० प्रद्युम्न कुमार जैन जिला मैनपुरी (उ० प्र०) के अंतर्गत आर्यपुर खेड़ा ग्रामके मूल निवासी हैं। जन्म १-१२-१९२८ ई०। आपके पिता लाला बाबूरामजी अपने ग्राममें ही अपना व्यवसाय करते रहे। और अपने बड़े परिवारको पालते रहे। आपकी माँ श्रीमती आनन्दीदेवी प्रसिद्ध जैन इतिहासज्ञ स्व० बा० कामता-

प्रभावजीकी कनिष्ठ भगिनी हैं और धार्मिक संस्कारोंसे युक्त एक विदुषी महिला हैं। अपनी मांके इन धार्मिक संस्कारोंको विरासतमें लेकर डॉ० प्रद्युम्न अपने जीवनके प्रारम्भसे ही जैनधर्मके ग्रंथों और मुनियोंके प्रति आकर्षित हो गये थे। जैसा ज्ञात हुआ है, कि एक बार आचार्य सूरसागरजी महाराज ग्राम आर्यपुर-खेड़ामें पधारे और उन्होंने बाल प्रद्युम्नजीकी सौम्य प्रतिभाको भाप कर माँ बापको सुझाव दिया, कि इस बच्चेको आगे चलकर संस्कृत पढ़ाना। यह एक विद्वान् व्यक्ति होगा। परन्तु काल-क्रममें लाला बाबूराम मुनिश्रीकी सलाहको भूल गये और अपने बच्चेको वहीके प्राथमिक इस्लामिया स्कूलमें उर्दू पढानेको बिठाल दिया।

उर्दूके साथ ही फिर भोगावमें रहकर प्रद्युम्नजीने मिडिल पास किया और वहीं हाईस्कूलमें उर्दूके साथ फारसीको चयित कर लिया; परन्तु कालके दबावसे स्कूली शिक्षा रद्द हो गयी और १९४७ में व्यक्तिगत रूपसे हिन्दीके साथ हाईस्कूल पास किया। इसके पूर्व ही प्रद्युम्नजीका विवाह हो गया। अत परिवारके भरण-पोषणके लिए नौकरी करना शुरू कर दी और मैनपुरी कलक्ट्रेटमें क्लर्क हो गये। उसी नौकरी-कालमें व्यक्तिगत रूपसे इंटर किया, प्रातःकालीन कक्षाओंमें बी० ए० पास किया और फिर आठ वर्षकी सरकारी नौकरीमे लात मारकर आप काशी हिन्दू-विश्वविद्यालयमें दर्शन पढने चले आए। यहाँ १९५७ में एम० ए० की उपाधि लेकर आप मैनपुरीके डी० ए० वी० इंटर कालेजमें तर्कशास्त्रके प्रवक्ता हो गए और दो ही वर्ष बाद उ० प्र० की शिक्षा सेवामें दीक्षित हो गए। सन् १९६३ में आचार्य कुदकुंदके तत्त्वज्ञानपर शोध-निबध लिखा जिसपर आगरा विश्वविद्यालयने आपको पी०-एच० डी० की उपाधिसे सम्मानित किया।

प्रारम्भसे ही डॉ० प्रद्युम्न विद्या-व्यसनी और सर्जनात्मक प्रतिभाके धनी व्यक्ति रहे है। २५ वर्षकी अवस्था-तक आपने 'पद्मिनी' और 'जिन वर्द्धमान' महाकाव्य और 'मीना बाजार' खडकाव्य लिखकर पूरे कर दिए। फुटकर कवितायें तो ढेर सारी लिखी। आप मैनपुरीके गिने चुने कवियोंमें गिने जाने लगे। परन्तु आपकी मुख्य रुचि दर्शनशास्त्रकी ओर थी। फलतः काशी हिन्दू वि० वि० में दर्शनका विधिवत् अध्ययन करके कुछ समयके लिये वैशालीकी प्राकृत जैन विद्यापीठमें जैन दर्शनके विशिष्ट अध्ययनके लिये गये, किन्तु आर्थिक दबावके कारण पुनः नौकरीमें आ जाना पडा। आपका लेखन बराबर चलता रहा। एक ओर साहित्य-सृजन, दूसरी ओर दार्शनिक चिंतन। बादमें साहित्य-सृजनकी दिशामें 'प्रत्यावर्तन' और 'आस्थाओंके जगलमें' नामक उपन्यास, कुछ कहानियाँ, कवितायें, और एक 'रणभूमि' नामक खंडकाव्य लिखे गये। दर्शनमें 'जैन और न्याय लाजिक' (अंग्रेजी), 'मेटा-फिजीकल सिंथेसिस' (अंग्रेजी), 'डेमोक्रेटाइजेशन आफ लाइफ' (अंग्रेजी) ग्रंथ रचे। दर्जनोंकी संख्यामें लेख और निबंध अंग्रेजी और हिन्दी दोनोंमे लिखे गये। अभी हालमें ही एक ग्रंथ 'तीर्थंकर महावीर—जीवन और जीवन-दर्शन' लिखकर समाप्त किया है। पाश्चात्य न्यायपर 'तर्क-सिद्धान्त-परिचय' और प्लेटोकी अमर कृति 'फीडो'का हिन्दी अनुवाद भी हो चुका है। आपकी प्रमुख और बडी सभी कृतियाँ अप्रकाशित हैं। केवल फुटकर कवितायें, लेख और कहानियाँ ही अनेक पत्रोमे छपी है। आपके विचारोत्तेजक-लेख साहित्य सदेश, सरिता, अनेकान्त, गवेषणा (मुरादाबाद), अहिंसावाणी, शाकम्भरी, जैन जनरल, वायस आफ अहिंसा, हिमाचला, ज्योत्सना आदि पत्रिकाओमे प्रचुरतासे छप चुके है।

आप निरन्तर सृजन कार्यमें व्यस्त हैं।

●

पं० पातीरामजी

श्री पातीराम जैनका जन्म भादों बदी पंचमी विक्रम संवत् १९६२ में बहारन उत्तर प्रदेशमें हुआ था। आपके पिता श्री बद्रीप्रसादजी व माताजी फूला देवी थीं। आपके पिताजीकी समाजमें काफी इज्जत थी। वे एक साधारण व्यापारी थे। आपकी धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा श्री दिगम्बर जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेनामें हुई। आपने ब्यावरसे विशारद व सहारनपुरसे शास्त्रीकी परीक्षा पास की। आपका विवाह आषाढ़ बदी नवमी विक्रम संवत् १९७० में श्री बद्रीलालजीकी सुपुत्री पातीबाईके साथ हुआ। आपके परिवारमें १ भाई २ बहिनें व १ पुत्र हैं।

बचपनसे ही आपकी रुचि नाटक, कविता आदि लिखनेमें रहती है।

आपको श्री दिगम्बर जैन शांतिनाथ पाठशाला राजमंडी कोटाकी ओरसे अभिनंदन पत्र दिया गया। आपको तर्क रत्न व्याख्यान भूषणकी उपाधि भी मिली। आपने मुरादाबाद, कलकत्ता, जयबत नगर, रामगंज मंडी आदि स्थानोंपर जैन पाठशालामें करीब ३५ वर्ष तक अध्यापकके रूपमें कार्य किया।

आपने कई नाटक कहानियां तथा लेख आदि लिखे हैं। जो कि जैनमित्र, जैन दर्शन, वीर अर्जुन, अहिंसा वाणी आदिमें प्रकाशित हुए हैं।

विद्युतचोर, विद्याविजय, उर्मिला आपके प्रकाशित हुए नाटक है। अनन्तमती आपका अप्रकाशित नाटक है। आपने जैन फिल्म समितिकी भी रूप रेखा तैयार की। वर्तमानमें आप जैन कहानियां तथा जैन तीर्थोंपर फिल्म बनानेके प्रत्यनमें हैं।

पं० पद्मचन्द्रजी शास्त्री

जीवन परिचय

आपका जन्म ९ मई १९४६ में सिरगन (ललितपुर) उ० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री पंडित नन्हेंलालजी सिद्धान्त-शास्त्री और माता सौ० तुलसाबाई है। आपने दिगम्बर जैन गुरुकुल हस्तिनापुर, संस्कृत महाविद्यालय बनारसमें रहकर शिक्षा प्राप्त की। आपने सिद्धान्त शास्त्री, साहित्य शास्त्री, विशिष्ट शास्त्रीकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। हरियाणा शिक्षा विभागसे ओ० टी० परीक्षा पास की। कतिपय परीक्षाओंमें आप स्वतः स्वाध्यायी भी रहे।

विवाह और कार्य

आपका विवाह पूनमचन्द्रजी जैनकी सुपुत्री पुष्पा जैन बी० ए०, बी० एड० से हुआ। आपके दो पुत्रियां और एक पुत्र हैं। आपने तिलोकचन्द्र जैन हायर सेकण्डरी स्कूल इन्दौर, सूर्यसागर दिगम्बर जैन

हायर सेकण्डरी स्कूल उज्जैन, शान्तिसागर जैन गुरुकुल जोबनेर, जैन इण्टर कालेज रामपुर, जैन हाईस्कूल पानीपतमें कार्य किया व अभी भी कर रहे हैं।

साहित्य और समाज-सेवा

आपने १९५९ से लेखन कार्य आरम्भ किया। आपकी रचनायें जैन सन्देश, जैनमित्र, अहिंसावाणीमें छपीं। स्वतन्त्र रूपसे कोई पुस्तक नहीं लिखी। आपने विद्यालयकी पत्रिकाओंमें संस्कृत विभागका सम्पादन भी किया आपने पानीपत गन्नौरमें सिद्धचक्र विधान रथशुद्धि कराई। पर्यूषण पर्व अष्टाह्लिकामें प्रवचन किये। जैन संगीत मण्डल जोबनेरके अध्यक्ष रहे।

●

श्री प्रभातजी साहित्यरत्न

●

जीवन-परिचय

प्रभात जैनका पूरा नाम है—नेमीचन्द्र जैन 'प्रभात' पर अब आप नामकी अपेक्षा उपनाम से ही अधिक विख्यात हो गये हैं। आपका जन्म १५ सितम्बर १९३६ को हुआ था। बचपन में ही पिता श्री का स्वर्गवास हो गया अतः बड़े भाई बाबूलालजीने पालन पोषण किया। बाबूलालजी साहित्यिक, सांस्कृतिक अभिरुचिवाले हैं उनकी ही प्रेरणासे प्रभात साहित्यिक जीवनमें वस्तुतः प्रभात बन सके। बचपन से ही लिखनेकी रुचि रही। कविताने प्रवेशिका परीक्षामें अनुत्तीर्ण कराया तो प्रताड़ना भी मिली।

शिक्षा और सेवा

आपकी शिक्षा सिरोंजमें हुई। आपने एम० ए० साहित्यरत्न कर लिया। आपका विचार है कि जैन साहित्यकारोंकी हिन्दी साहित्यकी देन विषयपर शोध ग्रन्थ लिखा जावे। मध्यप्रदेशके शिक्षा विभागमें आप गत पन्द्रह वर्षोंसे कार्य रत हैं। शासकीय सेवामें रहते हुए दो तीन पत्रोंमें स्थायी स्तम्भ लिखे। कुछ रचनायें गुप्त नाम से भी लिखी।

पायल कविता संग्रहका सम्पादन किया। यशपाल और झूठा सच : एक सम्पूर्ण अध्ययन प्रकाशनके लिये विचाराधीन है। आप भावुक कवि हैं। एकसे अधिक बार कवि सम्मेलनों और आकाश वाणी पर भी कविता पढ़नेका सौभाग्य मिला। 'गीत तुम्हारे' काव्य संकलन प्रकाश्य है। 'दहेज : इतिहास और वर्तमान' पुस्तक लिख रहे हैं।

प्रभातजी स्वभावतः स्वाभिमानी भावुक और सहृदय है। अभावजनित पीड़ाका उन्हें अच्छा अनुभव है।

●

श्री प्रेमलता 'कौमुदी'

•

कौमुदीजीका जन्म सन् १९२४ में दमोहमें हुआ। आप प्रसिद्ध जैन कवि श्री पं० मूलचन्द्रजी 'वत्सल' की सुपुत्री हैं। आपके पति श्री रविचन्द्र 'शशि' भी एक सफल कवि हैं। इसीलिए कविताकी ओर आपकी सहज और सुलभ प्रवृत्ति है। संस्कृतका 'सामायिक पाठ' पद्यानुवाद किया है। जो प्रकाशित हो गया है। आपकी कवितामें स्वाभाविकता है और सरसता भी। ये कविताका क्षेत्र व्यापक रखनेका प्रयास करती हैं।

•

पं० परमानन्दजी काव्यतीर्थ

•

पं० परमानन्दजी जैनका जन्म भाद्रपद कृष्णा सप्तमी विक्रम संवत् १९७३ में हुआ था। आपके पिताका नाम सिंघई श्री हीरालालजी व माताजीका नाम जानकीबाई था। आपके पिताजीकी समाजमें काफी इज्जत थी। आपके परिवारकी स्थिति साधारण थी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा बरोदियामें हुई। आपने स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें रहकर व्याकरण मध्यमाके दो खण्ड पास किये। आपने सर हुकमचन्द्रजी महाविद्यालय इन्दौरमें तीन वर्ष तक अध्ययन किया व शास्त्रीकी भी परीक्षा पास की। तथा शासकीय विद्यालय इन्दौरसे आपको काव्यतीर्थकी उपाधि प्राप्त हुई। आपका विवाह फागुन शुक्ला २ सन् १९४१ को स्व० सिंघई लालचन्द्रजी दलालकी सुपुत्री श्री काशीबाईके साथ हुआ। आपके परिवारमें एक बहिन है। बचपनसे ही रुचि समाज सेवा की ओर थी। आपने संस्कृत संजीवनी तथा इन्दौरसे प्रकाशित होने वाली सुधा पत्रिकाका भी सम्पादन किया। आपने श्री दिगम्बर जैन शिक्षा मन्दिर झूमरीतलैयामें अध्यापकके रूपमें कार्य किया। वर्तमानमें आप कपड़ेका व्यापार करते हैं तथा रातको श्री दिगम्बर जैन पाठशाला उदासीन आश्रम प्रौढ़ पाठशालामें अध्यापकके रूपमें कार्य कर रहे हैं। आप एक कुशल समाज सेवी व्यक्ति हैं।

•

स्व० श्री पुष्यमित्रजी

•

श्री पुष्यमित्रजीका जन्म आजसे करीब ६० वर्ष पूर्व राजपुर जिला मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेशमें हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा दिगम्बर जैन हाई स्कूल बड़ौत मेरठमें पं० तुलसीरामजी काव्यतीर्थ तथा श्री उग्रसेन जैनकी देख-रेखमें हुई। इसके बाद आपने इतिहास तथा राजनीति विज्ञान विषयको लेकर एम० ए० की परीक्षा पास की। साहित्यरत्न, पी-एच० डी०, एम० जे० जे० एच० की भी परीक्षा पास कीं।

आपको हिन्दी, उर्दू, अँग्रेजीका विशेष ज्ञान है। आपने म० दि० जैन इन्टर कॉलेज आगरामें वाइस प्रिंसीपल तथा नागरिक व इतिहासके प्रवक्ताके रूपमें कार्य किया। अखिल भारतीय जैन परिषद् परीक्षा बोर्डके सहायक मंत्रीके रूपमें कार्य किया। आप एक समाजसेवी व्यक्ति थे।

•

पं० प्रशान्तजी

●

आपका जन्म छतरपुर (बुन्देलखण्ड) जिलेमें ग्राम धनगुवाँमें १५ मई १९२० को हुआ था। आपके पिता साहू श्री नन्हेंलालजी गोलापूर्व वंशी थे।

प्रारम्भिक अक्षर ज्ञानके बाद आपका 'पूजा' पाठके माध्यमसे शिक्षण आरम्भ हुआ था अतः आपको अपने बचपनमें अपेक्षाकृत अधिक पूजायें कण्ठस्थ थी। श्रद्धेय पं० गोरेलालजी शास्त्रीके सान्निध्यमें, गुरुदत्त दि० जैन पाठशाला द्रोणगिरिमें संस्कृतका प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्तकर श्री गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर (तत्कालीन-सत्तर्क सुधा तरंगिणी दि० जैन पाठशाला) में रहकर साहित्य शास्त्री तथा आचार्य परीक्षा (प्रथम वर्ष) में प्रविष्ट होते ही किसी वजहसे अध्ययन समाप्त करना पड़ा और यहीं टेलरिंग शिक्षक के रूपमें आपकी नियुक्ति हो गयी। १२ वर्ष आपने इस विद्यालयमें उक्त कलाका शिक्षण देते हुए धार्मिक शिक्षणका कार्य भी किया।

यही कारण है कि राजकीय सेवामें रहते हुए आपने ४९ वर्षकी अवस्थामें सन् १९६९ में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। आप एक कुशल शिक्षक हैं।

स्काउन्टिग एवं सामाजिक सेवायें

आपको स्काउटिंगकी शिक्षा सागरमें ही प्राप्त हुई थी। स्काउट-मास्टर श्री वीरेन्द्रकुमारजी सुपुत्र प्रसिद्ध साहित्यकार म० भगवानदीन, समयके बड़े पाबन्द और श्रमसेवी व्यक्ति थे, जिनकी प्रेरणा आपके सम्पूर्ण जीवन पर पड़ी।

स्काउटिंग माध्यमसे विविध गजरथोत्सवोंमें आपका सक्रिय सहयोग रहता था। और कमाण्डरके रूप में आप अपनी पूरी शक्तिसे व्यवस्था कायम रखनेमें बड़े कामयाब होते थे।

रूढ़िवादी प्रवृत्तियोंमें आपका कम विश्वास रहा। अतिके विरोधमें हमेशा रहे।

राष्ट्रीय सेवायें

आपने १९४२ के असहयोग आन्दोलनमें जमकर भाग लिया। आजादीके गुप्त सन्देश घर-घर पहुँचाना आपका प्रमुख कार्य रहा।

सम्मान एवं पुरस्कार

कविताके प्रणयनकी रुचि आपमें प्रारम्भसे ही रही। सन् १९५९ में आपको कविता-संग्रह "झरना" पुस्तकपर मध्य प्रदेश शासनसे ५००) रु० का अनन्य पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसके अलावा आपने कई पुस्तकोंके हिन्दी पद्यानुवाद भी किये हैं जैसे—समाधितंत्र, विषापहार, कल्याण मंदिर, समयसार, हितोपदेश की कथाओंका पद्यानुवाद तथा मुनिसुव्रत काव्यकी हिन्दी संस्कृत टीका लिखी। सागरमें रहते हुए दो वर्ष तक 'वर्धमान' (मासिक) का सम्पादन किया था। 'सत्पथ दर्शक' (वार्षिकी) पत्रिका (छात्रहित कारिणी सभा सागर द्वारा) के सम्पादक भी आप रहे।

समाज सेवा

आपने जैन भ्रातृ संघके माध्यमसे, जिसकी अपने उत्कर्ष कालमें १९ शाखाएँ थी समाज सेवाका सराहनीय कार्य किया।

●

श्री पूर्णचन्द्रजी पूर्णेन्दु शास्त्री

●

श्री शास्त्रीजीका जन्म २१–७–१९४० में पडवार जिला सागरमें हुआ था। आपके पिता श्री हीरालालजी जैन थे। आपके परिवारकी स्थिति साधारण ही थी। आपने जबलपुर विश्वविद्यालयसे एम० ए० संस्कृतमें व स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीसे साहित्य शास्त्री व बम्बईसे सिद्धान्त शास्त्री व प्रयागसे साहित्य-रत्नकी परीक्षा पास की। आजीविका चलानेके लिए अध्यापन कार्य अपनाया, कई सामाजिक कार्य किये। श्री दिगम्बर जैन समाज सिहोरा (जबलपुर) के मंत्री पद पर दो वर्ष तक कार्य किया तथा रात्रिमें ५ वर्ष तक आपने निःशुल्क पाठशालामें अध्यापन कार्य किया। सन् १९५६ में जैसी नगर (सागर)में आपने विद्वान् की क्षति पूर्ति की। आप अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद्, सागर, वर्णी स्नातक परिषद् सागर, जेनालोजिकल रिसर्च सोसाइटी देहली, अखिल भारतीय २५०० निर्वाण महोत्सव समिति देहली, आदिके सदस्य हैं और श्री दिगम्बर जैन सेवा समिति पडवार (सागर) के मंत्री भी हैं। आप एक कुशल लेखक व वक्ता है। कई सामाजिक विषयोंपर निबन्ध, लेख तथा कविताएँ लिखी। "नव समाज रचना के अहिंसक आधार" नामक निबन्ध हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा पुरस्कृत किया गया।

पं० फतहसागरजी शास्त्री

जन्म

आपका जन्म १ अगस्त सन् १९३० को उदयपुरके ऋषभदेव नामक स्थानमें हुआ। आपकी माता सूरजबाई है। पिता श्री कालूलालजी किरानेकी दूकान करते थे। स्थिति सामान्य थी। परिवार सम्पन्न एवं सुखी था। आपका बचपन बड़े सुखमय ढंगसे व्यतीत हुआ।

आपके बाल्यकालके लगभग १५ वर्ष दिगम्बर जैनाचार्य भट्टारक यशकीर्तिमहाराजके सानिध्यमें व्यतीत हुए। जिसमें प्रतिष्ठा विधान, वाद्य संगीत का ज्ञान, कविता निर्माण, भाषण और प्रवचन शैली आदिका ज्ञान प्राप्त हुआ।

शिक्षा

आप स्थानीय विद्यालयमें पढ़ते थे। आपके पिताजी व्यापार करते थे। अध्ययन स्थगित कर आपको भी व्यापारमें लगाना चाहते थे। किन्तु आपकी रुचि अध्ययनकी ओर पूर्ण रूपमे प्रवृत्त हो चुकी थी अस्तु आप अध्ययन क्षेत्रसे अपने आपको अलग नहीं कर सके। जिसका परिणाम यह निकला कि आपने एम० ए०, बी० एड तक अध्ययन कर मूर्धन्य विद्वानोमें स्थान प्राप्त किया।

व्यवसाय

आपने उदर पोषणार्थ सिर्फ अध्यापन कार्यको अपनाया। पहले आप ६ वर्षों तक प्रार्थमिक विद्यालयके प्रधानाध्यापक रहे तत्पश्चात् पाँच बर्षतक उच्चमाध्यमिक विद्यालयमें सहायक अध्यापक रहे। इसके बाद सन् ६१ से ६६ तक मा० वि० में प्रधानाध्यापक रहे। आजकल आप शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय भासौर जिला डूंगरपुर राजस्थानमें वरिष्ठ अध्यापकके रूपमें अध्यापन कार्य कर रहे है।

साहित्य सेवा

आप उच्चकोटिके साहित्यकारोंकी श्रेणीमें आते हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है आपको श्री यशकीर्ति महाराजके सानिध्यसे कविता सृजनका ज्ञान भी मिला। लगभग २० वर्षकी अवस्थासे ही आप भावपूर्ण कविता व लेख लिखने लगे थे। आपकी प्रथम कविता है "आया पर्व पर्यूषण"। उक्त कवितामें आपका सारा भविष्य निहित था। आपकी रचनाएँ अहिंसा वाणी, जैन मित्र, एव दिगम्बर जैन आदि अनेक पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रहती हैं।

आपकी प्रकाशित पुस्तकोंमेंसे 'अध्यात्म चिंतन', "अहिंसाके अवतार", "विद्यार्थी गायन मंजरी" बुनियादी ज्ञानमंजरी "श्रावक क्रिया संग्रह" और सागरके रत्न" अत्यन्त लोकप्रिय हुई।

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त बहुत सारी पुस्तकें अप्रकाशित हैं। आपके बीसों लेख तथा पचासों कविताएँ प्रकाशित हो चुकी हैं तथा सैकड़ों अप्रकाशित हैं। आप लिखना ही अपना उद्देश्य बनाए है। उनके प्रकाशनमें आप कम ध्यान देते हैं क्योंकि अपनी ख्यातिसे आपको वैसी रुचि नही है जैसी कि बहुधा साहित्यकारोंमें हुआ करती है।

समाज सेवा

जैन शिक्षण संस्था चावण्ड एवं झलाराके आप महामंत्री है साथ ही विश्व जैन मिशन केन्द्र ऋषभ देवके संयोजक हैं। आप और भी अनेकों संस्थाओंके प्रतिनिधि हैं। प्रतिष्ठाचार्यके रूपमें आप दूर-दूर तक जाया करते हैं। समाजके विकास एवं सुधारमें आपका पर्यटन और प्रवचन वंदनीय हैं। सचमुच आपने समाजका उद्धार किया है।

व्यक्तित्व

आपकी मूर्ति सौम्य तथा हृदय उदार है। ऋषियों जैसा प्रखर व्यक्तित्व सहज ही में लोगोंके अन्तरालको खींच लेता है। अपनी प्रगाढ़ विद्वत्तापर आपको थोड़ा भी गरूर नहीं है। यदि आपको जैन समाजका प्रकाशवान नक्षत्र कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

●

श्री फूलचन्द्रजी एडवोकेट

●

जन्म एवं वंश

आपका जन्म १६ जून १९०४ में जबलपुर (मध्य प्रदेश)में हुआ। आपके पिता श्री रामचन्द्र जैन पहले पन्ना स्टेटके स्थायी निवासी थे। बादमें जबलपुर आकर निवास करने लगे। आपकी माँ नौनी बहू यथा नाम तथा गुण वाली युक्तिके अनुसार बडी ही धार्मिक प्रवृत्तिकी महिला है। माँके धार्मिक विचारोंका आप पर वडा प्रभाव पडा। आपके पिता जैन समाजके एक प्रतिष्ठित और प्रतिभावान व्यक्ति है।

आपने नागपुर विश्वविद्यालयसे बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे वकालात (एल० एल० बी०) की डिग्री प्राप्त की। सन् १९२१ से १९४३ तक आपने जबलपुरमें वकालत प्रारंभ कर दी। वकालतके बाद ही आप जबलपुरमें सिविल जजके पद पर नियुक्त किये गये। पुनः पदोन्नतिके फलस्वरूप आप एडीसनल डिस्ट्रिक्ट सेसन जज बने और १९६० में अवकाश प्राप्त कर लिया।

वर्तमान समयमें जबलपुर हाईकोर्टके नामी वकील हैं और वकालतमें ही अपना व अपने परिवारका आप पोषण करते है।

नामी एवं प्रतिभावान वकील होनेके साथ-साथ आप समाज कल्याणकी भावनासे ओतप्रोत है। सन् १९४३ में जबलपुर समाजने आपको मान पत्र प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् १९६६ में आप पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जबलपुरके सभापति निर्वाचित किये गये। और पुन. मानपत्र प्राप्त किया। इसप्रकार आपकी प्रतिष्ठा उत्तरोत्तर बढती गई, अभिवक्ता होनेकी दृष्टिसे आपमें राजनैतिक नीति निपुणताका अथाह सागर भरा है।

समाज कल्याण आपका प्रमुख लक्ष्य होनेसे समाज विकासके नये-नये विचार आपके हृदयमें सागरकी तरह उमडते रहते हैं।

●

स्व० पं० बिहारीलालजी, चैतन्य'

●

अर्वाचीन जैनसाहित्य मन्दिरमें प्रवेश करते ही उसके अनन्य पुजारी श्री पं० बिहारीलालजी 'चैतन्य' की अक्षय स्मृति आँखोंके सामने घूम जाती है। आपका जन्म बुलन्दशहरमें १५ अगस्त १८६७ में अग्रवाल जैन परिवारमें ला० देवीदासके यहाँ हुआ था। आपने अपनी विषम परिस्थितियोंसे जूझकर भी १८९१ ई० में फारसी भाषाके साथ एन्ट्रैन्स उत्तीर्ण किया। क्योंकि आप स्वनिर्मित व्यक्ति थे। अपने उपवास और स्वाध्याय द्वारा आपने अपने ज्ञानको बढ़ाया।

जीवन निर्वाहकी चिन्ताओंने आपको १८९३ में शासकीय हाईस्कूल बुलन्दशहरमें बारह रुपये मासिक पर अध्यापन कार्य करवानेके लिए बाध्य किया। और १९२५ तक आपने शिक्षक पदके गुरुतर उत्तरदायित्व-को कुशलता पूर्वक निर्वाहा। १९२५के बाद अवकाश प्राप्त करते ही स्वतंत्र रूपसे साहित्य सेवामें भाग लेने लगे थे।

आपका जीवन सादा और संयमित बचपनसे बन गया था। साधारणतया ४-५ घण्टेसे अधिक कभी न सोते थे। और पूरा समय साहित्य-सृजनमें लगाते रहते। साहित्यके पथपर आपके समय जैन साहित्य-कारोंकी अत्यन्त न्यूनता थी। उस समय आपने इस महती कमीकी पूर्ति की। अपनी छात्रावस्थामें एक उप-योगी ग्रन्थ 'तशरीहुल मसाहत' लिखा जिसे यू० पी० शिक्षा विभाग की टेक्स्ट बुक समितिने स्कूलके लिए स्वीकार कर लिया। उसके पश्चात् आपने हिन्दी और उर्दू में गद्य एवं पद्य दोनोंमें खूब लिखा। और अब तक आपके ५४ मौलिक एवं अनूदित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुकी है। जिनमें 'बृहद् जैन शब्दार्णव कोष', संस्कृत हिन्दी-व्याकरण, योगसार, जैन वैराग्य शतक, रामचरित्र, हनुमान चरित्र, मिथ्यात्व नाशक नाटक, वैराग्य कौतूहल, जम्बुकुमार और भोज प्रबन्ध आदि नाटक तथा विश्वावलोकन, हकीम अरस्तू, प्रश्नोत्तरी स्वामी शंकराचार्य, हकीम अफलातून, हफ्त जवाहर, दवायी जंत्री, सुदामा चरित्र आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। चार पुस्तकें आपकी अधूरी हैं और पाँच ग्रन्थ अप्रकाशित।

ग्रन्थ रचनाके अतिरिक्त आप अपने निजी व्ययसे बुलन्दशहरसे 'दिल आराम' नामक उर्दू मासिक पत्र भी निकाला करते थें जिसमें जैनधर्मकी सत्यता, प्राचीनता और महत्ता पर सर्व साधारणके लिए लेख लिखा करते थे। आपने अपने प्रयासोंसे सदैव विद्यार्थियों एव जैनेतर व्यक्तियोंको जैनधर्ममे प्रवृत्त करनेके लिए प्रयत्नशील रहते थे।

आपने अमरोहामें जैनसभा, पाठशाला, औषधालय और पुस्तकालय तथा बाराबंकी और बिजनौरमें जैन पाठशालाएँ स्थापित की और संचालन भी किया। हिन्दी, उर्दू के अलावा आपको अंग्रेजी और फारसी-का भी अच्छा ज्ञान था। प्रत्येक धर्म और विषय-क्षेत्रमें आपका महत्त्वपूर्ण प्रवेश था। आपकी प्रतिभा वस्तुतः सर्वतोमुखी थी।

●

डा० बूलचन्दजी एम० ए०

डा० बूलचन्दका जन्म अम्बाला जिलेके साढौरा ग्राममें ला० मक्खनलालजीके प्रतिष्ठित घरानेमें १ जून १९०६ ई० में मित्तल गोत्रमें हुआ था। बनारसीदास हाईस्कूल अम्बाला छावनीसे मैट्रिक तथा गवर्नमेण्ट कॉलेज लाहौरसे एम० ए० करनेके बाद आप हिन्दू कालेज दिल्लीमें इतिहास तथा राजनीति शास्त्रके प्रवक्ता बने। १९३८ में आपने लन्दन स्कूल आफ इकनामिक्सके प्रोफेसर लास्कीके साथ काम करके पी० एच-डी० की उपाधि प्राप्त की। आप अपने पूरे अध्ययन कालमें मेधावी छात्र रहे तथा प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे। १९४० से ४६ ई० तक हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें राजनीति शास्त्रके प्रोफेसर रहे। इसके बाद १ वर्ष भारतीय विद्याभवन बम्बईके आप प्राचार्य नियुक्त हुए और १९४७ में भारत सरकारमें सम्पादकके पदपर दिल्ली आ गए। वहीं आप आई० ए० एस० ट्रेनिंग स्कूलके ऑनरेरी प्रोफेसर आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन भी रहे। १९४९ में आप 'यूनेस्को'के स्टाफ ट्रेनिंग विभागके अध्यक्ष पद पर पेरिस गये। १९५१ ई० में डा० बूलचन्द आई० ए० एस० बन गये और मध्यप्रदेश तथा मध्यभारतमें अनेक उत्तरदायी पदो (जिलाध्यक्ष) पर कार्य किया।

शासन सेवासे अवकाश प्राप्त होने पर आप अहिंसा शोध पीठके संचालक नियुक्त हुए। उसके साथ ही आप 'वर्ल्ड फैलोशिप आफ रिलीजन्स' के प्रधान सचिव बने। इस हैसियतसे आपने तृतीय विश्वधर्म सम्मेलनका दिल्लीमें संयोजन किया। इस प्रकार आपने धार्मिक और अन्तर्राष्ट्रीय सहिष्णुताको दृढ करनेका आन्दोलन विश्वके लगभग ५० राष्ट्रोंमें फैलाया। मार्च १९६५ में आप पंजाब विश्वविद्यालयके राजनीति-शास्त्र विभागके प्रोफेसर और अध्यक्षके रूपमें आमंत्रित किये गये जहाँ आपने गाधीजी सम्बन्धी अध्ययनका संगठन किया। यह कार्य प्रारम्भ किया ही था कि आप कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयके उपकुलपति नियुक्त हुए। प्रशासनिक क्षेत्रमें आपने अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। १९५१-५४ तक मध्यभारत शासनके शिक्षा-सचिव। १९५४-६२ तक जिला मजिस्ट्रेट एवं जिलाध्यक्ष। इसी बीच १९५६-५७ में विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनके स्पेशल आफीसर मनोनीत किये गये। सामाजिक सेवाओंके रूपमें आप १९४४ से १९७० तक 'जैन कल्चरल रिसर्च सोसाइटी' के अध्यक्ष एवं स्थायी सदस्य रहे। १९६३-७० तक 'विश्व अहिंसा संघ' के महासचिव तथा १९६३-६५ तक वर्ड फैलोशिप आफ रिलीजनके जनरल सेक्रेटरी रहे।

साहित्यिक क्षेत्रोंमें आप द्वारा रचित 'ऐटलस आफ इगलिश हिस्ट्री' १९३५ में आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसने प्रकाशित करना स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त आपने रायसेन किलेका एक खोजपूर्ण इतिहास भी लिखा है। अब तक आपने लगभग २५ ग्रन्थ लिखे है जिनमें प्लेटोज कॉसेप्ट आफ जस्टिस भी है।

आपके पुत्र एवं पुत्रियाँ सभी उच्च शिक्षा प्राप्त है तथा उनके विवाह सम्बन्धसे डा० बूलचन्दने अन्तर्जातीय और अन्तःप्रदेशीय सीमाओंको तोड़ दिया है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती अम्बिका बूलचन्दने पेरिसमें फ्रैंच भाषाका शिक्षण प्राप्त किया और वर्तमानमें पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़में फ्रैन्च विभागकी अध्यक्षा है। आपके तीनों दामाद क्रमशः अल्जीरियामें राजदूत, यू० एस० ए० में प्रोफेसर तथा I.R.A.S. के उच्च अफसर हैं।

इसी प्रकार आपके छोटा भाई डा० अमरचन्द मित्तल धार कालेज म० प्र० में प्रोफेसर हैं जिन्होंने 'कलिंग देशमें जैनधर्म' विषयपर पुस्तक लिखी है। आपकी दो बड़ी बहिनें हैं जो ख्याति प्राप्त समाज तथा धार्मिक संस्कारों वाली महिलायें है। इस प्रकार आपका पूरा परिवार शिक्षा और उन्नतिमें पराकाष्ठा पर है।

डा० बूलचन्द एक आदर्श, निर्भीक, कार्यपरायण स्वाभिमानी व्यक्ति हैं जिनकी बौद्धिक प्रतिभा अपनेमें एक उदाहरण है। आपने अपने कुशल नेतृत्वके द्वारा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयको एक महत्त्वपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित करा दिया।

●

न्यायभूषण पं० विद्यानन्द शर्मा

●

जैन समाजमें कुछ ऐसी विभूतियाँ हैं जिन्होंने निस्पृह भावसे जैनधर्म और संस्कृतिके उन्नयनमें अपना जीवनदान किया। पं० विद्यानन्द शर्मा उनमेंसे एक है। श्री हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्रके निकट गणेशपुर ग्राम जिला मेरठमें ब्राह्मण वंशके शुद्ध बीसा परिवारमें स० १९६१ में जन्म लिया। लेकिन पूर्वोदयसे आपकी जीवन दृष्टि जैनदर्शनके मर्मको जाननेकी हुई और आपने जैनदर्शनके सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोका गहन अध्ययन किया। 'तत्त्वार्थराजवार्तिकालकार' पर आपका विशेषाधिकार है।

आप लगभग दस वर्ष तक भारतवर्षीय दि० जैन महासभामें महोपदेशकीका कार्य करते रहे और तत्कालीन आर्यसमाजियों व सनातनियोंसे सैकडों शास्त्रार्थ करके जैनधर्मकी विजय वैजयन्ती फहरायी। आपको न्यायभूषणकी सम्मानित उपाधि डोरनकल (दक्षिण) में किये गये शास्त्रार्थमें जैनसमाज डारनकल द्वारा प्रदान की गयी। पं० दरबारी लालजी 'सत्यभक्त' द्वारा दी गयी कुतर्कोंका आपने सर्वप्रथम समाधान किया था।

आचार्य शान्तिसागर महाराज संघस्थ श्री १०८ मुनि नेमिसागरजीको आपने लगभग दो वर्ष तक अध्ययन कराया। आपको जैनसमाजका सर्वश्रेष्ठ वक्ता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। आपकी वाणीमें संगीतकी स्वर लहरीकी मिठास घुली होती है।

●

पं० बालचन्द्रजी जैन, एम० ए०

●

पुरातत्त्व विभाग म० प्र०के उपसंचालक श्री बालचन्द्रजीका जैन समाजमें गौरवपूर्ण स्थान है। आपका जन्म स्थान गोरखपुरा (बडा मलहरा) जिला छतरपुर म० प्र०में है। आपके पिता स्व० गोरेलाल जी जैन सिंघई पदवीसे सम्मानित थे क्योंकि आपके पितामहने ग्राम गोरखपुरामें एक शिखरबंद मन्दिरजीका निर्माण करवाया था।

शिक्षा

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा जैन शिक्षा संस्था कटनीमें हुई जहाँ १९३७ में आपने विशारद किया। तत्पश्चात् आप स्याद्वाद जैन महाविद्यालय बनारस गये और वहाँ धार्मिक शिक्षा-शास्त्रीके साथ-साथ गवर्नमेंट संस्कृत कालेज काशीकी शास्त्री एवं एम० ए० (प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति) १९४८ में उत्तीर्ण किया। १९५८-५९में प्रिन्स आफ वेल्स म्यूजियम बम्बईसे संग्रहालय विज्ञानमें ट्रेनिंग की।

साहित्यिक क्षेत्रकी अपूर्व सेवायें

तेरह वर्षकी छोटी अवस्थासे आपने कविता लिखना प्रारम्भ किया। बादमें स्तरीय पौराणिक कहानियाँ लिखी, जिनका सग्रह 'आत्म-समर्पण' नामसे प्रकाशित हुआ। आपने 'राजुल' खण्डकाव्य और अनेक आलोचनात्मक लेख लिखे। जो प्रकाशित हो चुके हैं। १९४७ से आपकी रुचि पुरातत्त्व और प्राचीन मुद्रा शास्त्रमें हुई और तत्सम्बन्धी साहित्य लिखा जो देशकी सभी लब्ध प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओंमें तथा पुरातत्त्वीय पत्रिकाओ जैसे—'एपिग्राफिआ इण्डिका', जनरल आफ इण्डियम म्यूजियम, जनरल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इण्डिया, जनरल आफ इण्डियन हिस्ट्री, उड़ीसा हिस्टारिक जनरल आदिमें प्रकाशित हुए।

अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं तथा 'जैन प्रतिमाशास्त्र' छत्तीसगढ़का इतिहास और छत्तीसगढ़के उत्कीर्ण लेख रचना-पुस्तकें अप्रकाशित है। आपने 'कला' (मासिक) कटनी और जनरल आफ न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी आफ इण्डियाका सम्पादन किया है। इसके अलावा आपकी एक अनुवाद कृति 'स्वर्णाचल माहात्म्य' भी है।

आर्थिक उपार्जन

१९५२ तक आप साधूराम हाईस्कूल कटनीमें संस्कृत शिक्षक रहे। फिर उत्तरोत्तर प्रगतिपर बढ़ते हुए महाकौशल महाविद्यालय, जबलपुरमें इतिहासके व्याख्याता हुए। एक वर्षके बाद आप केन्द्रीय संग्रहालय नागपुरमें पुरातत्त्वीय सहायकके रूपमें नियुक्त हुए और २·वर्ष १९५६ तक इस पदपर कार्य करनेके पश्चात् पदोन्नतिपर रायपुर संग्रहालयके क्यूरेटर हुए। इसके बाद १९६२ से आप पुरातत्त्व विभाग म० प्र० के उप-संचालक है। इस प्रकार इस क्षेत्रके माध्यमसे आपने जैन संस्कृतिके प्रतिमानोंका अन्वेषण कर उन्हें प्रकाशमें लाये।

आप 'साहित्य साधना समिति' काशीके संस्थापक और 'कला' मासिक पत्रिकाके स्थापक एवं सम्पादक है।

आपको दो सुपुत्रियों और तीन पुत्र रत्नका शुभयोग मिला। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती चमेलीदेवी एक सद्गृहिणी हैं। आपने १९४२-४३में स्वतन्त्रता आन्दोलनमें भी सक्रिय सहयोग दिया।

●

पं० बाबूलालजी शास्त्री 'फणीश'

●

परिचय

पिता श्री मौजीलालजी जैन। मातु श्री लाड़ोबाईके गर्भसे २३ जून, १९२५ को देवरान (झाँसी) उ० प्र० में जन्म लिया।

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा देवरान तथा सोनगिरि। १९४१ से ४६ तक सर हुकमचन्द संस्कृत महाविद्यालय

इंदौरसे शास्त्री। आर्थिक उपार्जन हेतु आप जैन विद्यामन्दिर नहटौर (बिजनौर) नजीबाबाद और अब जैन विद्यालय आमन्दपुर कालू (राज०) में प्रधानाध्यापकके पदपर कार्यरत हैं।

साहित्य क्षेत्रमें आपने संक्षिप्त जैन व्रत विधान, अभिषेक पाठपूजा संग्रह और जैन विवाह विधिका संकलन किया है। यथासमय दिगम्बर जैन, जैनमित्र आदिमें फुटकर लेखादि भी देते रहते हैं।

आपने स्थानीय नगरमें १९५४में ग्राम सुधार समितिकी स्थापना की थी। आप स्थानीय जैन वाचनालय (१९५५-६७) और १९४६-१९५० तक देवरान जैन पंचायतके मन्त्री पदपर रहे।

४० वर्षकी तरुणावस्थामें आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कपूरीदेवीका वियोग हो गया था जिससे बच्चोंके सम्हालनेका उत्तरदायित्व बढ गया परन्तु पू० माताजीने बच्चोंकी देखभाल की।

आप अहमदाबाद, गुडली (उदयपुर), ब्यावर, अजमेर, नगौर आदि बीसों जगह जैन समाजके निमन्त्रण पर धार्मिक कार्य हेतु आमन्त्रित किये गये और अपनी विद्वत्ताका परिचय प्रवचन एवं प्रतिष्ठा आदि धार्मिक कार्यों द्वारा दिया। इस सन्दर्भमें आपको २-३ जगहोंसे अभिनन्दनपत्र भी भेंटस्वरूप प्राप्त हुए।

●

पं० बाबूलालजी 'फणीश'

●

जन्म स्थान एवं तिथि—ग्राम-डेंगराना (झाँसी) उ० प्र० १५ जुलाई १९३० ई०।

पिता—श्री गोविन्ददासजी जैन 'फणीश'।

योग्यता—लौकिक शिक्षा : इण्टरमीजिएट, साहित्य विशारद एवं शिक्षा गुरु श्रद्धेय पं० नाथूलाल व न्यायालंकार पं० बंशीधरजी शास्त्रीके संरक्षणमें सर हुकमचन्द संस्कृत महाविद्यालय इन्दौरसे धर्म शास्त्री। अंग्रेजीका आवश्यक ज्ञान भी प्राप्त किया।

आर्थिक उपार्जन हेतु-अपने धार्मिक एवं सामाजिक कार्यके साथ दि० जैन विद्यालय रामपुर (१९५३-५६), मुनिसुव्रतनाथ दि० जैन पाठशाला खातेगाँव (देवास) १९५६-६१ तक धर्माध्यापक एवं प्रधानाध्यापकके रूपमें। वर्तमानमें वर्णी दि० जैन विद्यालय पिसनहारीकी मढ़िया, जबलपुर (म० प्र०) में प्रधानाध्यापक।

साहित्य क्षेत्रमें अभिरुचि : प्रमुख जैन पत्र पत्रिकाओंमें शोध सम्बन्धी लेख प्रकाशित हुए हैं। कई विशिष्ट लेखोंमें पुरस्कार। वक्तृत्व-कलामें प्रवीण।

वेदी प्रतिष्ठा, जप, आदर्श विवाह करवानेमें दखल रखते हैं।

संयमित एवं धार्मिक जीवन। अष्टमी, चतुर्दशी और पर्यूषण पर्वादिमें एकाशन आदि। जबलपुरकी 'मिलन' संस्था, जैन नवयुवक सभा तथा विद्वत् परिषद्के सदस्य। १९५२-५३में 'संस्कृत-सुधा' पत्रिकाका सम्पादन। राष्ट्रीय एवं धार्मिक कवि सम्मेलनोंमें सक्रिय भाग लेते हैं।

●

श्री बाबूलालजी जैन फागुल्ल

पिता : श्री कुंजीलालजी जैन।

जन्म स्थान : मडावरा (जिला-ललितपुर) उ० प्र०।

सन् १९२६ में जन्मे। परवार जातिकुल भूषण। श्री बाबूलालजी दो वर्षकी उम्रमें मातृकृपासे विहीन हो गये थे। अन्य दो भाइयोंके साथ पिताजीने लालन पालन किया। श्री वीर दि० जैन विद्यालय पपौरासे प्रथमा पास कर बनारस आये। जहाँसे शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। दिल्लीसे निकलने वाले 'वीर' पत्रमें ३ वर्ष तक कार्य कर भारतीय ज्ञानपीठके व्यवस्थापक बनकर १९४९में बनारस आये और १६ वर्ष तक यह पद सम्हाला।

आपके ज्ञानपीठ संस्थानके कार्यकालमें जैनधर्मकी तथा अन्य साहित्यिक कृतियोंका श्रेष्ठ मुद्रण और प्रकाशन हुआ।

१९६५में आपने स्वयंका एक मुद्रण संस्थान गुरुओंके आशीर्वाद और हितैषियोंके सहयोगसे 'महावीर प्रेस' नामसे भेलूपुरमें स्थापित किया। जो आज भारतकी श्रेष्ठ मुद्रण संस्थाओंमें अग्रणी माना जाता है। आपके प्रेसमें मुद्रित प्रथम ग्रन्थ, 'गुरु गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ'को देखकर महामना पं० श्रद्धेय चैनसुखदासजी न्यायतीर्थने लिखा था, "बरैया स्मृति ग्रन्थ अत्यन्त सुन्दर ढंगसे मुद्रित कर आपने निःसंदेह मुद्रणकलाके क्षेत्रमें उल्लेखनीय कीर्ति अर्जित की है।' श्रद्धेय पं० वंशीधरजी व्याकरणाचार्य जैसे अनेक विद्वानोंने उक्त प्रकाशनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

अब तक आपके मुद्रण संस्थानसे लगभग १००० छोटे बड़े ग्रन्थ मुद्रित हो चुके हैं। और प्रत्येक पुस्तक श्रेष्ठ मुद्रणकलाका कीर्तिमान स्थापित करती है।

आपके यहाँसे मुद्रित संस्कृत पत्रिका 'मागधम्'के प्रथम अंकको पढ़कर लन्दनमें रहने वाले एक विद्वान्ने लिखा था, "मैं कल्पना भी नहीं कर सकता हूँ कि भारतमें इस प्रकारका श्रेष्ठ मुद्रण हो सकता है।" स्वीडनके भारतीय राजदूत श्री आई० के० सिंहकी धर्मपत्नीका एक उपन्यास "दो वर्ष" बहुत कम समयमें सुन्दर ढगसे मुद्रित कर उनकी प्रसंशा अर्जित की। उन्होंने लिखा कि "आपने जिस प्रेम, लगन और तत्परतासे छपाईका काम करवाया। वह अत्यंत सराहनीय है। मेरे मित्रोंको आश्चर्य हुआ कि इतने कम समयमें पुस्तक छप कैसे गई। छपाई एवं कवरकी सुन्दरताकी तो हर एकने सराहना की।"

अब तक मुद्रित पुस्तकोंमें सबसे बडी पुस्तक "भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा" लगभग २००० पृष्ठों की है। जिसका विमोचन भारतके उपराष्ट्रपति श्री जत्ती साहबने किया था। उसी समय उपराष्ट्रपतिके कर कमलोंसे अखिल भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्की ओरसे श्रेष्ठ मुद्रणके लिए 'प्रशस्ति पत्र' भी दिया गया है।

वर्तमानमें आपके चार पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। आपके योग्य पुत्रोंपर पिताके सद्गुणोंका पूरा-पूरा प्रभाव है। अध्ययनकी दिशामें जो योग्यता उनमें है, कार्य क्षमता भी उसी तत्परता और योग्यताके साथ विद्यमान है। भद्र प्रकृतिके सरल स्वभावी उन्नत व्यक्तित्वके धनी मिलनसार श्री फागुल्लजीसे भारतका कौन-सा श्रेष्ठ जैन होगा जो परिचित न हो। अपने व्यक्तित्व और कृतित्वसे जो स्थान आपने समाज के बीच बनाया वह सदैव कीर्तिमान रहेगा।'

श्री ब्रजकिशोरजी

●

आपके पितामह हीरे मोतियोंका व्यापार करते थे। आपके पिता श्री जम्बूप्रसादजी अपनी आर्थिक विषमताओंके कारण नौकरी करनेके लिए बाध्य हुए। आपका जन्म २३ फरवरी १९३३ ई० में पद्मावती पुरवाल आम्नायमें माता श्रीमती महादेवी जैनके गर्भसे फिरोजाबाद (आगरा) में हुआ था। इन्टर तककी शिक्षा एस० आर० के० इण्टर कालेज फिरोजाबादमें तथा बी० ए० एवं एम० ए० (अंग्रेजी) की परीक्षाएँ, श्रीपन्नालाल दि० जैन इण्टर कालेज फिरोजाबादमें अध्यापन कार्य करते हुए स्वाध्यायी रूपसे दीं। १९६५में एल० टी० परीक्षा बी० आर० कालेज आफ एजूकेशन आगरासे की। १९५९ में कुछ माह उत्तर प्रदेशीय सरकारके जेल विभागमें सहायक जेलर सैन्ट्रल जेल बरेलीमें कार्य किया परन्तु रुचिके अनुकूल न होनेसे पुनः अध्यापन कार्यमें प्रवृत्त हुए। वर्तमानमें श्री पन्नालाल दि० जैन इण्टर कालेजमें अध्यापक हैं।

आपने तीन माह लिटरेसी हाऊस स्कूल आफ सोसल राइटिंग एण्ड मास कम्यूनीकेशन्स सिंगार नगर (लखनऊ) में नवसाक्षरोंके लिए साहित्य लेखनका और पत्रकारिताका प्रशिक्षण भी किया।

प्रारम्भसे अध्ययन एवं लेखनमें अभिरुचि। रेखाचित्र, संस्मरण और जीवनी लेखनमें अधिक रुचि है। अंग्रेजीसे हिन्दी और हिन्दीसे अंग्रेजीके अनुवादका कार्य भी किया है।

सन् १९५० से लिखना प्रारम्भ किया और धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, नवनीत, जीवन साहित्य, आजकल, सरिता, और रश्मि जैसी लब्ध ख्याति पत्र-पत्रिकाओंमें लगभग एक सौसे अधिक स्फुट निबंध एवं रचनायें प्रकाशित हुई हैं।

१९७० से 'पद्मावती संदेश'की स्थापना कर उसका सम्पादन कार्य कर रहे हैं। कालेज पत्रिका 'अमृत'के सम्पादक मण्डलमें हैं। उसके जनपदीय अंक १९७१ का प्रकाशन एवं सम्पादन भी किया है। जो अपनेमें एक अमूल्य सन्दर्भ ग्रन्थ बन गया है।

सामाजिक सेवाएँ : १९६८में 'शिक्षक आन्दोलन'में सक्रिय भाग लेकर शिक्षकोंके स्तरको बढाने हेतु १५ दिनका सत्याग्रह किया और जेल गये।

१९६९ में फीरोजाबाद जैन मेला भूमिके विवादमें हुए आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया। स्थानीय माध्यमिक शिक्षक संघके १९६४-६५में मंत्री रहे। 'पद्मावती पुरवाल फंड कमेटी'के कार्यकारिणी सभाके सदस्य हैं। आप एक उत्साही नवयुवक विद्वान् हैं।

●

पं० बाबूलालजी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य

●

परिपरिचय

पंडितजीके पितामह कसवा चाँदपुर तहसील–रहली जिला–सागर (म० प्र०) के रहनेवाले थे जहाँ उन्होंने एक शिखरबन्द मन्दिर बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा करवायी थी। पिता श्री सिंघई काशीरामजी समाजके प्रमुख पंच थे। जन्म स्थान—रहली (म० प्र०) १७ सितम्बर १९१७ ई०।

शिक्षा

१९३० से १९४० तक श्री दि० जैन शिक्षा संस्था कटनीमें रहकर न्यायतीर्थ, दर्शन शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य एव बम्बई परीक्षालयकी धर्मशास्त्री उत्तीर्ण की।

आर्थिक उपार्जन

इस हेतु चिकित्सा व्यवसाय प्रमुख है। प्रारम्भमें अहमदाबाद इजलासमें श्वेताम्बर साधुओंको पढानेका कार्य १९४२ तक किया। तदनंतर छपारा जिला सिवनी (म० प्र०) में लगभग ३० वर्षसे दि० जैन धर्मार्थ औषधालय (जो यहाँके लब्ध प्रतिष्ठित सेठ श्रीमान् सिंघई मिट्ठूलालजीने खोला) में कार्य कर रहे हैं।

सामाजिक एवं अन्य कार्य

समाजके उत्थानके लिए संगठन शक्तिको नियोजित करने हेतु भ्रमणकर धर्मोपदेश और प्रवचनके माध्यमसे कार्य करना। तथा यथा समय जैनमित्र, जैन संदेश आदि पत्रोंमें गद्यात्मक लेख लिखना।

आपके पाँच भाइयोंमें प्रथम तीन जैन शिक्षा प्राप्त शास्त्री एवं आयुर्वेदाचार्य हैं तथा छोटा भाई हुकमचन्द भोपालमें चीफ इंजीनियर हैं। चौथे नम्बरके भाई बी० ए०, एल-एल० बी० हैं। आपको एक सुपुत्र व दो पुत्रियोंका योग लाभ प्राप्त है।

●

पं० बालचन्दजी न्यायतीर्थ

●

आपका जन्म नैकौरा डाकखाना—सोजना जिला झाँसी (बुन्देलखण्ड) मे संवत् १९६३ में सेठ दमरूलालजीके घर हुआ था। आपके दादा श्री मुरलीधरजी वैद्यकके कुशल अनुभवी एवं सेवाभावी व्यक्ति थे।

प्रारम्भिक हिन्दीकी शिक्षा घरपर श्री दादा जी ने दी। तत्पश्चात् जैन पाठशाला साढूमल (मड़ावरा), जैन पाठशाला क्षेत्रपालजी ललितपुर, संस्कृत विद्यालय इन्दौर और श्री गणेश विद्यालय सागरमें हुई और संवत् १९८१ में आपने शास्त्री तकके न्यायोंका अध्ययन करनेके साथ न्यायतीर्थकी परीक्षा उत्तीर्ण की।
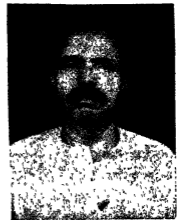
आर्थिक उपार्जन हेतु श्री जयकीर्ति दि० जैन पाठशाला दुर्गमें दो वर्ष प्र० अध्यापकका कार्य किया। पुनः वहीं एक प्राईवेट फर्मपर २० वर्ष मुख्य लेखा व्यवस्थापकके रूपमें कार्य कर अब स्वतंत्र व्यवसाय कर रहे हैं।

आप उक्त जयकीर्ति जैन पाठशालाके सात वर्ष तक ऑनरेरी सचिव रहे और बादमें अध्यक्ष।

●

पं० बालकृष्णजी शास्त्री

●

जन्म स्थान व तिथि

मु० पो० कुम्हारी (दमोह) म० प्र० १९०३ ई०।

स्थायी पता

मूल निवासी कुम्हारीके परन्तु मुहली जिला सागरमें आपके पिताजी आ बसे।

शैक्षणिक योग्यता

धर्म-साहित्य-न्याय और व्याकरणमें शास्त्री। धर्मशास्त्रमें गोम्मट्टसार तथा षट्षण्डागमका विशेष अध्ययन। गुजराती और अँग्रेजीका प्रारम्भिक ज्ञान। अपनी शिक्षा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें सम्पन्न की।

सामाजिक, धार्मिक व साहित्यिक सेवायें

१ बडागाँव-लखनादौन (सिवनी), गंजबासौदा, अहमदाबाद और महावीरजी क्षेत्रमें २० वर्ष शास्त्र प्रवचन एवं अध्यापन।

२. श्री संघपति सेठ गेंदमलजी जैन जवेरी—बम्बईके श्री पार्श्वनाथ मन्दिरजीमें तथा श्री चन्द्रप्रभु दि० जैन मन्दिर भूलेश्वरमें चार वर्ष तक चारों अनुयोगोंपर प्रवचन।

३ समाजमें कई गजरथ, वेदी एवं मन्दिर प्रतिष्ठायें और विधानादि अनुष्ठान सम्पन्न कराये।

सम्पादित ग्रन्थ

तारणस्वामी कृत 'श्री पूजा जी', 'कमल बत्तीसी' एवं मालारोहणका संशोधन एवं टीका। १२ अध्यायोंमें श्री छद्मस्थ वाणी ग्रन्थराजकी टीका एवं सम्पादन 'सिद्ध स्वभाव', शून्य स्वभाव, खानिका विशेष, नाममाला ग्रन्थोंकी टीकाका श्री गणेश करके सह-सम्पादन किया। इस प्रकार ज्ञान क्षेत्रमें लगभग ३८ वर्ष व्यतीत किये।

वर्तमान कार्य

संस्कृत व हिन्दी की—ज्ञानसागर दि० जैन पाठशाला कोलारस शिवपुरी) म० प्र० में अध्यापन कार्य एवं स्वाध्यायशाला, ज्ञान वाचनालयका संचालन कर रहे हैं।

●

पं० बालचन्द्रजी काव्यतीर्थ

बि० सं० १९७४ में गोना जिला झांसी (उत्तरप्रदेश)में श्रीमान् सेठ ब्रजलालजीके यहाँ पंडितजीने जन्म लिया परन्तु दुर्दैवसे आपका बाल्यकाल मातृ और पितृके सुखके बिना ही बीता और आपका लालन-पालन काका श्री लक्ष्मणप्रसादजीने किया। प्रारम्भिक शिक्षा महावीर जैन पाठशाला साढूमल (मड़ावरा) लेकर श्री गणेश दिगम्बर जैन महाविद्यालयमें अध्ययन किया। १९३८ में स्याद्वाद महाविद्यालय बनारससे शास्त्री और काव्य-तीर्थकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। तथा रायपुर (म० प्र०) की जैन पाठशालामें अध्यापन कार्य करने लगे। बादमें नवापाराराजिम (रायपुर) म० प्र० के सिंघई श्री दौलतरामजी आदिके द्वारा स्थापित जैन पाठशालामें अध्यापन कार्य हेतु आप नियुक्त हुए। १९४१ से ४८ तक शिक्षण कार्य किया। १९४८ के बाद आप व्यापारिक क्षेत्रमें उतर आये और आपकी प्रखर व्यावसायिक बुद्धिने आर्थिक सम्पन्नताकी ओर बढ़ना शुरू कर दिया। इस क्षेत्रमें वर्त-मानमें आपकी तीन फर्में तथा आइल इण्डस्ट्री एवं राइस मिल चल रहा है।

आपने अपने पैसेका सदुपयोग दानादिमें कर हजारों रुपया धार्मिक कार्योंमें लगाया और इस प्रकार सामाजिक क्षेत्रमें अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया। आप जैन समाज-नवापाराराजिमके अध्यक्ष एवं ग्राम पचायतके सक्रिय सदस्य हैं।

तत्वोंके प्रति गहरी अभिरुचि रहती है और अपना समय स्वाध्याय एवं धार्मिक चर्चामें देते रहते हैं। आपको दो सुपुत्रियाँ और चार पुत्रका योगलाभ प्राप्त है।

पं० बनवारीलाल 'स्याद्वादी'

"वीर" परिषद्का मुख्य पत्र है। उसके भूतपूर्व सम्पादक श्री स्याद्वादीजीको परिषद्का प्रमुख व्याख्याता कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। परिषद्के प्रत्येक कार्यपर आपकी बहुमुखी प्रतिभाकी स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। आपका आदर्श व्यक्तित्व मानों परिषद्की सुसंस्कृत आत्मा हो। परिषद्के प्रत्येक कार्यमें आपका सहयोग परम श्रेष्ठ स्पष्ट रहा है। जिससे कि परिषदकी विचार धारा एवं कार्य प्रणाली उत्तरोत्तर लोकप्रिय होती गयी। 'वीर' पत्र द्वारा आपने सदासे समाज सेवा की है। सामाजिक प्रत्येक सुधार कार्यमें आपका योगदान निहित रहा है। समाजसेवी-साहित्यकारके रूपमें आप सर्दव याद रहेंगे।

पं० बाबूलालजी शास्त्री

●

परिचय : पिता श्री पूरनचन्द्रजी मुखिया थे। जन्म-तिथि एवं स्थान १५ नवम्बर १९३५, ग्राम—बरदुवाहा।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा गुरुदत्त दि० जैन विद्यालय द्रोणगिरिमें। श्री गणेश जैन विद्यालय सागरसे धर्मशास्त्री एवं क्वीस कालेज वाराणसीकी साहित्य-शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। स्वाध्यायी रूपसे सागर विश्वविद्यालयसे १९६९ में बी० ए०।

सामाजिक सेवा : १९५५ से १९६४ तक शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय भगवाँ (छतरपुर) में तथा १९६४ से घौरा (छतरपुर) शास० उच्च० माध्य० विद्यालयमें संस्कृताध्यापकके पदपर कार्यरत।

आप नवयुवक सेवा संघ द्रोणगिरि (छतरपुर) के मंत्री एवं संयोजक तथा शाखा समिति भगवाँके सचालक रहे। इस प्रकार अध्यापन कार्यसे समाजके बालकोंको ज्ञान-दान दे रहे हैं।

●

स्व० पं० ब्रजलालजी शास्त्री

●

आपकी जन्म भूमि मालथौन जिला सागर (म० प्र०) में थी आजसे लगभग ५० वर्ष पूर्व हो चुके समाजके प्रथम पीढी के विद्वानोंके आप समकक्ष थे।

आपका जन्म वि० सं० १९४० के लगभग हुआ था। आपके पिता श्री बट्टूलालजी एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। श्री स्व० पं० भुजबलप्रशादके आप छोटे भाई थे और लगभग ३५ वर्षकी अवस्थामें ही आपका स्वर्गवास हो गया था।

प्रारम्भिक शिक्षाके बाद आगामी विद्याभ्यासके लिए बहुत लालायित रहे। और सागर जिले जैसे विद्यास्थलोंकी पदयात्रा करते रहे। बादमें तत्कालीन पूज्य बाबा शिवलालजी वर्णी एवं दौलतरामजी वर्णीके समागम होनेपर उन्हीके साथ पदयात्रा करने लगे। उनके सान्निध्यमें गोम्मटसार जीवकाण्ड आदि ग्रंथोंका अभ्यास किया। तत्पश्चात् बनारस विद्याभ्यास करने हेतु चले गये और विधिवत् धर्म, न्याय, व्याकरण साहित्य विषयोंका अध्यापन सं० १९६८ तक करते रहे।

सं० १९७३ तक बीनाके श्री नाभिनन्दन दि० जैन विद्यालयमें और इसके पूर्व ललितपुर (उ० प्र०) में प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य करते रहे। फिर आप महासभा द्वारा सचालित मथुराके महाविद्यालयमें प्रधानाध्यापक पदपर रहे। उस समय श्री सेठ मथुरादासजी टडैया ललितपुर एव श्री सिं० नाथूरामजी बीना श्रीमंत सेठ मोहनलालजी रईस खुरई उनकी विद्वत्ता एवं भाषण शैली आदिसे इतने प्रभावित थे कि वे उन्हें बुन्देलखण्ड प्रान्त छोड़कर अन्यत्र कहीं जाने नहीं देना चाहते थे।

तत्कालीन बुन्देलखण्ड प्रान्तके प्रत्येक महोत्सवोंमें उनकी उपस्थिति अनिवार्य होती थी। मथुरा पहुँचनेके बाद उनकी ख्याति उत्तर प्रान्तमें भी अल्पकालमें ही बहुत अधिक हो गई और वहाँका सेठ घराना, खुर्जावाले सेठ, अलीगढ़के विद्वान्, ब्यावरके रानीवाले सेठ उनसे बहुत प्रभावित थे।

आपका विवाह श्री स्व० पं० रामलालजी पंचरत्नकी बहिनसे लगभग वि० सं० १९६८ में हुआ था। आपकी कोई सन्तान नहीं थी। मथुरामें ही उनकी पत्नीका स्वर्गवास सं० १९७४ में किसी बीमारीके कारण हो गया था। दूसरा विवाह नहीं करवाया था और दो वर्षके बाद १९७६ में आप भी किसी बीमारीके कारण स्वर्गवासी हो गये।

आप स्वभावके सरल, मृदुभाषी, दयालु, प्रकृति परोपकारी विविध गुणोंसे सम्पन्न थे।

●

पं० बाबूलालजी 'आकुल' शास्त्री

●

बुन्देलखण्ड कर्मठ विद्वानों, समाजसेवी, धर्मनिष्ठ एवं श्रेष्ठ दानियोंकी ऐतिहासिक जन्मभूमि रही है। मध्य प्रदेशके सागर जिलाके दलपतपुर ग्राममें १९ अक्टूबर सन् १९१९ को आपका जन्म हुआ। आपके पिताश्रीका नाम श्री प्रसादीलालजी था। आरम्भिक शिक्षा समाप्त कर सागर एवं जबलपुरमें आपने लौकिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की।

आरम्भसे ही समाज और स्वराष्ट्रकी समुन्नतिके प्रति आपकी आस्था रही यही कारण है कि स्वतन्त्रता आन्दोलनमें आपने सक्रिय योगदान दिया। दिगम्बर जैन समाजमें क्षेत्रीय संगठन एवं जैन भ्रातृ संघके माध्यमसे आपने बुन्देलखण्डमें जागृति एवं विचार क्रान्ति दी तथा सामाजिक धार्मिक संस्थाओंमें अनेक महत्त्वपूर्ण पदाधिकारीके रूपमें रहकर अपना गौरवमय स्थान बनाया। श्री गणेश जैन विद्यालय सागर, जैन महिलाश्रम सागर, सिद्ध क्षेत्र रेशंदीगिर, जैन गुरुकुल मलहरा जैसी संस्थाओंमें सहायक एवं उपमन्त्रीके रूपमें अपनी सेवाएँ प्रदान कीं।

आपकी प्रतिभा साहित्य-साधनासे भी अछूती नही रही। कविताके क्षेत्रमें आपका प्रमुख स्थान है। सैद्धान्तिक ज्ञान तो आपमें अनूठा ही है, अमर शहीद मदन एवं सोनागढी असंयम आदोलन कसौटी ग्रन्थोंके प्रणयनने आपकी विद्वत्ता एवं साहित्यिकताका सम्यक् परिचय दिया है।

छत्तीसगढके अधिकारी विद्वान् समाजके कर्मठ अग्रणी नेता एवं स्वाभिमानी व्रती विद्वान् होनेके साथ-साथ प्रतिष्ठादि कार्यों, भाषण प्रतियोगिता, लेखक आदि कार्योंमें आपकी प्रतिभा सर्दव आलोकित रही है। वर्तमानमें दुर्ग शहरमें आप स्वतन्त्र व्यवसायीके रूपमें जीविकोपार्जनमें अनुरक्त है।

●

पं० बाबूलालजी 'सुधेश'

●

नई पीढ़ीके होनहार कर्मठ एवं प्रतिभाशाली विद्वान्के रूपमें श्री बाबूलालजीका नाम लें तो अतिशयोक्ति न होगी। आपका जन्म टीकमगढ़ जिलेके मबई नामक ग्राममें ज्येष्ठ शुक्ला १५ सं० १९९१ को हुआ था। आपकी माँका नाम श्रीमती बैनीबाई एवं पिता श्री मोदी व्रजलालजी हैं।

प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद अहार तीर्थपर आपने धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। प्राइवेट रूपसे एम० ए०, साहित्यरत्न तककी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की।

आपकी पत्नी श्रीमती केशरदेवी धर्मपरायण महिला हैं। आपके दो पुत्र एवं पाँच पुत्रियाँ हैं। वर्तमानमें आप उच्च श्रेणी शिक्षकके पदपर म० प्र० शासक शिक्षा विभाग टीकमगढ़मे कार्यरत है।

अनेक सामाजिक, धार्मिक, संस्थाओंके पदाधिकारीके रूपमें आप कार्यरत है। धर्म प्रभावना एवं जिनवाणीकी समुन्नतिमें आप सदैव अग्रणी रहते हैं।

साहित्यके क्षेत्रमें आप प्रगतिशील हैं। कविता एवं लेखनमें समान अधिकार है।

●

श्री बिमलकुमारजी मलैया

●

आपका जन्म १२ मार्च सन् १९३२ में सागरमें हुआ था। आपके पिता श्री मूलचन्द्रजी मलैया थे। जो वर्णीजीके निकटस्थ एवं सहयोगी थे तथा भाईजीके नामसे विख्यात थे। आपकी धार्मिक शिक्षा साधारण थी। परन्तु लौकिक शिक्षा बी० ए०, एल० एल० बी० तक थी। बचपनमें ही आपके पिताका देहान्त हो गया था। आपका बचपन बड़ी कठिनाइयोंमें बीता। आप एक कुशल संगीतज्ञ है। आपका कंठ मधुर है। आप जैन संगीतको प्रकाशमें लाने हेतु कई कार्य करते है।

जहाँ आप जैनोत्कर्षमें अभिरुचि रखते हैं वहाँ आप साम्प्रदायिकता सीमिततासे परे है। आप सर्वोदय-के उपासक हैं। परोपकारी स्वभावके हैं।

●

श्री बाबूलालजी खुरई

●

आपका जन्म सन् १९१५ में खुरईमें हुआ। आपके पिता का नाम श्री जुगलकिशोरजी जैन था। आप खुरई और सागरमें शिक्षा प्राप्त करनेके पश्चात् बनारस विद्यालयमे अध्ययन हेतु गये। बादमें आपने मध्य प्रदेश राजस्व विभागमें कार्य प्रारम्भ किया तथा अनेक उच्च पदोंपर कार्य किया।

धर्ममें आपकी प्रारम्भसे ही रुचि रही है। स्वाध्यायके द्वारा आपने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। तथा आप खुरईमें प्रति दिन रात्रिको शास्त्र वाचन करते हैं। विद्वानोंसे आपको हार्दिक प्रेम है। आप परोपकारी, शान्त स्वभावी, दयालु, सज्जन पुरुष हैं तथा नियमित रूपसे पूजन पाठ स्वाध्याय आदिमें संलग्न रहते हैं।

●

श्री बलवन्तसिंहजी

●

शिक्षक श्री बलवन्तसिंहजी सोनीपत (रोहतक) पंजाबके रहने वाले हैं। आपने फारसी लेकर एम० ए० किया। सुयोग्य शिक्षकके रूपमें आपने एल० टी० परीक्षा उत्तीर्ण की है। आप हीरालाल जैन हायर सेकन्डरी स्कूल देहलीमें शिक्षक हैं। विवाह योग्य लड़के लड़कियोंकी सूचनाके लिए जैन मैरिज ब्यूरो का आप कुशलता पूर्वक सम्पादन कर रहे हैं। जैन प्रचारकके उर्दू विभागका वर्षों तक आपने सम्पादन किया। आपकी धार्मिक-सामाजिक सेवा अन्य जनोंके लिए भी अनुकरणीय है।

●

पं० बिरदीचन्दजी

●

प० बिरदीचन्दजी जैनका जन्म २१ मार्च १९१८ को सिवनीमें हुआ। आपके पिता पं० कस्तूरचन्द्रजी जैन थे। माता मारूभूरी थी। आप भारल गोत्रज हैं तथा जैन परवार जातिके भूषण हैं। आपने सिवनी, नागपुर, जबलपुर आदि जगहों पर शिक्षा प्रदान की। धार्मिक शिक्ष विद्यालंकार मानिकचन्द दिगम्बर जैन परीक्षालय शोलापुरसे प्राप्त की। साहित्यरत्न हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागसे उत्तीर्ण किया। इन्टरमीडिएट भोपालसे किया। आप रायपुर, इन्दौर, ग्वालियर आदि अनेक स्थानोंपर पर्यूषण पर्वमें सम्मानित हुए हैं। आप उच्च न्यायालय मध्य प्रदेश · जबलपुर में राजकीय पत्रक अधिकारी होते हुए भी अध्ययन शील हैं। शास्त्रीय उच्च कक्षाओं तथा साहित्यरत्न आदि कक्षाओंका अध्ययन कराते हैं। शास्त्रि तथा विद्वत्परिषदके सदस्य भी हैं।

●

स्व० बाबूलालजी डेरिया

●

आपका जन्म ३० मार्च सन् १९०७ में बाठई ग्राम जिला होशंगाबाद म० प्र० में हुआ। आपने कक्षा छठी तक शिक्षा प्राप्त की। विद्यार्थी जीवनसे ही राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लेनेसे आपका अध्ययन नहीं चल सका। आप अपने समयके जाने माने नेता थे। राजनीतिके साथ-साथ आप धार्मिक क्षेत्रोंमें भी समुचित समय देते थे। आपने हरिजन उद्धारके लिए आन्दोलन शुरू किया। राष्ट्रीय आन्दोलनके परिणाम स्वरूप आप तीन बार जेल गये। जेलसे लौटनेके पश्चात् आप काफी कमजोर हो गये फिर भी आपने गाँव-गाँवकी जनताको आजादीकी लड़ाईके लिए जगाया। जब आप
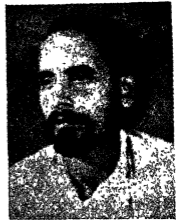
दूसरी बार जेलमें गए तब आपकी माताजीका स्वर्गवास हो गया। तभी आपने जेलमें एक कविता "बेटाको कारावास माँका स्वर्गवास" का प्रकाशन कराया।

जब आप जीवित थे तब आर्थिक स्थिति अच्छी होनेके कारण आपने पेंशन लेनेसे इन्कार कर दिया। आपने पुराने रीति रिवाजोंका जमकर विरोध किया। आपको एक पुत्र हुआ। उसका नाम संगठन रखा। किन्तु कुछ समय बाद संगठनका देहान्त हो गया। जब दूसरा पुत्र हुआ तो उसका भी नाम संगठन रखा। भारतीय दिगम्बर जैन परिषद्को सफल बनानेमें आपका पूरा सहयोग रहा। मृत्युके बाद आपको परिषद् द्वारा सेवाके सम्मानमें प्रमाण-पत्र भेंट किया।

आपकी मृत्यु २ नवम्बर १९७५ को हो गई। आपने २ अक्टूबर १९७१ को श्री आचार्य रजनीशका संन्यास धारण कर लिया था। आप तारण बन्धुके सम्पादक भी रह चुके हैं। आपके पिताका नाम मन्नूलाल जी डेरिया एवं माताका नाम जानकीबाई था।

आप साहित्यकार एवं कवि भी थे। आपकी हर कविता राष्ट्रीयतासे ओत-प्रोत रहती थी।

●

पं० बाबूलालजी न्यायतीर्थ

●

परिचय

पिता श्री देवकरणदासजी। दि० जैन खण्डेलवाल।

जन्म-स्थान

कठूमर (अलवर) राजस्थानमें पौष शुक्ल एकादशी संवत् १९७१। बीचमें आर्थिक स्थिति ठीक न होनेके कारण खण्डवा (म० प्र०) आना पड़ा। आपके पिताजी वैद्यकके जानकार तथा शास्त्राभ्यासी थे और 'भगतजी' के नामसे प्रसिद्ध थे।

दिगम्बर जैन महाविद्यालय ब्यावर (राजस्थान) १९२६ से १९३५ ई० तक शास्त्री जैन न्यायतीर्थ, महाजनी ब्याज और अँग्रेजीका साधारण ज्ञान प्राप्त किया।

प्रारम्भसे धार्मिक विषयमें रुचि रखे और स्वान्तः सुखाय धार्मिक अध्ययन किया। व्यावसायिक बुद्धि विरासतमें मिलनेके कारण उस दिशामें प्रवृत्ति हुई। इसके पहिले आप १९३६ से १९४६ तक सुजानगढ़ (बीकानेर) दीनहटा (कूचबिहार) और खण्डवामें धार्मिक अध्यापकके रूपमें रहे। १९५० से ५८ तक थोक किरानेका व्यापार।

आपका जीवन संयमित एवं परहित दृष्टि वाला है।

स्व० महात्मा भगवानदीनजी

●

'लेखन व्यक्तिके अन्तरंगकी अभिव्यक्ति है।' हिन्दी वाङ्मयके यशस्वी शीर्षस्थ साहित्यकार जैनेन्द्रकुमारजीकी यह उक्ति महात्मा भगवानदीनजी पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। कारण, महात्माजीने जो कुछ लिखा वह आत्म प्रयोजनके लिये लिखा। उन्होंने धर्मके ग्रन्थोंको जिज्ञासाकी सन्तुष्टिके लिये पढ़ा और जीवनकी साधनाके लिये चुना। फलतः वे सही अर्थोंमें महात्मा बन सके।

भगवानदीनजीके जीवनका एक अत्यन्त स्मरणीय परिच्छेद है, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनागपुर, जिसे उन्होंने नौकरी और परिवारको छोड देने पर, संयमकी साधना और तीर्थयात्रा करने पर जन्म और जीवन दिया था। आश्रमके बालक उनकी प्रार्थना गाते थे। भगवानदीनजी धार्मिक पुस्तकोंका अध्ययन कराते कराते भाष्य बनाते थे। उनकी भावुकता आश्रमकी कसौटी बनी। इनकी साधनामें आध्यात्मिकता बढी पर रूढ़िबद्ध सामाजिकता कम हो गई। फलत. आश्रमके इतिहासमें एक संघर्ष हुआ। महात्माजी थोडे विचलित हुए।

जेल ही लेखनकी उपयुक्त जगह

महात्मा भगवानदीनजी ऋषभब्रह्मचर्याश्रमसे विलग हुए। वे समाजको छोड़ राष्ट्रकी ओर बढ़े। जीवन वर्धनशील है। यह तथ्य समझानेके लिये वे गान्धीजीके असहयोग आन्दोलनके सहयोगी हो जेलमें जीवन बितानेके लिये पहुँचे। इस समय वे कवि, वक्ता और राष्ट्रीय कार्यकर्ता बन गये थे। जेल उनकी साहित्यिक सेवाओंकी अभिव्यक्तिके लिये उपयुक्त जगह सिद्ध हुई। जैनेन्द्रकुमारजीके शब्दोंमें भगवानदीनजीकी अधिकाश अभिव्यक्ति आध्यात्मिक और अतिशय मूल्यवान बनी है। महात्माजीने अरविन्द घोषके साहित्यका सूक्ष्म दृष्टिसे अध्ययन किया ताकि जैन तत्वज्ञानकी आधार शिला पुष्ट की जा सके। उन्होंने जैन आत्मवाद, कर्मवाद, मुक्तिवादका समर्थन किया।

लेखन कार्यकी महत्ता

१ महात्माजीने आरम्भमें चन्द्रकान्ता सन्तति पढ़कर, उसकी प्रतिक्रिया लिये एक तिलस्मी उपन्यास लिखा पर विचार बदलते ही वह जलाकर राख कर दिया।

२. जब ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थितिको लेकर संघर्ष हुआ तब उनके विचारोंमें मनन-मन्थन हुआ। उन्होंने जैनहितैषी (सम्पादक नाथूराम प्रेमी) के लिये अनेक निबन्ध लिखे, जिनमें सच्ची श्रद्धा और कार्यकुशलकी तेजस्विता है, धर्मनिष्ठा जहाँ है वहाँ अन्धश्रद्धासे असन्तुष्टिकी भी अभिव्यक्ति है।

३. आपने बालकोपयोगी साहित्यका भी काफी मात्रामें सृजन किया, जो आपके हृदयकी निश्छलता-उदारताका आज भी दिग्दर्शन कराता है।

४. आपके अधिकांश लेख विश्ववाणी, लोक जीवन, जैनहितैषी जैसे पत्रोंमें छपे। जैन संस्कृति और समाजसेवा जैसे निबन्ध तो इतने अधिक लोकप्रिय हुए कि पुस्तकाकार भी प्रकाशित हुए।

५. आप एक अच्छे निबन्धकार कहानीकार और कवि थे। आपकी लोकप्रियताका बहुत कुछ श्रेय आपकी भाषा-शैलीको है। कठिन विषयको सरलतासे प्रस्तुत करना आपका स्वभाव बना था। विषय-विवे-

उनकी शैली सर्वत्र अनेकान्तात्मक दृष्टि लिये रहती थी। आपके साहित्यमें पग-पग पर आपकी धर्मपराय-णता लक्षित हो रही है।

तत्त्वार्थसूत्रका प्रभाव

महात्माजी, आचार्य उमास्वामीके मोक्षशास्त्र बनाम तत्त्वार्थ सूत्रसे अत्यधिक प्रभावित थे। यह ग्रन्थ ही उनके जीवन-दर्शनका मूल आधार बना। महात्माजी इस ग्रन्थको स्वातन्त्र्यदर्शनसार कहा करते थे। यदि काफी काल तक ऋषभब्रह्मचर्याश्रम उनके निर्देशनमें चलता तो आजके समाजमें एक नहीं अनेक जैनेन्द्रकुमार-जी सदृश (दार्शनिक साहित्यकार) विद्वान् होते।

●

श्री भगवत्स्वरूपजी 'भगवत्'

●

आपका जन्म फरिहा (मैनपुरी) में संवत् १९६७ को श्री चौबेजी जैनके घर हुआ था। आपके पिता बूरे-बतासेके प्रसिद्ध व्यापारी थे। तथा पद्मावती पुरवाल दि० जैन समाजमें आपका पर्याप्त आदर था।

आपका विवाह मखावतपुर (आगरा) निवासी ला० कनीरामकी सुपुत्री श्रीमती महादेवीजीके साथ हुआ था। माताजी के स्वर्गवासके पश्चात् सारा भार पिताजीके ऊपर आ गया। फलतः व्यापारादिमें आपको संलग्न होना पड़ा।

संवत् १९८६ में फीरोजपुरके मेलेके समय श्री पू० चारित्र चक्रवर्ती आ० शान्तिसागरजी महाराज ससंघ फरिहा पधारे। जिनके सत्समागममें आपमें धार्मिक भावना जाग्रत हुई थी। और आप अपनी भावनाओंका प्रगटीकरण कविताके माध्यमसे करने लगे जो प्राय: जैन गजट' और 'खंडेलवाल जैन हितेच्छु' में प्रकाशित होती रहती थी। जब आपकी अवस्था लगभग १९ वर्ष की थी, पू० पं० जोखीराम शास्त्रीकी प्रेरणासे यहाँ (फरिहा) की बन्द पाठशाला पुन: आरम्भ हुई जहाँ आपने अपने व्यापार कार्यको चलाते हुए अध्ययन और आगमका ज्ञान या श्रद्धान प्राप्त किया।

परिवारिक संताप

आपकी छोटी उम्रमें ही पिता श्री का देहान्त हो जानेसे घरके सम्पूर्ण कार्य आप एवं आपके छोटे भाई लक्ष्मण स्वरूपपर आ पड़े। संवत् १९९० में फरिहामें प्लेग महामारीसे आपको बड़ा संघर्ष करना पड़ा। कुछ समय बाद आपके भाई लक्ष्मणस्वरूपका दुखद वियोग, उनके तीन पुत्र एवं दो पुत्रियों तथा स्वयके १४ वर्षीय पुत्र एवं ११ वर्षीय पुत्रीका अल्पकालमें ही वियोगके महान् दुखको झेल ही नहीं पाये कि अन्तिम पुत्र जो लगभग चार वर्षका था चल बसा। इस प्रकार अपने सामने कुल-दीपक बुझ जानेके कारण आपने फीरोजाबाद जानेका निश्चय किया परन्तु पं० रत्नेन्दुजी जो आपके परम मित्र (गुरुभाईथे) ने क्षेत्रकी सेवा करनेके व्रत और संकल्पकी प्रेरणा देकर रोका।

निस्पृह तीर्थ-सेवी

इस प्रकार सांसारिक विपत्तियोंको झेलकर आपने जो भी सेवाएँ मरसलगजको अर्पित की वे स्मरणीय रहेंगी। विगत ०-४२ वर्षोंसे इसकी अनन्य सेवामें संलग्न रहते आ रहे हैं। सन् १९६३ में श्री ऋषभनाथ

भ० की विशाल पद्मासन प्रतिमा पंचकल्याणक मेला द्वारा प्रतिष्ठा कराकर क्षेत्रपर विराजमान करानेका श्रेय आपको ही है।

आपका जीवन अत्यन्त धार्मिक मुनि त्यागियोंको आहारदान देनेमें हमेशा तत्पर, विद्वानोंका आदर एवं साधर्मी भाइयोंसे वात्सल्य भाव आपके निजी उदात्त गुण हैं।

साहित्य सेवी

जहाँ तक साहित्य सेवाका सम्बन्ध है आपने कई प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे—प्रमुख है सुकुमाल महामुनि चरित्र (तीन भाग), सुखानन्द मनोरमा चरित्र (दो भाग), 'भगवत् लावनीशतक संग्रह तथा भ० पार्श्व-नाथ पूजन' आदि।

आपको शान्तिवीर सिद्धान्त संरक्षिणी सभाने 'धर्म-भूषण'की उपाधिसे विभूषित किया तथा मरसल-गजके वार्षिक मेलेके अवसरपर आपका अभिनन्दनकर उन्हे सम्मानार्थ 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भेंटकिया जो उनकी अतुलनीय सेवाओंके आगे छोटा है।

●

पं० भगवानदासजी शास्त्री

●

जन्म स्थान साढूमल, जिला झांसी।

जन्म दिवस : विक्रम संवत् १९६२, ज्येष्ठ मास कृष्ण-पक्ष, द्वितीया।

शिक्षा : साढूमलमें प्राथमिक हिन्दीका शिक्षण, श्री महावीर दिगम्बर जैन पाठशालामें प्रवेशिका तृतीय खण्ड तक धार्मिक शिक्षण, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसीमें विशारद प्रथम खण्डसे शास्त्री तक धर्म एवं जैन न्यायका अध्ययन तथा प्रात. स्मरणीय पूज्य श्री गणेशप्रसादजीके चरण सानिध्यमें प्रमेयकमल मार्तण्ड, अष्टसहस्त्रीका अध्ययन कर न्यायतीर्थ परीक्षा दी।

कार्य क्षेत्र

इसके बाद १९२७ में जुलाई माससे जन्म भूमि साढूमलमे ही जैन पाठशालामें अध्यापकके रूपमें करीब दो वर्ष कार्य किया। श्री डा० ना० जैन छात्रावास, जबलपुरमे सन् १९२९ में जुलाई १९३९ तक निरीक्षक एव धर्माध्यापक पदपर कार्य करते हुए काव्यतीर्थ परीक्षा उत्तीर्ण करनेके साथ ही मीमांसा प्रथमा, मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण की।

रायपुर दिगम्बर जैन पाठशालामें जनवरी सन् १९४१ से वर्तमानकाल तक अध्यापक पदपर कार्य। पर इस लम्बे समयके बीचमें दमोह, भोपाल, विदिशा, देहली, अहमदाबाद, नागपुर, अकलतरा, डोंगरगढ़, राजिम नवापारा आदि स्थानोंमें पर्यूषण पर्व तथा अन्य समयोंपर प्रवचनार्थ विशेष रूपसे आमन्त्रित किया गया। इसी प्रसंगमें ललितपुरमें जैन समाजके धर्मानुराग वश (पूज्य श्री १०८ नेमिसागर मुनि महाराजके

चातुर्मासके अवसर पर) धार्मिक प्रवचनके लिए आमन्त्रित किया गया। पर वहाँके प्रमुख धर्मानुरागियोंके सदाग्रह वश छः मास तक सानन्द ठहरना पड़ा। फलतः ललितपुर जैन समाजने अपनी सहृयता, सौजन्यता एवं धर्म परायणतासे प्रेरित होकर सम्मानित करते हुए क्रमशः दो अभिनन्दन-पत्र भी प्रदान किये एवं ता० १-१२-६९ को 'धर्मालंकार' उपाधिसे विभूषित किया।

स्थानीय दिगम्बर जैन समाजके तो आप सम्माननीय विद्वान् हैं ही, किन्तु श्वेताम्बर जैन संघमें भी आपकी प्रतिष्ठा है, जिसका कारण आपकी बहुश्रुतज्ञता ही है। जिसके फलस्वरूप श्वेताम्बरीय साधु साध्वी-श्रावकोंको भी उन्हींके अग सूत्र ग्रन्थोंके सागोपाग अध्यापन कराते हैं। जो व्यक्ति एक भी बार आपसे प्रवचन सुन लेता है, प्रभावित हुए बिना नही रहता। आप बाल्यकालसे ही अष्टमूल गुणके पालनकर्ता एवं नैष्ठिक विद्वान् है। आज भी आप अपने परिपक्व आत्मनिष्ठ, स्वानुभवरूप श्रुत ज्ञानसे धार्मिक एव समाज सेवाके प्रसंगपर कार्य करनेको सक्षम है।

●

पं० भँवरलालजी न्यायतीर्थ

●

श्री भँवरलाल न्यायतीर्थ दि० जैन समाजके उन व्यक्तियोंमेंसे है जिनने अपने जीवनको सेवा मय बना रक्खा है। साहित्यिक धार्मिक, सामाजिक एव राजनैतिक सभी क्षेत्रोमें आपकी सेवाएँ महान् है। गत ३०-३५ वर्षोंसे समाजकी प्रत्येक हलचल और आन्दोलनमें आपका सक्रिय योग एवं प्रत्यक्ष या परोक्षमें समर्थन रहा है। स्वनाम धन्य जैनसमाजकी विभूति स्वरूप स्व० पूज्य पण्डित चैनसुखदासजी न्यायतीर्थके प्रमुख शिष्य है। और उनके दिवगत होनेके बाद उनकी सभी प्रवृत्तियों को आप निभा रहे हैं।

न्यायतीर्थजीका जन्म वि० स० १९७२ में जयपुरमें हुआ। आपके पिता खण्डेलवाल दि० जैन समाज जयपुरके प्रसिद्ध संगीतज्ञ भजनोपदेशी श्री गेन्दीलालजी भाँवसा थे। आप सही रूपमें धर्मात्मा थे। बचपनसे नियमित शास्त्र स्वाध्यायके बल पर आप अच्छी चर्चायें करते थे और त्यागी वृत्तियोंके पूर्ण भक्त होते हुए भी उनमें या श्रावकोंमें तनिक भी शास्त्र विरुद्ध क्रियाओंके खरे आलोचक थे। यह गुण न्यायतीर्थजीको पितासे विरासतमें मिला है।

न्यायतीर्थजीकी शिक्षा प्रारम्भसे अन्त तक जैन पाठशाला वर्तमान जैन सस्कृत कालेजमें हुई। कालेजको सन् १९३१ में पं० चैनसुखदासजीने संभाला तो भँवरलालजीको उनके प्रमुख शिष्य होनेका सौभाग्य मिला और आज जो कुछ भी है पण्डित चैनसुखदासजीकी ही देन है। आप न्यायतीर्थ है। अंग्रेजीमें इण्टर तक पढे हैं। उर्दू का अच्छा ज्ञान है। फारसी भी जानते हैं। शास्त्र विद्याके साथ-साथ शस्त्र विद्यामें भी पारंगत हैं और उसमें आपकी धाक है। बचपनसे ही सेवाके कार्यमें आपकी रुचि है और कई बड़े-बड़े मेलोंके अवसर पर आपने सेवा दलका संचालन किया है। सफल प्रबन्धक हैं।

आप कुशल लेखक पत्रकार और अच्छे वक्ता है। राजस्थानके प्रसिद्ध निर्भीक एवं साहित्यिक पाक्षिक पत्र वीरवाणीके प्रारम्भसे सम्पादक हैं और वर्तमानमें प्रमुख सम्पादक है। पत्र २३ सालसे निकल रहा है। इसके पूर्व जैन बन्धुके सम्पादक रहे। खण्डेलवाल महासभाके पत्र खण्डेलवाल जैन हितेच्छुके भी सम्पादक रहे हैं। जयपुरके महापुरुष एवं दिवानोंके इतिहास पर आपने खूब खोज की है। और काफी सामग्री वीर वाणी, आदि पत्रों द्वारा प्रकाशमें लाये हैं। अब भी उस ओर प्रयत्नशील है। मूर्ति लेख, यंत्र-लेख, शिला लेखोंका अच्छा संग्रह आपके पास है। वीरवाणीमें आपकी सम्पादकीय, निर्भीक टिप्पणियाँ, पठन व मननके योग्य है। पूज्य पण्डित चैनसुखदासजीकी परिपाटीको आप निभा रहे हैं। आपने पूज्य पं० चैनसुखदासजीके "भावना विवेक" का हिन्दी अनुवाद किया है जो षोडश कारण भावनाओंके सम्बन्धमें एक अनूठी पुस्तक है। आचार्य सूर्यसागरजी महाराज कृत संयम प्रकाश महान् ग्रंथके आप सम्पादक हैं। बनारसी विलास आदि ग्रन्थोंका आपने सम्पादन किया है।

प्रारम्भमें आपने राज्य सेवाका कार्य किया अंग्रेजोंके सम्पर्कमें रहे पर आत्म-सम्मानको ठेस पहुँचनेके कारण राज्य सेवासे त्याग पत्र दे अपना स्वतन्त्र कार्य आरम्भ किया। श्री वीर प्रेसके आप मालिक हैं यह प्रेस जयपुरके अच्छे प्रेसोंमें है। वीर पुस्तक भण्डार नामक संस्थान आपका है जहाँसे कई धार्मिक ग्रन्थ पुस्तकें प्रकाशित होती हैं।

आप साहित्यिक होनेके साथ-साथ सामाजिक प्राणी हैं। जयपुरकी एवं जयपुरके बाहरकी कई संस्थाओंके पदाधिकारी एवं सक्रिय सदस्य है। राजस्थानकी प्रसिद्ध प्राचीन एकमात्र धार्मिक शिक्षण सस्था दि० जैन सस्कृत कालेज एवं भारत प्रसिद्ध दि० जैन अतिशय क्षेत्र पद्मपुराके वर्षोंसे आप मन्त्री चुने जाते है। पद्मपुरा क्षेत्रका योजना बद्ध जो विकास अब तक हुआ है वह आपकी निस्वार्थ सेवाओंका फल है। जयपुरके कई अन्य विद्यालय, औषधालय, कई मन्दिर, धर्मशाला, सभा, सगीत मण्डल आदिके सक्रिय सदस्य एवं मन्त्री हैं। किसी भी संस्थामें आप रहें—वहाँ मूक नही रहते, सक्रिय भाग लेते हैं। व्यापारिक सस्था प्रेस ओनर्स एसोसियशनके वर्षों मन्त्री रहे हैं। राजनीतिक क्षेत्रमें भी आप समय-समय पर भाग लेते रहे हैं। आप कांग्रेस विचारधाराके हैं। जयपुर नगर पालिकाके आप मेम्बर रहे हैं। आपने सदस्यके रूपमें जो नगरको सेवाकी है वह सराहनीय है। आप कुशल प्रशासक, सफल लेखक, मूक सेवी, मिलनसार और विनोद प्रिय व्यक्ति है। आपत्तियोंमें धैर्य और ढाढस रखनेवाले हैं।

•

श्री भँवरलाल पोल्याका जैनदर्शनाचार्य

•

पिताका नाम : श्री पारसलालजी पोल्याका।

शिक्षा : जैनदर्शनाचार्य, साहित्य शास्त्री।

पं० भँवरलालजी पोल्याकाका जन्म जयपुरके पोल्याका परिवारमें सन् १९१८ मे हुआ। आप दि० जैन खण्डेलवाल जातिके पांड्या गोत्रीय श्रावक हैं। आरम्भमें आपकी शिक्षा-दीक्षा दिगम्बर जैन संस्कृत कालेज, जयपुरमें हुई। साथ ही में उर्दू, फारसीका भी आपने अध्ययन किया।

राज्य सेवामें सामान्य मुंसी के पद पर आपकी नियुक्ति हुई अन्तमें आप सबरजिस्ट्रार

के पदसे सेवा निवृत्त हुए। आप पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थके प्रमुख शिष्योंमेंसे हैं और जैन दर्शनाचार्यकी परीक्षा भी आपने उन्हींके पास की थी।

पोल्याकाजी निर्भीक वक्ता एवं लेखक हैं। राजस्थान जैन सभा, जयपुरसे प्रकाशित होनेवाली बहु चर्चित "महावीर जयन्ती स्मारिका" का गत ४-५ वर्षोंसे ही आप सम्पादन कर रहे हैं। आपकी साहित्यकी ओर प्रारम्भसे ही रुचि रही है। "बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ" के सम्पादनमें आपने पण्डित साहबको पूर्ण सहयोग दिया।

आप प्रतिभाशाली विद्वान् वक्ता एवं सफल साहित्यकारके रूपमें जैन समाजके बीच सम्मानित हैं।

●

स्व० पं० भुवेन्द्रकुमारजी 'विश्व'

●

विश्वजी अपने समयके मान्य कवियोंमेंसे एक थे। आपने जैन पत्रोंमें काफी कविताएँ लिखीं। आठ वर्ष तक धर्माध्यापक रहे और गृहपति कार्य भी किया।

सन् १९३१ से आप जबलपुरमें स्वतन्त्र व्यवसाय करने लगे। आपने सरल जैन ग्रन्थमालाका संचालन किया। इस ग्रन्थमालाके माध्यमसे आपने अनेक जैन ग्रन्थोंके अच्छे सस्ते संस्करण निकाले।

आपकी धार्मिक सामाजिक सेवा आज भी अनुकरणीय बनी है।

●

स्व० बा० भोलानाथजी दरख्शा

●

दरख्शा साहब उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और हिन्दीके अच्छे विद्वान् थे। आप विद्यार्थी जीवनसे ही जैन-धर्म विषयक निबन्ध लिखा करते थे। जैन मित्र मंडल देहलीकी प्रेरणासे आपने उर्दू भाषामें अनेक ट्रेक्ट लिखे।

आप अपने समयके एक ही श्रेष्ठ लेखक थे। आपकी साहित्य सेवा आज भी श्रद्धासे उल्लेखनीय है।

●

पं० भैयालालजी शास्त्री

●

आपका जन्म अगहन सुदी एकादशी संवत् १९६१ में हुआ था। आपका जन्म स्थान सिलावन (महरौनी) झाँसी उ० प्र० है। आपकी आरम्भिक शिक्षा महावीर दिगम्बर जैन विद्यालय साढूमलमें हुई। इसके बाद आपने अभिनन्दन दिगम्बर जैन पाठशाला ललितपुर और सतर्क सुधातरंगिणी पाठशाला सागरमें अध्ययन करके शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपने उदासीन आश्रम इन्दौर, बामौरा व डोंगरगढ़ आदि स्थानोंमें रहकर समाजको अपनी शिक्षा का लाभ दिया। आजकल आप बीनामें निवास करते हुए स्वतन्त्र व्यवसाय कर रहे हैं। आपके अग्रज पंडित फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री, दिगम्बर जैन समाजके शीर्षस्थ विद्वानोंमेंसे एक हैं।

आशा है पण्डितजी भी धर्म और समाजकी सेवाके क्षेत्रमें अपने अग्रज सदृश कीर्तिमान स्थापित करेंगे।

●

प्रो० भागचन्द्रजी 'भागेन्दु'

जन्म

आपका जन्म २ अप्रैल १९३७ को म० प्र० के जबलपुर जिलान्तर्गत रीठी नामक स्थानमें हुआ। आपके पिता सवाई सिंघई श्री अनन्तरामजी नगरमें प्रधान थे। माता श्रीमती धन्नीबाई एक धर्मप्रिय महिला थी। जन्मके समय आपके घरकी आर्थिक स्थिति उन्नत दशा में थी। इस तरहसे आपका बचपन बहुत ही सुख सुविधामें व्यतीत हुआ।

शिक्षा

आपने कलकत्तासे काव्यतीर्थ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागसे साहित्यरत्न, संस्कृत विश्वविद्यालय बनारससे साहित्य शास्त्री, जैन महासभा इन्दौरसे जैन सिद्धान्त शास्त्री तथा सागर विश्वविद्यालयसे बी० ए० की परीक्षाएँ द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण की। गाँधी विश्वपरिषद्से "गाँधी दर्शन शास्त्री" की परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की तथा एम० ए० में आपको प्रथम श्रेणी एवं द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। आपने पी-एच० डी० की उपाधि ससम्मान धारण की।

पाली व प्राकृत साहित्य, गाँधी साहित्य एव प्राचीन अभिलेख एवं जैन कलाका आपने विशेष अध्ययन किया। इसके अलावा हिन्दी अंग्रेजी एवं अपभ्रंश साहित्य के भी आप अधिकारी विद्वान् हैं।

अर्थोपार्जन

१९६१ में आप महात्मा गाँधी स्मारक डिग्री कालेज इटारसीमें प्राध्यापक तथा संस्कृत विभागके अध्यक्षके रूपमें नियुक्त हुए। १९६८ तक आपने उक्त विद्यालयमें कार्य किया। १९६८ से आप शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सीहोरमें प्राध्यापक तथा संस्कृत विभागके अध्यक्ष हैं।

साहित्यिक सेवा

आप एक उदीयमान साहित्यकार हैं। आपने साहित्यके दोनों पहलुओंको अपनी लेखनीका स्पर्श दिया। आपकी लगभग २०० कविताएँ एवं निबन्ध समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए। आपकी मूल्यवान कृति "भारतीय संस्कृतिमें जैन तीर्थोंका योगदान" वस्तुतः पठनीय एवं सराहनीय है। अप्रकाशित कृतियोंमें निबन्ध एवं महाकवि कालिदास हमारी राष्ट्रीय विभूति उच्चकोटिकी पुस्तकें है।

इसके अलावा आपने कतिपय उच्चकोटिकी पुस्तकोंकी भूमिका लेखन का भी कार्य किया। साहित्यके प्रति आपकी रुचि छात्र जीवन से ही रही आई। इस समय आप "देवगढ की जैन कलाका सांस्कृतिक अध्ययन" इस विषयपर शोध प्रबन्ध तैयार कर रहे हैं।

धार्मिक सेवा

आपने सागर वि० वि० में जैन विद्यार्थियोंका संगठन स्थापित करवाया तथा उनके उचित भोजनादि की व्यवस्था की। अनेक स्थानोंमें आयोजित धार्मिक कार्यक्रमोंको सफल बनानेमें सक्रिय योग दिया। आप अनेक धार्मिक जलसोंके पदाधिकारी एवं वक्ता भी रहे। श्री सिद्धक्षेत्र नैनागिरिकी प्रबन्धकारिणीके सदस्य रहे एवं अब भी हैं। १९६२ से ६८ तक इटारसी पार्श्वनाथ दि० जैन मन्दिर कमेटीके उपाध्यक्ष रहे। इसी तरह आप अब भी लगभग १० संस्थाओंके सम्मानित पदाधिकारी है।

सामाजिक सेवा

आप सामाजिक कुरूढ़ियोंके बहिष्कारार्थ सतत प्रयत्नशील हैं। अनेक बार आपने सर्व धर्म सम्मेलनोंमें जैन धर्मका प्रतिनिधित्व किया। जैन विद्यालय इटारसी, जैन पाठशाला रीठी एवं वर्णी स्नातक परिषद् की आपने ही स्थापना की।

इस तरहसे आप एक उच्चकोटिके प्रवक्ता, प्राध्यापक, कवि, निबन्धकार, कहानीकार एवं समाजके स्तम्भ हैं। आपकी कृतियाँ तथा सेवायें महान् हैं जो कभी भी विस्मृतिके गर्तमें नहीं जा सकती।

●

पं० भगवानदासजी सिरगन

●

जीवन-परिचय

अध्ययन और अनुभव वृद्ध पंडित भगवानदास जी का जन्म विक्रम संवत् १९६२ में मिरगन (ललितपुर) उ० प्र० में हुआ था। आपके पिता श्री कुँवरजी गोलालारीय समाजके भूषण थे।

आपकी आरम्भिक शिक्षा ललितपुरमें हुई। अनन्तर आपने मोरेना और सागर विद्यालयमें शिक्षा पाई। यहीं लगभग १९ वर्ष की अवस्थामें आपका विवाह भी हुआ। पंडितजी आर्थिक चिन्तासे निश्चित रहे पर सन्ततिकी समस्याको लेकर उद्विग्न रहे। कालान्तरमें निश्चिन्त हुए। वर्तमानमें एक पुत्री इन्दिरा है, जिसका विवाह डॉ० निर्मलचन्द्रजी शाजापुरसे हुआ और एक पुत्र अरविन्द कुमार है जो बी० एस-सी० में पढ़ रहा है।

कार्य क्षेत्र

आपने उस मन्दसौरको कार्य-क्षेत्र बनाया जहाँ सूर्य मन्द रहता है पर मनुष्योंका सौभाग्य-द्वार खुला रहता है। आपने एक ओर कुमुद चन्द्रिका पाठशालामें पढ़ाना शुरू किया और दूसरी ओर आयुर्वेद पढ़ना शुरू किया। चूँकि आपने धर्म और आयुर्वेद दोनोंपर अच्छा अधिकार कर लिया, अतएव आप पंडित और वैद्य दोनों रूपोंमें प्रसिद्ध हुए। पाठशालामें पढ़ाते हुए लगभग ५० वर्ष हो गये और औषधालय चलाते हुए लगभग ३० वर्ष हो गये। आप यहाँ नगरपालिकाके अध्यक्ष भी रहे और हिन्दू महासभाकी ओरसे विधायक भी रहे। अखिल विश्व जैन मिशनके प्रचार-प्रसार में भी आपने काफी सहयोग दिया। पंडितजी दिगम्बर-श्वेताम्बर, दोनों समाजोंमें सम्मानित हुए। आध्यात्मिक अभिरुचिवाले पंडितजी विद्वानोंके बड़े प्रेमी हैं। मन्दसौर में जो भी धार्मिक सामाजिक चेतना है वह आपके ही सत्प्रयत्नोंका परिणाम है।

●

पं० भैया शास्त्री काव्यतीर्थ आयुर्वेदाचार्य

●

जन्म : आपका जन्म संवत् १९७३ पौष शुक्ला २ को बामौर कला जिला शिवपुरी (म० प्र०) में हुआ। जन्मके समय पिता श्री पं० पन्नालालजी प्रतिष्ठाचार्यकी आर्थिक स्थिति मध्यम थी। वे उस समय जैन पाठशाला चन्देरी तथा ईशागढमें धर्माध्यापक थे। वे सिद्धान्तके मर्मज्ञ विद्वान् थे। उन्होंने आजीवन समाज सेवाका कार्य किया तथा आपको भी समाज सेवाका मन्त्र दिया।

लगभग १० वर्ष की उमरमें आपने नाभिनन्दन दि० जैन पाठशाला ललितपुर (झाँसी) से बालबोधकी परीक्षा उत्तीर्ण कर सन् १९३२ में साढ़ूमल पाठशाला से प्रवेशिकाकी परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके उपरान्त इन्दौर, मोरेना, सहारनपुर, पपौरा, ग्वालियर और लाहौर (पजाब) आदि स्थानोंमें शिक्षा ग्रहण करते हुए आपने शास्त्री, काव्यतीर्थ और आयुर्वेदाचार्यकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। आयुर्वेदमें आपको पूर्ण अधिकार मिला। विद्याध्ययन कालमें आदिसे अन्त तक आप ट्यूसन करते रहे। इस तरह आत्मनिर्भर होकर ही आपने अपना अध्ययन सम्पन्न किया।

१९४३ के बाद आप डी० सी० एम० जैन हाई स्कूल फीरोजपुरमें हिन्दी संस्कृत धर्माध्यापक पद-पर कार्य करने लगे। १९४८ से आप शासकीय चिकित्सालयोंमें प्रधान चिकित्सकके पदपर कार्य करते हैं। शासकीय आ० फार्मेसीमें प्रधान रसायनाचार्यके पदपर कार्य करते रहे हैं। आजीविका साधनके रूपमें शासकीय सेवाको अपनाते हुए भी सामाजिक क्षेत्रमें नि:शुल्क धार्मिक कार्य करते आए हैं।

समाजमें संगठन एवं धर्म प्रचारके ठोस कार्य करने तथा कुरीतियोंके निवारणार्थ आपने सन् १९३९ में दि० जैन विद्यार्थी संघकी दि० जैन तेरापंथी मदिर माधौगंजमें स्थापना की जिसके प्रौढ़ कर्मठ सदस्य आज भी अपने उद्देश्योंपर चलकर समाज सेवा कर रहे हैं।

सन् १९३९ में ही समाजसेवी श्री सेठ गुलाबचन्दजी गौनयाकी सहायतासे माधौगंज दि० जैन मन्दिरमें जैन पाठशालाकी स्थापना की। यह पाठशाला अब भी चालू है।

धर्माध्ययनके उद्देश्यसे मुहार्रा ग्राम, बामौर कला एवं खसौरा ग्राम में भी आपने जैन पाठशालाओं की स्थापना की।

आपके धार्मिक निबन्ध १९४० से निरन्तर जैन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होते चले आए हैं। आपकी अनुभूत औषधियोंका प्रकाशन धन्वन्तरि में भी होता है। "राष्ट्र निर्माता शिशु" अमूल्य कृति है। लक्ष्मी विलास तत्त्वार्थबोधकी आपने भूमिका आदि लिखकर सम्पादन किया। इस समय आप "त्रिकुट विज्ञान" नामक आयुर्वेदीय ग्रंथ लिख रहे है जो पूर्ण होने को ही है। यह ग्रन्थ आयुर्वेदका अनुपम एवं अपूर्व ग्रन्थ होगा इसमें कोई सन्देह नही है।

आप दहेज प्रथाके घोर विरोधी हैं। इस प्रथाका समूलांत करने हेतु आपने कठिन परिश्रम किया। आप बहुत अंशों तक सफल भी हुए। इसके अलावा समाजमें फैली हुई सभी कुरीतियोंके विरोधी हैं तथा समय-समय पर अनेक तरहकी संस्थाओंकी स्थापना कर एवं संगठन बनाकर उनके निवारणार्थ प्रयत्न भी करते हैं। इस तरहसे समाज सेवाका बहुत बड़ा दायित्व आपने अपने ऊपर लिया जिसका अधिक से अधिक पालन किया तथा समाजको कुरीतियोंके गड्ढेसे निकालकर उच्च शिखरपर बिठाया। ●

श्री भुवनेन्द्रकुमारजी खुरई

•

आपका जन्म उन्नीस मार्च सन् १९१४ मे मध्य प्रदेशके सागर जिलामें स्थित मालथौन नामक गाँव में हुआ। आपके पिताका नाम श्री भुजबलप्रसादजी एव माताका नाम श्रीमती राधाबाई था। जन्मके समय स्थिति साधारण थी फिर भी आपके पिता श्री समाजकी नजरोंमें सम्मान अथच आदरके पात्र थे।

आपकी शिक्षा दीक्षा स्थानीय विद्यालयसे ही आरम्भ हुई। गाँवमें विशारद प्रथम खण्ड तककी शिक्षा लेनेके बाद आप श्री० गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना चले आये। यहाँसे आपने शास्त्रीकी परीक्षा उत्तीर्ण की।

इसके बाद आप अध्यापन कार्य करने लगे। इसी समयावधिमें आपने बी० ए० कर लिया। आप अध्ययन कर रहे थे तभी सन् १९३५ में सरस्वतीबाई नामक सुशील युवतीके साथ आपका विवाह हो गया। किन्तु पाँच वर्ष बाद ही उनका स्वर्गवास हो गया। फलतः सन् १९४० में आपका दूसरा विवाह श्यामबाई नामक सुलक्षणी युवतीके साथ सम्पन्न हुआ।

आपने अर्थोपार्जन हेतु सिर्फ अध्यापन कार्यको ही अपनाया। आपके जीवनमे अनेकानेक जटिल परिस्थितियाँ आई किन्तु सभी परिस्थितियोंका मुकाबला आपने सदा हँस-हँसके ही किया। आजकल आप श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल हा० से० स्कूल खुरईमें अध्यापन एवं व्यवस्थापन कार्य कर रहे हैं।

उक्त स्कूलकी स्थापना आपके ही सत्परिश्रमका सुपरिणाम है। आपने सन् १९४९ में इस स्कूलकी स्थापना की तबसे आजतक आप बराबर इसीमें सेवा कार्य कर रहे है।

आप समाजके कर्मठ कार्यकर्ताओंमे से है। आपने अपने जीवनमे अनेकानेक प्रशसनीय कार्य किए किन्तु उन कार्योंके पीछे आपका निजी स्वार्थ स्वप्नमें भी नहीं आने पाया।

आप उच्चकोटिके वक्ता हैं। अध्ययन कालमें ही वक्तृत्व कलाका उदय हुआ था। इस कलामें आप इतने सामर्थ्य है कि सौ पचास वक्ताओंके मध्य जब आपकी श्री वाणी निकलती है तो अच्छे-अच्छे धुरन्धर वक्ता भी हाथ मलने लगते है।

इतना ही नही आप एक भावुक और उच्च कोटिके कवि भी है। सैंकडों गीत और कविताएँ आपके हृदय प्रदेशसे निकली और जन-जनके मानस पटल पर छा गईं। कवित्व शक्तिके साथ-साथ आपको गद्य-लेखन कलाका भी अधिकार स्वाभाविक रूपसे प्राप्त हुआ।

•

पं० भैयालालजी सहोदर

●

आपका जन्म वि० सं० १९६७ के फागुन वदी ७ को मालथौन ग्राम सागरमें हुआ। पिताजीका नाम सिंघई जालिमचन्द्र-जी था। ६ वर्षकी अवस्थामें ही पिताजीका स्वर्गवास हो जानेके कारण स्थानीय प्राइमरी शालाकी पढ़ाई प्राप्तकर आप अपने जीजा श्रीमान् प० फूलचन्द्रजी जैन शास्त्री जो उन दिनों नागौर (मारवाड़) की श्री दि० जैन पाठशालामें प्रधानाध्यापक थे उनके साथ चले गए। वहाँ बालबोधकी पढ़ाई समाप्तकर वापिस आकर अपने ग्रामकी श्री दि० जैन पाठशालामें प्रविष्ट हो गए। उन दिनों श्रीमान् पं० किशोरीलालजी शास्त्री उसके प्रधानाध्यापक थे। उनके सानिध्यमें व्याकरण प्रथमा, न्याय प्रथमा एवं विशारद प्रथम खण्डकी पढ़ाई की। पश्चात् श्रीमान् पूज्यगुरु न्यायालङ्कार पं० वंशीधरजी सा० की प्रेरणासे स० हु० विद्यालय इन्दौरके बोर्डिंग हाउसमें प्रविष्ट हो गए। वहाँ न्यायमध्यमा एवं शास्त्री प्रथम खण्डकी पढ़ाई समाप्तकर ग्रीष्मावकाशके दिनोंमें अपने गाँव आ गये। श्रीमान् पं० फूलचन्द्रजीके सत्प्रयत्नोंसे आपका विवाह हो गया। पश्चात् उन्हींके सत्परामर्शमें लालगढ़ (बीकानेर) के श्री दि० जैन स्कूलमें प्रधानाध्यापक हो गये। उन दिनों वहाँ श्रीमान् सेठ सोना नरेश निहालचन्दजी वाकलीवाल मालिक फर्म सालिगरामराय चुन्नीलाल बहादुर एण्ड कम्पनी जि० डिब्रूगढ़ (आसाम) अच्छे उत्साही उदारमना सभापति एवं इसी फर्मके पार्टनर श्रीमान् सेठ चम्पालालजी पान्ड्या स्कूलके मन्त्री थे। तथा उनके सहयोगी श्रीमान् सेठ भँवरीलालजी बाकलीवाल इमाल (मनीपुर) अच्छे सत्परामर्शदाता थे। इन सज्जनोंके सहयोगसे स्कूलने अच्छी प्रगति की। उसका अपना निजी भवन बन गया और बादमें वह सरकारसे रिकोग्जनाइज्ड हो गया।

१२ वर्ष वहाँ कार्य करके स्वास्थ्यकी गड़बड़ीके कारण आप सागर आ गए। वहाँपर चार वर्ष तक कटलरीकी दुकान की परन्तु अकेले एक व्यक्तिसे दुकानदारी चलती न जानकर श्री गणेश संस्कृत विद्यालय सागरमें प्रधान मुनीम बन गए एक वर्षकी नौकरीके पश्चात् समाजकी नौकरीसे कुटुम्बका खर्च पूरा चलता न देखकर मेसर्स भगवानदास फूलचन्द जैन सराफ सागरके यहाँ मुनीम हो गए। वहाँ इस लाइनका पूर्ण ज्ञान प्राप्तकर वि० सं० २००८ में फर्म चूरामन सुखलाल जैन सराफ मौ (भिण्ड) म० प्र० में मुनीम नियुक्त हो गये। उन दिनों इन फर्मके मालिक जैन जातिभूषण सेठ सुखलाल जैन सर्राफ मौजूद थे जो श्री अ० भा० श्री दि० जैन खरोआ सभाके सभापति थे। अपने जीवनमें उन्होंने एक लाख रुपयेका दान किया। श्री सोनगिरजीमें धर्मशाला बनवाई। वे अच्छे धनी मानी दानी व्यक्ति थे। आप अभी तक इसी फर्ममें काम रहे हैं। इस भीषण मँहगाईमें अच्छा वेतन मिलनेके कारण सन्तोषके साथ अपने कुटुम्बका निर्वाह कर रहे हैं।

ऐसे जीवनके मध्य आपने समाजकी जो सेवायें की उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

आपका साहित्यिक ज्ञान अगाध है। आपकी कविताएँ अत्यन्त सुमधुर हैं फिर भी आपने कमसे कम लिखकर अधिक से अधिक ख्याति प्राप्त की।

●

पं० भगवतीप्रसाद्जी बरैया

●

जन्म : आपका जन्म भाद्रपद शुक्ल पक्ष द्वादशी संवत् १९८४ में ग्वालियर जिलेके करहिया नामक ग्राममें हुआ। आप मध्यम श्रेणीके धनिक परिवारके व्यक्ति हैं। वर्तमान समयमें आप लश्करमें रह रहे हैं।

योग्यता : आपकी योग्यता शास्त्री तककी है। हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजीका अच्छा ज्ञान है। तीनो साहित्योंमें समान रुचि है। धार्मिक ग्रन्थोंका गहन अध्ययन करनेके कारण विशिष्ट ज्ञान है।

विशेष अध्ययन : आपने बाइबिलका पूरा कोर्स पास किया है। आपको ज्योतिषका भी अच्छा ज्ञान है। हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृतके अलावा गुजरातीका ज्ञान भी आपको बहुत अधिक है।

वर्तमान कार्य

यद्यपि कि प्रथम आपने कई एक व्यवसायोंमें हाथ डाला किन्तु असाफल्य एवं अरुचि होनेके कारण आपने उन सबका त्याग कर दिया। वर्तमान समयमें आप रेलवे कमीशन एजेन्ट हैं।

आपको धर्म एवं साहित्यमें अत्यधिक रुचि है। धर्म चर्चाओंमें आपकी बहुत अधिक रुचि है। आप दूर-दूर तक धार्मिक आयोजनोंमें प्रवचनार्थ जाया करते हैं। आपकी प्रवचन शैली सराहनीय है। लोगोंके हृदयमें धर्म प्रेमकी प्रखर भावनाको जागृत करनेका जैसा मूलमन्त्र आपकी वाणीमें मिलता है वैसा अन्यत्र बहुत कम।

आप उच्चकोटिके साहित्यकार भी हैं। सैकड़ों निबन्ध एवं अनगिनत गीत और कविताएँ आपकी साहित्य प्रसविनी लेखनीसे सृजित हुईं। जैन पत्र-पत्रिकाओंमें सदैव आपकी कृतियाँ प्रकाशित होती रहती हैं।

आप कर्मठ समाज सेवक भी हैं। आपके व्यक्तित्वमें धर्मप्रेम, समाजसेवा एवं साहित्य सृजनकी त्रिवेणी सदैवसे बहती आई है और आशा है कि उसकी धारा सदैव अक्षुण्ण रहेगी।

प्रो० भागचन्द्रजी जैन

●

आपका जन्म संवत् १९८९ के श्रावण मासमें उत्तर प्रदेशके जिला एटा ग्राम सरनऊमें हुआ। आपके पिता श्री सोनपालजी एवं माता श्रीमती लोंग श्री जी। ये दोनों ही धर्मानुरागी थे। जन्मके समय आपका परिवार तो सरनऊ ग्राममें कपड़ेका व्यापार करता था किन्तु पिताश्री मारवाड़ प्रान्तमें धर्माध्यापक थे। परिवार व्यवसाय एवं प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे उन्नत था। जीवन सुखमय था किन्तु वह सुख क्षणिक ही रहा क्योंकि तीन वर्षकी अवस्थामें पूज्य पिता एवं दादाजीका स्वर्गारोहण हो गया। यद्यपि उस समय आप अबोध अवस्थामें थे इसलिए पितृ वियोगका दुख आपको उस समय तो नही अनुभव हुआ किन्तु इसके पश्चात् जीवनमें उस वियोगकी गहरी दरार पड़े बिना नही रह सकी।

इतना ही नही, जब आप छः वर्षके थे तभी आपकी माताजी भी कराल कालके विशाल गालमें समाहित हो गयी। पालन-पोषणका दायित्व दादीके ऊपर आया किन्तु दुर्दैवसे वह भी न देखा गया और हुआ यह कि नौ वर्षकी अवस्था होते-होते वे भी आपको छोडकर परलोक सिधार गयी। फलतः ग्रामके मकानका पूर्णरूपेण ताला बन्द हो गया। पूज्य पिता एवं दादाजीके स्वर्गवासके बाद आर्थिक स्थिति डावाँडोल हो गयी।

लालन-पालनका सम्पूर्ण दायित्व सम्हालनेवाली ममतामयी दादीजीके स्वर्गारोहणके उपरान्त आपके पूज्य चाचाजीने आपको शिक्षार्जन हेतु मोरेना भेजा। ग्रीष्मावकाशमें आप दिल्ली आ-जाया करते थे। वहाँ आपकी दादीजीकी छोटी बहन राजमतीजी रहती थी। वे बाल-विधवा थी। आरम्भमें तो उनसे आपकी अनबन-सी रहती थी। किन्तु बादमे उनके हृदयमें ममताका अंकुरण हुआ और आपको उन्होंने पुत्रवत् स्नेह प्रदान किया। आप उन्हें अम्मा कहा करते थे। उनके संरक्षणमें आपको अपार सुख मिला। किन्तु यह सुख भी आपका साथ न दे सका। १० अगस्त १९७० की रात्रिके मध्य आपकी संरक्षिका अम्माजीका भी स्वर्गवास हो गया। यह घटना आपके लिए अत्यन्त हृदयविदारक सिद्ध हुई।

आपने शास्त्री, साहित्यरत्न एवं न्यायतीर्थकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। आप सन् १९५८ से सेंट्रल बैंक आफ इण्डिया चाँदनी चौक दिल्लीमें खजान्चीके रूपमें कार्य कर रहे हैं। आपका परिवार अत्यन्त सभ्य एव धर्मानुरागी है। धर्मपत्नी श्रीमती प्रभादेवी जैन बहुत अधिक लिखी-पढ़ी तो नहीं है किन्तु उनके आचरण एवं बोलचाल रहन-सहन आदि बातोंको देखनेसे यही आभास होता है कि वे एक विदुषी महिला ही है। और सच्चाई भी यही है। उनके पास सार्टीफिकेट्स तो अवश्य नहीं है किन्तु उनका ज्ञान विस्तृत है।

सन् १९४७-४८ से आपने कुछ-कुछ लेखादि लिखनेका अभ्यास किया और धार्मिक तथा सामाजिक लेखोंका लेखन-कार्य किया भी। पद्मावती पुरवाल दि० जैन संस्थाके कार्यकर्त्ताके रूपमें धार्मिक एवं सामाजिक उन्नतिमें आपका योगदान सराहनीय रहा।

जैन विद्वत् समिति दिल्लीके सदस्य होनेके नाते धार्मिक आयोजनोंमें भाग लेकर आपने धर्मकी प्रभावनामें अत्यधिक योगदान किया। आपने साहित्यकी भी खूब उन्नति की। जैन पत्र-पत्रिकाओंमें सदा ही आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। आप जैन समाजके सच्चे कर्मठ प्रतिनिधि हैं। ●

पं० माणिकचन्द्रजी न्यायाचार्य

पूज्य पंडित माणिकचन्द्रजी उन शीर्षस्थ विद्वानोंमेंसे एक थे जिनका जीवन, धर्म और संस्कृतिके लिए पूरी तरहसे समर्पित था। जिन्होंने चौदह वर्ष घोर परिश्रम करके डेढ़ लाख श्लोक प्रमाण नितान्त कठिन 'श्लोकवार्तिक' का हिन्दी भाष्य लिखकर अपनी उत्कृष्ट विद्वत्ताका प्रमाण दिया। इतना ही नहीं आपने इसके आदि और अन्तमें बड़े क्लिष्ट शब्दों द्वारा गम्भीर साहित्यके पचासों संस्कृत छन्दोंका निर्माण कर ग्रन्थके संक्षिप्त प्रमेयोंको दर्शाया है। श्री विद्यानन्द आचार्यकृत मूल अठारह हजार श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थकी किसीने इसके पूर्व टीका नहीं की थी।

आपका जन्म चावली जिला आगरा (उ० प्र०) में वि० सं० १९४३ माघ शुक्ला पचमीको ला० हेतसिंहजी वैद्यके घर माँ श्रीमती झल्लाबाईकी कोखसे हुआ था।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें अपने ग्रामसे चौरासी मथुरा विद्यालयमें अध्ययनार्थ गये और वहाँसे बनारस प्रथमा उत्तीर्ण कर जयपुर महापाठशालासे न्यायोपाध्याय एवं साहित्य परीक्षा दी। संवत् १९६४-६६ तक स्याद्वाद महाविद्यालय बनारससे मध्यमा, आचार्य एवं न्यायाचार्यकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। पुनः जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेनामें जैन सिद्धान्तका गहन अध्ययन कर गोम्मटसार, त्रिलोकसार और पंचाध्यायी आदिका मंथन किया।

आर्थिक उपार्जन हेतु आपने अध्यापनके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं अपनाया। विक्रम संवत् १९५८ से सं० २०१८ तक लगभग ६० वर्ष तक आपने गोपाल सिद्धान्त विद्यालय मुरैना, जम्बू विद्यालय सहारनपुर (२४ वर्ष प्रधानाध्यापक) तथा पन्नालाल दिगम्बर जैन कॉलेज फिरोजाबादमें धर्माध्यापक पदपर कार्य किया। आपने उक्त दोनों मुरैना और सहारनपुर विद्यालयमें ४०० प्रौढ जैन विद्वान् तैयार किये। 'विद्या दानेन वर्द्धते' की नीतिमें आस्था रखनेवाले श्रद्धेय पंडितजीने अपने छात्रोंको बड़े श्रम एवं निष्ठापूर्वक जैन सिद्धान्तके ऊँचे-ऊँचे ग्रन्थोंका ज्ञान दिया।

प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें एक करवटसे सोकर उठना और एक मील तक जाकर भ्रमण करना अपनी वार्धक्य अवस्थामें भी नियमित रखा। घूमते हुए संस्कृत स्तोतोका मनन करते जाना आपका स्वभाव बन गया था। घूमकर लौटकर आनेपर जाप्य, सामायिक एवं ध्यान करना नित्य कर्म था। पुरुषार्थपूर्वक इन्द्रिय-दमन, आत्मरमण, कषायविग्रह एवं शुभ भावनायें भाना आपके दैहिक तपमें समग्रीभूत था।

जिनदर्शन एवं पूजनके अनुरागी, मुनियोंमें अतिशय भक्ति रखनेवाले, दूसरे प्राणियोंके उपकारकी वाँछा लिए आप दूसरी प्रतिमाके धारी एक चारित्रशील व्यक्तित्व थे।

आपने 'धर्मफल सिद्धान्त', 'षटद्रव्योंकी आकृतियाँ', जैन शासन रहस्य, दर्शन दिग्दर्शन आदि पुस्तकें भी लिखी हैं।

आपने छात्रोंको ही नहीं कतिपय मुनियों और गृस्थोंको भी पढ़ाया है। आजके अनेक प्रसिद्ध विद्वान् आपके ही शिष्य हैं।

आपने काशीमें वैष्णव विद्वानोंके साथ संस्कृत भाषामें होनेवाले शास्त्रार्थोंमें भाग लेकर जैन धर्मकी प्रभावना की। दिल्ली, भिवानी, अजमेर, भौगाँव आदि जगहोंपर आर्य-समाजियोंके साथ शास्त्रार्थकर जिनशासनका महत्त्व प्रगट किया। दिल्ली, अजमेर, सुजानगढ, बम्बई, जबलपुर आदि नगरोंमें दशलक्षण पर्वके अवसर पर अपने प्रभावी शास्त्र प्रवचन द्वारा लाखों जैन बन्धुओंको जैन प्रमेयोंका ज्ञान कराया। जिसके फलस्वरूप आपको न्यायभूषण, न्याय दिवाकर, तर्क-शिरोमणि, प्रवचन-चक्रवर्ती, न्यायरत्न आदि सम्मानित पदवियाँ प्राप्त हुईं।

आपका, मई १९६८ में फिरोजाबादके जैन मेलेके अवसर पर एक सार्वजनिक भव्य अभिनन्दन हुआ था जो आपके प्रखर बौद्धिक और विद्वत्तापूर्ण व्यक्तित्वका ही प्रतीक था।

आप जयपुर, बनारस और कलकत्ता आदि विश्वविद्यालयकी शास्त्रीय, आचार्य एवं दर्शनाचार्य आदि परीक्षाओंके परीक्षक रहे।

जिनशासनकी प्रभावना आपके जीवनका मुख्य लक्ष्य रहा। आपने निश्चय और व्यवहार नयोंको पकड़कर श्रुत प्रमाणको सर्वोच्च स्वीकारता दी और आपका कहना रहा कि एकान्तका कदाग्रह अभीष्ट नहीं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यके सभी ग्रन्थोंपर अटल श्रद्धान रहा।

जैन सिद्धान्त सम्बन्धी आपके सैकड़ों लेख प्रकाशित हुए।

●

स्व० डा० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य

●

डा० मंगलदेव शास्त्री जैसे संस्कृतके उद्भट विद्वान् और विख्यात शोधशास्त्रीने स्व० श्री महेन्द्रकुमारजीके विषयमें 'न्याय-कुमुदचन्द्र'में आदिकथन शीर्षकमें कहा है कि "जैन दर्शनके साहित्यका सम्पादन प्रारम्भ हो गया है। इसका सर्वप्रथम श्रेय प० महेन्द्रकुमारजीको है। पंडितजीकी सम्पादन कलाका सबको अनुकरण करना चाहिये। इसी प्रकार पं० सुखलाल संघवी, तत्कालीन दर्शनाध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ने न्याय-कुमुदचन्द्रके प्राक्कथनमें आपके विषयमें लिखा है. "मैं प० जी की प्रस्तुत गवेषणापूर्ण और असाधारण कृतिका अभिनन्दन करता हूँ। विद्वान् लोग तो पं० जीकी कृतियोंका उदार भावसे अध्ययन करके अभिनन्दन कर सकते हैं। श्रीमान् लोग भी पंडित जीकी साहित्य प्रवण शक्तियोंका अपने साहित्योत्कर्ष एवं भंडारोद्धार आदि कार्योंमें विनियोग कराकर अभिनन्दन कर सकते हैं।"

यह विचार आपके द्वारा सम्पादित प्रारम्भिक ग्रन्थों पर प्रगट किये गये है। समयके साथ आपकी लेखनीमें प्रौढ़ता बढती गई और आपने जैन ग्रन्थोंकी सम्पादन कलाका विकास किया जो एक आदर्श बन गयी थी और भारतके सभी दिग्गज विद्वान् आपकी लेखनीका लोहा मानने लगे थे।

आपका जन्म खुरई जिला सागर (म० प्र०) में सन् १९११ में श्री जवाहरलालजी जैनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुंदरबाईकी कोखसे हुआ था। आप तीन भाई और दो बहिन थे। सुगठित शरीर और पूर्ण स्वस्थताके कारण तत्कालीन विद्वानोंमें आपका विशेष प्रभावशाली व्यक्तित्व था। आपका अध्ययन बीना पाठशाला तथा सर हुकमचन्द महाविद्यालय इन्दौरमें सम्पन्न हुआ था।

आप प्रारम्भसे ही प्रतिभाके धनी थे। शास्त्री और न्यायाचार्यकी परीक्षायें उत्तीर्ण करनेके बाद सन् १९३० में आप स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीमे दर्शनशास्त्रके शिक्षक नियुक्त हुए। वहाँ आपने १३ वर्ष तक अध्यापन कार्य किया। इस अवधिमें आपने विद्यालयमें दर्शनशास्त्रके स्तरको ऊँचा उठानेके साथ विद्यालयके अकलंक सरस्वती भवनकी अभिवृद्धिपर पूर्ण ध्यान दिया। आपका विचार इसे ऐसा आदर्श सरस्वती-भवन बनानेका था जिसमें बैठकर शोधकार्य भलीभाँति सम्पन्न किया जा सके। आज उसमें संस्कृत, पाली और प्राकृतके अलभ्य ग्रन्थ विद्यमान हैं।

आपका ज्ञानार्जन, दर्शनशास्त्रका गम्भीर अध्ययन और ग्रंथ सम्पादन नियमित कार्यक्रमके रूपमें होता रहता था।

सन् १९४४ में देशकी सुप्रतिष्ठित साहित्यिक संस्था 'भारतीय ज्ञानपीठ' की स्थापना होनेपर उसमें आपकी नियुक्ति हुई। आपने ज्ञानपीठके कार्यको उन्नत बनानेके लिए बहुत परिश्रम किया तथा भलीभाँति सम्हाला। उस माध्यमसे आपके समयमें अनेक जैन ग्रन्थोंका सुन्दर प्रकाशन हुआ। साथ ही आपने ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित 'ज्ञानोदय' मासिक पत्रका सम्पादन भी किया।

आप सन् १९५० के लगभग हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीमें 'बौद्ध दर्शन' के प्राध्यापक नियुक्त हुए। वहाँ रहकर आपने बड़ा सम्मान प्राप्त किया। वाराणसीमें १९५९ में संस्कृत विश्वविद्यालय बननेपर वहाँ 'जैनदर्शन' के लिए आपकी नियुक्ति की गई। पर इसी बीच २० मई १९५९ को अचानक मस्तिष्कके आघातके कारण मात्र ४८ वर्षकी आयुमें आपका स्वर्गवास हो गया। आपके निधनसे विद्वत् समाजमें सर्वत्र शोक छा गया। आपकी गणना बीसवी शताब्दीके विशिष्ट विद्वानों और साहित्यकारोंमे होने लगी थी।

आपकी विद्वत्ताका पता आपके द्वारा सम्पादित ग्रंथोंके अवलोकनसे भलीभाँति लगता है। आपने न्यायकुमुदचन्द्र (२ भाग), प्रमाण मीमांसा, अकलंक ग्रंथत्रयी, प्रमेयकमलमार्तण्ड, जयधवला आदि उच्च-कोटिके ग्रन्थोंका बहुत ही योग्यतापूर्वक सम्पादन किया है। आपके द्वारा लिखित "जैन दर्शन" ग्रंथ वस्तुतः एक अमर कृति है। उत्तर प्रदेश सरकारने दर्शन शास्त्रकी श्रेष्ठ कृतिके रूपमें पुरस्कृत किया था। आप न्याय और दर्शन शास्त्रके विशिष्ट और अधिकारी विद्वान् थे। आपके द्वारा सम्पादित 'सिद्धिविनिश्चय विवरण' ग्रंथपर हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीने आपको 'डाक्टरेट' प्रदान कर सम्मानित किया था।

जैन साहित्य और समाजके आप गौरव थे। यदि आप थोड़े समय जीवित और रहते तो जैन साहित्यको और भी अनोखी भेंट दे जाते। आपके दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र श्री पद्मकुमार जैन बिहारमे तथा दूसरे पुत्र अरविन्द कुमार जैन बम्बईमें इन्जीनियर हैं।

●

वयोवृद्ध पं० मूलचन्द किसनदास कापड़िया

९० वर्षीय वयोवृद्ध पं० श्री मूलचन्द किसनदासजी कापड़िया उन व्यक्तियोंमेंसे हैं जिन्होंने पूरे एक शताब्दीके जैन इतिहासका उथल-पुथल देखा और आज भी अडिग और अपनी चिरन्तन भावनामय कर्त्तव्यों में आरूढ़ होकर समाजको नेतृत्व प्रदान कर रहे हैं।

आपके पिता श्री किसनदासजी कपड़ेके अच्छे व्यापारी थे और इसीसे आप 'कापड़िया' उपसंज्ञासे आभूषित हुए। आपका जन्म बीसाहुमड़ जाति मंत्रेश्वर गोत्रमें वि० सं० १९३९ सन् १८८३ में माँ हीरा कौरकी कोखसे हुआ था।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुजराती स्कूलमें और अँग्रेजी शिक्षा मिशन हाईस्कूलमें हुई। आप एक मेधावी छात्र रहे और अपने अध्ययनकालमें स्कालरशिप प्राप्त करते रहे।

स्व० दानवीर सेठ माणिकचन्द हीराचन्द जौहरी बम्बईकी प्रेरणासे आपने १५ वर्षकी अवस्थासे नित्य स्वाध्याय करनेकी प्रतिज्ञा ले ली थी। उसीका प्रभाव है कि आप धार्मिक और साहित्य क्षेत्रमें इतनी सेवा कर सके।

ज्येष्ठ भ्राता श्री मगनलालजीका स्वर्गवास हो जानेसे आपको पिताजीके साथ कपड़ेकी दुकानपर सहयोग देना पड़ा। आपने दुकानसे बचे अतिरिक्त समयको पूरे सदुपयोगमें बिताने हेतु 'दिगम्बर जैन' गुजराती मासिक पत्रको प्रारम्भ किया जिसको अब ६५ वर्ष प्रकाशित होते हो चुके हैं तथा हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओंमें निकलता है।

बम्बईमें दानवीर सेठ माणिकचन्दजीने दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभाकी स्थापना की थी, उसकी ओरसे 'जैनमित्र' नामक मासिक हिन्दी पत्र स्वनामधन्य स्याद्वाद वारिधि पं० गोपालदासजी बरैयाके सम्पादकत्वमें प्रारम्भ हुआ था। श्री कापड़ियाजी इस पत्रसे बड़े प्रभावित हुए और इसे पढ़नेके लिए हिन्दी भाषाका परिज्ञान प्राप्त किया। जब श्री कापड़ियाजीने सूरतमे अपना 'जैन विजय प्रेस' निकाला और बंबई दि० जैन प्रान्तिक सभाकी मैनेजिंग कमेटीमें गजपन्थाके अधिवेशनमें जाकर प्रस्ताव रखा कि जैनमित्रको साप्ताहिक किया जाय और इसे सूरतसे ही प्रकाशित करवाया जाय जहाँ आप स्वयं ऑनरेरी प्रकाशककी हैसियतसे कार्य करेंगे। आपका प्रस्ताव सहर्ष पास किया गया और फिर जैनमित्र १८वें वर्षसे साप्ताहिक रूपसे प्रगट होकर ७३ वें वर्षमें चल रहा है। श्री पं० गोपालदासजी बरैयाके बाद जैनधर्म भूषण ब्र० पं० शीतलप्रसाद जी ३५ वर्ष तक इसके सम्पादक रहे। उसके बाद श्री कापड़ियाजी ही ऑनरेरी प्रकाशक और सम्पादक हैं और आपने जैनमित्रको इतना बढ़ाया कि भारतके कोने-कोनेमें इसके पाठक हो गये। यह अपने समयका प्रमुख साप्ताहिक रहा जबकि इतर जैनपत्रोंकी संख्या बहुत कम थी। इस पत्रकी एक प्रमुख विशेषता यह भी है कि प्रतिवर्ष अपने ग्राहकोंको उपहार ग्रन्थ भेंटस्वरूप प्रदान करता है।

'दिगम्बर जैन' मासिकके साथ ही श्री कापड़ियाजीने दिगम्बर जैन पुस्तकालयकी स्थापना की जिसको आज लगभग ६५ वर्ष हो गये हैं। जिसके द्वारा आज तक लगभग १५० हिन्दी और ५० गुजराती ग्रंथ एवं पुस्तकें प्रगट हो चुकी है। जैन समाजका यह सर्वप्रिय 'जैन पुस्तकालय' है।

आजसे ५० वर्ष पहले स्त्री जातिका भविष्य बड़ा अन्धकारमय था। अशिक्षा, बाल-विवाह, विधवाओंका तिरस्कृत जीवन, उनकी परतन्त्रता आदि ऐसी कुरीतियाँ पल रही थी जो स्त्री समाजके लिए अभिशाप बनी बैठी थी। इन परिस्थितियोंसे संघर्षकर श्री कापड़ियाजीने 'महिलादर्श' मासिक पत्रिकाका प्रका-

सन सूरतसे प्रारम्भ किया, जिसकी संस्थापिका एवं संचालिका माननीय विदुषी पं० चन्दाबाईजी बालाश्रम आरा हैं और जो बराबर पचास वर्षसे प्रकाशित होता आ रहा है। स्त्री समाजके उत्थानमें पत्रका एक बड़ा हाथ रहा जिसका श्रेय श्री कापड़ियाजीको ही है।

पारिवारिक जीवन

आपके कनिष्ठ भाई ईश्वरलाल कापड़िया (आयु ८५ वर्ष) बम्बईमे मखमलका व्यापार करते हैं। श्री कापड़ियाजीकी द्वितीय पत्नी श्रीमती सवितावाईसे एक पुत्र बाबूभाई एवं एक पुत्री दमयन्ती हुए। पुत्र बाबूभाई सोलह वर्षकी अल्पायुमें टायफाइडसे स्वर्गवासी हो गये परन्तु पुत्री अब भी सब प्रकारसे सुख सम्पन्न हैं। दूसरी पत्नीकी भी मृत्यु २३ वर्षकी अवस्थामें हो जानेसे आपके जीवनमें एक बडी वियोगपूर्ण दशा आयी और आगेका कार्यभार कौन सम्हालेगा यह सोचकर आपने अपने ही जातिके ईडर निवासी डाह्याभाई (जो उस समय अहमदाबादमें मैट्रिक पढ़ाते थे) को दत्तक-पुत्र के रूपमे स्वीकार कर लिया। तभी से आज २७ वर्ष हो गये सम्पूर्ण कार्य श्री डाह्याभाई सम्हाले हुए हैं।

श्री डाह्याभाईके भी दो पुत्र और दो पुत्रियां है। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सौ० चन्द्रकला एक सेवापरायण महिला हैं।

सामाजिक सेवायें

श्री कापडियाजीने अपने स्व० पुत्र बाबूभाईकी स्मृतिमे १५ हजार रुपयासे बी० एम० एण्ड आई० के० कापडिया दि० जैन बोर्डिग, कॉलिजके विद्यार्थियोंके लिए खोली जो आज २८ वर्षसे बराबर चालू है तथा अपने भाई श्री ईश्वरलालके विशेष सहयोगसे जिसका एक लाखका भवन हो गया है। अपने पुत्र बाबूभाई, पिता श्री किसनदास तथा पत्नी सवितावाईके नामसे तीन ग्रंथमालाये भी चल रही है जिनसे उपहार ग्रंथ प्रगट होते रहते है।

आज कापड़ियाजी ९०-९१ वर्षके हो रहे है परन्तु सुबहसे शाम तक कार्यरत रहते है। आपका श्रम आपके स्वास्थ्यको बनाये है। लगभग ६५-७० वर्षसे समाज सेवामें निमग्न यह तपस्वी धर्म व जैन संस्कृति ही की अपार सेवा कर रहा है। आप जैसे कर्मठ और लगनशील व्यक्ति विरले ही है।

●

स्व० पं० मिलापचन्दजी कटारिया

●

राजस्थानके केकडी निवासी स्व० श्री मिलापचन्दजी कटारियाका नाम पण्डित-जगत्में काफी प्रख्यात है। शुद्ध धार्मिक वृत्तिके, सदाचारी, आर्षमार्गानुयायी और खरे समालोचक कटारियाजी जैसे व्यक्ति मिलना दुर्लभ है। वे खोजी विद्वान् थे। और निर्भीकता पूर्वक अपने मन्तव्यको प्रकट करते थे। अहंकार उन्हे छू तक नही गया था। मूक कार्यकर्ता, सेवाभावी और सात्विक वृत्तिके एक विद्वान् थे।

आपका जन्म सं० १९५७ में केकडी जिला अजमेर (राज०) में हुआ। आपके पिताजी श्री नेमीचन्दजी कटारिया मध्यम आर्थिक स्थितिके व्यक्ति थे। आपने साधारण शिक्षाके साथ-साथ धार्मिक ज्ञान भी प्राप्त किया और

करीब पन्द्रह वर्षकी अवस्थासे शास्त्र-स्वाध्याय और प्रवचनकी अभिरुचि हो गयी थी। और ५५ वर्ष तक आप निरन्तर शास्त्र सभा करते रहे। जिससे स्वयं तो ज्ञानार्जन किया ही अपितु केकड़ीके लोगोंको जिन-वाणीका ज्ञानामृत भी पिलाया।

साहित्यिक सेवायें

आपकी पहली रचना 'रात्रि भोजन' दिगम्बर जैनमें प्रकाशित हुई थी। और अंतिम रचना 'तीर्थंकरोंके वंश' अप्रैल ७१ मे प्रकाशित हुई थी। इसके अलावा आपने १०० लेख लिखे जो 'जैन निबन्ध रत्नावली' में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। दूसरा भाग भी ज्ञानपीठसे प्रकाशाधीन है।

सामाजिक कार्यकर्ताके रूपमे

पडितजी, केकड़ीकी 'दिगम्बर जैन संस्था' जिसके अन्तर्गत औषधालय, विद्यालय, सरस्वती भवन और वाचनालय चलते हैं—के लगातार चालीस वर्ष तक मंत्री रहे और संस्थाकी उन्नतिमे पूर्ण सहयोग दिया। आपने जीवनमें अनेक मण्डल विधान, बेदी प्रतिष्ठायें एवं बिम्ब प्रतिष्ठायें करवाईं परन्तु उनमें आर्ष मार्ग, विधिपूर्वक क्रियाका पूर्ण ध्यान रखा। अपने प्रान्तमें आपने हजारों विवाह जैन पद्धतिसे कराये और इसका प्रचलन किया।

पंडितजीको संगीतका बडा शौक था। आपकी विद्वत्ता निर्भीकता और समाज सेवाके कारण केकडी समाजकी ओरसे स० २०२४ में 'विद्याभूषण'की उपाधि प्राप्त हुई थी। यदाकदा श्रद्धेय पं० स्व० चैनसुख-दासजी न्यायतीर्थसे धार्मिक चर्चायें एवं गम्भीर प्रसंगोंपर वार्तालाप हुआ करते थे।

आपकी सदैव यह भावना रही कि लुप्त या अज्ञात जैन-इतिहासको प्रकाशमें लाया जाय।

आपका निधन वैशाख शुक्ल १० सं० २०२८ को हो गया था।

●

वाणीभूषण पं० मुन्नालालजी समगौरया

●

पडित समगौरयाजीके नामसे प्रसिद्ध, प्रतिष्ठा कार्योंमें निपुण आपका जीवन धर्म और समाजकी सेवामें बीता है। आपका जन्म पूज्य वर्णीजीकी जन्मभूमि मडावरा जिला झांसी (उ० प्र०) में संवत् १९६५ में हुआ था। आपके पिता श्री मूलचन्दजी एक साधारण परन्तु प्रतिष्ठित व्यक्ति थे जिन्हे कविता करनेका शौक था तथा हजारों भजन एवं लावनी कण्ठस्थ थी। आपने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा मड़ावरा एवं साढूमल पाठशालामें ग्रहणकर हुकमचन्द्र महाविद्यालय इन्दौरसे वैद्यविशारद एवं वैद्य-शिरोमणिकी परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपने शिक्षक, गृह प्रबन्धक एवं प्रचारकके रूपमें भोपाल, मोरेना, बाँदीकुई, कन्नड, देहली एवं सागरमें अपनी सेवायें दी। सर्विस करते हुए आपने लगभग २० पचकल्याणक प्रतिष्ठायें, २२ वेदी प्रतिष्ठायें, २४ सिद्धचक्र आदि शान्ति विधान देशके विभिन्न प्रान्तोंमें सम्पन्न करवाये।

आप एक अच्छे प्रभावक एवं धारावाहक कुशल वक्ता हैं एवं आपकी वक्तृत्व कलामें एक विशेष आकर्षण है। आपके इसी गुणसे प्रभावित होकर अनेक स्थानोंकी जैन-समाज जैसे—हैदराबाद, कन्नड़, सागर, कानपुर, आसाम, मुजफ्फरनगर, महू (छावनी) आदि बीसों जगहोंसे अभिनन्दन पत्र, ग्वालियर जैनसमाजसे

'व्याख्यान वाचस्पति' जैनसमाज हृतनूरसे 'वाणीभूषण' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इसके अलावा गणेश महाविद्यालय सागरसे आपको ५०० रु० का नगद पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था।

अपनी सर्विसके साथ-साथ आपने व्यापारिक क्षेत्र भी अपनाया और कन्नड़में जहाँ आपने किरानेकी दुकान की वहाँ भोपालमें जनरल स्टोर्स एवं मकानोंकी दलालीका व्यवसाय किया। वर्तमानमें सागरमें किराना एवं गल्लेका व्यापार करते हैं।

साहित्यिक अभिरुचियाँ

बोलने और लिखनेकी कला आपमें विद्यार्थी अवस्थासे प्रारम्भ हो चुकी थी। अभी तक आपने गद्य, पद्य और नाटक आदिमें लगभग एक दर्जन पुस्तकें लिखी हैं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं—भक्ति प्रवाह या अपूर्व दर्शन (पद्य), सामाजिक अत्याचारोंका दुष्परिणाम (गद्य), सती पुष्पलता (गद्य), समगोरया भजनावली (२ भाग), सद्विचार रत्नावली, दशधर्म, कर्मचरित्र, विधवा विलाप (पद्य), दम्पत्ति कर्त्तव्य, अष्टाह्निका आरती एवं भारतके सपूत (नाटक)। आपने 'ज्ञान ज्योति' पत्रिकाका सम्पादन भी किया है।

सामाजिक कार्य एवं सेवायें

कन्नड़में बलि हिंसा, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, कन्या विक्रय, मरणभोज आदि कुरीतियोके निवारणार्थ एक संगठित नवयुवक मण्डल बनाया जिसके माध्यमसे समाजमें जागृति एव चेतना उत्पन्न की। एक अनमेल विवाह रोकने और उसके सम्बन्धमें एक जैन गजटमें लेख प्रकाशित करनेके फलस्वरूप आपपर कोपर गाँव कोर्टमें ८ माह तक मुकदमा चलाया गया जिसमें आपकी ही विजय हुई थी। आपने अभी तक करीब ३०० आदर्श विवाह सम्पन्न करवाये हैं। आप कई सस्थाओंके सम्माननीय सदस्य एवं अनेक ट्रस्टके ट्रस्टी हैं। आपका पारिवारिक जीवन पूर्ण सुखी है। आपकी आर्थिक स्थिति सुदृढ है। आपको ५ सुपुत्रियो और २ सुपुत्रोंका सौभाग्य प्राप्त है। आप चार भाइयोंमें तीसरे स्थानके भाई थे। आपका बडा पुत्र श्री विजयकुमार जैन उच्च शिक्षा प्राप्त (एम० एस-सी०) है। सभी पुत्रियाँ ऊँचे खानदानमें ब्याही हैं।

आपका सादा जीवन अब भी धर्मकी सेवामें निरत है।

●

स्व० पं० मुन्नालालजी 'मणि'

●

पिता : श्री खुन्नीलाल—सामान्य परिस्थिति परन्तु स्वाभिमानी।

जन्मस्थान एवं तिथि . महरौना (झाँसी) उ० प्र० कार्तिक वदी ३० सं० १८७५।

शिक्षा : प्रारम्भिक मिडिल तक महरौनीमें तथा इन्दौर विद्यालयके प्रथम छात्रके रूपमे विशारद एवं शास्त्री तक अध्ययन।

उपसम्बन्धी : पं० श्री वंशीधरजी न्यायालंकार इन्दौर वाले पंडितजीके मामा हैं।

सामाजिक सेवायें : पंडितजी अपने समयके ख्याति प्राप्त विद्वान् थे। आपने बाकल (जबलपुर) में एक जैन पाठशाला, कोहामें 'जैन औषधालय' अशोकनगरमें 'अक्षयधर्म निधि' तथा दुर्गमें ३० हजार रुपयेके ध्रौव्यफण्डको करके एक जैन पाठशालाकी स्थापना कर जैन सामजमें जैनधर्म शिक्षणके लिए बड़ा प्रयत्न किया।

साहित्य क्षेत्रमें : आप अपनी १५ वर्षकी अवस्थासे कविता लिखने लगे थे। आपकी १ हजार पृष्ठकी 'मणि प्रकाश' एवं अप्रकाशित ग्रन्थ आपकी पत्नी श्रीमती तुलसाबाई द्वारा खो गयी थी तथा दो छोटी पुस्तिकायें 'मणि परख' एवं 'सद्धर्मशतक' भी अप्रकाशित सुरक्षित है।

आपको अपनी विद्वत्ता एवं धर्म प्रवचनकी कुशलताके फलस्वरूप अनेक जगहसे अभिनन्दनपत्र एवं सम्मान, स्वर्णपदक आदि प्राप्त हुए थे। राजनांदगाँव, दुग, देहली, वर्धा, अशोकनगर, कोटा, नसीराबाद, मेरठ आदि स्थानोंसे इस प्रकारके सम्मान प्राप्त हुए।

आपके स्वयंका जीवन धार्मिक कट्टरता पूर्ण एवं नैतिक था। स्वतंत्र व्यवसायके रूपमें आप कपड़ेकी दुकान करते थे। आप साढूमल पाठशाला (जो बहुत प्राचीन है तथा जिससे अनेक विद्वान् तैयार हुए) के २५ वर्ष तक मंत्री रहे।

आपका स्वर्गारोहण आषाढ़ वदी ६ सं० १९११ को हो गया।

●

डा० मोहनलालजी मेहता

●

डा० मेहता, जिन्होंने जैन संस्कृति और जैन-दर्शनके उन्नयन और अभिवर्द्धन हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया। पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसीके डायरेक्टर डा० मेहता एक उच्चकोटिके विद्वान् एवं सशक्त साहित्यकार हैं जिन्होने कई बहुमूल्य पुस्तकें लिखकर अपनी विशिष्ट प्रतिभाका उदाहरण प्रस्तुत किया।

आपका जन्म कानोड जिला उदयपुर (राजस्थान) में ९ अप्रैल १९२८ को स्थानकवासी जैन आम्नाय में माँ श्रीमती मोहिनीबाईके गर्भसे हुआ था। आपके पिताका नाम श्री किशनलाल था। आपने १९५३ में पार्श्वनाथ विद्याश्रम (हिन्दू यूनिवर्सिटी) वाराणसीसे शास्त्राचार्य (जैन दर्शन) तथा क्रमश. १९५२ और ५३ में फिलोसफी और साइकोलोजी विषयोमे एम० ए० उत्तीर्णकर १९५५ में डा० चन्द्रधर शर्माके अधीनस्थ फिलोसफीमें पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की।

साहित्य क्षेत्रमें अमूल्य सेवायें

एक विशिष्ट प्रतिभाके धनी, विषयके प्रति गम्भीर चिन्तन लिये हुए आपने जैन दर्शन सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी जिसमें 'जैन-दर्शन' पुस्तकपर राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा क्रमशः एक हजार रुपया एवं स्वर्णपदक और पाँच सौ रुपयेकी नगद धनराशि प्राप्त हुई थी। आपकी कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकें निम्नलिखित हैं—

1. Out line of Jain Philosophy. 2. Out line of Karma in Jainism. 3. Jaina Culture. 4. जैन दर्शन। 5. जैन आचार। 6. Jain Psychology. 7. प्राकृत और उसका इतिहास। 8. जैन साहित्यका बृहद् इतिहास (भाग २, भाग ३, भाग ४) जो करीब १५०० पृष्ठोंमें है। आप पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसीसे निकलने वाले 'श्रमण' मासिकके १९६४ से सम्पादक भी हैं।

अन्य सेवायें

शासकीय सेवाके रूपमें आपने १९५६-६१ तक राजस्थान सरकार (शिक्षा विभाग) में द्वितीय श्रेणीके अधिकारीके रूपमें लेक्चरर एवं कौंसलरके पदपर कार्य किया। बादमें १९६१-६४ तक ला० द० भारतीय विद्यामन्दिर अहमदाबाद (गुजरात विश्वविद्यालयसे सम्बद्ध) में डिप्टी डाइरेक्टरके पदपर कार्य किया। बादमें १९६४ से आप पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थानके डाइरेक्टरके पदपर आसीनस्थ होकर कार्य कर रहे हैं।

आपका विवाह श्री सुजानमल मेहर सरवानिया (नीमच) म० प्र० की सुपुत्री श्रीमती मनोरमा मेहताके साथ १९५० में सम्पन्न हुआ था।

●

पं० मोहनलालजी शास्त्री काव्यतीर्थ

●

जन्म स्थान एवं जन्म तिथि

बरायठा (सागर) मध्य प्रदेश। सन् १९१४।

योग्यता

व्याकरण शास्त्री एवं काव्यतीर्थ (संस्कृत विश्वविद्यालय बनारस) एवं साहित्य शास्त्री (सोलापुर परीक्षा बोर्ड)।

विशेषाध्ययन : आयुर्वेद एवं प्रतिष्ठा कार्य।

धार्मिक सेवा

लगभग ७० जैन ग्रन्थोंका सम्पादन एवं प्रकाशन किया। प्रमुख जैन ग्रन्थ विक्रेताके रूपमें आप प्रसिद्ध हैं।

प्रमुख ग्रन्थ

श्रावक नित्य क्रिया-कलाप, मुनि नित्य क्रिया-कलाप, सन्त वर्णी, नीतिरत्नाकर सभी प्रचलित जैन कथाओंका सम्पादन, जैन गुटका एवं पाठ-संग्रहका प्रकाशन एवं सम्पादन किया।

समाज सेवा

पपौरा विद्यालय, किशनगढ़ विद्यालय, सिवनी, खण्डवा, कुण्डलपुर, द्रोणगिरि, जैन गुरुकुल मलहरा, शिक्षा सदन जबलपुरमें प्रधानाध्यापकके पदपर लगभग ३२ वर्ष रहकर आपने धार्मिक शिक्षण और प्रतिष्ठाका कार्य किया। आपने गोलापूर्व जैन डायरेक्टरीका भी सम्पादन किया है। जैन विवाह पद्धतिपर कई पुस्तिकायें लिखी है। दहेजप्रथाके उन्मूलनमें सतत प्रयत्नशील हैं।

●

पं० मुकुन्दलालजी शास्त्री 'खिस्ते' साहित्याचार्य

●

पूज्यपाद पं० मुकुन्दजी शास्त्री 'खिस्ते' साहित्याचार्य (फड़नवीसका बाडा, दुर्गाघाट, वाराणसी) यद्यपि ब्राह्मण हैं फिर भी इन्होंने उस समय स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसीमें अध्यापन स्वीकार किया जब जैनोंको कोई ब्राह्मण-विद्वान् पढ़ानेको तैयार नहीं होते थे।

लगातार २२ वर्षों तक जैन एवं जैनेतर साहित्यका अध्यापन कराया। और जैन-समाजके अनेक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान् (डा० पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य, पं० खुशालचन्द्रजी, पं० मूलचन्दजी महावीरजी, डा० राजकुमारजी आगरा, डा० नेमिचन्द्रजी आरा आदि-आदि) आपके शिष्य रह चुके हैं।

स्याद्वाद विद्यालयके बाद राजकीय संस्कृत कालेजके साहित्य विभागमे बिना इण्टरव्यूके अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए जो बादमें संस्कृत विश्वविद्यालय (डा० सम्पूर्णानन्दजीके द्वारा) में परिवर्तित हो जानेसे वहाँ २२ वर्ष तक अध्यापन कार्य किया।

सम्प्रति अनेक विद्वान्-शिष्योंको मार्ग निर्देशन एवं संस्कृत एवं साहित्यके गम्भीर अध्ययनमें संलग्न। पू० वर्णीजी भी आपका आदर करते रहे।

●

पं० मक्खनलालजी महोपदेशक

●

बीसवी सदीके एक सफल भजनकार एवं गीतकारके रूपमें पं० मक्खनलालजीका नाम बड़ी श्रद्धाके साथ लिया जायेगा।

आपका जन्म काजमाबाद तहसील अतरौली जिला अलीगढ़ (उ० प्र०) में संवत् १९३८ में हुआ था। आपके पिता श्री डालचन्दजी व मातु श्रीमती नारायणी ऐसे दम्पत्ति थे जिनका प्रभाव पण्डितजी पर पडा और विरासतमें मिले संस्कारोंका स्फुरीकरणजैनधर्मकी सेवा और प्रचारमें लगाया।

आपके जीवनका कार्य-क्षेत्र भा० दि० जैन बाल आश्रम दिल्ली रहा। जिसके प्रचारकके रूपमें आपने समस्त भारतवर्षका भ्रमण किया और जैनधर्मके गूढ़ सिद्धान्तो और तात्त्विक-विषयोंको सरल और सुबोध भजनोका रूप देकर उन्हें संगीतकी रसमय धारामें प्रवाहित कर सम्पूर्ण जैन जन मानसको उद्वेलित किया।

ऐसा कौन भजन गायक न होगा जो पं० मक्खनलालजीके नामसे अपरिचित होगा?

आपका अध्ययन जैन महाविद्यालय मथुरामें हुआ था। आप वहाँके ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमके अधिष्ठाता रहे और वहाँके भवनका निर्माण कराया।

इसके पश्चात् जब आप बाल आश्रममें प्रचारकके रूपमें नियुक्त हुए तो सम्पूर्ण सेवा-समर्पणकी भावनासे वहाँ कार्य किया और वहाँके भवनका निर्माण कराया।

आप प्राचीन परम्पराके समर्थक और अनुयायी रहे तथा जैन सिद्धान्तोंको अपने आचरणमें उतारकर जैन संस्कृतिके जीवन्त-अध्येता बने।

न केवल प्रचारककी प्रतिभा आपमें थी, अपितु एक प्रतिष्ठाचार्यकी गुण-सम्पन्नतासे परिपूरित थे। काजमाबादके पंचकल्याणकके प्रतिष्ठाचार्य आप ही रहे।

आज 'प्रचारक' शब्द कुछ हल्का हो गया है। और उसमें त्यागमय-वृत्तिके स्थानपर व्यापार-वृत्ति ज्यादा परिलक्षित होने लगी है। परन्तु पण्डितजी साहब ऐसे प्रचारकके सम्बोधनसे युक्त नहीं थे अपितु इनकी प्रचारक प्रतिभामें एक गहन चिन्तन, सिद्धान्तोंकी सूक्ष्म पकड तथा समाधानकी विशाल क्षमता मौजूद थी। उन्होंने हजारोंकी संख्यामें जो भजनों और गीतोंका प्रणयन किया वस्तुतः वह उनकी लालित्य-पूर्ण भाषाका अभिव्यक्तीकरण ही रहा।

भजनोंकी गहरी और सीधी चोट साधारणसे साधारण व्यक्तिपर पड़ती थी। अतः आप ज्ञानमय, और कवित्व शक्तिके आवूयर थे।

आप न केवल भजनकार और गीतकार ही थे अपितु एक सिद्ध हस्त लेखक भी थे।

अखिल भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद् द्वारा आपको गौरवके साथ दिल्लीमें सम्मानित किया गया था। जैन इतिहासमें आप अपने उन्नत व्यक्तित्व और लोकोपयोगी कृतित्वके कारण सदैव वन्दनीय रहेंगे।

●

पं० मोतीलालजी शास्त्री

●

जन्म : दि० १६ अगस्त १९३१।

स्थान : सीहोरा जि० सागर म० प्र०।

पिता : श्री मूलचन्द्रजी।

जाति : परवार : छोवर मूर फागुल्ल गोत्र।

शिक्षा : एम० ए०, साहित्याचार्य, सिद्धान्तशास्त्री आदि।

अध्ययन : श्री गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय सागर तथा श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी।

अध्यापन १. नाभिनन्दन दि० जैन संस्कृत विद्यालय बीना (प्रधानाचार्य)। २. सर हुकुमचन्द दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय इन्दौर। ३ वर्तमानमें—प्राचार्य श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी।

●

वैद्य मोतीलालजी आयुर्वेदाचार्य

●

जीवन-परिचय

वैद्यजीका जन्म भाद्रपद कृष्णा ३० वि० सं० १९७२ में खुरई (सागर) में हुआ। आपने पाठशाला बीनामें जैनधर्म प्रवेशिका की। न्याय व धर्ममें विशारद जैन शिक्षा संस्था कटनीसे किया। आयुर्वेदिक कॉलिज कानपुरसे आयुर्वेदका अनुभव-अध्ययन किया। वैद्य कन्हैयालालजी, हकीम बनारसीदासके समीप रहकर भी कार्य सीखा।

कार्य-परिचय

एक वर्ष महाराजपुर (सागर) में निजी औषधालय खोला। अनन्तर सन् १९४० से आजतक आप खातेगाँवमें दिगम्बर जैन पारमार्थिक औषधालयमें प्रधान चिकित्सक हैं। आप यशस्वी और सेवा भावी हैं। आपसे न केवल खातेगाँवकी ही जनता बल्कि समीपके गाँवोंकी जनता भी स्वास्थ्य लाभ ले रही है।

एक ही स्थानपर सामाजिक संस्थामें कार्य करना अपनेमें स्वयं एक बहुत बड़ी कुशलताकी उपलब्धि है। आप इसी प्रकार युवकोचित उत्साह लिये जनताकी सेवा करते रहें।

●

डा० महेन्द्रकुमारजी एम० ए०

●

जीवन-परिचय

महेन्द्रकुमारजीका जन्म आजसे पचास बरस पहले भगवा (छतरपुर) म० प्र० में हुआ था। आपने द्रोणगिरि, सागर, वाराणसीमें रहकर साहित्याचार्य, साहित्य रत्न, काव्यतीर्थ, एम० ए० किया। आप हिन्दी, संस्कृत, अंगरेजी, गुजराती भाषायें जानते हैं।

कार्य-परिचय

आपने रविषेणाचार्य कृत "संस्कृतके पद्मचरितका सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परिशीलन" विषयपर शोध ग्रंथ लिखकर मगध विश्व वि० से पी-एच० डी० ली। राष्ट्रभाषा परिषद भगवां एवं मध्यप्रदेशीय संस्कृत शिक्षक संघके लिये काफी काम किया। म० प्र० दिग० जैन तीर्थ रक्षा समिति जिला उपशाखाके मंत्री हैं। दिगम्बर जैन मन्दिर चँदलाकी व्यवस्थापक समिति तथा संस्कृत शिक्षक संघ म० प्र० के अध्यक्ष हैं।

आपने रत्नराशि की दीपिका लिखी। विचार विमर्श पुस्तकका सम्पादन किया। शासकीय सेवामें आनेके पहले गाधोजीके 'करो या मरो' आन्दोलनमें सक्रिय सहयोग दिया। आपके जीवनपर कांग्रेसी विचार-धाराका बडा प्रभाव पड़ा।

●

पं० मामचन्दजी सर्राफ दिल्ली

●

लक्ष्मी पुत्र और सरस्वती-पुत्र होनेका श्री सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है। एक ओर आप एक सफल व्यापारी है तो दूसरी ओर आप ऐसे स्वाध्यायी उद्‌भट विद्वान् है कि जिनकी विद्वत्ता, तक प्रधान क्षमता और गहन चिन्तनकी छाप देखकर सहज ही व्यक्ति श्रद्धासे अभिभूत हो जाता है।

आपका जन्मस्थान बड़ौत (मेरठ) है। परन्तु आप स्थायी रूपसे दिल्लीमें व्यापार करने हेतु आ बसे।

आप वर्तमानमें दि० जैन शास्त्रि परिषद्के उपाध्यक्ष हैं। आप एक महान् समाज सेवी एवं समाज-रत्न हैं। आपकी वक्तृत्व-कला अत्यन्त प्रभावक एवं हृदयस्पर्शी है।

●

पं० मथुरादासजी शास्त्री

●

समाजके मान्य विद्वानोंमें पण्डित मथुरादासजीका नाम आदरके साथ लिया जाता है। जैन साहित्यके गहन अध्येता तथा एम० ए०, साहित्याचार्य आदि लौकिक उपाधियोंके अधिकारी विद्वान् पण्डितजी हैं।

आपका जन्म एटा उ० प्र० में हुआ। आप दिल्ली विद्वत् समितिके मंत्री हैं। आपका कार्य क्षेत्र गुजरान वाला गुरुकुल एवं महावीर जैन हायरसेकेन्ड्री स्कूल नई सड़क दिल्ली रहा—आपने निष्ठा, लगन एवं अपनी कुशल प्रशासनिक क्षमताके द्वारा समन्तभद्र विद्यालयको उन्नतिके शिखरपर लानेका महान् कार्य किया। इस विद्यालयके प्राचार्य पदपर आपने विद्यालयके साथ समाज सेवा और धर्म प्रभावनाके महान् कार्य किए।

●

स्व० पंडित मुन्नालालजी काव्यतीर्थ

●

पंडितजीका जन्म मालथौनमें हुआ था। वहीं आपकी आरम्भिक शिक्षा हुई। पढ लिख कर कुछ दिनों मालथौनमें पढ़ाया। अनन्तर त्रिलोकचन्द्र जैन हाईस्कूलमें काफी काल तक पढाया। तत्पश्चात् आप दानवीर सेठ हीरालालजी काशलीवालके गृह पंडित रहे। आपने समाजमे प्रतिष्ठाचार्यके रूपमें अतीव प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

आप एक ओजस्वी वक्ता व लेखक भी थे। आपकी कुछ रचनायें जैन पत्रोंमें छपी थी।

●

स्व० साहित्यकार मूलचन्द्रजी वत्सल

●

मूलचन्द्रजी वत्सलने जैन साहित्यमे युगान्तर लानेका प्राण पणसे प्रयत्न किया। चूंकि कवि युगका प्रतिनिधि होता है अतएव आपने भी सन् १९१७ में महात्मागाधीके असहयोग आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया था। आपने प्रतिज्ञा की—

अग्नि कणोंसे खेलूंगा।
लांघ-लांघ पर्वतमाला ॥
यह बढी आ रही है ज्वाला।
मैं उसको पीछे ठेलूंगा ॥

वत्सलजीने भी राष्ट्रके लिये नौकरी छोड़ी पर राष्ट्र और समाज दोनोंने उनको भुलावेमें ही रखा। 'वत्सल' जीने अपने 'आदर्श जैन' पत्रके लिये काफी परिश्रम किया, उससे समाजमें चेतना आई। आपने जैन साहित्य रत्नालय प्रकाशन संस्थान स्थापित किया। इससे महिला गायन, जैन संगीत सुधा, वीर पंचरत्न, आदर्श कुमारियाँ, जैन विवाह विधि आदि पुस्तकें प्रकाशित की। ज्ञानचन्द्रजी एम० ए० के शब्दोंमें वत्सल-जीने सामाजिक जागृतिके लिये समाज दशाष्टक, मुनिदशाष्टक जैसी कवितायें लिखी। आपने सुदर्शन नाटक, सदाचार रत्नकोष, जैन कवियोंका इतिहास लिखा।

●

श्री मोहनकान्तजी मिलन

●

मिलनजीका जन्म वि० सं० १९९३ में गुनामें हुआ। आपके पिता श्री हुकमचन्द्रजी संगीत प्रेमी हैं और उनके सुपुत्र आप साहित्य प्रेमी हैं। मिलनजीने उच्चशिक्षा प्राप्त की। आप एम० ए० बी०, एड और आयुर्वेदाचार्य हैं।

आप बापू माध्यमिक विद्यालयमें अध्यापक हैं। अतिरिक्त समय जन हिताय चिकित्सा करते हैं। मिलनजी बड़े मिलनसार और धर्म तथा समाज सेवा भावी हैं। आपने सन् १९५५ से लिखना आरम्भ किया। आजकल आप नई कवितामें नई शैलियोंका प्रयोग कर रहे हैं। आपकी कविताओंमें जैन दर्शनकी झलक मिलती है।

●

श्री महावीरप्रसादजी आयुर्वेदरत्न

●

आपका जन्म सन् १९३७ में हुआ। आपके पिता श्री रामचन्द्रजी है व माता श्री दुर्गादेवी हैं। आप होम्योपैथिक विज्ञानमें D. H S. है और हिन्दी साहित्य सम्मेलनके आयुर्वेदरत्न हैं। विद्वानोंके सम्पर्क व स्वाध्यायी होनेसे आपने काफी धार्मिक ज्ञान बढ़ा लिया है।

आप जैन विद्वत्समिति देहलीके सदस्य है व परिषद् परीक्षा बोर्डके परीक्षक हैं। आप पार्श्वनाथ युवक मण्डल और अभिभावक शिक्षक संघके मन्त्री है। आप एक प्रतिष्ठित अनुभवी डाक्टर हैं। आपके कुछ लेख भी चिकित्सा सम्बन्धी छपे हैं।

●

डा० महावीर सरनजी जैन

●

जीवन परिचय

डा० महावीरसरनजी का जन्म १७ जनवरी १९४१ को बुलन्दशहरमें हुआ था। आपके पिता स्व० प्रेमराज जैन बुलन्दशहर समाजमें वकील व सभापति थे। आपके पिता भी (नत्थनलाल जैन) समाज शिरोमणि विद्वान् लेखक वकील थे। डा० सा० की माता कैलाशवती जैन हैं। आपने आरम्भसे स्नातक उपाधि तक बुलन्दशहरमें ही अध्ययन किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालयसे एम० एम, डी० फिल० किया और जबलपुर विश्वविद्यालयसे डी० लिट् किया। डा० सा०के परिवारमें एक भाई और तीन बहनें है जो सभी सभ्य शिक्षित हैं। आपकी पत्नी इला जैन भी बी० ए० आनर्स हैं।

डा० सा० के जीवनका आरम्भ सम्पन्न स्थिति युक्त परिवेश में हुआ। बचपनसे ही अध्ययन चिन्तन सम्बन्धी प्रवृत्ति रही। परिणामतः आप अतीव अल्प आयुमें इतनी अधिक उपाधियाँ पा सके, पुस्तकें लिख सके व सम्मान पा सके। डा० हीरालाल जैन, डा० धीरेन्द्रवर्मा, डा० उदयनारायण तिवारी और डा० [illegible] सान्निध्यसे आपने पर्याप्त लाभ लिया। विद्वत्ता व चरित्रमें अन्तर समझा। विभिन्न संस्थाओं, कार्य गोष्ठियों, परिचर्चाओं-समितियों, अनेक स्थानोंके प्रवास और अनेक व्यक्तियोंके सम्पर्कसे आप इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि पढ़कर व्यक्तिको आदमी बनना चाहिये।

कार्य-परिचय

आप केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरामें कुछ समय कार्य करनेके बाद जबलपुर विश्वविद्यालयमें आ गये और वहीं अपनी प्रतिभा-कुशलतासे आज तक कार्य कर रहे हैं। अखिल भारतीय हिन्दी परिषद् और Linguastic Society of India के आजीवन सदस्य हैं। आपकी जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, उनमेंसे कुछके नाम निम्नलिखित हैं—

१. विचार दृष्टिकोण एवं संकेत, २. बुलन्दशहर खुर्जाकी बोलियोंका अध्ययन, ३. अन्य भाषा शिक्षण, ४. हिन्दी की ध्वनियाँ।

डा० सा० ने अनेक स्थानोंपर धार्मिक सामाजिक प्रवचन किये। पुस्तकोंके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, मध्यभारती, कल्पना, भाषा, गवेषणा, प्राच्य भारती, साहित्य सन्देश, भारतीय शिक्षा, माध्यम, आलोचना, जयपुर स्मारिका आदि पत्रिकाओंमें आपने रचनायें लिखी, शोध-निबन्ध, लिखे। शोध परीक्षार्थियोंको निर्देशन दिया। राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए आपने काफी कार्य जहाँ किया वहाँ विकासके सोपान (दश धर्मोंका विवेचन) पुस्तक लिखी और भारामल्ल रचित चारुदत्त चरितका नई दृष्टिसे सम्पादन किया, आलोचना लिखी।

आपके विचारसे आज भौतिकता और आध्यात्मिकताके समत्वकी अत्यन्त आवश्यकता है। जैन-धर्मकी मानववादी दृष्टिकी विवेचना सामाजिक निर्माणमें सहायक हो सकती है।

●

श्री मनोहरलालजी एम० काम०

●

श्री मनोहरलालजी उर्फ मन्नूका जन्म २४ सितम्बर १९३५ में कोसीकलामें हुआ। आपके पिता स्व० नन्दकिशोरजी जैन थे और माता श्रीमती दुर्गादेवी हैं। बारह वर्षकी अवस्थामें ही आपके पिता श्री का स्वर्गवास हो गया था और छोटे भाई प्रो० शीतलचन्द्रजीकी मृत्युने आपके हृदयको व्यथित कर दिया था। आपकी आरम्भिक शिक्षा जैन पाठशाला कोसीकलामें हुई। इसके बाद आपने हिम्मत नहीं हारते हुए मैट्रिक, इण्टर, बी० काम०, एम० काम किया व शोधकार्य करना चाहा था। ३ मार्च १९५३ को आपका विवाह हुआ। आपके दो पुत्र व तीन पुत्रियाँ हैं।

आप १९५३ से आजीविकाकी दृष्टिसे कार्यक्षेत्रमें उतरे। आपने नगर पालिकामें लिपिकसे कार्य शुरू किया और वर्तमानमें एक अच्छे पद पर सहायक बने हैं। आप बचपनसे ही मन्दिर जाया करते थे अतएव आपमें धार्मिकता व सामाजिकताके जो संस्कार बढ़े उनसे आप जैन सभा नई दिल्लीके संयुक्त मन्त्री बने। आपका परिचय दिल्ली जैन डायरेक्टरीमें छप सका। ●

श्रीमान् पं० मुन्नालालजी रांधेलीय

●

जीवन परिचय : पंडित प्रवर रांधेलीयजीका जन्म अगहन वदी ११ को वि० सं० १९५० में पाटन ग्राम बण्डा तहसील जिला सागरमें हुआ। आपके पिता श्री वंशीधरजी अतीव धार्मिक और अति प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। सरस्वतीकी उपासना भी पैतृक सम्पत्ति सी मिली, अतएव बचपनसे ही आप स्वाध्याय और लेखन प्रिय व्यक्ति रहे हैं।

आपने सत्तर्कसुधातरंगिणी पाठशालामें अध्ययन करके न्यायतीर्थकी उपाधि प्राप्त की और गोपाल दिगम्बर जैन महाविद्यालय मोरेनामें अध्ययन करके शास्त्रीकी उपाधि प्राप्त की। आपने साहित्याचार्यका भी प्रथम खण्ड उत्तीर्ण किया पर आगे नहीं बढ सके।

समाज सेवा . अपने व्यावसायिक कार्यको सम्पन्न करते हुए समाज-सेवाके लिये भी आपने पर्याप्त समय दिया। आपकी सेवाओंका संक्षेपमें यो अंकन किया जा सकेगा।

१ अ० भा० गोलापूर्व सभाके जैन गजटका सम्पादन-प्रकाशन कलकत्ता-सागरसे किया।

२. बुन्देलखण्ड जैन प्रान्तिक सभाके मंत्री रहे व जैन प्रभात पाक्षिकका सम्पादन किया।

३ जैन महाविद्यालयके मन्त्री उपाध्यक्षके रूपमें भी अपनी सेवायें दी।

४. दिग० जैन महिलाश्रमके सभापति रहे।

५. गोराबाई दिग० जैन मन्दिरके मंत्री रहे।

६. गुरुदत्त दिग० जैन उदासीन आश्रम द्रोणगिरिके अधिष्ठाता रहे।

साहित्य सेवा : पूर्वोक्त दो पत्रोंके अतिरिक्त पंडितजी कभी-कभी जैन पत्रोंमें भी लिखते रहे हैं। आपकी जीवन साधनाका फल जैसा पुरुषार्थ सिद्धयुपाय (विस्तृत टीका) निकला जिसकी विद्वानोंमें बडी चर्चा है। आप निश्चय व व्यवहार दोनों ही पक्षोंके समर्थक है। पंडितजी पिछले अनेक वर्षोंसे स्थानीय समाजको शास्त्र स्वाध्याय द्वारा धर्म-लाभ दे रहे हैं।

●

श्री एम० सी० चिकलाणकर

●

आप जैन समाजके सुप्रसिद्ध लेखकोंमेंसे है। आपकी बचपनसे ही साहित्यकी ओर सुरुचि रही। आपने एम० ए० (पूर्वार्द्ध किया)। आप सर्वदा धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय कार्य करनेके लिये प्रस्तुत रहते हैं। आजकल आप औरंगाबादमें रहते है।

आपने मराठवाड़ा भूमिपुत्र, जैन ज्योति, मराठा वेलवर्य, जैनदर्शन आदि पत्रोंमें एकसे अधिक निबन्ध लिखे। आपके शीर्षक अतीव सशक्त होते हैं। जैसे भगवान महावीरके राष्ट्रमें क्या हो रहा है? क्या पर्यूषण अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर नही मनाया जा सकता? विश्व हिन्दू परिषद्ने कायसाध ले? आपका मराठी-हिन्दीपर अच्छा अधिकार है। ●

स्व० पं० महबूबसिंहजी सराफ

●

जीवन परिचय . सर्राफ पंडितजीका जन्म माघ वदी १३ विक्रम संवत् १९४० में गोहाना जिला रोहतकमें हुआ । आपके पिता श्री पं० हुकमचन्दजी सर्राफ भी धार्मिक स्वभावके उदार सुयोग्य व्यवसायी थे । और अन्तमें ब्रह्मचारी हो गये थे । आपके परिवारमें चार भाई हैं व आपके चार पुत्र हैं । सभी भाई व चारों पुत्र सम्यशिक्षित धार्मिक प्रकृतिके हैं । पंडितजीकी लौकिक शिक्षा भले कम हुई हो पर धर्म और व्याकरणको उन्होंने काफी शिक्षा प्राप्त की । फलतः आप अध्ययन-अनुभव-अभ्यास पूर्वक अच्छे विद्वान् बन गये ।

समाज-सेवा : पंडितजी शास्त्र स्वाध्यायके अतीव अनुरागी थे । प्रारम्भमें वैदवाडा मन्दिरमें शास्त्र स्वाध्याय करते थे । बादमें सेठके कूचेके मन्दिरमें प्रवचन करने लगे और चार दशकों चालीस बरसों तक आपने इस मन्दिरमें शास्त्र प्रवचन किया । भक्तिकी भावनासे प्रेरित होकर आपने सारा मंदिर संगमरमरका बनवा दिया, चाँदीके किवाड लगवा दिये, मन्दिरमें अभिषेक-पूजनकी सुव्यवस्था की, हस्तलिखित शास्त्रोंकी देख भाल की ।

आपकी शिक्षाकी दिशामें स्वभावतः रुचि थी, इसलिये जैन कुलभूषण ब्र० शीतलप्रसादजीके कर-कमलोंसे संस्कृत कमर्शियल हायरसेकण्डरी स्कूलकी नीव रखाई । इसका सुन्दर भवन बनवाया । जैन गर्ल्स हायरसेकण्डरी स्कूल भी धर्मपुरामें खोला । प्राइमरी जैन स्कूल भी खोला । ये संस्थायें आशातीत उन्नति की; इनके ध्रौव्य फण्डमें दो लाख रुपये आपके समयमें रहे । जैन महिलाश्रम, जैन कन्या पाठशाला दरियागंजके संचालक रहे । पटपदगंज मन्दिर करौलबाग मन्दिरका कार्य आगे बढ़ाया । अनारगलीमें चन्द्रप्रभु चैत्यालय निर्माण करानेमें सहयोग दिया ।

सन् १८७७ में एक विशाल संघ (३२५) लेकर भारतके प्रमुख जैन तीर्थोंकी यात्रा की । संवत् २००३ में अस्पतालमें आपरेशनके समय भी अध्यापकोंसे पूछा तुम्हारी तनख्वाह मिली या नही ? जैनधर्मके गौरवको बढ़ानेके लिये जैन विद्वानोंको बुलाना, धार्मिक संस्थाओंको प्रतिवर्ष सुनिश्चित दान देना, हस्तिनापुरके मेलेमें जाना, आचार्यरत्न श्री १०८ देशभूषणजी महाराजके देहली चातुर्मास कराना, ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापनामें सक्रिय सहयोगी होना, आपको विद्वान्-धर्म-तीर्थ-समाज प्रेमी सिद्ध करते है । इसीलिये शास्त्री विद्वत्परिषद्से सम्मानित भी हुए ।

●

श्री मिश्रीलालजी शाह शास्त्री

●

आप श्रीमान् व्यापार कुशल मुनीम छीतरमलजी शाह केकड़ी (अजमेर) निवासी (वर्तमान आवास-मल्हारगंज इन्दौर) के ज्येष्ठ पुत्र हैं । नैनवाके श्री दि० जैन विद्यालयमें लगभग १० वर्ष प्रधानाध्यापक पदपर रहकर आपने जैनधर्मका प्रचार व समाज सेवाका कार्य किया है । फलस्वरूप वहाँ पर आपने अच्छी उन्नतिका काम करके दिखाया है ।

उस प्रान्तमें आप अढ़ाईद्वीप, तेरहद्वीप, सिद्ध चक्र मंडल विधि विधान, यज्ञ यागादि धार्मिकस मारोह सम्पन्न करानेके हेतु अतीव यशोभाजन हुए हैं। वहीं पर 'श्री स्याद्वाद समिति' नामक सेवाभावी संस्थाके खोलनेमें भी आपके आदेश व्युपदेश एक उल्लेखनीय कारण रहे हैं, जिससे सामूहिक संगठित शक्तिसे धर्म प्रचार व जनसेवा आदि कार्य बने हैं। वहाँ आपने अच्छी स्मृति छोड़ी है, वहाँके व्यक्ति आपपर श्रद्धावन्त हैं। आप वहाँ गौरवान्वित रहे हैं।

इसके अनन्तर जब कि नैनवाँमें श्री० १०८ श्री मुनि महाराजके दर्शनार्थ नागौर निवासी श्री सेठ दीपचन्दजी बड़जात्या पधारे थे, तब आपकी कार्य पद्धति अनुभवादिसे उत्साहित होकर इन्होंने आपको नागौर बुलवा लिया. और वहाँके 'श्री दि० जैन विद्यालय' में प्रधानाध्यापक पदपर रहकर आपने छात्रोंको विद्याध्ययन कराया। नागौरमें लगभग आपका तीन वर्ष आवास रहा।

नागौरके बाद ही संवत् २००५ में सुजानगढ़के स्व० श्री० सेठ धन्नालालजी पाटनीसे योगवशात् परिचय व स्नेह बढा। आपहीके आश्रय व सत्प्रेरणासे मरुधराकी प्रसिद्ध नगरी सुजानगढ़के क्षेत्र स्पर्शनका आपको योग प्राप्त हुआ। छह वर्ष तक वहाँ आपने श्री दि० विद्यालयमें रहकर संतोषजनक सेवायें की है।

वि० स० २०१२ से आप कुचामनमें श्री जिनेश्वरदास दि० जैन विद्यालयमें प्रधानाध्यापक पद पर व छात्रावासमें प्रशासक पद पर कार्य किया है। अद्यावधि आप कुचामनकी संस्थाको ही अपनी सेवायें दे रहे है। सुशील उत्साही परिश्रमी योग्य कार्यपटु व्यक्ति हैं।

●

पं० मोतीलालजी मार्तण्ड

●

विश्व जैन मिशन केन्द्र ऋषभदेवके अनन्य सेवक, कर्मठ कार्यकर्त्ता एवं संयोजकके रूपमें श्री पं० मोतीलालजी मार्तण्डका नाम अग्रणी है। डा० कामताप्रसाद जी की प्रेरणासे आपने सन् १९६१ में इसकी स्थापना करके जैनेतर विद्वानोंको जैन साहित्य देकर उन्हें जैनधर्मके प्रति जिज्ञासु बनाया। इतना ही नहीं बल्कि उदयपुर और डूंगरपुर जिलोंमें प्रचलित पशुबलि प्रथा बन्द कराकर लगभग ५०० भीलोंको मद्य-मांसादिका त्याग कराया। इस केन्द्रकी ओरसे राजस्थान प्रान्तीय चार अहिंसा सम्मेलन आयोजित किये।

आपका जन्म ऋषभदेव जिला उदयपुर (राजस्थान) में १८ अक्टूबर १९३२ को श्री कालूलालजीके घर माँ सौ० सूरजबाईके गर्भसे हुआ। धार्मिक शिक्षणमें जहाँ आपने शास्त्री स्तरके ग्रन्थोंका अध्ययन कर परीक्षा उत्तीर्ण की वहाँ लौकिक शिक्षामें राजस्थान विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी), उदयपुर विश्वविद्यालय से बी० एड० तथा साहित्य सम्मेलन प्रयागसे सा० रत्नकी उपाधि प्राप्त की। वर्तमानमें पी-एच० डी० कार्य हेतु शोध कार्यमें संलग्न हैं।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् आप १९५२से अध्यापन कार्यमें आये और क्रमशः जैन विद्यालय भलारा, प्रा० विद्यालय हर्षावाड़ा, माध्यमिकविद्यालय खेरवाड़ा, हायर सेकण्डरी स्कूल ऋषभदेव, छाणी, कपासनमें सहायक अध्यापकके रूपमें कार्य किया। सन् १९६९ से आप कोटड़ा (उदयपुर) में शिक्षा प्रसार अधिकारी के रूपमें कार्य कर रहे हैं।

साहित्य सेवा

साहित्य-सृजनमें विशेष अभिरुचि रही और १८ वर्षकी आयुसे लिखना प्रारम्भ कर दिया । आपने अबतक कई पुस्तकें लिखी हैं । मुख्य इस प्रकार हैं—'अहिंसाके अवतार' (नाटक), 'शिव विभूति', हस्त-दर्पण, ऋषभदेव तीर्थका इतिहास, श्री केशरियाजी दिग्दर्शन, ऋषभदेव दर्पण (पद्य), श्री ऋषभ चरितसार (प्रबन्ध-काव्य), जिनेन्द्रकीर्तन एवं भक्तिसुमन माला (सम्पादन), अध्यात्म-चिन्तन (भूमिका) एवं भारतीय संस्कृतके आलोकमें आदि । आप 'कौमुदी' और 'ज्ञान ज्योति' के सम्पादक भी एक-एक वर्षके लिए रहे । स्फुट रचनाएँ विशेष रूपसे 'अहिंसा वाणी' में प्रायः प्रकाशित होती रहती है । अन्य प्रमुख जैन पत्रोंमें आपके लेख समय-समयपर निकलते रहते हैं ।

सामाजिक सेवायें

आपने कुरीतियोंके निवारणका निरन्तर प्रयास किया है । साहित्य संगोष्ठियाँ, महिला शिक्षण शिविर और अहिंसा सम्मेलन आयोजित कर समाजमें धर्म और चेतनाका स्फुरण करते रहते है । आपने शान्ति विधान, वेदी प्रतिष्ठाएँ और जिन बिम्ब स्थापना महोत्सव सम्पन्न कराये है । जिससे आपको कई अभिनन्दन-पत्र एवं प्रतिष्ठाचार्यकी पदवी प्राप्त हुई ।

आपका कथन है कि समाजमें पंथवाद अनैक्यताकी भूमिका है जो कि अवाछनीय है । आपने इस आवश्यकताको महसूस किया है कि मूल ग्रन्थोंके आधार पर जैन सिद्धान्तोंका लोक-कल्याणकी दृष्टिसे सम्यक् विवेचन होना चाहिए । 'जैन विश्वविद्यालय हो' तथा जैन शिक्षण-संस्थाओंपर इसका नियन्त्रण हो ।

आपको ऋषभचरितसार ग्रन्थकी रचनापर 'विद्यारत्न' की उपाधि प्रदान की गयी थी ।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरी जैन अच्छा धार्मिक ज्ञान लिये है । आपको दो पुत्र और दो सुपुत्रियोंका सुयोग प्राप्त है । आपसे बड़े भाई पं० फतहसागर जैन एक अच्छे विद्वान्, प्रतिष्ठाचार्य तथा कई पुस्तकोंके लेखक हैं । आप एक आकर्षक और प्रभावशाली व्यक्तित्व लिये है ।

●

पं० मनोहरलालजी

●

जन्म स्थान एवं तिथि : दमोह (म० प्र०) अगहन सुदी, १ सं० १९७१ ।

परिचय : पिता श्री बाबूलालजी सराफ, कपड़ेके व्यापारी थे ।

शिक्षा : दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय इन्दौरमें धार्मिक शिक्षण, क्रिश्चियन कालेज एवं होल्कर कालेज इन्दौरसे बी० ए० एवं एम० ए० (अंग्रेजी), स्पेन्स ट्रेनिंग कालेज जबलपुरसे बी० टी० (१९४०), स्वाध्यायी रूपसे १९४४ में एम० ए० (हिन्दी) और १९५३ में राजकीय महाविद्यालय अजमेरसे एल-एल० बी० ।

पारिवारिक जीवन

आपकी पहली पत्नी सौ० इन्द्रा ३१ वर्षकी अवस्थामें चल बसी थी और दूसरा विवाह श्रीमती चन्द्रावती (विदिशा) से १९४७ में हुआ था तब आप जैन हाईस्कूल अजमेरमें प्रधानाध्यापक थे ।

आर्थिक उपार्जन हेतु आपने क्रमश. म० प्र० हाईस्कूलमें अध्यापन कार्य करनेके पश्चात् बड़ौत (यू० पी०), आर्टस कालेज बिलासपुर (म० प्र०) में व्याख्याता पदपर कार्य किया। पुन: आप टीकमचन्द जैन हाई स्कूल अजमेरमें प्रधानाध्यापक और १९५६ में दि० जैन विद्यालय कलकत्ताके प्राचार्य पदपर आसीन हुए। १९६९ तक राजस्थानमें व्याख्याता पद पर कार्य किया। वर्तमानमें आप गान्धी शिक्षक महाविद्यालय गुलाबपुरा (भीलवाड़ा) राजस्थानमें उप-प्राचार्यके पदपर कार्य रत हैं।

आपका बडा सुपुत्र डॉ० प्रवीणकुमार जैन एम० एस-सी०, पी-एच० डी० तथा दूसरा पुत्र भी डॉ० प्रदीपकुमार उच्च पदपर कार्य रत है। इसके अलावा दो पुत्र और दो पुत्रियोंका सौभाग्य प्राप्त है।

आपने मिडिल स्कूलके लिए कतिपय पाठ्य पुस्तकोंकी रचना की एवं विविध धार्मिक लेख आदि लिखे हैं। सार्वजनिक सेवाके रूपमें आपने धर्मानुरागी मंडल (अजमेर) एवं मुमुक्षु मण्डल (नसीराबाद) की स्थापना की। कई विद्यालयोंका प्रारम्भ प्रधानाध्यापक या प्राचार्य रहकर किया।

●

डा० मुनीन्द्रकुमारजी 'साहित्यालङ्कार'

●

डा० मुनीन्द्रकुमारजी जैन भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् नयी दिल्लीमें सहायक सम्पादकके रूपमें कार्य करते हुए जैन समाजके एक परमसेवी एवं निस्पृही व्यक्ति है। आपने लार्ड महावीर चेरीटेबुल होम्योपैथिक हास्पिटल ट्रस्टकी स्थापना कर एक विशाल होम्योपैथिक औषधालयकी स्थापना की। जिसके माध्यमसे आप सतत रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करते रहते है और मात्र यही जीवनका लक्ष्य बना लिया।

आपका जन्म खुर्जा जिला बुलन्दशहर (उ० प्र०) में २ दिसम्बर १९३० में श्री अमीरसिंहजी जैनके यहाँ हुआ था। आपके पिता उस समय नायब तहसीलदार थे जो बादमें डिप्टी कलेक्टरके पदसे सेवामुक्त हुए थे। आपकी मातु श्री सूरजकली जैन धार्मिक महिला हैं।

हाईस्कूल तक शिक्षा, सेंट जांस हाईस्कूल आगरामें तथा बी० एस-सी० (कृषि) १९५२ में राजकीय कृषि महाविद्यालय कानपुरसे उत्तीर्ण की। इसके पूर्व आपने हिन्दी विद्यापीठ बिहारसे साहित्यालकार और हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबादकी साहित्यरत्नकी परीक्षायें उत्तीर्ण कर ली थी। १९५३ में पंजाब विश्वविद्यालयसे डिप० जर्नेलिज्म, १९५४ में एम० ए० (इतिहास), १९६४ में दिल्ली विश्वविद्यालयसे एल० एल० बी० तथा सेवा भावनासे प्रेरित होकर १९६८ मे बोर्ड आफ होमियोपैथिक सिस्टम आफ मैडिसन दिल्लीसे डी० एच० एस० की उपाधि प्राप्त की।

समाजसेवा एव सामाजिक संस्थाओंकी स्थापना

१. आगरामें सन् ४५-४६ में विजय सेवा समिति, नाटक क्लब, पुस्तकालय एवं विजय क्लब की स्थापना।

२. कानपुरमें हिन्दी साहित्य परिषद एवं रामायण समाजकी स्थापना।

३. दिल्लीमें १९५३ में 'जैन समाज' दहेज विरोधी संस्था, आ० श्री देशभूषण मुद्रणालय और प्रकाशन ट्रस्ट (१९५४-५५) जैन सूचना ब्यूरो, निर्माण भारती (नाट्यसंस्था १९७०), जैन सभा धर्मार्थ ट्रस्ट रजिस्टर्ड (१९६४) एवं १९७१ में लार्ड महावीर चेरीटेबुल होम्योपैथिक हास्पीटल ट्रस्टकी स्थापना की। उक्त संस्थाओंके आप मन्त्री तथा प्रधान चिकित्सकके रूपमें कार्य सम्हाले है।

आर्थिक हेतु एवं उत्तरदायी पद

दिल्लीमें सन् १९५२ में सहायक सम्पादक 'किसान जगत्' १९५३ में अध्यापक इण्डियन नेशनल कालेज (बंगला साहित्य), १९५४ से उपसम्पादक एवं १९५७ से सहायक सम्पादक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्में कार्य कर रहे हैं।

एक दुर्घटना जिसने आपका जीवन बदल दिया

बड़ी पुत्री मंजूके कपड़ोंमें आग लग जानेसे तथा डाक्टरोंकी असावधानीसे १९६४ में दारुण वियोग हो जानेसे मानसिक आघात एवं कमीको पूरा करनेके लिए होम्योपैथिक चिकित्सालयकी स्थापना जिसमें प्रतिदिन ४-५ घण्टे रोगियोंकी सेवा कर आज तक ३०-४० हजार रोगियोको औषधिदान।

साहित्य क्षेत्रमें कार्य

आपने 'अमर साहित्य' (हिन्दी मासिक), 'B. J. I. समाचार (अँग्रेजी-हिन्दी पाक्षिक) एवं अँग्रेजी जैन गजट (मासिक) के प्रकाशनमें सक्रिय सहयोग एवं व्यावसायिक रूपसे धरतीके लाल, खेती विस्तार समाचार, चावल समाचार, किसान जगत् आदि (मासिक हिन्दी) तथा Examination, Information, Rice News leher, Agriculture News teller, Indian of Arimal Science आदि अँग्रेजी मासिकमें सहायक सम्पादकके रूपमें कार्य किया और कर रहे है। इसके अलावा आपने कुछ ऐसी पुस्तकें भी लिखी हैं: जैसे नवीन भारतकी नवीन कहानियाँ, 'Blood and Tears' मानवसे भगवान् बनो, मैडिकल ज्युरिस प्रूडेंस, मैडिकल पैथालाजी एवं होम्योपैथिक सर्जरी आदि।

आपकी चार सुपुत्रियाँ है। धर्मपत्नी श्रीमती शशिप्रभा एक सद्गृहिणी हैं।

इस प्रकार आपका व्यक्तित्व केवल एक शासकीय अधिकारी तक ही सीमित नही रहा वरन् एक चिकित्सक, एक साहित्यकार और एक समाजसेवीके रूपमें प्रखर हुआ है।

●

श्री मार्नाडु वद्र्धमान हेगड़े अन्तरात्मा

●

आपका जन्म आजसे लगभग ७० वर्ष पूर्व हुआ था। आपने आठवी कक्षामें कनडीके साथ अँगरेजी भी पढ़ी। अनन्तर मोरेना और बनारसके विद्यालयोंमें जैन सिद्धान्त विशारद तकका अध्ययन किया। आपने मुनि श्री नेमिसागरजी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी तथा पंडित फूलचन्द्रजीसे भी शिक्षण प्राप्त किया। आप कनड़ी, मराठी, संस्कृत, अंगरेजी, हिन्दी भाषाओंके जानकार हैं।

आपने आरम्भिक वर्षोंमें हिन्दी प्रचारक बनकर राष्ट्रभाषा हिन्दीको अहिन्दी क्षेत्रोंमें फैलाया। अनन्तर आप विशाल कर्नाटक जैन समाजकी सेवा करनेमें लगे। आप पिछले बीस वर्षोंसे कनडीमें गद्य-पद्यमें ग्रन्थ लिख रहे; जिनसे जैनधर्मका प्रचार हुआ। महावीर भजन मंडलीके माध्यमसे आपने जैन इतर समाजमें

जो जिनेन्द्र भक्ति रूपी सरिता बहाई उसने अनेकानेक लोगोंकी प्यास बुझाई। इस कार्यमें जो आपको अद्वितीय सफलता मिली, उसे आप चिन्तामणि पार्श्वनाथकी कृपा मानते हैं।

आपने जीवन गीतांजलि, शान्तिनाथ गीतांजलि, बाहुबलि गीतांजलि, आदिनाथ गीताजलि जैसी कृतियां लिखकर काफी कीर्ति पाई। आपने कनड़ीमें कविता करनेके लिये भी कुछ कवि-कवियित्रियोंको प्रेरणा दी, जिनमेंसे कुछने काफी कीर्ति पा ली है। आपने अपनी तीर्थयात्राके अनुभवको भी एक ग्रन्थके रूपमें प्रस्तुत किया है। आपने वृन्दावनदासकी भगवान महावीर पूजा और दौलतरामके पदोंका भी कनडीमें अनुवाद किया, उसे प्रकाशित कराया।

●

एम० जगतवालय्या अलियूस

●

सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद एम० जगतवालय्याका जन्म आजसे ६१ वर्ष पूर्व हुआ था। आपने जन्म स्थान मकली ग्राममें कक्षा ६ठी तक कनड़ी पढ़ी। श्रवणबेलगोला मठमें जैन शास्त्रोंका अध्ययन किया। संगीत और नृत्यकी दिशामें आपकी अभिरुचि अधिक रही। आप श्रवणबेलगोलामें ६ वर्ष तक रहे। आपने अपने अपूर्व अध्ययनसे ज्योतिषपर भी अपने पूर्वजोंकी भाँति असाधारण अधिकार कर लिया। आप आशु कवि भी हैं। तत्काल रचना कर चाहे जिसको चमत्कृत कर देते हैं। महावीर सेवा भजन मंडलीके सहायक कार्यकर्ता हैं।

भगवान् पार्श्वनाथके परम भक्त हैं। भैरव पद्मावती ग्रन्थमाला द्वारा आपने १५ ग्रन्थ कनडीमें प्रकाशित कराये। आप हिन्दी-संस्कृत-कनड़ीके ज्ञाता हैं। आप अतीव शान्त स्वभावी प्रिय मृदुभाषी है। वर्द्धमानजी हेगड़ेके शब्दोंमें आप जैन समाजके बहुमूल्य रत्न है। आपपर सरस्वती प्रसन्न है। पर लक्ष्मीजी रूठी हुई हैं।

●

पं० मनोहरलालजी

●

परि-परिचय

पिता : श्री सुखनन्दनदासजी एवं मातु श्री द्रोपतीबाई।

जन्म स्थान :'बल्टीगढ़ (डाकखाना मक्खनपुर) जिला मैनपुरी, (उ० प्र०) जन्म तिथि श्रावण शुक्ला ११ सं० १९६९।

शिक्षा

प्रारम्भिक शिक्षा श्री ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर जिला मेरठमें। श्री गो० जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेनासे विशारद (१९३०) एवं स्वाध्यायी रूपसे १९३३ में शास्त्री।

आर्थिक उपार्जन

आपने धर्माध्यापकके रूपमें अपनी सेवाओंको १९५३ से प्रारम्भ करके क्रमशः वर्णी जैन इण्टर कालेज

एटा, जैन विद्यालय सरधना, जैन इण्टर कालेज आगरा, टोंक, मालपुरामें अध्यापन कार्य किया। सम्प्रति जैन इण्टर कालेज एटामें धर्माध्यापक हैं। आपका मुख्य उद्देश्य बालकोंमें धार्मिक ज्ञान देकर उन्हें जैन संस्कृतिके प्रति उन्मुख करना।

साहित्यिक अभिरुचि

१९३२ से आपने लिखना प्रारम्भ किया था और विविध जैन पत्रोंमें अब तक स्फुट-रचनायें प्रकाशित हुई हैं। दो अप्रकाशित पुस्तकें 'मेरा अनुभव' (लौकिक) तथा भ० महावीरका सर्वमान्य सिद्धान्त हैं।

पारिवारिक जीवन

प्रथम पत्नी का वियोग हो जानेसे आपने ५ वर्ष बाद दूसरा विवाह किया। द्वितीय पत्नी श्रीमती चन्दाबाई से ३ पुत्र और २ पुत्रियोंका सुयोग प्राप्त है। आपका जीवन शान्ति और सन्तोषमय है।

●

५० मनोहरजी छाजेर

●

परिपरिचय पिता स्व० श्री वस्तीमलजी छाजेर संस्थापक आदर्श निकेतन राणावास।

जन्म तिथि: अगस्त १९४३।

स्थान: सिरियारी (पाली) राजस्थान।

शिक्षा: एम० ए० (करनाटक विश्वविद्यालय, धारवाड) साहित्यरत्न बी० एल० (गवर्नमेन्ट ला कालेज, बेंगलूर)

समाज सेवा: अध्ययन काल में आचार्य पाठशाला कालेज विद्यार्थी संघके मंत्री। बेंगलूर हिन्दी फोरमका संस्थापन जो राष्ट्रीय भावात्मक एकताके लिए प्रयत्नशील होकर हिन्दी प्रचार करती है। अन्तर्राष्ट्रीय लाईन्स क्लब का सदस्य—समय-समय पर अकाल पीडित क्षेत्रोंमें वस्त्र एवं अर्थ संग्रहकर भिजवाना।

लेखन कार्य

आल इंडिया रेडियो प्ले काम्पीटीशनके लिए स्वलिखित 'चुनौती' मैसूर विश्वविद्यालयसे चयित और 'देशके दुश्मन' बेंगलूर विश्वविद्यालयसे चयित। आपकी मौलिक प्रकाशित पुस्तकें हैं। १. आपसे कुछ कहना है। २. नई दिशायें और ३. गाँवोंके भगवान्। दो काव्य संग्रहोंके रचयिता।

सम्पादित पत्रिकायें

'मौन वाणी' और पाँच स्मारिकाएँ। इसके अलावा विविध पत्र पत्रिकाओंमें लेख आदि स्फुट रचनायें चर्चा स्पर्धाके क्षेत्रमें अखिल कर्नाटक चर्चा स्पर्धाओंमें सक्रिय भाग एवं प्रथम पुरस्कार विजेताके रूप में।

●

सिंघई मोतीलालजी 'विजय'

●

जन्म स्थान एवं जन्म तिथि : बाकल, तहसील-सिहोरा (जबलपुर) म० प्र० । सन् १९३९ ।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा बाकल एवं दि० जैन शिक्षा मन्दिर ईसरी जिला हजारीबाग (बिहार), श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुल खुरई । एम० ए० (संस्कृत) संस्कृत महाविद्यालय राय-पुर से । केन्द्रीय सुरक्षा मंत्रालयकी एन० सी० सी० 'सी' परीक्षोत्तीर्ण ।

सेवायें : साधूराम बहु उद्देशीय उच्च० माध्यमिक विद्यालय कटनीमें संस्कृत-अध्यापन ।

विशेष प्रवृत्तियाँ : स्थानीय महावीर जयन्ती आदि पर्वोंमें तथा अन्य सांस्कृतिक कार्योंमें विशेष अभिरुचि । नगरकी अनेक साहित्यिक-संस्थाओंमें सक्रिय योग ।

साहित्यिक-कार्य . 'अकलंक स्तोत्र' की हिन्दी टीका एवं बहोरीबंद-दर्शन दो मौलिक कृतियाँ । विविध जैन पत्रोंमें स्फुट रचनायें । कविता-लेखनमें विशेष अभिरुचि । नगरकी पुरानी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सस्था 'अमर सेवा समिति' के सम्प्रति-सचिव ।

●

पं० माणिकचन्द्रजी शास्त्री

●

पिता श्री पं० भगवानदास शास्त्री भायजी तथा माता श्रीमती मथुराबाई ।

जन्म तिथि : ८ सितम्बर १९०४ ई० शाहपुर (सागर) ।

परिपरिचय : आपके चार भाई हैं जो सभी विद्वान् और जैन धर्म एवं साहित्यके अध्येता हैं । पं० श्रुतसागरजी न्याय, काव्यतीर्थ, पं० दयाचन्दजी साहित्याचार्य, पं० धर्मचन्दजी शास्त्री एवं पं० अमर-चन्दजी शास्त्री ।

प्रारम्भिक शिक्षा : शाहपुर में । बादमें संस्कृत, धर्म, न्याय, व्याकरण एवं साहित्यादि विविध विषयोंका अध्ययन श्री दि० जैन गणेश संस्कृत महाविद्यालय सागर में । जैन दर्शनका विशिष्ट अध्ययन पूज्य वर्णीजी महाराजसे किया था । जैन दर्शनाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसीके गोल्डमेडलिस्ट ।

समाज सेवा : करीब ५० वर्षोंसे प्रवचन, प्रतिष्ठा विधि विधान द्वारा समाज सेवा एवं श्री दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय, सागरमें अध्यापन एवं प्रचार कार्य । गान्धीवाद विचारधारासे प्रभावित हैं ।

प्रकाशित साहित्य : सार्थ सुभाषित शतक (दि० जैन पुस्तकालय सूरत) एवं रत्नकरण्डश्रावकाचारकी सरल भाषा टीका।

सम्मान : सिवनी आदि स्थानोंसे सम्मान पत्र की प्राप्ति।

सम्प्रति दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय-सागरमें विद्यालयके परीक्षा, पुस्तकालय एवं प्रचार विभागमें कार्यरत।

●

श्री मानकचन्द्रजी नाहर

●

जन्म-तिथि एवं जन्म स्थान—ग्राम-मोजस, जिला-नागौर राजस्थान, ३ अक्टूबर १९४४।

योग्यता : हिन्दी, तमिल और संस्कृतमें साहित्य रत्न, शिक्षा विशारद, जबलपुर विश्वविद्यालयसे एम० ए० (हिन्दी), एल० एल० बी०, साहित्य विशारद आदि।

भाषागत ज्ञान : हिन्दी, अँग्रेजी, तमिल और संस्कृत।

शैक्षणिक अनुभव : विशारद कक्षाओंमें अध्यापन।

गत ७ वर्षोंसे श्री जैन हिन्दी प्रचार महाविद्यालयके प्रधानाध्यापक।

साहित्यिक गतिविधि : लगभग २० शोध-निबन्ध राजकीय और अराजकीय पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुके हैं। आप एक सफल पत्रकार एवं अच्छे कवि भी हैं। 'भक्तामर' हिन्दी वार्षिकीके सम्पादक हैं। हिन्दीके प्रचारमें सतत प्रयत्नशील।

अन्य प्रवृत्तियाँ : आप भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग, डी० बी० हिन्दी प्रचार सभा मद्रास, एस० एस० जैन शिक्षा समिति और उत्तर मद्रास भारत स्काउट्स और गाइड, मद्रासके आजीवन सदस्य हैं।

●

पं० मोतीलालजी सुराना

●

शिक्षाप्रद लघुकथाओं, आख्यायिकाओं और कहानियोंके लेखकके रूपमें श्री मोतीलालजी 'सुराना' का नाम बहुचर्चित है। आपके पिता श्री हेमराजजी एक धर्मनिष्ठ एवं सभीके विश्वासपात्र एवं सुश्रावक थे। आपका जन्म रामपुरा जिला मन्दसौर (म० प्र०) में २१ जून १९१६ में माँ बसंतबाईके गर्भसे हुआ था।

प्रारम्भिक शिक्षासे हाईस्कूल परीक्षा १९३३ में महारानी संयोगिताबाई हाईस्कूल रामपुरामें सम्पन्न हुई।

आर्थिक उपार्जनके रूपमें आपने भंडारी मिल्स आफिसमें क्लर्क, क्लाथ शॉप अमृतसरमें केशियर और

आइल मिल देवासमें मैनेजरकी हैसियतसे १९३३ से १९५९ तक कार्य किया। आजकल आप कपडे तथा पापड़का व्यवसाय इन्दौरमें रहकर कर रहे हैं।

प्रारम्भसे ही साहित्य लेखनकी ओर आपकी रुचि हुई। और हस्तलिखित पत्रिका 'पुष्पोद्यान' निकाली। लेख, कविता, कहानी, लघुकथायें, महापुरुषोंके संक्षिप्त जीवन परिचय आदि लगभग ५०० से अधिक रचनायें विभिन्न जैन पत्रों, दैनिक एवं साप्ताहिक पत्रों और साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसे स्तरीय पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं। साहित्य लेखन अब भी सतत चालू है।

सार्वजनिक सेवायें तथा अभिनन्दन

आप १९४७ से १९५७ तक १० वर्ष देवास मण्डी व्यापारी एसोसियेशन तथा कृषि उपज मंडी समितिके अध्यक्ष रहे। इस पदपर रहकर आपने निर्धन छात्रोंकी सहायता, निर्धन लड़कियोंकी शादीमें आर्थिक सहयोग एवं अन्य आर्थिक सहयोग देनेका कार्य किया। आपने १९३६ में मोरसलीगली इन्दौरमें जैन ग्रन्थालय एवं वाचनालयकी स्थापना की। वृद्ध विवाहको रोकनेके लिए १९३१ में रामपुरामें एक जबरदस्त आन्दोलन कर सफलता प्राप्त की।

आपकी महती सेवाओंसे प्रभावित होकर जैन समाज रामपुरा, इन्दौर एवं अमृतसरने आपको अभिनन्दन पत्र भेंट किये।

पारिवारिक जीवन

आपकी प्रथम पत्नीसे एक पुत्र स्व० विजयकुमार सुराना उत्पन्न हुआ था जिसके पैदा होनेके आधा घण्टे बाद आपकी पत्नीका देहावसान हो गया था और पुत्रको एक ब्राह्मणीने पाला पोषा। यही बालक प्रतिभावान बना और १९५५ मे बाम्बे जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्समें कलाविद होने हेतु पढ़ने गया जहाँ इलेक्ट्रिक ट्रेनसे गिर पडनेसे असामयिक मृत्यु हो गयी। अपनी कम उम्रमें श्री विजयकुमार एक लेखक, कहानीकार एवं चित्रकार था तथा कई प्रदर्शिनियोंमें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुए थे।

●

पं० मिलापचन्दजी दर्शनशास्त्री

●

आपका जन्म सन् १९१५ में जयपुरमें हुआ। आपके पिताजीका नाम श्री मगनलालजी जैन है। आप स्व० पं० श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थके प्रधान शिष्योंमेंसे है। वर्तमानमें आप निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण पदोंपर पदासीन हैं। अध्यक्ष—राज० जैन साहित्य परिषद् परीक्षालय, प्रधानाध्यापक—श्री जैनदर्शन विद्यालय, उपाध्यक्ष—श्री राजस्थान जैन विद्वत् परिषद्, मंत्री—श्री महावीर दिगम्बर जैन बालिका विद्यालय एवं श्री जैन संस्कृत कालेज एवं श्री पदमपुरा तीर्थ क्षेत्र कमेटीके सक्रिय सदस्य है। आपका प्रभावशाली प्रवचन एवं तात्विक ज्ञान प्रशंसनीय है। वर्तमानमें धर्म समाज एवं संस्कृतिकी सेवा करते हुए स्वदेशी वस्त्र भंडार रामगंज बाजारके संचालक है।

●

पं० मोतीलालजी न्यायतीर्थ

अपनेमें आत्म तुष्टि लिए सन्तोषी व्यक्ति देखनेमें कम मिलते हैं। परन्तु पं० मोतीलालजी ऐसे व्यक्ति हैं जो व्रत संयम पूर्वक अपने जीवनको निवाछित ढंगसे चला रहे हैं। आपका मूल निवास मऊठाना-पुरा जिला ललितपुर उत्तर प्रदेश है।

अध्ययन हेतु आप गो० दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना, सहारनपुर तथा स्याद्वाद महा-विद्यालय बनारस गये थे और १९३४ में आपने न्यायतीर्थ एवं शास्त्रीकी उपाधि प्राप्तकर जीविकोपार्जनके लिए अध्यापन कार्यमें निरत हो गये।

जैसा कि प्रत्येक जैन पण्डितका भविष्य अनिश्चित और संघर्षमय रहता है। वह स्थायी रूपसे एक संस्थाकी सेवा नहीं कर पाता। यही कुछ बातें पण्डितजीके साथ घटित हुई। आपको अध्यापन हेतु फीरोजपुर (छावनी), नहटौर (बिजनौर), अम्बाला (छावनी), सीकर (राजस्थान) और फतेहपुर, सेखावाटी (जयपुर) के जैन हाईस्कूलोंमें धर्माध्यापकके पदपर कार्य करना पड़ा। वर्तमानमें आप जैन स्कूल सुजानगढ (बीकानेर) में धार्मिक शिक्षण दे रहे है। इस प्रकार जीवनके ४० वर्ष धार्मिक पठन पाठनमें समर्पित किये है। परन्तु आपने इसे जीवनका आनन्द ही माना है।

बाबू मानिकचन्दजी एडवोकेट

तीर्थ भक्त बाबू मानिकचन्दजी एम० ए०, एल-एल० बी० एक लब्ध प्रतिष्ठित एडवोकेट हैं। और अपने गौरवशाली सेवा भावके लिए विशेषरूपसे प्रसिद्ध हैं। पिछले ३० वर्षोंसे आप श्री दि० जैन सोनागिर सिद्ध क्षेत्र प्रबन्धक कमेटीके मंत्री हैं तथा आपकी निगरानीमें क्षेत्रकी प्रगति एवं उन्नयन अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची है।

आप श्रीमान् सेठ पं० कन्हैयालालजीके सुपुत्र है। और वर्तमानमें इनकमटैक्सके मामलोंमें शासनकी ओरसे पैरवी करते हैं।

आपकी सबसे बड़ी कीर्तिमय खूबी यह है कि धार्मिक संस्था या मंदिरोंके केश आप बिना कुछ फीस लिए पूर्ण सेवा भावसे करते हैं। जब आप हाईकोर्टमें जुडीशियल काम करते थे तो मवक्किल जो भी अपनी हैसियतसे फीस दे पाता था उसे ही सहर्ष स्वीकार कर लिया करते थे। आप किसी भी कानूनी सलाहकी कोई अतिरिक्त फीस नही लिया करते हैं।

आप कई जैन और जैनेतर संस्थाओंके पदाधिकारी हैं और सामाजिक कार्योंमें पूरी शक्तिसे हाथ बटाते हैं।

आप सन्तोषी, धार्मिक वृत्ति एवं सेवाभावी व्यक्ति हैं। आपका परिवार भी धार्मिक नैष्ठिक वृत्तिसे सम्पूरित सम्पन्न एवं वैभवपूर्ण है।

पं० महेन्द्रकुमारजी 'महेश' शास्त्री

●

महेशजीका जन्म आसोज कृष्णा द्वादशी विक्रम संवत् १९७५ में हुआ। आपके पिता श्री चुन्नीलालजी है व माता नाथीबाई है। आप परिवारमें दो भाई दो बहन है। आपकी पत्नी लक्ष्मीदेवी हैं। आपने माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन परीक्षालय सोलापुरसे शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की।

आप दिगम्बर जैन बोर्डिंग ऋषभदेवमें गृहपति व प्रधानाध्यापक रहे। प्रतापगढ़, उदयपुर, डूंगरपुर, छाणी, कोटा, महावीरजी, बड़नगरकी शिक्षा संस्थाओंमें कुशलतासे कार्य किया। महासभा और जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा तथा मालवा प्रान्तिक सभाकी ओरसे महोपदेशक रहे।

आपने माताजी (आर्यिका-परिचय), अर्चना (देवशास्त्र गुरुपूजा), त्रिलोकसार (तीन लोकका पद्यात्मक संक्षिप्त वर्णन) पुस्तकें लिखकर प्रकाशित कराईं और श्रेयो मार्ग मासिक-पत्रका सम्पादन किया। आप वेदी प्रतिष्ठा, बिम्ब प्रतिष्ठा, सिद्ध चक्र विधान कार्य करानेमें निपुण हैं। तिनसुकिया समाजने आपको अभिनन्दन पत्र दिया।

●

पं० मनोहरलालजी

●

जन्मस्थान एवं जन्म तिथि : सिरगन (ललितपुर) जिला–झांसी (उ० प्र०) सन् १९०२।

शैक्षणिक योग्यता : शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य क्रमश. जैन संस्कृत वर्णी महाविद्यालय सागर एवं आयुर्वेद विद्यालय कानपुर।

शिक्षागुरु : श्री पं० मुन्नालालजी एवं प्रातः स्मरणीय पूज्य गुरुदेव वर्णीजी।

समाजसेवा : चालीस वर्ष जैन संस्थाओंका अध्यापन कार्य। २० वर्ष पूज्यपाद स्व० गणेशप्रसादजी वर्णी द्वारा संस्थापित संस्कृत विद्यालय बरुआसागर (झाँसी) में अध्यापन कार्य किया। और पाँच लाख ध्रौव्य फण्ड करनेके संकल्पको पूर्ण कर सन् १९५५ में त्याग-पत्र।

●

श्री मिश्रीलालजी पाटनी

●

'भैया साहब' के उपनामसे लश्करमें अपनी सामाजिक सेवाओंके लिए श्री मिश्रीलालजी पाटनी विश्रुत हैं। पाटनीजी-का जन्म अलवर (राजस्थान) में सवत् १९६२, पौष कृष्णा पंचमीको खण्डेलवाल परिवारमें हुआ था। आपके पिता श्री सुन्दरलालजी व माता विदुषीरत्न श्रीमती सुन्दरीबाईजी बडे सेवा-भावी एवं धार्मिक स्वभावके थे। अल्पायुमें पिताजीका देहावसान हो जानेसे घरके भरण पोषणका उत्तरदायित्व आप पर आ पडा।

आप २९ वर्षकी आयुमे अलवरसे लश्कर आये और यहाँ एक मोटरवालेकी दुकान पर मुनीमीका कार्य तीस रु० माह पर करने लगे। दुकानके भवनकी मालिक लब्ध प्रतिष्ठित वयोवृद्धा नोलखीबाई धर्मपत्नी सेठ रखीलालजी पाटनी थी। उक्त दुकान पर कार्य करते हुए आपको व्यवहार कुशलता, परिश्रम और बुद्धिमत्ता आदि गुणोंकी छाप वृद्धा माँ पर पडी। जब माँने इनसे ग्राम जमीदारीके कायमें कुछ सहयोग चाहा तो स्वेच्छासे आपने माँजीको सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। कुछ समयके पश्चात् जब माँ नोलखीबाईने आपको दत्तक पुत्रके रूपमें लेनेकी बात रखी तो माँके वात्सल्य और प्रेम वश आपने स्वीकारता दे दी।

आपका पाणिग्रहण संस्कार लश्करमें सेठ लखमीचन्दजी बोहराकी सुपुत्री श्रीमती अशरफीबाईके साथ हुआ। आपका जीवन दिनोंदिन धार्मिक व्रतोंके पालन और जिनेन्द्रप्रभुकी भक्तिमें व्यतीत होने लगा।

एक बार लश्करमें चारित्र चक्रवर्ती आ० शान्तिसागरजी महाराजका संघ आया। जिसमें आपने पचास हजार रु० रखनेका परिग्रह परिमाण व्रत लिया।

सामाजिक सेवायें : आपने माँके कथनानुसार एक ग्राम जो जमींदारीका था, विक्रय करना चाहा जो अन्तमें करीब एक लाख रुपयेमें विक्रय हुआ। इस धनराशिमेंसे आपने कुछ आंशिक भाग पुण्य कार्यमें दान किया। निर्धन और दुखियोंको सहयोग देनेकी आपकी प्रवृत्ति स्तुत्य है। आपने सामाजिक एवं धार्मिक हित साधनाके लिए पाँच सौ रुपया प्रतिवर्ष दान करनेका नियम ही लिया है।

हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलनमें आपने यहाँकी समाजका अच्छा नेतृत्व किया था। सम्मेदशिखर आन्दोलन, साहित्य प्रदर्शनी अखिल जैन मिशन अलीगंज आदिमें आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। सोना-गिरि सिद्धक्षेत्र तथा स्थानीय बाजार मन्दिरमें आर्थिक सहयोग दिया।

सफलता प्राप्तिके गुण आपमें विद्यमान हैं।

आप ३५ वर्ष तक जैन पंचायती मन्दिरके अध्यक्ष तथा स्थानीय विभिन्न सामाजिक संस्थाओंके अध्यक्ष, मन्त्री और संयोजक जैसे विविध उत्तरदायी पदों पर रहे।

एक बार आ० श्री देशभूषणजी महाराजको आहार देते समय आपके घर सुगन्ध-जलकी बूँदोंकी वर्षाका अतिशय हुआ था जो कुछ बूँदे गिरनेके बाद बन्द हो गयी थी।

●

श्री माईदयालजी

●

जन्म : २७ जुलाई १९०१ नगर गोहाना जि०–रोहतक हरियाणा ।

परि परिचय : पिता ला० सुमेरचन्द, माता-श्रीमती चमेलीदेवी मध्य श्रेणीके बर्तनोंके व्यापारी ।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा नगर से । १९२१ में सोनीपतसे हाईस्कूल परीक्षा । १९२५ में हिन्दू कालेज दिल्लीसे बी० ए० (आनर्स) । १९३२ में पंजाब विश्वविद्यालयसे बी० टी० (प्रशिक्षण-उपाधि) ।

आर्थिक उपार्जन एवं समाज सेवा : शिक्षकके पद पर कार्य कर समाज सेवाके साथ आर्थिक उपार्जन किया । अम्बाला, लक्ष्मीचन्द जैन हाईस्कूल भेलसा (विदिशा), सनावद और दिल्लीमें क्रमशः १९२८ से १९६१ तक अध्यापन कार्य । १९६१ से अवकाश ग्रहण किया ।

साहित्यिक सेवायें : अपने सेवा कालमें साहित्य सृजन कर अपनी प्रतिभाको चहुँमुखी किया । आपकी मौलिक रचनायें—१. सदाचार, शिष्टाचार और स्वास्थ्य २. हमारा विधान ३ अशोक ४. सरकार कैसे चलती है ५ स्वतन्त्र देशके नागरिक ६ बाहुबलि और नेमिनाथ ७ डा० ज्योतिप्रसाद ८. हिन्दी शब्द रचना ९. नेहरू ऐसे थे ।

अनुवाद : १०. प्रभावशाली जीवन ११ टूटे हुए पर १२. अगुआ और बन्फ़सेका फूल १३. यात्री १४. रेत और झाग १५. घाटीको परियाँ १६. बापूकी झाँकियाँ १७ धरतीके देवता १८. जिब्रानके गद्य गीत ।

सकलन—१९. गान्धी विचार रत्न ।

रूपान्तर—२०. हरिवंश, पाण्डव आदि कथा २१. प्रद्युम्नकुमार ।

पत्रकारिता—१८ वर्षकी आयुसे विविध हिन्दी एव अंग्रेजी पत्रोंमें लिखना प्रारम्भ एवं सतत लेखनी चल रही है । १९२६-५४ तक 'जाति प्रबोध' (मासिक) आगराका सम्पादन ।

आप उग्रवादी समाज सुधारक, मिलनसार, समन्वयवादी एवं कुरीतियोंके उन्मूलनकर्ता है ।

पारिवारिक जीवन : आपके तीन विवाह हुए दो पत्नियोंका स्वर्गवास हो गया । वर्तमान पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवीसे दो पुत्र एवं दो सुपुत्रियाँ हैं ।

●

पं० मुन्नालालजी 'कौशल'

●

जन्म स्थान एवं जन्म तिथि : ग्राम–धनगौल (ललितपुर), सन् १९२५ ।

वर्तमान पता : ललित पुस्तक भण्डार, ललितपुर (उ० प्र०) ।

शैक्षणिक योग्यता : धर्ममें सिद्धान्त शास्त्री, संस्कृतमें मध्यमा । इन्दौर और मुरैना विद्यालयोंसे शिक्षा प्राप्त की ।

सम्प्रति : स्टेशनरी एवं पुस्तक विक्रेता एवं प्रतिष्ठादि कार्य ।

धार्मिक कार्य : आपने उज्जैन, गुना, फीरोजाबाद, ललितपुर, थूवौनजी आदि विशिष्ट स्थानोंमें ११ पंचकल्याणक

प्रतिष्ठायें एवं गजरथ महोत्सव सम्पन्न करवाये तथा प्रतिवर्ष सिद्धचक्र मण्डलादि विधान करवाते रहते हैं, जिसके द्वारा धर्म प्रभावना कार्य करते हैं।

सम्पादित रचनायें : श्री सच्चिदानन्द भजनावली एवं अभिषेक पाठ, 'नित्य पाठावलि'।

व्यक्तित्व : आपने श्री १०८ आ० शिवसागरजी महाराजके समक्ष नैष्ठिक श्रावकके व्रत ग्रहण किये हैं। आपको अपने प्रतिष्ठादि कार्यकी कुशलता एवं धर्म प्रभावनाके कारण कई बार सम्मानित उपाधियाँ प्राप्त हुईं। कलाकोविद, प्रतिष्ठाचार्य, वाणीभूषण, प्रवचन विशारद एवं व्याख्यान वाचस्पतिकी उपाधियाँ आपको समाज द्वारा सम्मानार्थ दी गयीं। आपका व्यक्तित्व प्रभावक एव नेतृत्वशील है।

●

श्री मदनमोहनजी 'पवि' कानोड़

●

श्री मदन मोहन जैन 'पवि' एम० ए०, बी० एड०, सा० रत्न पिता श्री पं० उदय जैन, संस्थापक एवं संचालक श्री जवाहर विद्यापीठ एवं जैन शिक्षण संघ, कानोड़ (राजस्थान) का जन्म १९९३ (संवत् प्रथम भाद्र शुक्ल पक्षकी त्रयोदशी रविवार श्रवण नक्षत्रमें हुआ। १९५३ ई० में हाई-स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की। लगातार अस्वस्थ रहनेके फलस्वरूप आगे पढ़नेका इरादा छोड़ दिया। ७ वर्ष तक निरन्तर गुरुकुलोंमें अध्ययन किया। अध्यापन कार्यमें विशेष रुचि होनेके कारण शिक्षकका कार्य करते रहे हैं। पुन चेतनाके फलस्वरूप १९६८ ई० में एम० ए० (हिन्दी) द्वितीय श्रेणीसे उत्तीर्ण की। १७ वर्षोंसे धार्मिक एवं साहित्यिक क्षेत्रमें विशेष रुचि रही है। धर्म-क्षेत्रमें धर्म-रत्न तकका अध्ययन किया है।

उदय कालीन नवोदित लेखक व कवि है। स्वास्थ्य, पुनर्जन्म, मन पर विजय, संसार असार है, गौसंरक्षण संबंधी लेख विशेष उल्लेखनीय है। कविताएँ आध्यात्मिक एवं सुधारवादी हैं।

१ वसुमती २ गौ धन ३. महावीर नन्दन ४. सुख मार्ग ५. सुधर्मा ६ धर्म-ज्योति ७ सम्यक्दर्शन ८. तरुण जैन ९. ओसवाल हितैषी १०. जैन प्रकाश ११. आलोक आदि पत्र पत्रिकाओंमें कविताएँ एवं लेख प्रकाशित होते रहे हैं।

बाल्यकालसे ही फलितज्योतिषमें विशेष रुचि रही है। अवकाशके क्षणोंमें धार्मिक शिक्षणका भी कार्य करते हैं।

रजत-जयन्ती ग्रन्थों एवं अभिनन्दन ग्रन्थोंमें भी आपके लेख प्रकाशित हुए हैं। समाज सुधारमें आपका योग सराहनीय है।

●

पं० मूलचन्द्रजी

●

जन्मस्थान : ललितपुर जिला-झाँसी (उ० प्र०)। जन्म तिथि : सन् १९२५।

शैक्षणिक योग्यता एवं पद : शास्त्री, एम० ए०, साहित्यरत्न। एम० जे० पी० एच०। व्याख्याता वि० जैन उच्च० माध्यमिक विद्यालय सनावद (म० प्र०)।

विशेष अध्ययन : संस्कृत विषयके अतिरिक्त हिन्दीमें एम० ए० गुजराती भाषाका लेखन एवं पठनमें दक्ष।

धार्मिक सामाजिक एवं साहित्यिक सेवायें :

शास्त्र प्रवचन, विधान एवं प्रतिष्ठादि कार्य, लग्न संस्कार आदिमें प्रवीण। कवि सम्मेलनोंमें सक्रिय भाग लेकर कविताके क्षेत्रमें प्रतिभावान व्यक्ति हैं। विविध पत्र पत्रिकाओंमें लेख आदि रचनायें प्रकाशित।

●

ब्र० माणिकचन्दजी कासलीवाल

●

पिता : श्री भागचन्दजी कासलीवाल।
माता : श्रीमती सौ० जमनाबाई।
जन्मस्थान : खेडले परमानन्द जिला-अहमदनगर (महाराष्ट्र)।
शिक्षा : कारंजामें शास्त्री तक (आचार्य-गुरु पू० १०८ आ० समन्तभद्रजी महाराज)।
एक चारित्रवान विद्वान् हैं। आत्मकल्याणके साथ धर्म समाजके हितमें सदैव अग्रणी हैं।

●

श्री मल्लिनाथजी शास्त्री

●

आपका जन्म मद्रास प्रान्तमें मंजपट्टु गाँवमें २ अक्टूबर १९१८ को श्री पार्श्वनाथ जैनके घर माँ पद्मावतीदेवीकी कोखसे हुआ। आपके जन्म होनेके एक माह बाद आपकी मातु श्रीका देहावसान हो गया और आप अपनी नानीके यहाँ पाले पोसे गये। व हीं तिरुमालपाडि गाँवमें आपकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। इसके बाद धार्मिक अध्ययन हेतु चित्तामूर जैन-मठालयमें १९३५ से १९४० तक रहे और वहाँ रहकर आपने गोमटसार तक अध्ययन किया। ज्ञानकी पिपासा कम नही हुई और आप दक्षिण प्रान्तसे मोरेना महाविद्यालयमें श्री पं० मक्खनलालजी शास्त्रीके सान्निध्यमें आये। यहाँ आपने १९४१ से ४५ तक रहकर न्यायतीर्थ और शास्त्रीकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् हिन्दीके प्रति विशेष अभिरुचि जाग्रत हुई और आपने १९४७ में हिन्दी प्रचारक विद्यालय मद्राससे राष्ट्रभाषा प्रवीण (हिन्दी) परीक्षा उत्तीर्ण की।

प्रारम्भमें आपकी रुचि व्यापारकी ओर रही, परन्तु आपने हिन्दी अध्यापनके कार्यको ही श्रेष्ठ समझकर 'त्यागराज कॉलेज स्कूल मद्रास २१ मे १९४७ में हिन्दी अध्यापक नियुक्त हुए और वहाँ १९६९ तक सेवायें की। इसके पश्चात् आप जे० एस० एम० एन० स्कूल मद्रास २१ में व्यावहारिक अध्यापकके पद पर कार्य करने लगे। सम्प्रति उसी पद पर आसीन हैं। आपके आर्थिक-उपार्जनका मुख्य स्रोत यही अध्यापन कार्य रहा।

साहित्यिक अभिरुचियाँ

आपने हिन्दी और तमिल, दोनों भाषाओंमें लिखना प्रारम्भ किया और आपके कई लेख जैन संदेश, जैन दर्शन जैसे जैन हिन्दी साप्ताहिक पत्रों तथा नल्लरम (तमिल) पत्रमें प्रकाशित हुए। इसके अलावा भ० ऋषभदेव (पं० कैलाशचन्द शास्त्री) का तमिलमें अनुवाद प्रकाशित हुआ, आपके तीन ग्रन्थ—सूक्तिमुक्तावली, सज्जन चिदवल्लभ (तमिल-पुस्तकें) तथा अरनेरिच्चारम (तमिल पद्य) का हिन्दी अनुवाद अप्रकाशित है। आप एक अच्छे वक्ता भी हैं।

आपकी धर्मपत्नी सरोजादेवी हैं जिनमें दो पुत्रोंका सुयोग प्राप्त है। धर्म प्रचारमें आपकी विशेष अभिरुचि है।

●

श्री मगनलालजी 'कमल'

●

आप एक उदीयमान प्रतिभाशाली कवि हैं। आपका निवास स्थान साढौरा (ग्वालियर) राज्य है।

'कमल' जी बाल्यावस्थासे ही कवि कर्ममें संलग्न है। अपनी अन्तर्वेदनासे प्रेरित होकर ही आप अपने कर्ममें प्रवृत्त होते हैं। आघात, प्रिये लिखनेके लिए आपकी कलम सहज भावसे चल पडती है। आशा है, एक दिन यह कवि अपने सुवाससे साहित्यके उद्यानको अवश्यमेव सुवासित करेगा।

प्रतिभावान साहित्यकारके रूपमें आप सदैव स्मरण रहेंगे।

●

श्रीमती मैनावतीजी

●

"बीत गए है दिन, उजड चुकी है बस्ती मेरी" यह श्री मैनावतीके हृदयके स्वर है। अकृत्रिम और यथार्थ। अपने विषयमें यह लिखती हैं।

"मुझे कवियित्री बनने या कहलानेका अभिमान नही, दावा नही और इच्छा भी नही, परन्तु अपने इन असहाय पीडा भरे शब्दोंको आँसूकी लडियोंमें गूँथनेका रोग-सा हो गया है। यह मेरा रोग भी है। और मेरे रोगकी सर्वोत्तम औषधि भी है।

उनके जीवनमें दुःख वज्रकी तरह अचानक आ टूटा। १८ फरवरी सन् १९४२ को इलाहाबादके पास खागा स्टेशन पर जो रेल दुर्घटना हुई थी, उसमें इनके पतिश्री विमलप्रसादजी जैन, बी० काम० देहली, स्वर्गवासी हो गये थे। उस समय इनके विवाहको ठीक एक वर्ष हुआ था।

उसी दिनसे यह मनके गहरे विषादको आँसुओंकी धारामे बहानेका प्रयास कर रही हैं। इनकी कवितामें शब्दोंकी सुकुमारता और शैलीका सुन्दर समावेश भले ही न हो, किन्तु हृदयकी व्यथा अवश्य है।

श्री मैनावतीका जन्म सन् १९२५ में इलाहाबादमें स्वर्गीय ला० शम्भूदयाल जैनके घरमें हुआ। विमल पुष्पाञ्जलि' नामसे आपकी धार्मिक कविताओंका एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है।

●

श्रीमती मणिप्रभादेवीजी

•

श्री मणिप्रभादेवीको ही इस बातका मुख्य श्रेय है कि उन्होंने वर्तमान जैन समाजकी महिलाओंको कविता रचनेके लिए प्रेरणा दी और उनकी कविताओंको 'जैन महिलादर्श' नामक मासिक पत्रमें कविता मन्दिरके अन्दर छाप-छाप कर लेखिकाओंको प्रोत्साहित किया। आप प्रारम्भसे ही कविता मन्दिरकी संचालिका हैं। जिसे आपने योग्यतासे सम्पादित किया।

आपने स्वयं भी बहुत सुन्दर कविताएँ की हैं। जिनमें ओज और माधुर्य दोनों ही गुण पाये जाते हैं।

आप सुकवि श्री कल्याणकुमार 'शशि' की धर्मपत्नी है। सरलता, सौम्यता, सहज स्वाभाविक साहित्यक अभिरुचिकी आप मूर्ति हैं। 'शशिजीकी काव्य साधनामें आप मूल प्रेरक सहयोगी हैं। जैन समाजकी विदुषी नारियोंमें आप सदैव स्मरणीय रहेंगी।

श्री यशपालजी जैन

श्री यशपालजी जैनका जन्म १ सितम्बर १९१२ को विजयगढमें हुआ।

आपने कानूनकी परीक्षा प्रयाग विश्वविद्यालयसे वकालत करनेकी दृष्टिसे सन् १९३७ में उत्तीर्ण की। लेकिन आपने लेखन और पत्रकारिताको ही चुना। नवीं कक्षामे अध्ययनके समय एक उपन्यासकी रचना की तथा विद्यार्थी कालमें ही अनेक कथाएँ और कविताएँ लिखी जो प्रमुख पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुई।

आपका नियमित रूपसे लेखन सन् १९३७ से प्रारम्भ हुआ। साहित्य एवं संस्कृतिपर विशेष रूपसे लिखनेके अतिरिक्त आपने विविध विषयोंपर भी विशाल साहित्यिक रचना की है। भारतकी प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओंमें आपके लेख व निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं।

जैनधर्म एवं पंच महाव्रतोंमें आपकी गहरी आस्था है और उन्हीके अनुसार जीवन-यापनका प्रयत्न करते है। सर्व धर्मोंके प्रति आपका समभाव है। बौद्ध धर्मका आपने विशेष अध्ययन किया है। आप मानते हैं कि अहिंसाके बिना मानव जाति सुखी नही रह सकती। अपनी रचनाओंमें आपने विभिन्न देशोंके व्यक्तियों को संस्कृतिके माध्यमके द्वारा भारतके निकट लानेका प्रयत्न किया है। अपने लेखनमें आप मानवीय मूल्योंकी स्थापनापर विशेष बल देते है।

नगरकी अनेक सांस्कृतिक एवं साहित्यिक संस्थाओमें आपका विशिष्ट स्थान है। आप हिन्दी भवन, राष्ट्र भाषा प्रचार समिति और चित्रकला संगम जैसी प्रसिद्ध संस्थाओंके संस्थापक सदस्य एवं उपाध्यक्ष हैं। सारे भारतके जैन समाज एवं साहित्यिक जगत्में आपका विशेष आदर है।

आपने देश एवं विदेशोंका विस्तृत रूपसे भ्रमण किया है। रूसकी दो बार यात्रा भारतीय शिष्ट-मडलके सदस्यके रूपमें की है। १९६३ में अखिल बर्मा हिन्दी साहित्य सम्मेलन, रंगून द्वारा आमन्त्रित होने पर वहाँ दीक्षान्त भाषण दिया एवं उसी समय बर्माके अतिरिक्त थाईलैंड, कम्बोडिया, दक्षिण वियतनाम, सिंगापुर और मलायाकी यात्रा की। आपने दो बार नेपाल, थाईलैड एवं सिंगापुरकी यात्रा स्वतन्त्र रूपसे भी की है।

रचनायें

मौलिक कहानी संग्रह—१. नव प्रसून, २. मैं मरूँगा नही, ३. एक थी चिडिया, ४. सेवा करे सो मेवा पावे, (इनमेंसे कई कहानियोंका विभिन्न भारतीय भाषाओंमें तथा रूसी भाषामें अनुवाद हो चुका है)

कथाकार : १. बैताल पच्चीसी, २. सिंहासन बत्तीसी।

उपन्यास : निराश्रित (केवल धारावाहिक रूपमें प्रकाशित)

यात्रा वृत्तान्त : १. जय अमरनाथ, २. उत्तराखंडके पथपर, ३. रूसमें छियालीस दिन (नेहरू सोवियत भूमि पुरस्कारसे पुरस्कृत), ४. कोणार्क, ५. जगन्नाथपुरी, ६. अजन्ता एलोरा, ७. गोमुख, ८. पडौसी देशोंमें-दक्षिण पूर्वी एशियाई देश तथा नेपाल और अफगानिस्तान (उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत) आदि।

अनुवाद

१. विराट (स्टीफेन ज्विगके उपन्यास विराट आर दी आईज आफ दी अम्डाइंग ब्रदर), २. जिंदगी दाँवपर (स्टीफेन ज्विग के दो उपन्यासों Twenty Hours In A Woman's Life, और Letter From An Unknown Woman का एक जिल्दमें अनुवाद)

संग्रह एवं सहयोगी तथा स्वतन्त्र सम्पादन पत्र

१. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, २. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, ३. राजेन्द्र बाबू व्यक्तित्व दर्शन, ४. नेहरू व्यक्तित्व और विचार, ५. गांधी, व्यक्तित्व विचार और प्रभाव, ६. संस्कृति के परिव्राजक (काका कालेलकर अभिनन्दन ग्रन्थ) ७. गांधी संस्मरण और विचार, ८. समन्वयी साधक, ९. प्रेरक साधक (श्री बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रंथ), १०. समाज विकास माला, आदि-आदि ।

पत्र सम्पादन

भूतपूर्व सम्पादक . 'जीवन सुधा' मासिक, 'मधुकर' पाक्षिक । सन् १९४७ से सस्ता साहित्य मण्डल की पत्रिका 'जीवन साहित्य' का सम्पादन कर रहे हैं ।

●

पं० युगलकिशोर 'युगल'

●

प० युगलजी ऐसे प्रभावी व्यक्ति है जिनमें अभिमान छू तक नही गया जो रहन-सहनमें सादगी लिये है । परन्तु ज्ञान गरिमामें बडे शाही है । आपका जन्म राजस्थानके कोटा जिलान्तर्गत खुरी नामक ग्राममे हुआ था । जन्मसे वैष्णव हैं परन्तु गोद लिये जानेपर दिगम्बर जैन तेरापंथी आम्नायमें दीक्षित हो गये । आपके पिता श्री देवीलाल जैन एवं मातुश्री श्रीमती कान्तीबाई है । जन्मदात्री माँ श्रीमती केशरबाई है ।

आप स्व० ज्ञानचन्दजीके संरक्षणमें रहकर सत्पथकी ओर बढे जिनसे आपको नित नूतन प्रेरणायें प्राप्त होती रही । आपने १९५० मे साहित्य सम्मेलन प्रयागसे साहित्यरत्नकी तथा १९५६ में आगरा विश्वविद्यालयसे एम० ए० की उपाधि प्राप्त की । शिक्षा ग्रहण करनेके बावजूद नौकरीकी ओर ध्यान नही दिया और जीविकोपार्जन हेतु स्वतन्त्र कपडे के व्यवसाय को ही चुना ।

साहित्यका पुजारी : व्यापार व्यवसायमें डूबे नहो अपितु अपने समयका उपयोग साहित्याराधनामें बिताया । आपमें साहित्यिक प्रवृत्तिका उदय अध्ययनकालसे ही हो चुका था । आपकी वक्तृत्व-कलामें प्राञ्जल भाषा, युक्त गहन एव चिन्तनशीलता है । आप निबन्धकारके साथ-साथ कवि एवं नाटककार भी है । कवित्व शक्तिका उदाहरण आपकी देवशास्त्र गुरु पूजन है जो पूरे देशमें अत्यन्त लोकप्रिय बन गयी ।

अनेक निबन्धोंके अलावा आपने 'पूजा', 'निर्झर', 'नीरव' तथा नियमसारका पद्यानुवाद आदि कृतियाँ लिखी जो प्रकाशित हो चुकी । अप्रकाशित कृतियोंमें 'भरत बाहुबलि' (नाटक) तथा 'परिवर्तन' प्रमुख हैं ।

आप जैन आगमके अध्येता हैं जिसकी झलक आपकी सभी गद्य और पद्य रचनाओंमें मिलती है । साहित्य सृजन जैसे आपका सहज स्वभाव हो । उत्तम लेखन और प्रवक्ता शैलीके धनी है ।

●

डा० पं० यतीन्द्रकुमारजी

साहित्यालंकार, प्रतिष्ठाचार्य डाक्टर पं० यतीन्द्रकुमारजी का जन्म आजसे लगभग ५५ वर्ष पूर्व गांधी नगर आगरा, उत्तर प्रदेशमें हुआ। आपके पिता श्री स्वर्गीय कुंजविहारीलालजी शास्त्री कवि दिवाकर थे।

आप बचपनसे ही प्रसिद्ध वक्ता, कियाकाड विशेषज्ञ, सफल चिकित्सक, मन्त्र शास्त्र एवं ज्योतिषशास्त्रके प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आपको समाज सेवा करते हुए आज करीब चालीस वर्ष हो गये हैं। आपने कई महाविद्यालयों, औषधालयों आदिमें अपनी सेवाएँ अर्पितकर यश कीर्ति प्राप्त की। आपको पचकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठाओं आदिका पर्याप्त शास्त्रोक्त ज्ञान है। आपने धार्मिक कार्योंके सम्पादनमें विभिन्न स्थानोंसे समाज द्वारा काफी सम्मान प्राप्त किया। आप धार्मिक विद्वान् होते हुए भी प्रतिभावान साहित्यकार विद्वान् भी हैं। आपने निम्नलिखित ग्रन्थों एवं पुस्तकोंका अब तक निर्माण किया है जो आपकी यशकीर्तिमें चार चाँद लगाए हैं :

१. चतुर्विंशति शासनदेवी विधान, २ क्या हम अहिंसक हैं ? ३. स्याद्वाद सूर्य, ४ गन्धक कल्प, ५. मायाबीज कल्प आदि।

जितनी आपकी लेखनी सशक्त एवं प्रौढ है भाषण और धार्मिक क्रिया शैली उतनी प्रभावक है।

पं० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थ

पं० राजेन्द्रकुमारजी न्यायतीर्थका जन्म ५ मार्च सन् १९०५ में कासगंज जिला एटा उत्तर प्रदेशमें हुआ था। आपके पिताका नाम लाला नन्हेंमलजी व माताजी श्री सुखवंतीदेवी थी। आपके पिता गावके जमीदार थे व कपड़ेका व्यापार करते थे। आपकी धार्मिक तथा लौकिक शिक्षा साधारण हुई। आपने बनारसमे करीब पाँच वर्ष तक, मुरैनामें लगभग तीन वर्ष तक अध्ययन किया। आपने विवाह नही किया।

बचपनसे ही आपकी रुचि पढने तथा पढ़ानेकी ओर थी। आपको कई जगहमे पुरस्कार तथा प्रमाणपत्र मिले। किन्तु आपने पुरस्कार लेनेसे इन्कार कर दिया। आपको न्यायशास्त्रका उच्च ज्ञान है। आपने मुरैनामें अध्यापककी तरह कार्य किया। आप जैन संस्कृति मासिक पत्रिकाके प्रधान सम्पादक है जो दिगम्बर जैन संस्कृति सेवक समाजकी मुख-पत्रिका है।

आपने कुछ समय तक शास्त्रार्थ संघ अम्बालामें रहकर समाजसेवा की। यही बहिन चम्पावतीको पढाया और उनके स्वर्गवास हो जानेपर उनकी स्मृतिमें एक पुस्तक मालाकी स्थापना की। फिर आप मथुरामें आ गये। यहां शास्त्रार्थ सघका भवन बनवाया। कपड़ेका व्यापार किया और फिर दिल्लीके चाँदनी चौकमें दूकान खोली। अनन्तर आप फिरोजाबाद चले गये और वहाँ भी आठ-दस वर्ष तक रहे। इसके बाद मथुरा आ गये और दिगम्बर जैन संस्कृति सेवक समाजकी स्थापना कर जैन सस्कृति पत्रिकाके साथ अनुपलब्ध ग्रन्थों का प्रकाशन करने लगे।

पण्डितजी बडे अनुभवी और विद्वान् हैं। शास्त्रार्थ संघको वस्तुतः शास्त्रार्थ संघ बनानेवाले आप ही है। आपकी यह इच्छा रहती है कि यदि समाजको जीवित रहना है तो उसे अपने विशिष्ट विद्वानोंको किसी भी कीमत पर जीवित रखना ही होगा। पंडितजी समय-समयपर पर्यूषण पर्वपर बाहर जाकर भी धर्म और समाजकी सेवा करते है।

प्रो० राजकुमारजी साहित्याचार्य

निवासस्थान . गुंदरापुर (झाँसी)
जन्म : १५ अक्टूबर १९१७।

शिक्षा . साहित्याचार्य (ग० सं० कालेज-बनारस), न्याय-काव्य-तीर्थ (कलकत्ता), एम० ए० (आगरा विश्वविद्यालय)।

अध्यापन : वीर दि० जैन विद्यालय पपौरा, दि० जैन कालेज बडौत तथा वर्तमानमें आप आगरा कालेजमें संस्कृत विभागाध्यक्ष हैं।

लेखन : आलोचना, कविता, जीवनी एवं संस्मरण।

सम्पादित ग्रन्थ : मदनपराजय, प्रशमरतिप्रकरण, बृहत्कथाकोष (अनुवाद), पार्श्वाभ्युदय (गद्य-पद्यानुवाद), जसहर-चरिउ आदि।

प्रो० राजकुमारको प्रारंभिक शिक्षा अपने मामा श्री वृन्दावनलाल जी प्रधानाध्यापकके संरक्षकत्वमें मिली। बादमें वीर विद्यालय पपौरा तथा स्याद्वाद महाविद्यालय काशीमें मुख्यतः संस्कृतका ही अध्ययन हुआ।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशीमें दो वर्षतक कतिपय संस्कृत-हिन्दी-ग्रन्थोंके सम्पादनमें योग दिया।

आपको बचपनसे ही जीवनके कठोरतम संघर्षोंसे जूझना पड़ा। इनमें उसको बहुत शक्ति क्षीण हुई और साहित्य-सृजनमें बाधा भी आई; परन्तु उत्साह उद्दीप्त ही रहा। परिणामस्वरूप इस कालमें भी इन्होंने कुछ लिखा और एक बृहत् परिवारके मुख्यत्वके दायित्वका निर्वाह करते हुए भी अंग्रेजीमें एफ० ए०, बी० ए० तथा संस्कृत लेकर एम० ए० प्रथम श्रेणीमें किया।

●

पं० रतनलालजी कटारिया

●

पं० मिलापचन्द रतनलाल कटारियाके युगल नामसे प्रसिद्ध पं० रतनलालजी, पिता श्री प० मिलापचन्दजीके प्रथम पुत्र हैं। सुयोग्य पिताके योग्य पुत्रने अपने पिताजीके काममें हाथ बटाकर साहित्य सेवा और धर्म सेवामें बड़ा योगदान दिया है। श्री प० मिलापचन्दजी मान्य-पडितके रूपमे धनाढ्य एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति थे तथा दि० जैन संस्थाके महामंत्री। आपका जन्म शुद्ध तेरापंथ आम्नायमे भाद्र शुक्ला पंचमी १९८६ को माँ श्री फूलबाईके घर हुआ था।

प्रारम्भिक शिक्षा अपने कस्बे केकड़ी (अजमेर) मे प्राप्त कर स्थानीय दि० जैन समन्तभद्र महाविद्यालयसे संस्कृत वाराणसेय मध्यमा (प्रथम खण्ड) ब्यावर केन्द्रसे उत्तीर्ण की। लौकिक शिक्षाके साथ संगीत, फोटोग्राफीमें दक्ष हैं।

साहित्य सेवा

२५ वर्षकी अवस्थासे गद्य रूपमें लिखना प्रारम्भ किया और अब तक सैंकड़ों निबन्ध लिख चुके हैं। आपके निबन्धोंका संकलन 'जैन निबंध रत्नावली' के रूपमें दो भागोंमें प्रकाशित हो चुका है तथा बहुतसे निबंध अप्रकाशित हैं। प्रायः आपने खोजपूर्ण निबंध लिखे जो समय-समयपर 'अनेकान्त', जैन संदेश (शोधांक), वीर वाणी और महावीर स्मारिका आदिमें प्रकाशित हुए हैं।

आपने १९६२-६३ में एक वर्ष अनेकान्त (द्वैमासिक) का सम्पादन भी किया है। साहित्यके प्रति विशिष्ट झुकाव आपकी अध्ययनशीलताका द्योतक है। आपने अपने पिता श्री पं० मिलापचन्दजी कटारिया के कार्यको और आगे बढ़ाकर अनेक पथका अनुसरण किया है वर्तमानमें जैन वाङ्मयके अधिकारी विद्वान् एवं सफल साहित्यकारके रूपमें जैन समाजके कर्णधार हैं।

●

पं० राजेन्द्रकुमारजी 'कुमरेश'

श्री प० राजेन्द्रकुमारजी कुमरेश एक सुप्रसिद्ध वैद्य ही नही सुपरिचित लेखक एवं साहित्यसेवी है। श्रीमान् तीर्थभक्त पं० जिनेश्वरदास शास्त्री आपकी फुआके लडके और श्रीमान् पं० कामताप्रसादजी शास्त्री न्यायतीर्थ आपके चाचा थे जिन्होंने अपना जीवन जैन तीर्थराज अयोध्याकी सेवामें अर्पण कर दिया और ब्राह्मण पंडोंसे तीर्थकी रक्षा की थी। आपकी जन्म भूमि बिलराम जिला एटा है। परन्तु सन् १९५३ में चन्देरी, जैन औषधालयमें मामाजिक सेवार्थ आये बादमें यही स्थायी निवास कर अपनी स्वतत्र रूपमे प्रेक्टिस करने लगे।

आपके पिता श्री ला० क्षुन्नीलालजी कपडेके प्रमुख व्यवसायी थे। मातुश्री कपूरीदेवीके गर्भसे सितम्बर १९१६ ई० में जन्म लिया। प्रारम्भिक शिक्षा बिलराम और श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम चौरासी मथुरामें लेकर आयुर्वेद कालेज कानपुरसे वैद्य विशारद सन् १९३६ में उत्तीर्ण की।

जीविकोपार्जन हेतु पहिले श्री महावीर विद्यालय जयपुर और जैन अकलंक विद्यालय कोटामें प्रधानाध्यापक पदपर कार्य किया। इसी बीच कुछ माह 'जैन गजट' (साप्ताहिक) कार्यालय सिवनीमें व्यवस्थापकी की। पुन: अपने 'वैद्य' व्यवसायमें प्रवेश किया और जैन औषधालय राघौगढ़, महावीर औषधालय करेरा (शिवपुरी) की स्थापना कर वहाँ ८ वर्ष और जैन औषधालय चन्देरीमें चिकित्सकके रूपमें समाज सेवाका पुण्य कार्य किया। समाजकी पराधीनतासे ऊबकर स्वतत्र 'वैद्य' रूपमें प्रेक्टिस प्रारम्भ की और अब इस क्षेत्रमें काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके है।

साहित्य-सेवा

आपको 'वैद्यक' के साथ-साथ साहित्यके प्रति लगाव रहा। बचपनसे ही कविता लिखनेकी अभिरुचि थी। यही साहित्य प्रेम आपको निरन्तर कुछ न कुछ लिखनेके लिए प्रेरित करता रहा। और आपने कविताओके अलावा कहानी लिखना प्रारम्भ किया। अब तक आपने 'काया गीत', भजन पच्चीसी, जैन वीरोंसे, जैन झण्डा गायन, अहिच्छत्र कीर्तन, विवाह, जीवन साथी, विदाकी वेला एवं महत्त्वपूर्ण पूजाएँ आदि काव्य-रचनायें, 'अंजना' (खण्ड काव्य), प्रतिज्ञा और प्रणाम दो नाटक तथा 'अपनी भूल' एक कविता संग्रह लिखा है। सभी प्रकाशित हो चुके है। इसके अलावा समय-समयपर सभी प्रमुख जैन पत्रिकाओं एवं धन्वन्तरि (मासिक) 'वैद्य', आरोग्य दर्पण तथा जैन प्रचारक (देहली) आदिमें आपकी कवितायें, लेख आदि प्रकाशित हुए। ३ वर्ष तक आपने 'जैन प्रचारक' का सम्पादन कार्य भी किया।

आपने अ० भा० दि० जैन लमेचूसंघ, जातीय संगठन एवं उत्कर्षके लिए प्रयत्नशील रहे। पब्लिक लायब्रेरी चन्देरीके अध्यक्ष हैं। वृद्धावस्था आ जानेसे द्वितीय पुत्र सुधीश चन्द्रने आपका उत्तरदायित्व सम्हाल लिया है और आपकी पूरी सहायता करते हैं। आप एम० बी० बी० एच० हैं।

आप १९४२ से ५० तक अ० भारतीय कांग्रेस कमेटीकी नगर कांग्रेस कमेटीके मंत्रित्व पदपर रहे। इस प्रकार राजनैतिक क्षेत्रमें भी आपकी अभिरुचि और झुकाव रहा।

पं० राजकुमारजी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

●

जैन समाजके प्रसिद्ध विद्वान् एवं लेखक पं० राजकुमार-जीका जन्म सकरौली जिला एटा (उ० प्र०) में मातु श्री सरस्वती देवी व पिता श्री रेवतीरामके घर हुआ ।

प्रारम्भिक शिक्षा सकरौली तथा माध्यमिक पाठशाला राजमल तत्पश्चात् स्याद्वाद महाविद्यालय बनारससे धर्म शास्त्री, साहित्य तीर्थ एवं आयुर्वेदाचार्यकी परीक्षायें उत्तीर्ण की थी ।

जीविकोपार्जन हेतु प्रारम्भमें जैन विद्यालय नवाई और सवाई माधोपुरमें प्रधान अध्यापक पदपर पुनः जैन औषधालय नवाईमें स्वतंत्र वैद्यकके रूपमें प्रथम श्रेणीमें प्रमाणित रजिस्ट्रेशन द्वारा एक सफल चिकित्सकके रूपमें कार्य कर रहे हैं। तथा स्थानीय श्री चन्द्रप्रभु दि० जैन विद्यालयमें प्रधानाध्यापक पदपर कार्यरत हैं।

सामाजिक सेवाओंके रूपमें आप लगभग १५ वर्षसे अखिल विश्व जैन मिशन अलीगंजके राजस्थान प्रान्त संचालक, श्री अतिशय क्षेत्र पद्मपुराकी प्रबन्ध समिति व कार्यकारिणीके सदस्य, श्री राष्ट्रीय कांग्रेसमें निवाई ब्लाकके लगभग ८ वर्षसे अध्यक्ष तथा चार वर्ष तक म्यूनिस्पल बोर्ड नवाईमें चैयरमैन ।

राजनैतिक क्षेत्रमें

राजनैतिक क्षेत्रमें १९१६ में कांग्रेसके सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग लेते समय घुड़सवार पुलिस द्वारा पीटा जाना तथा १९२१ के परीक्षाओंके बहिष्कार आन्दोलनमें बैंतोंसे पीटा जाना तथा एक दिनकी जेलकी सजा। डाकुओं द्वारा मुठभेड परन्तु वैद्यके रूपमें पहिचान कर उनके द्वारा ससम्मान छोड दिया जाना ।

धार्मिक एवं साहित्यिक सेवाएँ

श्री महावीरजी, देहली, सीकर, जयपुर आदि कई स्थानोंमें वेदी प्रतिष्ठाएँ सम्पन्न करवायी तथा सवाई माधोपुर, नवाई और वैद्य सूरि संस्कृत कार्यालय अयोध्या द्वारा अभिनन्दन पत्र सम्मानार्थ प्राप्त हुए ।

सभी जैन पत्र पत्रिकाओमें धार्मिक और सामाजिक सुधार हेतु अनेक लेख प्रकाशित हुए । वर्तमानमें लेखन कार्य सतत जारी है । शास्त्रोंके स्वाध्यायमें विशेष अभिरुचि । धार्मिक शिक्षण द्वारा ज्ञान दानका पुण्य कार्य । 'अहिंसा वाणी' मासिकमें आपके द्वारा लेख सचित्र प्रकाशित होते रहते हैं ।

●

पं० रतनचन्द्रजी लुहारी

●

पण्डित रतनचन्द्रजी जैनका जन्म १५-२-१९३६ में लुहारी ग्राम जिला सागरमें हुआ था । आपके पिता पंडित बालचन्द्रजी जैन व माताजी नाम अनिलप्रभा जैन था । आप गोलापूर्व जातिके भूषण व फुसकलीय गोत्रज हैं । आपके पिताजी एक प्रसिद्ध वैद्य व समाजसेवी व्यक्ति थे । आपके पिताजी मन्दिरोंकी

प्रतिष्ठा श्री सिद्धचक्र विधान तथा अन्य धार्मिक कार्य पूर्ण करवाया करते थे। आपकी धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आपने श्री गणेश जैन संस्कृत महाविद्यालय सागरसे सन् १९४५ में शास्त्री प्रथम खण्डकी परीक्षा पास की। आपने सागर विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की। रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर से सन् १९६६ में एम० ए० संस्कृतकी परीक्षा आपने प्रथम श्रेणीमें पास की। विश्वविद्यालयमें प्रथम स्थान प्राप्त करनेपर आपको प्रमाणपत्र भी मिला। आपका विवाह जून १९५८ में श्रीमती चमेलीदेवीके साथ हुआ। आपके परिवारमे ४ भाई एक बहिन व एक पुत्र व एक पुत्री हैं। आजीविका चलानेके लिए आपने अध्यापनकार्य किया। वर्तमानमें आप मध्यप्रदेश शासकीय महाविद्यालयमें सहायक प्राध्यापकके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

बचपनसे ही आपकी रुचि पढ़ने तथा पढ़ानेकी ओर थी। आप १८ वर्षकी अवस्थासे ही लेख कहानियाँ लिखने लग गये थे। आप धर्म प्रचारके लिये रीवाँ, भोपाल, बरेली आदि स्थानोंपर गये व धर्मप्रचारके लिए इधर-उधर जाते रहते हैं।

●

पं० राजधरलालजी व्याकरणाचार्य

●

पिताका नाम : श्री नन्दलालजी।

जाति : जैन (गोलालारे)।

जन्म स्थान : गुरसौरा (जखौरा) संवत् १९७०। जि० ललितपुर (उ० प्र०)।

शिक्षा : प्राथमिकशिक्षा ग्राममें समाप्त कर बारहवर्षकी आयुमें १९२२ में ललितपुर (क्षेत्रपाल) में पू० गुरु पं०शीलचंदजी न्यायतीर्थके सानिध्यमें १९२९ से १९३४ तक स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें पू० पं० कैलाशचन्दजीके शिष्यत्वमें उच्च अध्ययन।

अध्यापन कार्य एवं सेवायें : लगभग १५ वर्ष तक श्री दि० जैन गुरुकुल हस्तिनापुरमें प्राचार्यके पद पर कार्य कर इसी प्रकार १५ वर्ष तक श्री गो० दि० जैन सिद्धान्तमहाविद्यालय मोरेनामें व्याकरण और साहित्यका शिक्षण दिया। ऋषभ-ब्रह्मचर्याश्रम मथुरा और वीर विद्यालय पपौरा (टीकमगढ़) में भी दस वर्ष तक अध्यापन कार्य किया।

आपने आ० शिवसागरजीके संघमें रहकर मुनिराजों एवं अन्य मुमुक्षुओंको धार्मिक शिक्षण दिया। सम्प्रति श्री गोपाल दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरैनामें व्याकरणाचार्यके पद पर अध्यापन कार्यमें रत होकर समाजके घटकोंको ज्ञान दानका महनीय कार्य कर रहे हैं।

●

पं० रतनचन्द्रजी शास्त्री

●

जन्म स्थान एवं तिथि : मड़ावरा (झाँसी) उ० प्र० । वैसाख सुदी २ सं० १९८० ।

पिता : श्री स० सिं० स्व० मन्नूलालजी । आपके पितामह श्री ठाकुरदासजी राजाद्वारा सम्मानित ठकरासी वेशभूषामें रहा करते थे ।

शिक्षा : श्री हितवर्धिनी दि० जैन पाठशाला मड़ावरामें प्रारम्भिक शिक्षा । पपौरा और स्याद्वाद महाविद्यालयसे विशारद एवं शास्त्री ।

सामाजिक सेवायें : उदयपुर, प्रतापगढ़, साबूमल और मड़ावराकी जैन पाठशालाओंमें अध्यापन कार्य । ३ वर्ष स्वतन्त्र व्यवसाय करनेके पश्चात् पुनः बाँसवाड़ा और साबूमलमें गृहपति एवं अध्यापन कार्य ।

वर्तमानमें शान्ति निकेतन इण्टर कालेज महरौनीमें संस्कृत-शिक्षकके रूपमें एवं धर्माध्यापक ।

यदा कदा जैनमित्र, वीर जैन सन्देश आदिमें लेख प्रकाशित हुए । श्री पं० हीरालालजी सिद्धान्त-शास्त्रीकी सुपुत्री श्रीमती हेमलता जैन जो शिक्षित (विद्याविनोदिनी) महिला हैं, आपकी धर्मपत्नी हैं । सभी धार्मिक कार्यों एवं उत्सवोंमें सक्रिय सहयोग ।

●

प्रो० राजकुमारजी एम० काम०

●

जन्म स्थान एवं तिथि : सुनवाहा जिला छतरपुर । (म० प्र०) । १० अगस्त १९४३ ।

पिता : स्व० श्री बृजलाल जैन (एक लोकप्रिय पंच थे) ।

माता : श्रीमती राजरानी, जिन्हें २० वर्षकी आयुमें ही अपने पतिका सौभाग्य उठ गया था ।

संघर्षोंमें जीता जीवन : श्री राजकुमारजीका प्रारम्भिक जीवन संकटपूर्ण गुजरा । परन्तु मामा श्री उदयचन्दजी बरायठाने पिताका स्नेह, संरक्षण एवं सुनवाहामें सम्पूर्ण कार्य सम्हालकर लालन पोषण किया ।

शिक्षा : श्री गणेश दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय मोराजी सागरसे विशारद एव शास्त्री तथा १९६६में सागर विश्वविद्यालयसे एम० कॉम० । आप अपने छात्रजीवनमें मेरिट स्कालरशिप प्राप्त करते रहे । जीविकोपार्जन हेतु अपनी शिक्षा समाप्त कर आर्थिक एवं सांख्यिकी संचालनालय म० प्र० भोपालमें सांख्यिकी सहायक पुनः लोकशिक्षण संचालनालयसे शिक्षा विभागमें व्याख्याता, वर्तमानमे वाणिज्य महाविद्यालय सतनामें व्याख्याताके रूपमें कार्यरत हैं । वर्णी भवन मोराजी सागर के जीवनमें ऋणी है जिसके सम्बलसे जीवन उठाया अतः वर्णीजीके उद्देश्यों और कार्योंका अधिकाधिक प्रचार एवं वर्णी स्नातक परिषद्के सक्रिय सदस्य हैं ।

लिखनेकी प्रवृत्ति कम है । साहित्यावलोकन ज्यादा करते है । सम्पादक मण्डलमें सहयोगी रूपमें कई स्कूलो एवं कालेज पत्रिकाओंका सम्पादन । देशकी आर्थिक समस्याओं पर कुछ अप्रकाशित लेख लिखे हैं ।

●

पं० रमेशचन्द्रजी शास्त्री

जन्म स्थान एवं तिथि . खरिकना पो० : अहारन जिला आगरा रेल्वे स्टेशन बरहन । सन् १९१० ।

पिता . श्री झन्डूलालजी (दि० जैन पद्मावती पुरवाल) ।

शिक्षा : श्री गोपाल दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना एवं जम्बू विद्यालय सहारनपुरसे शास्त्री एवं मैट्रिक परीक्षा ।

सामाजिक सेवा : श्री जिनेश्वर दि० जैन विद्यालय कुचामन सिटी (राज०) में अध्यापन कार्य । वर्तमानमें, सन् १९३१ से श्री शान्तिनाथ दि० जैन विद्यालय साँभरलेक (राजस्थान) में प्रधान अध्यापकके रूपमें कार्यरत हैं । आप उक्त संस्थाके संस्थापक भी थे और एक जैन पुस्तकालयकी भी वहीं स्थापना की थी ।

'आपकी हार्दिक इच्छा रहती है कि जैन समाजके पन्थ और फिरके समाप्त हों ताकि राजनैतिक क्षेत्रमें जैन समाजके अधिकारोंका संरक्षण हो सके' । आपका जीवन सन्तोषमयी परिणतिसे बीत रहा है । आपकी धर्मपत्नी श्रीमती भू देवी शिक्षित महिला हैं और वर्तमानमें साँभरलेकमें प्रधानाध्यापिकाके रूपमें कार्यरत है ।

डॉ० राजारामजी, एम० ए०

जन्म-स्थान : मालथौन (सागर) म० प्र० ।

जन्म . १ फरवरी १९२९ को परवार कुलमें हुआ था ।

शिक्षण . श्री वीर दि० जैन विद्यालय पपौरा (म० प्र०), श्री स्याद्वाद जैन महाविद्यालय वाराणसी तथा बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयसे क्रमशः मध्यमा, शास्त्री, आचार्य परीक्षाएँ उत्तीर्ण की ।

कार्य क्षेत्र . ज्ञानोदयके सम्पादक १९५४-५५ । गवर्नमेन्ट कालेज सहडोलमें म० प्र० में हिन्दीके प्राध्यापक ।

सेवा स्थान : जैन प्राकृत शोध संस्थान वैशालीमें डॉ० हीरालालजीके निर्देशनमें प्राकृत और अपभ्रंशपर कार्य ।

मगध विश्वविद्यालय बोधगया (बिहार) में प्राकृत विभागाध्यक्षके रूपमें कुछ वर्ष अध्यापन कार्य ।

वर्तमानमें एच० डी० जैन कालेज आरामें संस्कृत-प्राकृत विभागके अध्यक्ष हैं ।

वीर निर्वाण भारतीने 'जैन इतिहास रत्न' की उपाधि तथा २५००) के पुरस्कारसे सम्मानित किया ।

प्रकाशन : १. रइधू साहित्यका आलोचनात्मक परिशीलन । २. रइधू ग्रन्थावलि भाग १, २ । ३. वर्धमान चरिउ । ४. महावीर चरिउ आदि ।

सम्मान : नवम्बर ७६ में धारवाड (कर्नाटक) में सम्पन्न हुए प्राच्यविद्या सम्मेलन (ओरियन्टल कान्फ्रेन्स) में जैन विद्या और प्राकृत विभागकी अध्यक्षता ।

पं० राजकुमारजी शास्त्री

●

जन्म-स्थान एवं तिथि : अजनास (म० प्र०) सं० १९५५।

पर-परिचय : पिता श्री चतुर्भुजजी, मड़ावरा (झाँसी) के निवासी थे जो अजनास (इन्दौर) आ गये थे।

शिक्षा : श्री हुकमचन्द दिगम्बर जैन विद्यालय इन्दौर, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारससे प्रवेशिका एव विशारद तथा मोरेनासे शास्त्री। आपके शिक्षा गुरु पं० गोपालदासजी एव प० माणिकचन्दजी जैसे मूर्धन्य गुरु थे।

सामाजिक सेवायें : अपनी शिक्षा समाप्तकर इन्दौर एव स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें तीन वर्ष धर्माध्यापक। पाँच वर्ष बाँसवाडामें अध्यापन कार्य किया। सवत् १९९० से ८ वर्ष तक उदासीनाश्रम (इन्दौर) का कार्यभार सम्हाला।

जहाँ एक ओर आपने ज्ञानदानका पुण्य कार्य किया वहाँ दूसरी ओर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, सिद्धचक्र विधान आदि कार्य विधि विधान पूर्वक सम्पन्न कराये। कई जगह अपने धर्मोपदेश द्वारा जैन पाठशालायें स्थापित करवायी।

संवत् १९८६ में आचार्यश्री शान्तिसागरजी महाराजसे श्रवणबेलगोलामे द्वितीय प्रतिमाके व्रत धारण किये तथा अभ्यास रूप सप्तम प्रतिमा तक किया। न्यायोपार्जित ढंगसे व्याजसे द्रव्य अर्जितकर धर्म-ध्यान पूर्वक जीविकोपार्जन करते हैं।

आपको दिल्ली आदि कई स्थानोंमें अभिनन्दन एवं प्रशस्ति पत्र प्राप्त हुए जो आपकी अमूल्य सेवाओ का ही परिणाम है।

●

श्रीमती रूपवती 'किरण'

●

परम्परावादी मान्यताओंमें पली बालिका रूपवती अपनेको घूँघटके अन्दर कैद न कर सकी। आजकी भाँति बालिकाओंको उच्च शिक्षा हेतु बाहर भेजना और उन्हे सामाजिक या सास्कृतिक गतिविधियोंमें भाग लेना, सन् १९२५ के परतंत्र भारतमे एक मुश्किल चीज थी। परन्तु अपनी परिस्थितियोंसे सघर्ष करते हुए बालिका रूपवतीने अपने पिता श्री लक्ष्मीचन्दजी जैनी और नाना श्री नन्दलालजीको इस बातके लिए मंजूर किया कि वह पं० ब्र० चन्दाबाईजी आराके सान्निध्यमें धार्मिक शिक्षण हेतु आरा जाये। सन् १९३८ तक बालाश्रम आरामें पं० के० भुजवली शास्त्रीके गुरुत्वमें धार्मिक शिक्षण प्राप्त किया। ४ वर्ष पश्चात् माता जी की असाध्य बीमारीके कारण आपको आरासे नागपुर घर लौट आना पड़ा और १४ वर्षकी आयुमें आपका वैवाहिक

बैन्धन जबलपुरके प्रतिष्ठित एवं सम्पन्न परिवार (फर्म मुन्नीलाल बप्पूलाल आयल मिल) में श्री कोमल-चन्दजी जैनके साथ सन् १९४० में हो गया। घूँघटके अन्दर मनकी साध दबकर सिसकने लगी। परन्तु आरासे कुछ बीज ले आयी थी जिसके अंकुरणके लिए उपयुक्त वातावरण न मिल पानेके कारण रूपवतीके अन्दर एक अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। परन्तु श्रद्धेय कविवर कल्याणकुमार 'शशि' ने आपको कविताके क्षेत्रमें आनेके लिए बराबर प्रोत्साहित किया और १९४५ में सर्व प्रथम पू० वर्णीजी की प्रेरणासे मंचपर बोलनेकी निर्भीकता प्राप्त हुई।

सन् १९५१ में ससुरालमें आपके पतिदेव तीन भाइयोंमें आपसी बँटवारा हुआ। पतिदेवके सरल और निश्चल स्वभावका अन्य भाइयोंने लाभ उठाया और लाखोंकी नगदी विलीन हो गयी। और आप अपने भाग्यको सब कुछ स्वीकार कर शान्त रहीं। परन्तु आपका यह भाग्य पर खेलना बड़ा मँहगा पड़ा और दिनोंदिन आर्थिक विषमताके थपेडे आते गये। श्री कोमलचन्दजी (आपके पति) अपना मानसिक सतुलन खो बैठे। अनिद्रा और अँग्रेजीमें धारावाहिक बोलना आपका मानसिक रोग बन गया। इसी समय आपके एक पुत्रका वियोग। ऐसे ढाई वर्ष व्यतीत किये और गृहस्थीका बोझ ढोया।

परिस्थितियोंमें सुधार आया और बडे पुत्र नरेन्द्रकुमारने अपनी माँके गार्हस्थिक बोझका उत्तर-दायित्व स्वय लिया। जीवनके जिन कटु अनुभवोंसे आप गुजरी हैं उनमें एक दहेज प्रथा भी है। योग्य, सुशिक्षित और चित्रकला, सगीत कलामें दक्ष आपकी तीन सुपुत्रियोंके प्रणय बन्धन हेतु अर्थाभावके कारण आपको सघन मानसिक चिन्ताओंसे गुजरना पडा।

साहित्य क्षेत्रमें अनुपम सेवाये ग्यारह वर्षकी अल्पायुसे कविता लिखनेकी अभिरुचि जगी और राष्ट्रीय भावनासे अभिप्रेरित होकर तत्सम्बन्धी कवितायें और लेख लिखना आरम्भ किया। बादमें आप पौराणिक कथाओंपर आधारित कहानियाँ और नाटक लिखने लगी। एकाकी नाटकके लिखनेमें आप सिद्धहस्ता लेखिकाके रूपमें 'सन्मति सन्देश' के माध्यमसे सुपरिचित हैं। धारा प्रवाहिक और अविरल प्रवाह आपकी लेखनशैलीकी प्रभुता है। कुछ वर्षोंसे गद्य-काव्य भी लिखने लगी है जिसमें आपकी भावनात्मक और आध्यात्मिक अनुभूतियाँ ज्यादा स्पर्शी हैं।

आपने लगभग ६ नाटक, ३४ एकांकी नाटक, ३०० कवितायें, ३० कहानियाँ तथा सैकडों लेख लिखे है। आपकी कई कवितायें रेडियो-जबलपुर इन्दौर आदिसे भी प्रसारित हुई हैं। आपका प्रायः साहित्य अप्रकाशित पडा हुआ है। मासिक पत्रिकाओं जैसे सन्मति सन्देश, श्रमणोपासक, अहिंसा वाणी, जैन महिला-दर्श, आदिमें ये सभी रचनायें प्रकाशित हो चुकी है। प्रकाशित पुस्तकोंमें 'वसन्ततिलका' नाटकने ज्यादा ख्याति अर्जित की है। 'जैनदर्शन' (निबन्ध संग्रह) भी प्रकाशित हुआ है।

आपने जैन महिलादर्श-सूरतके स्थायी स्तम्भ 'कविता मन्दिर' का सम्पादन भार १९६२से लिया है जो सुचारुरूपसे सम्पादित करती चली आ रही है। 'अनेकान्त काव्य संग्रह' का सम्पादन भी १९६२ में किया।

सामाजिक कार्य . आपने सांध्यकालीन धार्मिक पाठशालायें स्थापित करवायी। जबलपुरमें 'महिला पुस्तकालय' की १९४५ मे स्थापना करवायी थी जिसकी ३ वर्ष तक सचालिका तथा मन्त्राणी रही। 'वीणा' साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सस्थाका सगठन किया, जिसकी आप ६४-६५में अध्यक्षा रही।

महावीर जयन्ती, पर्यूषणपर्व और अन्य धार्मिक उत्सवों पर समाजके निमन्त्रणपर बाहर कवि सम्मेलन आदिमें जाती है। संगीतके प्रति अभिरुचि होनेसे अपनी सुपुत्रियोंको इसकी शिक्षा दी।

आपकी प्रतिभा चहुँमुखी है। एक ओर बड़ी गृहस्थीका उत्तरदायित्व और दूसरी ओर साहित्यिक सेवा, वास्तवमें आपके श्रमशील जीवनकी कहानी है।

सन्मति सन्देशका शायद ऐसा कोई अंक हो जिसमें आपका एकांकी नाटक या लेख आदि प्रकाशित न हो। लेकिन आपने समाजसे कोई अपेक्षा नहीं की और निस्पृह भावसे जो बन पड़ा किया।

●

पं० रतनचन्द्रजी शास्त्री

●

जन्म : संवत् १९६८ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी-बामौरकला जिला शिवपुरी (म० प्र०)।

पिता : सि० पं० पन्नालालजी जैन प्रतिष्ठाचार्य।

मातु श्री : श्रीमती जानकीबाई।

प्रारम्भिक शिक्षा : चन्देरी (म० प्र०) वीविंग प्रशिक्षण केन्द्र चन्देरीमें जरी साड़ियोंका कार्य सीखा।

धार्मिक शिक्षण : पपौरा एवं बीना। न्यायतीर्थ पार्श्व० जैन विद्यालय उदयपुर। १९५९ में वैद्य शास्त्री। तत्पश्चात् अजेदी जैन पाठशालामें अध्यापन कार्य। ३ वर्ष तेरा पंथी कोठी मधुवन (श्री शिखरजी) में सहायक मैनेजरके रूपमें। विभिन्न पचकल्याणक प्रतिष्ठाओंमें जिम्मेदार पदोंपर रहकर कार्य निर्वाहन।

जैन पत्रोंमें मननीय लेख लिखते रहते है।

●

श्री रतनचन्द्रजी 'रत्नेश'

●

नयी पीढीके लेखक पं० रतनचन्द्रजी जैन रत्नेशका जन्म ग्राम लखनादौन जिला सिवनीमें ६ सितम्बर १९३२ ई० में श्री दुलीचन्द्रजीके घरमें माता चम्पाबाईकी कोखसे हुआ था। पिता श्री दुलीचन्द्रजी अच्छी सामाजिक प्रतिष्ठावाले व्यक्ति हैं।

शिक्षा : दि० जैन गुरुकुल रामटेकमें प्रारम्भिक शिक्षा एवं धार्मिक शिक्षण होनेसे बचपनसे ही धर्म और शास्त्रोंके स्वाध्यायके प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो गयी थी। जबलपुरसे एम० ए० (हिन्दी) और एल० एल० बी० तथा बी० एड० उत्तीर्ण की। १९६२-६४ में राजनीति विज्ञानसे पुनः एम० ए० किया। सागर विश्वविद्यालयके अन्तर्गत पी० जी० बी० टी० कालेज खण्डवासे एम० एड० किया। इसके अलावा प्रयाग विश्वविद्यालयसे आपने साहित्यरत्न एवं सम्पादन कला विशारद की परीक्षायें भी उत्तीर्ण की। इस प्रकार शिक्षाके क्षेत्रमें आपने बड़ा अध्ययन किया और अपनी अध्ययनशीलताको सतत जारी रखते हुए अब भी शोध कार्यमें संलग्न हैं।

आर्थिक उपार्जन : जीविकोपार्जन हेतु आपने महाकोशल चेम्बर आफ कामर्स जबलपुरमें आफिस सुप्रिन्टेन्डेन्टके रूपमें अपनी सेवायें प्रारम्भ की। बादमें सेन्ट्रल रेल्वेमें टिकट कलेक्टर हुए। परन्तु शिक्षाके प्रति प्रेम होनेके कारण १९५९ में शिक्षा विभागमें उच्च शिक्षकके रूपमें नियुक्त हुए। वर्तमानमें शास० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय लामटा (बालाघाट) म० प्र० में व्याख्याता पदपर कार्य कर रहे हैं।

साहित्य सेवा : आप अपने विद्यार्थी जीवनसे ही लिखनेकी ओर प्रवृत्त हुए थे और आपकी लेखन-प्रतिभा प्रगति करती हुई आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टिकोणकी ओर मुड़ी। अपनी परिमार्जित लेखन कलाके फलस्वरूप आपको म० प्र० शासन साहित्य परिषद्, म० प्र० शासन (आबकारी विभाग), 'मिलन' साहित्य परिषद् जबलपुर, सुलेखा-प्रतिष्ठान कलकत्ता आदिके द्वारा कई गौरव पूर्ण पुरस्कार एवं स्वर्णपदक प्राप्त हुए।

आपने हिन्दी साहित्यकी विभिन्न विधाओंपर बहुत लेख लिखे। जैसे 'नई कविता और उसका भविष्य', प्रेमचन्दकी रचनाओंमें हास्य एवं व्यंग, गौ सेवा एवं गौवंश इत्यादि। एक अप्रकाशित ग्रन्थ 'पं० भूधरदासजी कृतित्व' लिखा है। इसके अलावा कुछ स्कूली पाठ्य पुस्तकोंका प्रणयन भी किया।

आपकी सम्पादन कला बीच-बीचमें जागरूक होती रही। एक वर्षके लिए सन्मतिसंदेशके सह-सम्पादक, २ वर्ष वर्णी प्रवचन (मासिक) और १ वर्षके लिए 'शिक्षा रवि' के सम्पादक हुए।

आपने सन्मति संदेशमें प्राचीन जैन कवियोंपर बहुत लिखा है। इसके अलावा 'नवभारत, युगधर्म, साहित्य संदेश (आगरा) आदिमें लेख समय-समय पर प्रकाशित हुए।

सामाजिक कार्य : आपने दि० जैन समाज लामटाके सहयोगसे १७ हजारकी लागतका एक जैन-मंदिरका निर्माण कार्य एवं वेदी प्रतिष्ठा करवायी। वर्तमानमें आप जैन समाज लामटाके मंत्री एवं समाज सेवक संघ जबलपुरके मंत्री हैं।

आपको प्रथमानुयोग और द्रव्यानुयोगके ग्रन्थोंका अच्छा अध्ययन है। शिक्षित होते हुए संयमी भी हैं और रात्रिमें पानी तकका त्याग किये हैं।

●

पं० रतनचन्द्रजी वाझल्ल

●

जन्म स्थान एवं तिथि : ग्राम-कारी (टीकमगढ़) बुन्देलखण्ड ५ अगस्त १९३८ ई०।

परिपरिचय : पिता श्री दुलीचन्द्र जैन।

आर्थिक विषमताओंमें जूझते हुए नाभिनन्दन दि० जैन विद्यालय इटावा (बीना) जिला सागरमें अन-पेड प्रवेश लेकर विशारद। स्याद्वाद महाविद्यालयसे संस्कृत पूर्व मध्यमा। १९७० में अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालयसे बी० ए०।

श्री अतिशय क्षेत्र बंधाजी (टीकमगढ़) के वार्षिक मेलेके शुभारम्भमें प्रशंसनीय प्रयास एवं सहयोग। वर्तमानमें उक्त क्षेत्रके आनरेरी मंत्री। जीविकोपार्जन हेतु १९५७ से शिक्षा विभाग म० प्र० में अध्यापन कार्य। १९६६ में बंधाजी जैन विद्यालयमें धार्मिक अध्यापन कार्य। आपने श्री अतिशय क्षेत्र बंधाजीके ऊपर गद्यात्मक एवं काव्यमय ट्रेक्ट लिखे हैं। विविध जैन पत्रिकाओंमें स्फुट-रचनायें। 'भजन संग्रह' एवं बारह भावनायें (कवित्त) अप्रकाशित लघु कृतियाँ।

श्री बंधाजीके विकास और उन्नयन हेतु प्रयत्नशील नवयुवक एवं समाज सेवी।

●

डा० रमेशचन्द्रजी एम० ए०

●

अपनी लगन एवं मेहनतसे प्रतिकूल परिस्थितियोंसे सामंजस्य रखते हुए भी जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की। नयी पीढ़ीके उत्साही विद्वान् श्री रमेशचन्द्रजीका जन्म मड़ावरा (झांसी) में परवार जातिमें ५ मई सन् १९४६ ई० में श्री शिखरचन्दजी सौंरयाके घरमें श्रीमती अशर्फीबाईकी कोखसे हुआ था। पितामह श्री भागचन्द्रजी पुरानी मान्यताओंके पोषक और श्री रमेशचन्द्रजी नवीन विचारधाराके समर्थक परन्तु पितामह और पौत्रमें एक सहज समन्वय और श्रद्धा भाव।

प्रारम्भिक शिक्षा मड़ावरा और जैन विद्यालय साढूमल। श्री स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीसे दर्शन विषयसे प्रथम श्रेणीसे एम० ए०, जैन दर्शनशास्त्री एवं सिद्धान्त-शास्त्रीकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। इसके अलावा कन्नड, पाली, प्राकृत, संस्कृत और मंगोलिन इतर भाषाओंका ज्ञान है। वर्तमानमें वर्द्धमान कालेज बिजनौर (उ० प्र०) में दर्शन विषयके प्रवक्ता।

साहित्यके क्षेत्रमें सद्यासतावली और सुख विलासका सम्पादन एवं प्रस्तावना लिखी तथा पी-एच० डी० हेतु 'जैन पुराणोंका धर्म और दर्शन' विषय पर शोधकार्य कर विश्वविद्यालयमे डॉक्टरेटकी उपाधि प्राप्त की। प्रमुख जैन पत्र-पत्रिकाओंमें स्फुट लेख एवं निबन्ध लिखते रहते हैं।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती विजय लक्ष्मी जैन उच्च शिक्षित महिला हैं। और एम० ए० बी० एड० तक शिक्षा प्राप्त है। सम्प्रति बिजनौर समीपस्थ कालेजमें व्याख्याता हैं।

साहित्यके प्रति अतिशय प्रेम। सतत अध्ययनशील। अपने पुरुषार्थसे ही जीवनको उठानेवाले होनहार नयी चेतनाके संचयी।

●

श्री राजेन्द्रकुमारजी एम० ए०

●

जन्म स्थान एवं जन्म तिथि : उम्मरगढ जि० एटा (उ० प्र०) २ अक्टूबर १९२६ ई०।

पिता : श्री बहोरीलाल जैन (पद्मावती पुरवाल)

शिक्षा : जम्बू महाविद्यालय सहारनपुरसे शास्त्री, आगरा विश्वविद्यालयसे संस्कृत तथा हिन्दी विषयमें एम० ए० तथा बनारस संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसीसे आचार्य परीक्षा।

प्रारम्भमें १९४२ में जैन पाठशाला चन्देरीमें धार्मिक शिक्षण फिर मुरैनामें स्वतंत्र दुकानदारी। सम्प्रति श्री पी० डी० जैन इण्टर कालेज फीरोजाबादमें प्रवक्ताके पदपर कार्यरत हैं।

धार्मिक शिविरोंमें धार्मिक शिक्षणका कार्य भी किया है।

●

पं० रामप्रसादजी शास्त्री

●

जन्म स्थान एवं तिथि : मु० बुढ़वार पो० ललितपुर (झाँसी) बुन्देलखण्ड । सन् १९१३ ई० लगभग ।

शिक्षा : लौकिक शिक्षण : हाईस्कूल परीक्षा एवं संस्कृतमें शास्त्री, शिक्षा स्थान : भा० दि० जैन महाविद्यालय ब्यावर (राज०) तथा गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मोरेना (म० प्र०) ।

शिक्षा गुरु : सिद्धान्तरत्न श्री पं० नन्हेलाल शास्त्री, न्यायालंकार श्री पं० मक्खनलालाजी शास्त्री एवं पं० पन्नालाल-जी सोनी आदि ।

सम्प्रति

श्री महावीर मल्टी पर्पज हायर सेकण्डरी स्कूल, लाडनूं (राजस्थान) में संस्कृताध्यापक एवं अन्तर्गत प्राइमरी विभागमें प्रधानाध्यापकका उत्तरदायित्व । इस विद्यालयमें लगभग ४१ वर्षसे कार्य रत हैं ।

साहित्यिक-विधा

श्री सोमप्रभाचार्य विरचित 'सूक्ति मुक्तावली' नामक ग्रन्थका १९६२ में अनुवाद किया ।

●

पं० रतनचन्द्रजी शास्त्री

●

जन्म स्थान एवं तिथि

मबई (टीकमगढ) म० प्र० परवार जातिमें माघ सुदी पंचमी संवत् १९७९ ।

परि परिचय

पिता श्री परमानन्दजी (साहूकारी एवं गल्लेका व्यापार) मातु श्री छविरानीजी ।

शिक्षा

साढूमल और पपौरा विद्यालयसे प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षण लेकर संस्कृत विद्यालय सागर और स्याद्वाद महाविद्या-लय बनारससे साहित्यशास्त्री, धर्म शास्त्री एवं साहित्य रत्न ।

आर्थिक उपार्जन एवं समाजसेवा

श्री गणेश गुरुकुल पटनागंज (रहली), जबलपुर, मथुरासंघ और श्री देशभूषण गुरुकुल अयोध्यामें बारह वर्ष तक शिक्षण एवं सामाजिक कार्य । परन्तु सामाजिक संस्थाओंमें स्थिरता न होनेके कारण म०
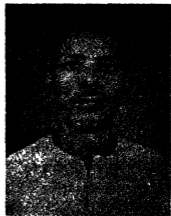
प्र० शिक्षा विभागमें प्रवेश और वर्तमानमें संस्कृत शिक्षकके रूपमें कार्य रत। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती ताराबाई भी शिक्षित महिला हैं व अध्यापन कार्य भी करती है।

धार्मिक एवं साहित्यिक अभिरुचि

प्रतिवर्ष पर्यूषण आदि पर्वोंपर समाजके निमन्त्रणपर बाहर जाकर धर्म प्रभावना एवं प्रवचनादि करना। समय-समयपर जैन पत्रोंमें अपनी विचार धाराको लेखोंका रूप देकर प्रकाशित करना।

आप जैन शिक्षा सदन छिरारीके अधिष्ठाता रहे जो तीन वर्ष चली। वर्तमानमें आदर्श विवाह समिति पटनागंजके मंत्री।

आप सरल स्वभावी, संतोषी और धार्मिक प्रवृत्तिके विद्वान् हैं।

●

पं० राजधरलालजी स्याद्वादी

●

जन्म स्थान एवं तिथि : नारहट जिला झाँसी (उ० प्र०)। वि० सं० १९६७।

पिता : श्री मोहनलालजी परवार।

शिक्षा : जैन विद्यालय बीना, साढूमल (झाँसी) ललितपुर और स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें धार्मिक एवं संस्कृतकी मध्यमा एवं शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की।

आपने जीवनकालमें अनेक संस्थाओंमें अध्यापन कार्यके साथ प्रवचन और उपदेश द्वारा सामाजिक सेवायें की। आपकी वाणी निःशंक और निर्भीकता युक्त है तथा प्रवचन शैली प्रभावक एव लालित्य-पूर्ण।

सम्प्रति : श्री देवगढ़ संस्थामें कार्यरत हैं तथा प्रचार कार्यमें संलग्न है। इसके पूर्व ३ वर्ष लश्कर (ग्वालियर) में धार्मिक शिक्षण देते रहे। एक अनुभवी, प्रौढ़ एवं ज्ञान-गम्भीरता लिये हुए विद्वान् हैं।

●

दीवान रूपकिशोरजी

●

आप अरबी, फारसी, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, मराठी और संस्कृत आदि भाषाओंके विद्वान् हैं। सन् १९२० ई० में आपने, 'मनोरमा', कलावती, 'गृहलक्ष्मी' आदि जैन साहित्यकी कई कहानियाँ लिखी। उसी समय आपने 'जैन मार्तण्ड' का सम्पादन किया। कुछ समय आप 'महावीर' पत्रके भी सम्पादक रहे। दिल्लीसे निकलने वाले साप्ताहिक 'भारत' के भी सम्पादक रहे। अभी तक आपने लगभग ७० पुस्तकें लिखी हैं। कई पुस्तकोंपर आपको पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

बहुभाषाविज्ञ, साहित्य उपासक और कुशल पत्रकारके रूपमें आपका व्यक्तित्व वस्तुतः आदरणीय है।

●

स्व० धर्मानुरागी लाला राजकृष्णजी

'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैतिलक्ष्मी' की नीतिको अपने जीवनमें चरितार्थ करने वाले ला० राजकृष्णजी दिल्लीके प्रतिष्ठित समाज सेवी, धर्मानुरागी और कई संस्थाओंके संस्थापक हैं।

आपका जन्म १० नवम्बर सन् १९०० को अम्बाला छावनीमें पिता श्री रंगीलालजी और माता शृङ्गारदेवीजीके यहाँ हुआ था। अम्बाला छावनीसे मेट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर आपने भारत सेनामें शिमलामें चालीस रुपया माहवारपर लिपिककी नौकरीकी जो बढकर २३०) रु० पर सुप्रिन्टेंडेन्टके पद तक पहुँची।

सन् १९२१ में असहयोग आन्दोलनके समय आपने त्यागपत्र दे दिया और शिमलामें ही ग्रेफाइट कोल कम्पनीके नामसे साझेदारीमें कोयलेका काम प्रारम्भ किया था। जब १९२४ में इलाज हेतु दिल्ली आये तो दिल्लीको ही अपना केन्द्र बनाकर १९२८ में स्वतंत्र कोयलेका व्यापार करने लगे और अपनी दूर-दर्शिता और व्यावसायिक बुद्धिके कारण खूब उन्नति की और आप कोयले वालेके नामसे प्रसिद्ध हुए। इसी बीच आपने कोलोनाइजेशन लि० के नामसे जमीनोंका व्यापार कर दरियागंज व शाहदरामें भवन निर्माणका काम करवाया। १९३०-४० में आप देहली इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्टके एकमात्र एजेन्ट रहे। और अपने पुरुषार्थसे अच्छी ख्याति और अर्थ संचय किया।

आपके जीवनमें 'अर्थ' ही महत्त्वपूर्ण नही रहा अपितु अपनी धार्मिक अभिरुचि और आध्यात्मिक सम्पदाको उत्तरोत्तर वृद्धिगत किया। बचपनसे ही शास्त्रोंके स्वाध्यायमें, मुनिभक्ति और पूजनादि पुण्य कार्योंमें संलग्न रहे। और अपने द्रव्यका उपयोग धार्मिक और जन कल्याणमें लगानेके लिये आपने एक राजकृष्ण जैन चेरिटेबिल ट्रस्टकी स्थापना की जिसके अन्तर्गत उपचार गृह, औषधालय, धर्मशाला, जिनालय एवं स्कालरफण्ड आदि संचालित हो रहे हैं। साहित्य प्रकाशन विभाग भी इसी ट्रस्टसे सम्पादित होता है। और यह कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोका प्रकाशन करवा चुका है।

आपकी मुनिभक्ति आचरणीय है। पू० गणेशप्रसादजी वर्णीके अनन्य भक्त रहे तथा अपनी समृद्धि और उन्नतिका कारण उनसे प्राप्त आशीर्वाद रूप ही माना। पू० वर्णीजीके लगभग दो सौ आध्यात्मिकपत्र आपके पास सुरक्षित है जो पुस्तकाकार प्रकाश्य है। इसके अलावा पू० आ० सूर्यसागर, पू० नमिसागर, मुनि विद्यानन्दिजी, आ० तुलसी, पू० कानजी स्वामी आदिके प्रति बड़े श्रद्धालु थे और अपने 'अहिंसा मन्दिर' में योग्य विधिपूर्वक ठहराया करते थे।

आपने दक्षिणसे १९५४ ई० में धवला ग्रन्थोंकी फोटो उतरवाकर इन अमूल्य ग्रन्थोंको दिल्ली लाकर उनके जीर्णोद्धारमें सहयोग दिया। बूढ़ी चन्देरीके भग्नावशेषोंका जीर्णोद्धार और जबलपुर चन्देरीसे गुम अस्सी मूर्तियोंके सिरोंकी खोज करवानेमें सक्रिय सहयोग दिया था।

आपने श्रवणबेलगोल और दक्षिणके तीर्थ नामसे एक खोज पूर्ण पुस्तक लिखी। शाकाहारके समर्थक आपने इसके व्यापक प्रचार हेतु एक शुद्ध शाकाहारी सुव्यवस्थित होटल दिल्लीमें १९६० में खुलवाया था।

विद्वत् परिषद्की स्थापनामें, वीर सेवा मंदिरको सरसावासे दिल्ली लानेमें, लगभग चालीस जैन मन्दिरोंके निर्माणमें, स्याद्वादकी स्थापनामें आपका सक्रिय सहयोग रहा तथा आप प्रबन्धकके रूपमें रहे और महती सेवायें कीं।

सामाजिक कार्यकर्ताके रूपमें आप १९४७ से ५२ तक दिल्ली म्यूनिसपैलिटीके म्यूनिसिपल कमिश्नर तथा दिल्ली नगरके ऑनरेरी मजिस्ट्रेट रहे। आप दिल्ली सरकार द्वारा स्थापित 'भवननिर्माण' समितिके सदस्य भी रहे।

आपको भरे पूरे परिवारमें आपकी धर्मांचला धर्मपत्नी श्रीमती कृष्णादेवी, समाजसेवी पुत्र प्रेमचन्द्र-जी और तीन पौत्रोंका सुख प्राप्त था। आप अपने व्यापारमें सक्त होते हुए भी पूर्ण नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण वाले रहे।

●

पं० रूपचन्द्र लेकूरचन्द आहाले

●

धक्कड (धाकड) दिगम्बर जैन आम्नाय की ज्ञाति, विदर्भमें बहुतायतसे पायी जाती है। धक्कड समाज, जैन जातिमें अपना वैशिष्टयपूर्ण स्थान रखता है। श्री रूपचन्द्रजीका जन्म इसी जातिमें हुआ। आप इस समाजके अग्रगण्य विद्वान् पंडित हैं। प्रतिकूल परिस्थितियोंसे जूझते हुए भी आपने शिक्षा क्षेत्र और धर्म क्षेत्रमें अपने जीवनको उन्नत बनाया। आप प्रसिद्धि पराङ्मुख प्रकृतिके व्यक्ति है।

जन्म, बाल्यकाल एवं शिक्षा : आपका जन्म सन् १९०३ में महाराष्ट्रके पुसद तहसीलके एक ग्राममें साधारण गरीब कुलमें हुआ था। बचपन में ही माता पिता का सुख छिन गया था और बेसहारे होकर भी अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पुसदमें सम्पन्न की। द्रव्याभावके कारण पढ़नेकी लालसा दबानी पडी और १९२० में आपका विवाह हुआ। शायद यह विवाह आपके जीवनको प्रशस्त करनेके लिए हुआ था। फलतः आपके श्वसुर सा० ने एलिचपुरमें आपको अपने घर अध्ययनार्थ आमन्त्रित किया। और जैसी कि उक्ति है— 'श्वसुरगृहनिवासः स्वर्गतुल्यो नराणाम्' के अनुसार आपको वहाँ कोई कमी नही थी परन्तु उसी समय इलाहाबादसे नागपुर विश्वविद्यालय पृथक् हुआ और वहाँ की शिक्षाका माध्यम मराठी बना। आप अँग्रेजीमें मेट्रिक करने हेतु इन्दौर आये। अमरावतीसे बी० ए० पूरी न कर सकनेके कारण जबलपुर जाना पडा। लॉ कालेज अमरावतीसे १९३६ में एल० एल० बी० उत्तीर्ण की। इसी अवधिमें चार वर्ष आपने प्राईवेट हाईस्कूलका संचालन किया।

जीवनका विशिष्ट झुकाव : एल-एल० बी० करनेके पश्चात् पुसदमें प्रेक्टिस प्रारम्भ की। परन्तु अपनी धार्मिक जागरूकतामें कमी नही आने दी। पुसदमें रहकर आपने धार्मिक शास्त्रोंका खूब अध्ययन किया और प्रवचनादिमें इतनी प्रसिद्धि प्राप्त की सभी धार्मिक पर्वोंमें आपको महाराष्ट्र, मराठवाडा, आदि से आमन्त्रण आने लगे।

धार्मिक संस्कारोंका प्रभाव और गहरा होता गया और १९६० में वकालतका व्यवसाय बन्द कर दिया। क्योंकि आपकी धर्मपत्नी सौ० शान्ताबाईसे जन्मे सातों बच्चे, सभी एक के बाद एक मृत्युको प्राप्त होनेसे संसारके प्रति उदासीन भाव धारणकर दोनों प्राणी कारंजा आश्रममें अध्ययनार्थ गये। और १९६४ में पुनः पुसद आकर साहित्यिक जीवन बिता रहे हैं।

साहित्य-सेवा : आपने इष्टोपदेश, युक्त्यनुशासन, बृहत्स्वयंभूस्तोत्र, पंचस्तोत्र, सज्जनचित्तवल्लभं, आलाप पद्धति, नय विवरण, आत्मानुशासन, तत्त्वार्थसार, आप्तमीमांसा, आप्तपरीक्षा, अमृताशीति आदि ग्रन्थोंका मराठीमें अनुवाद किया।

आपके स्वतन्त्र ग्रन्थ : श्री धर्मनाथ पुराण, उत्तम धर्म कथा, सम्यक् दर्शन, स्वयं आत्मोद्धार नाटक, तेजस्वनिवरले, भूपाल स्तोत्रपूजा तथा अन्य पूजायें, भाव गुंजारव, भावपराग, सिनेमाअष्टोत्तरशती (सामाजिक ग्रन्थ) हैं जिनका प्रणयन आपने हिन्दी, संस्कृत तथा मराठीमें किया।

इस प्रकार आप हिन्दी, संस्कृत और मराठीके उद्‌भट विद्वान् हैं परन्तु अर्थाभावके कारण आपके ग्रन्थ प्रायः अप्रकाशित हैं। आपकी स्मरण शक्ति विलक्षण है।

●

श्री रमेशचन्द्रजी

●

नाम व स्थायी पता श्री रमेशचन्द्र जैन २३३ दरहाई, जबलपुर (म० प्र०)।

वर्तमान पता : सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर (राज०)।

शिक्षा : एम० ए० (संस्कृत), एम० ए० (पालि एवं प्राकृत) साहित्यरत्न (हिन्दी), पी-एच० डी० (अर्धमागधीउपाङ्ग साहित्यमें औपपातिक सूत्रका आलोचनात्मक अध्ययन)

शोधकार्य 'भारतीय संस्कृतिकी रूपरेखा' पुस्तकका साझेदारीमे सम्पादन। बृहत्कथाकोष हरिषेण के अनुवाद एवं सम्पादन।

सम्प्रति : संस्थानकी योजनाके अन्तर्गत 'राजस्थानी-साहित्यका आदिकाल' पर कार्य कर रहे हैं। 'राजस्थान भारती' का सह-सम्पादन।

अन्य . 'Social and religious Life in Grhya Sutras' का हिन्दी अनुवाद। प्राकृत सेमिनार तथा प्राच्य विद्यासम्मेलनमें शोध निबन्ध पाठ हेतु आमंत्रित। इत्यादि। आप उदीयमान साहित्य खोजी और युवा पीढीके विद्वान् हैं। सतत अध्ययनशील। कई अन्वेषणात्मक निबन्ध लिखे हैं।

●

न्यायतीर्थ पं० रवीन्द्रनाथ शास्त्री

●

जन्म स्थान . बानपुर (झाँसी)।

परिपरिचय : पिता श्री चन्द्रभान विल्ला—अनुभवी वैद्य।

शिक्षा : न्यायतीर्थ, शास्त्री, प्रभाकर, मैट्रिक एवं शिक्षा में ट्रेण्ड। शिक्षा स्थान—मोरेना, जबलपुर एवं इन्दौर।

सम्प्रति : सन् १९३१ से हाईस्कूल रोहतक (हरियाणा) में अध्यापन कार्य।

साहित्यिक कार्य 'ज्ञान शिक्षावली', 'सम्यक्त्वादर्श' पुस्तकोंका प्रणयन 'जीवन्धर चरित' एवं 'वरांग चरित' के सम्पादनमें सहयोग। वैरिस्टर चम्पतराय द्वारा लेख-पुरस्कार प्राप्त हुए।

अन्य : मुनि महेन्द्राचार्य, न्यायाचार्य पं० महेन्द्र कुमार, पं० परमेष्ठीदासजी आदि सहपाठी थे।

जीवन-विधा : त्यागी बनकर चन्दा माँगना, परिणति अशुद्धिकर निश्चय नय की बातें बघारना, झूठी सच्ची बातें उपदेशमें कह समाजसे चन्दा माँगना, आपको कतई पसन्द नहीं। चरणानुयोगमें रूढ़ि छोड़ शास्त्रानुकूल एवं गृहस्थके लिए क्रान्तिकारी परिवर्तनके समर्थक।

●

बाबू रतनलालजी

●

आपका जन्म २० अगस्त १८९२ में कस्बा अफजलगढ जिला बिजनौरके अग्रवाल समाजमें हुआ था। पिता ला० छज्जूमल एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। १९०३ में उच्च शिक्षा हेतु बिजनौर अपने फूफा श्री हीरालालजीके यहाँ आये जिन्होंने बादमें आपको दत्तक पुत्रके रूपमें स्वीकार कर अपना उत्तराधिकारी बनाया था।

इलहाबाद विश्वविद्यालयसे १९१५ में बी० एस-सी० तथा १९१७ में एल० एल० बी० उत्तीर्ण की। एल० एल० बी० परीक्षा उत्तीर्णकर नगीना मुन्सफीमें वकालात प्रारम्भ की। बादमें मुरादाबाद आ गये और जजीमें वकालात प्रारम्भ की।

आपकी धार्मिक प्रवृत्ति इस पेशेसे आत्म तोष प्राप्त न कर सकी। फलत जब महात्मा गान्धीने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर वकीलोंको वकालात छोड़कर देश सेवाके लिए आमन्त्रित किया तो आपने १९२२ में यह व्यवसाय छोड दिया और मुरादाबादसे बिजनौर वापिस आ गये।

बै० चम्पतरायजीके नेतृत्वमें १९२३ में भा० दि० जैन परिषदकी स्थापना हुई जिसके मंत्री आप चुने गये। इस नवजात परिषदके संचालन व सुदृढ बनानेका काम श्री रतनलालके सुपुर्द किया गया। इस परिषदके माध्यमसे आपने अनेक सामाजिक कुरीतियोंका घोर विरोध कर जैन जातियोंमें अन्तर्जातीय विवाह करने, मरण भोज बन्द करने, मध्यप्रदेशमें गजरथोंकी बाहुल्यताको अनुपयोगी ठहराने तथा विधवा विवाहका समर्थन किया। बीचमें कुछ लोगोंने इसका विरोध किया कि परिषद विवाहका समर्थन बन्दकर तीव्र आलोचनाकी शिकार न बने परन्तु श्री रतनलाल व विद्यावारिधि चम्पतरायजी अपने सिद्धान्तपर अडिग रहे और फलतः परिषद और शक्तिशाली ही बनी।

१९३८ में परिषदने दस्साओंको पूजा करनेके पक्षमें हस्तिनापुर क्षेत्र पर मेलेके अवसर प्रस्ताव पास एक ऐतिहासिक कार्य किया जिसके सभापति आप थे। और मेलेमें इसका जोरदार प्रचार किया गया। १९४५ तक आप इस परिषदके प्रधान मन्त्री रहे।

राष्ट्रीय सेवायें

१९२२ में वकालातसे मुक्ति लेकर आप बिजनौर जिला कांग्रेसके प्रधान मन्त्री चुने गये और और १९२३ में जिला बोर्डके अध्यक्ष हुए। आपने जिले भरमें कांग्रेसके सिद्धान्तोंका जोरदार प्रचार किया। १९३० में 'नमक सत्याग्रह' में सक्रिय भाग लेनेके कारण आपको एक वर्षका कारावास हुआ। मौलाना

अबुल कलाम आजाद भी आपके साथ उसी जेलमें थे । गान्धी इरविन समझौते पर आप १९३१ में जेलसे मुक्त हुए और बिजनौरमें आपका अन्य ४०० साथियोंके सहित भव्य स्वागत हुआ । इसके अलावा आप कई बार अन्य सत्याग्रहोंके सिलसिलेमें जेल गये । और श्री रतनलालजी व उनके साथियोंके त्याग व प्रचारसे बिजनौरकी जनतामें एक जबरदस्त राष्ट्रीय जागरूकता उत्पन्न हुई ।

श्री रतनलालजी जिला कांग्रेस कमेटीके ८ वर्ष तक अध्यक्ष रहे । १९३९ में विधान परिषदके सदस्य देहरादून व बिजनौर जिलेसे चुने गये । पुनः १९५२ में विधान सभाके सदस्य निर्वाचित हुए । इस प्रकार आपका राजनैतिक जीवन बड़ा उज्ज्वल रहा ।

शिक्षाके क्षेत्रमें सेवायें

भा० दि० जैन परिषदके माध्यमसे आपने परिषद परीक्षा बोर्डकी १९२६ में स्थापनाकी थी । जिसके माध्यमसे प्रतिवर्ष हजारों जैन कॉलेज और स्कूलोंके विद्यार्थी जैनधर्मकी विभिन्न परीक्षाओंमें सम्मलित होते हैं ।

आपने जेल यात्राके दौरान 'आत्म-रहस्य' पुस्तकका प्रणयन किया था जिसमें आत्मतत्वका वैज्ञानिक ढंगसे निरूपण है जिसकी भूमिका डा० सम्पूर्णानन्दजी जैसे महान दार्शनिक एवं विद्वानने लिखी है ।

व्यक्तित्व व कृतित्व

श्री रतनलालजी शान्त व सरल स्वाभावी हैं । जीवनके प्रत्येक कार्यको नियमित रूपसे करते हैं । विद्यार्थी जीवनसे ही रात्रि भोजनका त्याग कर दिया था । ३-४ मील प्रातः वायुसेवन आपकी दैनिक चर्यामें सम्मलित है । आप बड़े धैर्यवान भी हैं । १९४१ में जब आप आगरा जेलमें नजरवन्द थे । आपकी पत्नी क्षयरोगसे पीडित लखनऊमें आपके मित्र वैद्य शिवराजजीके यहाँ इलाजमें थी । आपके कोई पुत्र नही होनेसे चि० प्रदीपकुमारको दत्तक पुत्रके रूपमें ग्रहण किया ।

आपका सम्पूर्ण जीवन सुधारवादी दृष्टिकोणका रहा । अनेक घटनाओंसे भरा आपका जीवन स्वयंमें संघर्ष कहानी बना हुआ है । ब्रिटिश शासनके विरुद्ध आपने अपनी आवाज उठायी और अनेक यातनाओं और जुर्मानोंको सहकर अपने लक्ष्यसे नही डिगे ।

●

पं० रामस्वरूपजी

●

आपका जन्म वि० सं० १९६१ में आगरा जिलांतर्गत तहसील एदमादपुर पोस्ट अहारन ग्राम जटौआ में हुआ था । आपके पिता श्री जसरामजी रुईके कुशल व्यापारी थे । माता श्रीमती सेवतीदेवी जो आपको तीन वर्षकी अल्पायुमे छोडकर चली गयी थी ।

शिक्षाध्ययन हेतु संवत् १९६६ में हस्तिनापुर गुरुकुल गये उस समय महात्मा भगवानदीनजी थे । जिनका वात्सल्य आपको मिला । आगेकी शिक्षा महाविद्यालय मोरेना एवं इन्दौरमें हुई और धर्ममें शास्त्री तथा हाईस्कूल उत्तीर्ण किया ।

सामाजिक सेवा

अपना अध्ययन समाप्त कर आपको जीविकोपार्जन हेतु आरोन जागीर, सुजानगढ, कुचामन, आँवा (टोंक स्टेट) प्रधानाध्यापकके रूपमें अध्यापन कार्य किया । इसके बाद स्वतंत्र व्यवसाय किया । और वर्तमानमें जैन विद्यालय गिरीडीह जिला हजारीबादमें धर्म एवं संस्कृतके अध्यापक हैं ।

प्रारम्भसे आपकी रुचि प्रतिष्ठा कराने, संस्कारादि और विधानादि करानेकी रही। और इस क्षेत्रमें काफी लोकप्रियता प्राप्त की। साहित्यके प्रति आपका लगाव कम नही रहा। प्रश्नोत्तर शतक (प्रथम भाग) एवं सरस सवैया आपकी स्वतंत्र प्रकाशित रचनायें हैं। इसके अलावा जैन क्रिया काण्ड प्रदीप, दृष्टान्त लहरी, जैन विवाह विधि और प्रश्नोत्तर शतक (द्वितीय भाग) तथा लावनी संग्रह आपकी अप्रकाशित कृतियाँ हैं। जैन पद्धतिसे विवाह करवाना आपने राजस्थानोंमें कई स्थानोंपर सर्वप्रथम प्रारम्भ किया था। इसप्रकार जीवनके विविध क्षेत्रोंमें आपने कार्य किया।

●

पं० रामचन्द्रजी

●

परमपूज्य भट्टारक श्री १०८ श्री यशकीर्तिजी महराजके प्रधान शिष्य पं० रामचन्द्रजी जैन राजस्थान और गुजरात प्रान्तके समाज-सेवकोंमें अग्रणी हैं। आपका जन्म प्रतापगढ (राजस्थान) मे वि० स० १९६२ में श्री जगन्नाथजी (ब्राह्मण) के घर हुआ था। ६ माहकी अल्पायुमें पिताका स्वर्गवास हो जानेसे माँ निराधार हो गयी थी और मातु श्रीमती छगामबाईने वि० म० १९६६ में श्री भट्टारक क्षेमकीर्तिजी महाराजको शिष्य रूपमें दे दिया था।

आपकी शिक्षा भट्टारक क्षेमकीर्तिजी महाराज एवं उनके पट्टधर भट्टारक श्री यशकीर्तिजीकी देखरेखमें हुई। और अपने धार्मिक ज्ञानके साथ-साथ ज्योतिष, यंत्र, मंत्र तथा वैद्यकका भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। आपकी वक्तृत्व शैली प्रभावक है। जैन शिल्प एव स्थापत्य-विद्या (मन्दिर मूर्ति निर्माण) के आप विशेषज्ञ माने जाते है। आपकी देखरेखमें शिखरबद्ध मन्दिरों एव सहस्त्रों प्रतिमाओंका निर्माण हुआ। आपके द्वारा अब तक शताधिक प्रतिष्ठायें, वेदी प्रतिष्ठायें हुईं। इसके अतिरिक्त सभी बड़े विधान (शान्ति विधान, सिद्धचक्र विधान, इन्द्रध्वज और वास्तु विधान) आदि प्रतिवर्ष कराते रहते हैं।

सरल जैन विवाह विधि, विद्यार्थीज्ञान मंजरी, प्राचीन पूजन-संग्रह आदिका सम्पादन किया तथा समय-समय पर विविध जैन पत्रोंमें लेख लिखते रहते हैं।

सामाजिक सेवायें

समाजमें शिक्षा प्रचारकी दृष्टिसे आपने कई शिक्षण खुलवाई हैं जैसे भ० यशकीर्ति दि० जैन बोर्डिंग एवं अन्तर्गत संचालित यशकीर्ति हायर सेकन्डरी एवं कन्या विद्यालय तथा धर्मशाला, भ० यशकीर्ति दि० जैन धर्मार्थ ट्रस्ट गुरुकुल ऋषभदेव तथा सरस्वती भवन, दि० जैन बोर्डिंग फलासिया (उदयपुर), अ० भा० दि० जैन नरसिंहपुरा महासभा, नवयुवक मण्डल, एवं जीव दया संघ ऋषभदेव आदि।

अनेक सामाजिक सेवाओंके उपलक्ष्यमें अनेक स्थानोंकी जैन समाजोंने आपको मान पत्र समर्पित किये हैं एवं जैन रत्न, धर्म भूषण तथा प्रतिष्ठाचार्य आदिकी उपाधियाँ देकर सम्मानित किया है। अथक श्रम आपका प्राकृतिक गुण है। जीव दया संघके अन्तर्गत आपने कई स्थानों पर होनेवाले पशु-बलि बन्द करवायी।

●

श्री रामस्वरूपजी 'भारतीय'

'भारतीय' जी समाजके पुराने लेखकोंमेंसे हैं। प्राय: २०-२५ वर्ष पूर्व इनकी रचनाएँ 'देवेन्द्र' में तथा अन्य जैन और जैनेतर पत्र-पत्रिकाओंमें निकला करती थी। ये कर्मशील व्यक्ति हैं। इनमें समाज-सेवा और देश-सेवाकी लगन है। विचार भी मँजे हुए और उदार हैं।

आपकी कविताएँ ओज पूर्ण और शिक्षाप्रद होती हैं। भाषामें प्रवाह है, और भावोंमें स्पष्टता। आपकी एक कविता-पुस्तक 'वीर पताका' बहुत पहले श्री 'महेन्द्रजी' ने प्रकाशित कराई थीं। आप उर्दूके भी अच्छे लेखक है। उर्दूकी पुस्तक 'पैगामें हमदर्दी' आपहीने लिखी है। अगस्त आन्दोलनमें भारत-रक्षा-कानूनके अधीन जेल-यात्रा कर आये है। जेलमें इन्होंने अनेक कविताएँ और संस्मरण लिखे हैं।

श्री 'रत्नेन्दु'जी फरिहा

'रत्नेन्दु' जी, फरिहा, जिला मैनपुरीके रहनेवाले हैं। यह कवितामें स्वाभाविक रुचि रखनेवाले नवयुवक कवि हैं। आप अब तक अनेक कविताएँ लिख चुके हैं। जिनमें कई तो बहुत लम्बी-लम्बी हैं। दोहे-कवित्तसे लेकर छायावादी और हालावादी आदि सभी शैलियोंका प्रयोग करके आपने अपनी रचनाओंकी शैली निर्धारित करनेके लिए परीक्षण किया है।

आपकी कविताओंमें अनेक भावोंका सम्मिश्रण होता है। इसलिए आशय कहीं-कहीं दुरूह हो जाता है। किन्तु इनकी शब्द योजना बहुत सुन्दर होती है। कल्पनाकी उड़ान भी खूब लेते हैं। हिन्दी साहित्यके प्रतिभावान कविके रूपमें आप सदैव स्मरण रहेंगे।

श्री रतनकुमार 'रतन'

कविताके क्षेत्रमें उन्नति की ओर शीघ्रतासे कदम बढानेवाले नवयुवकोंमें श्री रतनकुमार जैनका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। यद्यपि आपका उपनाम 'रतन' या 'रत्न' है। फिर भी आप अपनी कविताओंके साथ यही नाम छपवाते हैं।

श्री रतन जैन जयसिंहनगर (सागर) के रहनेवाले है। और स्याद्वाद महाविद्यालय काशीमें अध्ययन किया है।

यद्यपि आपके गीतोंमें वेदना और निराशाकी स्पष्ट छाप है किन्तु जीवनके निरीक्षण दृष्टिकोण एकान्तवादी नहीं है। हमें आशा है कि वह अपनी प्रतिभाके अनुसार ही अपने साहित्यक जीवनका ध्येय उत्तरोत्तर प्रगतिशील बनायेंगे।

प्रतिभान कवि, सफल समाजसेवीके रूपमें आप सदैव याद रहेंगे।

पं० राजकुमारजी बी० ए०

आपका जन्म आजसे लगभग ६५ वर्ष पहले हुआ। आपने धार्मिक व लौकिक शिक्षा प्राप्त कर मानवतावादी मार्ग अपनाया। आप जैन समाजकी प्रायः सभी प्रकारकी शिक्षा सस्थाओंमें सम्बद्ध रहे हैं। महावीर दिगम्बर कॉलिज आगरा, आगरा दिगम्बर जैन परिषद्से जहाँ आप सम्बद्ध रहे वहाँ अखिल विश्व जैन मिशन अलीगंज और भारत जैन महामण्डलसे भी जुड़े हैं।

आप गणेशप्रसादजी वर्णी, मुनि श्री सूर्यसागरजी, ब्र० शीतलप्रसादजी, डा० कामताप्रसादजीके विचारोंसे प्रभावित रहे। आप धर्म प्रचारार्थ विदेश भी जानेके अतीव इच्छुक हैं। जैन जगतमें समन्वयकी दृष्टि लिये ही आप अनेक धार्मिक व सामाजिक कार्योंमें संलग्न रहते हैं।

श्री राजेन्द्रकुमारजी 'रवि'

श्री राजेन्द्रकुमारजीका जन्म ६-७-१९४८ में ककरवाहा टीकमगढ़में हुआ था। आपके पिताजी श्री माणिकचन्द्रजी वैद्य व माताजी श्री हीराबाई जैन है। आपके परिवारकी स्थिति साधारण ही थी। आपके पिता आयुर्वेद पद्धतिसे चिकित्सा कार्य व गाँवमें जैन पाठशालामें पढाते थे। आप मरैंया गौत्रज है। आपकी धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आपने शासकीय उच्चतर मा० वि० बक्सवाहासे हायर सेकण्डरी व शासकीय महाविद्यालय टीकमगढसे बी० एस-सी० पास की। आर्थिक स्थिति ठीक न होनेके कारण आपने प्राइवेट परीक्षार्थीके रूपमें परीक्षाएँ पास की।

आपका विवाह श्रीमान् पटवारी देवीप्रसादजी जैन टीकमगढ़की सुपुत्री श्रीमती गुलाबबाई जैन 'विशारद' के साथ हुआ। आपके परिवारमें १ पुत्र व १ पुत्री हैं। आपको स्कूलसे कई प्रमाणपत्र व श्री गुलाबचन्द्र पाठशालासे रविकी उपाधि दी गई। बचपनसे ही आपकी रूचि विज्ञानके क्षेत्रमें काफी थी। परन्तु अर्थाभावके कारण असफल रही। आपने १८ वर्षकी अवस्थासे ही साहित्यिक क्षेत्रमें गद्य एवं पद्यमें लिखना प्रारम्भ कर दिया था। आपके द्वारा लिखी हुई रचनाएँ सन्मति संदेश, जैन मित्र आदि पत्रोंमें प्रकाशित हुईं। आपने गान्धी माध्यमिक विद्यालय ककरवाहा तथा श्री दिगम्बर जैन पाठशाला ककरवाहा नामक सामाजिक संस्थाओंमें प्रधानाध्यापक पद पर कार्य किया। आप श्री दोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा संघ द्रोणगिरिमें मन्त्रीके हैं। वर्तमानमें आप ककरवाहामें अध्यापकके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

पं० रमेशचन्द्रजी शास्त्री

●

श्री पंडित रमेशचन्द्रजी शास्त्रीजीका जन्म २ जनवरी १९१५ को खुरई मध्य प्रदेशमें हुआ था। आपके पिता श्री मोहनलालजी व माता श्रीमती इन्द्राणीजी थी। आपके पिता समाजमें एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आपके परिवारकी स्थिति साधारण थी। आपकी धार्मिक शिक्षा साधारण हुई। आपने श्री पूज्य भगवानदासजी प्रेरणासे कुछ वर्ष बीना पाठशालामें अध्ययन किया। इसके बाद श्री सर हुकमचन्द्रजी दिग-म्बर जैन महाविद्यालय इन्दौरमें अध्ययन कर आपने शास्त्री, न्यायतीर्थकी परीक्षा पास की। आपका विवाह सिंघई नाथूरामजी ललितपुर वालोंकी सुपुत्री श्री प्यारीबाईसे हुआ था। आपके परिवारमें तीन भाई व एक पुत्र व छह पुत्रियाँ हैं।

आप एक समाजसेवी व्यक्ति हैं। आपने सन् १९३५ से सन् १९३८ तक श्री जैन पाठशाला खुरईमें अध्यापककी तरह कार्य किया इसके बाद आपने सन् १९३९ से १९४९ तक श्री अभिनन्दननाथ क्षेत्रपाल ललितपुरमें प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य किया। वर्तमानमें खुरईमें आप कपड़ेका व्यापार करते हैं।

●

बहिन श्री रुक्मणीजी

●

श्रीमती रुक्मिणीजीका जन्म २५ जून सन् १९३० बुध-वारको बुलन्दशहरमें हुआ था। आपके पिताका नाम श्री ऋषभ दासजी व माताजी श्री कमलादेवी जैन था। आपके पिताजी ओवरसियर थे। आपके परिवारकी आर्थिक व्यवस्था अच्छी थी। आप मित्तल गोत्रज हैं। आपकी धार्मिक शिक्षा साधारण ही हुई। आपने गोकुलदास गर्ल्स डिग्री कालेज मुरादाबादसे बी० ए० की परीक्षा पास की। एम० ए० संस्कृत विषय को लेकर भी किया। आपको चाँदीके बर्तन व स्टीलके बर्तन स्कूल व कालेजसे मिले। आपने प्रान्तीय निबन्ध प्रतियोगितामें द्वितीय स्थान प्राप्त किया। आपका विवाह डाक्टर महेन्द्रकुमारजी एम० बी० बी० एस० के साथ हुआ था। आपके परिवारमे तीन भाई, तीन बहिन व दो पुत्र, चार पुत्रियाँ हैं।

बचपनसे ही आपकी रुचि पढ़ने तथा पढ़ानेकी ओर रही। हरिवंश पुराणपर शोध कार्य किया है। सन् १९५६ में छिंदवाड़ामें बहुउद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालयमें व्याख्याता पदपर कार्य किया। वर्तमानमें आप शासकीय संस्कृत महाविद्यालय रायपुरमें कार्य कर रही है। आप गरीबोंको नि:शुल्क दवा वितरित करती हैं। आप एक कुशल वक्ता भी हैं।

●

पं० राजकुमारजी शास्त्री

●

जीवन-परिचय

आयुर्वेदाचार्य पंडित राजकुमारजी शास्त्रीका जन्म सकरौली (एटा) उत्तर प्रदेशमें हुआ। आपके पिता श्री लाला रेवतीप्रसादजी थे, माता शरबतीदेवी था। आप अपने माता-पिताके तीसरे पुत्र है। आप प्रारम्भसे ही विनयशील, सरल स्वभावी, मेधावी थे अतएव पुरस्कृत हुए। आपकी शिक्षा बनारस, आरा, उज्जैनमें हुई। आपने शास्त्री, साहित्यतीर्थ और आयुर्वेदाचार्य परीक्षायें उत्तीर्ण की।

साहित्य और समाजसेवा

आपने कुछ नाटक व पुस्तकें लिखी हैं। आप सफल लेखक और प्रभावक वक्ता है। आप महासभा परीक्षालय इन्दौरके वर्षों परीक्षक रहे। 'अहिंसावाणी' मासिकीके सम्पादक रहे। अब तो अखिल विश्व जैन मिशनके कार्यको बढ़ानेके लिए संचालक बनकर सराहनीय कार्य कर रहे हैं। अनेक संस्थाओंके संस्थापक सदस्य व सहायक अधिकारी हैं। आप नवाई नगर कांग्रेसके माननीय अध्यक्ष हैं। वर्षों म्यूनिसपल बोर्डके चेयरमैन रहे।

प्रेरक स्रोत

पंडितजी स्वयं तो धर्म और समाजकी दिशामें सेवाकी दृष्टिसे बढे ही है साथ ही अपने पाचों पुत्रों और दोनों पुत्रियोंको भी बढ़ा रहे हैं। सवाई माधवपुरके शिक्षण शिविरमें नवाई नगरमे आचार्य शिव-सागरजीके संघका चातुर्मास करानेमें आप ही प्रेरक स्रोत थे।

●

डा० राजमलजी कासलीवाल

●

जन्म २० नवम्बर, १९०३। सुपुत्र स्व० श्री प्यारेलालजी। १९३५ में भारतीय सेनामें भर्ती हुए और बादमें आजाद हिन्द फौजमें डी० एम० एस० बनकर श्री सुभासचन्द्र बोसके साथ स्वतन्त्रता सग्राममें सक्रिय भाग लिया और बन्दी बनाये गये। आजाद हिन्द फौजसे मुक्त होनेपर मेडिकल कालेज आगरामें प्रधानाचार्य हुए। १९४८ में जयपुरमें मेडिकल सर्विसके संचालक बने। १९५५ में सवाई मानसिंह अस्पताल के नियन्त्रक एवं मेडिकल कालेजके प्रधानाचार्य बने। १९५९ में रायल कालेज आफ फीजिएशन लन्दनके साथी चुने गये। आल इण्डिया इंस्टीट्यूट आफ मेडिकल सर्विस, न्यू देहली, इंडियन कौंसिल आफ मेडिकल रिसर्च, मेडिकल कौंसिल आफ इण्डिया, आदि संस्थाओंकी कार्य समितिके सदस्य एवं राजस्थान, लखनऊ, आगरा, बिहार, पंजाब, बम्बई, ग्वालियर आदि विश्वविद्यालयके परीक्षक रह चुके हैं। अनेक बार विदेश यात्रायें की हैं। राज्य सेवा निवृत्तिके उपरान्त १९६७ में लोकसभाकी जयपुर सीटसे चुनाव लडा। श्री महावीरजी तीर्थक्षेत्र कमेटीके अनेक वर्षोंसे अध्यक्ष हैं। प्रसिद्ध राष्ट्र व समाजसेवी हैं।

●

स्व० पं० लेखराजजी करहैया

●

स्वनाम धन्य गुरुवर्य पं० गोपालदासजी बरैयाके ही समकालीन पं० लेखराजजीका जन्म वि० संवत् १९२५ में ऐतिहासिक नगर नरवरगढ़के समीप करहैया ग्राममें हुआ था। इनका गोत्र 'पलैया' था। पूज्य पिताका नाम जगराम उपनाम जगोलेराम था। जो उस समय करहैया ग्राम जागीरके प्रमुख व्यवसायी थे। ग्राममें पठन-पाठनका कोई समुचित प्रबन्ध न होते हुए भी इनके पिताजीने एक पंडित द्वारा इनको पढ़ानेका उचित प्रबन्ध कर दिया। पंडितजीकी बाल्यकालसे ही अत्यधिक धार्मिक रुचि थी। उत्कट धार्मिक प्रेमके कारण ही आपने १८ वर्षकी उम्रमें आजीवन कन्दमूलका त्यागकर दिया। यही कारण था कि आप उस समय दृढ़ चारित्रके कारण एक आदर्श पुरुष माने जाते थे।

आप सदैव साधारण स्वेत वस्त्र धारण करते थे। सिरपर पगड़ी लगाते थे। सरलताकी तो साक्षात् मूर्ति ही थे। दिखावटी तड़क-भड़क वेशभूषा आपको पसन्द न थी। स्वभाव सरल उदार और सज्जनोचित था। जहाँ कहीं भी जाते अपना विशिष्ट प्रभाव छोड़े हुए बिना न रहते। इसी कारण उस समय समाजमें आप एक अच्छे प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। ख्याति और बड़प्पनसे आप दूर रहे और भगवती जिनवाणी की आराधनामें सदा तल्लीन। आपने जीवन पर्यन्त जैनधर्मकी सच्चे लगनसे सेवा की और जहाँ कहीं भी धर्मोत्सव हुआ उसमें पूर्ण सहयोग प्रदान किया। जीवनका लक्ष्य धर्म प्रेम होनेके कारण समस्त जीवन अपने धर्म ध्यानमें ही यापनकर दिया। मृत्यु वि० संवत् १९७८ माह शुक्ला १४ को हुई। इस तरह ५३ वर्षकी छोटी अवस्थामें ही एक पुत्र जियालालको छोड़कर आप स्वर्गवासी हुए।

इस समय आपकी एक ही स्वतन्त्र कृति उपलब्ध है जो 'बरैया विलास' के नामसे प्रसिद्ध है। सन् १९५० में लश्करके प्रसिद्ध व्यवसायी मोतीलाल लक्ष्मीचन्द बजाज द्वारा वह प्रकाशित हो चुकी है। इसके दो भाग हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्धमें जहाँ सम्पूर्ण पूजायें संग्रहीत है वहाँ उत्तरार्द्धमें स्तुति, लावनी, नारदी, उपदेशी भजन और बारहखड़ी आदि है। कहना न होगा कि आपकी ये कवितायें अत्यन्त सुन्दर और मनोहारिणी है भाव और कला दोनों दृष्टियोंसे यह अतिशय पुष्ट और सम्पन्न हैं।

●

श्री लक्ष्मीचन्द्रजी 'रसिक'

●

श्री रसिकजीका जन्म २६ जून १९३२ को रायसेनमें मध्यमवर्गीय परिवारमें हुआ। आपके पिता श्री गिरधारीलालजी आरम्भसे आज तक दुकानदारी कर रहे है। परिवारमें दो भाई एक बहन है। एक भाई शासकीय सेवामें हैं और दूसरे स्वतन्त्र व्यवसायी है।

आपकी आरम्भिक शिक्षा ए० बी० एम० स्कूल रायसेन में हुई। फिर आप पिताजीके साथ विदिशा आये तो सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द्र जैन हाई स्कूलमें आपने शिक्षण लिया। अध्ययनके साथ रसिकजी अन्य गतिविधियोंमें भी भाग लेने लगे थे। आप विद्यार्थी कांग्रेसके महामन्त्री व उपाध्यक्ष रहे। सन्

१९५० में मैट्रिकके साथ मध्यमा (प्रयाग) परीक्षा उत्तीर्ण की । शीघ्र ही १९५१ में शीतलनाथ दिगम्बर जैन माध्यमिक विद्यालय विदिशामें शिक्षक बन गये । छः वर्ष बाद आप इस संस्थाको छोड़कर शासकीय सेवामें आ गये । अध्यापन कार्य करते हुए बी० ए० भी कर लिया और १९६५ में सागर विश्वविद्यालयसे बी० एड० भी ।

आपने गुरुवर्य शम्भूदयालजी विमलसे आपने साहित्य-सृजनकी प्रेरणा ली । पहली रचना १९५२ में जैनमित्रमें छपी । फिर दिगम्बर जैन, वीर, जैनमित्र, जैन सन्देश, नवप्रभात आदिमें लिखा । लगभग २०० रचनायें छप चुकी हैं । विदिशाके बोल, पावस गीत, स्वरूप, अनेकान्त कविता-संग्रहोंमें आपकी भी कवितायें हैं । १९५६ में आकाशवाणी इन्दौर, भोपालसे आपने रचनायें प्रसारित की । आप बुन्देलखण्डी भाषामें भी कवितायें लिखते हैं ।

पिछले आठ दस बरसोंसे गार्हस्थिक विवशताओंसे आप साहित्य-सृजन नहीं कर पा रहे हैं बल्कि अपने परिवारको ही बढ़ाने व पढ़ानेके लिए प्रयत्नशील हैं ।

●

श्रीमती लज्जावतीजी विशारद

●

श्रीमती लज्जावतीका जन्म १ अगस्त १९१३ को सहारनपुरमें हुआ था । आपके पिता श्री कबूलसिंहजी गर्ग जगाधरी निवासी थे और मध्य प्रदेशमें इजीनियर थे । आपकी आरम्भिक शिक्षा जमनालाल बजाज स्कूल वर्धामें हुई । चूंकि जमनालालजी बजाजकी सुपुत्रीका आपपर बड़ा स्नेह था, अतएव आप भी उनके साथ कांग्रेसके पिकेटिंग-सभा जैसे कार्यक्रमोंमें भाग लेने लगी । इस स्कूलमें रहकर आपने माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण की ।

जब आप १० वी कक्षा उत्तीर्ण कर चुकी व विशारद भी हो चुकी तब श्री जगदीशप्रसादजी इंजीनियरसे आपका विवाह हुआ । अपने पतिके साथ आप मुजफ्फरपुर (बिहार) में रही । वहाँ भी आपने महिला समिति बनाई । कांग्रेसका कार्य किया । इन्ही दिनों आपको कविता और निबन्ध लिखनेका चाव हुआ तो इस दिशामें भी पीछे नही रही । १९३९ में जब मेरठ आ गईं तो यहाँ भी शिक्षा प्रसार हेतु आपने दो पाठशालायें खुलवाईं । लखनऊमें अजितप्रसादजी एडवोकेट और ब्र० शीतलप्रसादजीका सान्निध्य मिला । आपने शक्ति भर उनके धार्मिक सामाजिक कार्योंमें सहयोग दिया ।

आपकी वीर-जीवन पुस्तककी भूमिका अजितप्रसादजीने लिखी थी । गृहिणी कर्तव्य पुस्तकपर आपको पुरस्कार मिला । पांखुरियां (सम्पादक कल्याणकुमार जैन शशि), आधुनिक जैन कवि (सम्पादिका रमारानी) में आपकी भी कवितायें संकलित हैं । जैन महिला परिषदके सभी अधिवेशनोंमें आपने भाग लिया । उसके मुख पत्र महिलादर्शमें आपने काफी कवितायें लिखीं ।

यद्यपि आजकल आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है तथापि आप यथावसर यथोचित धार्मिक-सामाजिक कार्य किया ही करती हैं। बहन लज्जावतीकी यह कार्य क्षमता उन महिलाओंको प्रेरणा देनेमें समर्थ होगी, जो विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरके शब्दोंमें आज अभी लज्जास्तूप ही बनी बैठी हैं।

●

डा० लालचन्द्रजी एम०ए०

●

डा० लालचन्द्रजी जैन राजस्थानके होनहार विद्वानोंमेंसे एक हैं। आपका जन्म आजसे ३० वर्ष पूर्व धनवाड़ा (भरतपुर) में सूरजमलजीके यहाँ हुआ था। आपने बी० ए० की परीक्षा भरतपुरसे और एम० ए० की परीक्षा जयपुर १९५९ में पास की। इसके बाद अध्यापक बनकर हाईस्कूल बसवा, उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सिकरायमें रहे। १९६७ से उ० मा० वि० गणपतिनगरमें शिक्षक हैं।

पी-एच० डी० करनेकी• प्रेरणा आपको अपने गुरु डा० सरनामसिंहजी शर्मासे मिली और इस दिशा में आशासे भी अधिक सहयोग आपको पं० प्रवर चैनसुखदासजी न्यायतीर्थने स्वयं दिया और अन्य जनोंसे सहयोग दिलाया। आपने अपना शोध ग्रन्थ 'जैन कवियोंके ब्रजभाषाके प्रबन्ध काव्योंका अध्ययन' विषयपर लिखा था। जिससे आपकी दक्षता प्रकट हुई। आपने एकसे अधिक पुस्तकें लिखी है जिनमेंसे अमर सुभाष व न्याय नाटक अतीव लोकप्रिय हुए।

आपने तीस वर्षकी अल्प आयुमें बहुत कुछ कर दिखाया। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व समग्र जैन समाजके लिए प्रेरणास्पद है।

●

पं० लक्ष्मीचन्द्रजी शास्त्री

●

जन्म विक्रम संवत् १९४४ में बमौरीकलां (ललितपुर) में हुआ था। आपके पिता श्री मौजीलालजी चौधरी साहूकार व व्यापारी थे। वे अपने समयके अत्यधिक लोकप्रिय व्यक्ति थे और इसका एक कारण यह भी था कि वे रोगियोंके लिए निःशुल्क औषधियाँ वितरण किया करते थे। पिताश्रीके देहावसानके बाद आप बड़े भाई पंडित राजधरलालजीके साथ ललितपुर आ गये।

आपकी आरम्भिक शिक्षा अभिनन्दन जैन पाठशाला क्षेत्रपाल ललितपुरमें हुई। यहाँसे आपने संस्कृत प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की। बादमें आगे पढ़नेके लिए आप सागर गये, जहाँ वर्णीजी जैसे गौरवशाली गुरु आपको मिले। उनके समीप आपने अष्टसहस्री पढ़ी। विद्यालयके प्रधानाध्यापक दयाचन्द्रजी शास्त्रीसे आपने धर्म व न्यायके उच्च ग्रन्थ पढ़े।

सन् १९३० में वाणी भूषण पं० तुलसीरामजी आये तो सभा उनके भाषणके साथ आपका भी भाषण हुआ। वे आपकी भाषण कलासे परम प्रसन्न हुए। उन्होंने आपको जैन विद्यालय धारमें प्रधाना-

व्यापक बनवा दिया। पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्यकी बहनके साथ आपका विवाह सन् १९३२ में हुआ। जिससे आपके एक पुत्री और दो पुत्र हुये। आपने शीतलनाथ जैन हाईस्कूल विदिशा, दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम इन्दौर, जैन बोर्डिंगहाउस बड़वानीमें अध्यापकका कार्य किया। ललितपुरमें कल्पद्रुम औषधालयकी स्थापना की। सुप्रसिद्ध नेता आर० वी० धुलेकरके साथ कांग्रेसमें भी कार्य किया। आप उत्तर प्रदेशके मान्य वैद्य हुए। आपने मलकापुर, छिंदवाड़ा, डाल्टनगंजमें भी काम किया। जैन महासभा, वैशाली तीर्थ क्षेत्रके महोपदेशक रहे।

शास्त्रीजीकी भाँति उनका परिवार भी काफी शिक्षित है।

●

पं० लालारामजी शास्त्री

●

पं० लालारामजी शास्त्रीका जन्म आजसे लगभग पचास बरस पहले चावली ग्राममें हुआ था। आपके पिता श्री लाला तोलारामजी पद्मावती पुरवाल जातिके भूषण थे। आप जैसे धर्मात्मा निरपेक्ष अनुभवी वैद्य थे वैसे स्वभावसे सज्जन व परोपकारी भी थे। पिताके ये गुण विद्वच्छिरोमणि धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर सुपुत्र लालारामजीमें सुविकसित हुए। आपके छोटे भाइयोंमें पंडित श्रीनन्दनलालजी (मुनि सुधर्मसागरजी) और पं० मक्खनलालजी मोरेनाके नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं।

जैसे अन्य विद्वान् यत्र तत्र विद्यालयोंमें पढ़ानेके लिये प्रसिद्ध हैं वैसे ही शास्त्रीजी एकसे ग्रन्थोंके सफल टीकाकारके रूपमें प्रसिद्ध हैं। आप धर्ममें शास्त्री हैं और संस्कृत-हिन्दी भाषाके अधिकारी विद्वान् हैं। आपकी टीकाओंकी विशेषता यह है कि आप जहाँ ग्रन्थका कठिन भाग सरल बना देते हैं वहाँ अन्तस्थलका रहस्य भी पाठकको बखूबी समझा देते हैं। मूलग्रन्थके अनुरूप आशय रखते है। ग्रन्थके बाहरकी स्वयं की व अन्य की कोई स्वतन्त्र बात आपकी टीकाओंमें नहीं है।

आपने आदिपुराण, उत्तरपुराण, शान्तिपुराण, चारित्रसार, आचारसार, ज्ञानामृतसार, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, जिनशतक (समन्तभद्रकृत), सुभौमचरित्र, सुक्ति मुक्तावली, तत्वानुशासन, वृहत्स्वयम्भू स्तोत्र, चतुर्विंशति सन्धान, चतुर्विंशतितीर्थंकर स्तोत्र, सुधर्म श्रावकाचार आदि अनेक ग्रन्थोंकी टीकायें लिखी। आपने कुछ स्वतन्त्र पुस्तकें भी लिखी जैसे बालबोध जैनधर्म, क्रियामजरी। मुनियों व तीर्थ क्षेत्रोंकी पूजनें भी लिखी।

आप दिगम्बर जैन महासभाके मुखपत्र जैनगजटके सम्पादक रहे। महासभाके सहायक मन्त्री भी रहे। महासभाने आपको धर्मरत्न उपाधि दी। शास्त्रि परिषदके भी आप सभापति व संरक्षक रहे। दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभाने दो अधिवेशनोंमें आपको सभापति बनाया और सरस्वती दिवाकर उपाधि दी।

●

बाबू लालचन्द्रजी एडवोकेट

●

बाबूजीका नाम समाजका बच्चा-बच्चा जानता है और दिगम्बर जैन परिषद्के तो आप प्राण ही हैं। बाबू लालचन्द्रजी समाजके पुराने सेवकों और विद्वानोंमेंसे एक हैं। शिक्षाकी दृष्टिसे आप बी० ए०, एल० एल० बी० हैं और रोहतकके वकीलोंमें शीर्षस्थ हैं।

एडवोकेट साहब अन्य वकीलोंकी तरह नहीं हैं प्रत्युत वे सही अर्थोंमें धर्म व समाजकी सेवाके लिए सन्नद्ध रहते हैं। आप परिषद्के सभापति व संचालक रहे। कुछ दिनों पहले ही, आपने कुन्दकुन्दाचार्यके प्रसिद्ध ग्रन्थ 'समयसार' का अत्यन्त सरल व सुन्दर हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराया है।

मेरी भावनाके रचयिता पंडित जुगलकिशोरजी मुख्तयार भी आपके गम्भीर अध्ययनके प्रशंसक थे।

●

पं० लक्ष्मण प्रसादजी शास्त्री न्यायतीर्थ

●

मन्दिरोंकी नगरी मडावराके पड़ोसी गाँव धवामें ही अषाढ वदी त्रयोदसी सवत् १९६९ में शास्त्रीजीका जन्म हुआ। माता श्रीमती शान्तिदेवी धर्मिक विचारोंकी महिला थी। पिता श्री कन्हैयालालजी साहूकारी एवं किसानीका कार्य करते थे। गाँवकी विद्वत्मण्डलीमें भी उनका प्रमुख स्थान था।

आप जिस वातावरणमें पले वह धर्माकीर्ण एव विद्वत्तापूर्ण था। क्योंकि घरमें भी सभी लोग विद्वान् थे तथा गाँवमें विद्वानों की कमी नहीं थी।

पूज्य पिताजीकी कल्पनाओंका सुखद उपवन पल्लवित पुष्पित हुआ किन्तु उनकी ललक उनके ही साथ लिपटी चली गयी। उस समय आपकी उम्र १५ वर्षके लगभग रही होगी जब माँ एवं पिता दोनोंका ही स्वर्गारोहण हो गया। माता पिताके निधनसे आपके किशोर हृदयमें भीषण आघात हुआ किन्तु क्या हो सकता था ?

प्राथमिक शाला मड़ावरामें अध्ययन करने हेतु आपको धवा छोड़कर मडावरामें ही रहना पड़ा। वहाँसे आपने कक्षा ४ पास किया। इसके उपरान्त श्री महावीर दि० जैन विद्यालय साढ़ूमलसे जैन प्रवेशिका तथा विशारदकी परीक्षा पास कर आप ब्यावर चले आये और वहाँसे शास्त्री न्यायकी परीक्षा उत्तीर्ण की। उस समय आपकी उम्र २० वर्षकी थी।

उस समय आप वीर विद्यालय रफीगंज (बिहार) में प्रधानाचार्यके पद पर कार्य कर रहे थे जब आपका विवाह सम्पन्न हुआ। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरीदेवी यद्यपि कि साधारण पढ़ी लिखी हैं किंतु आपने उनके कार्य व्यवहार एवं मस्तिष्कको ऐसा विचित्र मोड़ दिया है कि उनमें और एक विदुषी महिलाके
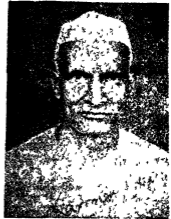
व्यवहारमें अधिक अन्तर नही प्रतिभासित होता । सन् १९३२ से ४८ तक आप विभिन्न संस्थाओंमें अध्यापन कार्य करते रहे । इसके बाद राजकीय औषधालयमें प्रधान वैद्यके पद पर नियुक्त हो गये । किन्तु कुछ ही समय बाद आप उसे त्यागकर मड़ावरा चले आये और प्राइवेट रूपमें चिकित्सा कार्य करने लगे । आपका आध्यात्मिक प्रवचन एवं ज्ञानका क्षयोपशम बहुत ऊँचा है । ज्ञान और लक्ष्मीका समन्वय आप जैसे विरले विद्वानोंको ही प्राप्त है ।

●

पं० लक्ष्मणप्रसाद जैन आयुर्वेदाचार्य

●

जन्म

आपका जन्म सन् १९१८ में उ० प्र० के झाँसी जिलान्तर्गत जाखलौन नामक स्थान पर हुआ । आपके पिताका नाम श्री फुन्दीलालजी एवं माताश्रीका नाम सुमित्राबाई था । जन्मके समय पिताकी आर्थिक स्थिति सामान्य थी ।

बचपन

आपका पाँच वर्ष तक का समय जो आपकी स्मृतिके परे है बडे ही अच्छे ढंगसे बीता । किन्तु पाँच वर्षकी उम्रमें आप मातृविहीन हो गये । प्लेगके कारण माताजी स्वर्ग सिधार गईं और तब आपका जीवन सहानुभूतिदाताओं पर निर्भर हो गया । दुर्भाग्यवश आप मातृसुखसे वंचित ही रहे । आपका लालन पालन आपके चचेरे भाइयोंके यहाँ हुआ फिर भी आपको किसी तरहकी आपत्तियो का सामना नहीं करना पड़ा ।

शिक्षा

अध्ययन हेतु आपको जाखलौन छोडकर ललितपुरमें रहना पड़ा । वहाँ आपने प० शीलचन्द्रजी न्यायतीर्थ द्वारा प्रवेशिका तक धार्मिक शिक्षा प्राप्त की । इसके पश्चात् इन्दौरसे शास्त्रीकी परीक्षा पास की । सन् ३५ में आपने विशारद परीक्षा पास की और इसके बाद दिल्लीसे सन् ४७ मे आयुर्वेदाचार्यकी परीक्षा पास की ।

विवाह

अध्ययनकालमें ही बारी निवासी श्री रामलाल बरयाकी सुपुत्री कस्तूरीबाईके साथ आपका विवाह हो गया । आपकी धर्मपत्नी एक सुयोग्य महिला है । धार्मिक दृष्टिसे विशेष शिक्षित हैं

व्यवसाय

आपकी रुचि वैद्यककी ओर प्रवृत्त हुई । आपने इस कार्यमें अच्छी निपुणता अर्जित की । आपने सर्व प्रथम श्री नमिसागर दिगम्बर जैन औषधालयमें उपवैद्यके स्थानपर कार्य किया । इसके बाद ललितपुर जैन औषधालयमें प्रधान वैद्यके पद पर कार्य किया । तत्पश्चात् बीनाके महावीर जैन औषधालयमे कार्य किया । तत्पश्चात् स्वतन्त्र दवाखाना ललितपुरमें कार्य किया और वर्तमान समयमें आप दिल्लीमें उक्त कार्य कर रहे हैं ।

व्यक्तित्व

आपका स्वभाव अत्यन्त विनम्र प्रकृतिका है । समाजके प्रति आप उदार हैं । आपने समाजसेवाको अपना प्रथम कर्त्तव्य समझा । समाजके अन्दर छिपी हुई अनेक कुरीतियोंको दूर करनेमें आपने अत्यधिक सहयोग दिया । प्रत्येक धार्मिक कार्यमें आपका योगदान रहता है । आप सदाचारी दृढ श्रद्धानी धर्मात्मा विद्वान् है ।

●

पं० लालचन्द्रजी 'राकेश'

●

आपका जन्म उत्तर प्रदेशमें झाँसी जिलेके सिलगन नामक गाँवमें सात जनवरी १९३४ को हुआ। आपके पिताश्री कालूरामजी नौकरी करते थे अस्तु आपकी माताको घरपर अकेली रहना पडता था। इसलिए वे अपने मायके किसलवाल आ गयी। आपकी नानी विधवा थी इसलिए आपकी माताजीका वहाँ आना दोनोंके लिए लाभप्रद रहा। आपकी माँ श्री कौंसाबाईजी एक धर्मप्रिय महिला थी।

किसलवालमें पाठशाला नही थी अस्तु आप प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने हेतु गुरसौरा जाया करते थे। नानी ही प्रतिदिन आपको शाला तक पहुँचाने एव लिवाने जाया करती थी। क्योंकि रास्तेमें एक बडा भारी तालाब था अस्तु नानीजोको सदैव इस बातका भय लगा रहता था कि आप कौतूहल-वश तालाबके पास आकर डूब न जायँ।

नियमित छात्रके रूपमें मध्यमा तक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद आप बिजनौरमें अध्यापक हो गए। मध्यमा तककी समस्त परीक्षाएँ आपने प्रथम श्रेणीमें ही उत्तीर्ण की। इसके बाद अध्यापन कार्यके साथ-साथ आप स्वाध्यायी छात्रके रूपमें अध्ययन कार्यको भी निरन्तर प्रगति पथपर बढाते रहे। बी० ए० की परीक्षामें आपको मेरिटमें स्थान मिला। इसके बाद आपने हिन्दी तथा संस्कृतसे एम० ए० किया।

धनोपार्जन हेतु आपने प्रमुख रूपसे शिक्षण कार्यको ही अपनाया। बीच-बीचमें सह-सम्पादन तथा सम्पादन कार्य भी किए। आजकल आप शा० उ० मा० वि० रायसेनमें व्याख्याता पदपर कार्य कर रहे हैं।

नौकरीका कार्य करते हुए भी आप धार्मिक कार्योंमें अत्यधिक रुचि लेते हैं। प्रवचन तथा विवाहादि कार्य कराते है किन्तु इस हेतु कभी द्रव्य नही लेते। आपकी उदार भावनासे समाज अत्यधिक अनुप्राणित एवं प्रभावित है।

लेखन कार्यमें आपकी रुचि बाल्यकालसे ही है। गद्य एव पद्य दोनोको आपने अपनाया तथा समानरूपसे दोनोमे अधिकार प्राप्त किया। आपने अनेक महापुरुषो एव विद्वानोंकी जीवनियाँ, पौराणिक कथाएँ तथा धार्मिक लेख लिखे है। श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र सरौन (ललितपुर) पर आपने एक खण्ड काव्य लिखा है जो यथार्थतः प्रशंसनीय कृति हैं। यद्यपि कि वह पुस्तक अभी अप्रकाशित हैं फिर भी वह प्रकाशमें न आनेके बावजूद भी लोकप्रियता प्राप्त कर आपको यशमण्डित बना रही है। आपकी रचनाएँ लगभग १५ जैन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती है।

"वैभवके लिए संघर्ष" और रौद्र ध्यानी, अरविन्द कहानियाँ आपकी उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। आपने लगभग २० जीवनियाँ लिखी हैं, सैकडों गीत एवं कविताओंका सृजन किया है। लगभग १० माह आप सन्मति सन्देशके सम्पादक रहे। "जैनाचार्य" नामक ग्रन्थके अधिकांश जीवन-चरित्र आपके ही लिखे हैं।

●
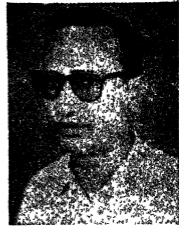
श्री लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'

उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलेमें सिरगन नामक गाँव है। वहींपर २ फरवरी सन् १९२५ में माता श्री प्यारीबाई एवं पिता श्रीमान् जयकुमारजीके घर आपका मङ्गलमयी जन्म हुआ।

माध्यमिक परीक्षा उत्तीर्ण करनेके बाद आप इन्दौर आये और वहाँ शास्त्री-साहित्यरत्नका शिक्षण प्राप्त किया इसके पश्चात् आप अध्यापन कार्य करने लगे। तथा स्वाध्यायीके रूपमें एम० ए०, बी० एड० तक की शिक्षा आपने प्राप्त की।

आजतक आपने साठ पत्र-पत्रिकाओंमें लिखा। जैनमित्र, वीर, अहिंसा वाणी, सन्मति सन्देश, जैन दर्शन, उषा और शांतिमें तो कुछ समय तक आप नियमित रूपसे लिखते रहे। विद्यार्थी-जीवन कालमें सुधा और वर्द्धमान पत्रोंका सम्पादन सकलन किया, अध्यापन कालमें चेतना (दैनिक), शास्वत धर्म (मासिक), राष्ट्, अर्चना (वार्षिक) आदि पत्रिकाओंका सम्पादन किया। पुस्तकोंमें अर्चना और प्रेरणाका सम्पादन किया। संस्थाओंमें साहित्य विभागके परामर्शदाता बनकर आप समाज और संस्थाओंमें अनेक प्रतियोगिताएँ कराते रहे।

गत पच्चीस वर्षोंमें आपकी लगभग पाँच सौ रचनाएँ प्रकाशित हुई होंगी।

आपकी सामाजिक सेवाएँ भी महान् है। रतलाममें आपने दिगम्बर जैन मण्डलकी स्थापना की।

हिन्दू जैन सघर्षको समाप्त करनेकी दृष्टिसे, आदर्श पत्रकारिताकी नींव रखनेकी दृष्टिसे और सन् १९५७ में सावधान (अर्द्धसाप्ताहिक), जनघोष (दैनिक)के प्रति क्रियावादी तत्वोंको न पनपने देनेकी दृष्टिसे चेतना (दैनिक) पत्रका सम्पादन प्रकाशन किया। लोग आज भी रतलाम चेतनाको याद करते हैं।

सारांशतः आप मितभाषी, उदार एवं विनम्र स्वभाववाले गुणग्राही व्यक्ति हैं। अनेकानेक परिस्थितियोंसे जूझते हुए भी आप साहित्य साधनामें अनवरत रूपसे तल्लीन हैं।

●

प्रो० लक्ष्मीचन्द्रजी जैन

●

जन्म

आपका जन्म १ जुलाई १९२६ को सागर (म० प्र०) में हुआ। आपके पिता श्री दमरूलालजी जैन स्थानीय हाईस्कूलमें शिक्षक थे। आपका किशोरावस्थाका सुखद जीवन सागर में ही बीता। आपकी माता श्रीमती चमेलीबाई एक सुयोग्य महिलाओंमें गिनी जाती है।

शिक्षा

मैट्रिक तककी पढाई आपने सागर में ही सम्पन्न की। आपका नाम सदैव उच्च श्रेणीके छात्रोंमें लिया जाता था। शिक्षकगण आपकी प्रतिभासे बेहद खुश रहा करते थे। मैट्रिकके बाद सन् १९४६ में

आपने रावर्ट सन कालेज जबलपुरसे बी० एस-सी० की परीक्षा पास की। इस कक्षा में भी आप अच्छे अंकोंसे उत्तीर्ण हुए। इसके बाद स्वाध्यायी परीक्षार्थीके रूपमें सागर विश्वविद्यालयमें एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

उक्त लौकिक शिक्षाके अतिरिक्त आपने धार्मिक शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया। इण्टर पास होते ही आपने द्रव्य संग्रहकी परीक्षा पास की थी बादमें आपने मोक्ष शास्त्र किया।

अर्थोपार्जन

अर्थोपार्जन हेतु आपने आरंभ से अबतक सिर्फ अध्यापन कार्यको अपनाया। ५ जुलाई १९५१ से ५६ तक आप कालेज आफ साइंस नागपुरमें गणितके व्याख्याता रहे। ५६ में रावर्टसन कालेज जबलपुर पहुँचे १९६४ में सहायक प्राध्यापक बनकर बालाघाट पहुँचे पुनः जबलपुर तथा दमोह और देवास पहुँचे। १९६६ से आप सीहोरमें प्राध्यापक हैं।

समाज सेवा

आपने सीहोरमें 'वर्द्धमान् सेवा समिति' को स्थापना की। उक्त समिति अपने ढंगकी अनूठी है। समाज की ही तरह की सेवा करना ही इस समितिका उद्देश्य है। औषधि आदि वितरित करने तथा हर सम्भव सहायता प्रदान करनेके कारण यह सेवा समिति बहुत लोकप्रिय है जिसका एक मात्र श्रेय आपको ही है।

साहित्यिक सेवा

आप साहित्य क्षेत्रमें सन् १९५२ से उतरे। गणित सम्बन्धी अनेक गम्भीर विषयोंमें आपने बहुत कुछ लिखा। आपकी साहित्यिक कृतियाँ सन्मति सन्देह आदि अनेक पत्रिकाओंमें निकलती रहती है। आपकी बहुत पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। जिनमें तिलोयपण्णत्तीका गणित, गणित सार संग्रह, ऑन दि जैन स्कूल्स आफ मैथमेटिक, बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रंथ तथा रिसर्च ऑन जैन मैथमेटिक्स आदि अत्यन्त प्रसिद्ध पुस्तकें हैं। इनके अलावा बहुत सारी इसी कोटि की कृतियाँ अभी अप्रकाशित हैं।

आपने गणित जैसे गम्भीर विषयको भी इतना सरस और सरल बनाया है जो सचमुच सराहनीय है।

●

पं० लाड़लीप्रसादजी 'नवीन'

●

हमारे समाजमें बहुतसे ऐसे महन्त भी छिपे हुए हैं जिन्होंने स्वाध्याय बलके आधारपर ही अपनी प्रतिभाकी उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचानेमें स्वत:को सर्वथा समर्थ पाया है।

नवीनजी एक ऐसे ही पथिक है। आप अपने पिता श्री भँवरलालजी एवं माता श्रीमती रामचन्दी बाईके सबसे छोटे पुत्र है। आपका जन्म मगसर कृष्ण एकादसी संवत् १९७७ मे राजस्थानके कोटा जिलेमें मँड़ावरा नामक गाँवमे हुआ। आपके चाचा सवाई माधौपुरमें रह रहे थे। वे नि.सन्तान थे।

जब आपकी उम्र १० वर्षकी थी तब आपको पूज्य चाचाजीने गोद ले लिया। आप मँड़ावरासे कोटा चले आये। चाचाजीने आपको अध्ययन हेतु विद्यालयमें

प्रविष्ट कराया। एक वर्ष बाद ही आपके चाचाजीका स्वर्गारोहण हो गया। सारा भार आपकी मातृतुल्य चाची पर आ पड़ा। आपको चाचाजोके आकस्मिक निधनसे अत्यधिक दुःख हुआ किन्तु चाचीजीकी वरद छाया आपके ऊपर थी अतएव आपको परेशानियोंका सामना प्रत्यक्ष रूपसे नहीं करना पडा। समयने फिर करवट बदली कि आपके ऊपरसे चाचीका ममत्व भरा साया भी दूसरे ही वर्ष उठ गया। आप बेसहारे हो गए। घरका पूरा दायित्व आप पर आ गया।

यह दूसरी बात है कि आपके भाइयोंने आपकी मदद की किन्तु वह नहीं हो पाया जो आप चाहते थे। खुलासा मतलब यह कि मैट्रिकके प्रमाण-पत्रके साथ ही आपकी पढ़ाईका सर्वथा अन्त हो गया। आपको विद्यालय छोड़ना ही पडा। आपने गृहस्थीकी ओर ध्यान आकृष्ट किया। विद्यालयीन शिक्षा तो स्थगित हो गई पर आपने उसे स्वाध्यायका सहारा लेकर धर्मग्रन्थोंका मंथन किया और उससे अमूल्य नवनीत प्राप्त किया।

आपने अपने समस्त कार्योंको तीन भागोंमें विभक्त कर जीवनका नियमित बना लिया। उदरपोषणके लिये व्यवसाय, ज्ञानार्जन हेतु स्वाध्याय तथा भावाभिव्यक्तिके लिए साहित्य सृजन ये तीन ही कार्य आपने प्रमुख रूपसे अपनाया। इनके अलावा प्रवचन तथा प्रतिष्ठा कार्योंको भी आपने अपनाया तथा विशिष्टता प्राप्त की।

आपका ज्ञान अथाह है। आपने सैकड़ों कवितायें एवं कई सैकडों लेख लिखे। प्रवचन तथा प्रतिष्ठा कार्योंके सम्पादनके उपलक्षमें आपको सदैव पारितोषिक एव अभिनन्दन पत्र प्राप्त हुए। समाजसेवामें भी जीवनमें अनेकों वियोगों तथा अगणित आपत्तियोंका सामना करना पडा किन्तु आपने उन सबसे पलायन करनेका विचार तक नहीं किया। सबको हँस-हँस कर गले लगाते रहे।

आपका व्यक्तित्व बडा ही सरस तथा प्रशसायोग्य है। आप सामाजिक कुरीतियोंके घोर विरोधी हैं। आपका हर कार्य प्रशसनीय एवं अनुकरणीय है।

●

पं० लालचन्द्रजी कौछल

●

आपका जन्म एक नवम्बर उन्नीस सौ उन्तालीसमें झाँसी जिलेके बालावट नामक गाँवमें हुआ। जन्मके समय आर्थिक स्थिति सामान्य थी। आपकी माता श्रीमती प्यारीबाई और पिता श्री खूबचन्दजी सहृदय धार्मिक भावनाओंके व्यक्ति थे। आपके पिता दो भाई थे। दोनों ही पृथक्-पृथक् व्यापार करते थे। फिर भी स्नेहकी दृष्टिसे वे राम-लक्ष्मण जैसे भाई ही थे।

आपकी उम्र तेरह वर्षकी ही थी तभी पिताश्रीका स्वर्गवास हो गया। आप अनाथ हो गए किन्तु आपके चाचाने आपके प्रति जो ममत्व ओर स्नेह प्रदर्शित किया वह सचमुच प्रशसनीय है। उन्हीके संरक्षणमें आपका पालन-पोषण हुआ, आपको पढाया लिखाया।

माताजीकी इच्छा थी कि आप एक ऊँचे दर्जेके पण्डित बनें। आपने शास्त्रीकी परीक्षा भी पासकी किन्तु आप पण्डित नहीं बन सके। यद्यपि कि आपका पाण्डित्यपूर्ण ज्ञान असाधारण है।

आपकी शिक्षा नाभिनन्दन दि० जैन छात्रावास बीनासे प्रारम्भ हुई और पी जी० बी० टी० कालेज सेवासमें उसका अवसान हुआ। आप एम० काम० बी० एड० हैं। सन् १९६७ में आपने एम० काम० की परीक्षा अच्छे अंकोंमें उत्तीर्ण की थी। जब आप एम० काम० पूर्वार्द्धके छात्र थे तभी आपका विवाह भी हो

गया था। अर्थोपार्जन हेतु आपने सिर्फ शिक्षण कार्यको ही अपनाया।

आपके सैकड़ों लेख एवं कविताएँ जैन-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुईं तथा उनका क्रम अब भी चालू है।

●

श्री लालचन्दजी सेठी

●

रायबहादुर वाणिज्य भूषण श्री सेठ लालचन्दजी बी० सेठीका जन्म झालरापाटन राजस्थानमें १७ सितम्बर सन् १८९३ में हुआ था। आप देशके प्रमुख उद्योगपतियोंमेंसे एक रहे एवं विनोद मिल्स कम्पनी लिमिटेड, उज्जैनके संचालक मण्डलके अध्यक्ष थे। आप वस्त्रोद्योगमें सन् १९२८ से सक्रिय भाग लेते रहे। आपके ही पथ-प्रदर्शनमें विनोद मिल्स काफी विस्तृत होकर आज इस उन्नतिके शिखर पर पहुँचा जो कि मध्यप्रदेशके प्रमुख उद्योगमेंसे एक है। भारतके आधुनिकतम मिल्स विमल मिल्सने भी आपके ही सत्प्रयासों एव पथ प्रदर्शनमें उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है।

आप मध्यप्रदेश मिल ओनर्स एसोसिएशनके चैयरमैन रह चुके थे तथा एसोसिएशनकी तरफसे आप इण्डियन काटन मिल्स फेडरेशनकी कमेटीके मनोनीत सदस्य थे। आप मध्य प्रदेश उद्योग व्यापार परिषद् जो १९६० में उज्जैनमें हुई थी। उसकी स्वागत समितिके अध्यक्ष थे। आप अनेकों उद्योगोंमें जिसमें दी हुकमचन्द मिल्स लिमिटेड इन्दौर, दी कल्याणमल मिल्स लिमिटेड इन्दौर, दी हीरा मिल्स लिमिटेड उज्जैन, दी बकलन इन्श्योरेन्स कम्पनी लिमिटेड बम्बई, दी न्यू माणकचौक स्पिनिंग एण्ड वीविंग कम्पनी लिमिटेड अहमदाबाद, दी इण्डियन इलेक्ट्री केमिकल्स लिमिटेड अहमदाबाद, मध्यप्रदेश फ़ायनेन्स कारपोरेशन इन्दौर, सेन्ट्रल इण्डिया मशीनरी मैन्यूफेक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड विरला नगर, कृष्णराम बल्देव बैंक प्रा० लिमिटेड ग्वालियर एवं नीमाड टेक्सटाइल्स लिमिटेडके डाइरेक्टर रहे।

इसके अतिरिक्त आप हमेशा साहित्यिक सांस्कृतिक शैक्षणिक एवं सामाजिक गतिविधियोंमें रुचि लेते रहे तथा उसमे काफी सहयोग प्रदान किया है। नागरी प्रचारिणी सभा काशी राजपूताना हिन्दी साहित्य सभा झालरापाटन एवं मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौरके आजीवन सदस्य एवं ऐलक पन्नालाल दिगम्बर जैन सरस्वती भवन ट्रस्टके अध्यक्ष एवं भारत जैन महामण्डल मध्यप्रदेशके अध्यक्ष रहे। आपने विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनकी स्थापनामें पूर्ण सहयोग दिया और बादमें कोषाध्यक्ष एवं सीनेटके सदस्य रहे। आप बोर्ड आफ गवर्नर्स सिंधिया स्कूलके सदस्य एवं माडेल स्कूल हायरसेकन्ड्री स्कूलकी प्रबन्धक समितिके अध्यक्ष रहे। आप सेठ्या राजा सिंधिया धर्मशाला एव युवराज जनरल लाइब्रेरीके अध्यक्ष रहे। आप अपने जीवन कालमें हिन्दीके उत्थानके लिए सतत प्रयत्न करते रहे। हिन्दी तथा अंग्रेजी साहित्यपर आपका एक विशाल निजी पुस्तकालय है।

वे मितव्ययी तो थे परन्तु धार्मिक व सामाजिक कार्योंको विशेष ध्यान देते थे। अपनी धर्मप्राण पत्नी के परामर्शानुसार नवीन वेदीको निर्माण सरस्वती भवन बनवाकर व मृत्युके उपरांत वेदी प्रतिष्ठा मिशनके सरस्वती भवनका उद्घाटन आदि कार्य कराये। अपनी मृत्युके कुछ दिन पूर्व श्री सम्मेदशिखरजी आदि तीर्थ स्थानोंकी सपरिवार वन्दना की वैसे तो कई वर्षों तकसे उनका शरीर रक्तार्शसे पीड़ित था फिर भी सभी कार्योंकी सुव्यवस्थितताका ध्यान था। ●

श्री पं० वंशीधरजी न्यायालंकार

आपका जन्म संवत् १९४७ की कार्तिक शुक्लाकी प्रतिपदा को महरौनी नामक स्थानमें हुआ था। आपके पिता श्री किशोरीलालजी थे। आपकी आर्थिक स्थिति बहुत ही साधारण थी। इनके पिताजी धार्मिक प्रवृत्तिवाले, जिनेन्द्र भक्त तथा भद्र परिणामी थे और उन्ही की छाप आपके ऊपर पडी।

महरौनी के मदरसेमें कक्षा पांच तक अध्ययन करनेके बाद स्थानीय पाठशालामें धर्मका शिक्षण डेढ साल तक किया। अध्ययनमें रुचि तथा व्युत्पन्नपति होनेके कारण पूज्य वर्णीजी महाराजके सान्निध्यमें बनारस रहकर अध्ययन करने लगे।

कुछ दिनो बाद स्याद्वाद विद्यालयकी स्थापना हुई थी और श्रद्धेय पंडितजीको यह सौभाग्य मिला कि वे इस विद्यालयके सर्वप्रथम स्नातक हुए। उसके बाद गुरु गोपालदासजी वरैया के सान्निध्यमें रहकर उन्होंने गोपाल सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेनासे सिद्धान्त और न्याय ग्रन्थो का गहन अध्ययन किया। इनकी प्रशस्तमति देखकर गुरुजीने अपने विद्यालयमें ही इनको अध्यापक पद पर रख लिया। वहाँ रहते हुए इन्होंने गोम्मटसार कर्मकांड, तत्त्वार्थवार्तिक, पचाध्यायी आदि महान् ग्रन्थोंका अध्ययन कराया। इनके आज भी ऐसे अनेक शिष्य हैं जो समाजमें लब्धप्रतिष्ठ होकर समाज, धर्म, शिक्षा और साहित्यके प्रचार-कार्यमें लगे हुए है। कुछ प्रसिद्ध शिष्य ये है—पं० जगमोहनलालजी शास्त्री, प० फूलचन्द्रजी शास्त्री, प० कैलाशचन्दजी शास्त्री, प० के० भुजवली, शास्त्री आदि। लगभग १५ वष तक गुरु गोपालदासजी वरैया द्वारा स्थापित मोरेना विद्यालय में अध्यापन किया।

इसके बाद श्रद्धेय वर्णीजी द्वारा जबलपुरमें स्थापित शिक्षा मन्दिरमें लगभग तीन वर्ष तक अध्ययन कराया। बादमें सर सेठ हुकमचन्द्रजी द्वारा सस्थापित इन्दौर महाविद्यालयमें मुख्य प्राचायपर आमन्त्रित कर लिये गये। तब तक उनकी शिक्षाके क्षेत्रमे इतनी प्रतिष्ठा बढ़ गई थी कि इनके इन्दौर महाविद्यालय में पहुँचते ही स्वर्गीय प० जीवधरजीने अपना प्रधानाचार्य पद त्यागकर इनको पद अर्पित कर दिया। आचार्य पदपर कार्य करते हुए अन्तमें वृद्धावस्थाके कारण इन्होंने विद्यालयमे त्यागपत्र दे दिया और स्वयं ही धार्मिक जीवन तथा स्वाध्याय आदि कार्यमें लग गये। अपने जीवनके कुछ काल पहले उन्हाने सातवीं प्रतिमा के व्रत अंगीकार कर लिये थे और इसी अवस्थामें अपने घरपर ही इनकी समाधि हुई।

ये अपने कालके विद्वानोंमें मूर्धन्य थे। शिक्षाके क्षेत्रमें इन्होने जितनी ख्याति प्राप्त की उतनी और किसी विद्वान्को नही मिल सकी।

श्रीमती वाग्देवी अम्मा न्यायतीर्थ

स्व० चन्द्रमती अम्माके गर्भसे पिता श्री स्व० देरम्मा सेट्टीके घर जन्मी बालिका अपनी दस वर्षकी आयुमें मातृभाषा कन्नडका प्रारम्भिक ज्ञान लेकर श्री नागराज जैनके साथ वैवाहिक बन्धनमें बँधी। इनके पतिका घराना 'हेडमे' गद्दीसे जो कि वश-परम्परासे चला आ रहा था, प्रसिद्ध था। पतिके देहावसानके दुखसे दुखी वाग्देवीने भावी जीवनकी सुख शान्तिके लिए अध्ययनका संकल्प किया। फलत: १९२६ में जैन बालाश्रम-धर्मकुज, धनपुरा आरामें आयी और १९३८ तक विभिन्न धार्मिक ग्रन्थोंका गहन अध्ययन कर शास्त्री स्तर तक परीक्षायें दी। इसके साथ संस्कृतका ज्ञान प्राप्त किया।

आपने दो वर्ष चारुकीर्ति कन्या पाठशालाम अध्यापिकी की। कुछ लोगों का कहना था कि दक्षिणवाले उत्तर

भारतमें अध्ययन कर यहीं नौकरी करने लगते हैं और दक्षिणमें जहाँ हिन्दीभाषी बहुत कम हैं धर्मका प्रसार एवं प्रचार नहीं हो पाता। अतः आप दक्षिण भारतमें शिक्षाका अभ्युदय करें। फलतः आपने मूडबिद्रीमें १९४३ से १९६३ तक जैन श्राविकाश्रमकी स्थापना कर उसे चलाया और छात्राओंको धार्मिक शिक्षण देकर 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार संघ' की हिन्दी परीक्षायें तथा सोलापुरकी धार्मिक परीक्षायें दिलवायीं। इस प्रकार आपने वैधव्य जीवनको समाजकी कलियोंके सँवारनेमें लगाकर आनन्दपूर्ण बिताया। आपने देशके कोने-कोनेमें जाकर इस आश्रम हेतु चन्दा एकत्रित किया और एक ध्रौव्य फण्डका निर्माण कर उसकी ट्रस्टी रजिस्टर्ड करवायी।

आपने अपने जीवन परिचयकी झलकियोंमें दक्षिण देशके वैधव्य जीवनकी एक झाँकी प्रस्तुत की है। वहाँ विधवा महिला ससुरालमें अपना अधिकार नहीं रख पाती जैसे 'पेड़ गिर पंक्षी उड़ा' यही वृथा यहाँकी नारी की है। इस प्रथाके पीछे 'भूतालपाड' की एक पारम्परिक लोक कथा प्रचलित है जिसके अनुसार घरकी सम्पत्तिकी अधिकारिणी पत्नी न होकर बहिन होती है। जो अब भी यथारूप विद्यमान है।

आपका शिक्षा जगत्‌के लिए यह समर्पित जीवन वस्तुतः प्रकाश बन गया है।

●

श्री वीरचन्द्रजी

●

परिचय

आपके बाबा प० माणिकचन्दजी न्यायाचार्य अपने समयके मूर्धन्य विद्वान् थे जिन्होंने श्लोकवार्तिक जैसे महान् ग्रन्थकी हिन्दी टीका की। आपके पिता श्री जयचन्दजी आयुर्वेदाचार्य शास्त्री न्यायतीर्थ भी महान् विद्वान्, प्रसिद्ध वैद्य और धार्मिक व्यक्ति थे।

जन्म

२१ अगस्त १९३१ सहारनपुर (उ० प्र०)।

शिक्षा

डी० ए० बी० कालेज कानपुरसे १९५१ में बी० काम०, आगरा यूनिवर्सिटी आगरासे १९६७ एवं १९६९ में क्रमशः एम० काम० एवं एम० ए० (अर्थशास्त्र), १९५८ में बी० टी० प्रशिक्षण।

सामाजिक कार्य

श्री पारसनाथ हायर से० स्कूल ईसरी और के० डी० जैन हा० स्कूल मदनगंज (किशनगढ) में अध्यापक। वर्तमानमें श्री पी० डी० जैन इण्टर कालेज फिरोजाबादमें प्रवक्ताके पदपर। १९५३-५५ तक जैन बोयज एसोसियेशन ईसरी बाजारके सभापति मनोनीत हुए थे। झूमरीतलैयामें प्रतिष्ठामें सक्रिय सहयोग एवं प्रबन्ध।

●

पं० विद्याकुमार सेठी

●

जन्म स्थान एवं तिथि : नसीराबाद १९११ ई० लगभग । **शैक्षणिक योग्यता**—न्यायतीर्थ, काव्य-तीर्थ । अंग्रेजी और गुजरातीका आवश्यक ज्ञान । शिक्षा स्थान—केकड़ी, मोरेना और अजमेर ।

वर्तमानमें : राजकीय ओसवाल जैन बहु० उच्च० माध्यमिक विद्यालय अजमेरमें सह प्रधाना-ध्यापक । जहाँ आप ४१ वर्षसे संस्कृत तथा हिन्दीका अध्यापन कार्य करते हैं ।

साहित्यिक गतिशीलता : २० कहानियोंका संग्रह–पुस्तक रूपमें । पू० आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजसे पंचम प्रतिमाके व्रत अंगीकार कर संयमित चारित्रकी उज्ज्वलता । शान्त एवं सरल स्वभावी—समाजके निस्पृही सेवी ।

●

प्रो० वीरेन्द्रकुमारजी

●

जन्म स्थान एवं तिथि · ग्राम-रीठो (जबलपुर म० प्र०) १९३६ ई० । **शैक्षणिक योग्यता**—श्री गणेश दि० जैन विद्यालय एवं सागर विश्वविद्यालयसे एम० ए० (संस्कृत), साहित्याचार्य, धर्मशास्त्री विक्रम विश्वविद्यालयसे 'तिलकमंजरीका आलोचनात्मक अध्ययन' विषयपर पी-एच० डी० । अंग्रेजीका विशेष और पाली एवं प्राकृत भाषाका सामान्य-ज्ञान ।

सम्प्रति : शासकीय महाविद्यालय गुना (म० प्र०) में असि० प्रोफेसर । वर्तमान पता—कोटेश्वर मंदिरके सामने गुना ।

धर्मशास्त्रका अच्छा अध्ययन है तथा जैन संस्कृतिके अत्यन्त-प्रेमी । 'वर्णी स्नातक परिषद्' की स्थापना में विशेष योगदान ।

●

पं० विजयकुमारजी चौधरी

●

आर्थिक विषमताओं और निर्धनताके कटु अनुभवोंसे गुजरते आपके पिता श्री रघुनाथप्रसाद जैन एक ऐसे व्यक्ति हुए जो अन्तमें निर्धनताके शिकार हो संग्रहणी रोगसे चल बसे । आपकी माँ श्रीमती गौरीबाईने पीस-कूटकर अपनी पारिवारिक गाड़ीको किसी तरह आगे खीची । और शिक्षा संस्थाओंकी छाया में आपका जीवन पला । आपका जन्म १५ सितम्बर १९२७ को बड़ागाँव जिला टीकमगढ़ (म० प्र०) में हुआ था ।

प्रारम्भिक शिक्षा द्रोणगिरिमें । पुन जैन संस्कृत विद्यालय सागरसे काव्यतीर्थ एवं मध्यमा (संस्कृत) तथा स्याद्वाद महाविद्यालय बनारससे साहित्यशास्त्री, (काशी संस्कृत कालेज) और साहित्यरत्न किया । पढ़नेकी जिजीविषा

समाप्त नहीं हुई और सेवाकार्य करते हुए अन्तमें एम० ए० (संस्कृत) से प्रथम श्रेणीमें १९६७ में एवं राजस्थान विश्व विद्यालयसे १९७० में हिन्दी विषयमें द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण किया। इसके पूर्व आपने वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालयसे स्वाध्यायी रूपमें साहित्याचार्यकी उपाधि प्राप्त कर ली थी (१९६२ में)।

आपने अपने आर्थिक उपार्जन हेतु १९५९ से १९६७ तक विभिन्न स्थानोंपर शिक्षक पदपर कार्य किया। वर्तमानमें आप श्री शान्तिवीर जैन गुरुकुल जोबनेर (जयपुर) में प्रधानाध्यापकके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

साहित्य व समाजसेवा

'आदर्श कहानी संचय', 'जिनपूजा संग्रह', 'जैन तत्त्वदर्शन' आदि पुस्तकोंका सम्पादन किया। 'वर्णी जीकी अमर कहानी' तथा 'द्रोणगिरि दर्शन' आपकी स्वतन्त्र कृतियाँ हैं।

द्रोण प्रान्तीय नवयुवक सेवा मण्डल द्रोणगिरिकी साहित्यिक समितिके कार्यकारिणी सदस्यके रूपमें सामाजिक सेवायें कीं। वीर सेवा मन्दिर दिल्लीमें रहकर कई पुस्तकोंके प्रूफ-रीडिंग व संशोधन-कार्य किया। तथा अनेकान्त, जैन दर्शन, जैनमित्र आदि पत्रोंमें स्फुट-लेखादि प्रकाशित करवाये। आप दहेज प्रथाके विरोधी हैं। आपने कई स्वाध्यायशालाओं और रात्रिपाठशालाओंकी स्थापना की है।

●

श्री विनोदकुमारजी विभाकर

●

श्री विनोदकुमार जैन एक युवा-लेखक और पत्रकार हैं। आपका जन्म १ अप्रैल १९३९ ई० में दिल्लीमे स्व० श्रीमती कलावतीके गर्भसे हुआ था। आपके पिता श्री विशम्बरदासजी 'जोला' जिला मुजफ्फरनगरके मूल निवासी थे जो १९३७ में दिल्ली आकर स्थायी तौरपर बस गये थे। डेढकी अल्पायुमें आपके पिताका स्वर्गवास हो गया था। १९६१ में पंजाब विश्वविद्यालयसे बी० ए० और १९६२ मे पत्र-कारिताका अध्ययन किया। १९६९ में एल० एस० जी० डी० (लोकल सेल्फ गवर्नमेन्टका डिप्लोमा) दिल्ली से प्राप्त किया।

प्रारम्भसे आपकी रुचि भ्रमण, अध्ययन एवं लेखनकी रही। भ्रमणके आधारपर अनेक संस्मरणात्मक लेख विभिन्न पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुए। १०६३ से ६६ तक 'वीर' पाक्षिकके सम्पादकीय विभागमें अवैतनिक कार्य किया। १९६७-६८ में शकुन प्रकाशन दिल्लीमें सम्पादक मण्डलमे रहकर कार्य किया। आपने राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्में 'धानकी खेती' पर शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किया। आज तक आपकी लगभग २५० से अधिक रचनायें देशकी प्रमुख पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं।

आर्थिक उपार्जन हेतु पहले आप फेरी लगाकर द्रव्य कमाते रहे। परन्तु वर्तमानमें दिल्ली नगर निगममें १९५८ से लिपिक पदपर कार्य करते हुए स्वतन्त्र लेखन द्वारा साहित्यिक सेवा कर रहे हैं।

आप धर्मपुरा दिल्ली-६ में स्थित 'ज्ञान-गोष्ठी' नामक साहित्यिक संस्थाके संस्थापक हैं। और १९५८ मे अब तक अवैतनिक रूपसे संयोजकका उत्तरदायित्व निभा रहे है। १९६३-६६ तक अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद्में सम्पादकीय विभागमे कार्य किया। अपनी साहित्यिक प्रतिभाका श्री गणेश आपने 'ज्ञान-ज्योति' हस्तलिखित त्रैमासिक पत्रिकाका शुभारम्भ करके किया था।

अप्रकाशित रचनायें

आपकी लगभग दस पुस्तकोंकी पाण्डुलिपियाँ प्रकाशनार्थ पड़ी हैं जिनमें मुख्य 'माटी हो गयी सोना' (वैज्ञानिक विषयों पर लेखादि), 'चन्दाका देश', हमारे पक्षी (बालोपयोगी साहित्य) 'यह धरती है बलिदान की', प्रेरणाके स्रोत (प्रेरणाप्रद कहानियाँ), जैन कथायें, करुणा जागी रे (कविता संग्रह) आदि हैं। आप जागृत महिलाके 'नन्दनवन' स्तम्भके संचालक भी हैं। इसके अलावा आपकी कवितायें विभिन्न काव्य-संग्रहोंमें संकलित हैं।

आपके एक पुत्री और एक पुत्र (परिवार नियोजनका आदर्श रूप) है। धर्मपत्नी श्रीमती सरला जैन एम० ए० (समाजशास्त्र) एम० ए० (अर्थशास्त्र), बी० टी० हैं।

●

श्री विजयकुमारजी

●

परि-परिचय

पितामह श्री हुकमचन्दजी 'भोपाल वाले सेठजी' की अपर संज्ञासे अभिभूत एक ख्यातिप्राप्त वैद्य थे। पिता श्री जयकुमार जैन एक कवि, राजनीतिज्ञ एवं प्रभावशाली वैद्यके रूपमे पूरे सिरोंज (विदिशा) क्षेत्रमें जाने जाते हैं। प० सरदारमल जैन 'सच्चिदानन्द' आपके पूज्य चाचा है। आपका जन्म सिरोंज (विदिशा) जिला भोपालमे ९ अगस्त १९४१ को श्रीमती सुलोचनादेवीके गर्भसे हुआ।

शिक्षा

सिरोंजमे हाईस्कूल तथा सागर विश्वविद्यालय सागरसे १९४४ मे एम० काम० किया। पी-एच० डी० हेतु शोधकार्यमें संलग्न होकर सफलता प्राप्त की। एक वर्षके लिए सागर विश्वविद्यालयमे प्राध्यापक। अब जिला गजैटियर विभाग म० प्र० शासन भोपालमें सिविल सर्विसमें द्वितीय श्रेणीमे गजटेड, पोस्टपर कार्यरत है।

साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

प्रारम्भसे कविता और कहानियाँ लिखनेमें रुचि। सागर विश्वविद्यालयमें 'कविता' मासिक पत्रिका का सम्पादन। १९६२-६६ तक साथी प्रकाशन सागरके सम्पादक मण्डलमें। १९६३-६६ तक 'दैनिक राही' के सह-सम्पादक।

चीनी आक्रमण (१९६२) के समय धन एकत्रित करने हेतु Fete का आयोजन। 'साँझ पुरुष' कविता संग्रह। 'नवनीत', धर्मयुग, हिन्दी टाइम्स जैसे प्रमुख पत्रोंमें वाणिज्य एवं आर्थिक विषयोंपर तथा अन्य पद्य रचनायें प्रकाशित हुईं।

आप जवाहरलाल नेहरू कालेज देवरी (सागर) के सचिव (१९६६-६७), म० प्र० कामर्स ग्रेजुएट एसोसियेशन भोपालके अध्यक्ष (१९६८-७०), म० प्र० राजपत्रित अधिकारी संघके कार्यकारिणी सदस्य (१९६९-७०) तथा १९६२ में प्रगतिशील युवक संघ सिरोंजके प्रवर्तक थे।

●

पं० वृन्दावनजी शास्त्री

●

जन्म स्थान एवं तिथि : सोजना ग्राम महरौनी तहसील जिला झाँसी (उ० प्र०) वि० सं० १९७८ क्वार वदी ५।

पिता श्री सेठ जगन्नाथ—आमकर वैद्य एवं साहूकार।

शिक्षण : श्री अतिशय क्षेत्र पपौरा–विद्यालयसे विशारद, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारससे शास्त्री एवं वैद्यकके अध्ययन हेतु इन्दौर।

सामाजिक कार्य एवं आर्थिक उपार्जन : शिक्षा समाप्तिके बाद बीना (सागर) में औषधालयकी स्थापना कर वैद्यक। कटँगी (जबलपुर) में १० वर्ष अध्यापन कार्य। वहीं आचार्य श्री सूर्यसागरजी महाराज से छठवी प्रतिमाके व्रत धारण। पुनः ५ वर्ष सहजपुरमें रहकर सन् १९६३ से गोटेगाँव जिला–नरसिंहपुर की जैन पाठशालामें अध्यापन कार्य। वेदी प्रतिष्ठा तथा विधानादि कार्योंमें दक्ष। सन्तोष वृत्ति और अब ब्रह्मचर्य व्रतके धारक हैं। तीर्थ वन्दनाके प्रेमी हैं।

●

पं० विनयकुमारजी

●

जन्म स्थान एवं तिथि · जलेसर जिला एटा (उ० प्र०) ३ जुलाई १९४० में।

पिता श्री पं० आनन्द कुमार जैन शास्त्री धर्माध्यापक लबेचू जैन इण्टर कालेज करहल (मैंनपुरी)।

शिक्षा : धार्मिक शिक्षण पूज्य पिताजीके श्रेयसे प्राप्त। मैंनपुरी कालेजसे लौकिक शिक्षा प्राप्तकर झाँसीसे ट्रेंनिग ली। शिक्षा प्राप्त करनेके पश्चात् श्री पार्श्वनाथ दि० जैन विद्यालय छीपीटोला (आगरा) में अध्यापन कार्य। गत १० वर्षोंसे उक्त विद्यालयमें धर्माध्यापनका कार्य भी कर रहे हैं। अखिल भा० दि० जैन परीक्षा परिषद् बोर्ड दिल्लीके परीक्षक रहते हैं। समय-समय पर धार्मिक और सामाजिक लेख लिखकर सामाजिक सेवाका उत्तरदायित्व निर्वाहन।

स्थायी पता : c/o श्री रामस्वरूपजी जैन बर्तन वाले एत्मादपुर, (आगरा)।

●

डा० विमलकुमारजी

●

कई ऐसे व्यक्ति होते हैं जो स्वप्रेरणासे अध्यवसाय और श्रमके सोपानोंसे प्रगतिके पथपर निरन्तर बढ़कर अपना लक्ष्य प्राप्त करते है। डा० विमलकुमारजी जैन उन्ही लोगोंमें एक है जिन्होंने श्री महावीर जैन विद्यालय-दिल्लीसे व्याकरण मध्यमा और न्यायतीर्थ करनेके पश्चात् अन्य सभी परीक्षायें शास्त्री, साहित्यरत्न, एम० ए० (संस्कृत), एम० ए० (हिन्दी) स्वाध्यायी रूप से देकर उत्तीर्ण की और अन्तमें 'सूफीमत और हिन्दी साहित्य' पर शोध-ग्रन्थ लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्लीसे प्राप्त की। उत्तर प्रदेश सरकारने आपके इस शोध ग्रन्थ पर छह सौ रुपये का नकद पुरस्कार प्रदान किया है।

आपका जन्म कुरौंचित्तरपुर जिला आगरामें २३ सितम्बर १९१२ ई० में ला० नन्दकिशोरजीके घर माँ श्रीमती शिवदेवीके गर्भसे हुआ था। आपके पिताजी तीन भाषाओंके जानकर पटवारी थे। उनके सम्मानके लिए सरकारने उन्हें विशेष वेतनवृद्धि प्रदान की थी। समाजके ख्याति प्राप्त पं० बलभद्रजी आगरा आपके चचेरे भाई हैं।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् दिल्ली में ही १९३४ से १९४८ तक श्री महावीर जैन हाईस्कूल व बिरला हायर सेकण्डरी स्कूलमें अध्यापन कार्य किया। तत्पश्चात् १९४९ से दिल्ली कालेज दिल्ली और अब दिल्ली विश्वविद्यालयमें प्राध्यापक पदपर कार्यरत हैं।

सामाजिक सेवा : इस हेतु अपना सब्जीमण्डी विशेष क्षेत्र रहा जहाँ मोहल्ला सुधार समितिका गठनकर लोगोंकी समस्याओंका निराकरण किया।

धार्मिक और साहित्यिक सेवायें : आप दिल्ली अणुव्रत समितिके तीन वर्ष महामंत्री व अ० भा० महावीर जयन्ती कमेटीके पाँच वर्ष मंत्री रहे। २४ वर्ष की अवस्थासे आपने लिखना प्रारम्भ किया। सर्व प्रथम आपने महाराज रत्नचन्दका जीवन चरित्र लिखा था। बादमें दिल्ली और उत्तर प्रदेशके पाठ्यक्रमकी कई पुस्तकें लिखीं।

१९५४ में शोध ग्रन्थ प्रकाशित हुआ और फिर एम० ए० स्तरकी आलोचनात्मक सात पुस्तकें लिखी जिनमें तीन कामायनी और उर्वशी पर शोध ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त 'भारत निर्माता', व्याकरण प्रबोध अनुपम हिन्दी व्याकरण आदि बाल उपयोगी साहित्य और पाठ्य-पुस्तकोंकी रचना की। आपने दिल्ली कालेज पत्रिका 'रश्मि' का सूर विशेषाक सम्पादित किया जिसमें दिल्लीके विद्वानोंके लेख संगृहीत है। आपने गल्प पारिजात, अनुपम कहानियाँ एवं अभिनव एकाकी आदि पुस्तकोंका सम्पादन किया। नवभारत टाइम्स, जैसवाल जैन, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि मे आपकी रचनायें प्रकाशित होती रहती है।

१९४२ में कांग्रेसके आन्दोलनोंमें भाग लिया व ४२ के क्रान्तिके दूसरे दिन निकलने वाले जुलूसमें साथ रहे।

आप दिल्ली कालेज दिल्ली की गवर्निंग बोर्डके सदस्य दिल्ली विश्वविद्यालयकी आर्ट्स फैकल्टीके सदस्य, हिन्दी अनुसन्धान परिषद् दिल्ली विश्वविद्यालयके कोषाध्यक्ष एवं दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलनके साहित्य मंत्री रहे और कार्य कर रहे हैं।

आपकी चार सुपुत्रियाँ एवं ३ पुत्र हैं। पूरा परिवार उच्च शिक्षित है।

●

स्व० पं० व्रजलालजी शास्त्री

●

आपका जन्म विक्रम सं० १९४० के लगभग मायलौन जिला सागरमें हुआ। आपके पिता श्री बहूलालजी थे। आपकी प्राथमिक शिक्षा मायलौनकी प्रायमरी शालामें चौथी कक्षा तक हुई। बादमें आप विद्याभ्यासके लिये बहुत लालायित रहे। इस कारण आपने सागर जैसे स्थानोंकी पद यात्रा भी की। इसके पश्चात् तत्कालीन पूज्य बाबा शिवलालजी एवं दौलतरामजी वर्णीका समागम प्राप्त होनेपर उनके साथ ही बुन्देलखण्डकी पदयात्रा करते रहे तथा उन्हीसे धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त की। आपने गोमट्टसार

जीवकाण्ड आदि ग्रन्थोंका अध्ययन किया व पुनः पढ़नेके लिये बनारस गये। वहाँ विधिवत् धर्म न्याय साहित्य व्याकरण आदिका अध्ययन किया। इसके बाद आप ललितपुर की दि० जैन पाठशाला एवं बीना की पाठशालामें प्रधानाध्यापक रहे। संवत् १९७३ के मध्यमें बीनाके महाविद्यालय मथुरामें प्रधानाध्यापकके पदपर आसीन रहे। आपकी विद्वत्ता एवं भाषण शैलीसे प्रभावित होकर वहाँके लोग आपको बाहर नहीं देना चाहते थे। उस समय बुन्देलखण्डके हर कार्यक्रमोंमें आपको अनिवार्य रूपसे बुलाते थे। मथुरामें पहुँचने-के बाद आपकी ख्याति अल्पकाल में अत्यधिक हो गई। आपकी भाषा शैलीसे कई व्यक्ति प्रभावित हुए।

आप एक महान् विद्वान् पुरुष थे।

●

पं० विद्याधरजी जोहरापुरकर

●

पंडित विद्याधरजीका जन्म २८ जुलाई १९३५ को कारंजामें हुआ। आपके पिता पासूसावजी व माता अंजनाबाई जी थी। आपका उपनाम जोहरापुरकर है। आप बघेरवाल जातिके भूषण हैं। खटोड गोत्रज हैं। आपकी आर्थिक स्थिति साधारण थी। आपके दादा श्री नेमासावजी विद्या व्यासंगीके रूपमें प्रतिष्ठित थे। आपने न्यू इग्लिश हाईस्कूल नागपुरसे १९४४ से ५० तक ग्यारहवी तककी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। बादमें हिस्लाप कालेज नागपुरमें १९५० से ५४के बीच इंटर साइंस, बी० ए० की। तत्पश्चात् मारिस कालेज नागपुरसे एम० ए० किया। इस प्रकार आपने २१ वर्ष में पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। आपकी धार्मिक शिक्षा परीक्षाक्रमकी विधिसे नही रही। साधारण आर्थिक स्थितिके कारण आपको जैन सेवा मंडल गुरुकुल कारंजासे छात्रवृत्तिके रूपमें सहयोग प्राप्त हुआ।

आपको नागपुर विश्वविद्यालयसे भट्टारक संप्रदाय नामक ग्रंथ से पी-एच० डी० की उपाधि मिली। आपका विवाह श्री मगनलालजीकी सुपुत्री विनया से हुआ। आप मध्य प्रदेशके शिक्षा विभागमें प्राध्यापक पदपर कार्य कर चुके हैं। आपने नागपुर महाविद्यालय, शासकीय महाविद्यालय जावरा, शासकीय महा-विद्यालय भोपाल आदिमें कार्य किया है। आपने प्रबन्ध समितिके सलाहकार सदस्यके रूपमें अवैतनिक निःस्वार्थ सहयोग दिया। आपके ५ भाई एक बहन थी। आपके २ पुत्र तथा १ पुत्री है। आपने जैन साहित्यके बृहद् इतिहासके अन्तर्गत मराठी जैन साहित्य प्रकरणको छपने भेजा है। आपने भट्टारक संप्रदाय, तीर्थ वन्दन संग्रह, जैन शिलालेख संग्रह, यशस्तिलक, तिलक मंजरी आदिका अनुवाद किया।

●

श्री ब्रजलाल जैन

●

जीवन-परिचय

श्री ब्रजलालजीका जन्म १५ अगस्त १९२८ को तालका वरमा (टीकमगढ़) उ० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री दुलीचन्दजी थे और माता सोनादेवी थी। आप मध्यम वर्गीय थे। समीपवर्ती क्षेत्रमें प्रतिष्ठा थी। आपके अग्रज प्रो० खुशनन्दनजी एम० ए० सिद्धान्त शास्त्री साहित्याचार्य बड़ौत हैं। आप परिवारमें चार भाई है। आप छोटे होनेसे सभीके प्रिय रहे।

शिक्षा-विवाह

आपकी आरम्भिक धार्मिक शिक्षा पपौरामें हुई। इसके बाद आपने इन्दौर और बनारसमें रहकर शास्त्री परीक्षा पास की। अनन्तर अँगरेजी उपाधियों वाली बी० ए०, एम० ए०, बी० एड० परीक्षायें स्वाध्यायी छात्रके रूपमें उत्तीर्णकी। एम० एड० स्नातकोत्तर महाविद्यालय छतरपुरसे की। आपने हिन्दी संस्कृतमें एम० ए० किया। १९५६ से म० प्र० शासनमें व्याख्याता हैं। आपका विवाह जालमलालजीकी सुपुत्री कपूरीदेवीके साथ हुआ। आपके दो पुत्रियाँ हैं। जो सामान्यतया शिक्षित व गृहकार्यदक्ष हैं। बड़ी पुत्रीका विवाह हो चुका है।

सेवा-कार्य

आपने आरंभिक दिनोंमें कुछ प्रगतिवादी कवितायें लिखी थी परन्तु अभी आपकी लेखनी विश्राम ले रही है। आपने एम० एड० के शोध प्रबन्धके लिये विषय चुना था 'उच्चतर माध्यमिक कक्षाके छात्रों द्वारा हिन्दीलेखन कार्यमें की गई अशुद्धियोंका आलोचनात्मक अध्ययन।' आप धार्मिक-सामाजिक सभी कार्योंको सम्पन्न करानेमें समुचित सहयोग देते रहते हैं। आप अतीव मृदुभाषी व मिलनसार व्यक्ति हैं।

●

डॉ० विमला जैन

●

जैन समाजकी सुशिक्षित महिलाओंमें आप अग्रणी महिला रत्न हैं। आपकी योग्यता एम० ए० (स्वर्णपदक), पी-एच० डी०, बी० एड० है। सामाजिक साहित्यिक संस्थाओंमें अध्यक्षा अनेकात परिषद्, अध्यक्षा जैन महिला परिषद, उपाध्यक्षा लायनेड क्लबके पदपर कार्यरत है। कविता और लघु-कथा लिखनेका विशेष शौक है। फिलहाल जबलपुरके हितकारिणी कालेजमें प्रोफेसर।

जैन समाजको आप जैसी महिलारत्नसे अनेक आशायें है।

बाबू सूरजभानुजी, वकील

बाबूजीका जन्म नकुड जिला सहारनपुरमें वि० सं० १९२५ में हुआ था। अपने युगके बाबूजी एक ऐसे पुरुष थे जिन्होंने लगातार ५०-५५ वर्ष तक अपनी लेखनी, समाजकी सेवा एवं जागृत हेतु निःस्वार्थ-भावसे चलायी। और तत्कालीन ५० वर्षका इतिहास बाबूजीके जीवनसे संलिष्ट है। आपके पिता लाला नागरमलजी तहसीलदार थे। बाल्यावस्था अपने चाचा श्री अमृतरायजीके यहाँ व्यतीत की। १८८५ में लाहौरसे मैट्रिक। इसके बाद कालेजमें, परन्तु पिताजीके देहावसान हो जानेसे आपको नकुड चले आना पडा।

१८८७ में आपने लोअर सब-आर्डिनेट प्लीडर परीक्षा उत्तीर्ण की और एक साल तक सहारनपुरमें वकालात की और उसके बाद १९१४ तक देवबन्दमें रहकर वकालत करते रहे।

प्रथम विवाह १८८२ में (११ वर्षकी अल्पायुमें) परन्तु पत्नीके देहान्त हो जानेसे दूसरा विवाह १८९० में हुआ।

परिवारमें विशेष धार्मिक रुचि नहीं थी परन्तु महिलायें प्रतिदिन देव दर्शनको जाया करती थी। सर्वप्रथम होशियारपुरमें आप एक प्रसिद्ध श्वेताम्बर मुनि आत्माराम जीके प्रवचनोंसे प्रभावित हुए और जैनधर्म-के प्रति जिज्ञासा एवं प्यास जगी।

लाहौरमें चाचाके सान्निध्यमें देवदर्शन और शास्त्र श्रवणका अवसर पाया और इससे इनकी जिज्ञासा वृद्धिगत हुई। आपने इन्ही दिनों 'जैन प्रकाश' हिन्दी मासिक पत्रका लाहौरमें घूम-घूमकर खूब प्रचार किया तथा इस माध्यमसे जैन दर्शनके और निकट आये।

मुरादाबादके मुंशी मुकुन्दरायजी और पं० चुन्नीलाल जिन्होंने मथुरामें जैन महासभा तथा अलीगढ़-में जैन विद्वान् तैयार करनेके लिए पं० छेदालालजीकी संरक्षकतामें एक बडी पाठशालाकी स्थापना की थी, उक्त दोनों विद्वानोंका बाबूजी पर बहुत प्रभाव पडा और उन्हें अपना गुरु माना।

देवबन्दमें वकालत करते हुए आपने १८९२ या ९३ में उर्दू में एक मासिक पत्र 'जैन हितोपदेशक' जारी किया। इसी समय बाबूजीको यह ज्ञात हुआ कि पं० चुन्नीलालजीने जो महासभाकी स्थापना मथुरामें की थी वह टूट चुकी है अत उन्होंने मथुराके मेलेमें इस महासभाको पुनर्जीवन दिया और बाबू चम्पतराय इसके महमंत्री बनाये गये। और सभाकी ओरसे 'जैन गजट' साप्ताहिक पत्र निकालनेका निश्चय किया गया। इसके सबसे पहिले आप ही सम्पादक नियुक्त किये गये जो कुछ ही समयमें ख्याति प्राप्त हो गया।

इसी कालान्तरमें जैन ग्रन्थोंके छपनेका विरोध समाज द्वारा उग्रतर हुआ चूँकि बाबूजी इसके पुरस्कर्ता थे अतः इन्होंने जैनगजटसे इस्तीफा दे दिया और सहारनपुर जिलेमें नकुड रईस ला० निहालचन्दजीकी सम्मति-से ग्रन्थोंके छपानेका कार्य और तेज कर दिया और आत्मानुशासन, पद्मपुराण जैसे अनेक बड़े-बड़े ग्रन्थ प्रकाशित करवाये।

'जैन हितोपदेशक' दो-वर्ष चलनेके बाद बन्द हो गया परन्तु बाबूजीने 'ज्ञान प्रकाशक' नामका मासिक पत्र निकाला। कुछ वर्षों बाद कलकत्तेमें जैन महासभाके महोत्सवमें 'जैनगजट' की गिरती स्थिति पर नियंत्रण लाने हेतु अपने सहयोगी साथी विद्वान् पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारको यह कार्य भार सुपुर्द कर देवबन्दसे ही इसका प्रकाशन प्रारम्भ कर इसे अनवरत रक्खा। यहाँ ३ वर्षमें इसने अपना अच्छा स्तर बना लिया।

आपने आर्य समाजके द्वारा उठायी आपत्तियोंको अपनी लेखमाला 'आर्यमत लीला' के नामसे जैन-गजटमें प्रकाशित कराया जो बराबर २८ अकों तक निकली।

मेरठमें हुए जैन महामण्डलके जल्सेसे यह निश्चय किया गया कि 'जैन प्रकाशक' नामका पत्र निकाला जाय जिसके सम्पादक बाबूजी बनाये गये जो १।। वर्ष बाद बन्द हो गया।

१२ फरवरी, १९१४ में आपने अपनी वकालतसे त्याग पत्र देकर केवल समाज सेवाके लिये अपना जीवन अर्पण कर दिया।

साहित्य-सेवी श्रद्धेय बाबूजी

जीवन निर्वाह, जननी और शिशु, विधवा कर्त्तव्य और ब्याही बहू आपकी ये चार उत्तम कोटिकी पुस्तकें प्रकाशित हुईं। लेकिन आपमें पुस्तक प्रकाशनका मोह बहुत कम रहा। पं० नाथूरामजी 'प्रेमी' के पास एक पुस्तक 'तीर्थङ्कर चरित्र' करीब २० वर्ष अप्रकाशित पडी रही परन्तु उन्होंने उसकी चर्चा तक नही की जबकि वह बेहद परिश्रमसे लिखी गयी थी।

आपके लेखों और विचारोंमें सुधारवादी दृष्टिकोण रहा अत: वे साहित्यिक कम और प्रचारात्मक ज्यादा रहे परन्तु वे आज भी अपनी महत्ता नही खोये हैं। आपकी एक बहुचर्चित पुस्तक जो सन् १९०६ में प्रकाशित हुई थी वह 'मनमोहिनी नो. ' था जो वस्तुतः गार्हस्थ्य-उपन्यास ही था। इसके अलावा आपने ऐसे साहित्यका सृजन किया जिसने विभिन्न फैले बहमों और मिथ्या विश्वासोंसे जनमानसको मुक्ति दिलायी। वे थी—रामदुलारी, लज्जावतिका किस्सा, गृह देवी, मंगलादेवी, सती संतवती, तारादेवी, असत्यी और नकली धर्मात्मा आदि।

द्रव्य संग्रह, षट्पाहुड, परमात्म-प्रकाश, पुरुषार्थसिद्धयुपाय और वसुनन्दि श्रावकाचारके हिन्दी अनुवाद किये। इसके अतिरिक्त आपने आदि पुराण, हरिवंश पुराण और पद्मपुराणके तीन समीक्षात्मक ग्रन्थ लिखे।

आपकी मौलिक कृतियाँ

ज्ञान सूर्योदय (२ भाग) कर्त्ता खण्डन, कर्म फिलासफी, जैनधर्म प्रवेशिका, श्राविकाधर्म-दर्पण, भाग्य और पुरुषार्थ, युवकोंकी दुर्दशा और जैनियोंकी अवनतिके कारण आदि हैं।

लेख आपने अनगिनत लिखे जिनमें कुछ बड़े श्रमसे लिखे गये जैसे वर्ण और जाति विचार, ब्राह्मणों की उत्पत्ति, आदि पुराणका अवलोकन, अलंकारोंसे देवी देवताओंकी उत्पत्ति, वेश्याओंका सत्कार आदि उल्लेखनीय हैं।

जिन दिनों आपकी पुराणोंकी आलोचनायें निकल रही थी और उनका प्रतिवाद करनेके लिये प्रति-गामी दल ऊँचा नीचा हो रहा था, स्व० बाबा भगीरथजीने एक प्रसिद्ध पंडितसे कहा था—'तुम लोग किस मर्जकी दवा हो जो सूरजभानका मुकाबला करोगे? वह पुस्तकोंके ढेर पर बैठा हुआ, शामसे सुबह कर दिया करता है फिर भी उसकी कलम विराम नही लेती।

आपकी भाषा अत्यन्त सरल एवं दुरूहतासे दूर रहती थी। साहित्यशास्त्रका शायद आपने कम अध्ययन किया था क्योंकि उनके मिशनके लिए शायद इसकी जरूरत भी नही थी इसलिए आपने जो कथा साहित्य लिखा है वह साहित्यकी कसौटीपर भले ही मूल्यवान न ठहरे परन्तु बड़ा प्रभावशाली और उद्देश्य-की सिद्धिके लिये समर्थ है।

●

पं० सुमेरचन्द्रजी शास्त्री न्यायतीर्थ

जैनधर्म और समाज सेवियोंमें आपका स्थान बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। तेरापंथी आम्नायमे पले पुसे पं० सुमेरचन्द्रने जैनधर्मका प्रचार एवं प्रसार सुदूरवर्ती देशोंमें करनेका बीड़ा उठाया था। आपका जन्म १७ अक्टूबर १९१८ में ग्राम-बिलराम तहसील कासगंज जिला एटा (उ० प्र०) में चौधिरान घरानेमें माता श्री रेनुकाबाईके गर्भसे हुआ था। आपके पिता श्री मुन्नीलालजी गल्लेके व्यापारी थे।

अपने मामा पं० कुबेरलालजी न्यायतीर्थ (परिचय-अभिनन्दन ग्रन्थ) बिलरामकी प्रेरणा पाकर १९३५ में श्री ऋषभब्रह्मचर्याश्रम, चौरासी मथुरासे मध्यमा और विशारद तथा पं० बालचन्दजी शास्त्री, पं० दीपचन्दजी वर्णी, पं० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य और पं० कैलाशचन्दजी सिद्धान्त शास्त्रीके सान्निध्यमें स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीसे न्यायतीर्थ, शास्त्री तथा बी० ए० उपाधि प्राप्त की।

अध्ययन समाप्त करनेके पश्चात् आपने पारिवारिक उत्तरदायित्वके निर्वाहन हेतु जैन पाठशाला कोलारस (म० प्र०), देवबन्द (सहारनपुर), श्री कुन्दकुन्द जैन कालेज खतौलीमें धर्माध्यापक, प्रधानाध्यापक और संस्कृताध्यापकके रूपमें सेवा की। एक वर्षके लिए बीचमे आप श्री महावीरजीके धार्मिक व्यवस्थापकके रूपमे रहे। आजकल लगभग २५ वर्षोंसे जैन संस्कृत कामर्शियल हायर से० स्कूल, कूचा सेठ दिल्लीमें हिन्दी और संस्कृतके अध्यापक है।

समाज सेवा एवं धर्म प्रचार

१ अखिल विश्व जैन मिशन अलीगंज (एटा) की, बाबू कामताप्रसाद और बा० अजितप्रसादजी लखनऊकी प्रेरणासे संस्थापनमे अपना पूरा सहयोग एक संस्थापक की हैसियत से।

२. नैतिक धार्मिक शिक्षण कमेटीका गठन जो छात्रोंके ग्रीष्मावकाशमें शिविर लगाती है।

३. शाकाहार प्रचारके लिए जनकल्याण समितिके संस्थापक।

४. दि० जैन महिलाश्रम एवं धर्म प्रचारिणी परिषद, दिल्लीकी स्थापना करवाना।

५. चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, तनसुखराय स्मृतिग्रन्थ और बैरिस्टर चम्पतराय शताब्दी महोत्सवके संयोजक।

६. भ० महावीरका २५०० वाँ निर्वाण महोत्सवके कार्यक्रममे विश्व धर्म प्रेरक मुनि सुशीलकुमारको सक्रिय सहयोग देना।

७. दिल्ली जैन विद्वत् समिति एवं दि० जैन शास्त्रि परिषद्के (१ वर्षके लिए) मंत्री एवं संयुक्त मन्त्री।

८. नैतिक शिक्षाके प्रचारार्थ सरल पुस्तकें लिखना।

९. कोसीकलां (मथुरा) में वेदी प्रतिष्ठा, सहस्रकूट चैत्यालय एवं नये मंदिरकी वेदी प्रतिष्ठामेंसहयोग

१०. शकुन सिद्धान्त दर्पण, निबन्ध माला, सम्राट् खारवेल और हिन्दी साहित्यका इतिहास जैसी स्वतंत्र रचनाओंके प्रणेता।

महत्त्वपूर्ण जीवन घटनायें

१. अमरीकन राष्ट्रपति आईजन होवरको समस्त जैन भारतवर्षकी ओरसे 'Key of Knowledge' भेंट करना।

२. राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद एवं उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णनकी उपस्थितिमें ब्र० चन्दाबाईके अभिनन्दन ग्रन्थका विमोचन उनके करकमलोसे करवाना।

३. पेसिफिक कान्फ्रेंस विश्वके शान्तिवादी ६० देशोंके प्रतिनिधियोंको राजकुमारी अमृत कौरकी अध्यक्षतामें जयसिंहपुरा नई दिल्ली नशियाजीमें 'Key of Knowledge' ग्रन्थ भेंट करना। तथा विदेशोंमें जैनधर्मका प्रचार।

४. पश्चिमी जर्मनीकी राजधानी बोनमें बै० चम्पतराय लायब्रेरीकी स्थापना। आदि।

५. प्रो० लोथर बैन्डल जर्मनीको डेढ वर्ष तक जैनधर्मकी शिक्षा देना और हिन्दी सिखाना।

६. रोम (इटली) के डा० ज्योसेफ टुक्कीको जैनधर्मकी ओर आकर्षित कर उन्हें सिद्धयंत्र तथा भक्तामरके ४८ मंत्र-तंत्र देकर विश्वमें तंत्रका प्रथम ग्रन्थ है यह प्रकट करवाया।

●

श्री सरदारसिंहजी

●

आपका जन्म २१ नवम्बर सन् १९११ ई० मथुरामें हुआ। आपके पू० पिता स्व० श्री० उमराव-सिंहजी कानूनगो शिक्षा-प्रेमी एवं समाज-सेवी थे। आगरा कालेज-आगरामें १९३२ मे बी० एस-सी० उपाधि लेकर एम० डी० जैन माध्यमिक विद्यालय-आगराके प्रधानाध्यापक हुए। १९३७ से १९४६ तक विभिन्न राज-परिवारोंमें ट्यूटर गार्जियन रहे। १९४८ में एल० टी० डिग्री प्राप्तकर पुन एम० डी० जैन विद्यालय-में कार्य भार सम्भाला। १९५२ में एम० ए० (इतिहास) स्वाध्यायी रूपमे उत्तीर्णकर अतिम शिक्षाकी उपाधि प्राप्त की। इसके अतिरिक्त एम० डी० (होम्यो) भी किया।

१९५१ में के० डी० जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय मदनगंज-किसनगढमे पर्दापण किया जब यह शिशु रूपमें प्रगतिके नये चरण रख रहा था। आपके कुशल प्रशासनिक नेतृत्वमें एक लाखके जन सहयोगसे निर्मित यह विद्यालय आपके व्यक्तित्वकी सुगन्ध बिखेर रहा है। जिसमें वर्तमानमें डेढ हजारसे अधिक छात्र छात्रायें कक्षा ११ तक विविध लौकिक विषयोंकी शिक्षा प्राप्त कर रही है। शिक्षाके क्षेत्रमें आपकी ये सेवायें स्तुत्य और श्लाघनीय है।

समाज सेवा व्रत : अणुव्रत समितिके मंत्री तथा स्काउट एसोसिएशनके सहायक कमिश्नर हैं तथा स्थानीय रोटरी क्लबके मानपद मंत्री भी।

सम्मान : १९६९ में शिक्षा क्षेत्रमें सेवार्थ राजकीय-पुरस्कार (State awarod) प्राप्त हुवा। उसी वर्ष रोटरी क्लबसे एक शील्ड तथा राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्डसे २५० रु० का नकद पुरस्कार।

किशनगढ जनताके आप लोकप्रिय नेता है और वहांकी जनताने श्रद्धा और प्रेमका प्रतीक एक अभिनन्दन पत्र तथा ५०१ रु० नगद भेंट किये।

छात्रोंके प्रति आपके हृदयमें असीम वत्सलता एवं अपने कार्यके प्रति अदम्य उत्साह है। आप एक सफल अध्यापक एवं योग्य प्रशासक हैं। आप प्रत्युत्पन्न-बुद्धि सम्पन्न एवं मित-भाषी हैं।

●

वैद्यराज पं० सुन्दरलालजी

●

जन्म स्थान : ग्राम–खैराना जिला–सागर (म० प्र०)

जन्म तिथि : भाद्र सुदी ३ संवत् १९५७।

पिता : श्री रामलालजी जैन ।

शिक्षा . प्राथमिक शिक्षा ग्राम खैरानामें प्राप्त कर चौरासी मथुरासे प्रथमा, न्याय मध्यमा उत्तीर्ण कर आयुर्वेद महाविद्यालय कानपुरमें श्रीमान् वैद्यराज पं० कन्हैयालालजी हकीमके सहयोगसे आयुर्वेद विशारद और वैद्यभूषणकी उपाधि प्राप्त की ।

कार्य काल · फिरोजपुर (छावनी), अजमेर, सुजानगढ, इन्दौर, उदयपुर, अशोकनगर, रावलपिण्डी, दमोहके जैन-औषधालयोंमें प्रधान वैद्यके पद पर चिकित्सा कार्य किया । १९२१ से ४४ तक म्यूनिस्पल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय इटारसीमें प्रधान वैद्य पद पर सेवा की । १९४५ से तिलक आयुर्वेदिक फार्मेसी इटारसीमें कार्यरत हैं ।

सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान : आपकी महनीय सेवासे अनुप्राणित होकर उदयपुर, अशोकनगर, इटारसी, दमोह, झाँझगिर (विलासपुर) के बैरिस्टर श्री जमनाप्रसादजी, रैपुरा (पन्ना स्टेट) आदि स्थानोंकी जैन समाजने अभिनन्दन पत्र तथा उदयपुर (मेवाड) और अशोकनगरसे स्वर्ण पदक प्राप्त हुए ।

आप इटारसीकी विभिन्न स्थानीय संस्थाओंके अध्यक्ष, सभापति आदि सम्मानित पदों पर रहकर वहांके लिए एक विशिष्ट व्यक्तित्वके रूपमे उजागर हुए । आप 'कल्याण योगमाला' बाह (आगरा)के सहा० सम्पादक रहे । आपने आयुर्वेद सम्बन्धी एवं जैनदर्शन सम्बन्धी अनेक लेख लिखे जो स्तरीय साप्ताहिक एवं मासिक पत्रोंमें प्रकाशित हो चुके है ।

श्री महेन्द्र राजा जैन (विदेश-प्रवासी) आपके ज्येष्ठ पुत्र है जो आजकल नादर्न आयरलैण्डमें रह रहे हैं एवं जैनधर्मके मर्मज्ञ है ।

●

पं० सुमेरुचन्दजी शास्त्री

●

जन्म स्थान बहराइच (उत्तर-प्रदेश)

पौष शुक्ला १० सं० १९७१ ।

पिता श्री नानकचन्द्र जैन (पल्लीवाल)

मूल निवासी . कन्नौज (उ० प्र०)

शैक्षणिक योग्यता : व्याकरण मध्यमा (वाराणसेय-संस्कृत विश्वविद्यालय) एवं साहित्य शास्त्री विशारद (स्याद्वाद महाविद्यालय-बनारस)

अध्यापन कार्य : १० वर्ष जैन पाठशाला बहराइचमें तथा २५ वर्ष राजकीय इण्टर कालेज बहराइचमें संस्कृत विभागा-ध्यक्ष रहकर सेवा निवृत्त ।
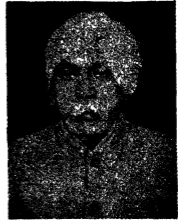
सामाजिक सेवायें : बहराइच दि० जैन समाजके मन्त्री तथा स्थानीय कवि संघके प्रधान सचिव। वर्तमानमें जैन समाजके सभापति।

साहित्यिक अभिवृत्तियाँ . आप कुशल वक्ता, शास्त्रार्थमें दक्ष, साहित्य एवं दर्शन शास्त्रमें प्रग ढ़ ज्ञान रखनेवाले, तथा सस्कृत एवं हिन्दी काव्य रचनामें समान अधिकार रखते हैं। आपने एक खण्ड काव्य का प्रणयन भी किया है।

आप विविध परीक्षाओंके परीक्षक भी नियुक्त होते रहते हैं।

●

प्रो० सुखनन्दनजी एम०ए० साहित्याचार्य

●

जन्म स्थान तालका बरमा, जि० टीकमगढ (म० प्र०)।

आयु : ५२ वर्ष।

शिक्षा : श्री वीर दि० जैन महाविद्यालय पपौरा, जि० टीकमगढ़ (म० प्र०)।

शास्त्री : स० हु० दि० जैन महाविद्यालय इन्दौर (म० प्र०)।

सि० शास्त्री : स्याद्वाद जैन महाविद्यालय, काशी।

साहित्याचार्य : एम० ए० (संस्कृत-हिन्दी) आगरा वि० वि० आगरा।

अध्यापन उ० प्रा० जैन गुरुकुल, सहारनपुर। प्रधानाचार्य व्याकरण-साहित्याध्यापक।

सम्प्रति रीडर एव अध्यक्ष : सस्कृत विभाग। दि० जैन पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, बड़ौत (मेरठ)।

पुरस्कृत एवं सम्मानित : 'समाजरत्न' उपाधि तथा २५००) रु० की धनराशिसे वीर नि० भारती, मेरठ (उ० प्र०)।

शोध प्रबन्ध : जैनदर्शनमें नयवाद।

अभिरुचि : दार्शनिक अध्ययन, चिन्तन-मनन, प्रवचन एवं समाज सेवा आदि।

विशेषता : उच्चकोटिके प्रभावक, आकर्षक, कुशल एवं प्रसिद्ध प्रवक्ता।

सामान्य सदस्य : १. बोर्ड ऑफ स्टडी, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ (उ० प्र०)।
२. मेरठ वि० वि० संस्कृत परिषद्, मेरठ।

●

श्री सुलतान सिंहजी

●

जन्म

५ जुलाई १९२४ ई० को ग्राम नाला (मुजफ्फरनगर)।

शैक्षणिक योग्यता

एम० ए० (हिन्दी एवं राजनीति शास्त्र) मेरठ से। सी० टी०, एम० जे० पी-एच०।

विशेष अध्ययन

जैन दर्शन एव कवि सूरदास।

सम्प्रति

अध्यापन कार्य (प्रवक्ता) वैश्य इण्टर कालेज शामली।

धार्मिक सेवाएँ

१. बडौत, काँधला, मथुरा तथा शामलीमें अखिल विश्व जैन मिशनके संयोजक एवं प्रचारक।

२ शामलीके विभिन्न संस्थाओंके सम्पादक एवं मन्त्री।

३. शास्त्रि परिषद् आदिके सदस्य।

सामाजिक सेवायें

भारत स्काउट्स एवं गाइड एसो० मुजफ्फरनगर, स्टेट स्काउट कौंसिल इलाहाबाद, पश्चिमी उत्तर प्रदेशीय पत्रकार संघ सहारनपुर आदिके सदस्य तथा सहायक जिला स्काउट कमिश्नर, कैम्प डायरेक्टर आदि।

साहित्यिक सेवायें

१. भव्यभारत (मासिक) सहारनपुरके सह-सम्पादक, २. व्यापार-गजट (साप्ताहिक) शामलीके सह-सम्पादक, ३ रश्मि, उत्तराखण्डके सह-सम्पादक, ४. आल इण्डिया शिक्षण-संस्थाओंकी डायरेक्टरी (सम्पादित पुस्तक), ५. विविध जैन पत्रों एवं अन्य सामाजिक समाचार-पत्रोंमें सामयिक लेखोंका प्रकाशन, ६ लौकिक शिक्षण सम्बन्धी विभिन्न पुस्तकोंके लेखक, ७. अप्रकाशित पुस्तकें-ऊर्मि (गद्य-काव्य), गल्प-पुंज, बालचर शिक्षण आदि।
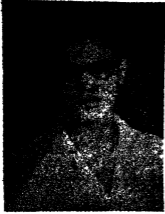
श्री सुन्दरजी

●

'श्रम और संकल्पसे, प्रसुप्त कवित्व शक्तिके जागरणसे जीवनके नये बोध आयाम हासिल हुए हैं। इस अनुभव जन्य प्रेरक संदेशसे श्री सुन्दर जैनके जीवनकी कहानी-झाकी प्राप्त हुई है। जन्म तिथि १२ दिसम्बर १९४४। मातु श्री लालली-देवी एवं पिता स्व० श्री अयोध्याप्रसादजी।

प्रारम्भिक शिक्षा

पतेरामें। १९६६-६७ में समाज शिक्षा कक्षाध्यापकके रूपमें दि० जैन पाठशाला पटेराको योगदान।

सम्प्रति : संयोजक-नवोदित संस्था दमोह। अन्य स्थानीय संस्थाओंके मन्त्रित्व-पदपर।

साहित्यिक गतिविधि

भजनाञ्जली (काव्य संकलन) जबलपुरमें आयोजित स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री साहित्य पुरस्कार प्रतियोगितामें श्रद्धेय, श्रीमती ललितादेवी शास्त्री द्वारा विशेष पुरस्कार प्राप्त। रचनायें—जैन पत्रोंके अलावा साप्ताहिक 'बुन्देल गर्जन', 'कर्त्तव्य' आदिमें। 'पूर्ण भारत' साप्ताहिकके पत्रकार। हास्य गीत और व्यंग्यमय कवितायें लिखनेमें रुचि। समाजके विघटित रूपने इस ओर झुकाव दिया। 'काका हाथरसी' की शैलीका आपकी कविताओंमें छाप है। प्रथम रचना 'कल्पना संसार है यह'। इसके अतिरिक्त प्रमुख दैनिक समाचार पत्रोंमें स्फुट-विचारोंका प्रकाशन।

●

श्री सुभाषचन्द्रजी

●

नयी पीढ़ीकी प्रज्वलित चिनगारी। आपका जन्म ३१ जनवरी १९४८ कटनी (जबलपुर) म० प्र० में। ६ वर्षकी अल्पायुमें पिता श्री कोमलचन्द्रजीकी साया उठ जाना। चाचा श्री राजकुमारजीके पास संरक्षण एवं प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा। एम० काम० जबलपुर विश्वविद्यालय। आपकी प्रतिभासे प्रभावित हो पं० श्री जगमोहनलाल शास्त्री आदिका पूर्ण सहयोग। १९६७-७० तक अमर सेवा-समिति कटनीके मन्त्री। प्रारम्भसे ही विभिन्न सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्रमें अभिरुचि।

कुशल वक्ताके साथ-साथ अपनी लेखनी द्वारा सन्मति संदेश, जैन मित्र आदि जैन-पत्रोंके माध्यमसे समाजमें जागृति चेतनाके प्रसारणमें प्रयासवन्त।

सम्प्रति : शासकीय सेवा।

सौजन्यता, वाक्यपटुता और व्यवहार कुशलताके धनी। एक उत्साही नवयुवक क्रान्तिकी चिन्गारी अन्तसमें सुलगाये संघर्षके लिए तैयार हैं।

●

श्री सतीशकुमारजी

●

जन्म नहटौर जिला बिजनौर (उ० प्र०) के एक समृद्ध घरानेमें हुआ। जैनधर्मके प्रति अभिरुचि विरासतमें अपनी विदुषी मातासे मिली। कुशाग्र बुद्धिके मेधावी छात्र रहे तथा विश्वविद्यालय स्तरीय बौद्धिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमोंमें सक्रिय भाग लेते रहे। १९५४ में लखनऊ विश्वविद्यालयसे कानूनकी परीक्षा उत्तीर्ण की। १९५५ से १९५७ तक बिजनौरमें वकालत। नवम्बर १९५७ टेक्नीकल आफीसरके रूपमें दिल्लीमें खाद्य एवं कृषि मन्त्रालयमें नियुक्त हुए।

सामाजिक प्रवृत्तियाँ

राजधानीकी सुप्रसिद्ध संस्था 'जैन सभा नई दिल्ली' के कई वर्षोंसे मन्त्री हैं। प्रसिद्ध विचारक एवं साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमारजीकी अध्यक्षतामें स्थापित प्रगतिशील, धार्मिक एवं साहित्यिक संस्था 'धर्मोदय संस्थान' के आप महामन्त्री हैं। इस संस्था द्वारा जैन दर्शन एवं सिद्धान्त तथा महावीर जीवन एवं दर्शनसे सम्बन्धित उच्चस्तरीय लेखमाला प्रकाशित करनेकी दिशामें कार्य आरम्भ किया जा चुका है। आप दिल्लीमें साहित्यिक गोष्ठियों, सांस्कृतिक समारोहोंका आयोजन इस माध्यमसे करते रहते है।

साहित्यिक सेवा

आपके द्वारा सम्पादित 'दिल्ली जैन डायरेक्टरी' एक महत्त्वपूर्ण सचित्र एवं सन्दर्भ ग्रन्थ है जिसमें दिल्लीके जैनोका इतिहास आदि है। आपका विचार 'जैन संस्कृति' इत्यादि अन्य पुस्तकें लिखनेका भी है।

स्वभावसे अध्ययनशील। संगीत एवं फोटोग्राफीमें विशेष अभिरुचि।

विशेष कार्य

सयुक्त राष्ट्र संघके खाद्य एवं कृषि संगठन और कृषि मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित वनों सम्बन्धी एक बृहत् एव महत्त्वपूर्ण रिपोर्ट बनानेमें कार्य किया तथा अन्तर्राष्ट्रीय वन सम्मेलनोंके लिए स्वतन्त्र रूपसे एवं सहयोगी लेखकके रूपमें कई पुस्तकें तैयार की हैं। "प्रोग्रेसिव जैन्स आफ इण्डिया" अंग्रेजी ग्रन्थ आपके अथक श्रम और महत् प्रतिभाका प्रतीक ग्रन्थ है। ●

श्री सुशीलकुमारजी

●

पिता . श्री केशवदेव जैन जो बारह गाँवके जमीदार थे।

जन्म २७ फरवरी १९३१, विजयगढ (अलीगढ) उ० प्र०।

शिक्षा : १९४० से १९५१ तक धर्म समाज कालेज अलीगढ़में स्पोर्ट्स और मिलेट्री साइंससे बी० ए०।

सम्प्रति : पत्रकार खेल सम्पादक 'नव भारत टाइम्स' नयी दिल्ली।

अभिरुचि : प्रारम्भसे खेल और खिलाड़ियोंमें दिलचस्पी। खेलोंपर विशेष लेख, रेडियो वार्ताएँ एवं टेलीविजनपर

खेल और खिलाडियोंसे मुलाकात। आकाशवाणीसे पहली बार हिन्दीमें खेलोंका आँखो देखा हाल प्रसारित किया।

अन्य प्रवृत्तियाँ : दिल्ली खेल परिषद् सदस्य, टाइम्स आफ इण्डिया कोआपरेटिव सोसाइटी, नयी दिल्लीके अवैतनिक सचिव, अन्य खेलकूद संस्थाओंके उपाध्यक्ष।

रचनायें : 'भारतमें खेल', 'खेल और खिलाडी', खेल कैसे खेलें स्वतन्त्र रचनायें। इसके अलावा धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान तथा भारतके लगभग सभी प्रमुख दैनिक समाचार पत्रोंमें खेल सम्बन्धी लेख, प्रवृत्तियाँ, गतिविधियाँ आदि। अब तक जो भी लिखा सब प्रकाशित।

१९७१ में जापान एवं हाँगकाँग भ्रमण। जहाँ आपने यह अनुभव किया कि विदेशोंमें जैन धर्मके नामसे भी लोग परिचित नही जबकि सिक्खोंके गुरुद्वारे हर जगह मिले जहाँ भारतीय नागरिकोंको मुफ्त भोजन एवं आवास।

साहित्यिक गतिविधियाँ : आपने 'सुधा' अर्द्धवार्षिक पत्रिका महाविद्यालय इन्दौर, 'दी एजूकेण्ड' वार्षिक पत्रिका कालेज आफ एजूकेशन रोहतक एवं 'उमंग' रजि० हीरालाल स्कूलकी पत्रिकाका सम्पादन किया है। भजनाकार शिवरामकी जीवनी और उनके भजन संग्रहोंकी भूमिका लिखी है।

आपका विश्वास है कि धार्मिक रीति-रिवाजोंको अन्ध-विश्वासके साथ न मनाया जाय। आपके चार पुत्र एवं एक पुत्री हैं। आपके सम्बन्धीजन काफी अच्छे पोस्टपर शासकीय सेवामें रत है।

●

पं० सुमेरचन्द्रजी 'कौशल'

माता पिताके वियोगको भाग्यमें लिखे पं० सुमेरचन्दजी 'कौशल' २४ सितम्बर १९०८ ई०मे सिवनी (म० प्र०) में माता श्रीमती कस्तूरीबाईकी कोखसे जन्मे थे। एक माहकी अल्पायुमे आपके पिता श्री हुकुमचन्द जैन परवार सिधार चुके थे और आपके लालन-पालनका उत्तरदायित्व बडे काका श्री टेकचन्दजीने किया। कपडेके अच्छे व्यापारी होनेसे आपकी आर्थिक स्थिति सुदृढ थी और श्री टेकचन्दजीकी गिनती अच्छे धनाढ्योमे थी। पाँच-छ. वर्षकी बाल्यावस्थामें आपको 'चेचक' का प्रकोप हुआ। इसी समय आपके मँझले काका श्री पन्नालालजी जो अच्छे विद्वान् थे का स्वर्गारोहण हो गया।

बाल्यावस्थासे ही आपकी साहित्य, सामाजिक कार्य, संगीत और दर्शनमें रुचि रही। १९३४ मे राबर्टसन कालेज जबलपुरसे बी० ए० तथा १९३९ में इलाहाबाद यूनीवर्सिटीसे एल० एल० बी० उत्तीर्ण की। अपनी शिक्षाकालमें आपने एक्सटेम्पोर वाद-विवादमें कई रजकपदक प्राप्त किये तथा महाविद्यालय 'नर्मदा' मेगजीनके हिन्दी विभागके सम्पादक रहे। विधि-शिक्षा ग्रहण करते समय आपका पाणिग्रहण संस्कार श्रीमती पुष्पलतादेवी जबलपुरके साथ हो गया था।

सामाजिक कार्य

स्थानीय हिन्दी साहित्य समिति, दि० जैन वर्धमान सभा, साहित्य संगमके सभापति एवं उपसभापति रहे। जैन अजैन पत्रिकाओंमें लेख, कविता और कहानियाँ भेजी परन्तु वे जीविकाका साधन नहीं रहीं। अपनी वकालतमें आशातीत सफलता न पानेके कारण पारिवारिक सम्पत्तिके बटवारेसे उत्पन्न अनबनसे कुछ समय तक स्थानीय हाईस्कूलमें नौकरी करनी पड़ी। सन् १९३९ में परवार सभाके प्रधान मंत्रित्वके अन्तर्गत आपको 'अन्तर-जातीय' मंत्री बनाया गया। समाज-सुधारकी प्रबल भावनासे प्रेरित होकर आपने अपने भाषणोंका उद्देश्य वृद्ध विवाहोंको रोकना तथा विधवा विवाह समर्थक रहा। वी० नि० सं० २४९६ के समय हुए पंचकल्याण महोत्सवमें आपने एक हजार रुपयेका दान किया तथा अपने माता-पिताकी स्मृतिमें एक मनोज्ञ श्री बाहुबलिजीकी मूर्ति छोटे मन्दिर सिवनीमें पधरवाई।

साहित्यिक क्षेत्र में गतिविधियां

परवार बन्धुमें आपकी पहली कहानी 'आजकी स्मृति' प्रकाशित हुई थी। प्रथम गद्य-काव्य 'नर्मदा' में 'प्रकाश' शीर्षकसे प्रकाशित हुआ था। बाहुबलि पूजा बहुचर्चित रही। मुख्य दो स्वतन्त्र रचनायें 'विधवा विवाह विचार' और भ० पार्श्वनाथ पुस्तकमें भूमिका लिखी। इसके अलावा सभी प्रमुख जैन पत्रों एवं सामाजिक दैनिक और साप्ताहिक समाचारपत्रोंमें आपकी कवितायें तथा लेख प्रकाशित होते रहे। जबलपुरसे प्रकाशित 'राष्ट्रीय कविताओंका सग्रह' मे एक कविता सगृहीत है। अन्य काव्य संग्रहोंमें आपकी स्फुट-रचनाएँ निकली। इसके अलावा कई अभिनन्दन ग्रन्थोंमें आपके लेख और श्रद्धांजलियाँ यथा समय निकलती रहती है।

कवित्व-शक्तिसे अभिप्रेरित होकर आगे बढा। कवि दार्शनिक भी होता है। आपकी यह दार्शनिक माता-पिताके वियोग, कोई सन्तान न होनेसे तथा स्वयंकी निश्च्छल प्रवृत्ति होनेसे और बढ़ती गयी। आपके एक ज्येष्ठ भ्राता हैं जो अब स्वतन्त्र व्यापार करने लगे हैं।

●

श्री एस० डी० नागेन्द्रजी शास्त्री

●

उपाध्याय जैन आम्नायमें उत्पन्न हुए श्री एस० डी० नागेन्द्रजी सस्कृत और हिन्दीके अच्छे विद्वान् है। आपका जन्म श्रवणबेलगोल जिला हासन (मैसूर) में १५ जनवरी १९१७ में श्रीमती सुवर्णम्माजी की कोखसे हुआ था। आपके पिता श्री धर्मपालजीकी सामाजिक प्रतिष्ठा उच्चकोटि की थी।

धर्मकी प्रारम्भिक शिक्षासे लेकर शास्त्री तक जैन वेद पाठशाला श्रवणबेलगोल और १९४१ में वाराणसीय शास्त्री परीक्षा श्री स्याद्वाद महाविद्यालयसे की। पं० महेन्द्रकुमार शास्त्रीसे आपने न्यायशास्त्रका भी अध्ययन किया। आपने औरव्य नगरस्थ अ० भा० सं० हिन्दी परीक्षा समितिसे साहित्य पंडितका प्रमाण-पत्र एवं सस्कृत कार्यालय अयोध्यासे विद्यालंकार, साहित्यरत्न एवं साहित्य भूषणकी उपाधि ली।

इसके उपरान्त आप शासकीय माध्य० शाला अरसीकेरेमे दस वर्ष तक संस्कृत पण्डित रहे। अनन्तर हासनमें आप संस्कृत और हिन्दीके पंडित रहे। आप कर्णाटक भाषामें भी विज्ञ है। २५ वर्ष की अल्पायुमें माता पिताका वियोग हो जानेसे उत्पन्न आर्थिक स्थितिसे चिन्ताग्रस्त होकर आपको अपनी नौकरी करनी पड़ी।

साहित्य सृजन

आपने 'जैन दिग्दर्शन', श्री महावीर चरित्रम्, पार्श्वनाथ चरित्रम्, चेलनी, चन्दना, स्वात्मचिन्तनम् का अनुवाद किया तथा कई महत्त्वपूर्ण लेख लिखे हैं जिनमें 'ज्ञानसम्पत्ति', अहिंसा, मानवधर्म, सच्चाप्रेम और श्रवणबेलगोल महामस्ताभिषेक प्रमुख है। कविता रचना तथा हिन्दीसे कन्नड अनुवादका कार्य भी किया है।

सामाजिक सेवायें

जैन विद्यार्थियोंको जैनधर्मकी शिक्षा देना तथा रात्रिमें वयोवृद्धोंके बीच शास्त्र प्रवचन द्वारा आजकल ऐसी सेवामें रत हैं।

●

पं० सुखमालचन्दजी

सहारनपुरके मोहल्ला सज्ञानके चौधरी परिवारमें पंडित सुखमालचन्द जैनका जन्म चैत्र कृष्णा चतुर्थी वि० सं० १९६७ मे श्रीमती अचम्भीदेवीकी कुक्षिमे हुआ था। आपके पिता श्री ला० बाबूमल जैन स्थानीय जिलाके राजकीय कोषमे खजाञ्ची थे। पिताजीकी आर्थिक स्थिति सामान्य थी। भ्रष्टाचारकी प्रवृत्ति लवलेश मात्र भी नही थी। सज्ञान मोहल्लेमे मन्दिरजीके निर्माण मे आपके परिवारका मुख्य सहयोग रहा। बीचमे पिताजीकी नौकरी छूट जानेसे आर्थिक संघर्ष रहा परन्तु बादमे वे एक बैंकमें कोषाध्यक्ष पुन. हो गये। आप अपने परिवारमे एकलौते पुत्र थे।

प्रारम्भिक शिक्षा

सहारनपुरमें। १९३० मे बी० ए० इलाहाबाद यूनिवर्सिटीसे संस्कृत और दर्शन विषय लेकर की। उस समय महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा वाइस चान्सलर थे।

अपने बड़े पुत्र राजराजेश्वरको भारतीय वायुसेनामें पाइलटके पदपर प्रविष्ट कराया जिसने देश सेवा के पुण्य कार्यको किया परन्तु दुर्भाग्यवश डेढ वर्ष पश्चात् एक विमान दुर्घटनामें उसकी मृत्यु हो गयी। आपका पाणिग्रहण श्रीमती दर्शनमाला करनालके साथ सम्पन्न हुआ।

प्रारम्भमें आपने एक वर्ष (१९३०-३१) में जैन पाठशाला सहारनपुरमें मुख्याध्यापकके पदपर कार्य किया। १९३२ से ६८ तक रक्षासचिवालयमें सेवारत रहे और अन्तमें सिविलियन स्टाफ आफीसरके पदसे अवकाश ग्रहण किया।

सामाजिक कार्य

जिनवाणी प्रचारके लिए श्री सत्साहित्य-संवर्द्धन केन्द्र नई दिल्लीकी स्थापना एवं अपने निवासमें श्री सुवर्णभद्रकूट चैत्यालयकी प्रतिष्ठा करवायी।

दहेजके विरोधमें आपका सक्रिय कदम रहा। आपके पाँच पुत्र चार पुत्रियाँ हैं। परन्तु उनकी शादियोंमें न तो दहेज लिया और न ही ठहराव कर दिया ही।

पुत्र और पुत्रियोंके नाम संस्करण बड़े ही लालित्यपूर्ण और साहित्यिक नामोंसे की। बड़ी सुपुत्री वीणापाणि तथा अन्तिम लघु पुत्र तथागत हैं।

समाज सुधारकी दृष्टिसे (दहेज उन्मूलन) १९५४-५५ में एक पत्रिका 'जीवनका आधार' प्रकाशित की। परन्तु समाजका पूर्ण सहयोग न मिलनेसे बादमें बन्द करनी पड़ी। बच्चोंको धार्मिक शिक्षणकी सुविधा हेतु आपने एक रविवारीय स्कूलकी स्थापना की थी।

अपनी आत्मा-खुराकके संवर्द्धन हेतु आपने एक आत्म कल्याण मण्डलकी स्थापना की जो १९४१ से १० वर्ष तक चला। अपने पत्र व्यवहार द्वारा आप अपने सुदूरवर्ती मित्रोंको धर्मके लिए प्रेरित करते रहते हैं।

साहित्य सृजनके सन्दर्भमें आपने कुछ लेख जो Voice of Ahinsa, Jain Gazette, सन्मति संदेश आदिमें प्रकाशित हुए लिखे। 'रत्नदीप' भाग १, २ और ३ आपकी स्वतन्त्र रचनायें है।

●

प्रो० सुपार्श्व कुमारजी

●

आपका जन्म फरवरी १९४३ में बीना जिला सागरमे हुआ। आपके माता-पिता धार्मिक एव सात्विक वृत्तिके है अत आपको भी धार्मिक एवं सात्विक वृत्ति परम्परागत रूपमें प्राप्त हुई।

प्राथमिक शिक्षा बीनाके ही प्राइमरी स्कूलमें हुई, अनन्तर श्री ना० न० दिग० जैन विद्यालयसे वाराणसेय संस्कृत वि० विद्यालयकी प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण कर कटनीकी जैन शिक्षा संस्थामे प्रवेश लिया, वहाँसे पूर्व मध्यमा एवं आयुर्वेद विशारद पास किया। धार्मिक शिक्षा निरन्तर जारी रही। आयुर्वेदमे मन नही लगा तो आप बनारस चले गये, वहाँ स्याद्वाद महाविद्यालयमें रहकर धर्माध्ययन, सनातन धर्म इण्टर कालेजसे इण्टर कामर्स एव वाराणसेय सं० वि० विद्यालयसे साहित्य शास्त्रीकी परीक्षायें दी। अनन्तर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयसे बी० काम० (आनर्स) उत्तीर्ण कर इन्दौर पहुँच गये। वहाँ कानूनमें प्रवेश लिया एवं हायर सेकेन्डरी स्कूलमें अध्यापन कार्य किया। कानून रुचिकर नही लगा तो इन्दौर क्रिश्चियन कालेजमे एम० ए० अर्थशास्त्रमें प्रवेश लिया तथा इन्दौर वि० वियालयसे प्रथम श्रेणी एव छठवा स्थान प्राप्त किया। उसके बाद आप दिगम्बर जैन कालेज, बड़ौत (मेरठ) में अर्थशास्त्र विभागमें प्राध्यापक नियुक्त हो गये। तबसे आप वहीपर अध्यापन कार्यमें रत है।

आप तार्किक एव क्रान्तिकारी हैं। आपने अपनी शादी आदर्श रूपसे करके एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। रूढ़िवाद एवं अन्धविश्वाससे कोसो दूर हैं।

आप अ० भा० दिग० जैन शास्त्रि परिषद्के कर्मठ कार्यकर्ता हैं। आपने 'महावीर वाणी' का संकलन किया है एवं "भरतेश वैभवशोध समीक्षा" पुस्तक लिखी है—जिनका प्रकाशन शास्त्रि परिषद्से हुआ है। आपकी कवितायें भी प्रकाशित होती रही हैं, किन्तु अब आप केवल भक्तिसे ओतप्रोत भजन ही लिखते हैं जो जैन दर्शनमें प्रकाशित होते रहते हैं। 'आदि-वन्दनाष्टक' में आपने भ० आदिनाथका स्तवन किया है।

प्रारम्भमें आपके परिवारकी आर्थिक स्थिति ठीक थी किन्तु व्यवसायोंमें हानि होनेके कारण आपके पिताजी एवं बड़े भाइयोंको सर्विस करना पड़ी। हालांकि आपके पिताजी जमीदार घरानेके हैं मगर दुर्भाग्य-की मारसे कौन बच सका है। आप दो भाई एवं दो बहिनें हैं, सभी सुशिक्षित हैं एवं अध्यापन कार्यमें रत हैं। इस प्रकार आपका पूरा परिवार सुशिक्षित, धार्मिक एवं सात्त्विक है।

सम्प्रति आप शोध कार्यमें रत हैं। जैन दर्शनमें आपकी तीव्र अभिरुचि का पता आपके शोध विषयसे ही लग जाता है, जो है—भारतीय आर्थिक विचारधाराके विकासमें जैनाचार्योंका योग एवं प्रभाव।"

इस प्रकार आप नई पीढ़ीके एक उत्साही, कर्मठ कार्यकर्ता एवं विद्वान् हैं।

●

स्व० पं० सागरचन्द्रजी सर्राफ

●

आपके पिता श्री पं० तुलसीरामजी सर्राफने बाबा भागीरथदासजीको पद्मपुराण सुनाकर जैनधर्ममें दीक्षित किया था और आरम्भिक जैनधर्मकी शिक्षा उन्हें दी थी। ऐसे प्रतिभाशाली पिताके पुत्र पं० सागर-चन्द्रजीपर पिताके सद्गुणोंका पूरा प्रभाव पड़ा।

आप प्रकाण्ड विद्वान और नैसर्गिक प्रतिभाके धनी कवि थे। पौराणिक शास्त्रके तो कुशल ज्ञाता थे। सेठके कूचेकी गली वाले मंदिरमें ३० वर्ष तक शास्त्र-प्रवचन कर समाजको तत्त्व-दृष्टि देकर महान् उप-कार किया।

आप मिलनसार समाज सेवी, भद्र परिणामी, सरल स्वभावी व्यक्ति थे। ७० वर्षकी आयुमें आपका देहावसान हो गया था। दिल्लीके जैन-विद्वानोंमें आपका नाम आदरके साथ लिया जाता है।

●

बाबू सुरेन्द्रकुमारजी 'ज्योतिष मार्तण्ड'

बाबू महताब सिंह बी० ए०, एल० एल० बी०, देहली के प्रसिद्ध जौहरी हैं तथा जिन्होंने झूठ न बोलनेके नैतिकधर्मकी रक्षार्थ वकालतकी उपेक्षा कर अपने पुश्तैनी धन्धेको अपनाया। बाबू सुरेन्द्रकुमारजी आपके ही सुपुत्र हैं। आपका जन्म १७ नवम्बर १९३२ को हुआ था। १९५१ में आपने बी० ए० सेन्ट स्टीफेन्स कालेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) से उत्तीर्ण किया। कुछ दिन स्वतन्त्र काम कर पिताके साथ 'महताब सिंह एण्ड सन्स' फर्ममें सर्राफका व्यवसाय करने लगे। इसके साथ आपने ज्योतिष शास्त्रका अभ्यास किया और गोल्ड कन्ट्रोल हो जानेके बाद ज्योतिषके विशेष अनुसन्धानमें लग गये। इस विद्याके सीखनेके पीछे एक कारण था कि आपको ऐसे अनेक सिद्ध लोगोंका हस्ताक्षर हुआ जो बाजारभावकी घटबढ़ीकी बिलकुल ठीक घोषणा करते थे। इससे प्रेरित होकर आपने इसका अध्ययन किया तथा देहलीमें ख्याति अर्जित की।

आप आ० देशभूषणजी महाराजके अनन्य भक्तोंमेंसे है। देहलीमें हरिजन मन्दिर प्रवेशका आन्दोलन चला तो उसमें आप सबसे अग्रणी रहे। श्वेताम्बर सम्प्रदायके साथ श्री सम्मेदशिखरके प्रकरणमें जो झगडा चला उसकी न्यायपूर्ण माँगके लिए आपने साहू शान्तिप्रसादजीके साथ रह कर अथक श्रम और आधारभूत सहयोग दिया।

अपनी ज्योतिष विद्याके पाडित्यके कारण आपने समय-समय पर राजनैतिक नेताओं, सामाजिक महापुरुषों, देशके भविष्यके सम्बन्धमें तथा आगे होनेवाली दुर्घटनाओंके भविष्य फल बताये जो कि पूर्णतः सत्य साबित होते रहे। स्व० प्रधान मन्त्री श्री शास्त्रीजी आपका अत्यधिक सम्मान करते थे। इसी विद्याके प्रभावके कारण आप श्री सम्मेदशिखर प्रकरणके बावत शासनके उच्चतम अधिकारियोंसे मिले तथा सफलता हासिल की।

आपने १९६५ में श्री आ० देशभूषण महाराज जयन्ती अंक (दिव्य ध्वनि मासिक पत्रिका) में अपना ८ पृष्ठोंका श्री महाराजजीका भविष्यफल सम्बन्धी सप्रमाण मौलिक लेख लिखा जिसमें भृगुसंहिताके दुर्लभ प्रमाण भी एकत्र किये। देशके मूर्धन्य नेता आपसे भविष्यफल जानते आते है।

जैन सिद्धान्तका आपको सुन्दर ज्ञान है जो वंश परम्पराके रूपमें विरासतमें मिला।

आपकी पत्नी सौ० सरोज हिन्दीमें एम० ए० तथा संगीतशास्त्रमें निपुण हैं। आतिथ्य सत्कारमें दक्ष एक धार्मिक महिला हैं। आपकी दो पुत्रियाँ रचना और अनामिका है।

भारतके उद्योगपति साहू शान्तिप्रसादजीके आप विशेष स्नेहभाजन हैं। जो आपसे समय-समय पर अपनी कुण्डली दिखाकर भविष्यफल सुनते हैं।

'जैन दर्शन', 'जैन गजट' और 'दिव्यध्वनि' में काफी लिखा तथा सोनगढके एकान्त प्रचारके विरुद्ध आपने पर्याप्त योगदान दिया है।

आपका बहुत बड़ा शिक्षित परिवार है।

सन् १९६३ से अब तक आप श्री दि० जैन तीर्थ क्षेत्र अयोध्याके संयुक्त मन्त्री हैं। श्री देशभूषणजी महाराजकी प्रेरणासे अयोध्यामें स्थापित ३१ फुट उत्तुङ्ग प्रतिमा (भ० आदिनाथ)के निर्माणकी व्यवस्थामें आप प्रमुख रहे।

तैराकीमें विशेष अभिरुचि रखते हैं तथा जुगलसिंह तैराक संघके द्वारा आयोजित तैराकी प्रतियोगितामें कप और मेडिल प्राप्त किये। सम्प्रति गवर्नमेंटका अधिकृत जवाहरात मूल्याकनका कार्य करते हैं। तथा ज्योतिष कला मन्दिरके आप डायरेक्टर है।

●

पं० सागरचन्दजी बड़जात्या

●

पिता *श्री गुलाबचन्द्रजी, जो सिन्धिया महाराजके शिवपुरीके कोषागारमें खजान्चीके पदपर रहे।*

माता श्रीमती मोतीबाई।

जन्म : ३ नवम्बर १९१८ लश्कर (ग्वालियर) म० प्र०।

शिक्षा · १९३७ में विक्टोरिया कालेजिकेट हाईस्कूल लश्करसे मैट्रिक। शेष ज्ञान स्वाध्याय एवं सत्संगतिसे। आयुर्वेद और फलित ज्योतिषके प्रति अभिरुचि।

आर्थिकोपार्जन हेतु १९३८ से ४५ तक विधि विभागके आधीन सिटी मजिस्ट्रेट ग्वालियरके कार्यालयमें पेशगार १९६२ तक पदोन्नतिमें हेड क्लर्क और वर्तमानमें जबलपुरमें एडवोकेट जनरल म० प्र० के लायब्रेरियन।

सामाजिक कार्य : दि० जैन औषधालय, लश्करके १९४४ तक सुपरवाइजर एवं सहायक मन्त्री। वर्तमानमें श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर जवाहरगंज जबलपुरके शास्त्र भण्डारके संरक्षक एवं परिषद्के मन्त्री।

साहित्यिक गतिविधियाँ : पू० १०५ क्षुल्लक गणेश वर्णी एवं ब्र० मूलशंकर 'देसाई' के उपदेशोंसे प्रभावित होकर कई ग्रन्थोंका पद्यानुवाद किया। जैसे समाधि तन्त्र, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, पचास्तिकाय, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार और ज्ञानार्णवके पद्यानुवादकी स्वतन्त्र रचनायें लिखी। इसके अलावा लगभग ३६ स्फुट-कवितायें अप्रकाशित पडी है जिनमें बहुधा बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। जैसे देवस्तोत्र, बारह भावना, ईर्यापथ महिमा, सुबोध पचासा, नीति-दोहे, भक्ति एकादशी आदि।

आपकी प्रथम विवाहकी धर्मपत्नी श्रीमती मुन्नाबाई शादीके एक वर्ष बाद गुजर गयी थी। द्वितीय विवाह श्रीमती कचनकुमारीके साथ। जिनसे चार पुत्रियाँ है।

स्वाध्यायमें विशेष अभिरुचि। करीब ४०० ग्रन्थोंका स्वाध्याय कर चुके। लश्करकी अलग-अलग दो पंचायतोंके एकीकरणमें सक्रिय सहयोग।

●

मुंशी सूर्यनारायणजी सेठी

सेठी साहबकी सेवाओंसे जयपुर जैन समाज भली प्रकार परिचित है। समाज-सुधार एवं शिक्षा-प्रसारमें आपकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। गत ६४ वर्षोंसे वे समाज सेवाके किसी न किसी कार्यमें अपना सक्रिय सहयोग देते रहते हैं। जिन्हें समाजकी व्याप्त बुराइयोंको दूर करनेके लिए समाजका कोप भाजन भी बनना पड़ा परन्तु पीछे नही हटे।

जन्म एवं शिक्षा :

आपका जन्म फाल्गुन सुदी १२ संवत् १९३९ में जयपुरके प्रतिष्ठित परिवारमें हुआ। आपके पिता श्री चाँदूलालजी राज्य-सेवामें थे। आपने शिक्षा उर्दू एवं फारसीके माध्यमसे लेनी प्रारम्भ की। हाईस्कूल करनेके पश्चात् १९०२ में मुंशी फाजिलकी परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद दो वर्ष पजाब विश्वविद्यालयसे कानूनकी शिक्षा ली और १९०६ में आप पूर्ण रूपसे वकील हो गये। पहिले अपनी प्रेक्टिस कौंसिलसे प्रारम्भ की। बादमें चीफ कोर्ट और अन्तमें हाईकोर्टके वकील हो गये। पेंचीदे मुकदमे लेनेमें विशेष रुचि रखते थे। जैन सस्कृत कालेज जयपुरके अधिकार एवं मन्त्री पदको लेकर न्यायालयमें केश चला तब आपने उसमें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की।

समाज सेवा :

आपके समय मृत्यु भोजकी बडी कुप्रथा थी। अठवासेकी बडी-बडी ज्योनार लगा करती थी। इन रूढ़ियोंको बन्द करानेमें आपने श्री अर्जुनकुमार सेठीके साथ बडा सहयोग दिया। शिक्षाके क्षेत्रमें आपकी उल्लेखनीय सेवायें हैं। जैन संस्कृत कालेजके वर्षों उपाध्यक्ष रहे। महावीर कन्या विद्यालयके प्रारम्भसे ही अध्यक्ष है। जैन शिक्षा प्रचारक समितिकी स्थापनामें आपका विशेष सहयोग रहा जिसके आप वर्षों मन्त्री रहे। इस समितिने समाजमें अच्छा शिक्षाका प्रचार किया। श्री दि० जैन अ० क्षेत्र महावीरजी प्रबन्धकारिणी कमेटीके आजकल उपाध्यक्ष हैं। इसी तरह नगरकी विभिन्न सामाजिक संस्थाओंसे आपका सक्रिय सम्बन्ध रहा है। इसी सन्दर्भमें सन् १९२७ से १९३८ तक जयपुर नगरपालिकाके सदस्य रहे और नगर सेवाका सुअवसर प्राप्त किया। आप स्टेटकी ओरसे नगरपालिकाके मनोनीत सदस्य रहे जो आपकी लोकप्रियताकी द्योतक थी। यद्यपि आपने राजनीतिमें कभी भाग नही लिया परन्तु आपके विचार राष्ट्रीय रहे और राष्ट्रीय-आन्दोलनोका समर्थन करते रहे।

आपके चार विवाह हुए। फिर भी आपका गार्हस्थ्य जीवनमें कही अवरोध नही आया। तीसरी पत्नीके निधनके बाद ४० वर्षकी अवस्थामें आपका चौथा विवाह हुआ था। आपके ८ पुत्र व ४ पुत्रियाँ हैं जो उच्च शिक्षित हैं। एक पुत्र व्यापारी, एक वकील और एक राज्याधिकारी हैं। आपकी छोटी पुत्री एम० ए० है।

पं० सुरेशचन्द्रजी न्यायतीर्थ

●

पंडितजीका जन्म बिलराम (एटा) उ० प्र० में। आपने स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस और दिगम्बर जैन जम्बू विद्यालय सहारनपुरके अन्तर्गत शास्त्री न्यायतीर्थ परीक्षायें उत्तीर्ण की। पंडितजी संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजीके जानकार हैं। आपने कुछ संस्थाओंमें अध्यापन कार्य किया पर बहुभागमें दिगम्बर जैन संस्थाओंके लिए धर्म-प्रचारका कार्य किया। बाल आश्रम देहलीमें २० वर्ष प्रचारका काम किया, जैन संघ चौरासी मथुरामें १४ वर्ष तक प्रचारका कार्य किया।

पंडितजी स्वभावसे सरल मृदुभाषी तथा उत्साही सामाजिक कार्यकर्त्ता है।

●

श्रीमती स्नेहलताजी

●

आप राजकीय सम्मानप्राप्त समाजके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० हीरालालजी जैन कौशलकी सुपुत्री हैं। आपका जन्म सन् १९४८ में देहलीमें हुआ। आप बचपनसे ही प्रभावशालिनी तीक्ष्ण बुद्धिमयी थी। आपने हायर सेकेण्डरी बोर्ड देहलीकी परीक्षामें प्रावीण्य सूचीमें चतुर्थ स्थान प्राप्त किया था। भारत सरकारसे ५ वर्ष तक योग्यता छात्रवृत्ति मिली। महाविद्यालयके जीवनमें भी आपने प्रतिभाका चमत्कार दिखाया। गणित जैसी नीरस विषयमें एम० ए० ही नही किया बल्कि ७१ प्रतिशत अंक प्राप्त किये और देहली विश्वविद्यालयकी प्रावीण्य सूचीमें तीसरा स्थान प्राप्त किया था।

लौकिक शिक्षाकी भाँति धार्मिक शिक्षामें भी आप पीछे नही रही। आपने अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद् बोर्ड देहलीसे लगातार ९ वर्ष तक योग्यता छात्रवृत्ति प्राप्त करते हुए एम० ए० के विद्यार्थियोंके लिए निर्धारित धर्मशास्त्र पढे। आपका विवाह सुप्रसिद्ध समाज सेवक नाथूरामजी सिंघईके सुपुत्र ऋषभकुमारजी बी० ई० से हुआ। जो वर्तमानमें पोलीटेकनीक खुरईमें व्याख्याता है और मैकेनिकल विभागके अध्यक्ष हैं।

●

आविष्कारक श्री सुलतानसिंहजी

●

आपका जन्म ५ अप्रैल १९३५ को श्री सेवाराम जैन ग्राम शोरी जिला मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) के सम्पन्न परिवार में ज्येष्ठ पुत्र के रूप में हुआ। आपकी माताजी श्रीमती सितारीदेवी एक धर्म परायण महिला है।

प्राथमिक शिक्षा उर्दू एवं अंग्रेजी माध्यममें व्यक्तिगत रूप से हुई। मातृभाषा उर्दू होने पर भी उच्च हिन्दी एव संस्कृत से हाईस्कूल उत्तीर्ण की। १९५९ में सिविल इन्जिनियरिंगकी उपाधि प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की।

छात्र जीवन से ही आप प्रतिभाशाली एवं विलक्षण बुद्धि

के छात्र रहे। बचपन से ही नयी-नयी वस्तुओंकी रचना करनेमें लगे रहते थे। जब आप दसवीं कक्षा में थे आपने ऊँचाई मापक टोपी, स्वचालित उपस्थिति संकेतक, स्वचालित संकेतक, गत्तेका पंखा जो गुरुत्वाकर्षण बलसे स्वयं चलता था तथा एक लैटर बाक्स जो आपके पत्रोंको पहली मंजिल पर पहुँचाता था, का निर्माण किया था। इससे आपकी आविष्कारक बुद्धि का प्रारम्भ से ही परिचय मिलने लगा था।

१७ नवम्बर १९५९ को आपका विवाह सौ० उर्मिला जैन सुपुत्री श्री स्व० सूरजभान वकील, जो प्रकाण्ड विद्वान् एवं प्रथम बार जैन शास्त्रोंको प्रकाशित करवानेवाले व्यक्ति थे, के साथ सम्पन्न हुआ था।

सेवा कार्य : आप १९५९ से १९६४ तक सार्वजनिक निर्माण विभाग उ० प्र० में ओवरसियरके पदपर रहे। इस पदपर रहकर आपने एक यंत्र "संरचना डिजाइनर" का निर्माण किया था, जिसपर १९६६ में दो हजार रु० का राष्ट्रीय पुरस्कार व अन्य कई पुरस्कार प्राप्त हुए थे।

इसके पश्चात् आपने आविष्कारोंकी एक शृंखला ही बना दी।

एक चतुर यांत्रिकी-निर्माता के रूप में : 'सुरक्षा पेटिका' पर १९६८ में एक हजारका राष्ट्रीय-पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसके अलावा 'विद्युत चटखनी' संकेतात्मक बल्ब होल्डर, घुमाव नियंत्रित पंखा (इसपर १९७१ में २ हजार का राष्ट्रीय पुरस्कार) आदि यन्त्रोंका निर्माण किया। आपने एक 'सुलतान लिपि' एवं अनन्त कलैण्डरका आविष्कार अपनी पत्नीके सहयोग से भी किया।

इनटेन्सिटी लैम्प, कन्क्रीट मैम्बर डिजाइनर, ढाल मापक, ढाल सेटक, स्वचालित फ्लश, स्वचालित वर्षा मापक, दूर नियन्त्रित स्लाइड प्रोजेक्टर, दोलननियंत्रित स्वचालित पंखा, स्विच रहित बैटरी, विद्युत ताला, छिवध्वनि घण्टी, पोस्ट आफिस तुला, ट्रान्सफारमर युक्त मोटर, स्टील डिटैक्टर स्वचालित नेम प्लेट इत्यादि आश्चर्यजनक आविष्कार जिनका राष्ट्रीय एव सामाजिक महत्त्व है का निर्माण किया।

तीन बार राष्ट्रीय पुरस्कारके साथ अनेकों बार पत्रकारोंसे भेंट वार्ता, रेडियो एवं टेलीविजन वार्ताओंका सम्मान मिल चुका है। शील्ड, मेडलों और प्रशस्ति पत्रों की दुकान सी आपके निवास स्थानपर खुली है।

आप एक धर्मोपदेशक भी हैं। आपने धार्मिक विषयोंपर अनेक लेख व अनुभव प्रकाशित करके यह सिद्ध कर दिया कि एक वैज्ञानिक होने के साथ आपमें धर्मके प्रति अटूट श्रद्धा है। कविता लिखना, प्रातःकाल भ्रमण और पौधोका रोपण आपकी रुचिके विषयाक है। आजकल आप अपने निवास स्थान शान्तिनगर रुडकीमे नये-नये आविष्कारोंमें संलग्न है। ●

पं० सुन्दरलालजी शास्त्री

●

जीवन परिचय : पंडित सुन्दरलालजी शास्त्रीका जन्म कार्तिक शुक्ला दशमी विक्रम संवत् १९८८ में सिरगन (ललितपुर) में हुआ था। आपके पिता श्री परमानन्दजी थे माता रामकुँवरबाई थी। बचपनमें ही आपके पिताश्रीका स्वर्गवास हो गया था, अतएव बचपन कठिनाइयोंमें बीता।

शिक्षा-विवाह : आपकी आरम्भिक शिक्षा सिरगनमें हुई। आपने धार्मिक शिक्षा, अभिनन्दन जैन पाठशाला ललितपुर, शान्तिनाथ जैन गुरुकुल रामटेक, गोपाल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय मोरेना, गणेश दिगम्बर जैन विद्यालय सागरमें हुई।

आपका विवाह सन् १९५३ में भुजबल प्रसादजी ललितपुरकी सुपुत्री सुमतिरानीके साथ हुआ। आपके चार पुत्र व पुत्रियाँ हैं जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। वर्तमानमें आप बसौदामें स्वतन्त्र स्वाध्याय कर रहे हैं।

सेवा कार्य : आपने क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णीके प्रवचन लिखे थे जो सहजानन्द ग्रन्थमाला मेरठसे प्रकाशित हुए। दो चार निबन्ध प्राकृतिक चिकित्साके विषयमें लिखे थे। आप पर्यूषण पर्वके समय विशेषतया धार्मिक प्रवचनोंमें सहयोग देते रहते है।

आपके बड़े भाई रतनचन्द्रजी भी सामान्यतया धर्मविद हैं और छोटे भाई विरधीचन्द्रजी एम० ए० शास्त्री, बी० एड० हैं। वर्तमानमें माहेश्वरी माध्यमिक विद्यालय इन्दौरमें कार्य करते है।

पं०जी सरल सात्विक प्रकृतिवाले सुरुचि सम्पन्न व्यक्ति है।

●

स्व० बाबू सुमेरचन्द्रजी

●

जीवन परिचय . सुमेरचन्द्रजी बूडिया (अम्बाला) पंजाबके रहनेवाले थे। आपका अधिकाश जीवन अम्बालाम ही व्यतीत हुआ। आपका जन्म १८७५ में जनवरीमें हुआ। आप नहरविभागमे महागणक थे। अतीव मिलनसार, परिश्रमी, धर्मात्मा और कर्त्तव्यनिष्ठ थे। १८ सितम्बर १९३६ को आपने अन्तिम साँस ली।

साहित्य सेवा : आपने हिन्दी-उर्दू भाषाओमें कुल १३ पुस्तकें लिखी है। इनमेंसे जनमत सार आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। अन्य रचनाओंके नाम ये हैं .

१. जैन प्रकाश, २ धर्मके लक्षण, ३ शाहरानजात, ४. शीलवती (उपन्यास), ५ खुलासा गजाहत, ६. पारस चरित्र, ७ जैन सगीतमाला, ८. सप्त व्यसन, ९. फरायज इन्सानी; १०. महाराज चन्द्रगुप्त, ११. अग्रवाल वशावली, १२. समेरुलब्धात।

आपका सारा साहित्य सर्वसाधारणके लिए सहज सुबोध है। अपने युगकी दृष्टिसे आपकी साहित्य-सेवा सराहनीय है।

●

डा० सुदर्शनलालजी जैन दर्शनाचार्य

●

जीवन परिचय : डा० सुदर्शनलालजीका जन्म १ अप्रैल १९४४ को मण्डला (सागर) म० प्र० में हुआ था। आपके पिता श्री सिद्धेलालजी दमोह है और माता सरस्वती देवी थी। आपकी तीन बहनें हैं। एक मात्र पुत्र व भाई होनेसे आप सभीके प्रिय पात्र रहे। पिताश्रीके सानिध्यमें प्राथमिक शिक्षा लेनेके बाद आप शान्तिनिकेतन जैन विद्यालय कटनीमें धार्मिक शिक्षाके हेतु गये।

पाँच वर्ष बाद आपने गणेश वर्णी विद्यालय सागर स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें रहकर अनेक परीक्षायें उत्तीर्ण की, जैसे साहित्य, जैनबौद्धदर्शनशास्त्री, साहित्य जैन दर्शन प्राकृताचार्य, साहित्यरत्न, एम० ए०, पी० एच० डी० की। आपने उत्तराध्ययन पर शोध की थी। आपने बिजनौर बनारसमें प्राध्यापकके रूपमें कार्य किया। आपके शोध ग्रन्थ पर उत्तर प्रदेश सरकारने ५०० रु० का पुरस्कार दिया। आपके निर्देशनमें कतिपय विद्यार्थी शोधग्रंथ लिख रहे है। जैनधर्मके उत्थान व विस्तारमें आपकी अधिकाधिक अभिरुचि है। आपकी गृहिणी मनोरमादेवी भी बी० ए० हैं। आपकी तरह उनका भी धार्मिक सरल स्वभाव है।

●

पं० सत्यन्धर कुमारजी सेठी

●

जीवन परिचय

सेठीजीका जन्म आश्विन शुक्ला १० वी विक्रम संवत् १९६७ मे भादवा (जयपुर) राजस्थानमें हुआ। आपके पिता श्री फतहलालजी थे और माता जोधीबाई। जब आप पांच वर्षके थे तब ही पिताका स्वर्गवास हो गया। धर्मप्राण माँने ८ वर्षकी अवस्थामें आपको पढनेके लिए पं० चैनसुखदासजीके समीप भेजा। १६ वर्षकी अवस्थामें आपने गोमट्टसार जैसे ग्रन्थ पढे। स्वाध्यायकी रुचि तो आज भी आपमें है। आपके तीन विवाह हुए। आपकी पत्नी सूरजकुमारी धार्मिक महिला है। आपके तीन पुत्र और पाँच कन्यायें हैं। सभी सन्तानें सुयोग्य हैं आपके पद-चिन्होंपर चल रही हैं।

सामाजिक सेवायें

प० चैनसुखदासजीकी प्रेरणासे सेठीजी समाज-सुधारक बने। आपने प्रतिज्ञाकी कि मैं न तो किसीके यहाँ मृत्यु-भोजमें सम्मिलित होऊँगा और न अपने यहाँ मृत्यु-भोज करूँगा। आपने हिन्दू-मुस्लिम दंगोंमें भी जुटकर काम किया। राष्ट्रीय एकताके लिए प्रयत्न किया। बंगीय अहिंसा परिषद स्थापित की। प्रथम सिनेमा ही आपके लिए अन्तिम हुआ। जैन-ब्राह्मण संघर्षमें भाग लिया। बालबाल बचते रहे। लोहड साजन आन्दोलनमें भाग लिया। राजस्थानमें एकसे अधिक धार्मिक शिक्षा संस्थायें स्थापित की। विधर्मियोंके हाथों में फँसी विधवाओंको विधवाश्रमोंसे निकाला। विघ्न सन्तोषियों द्वारा बहिष्कार भी सहन किया। असहाय महिलाओं व विद्यार्थियोंके लिए सहायता फण्ड, छात्रवृत्तिकी व्यवस्था की।

धार्मिक-कार्य

देवदर्शन शास्त्र स्वाध्याय तो आपके दैनिक जीवनके अंग बने ही है। धार्मिक भावनासे कलकत्तेमें सन्मति पुस्तकालय खोला। यही सार्वजनिक जीवनमें हिंसाके विरुद्ध सत्याग्रह भी किया। सामाजिक दृष्टिसे निडर होकर जैसे दो शासमे सम्बन्धकी शुरूवादकी वैसे ही राष्ट्रीय दृष्टिसे पुस्तकोंकी गम्भीर सूचना पाकर भी आपने खादी भण्डार उज्जैनमें खोला। उज्जैनमें ही आपका जीवन कलकत्ता जयपुरकी अपेक्षा अधिक गतिशील हुआ। आपने यहाँ एक संग्रहालय भी स्थापित किया। आपके कार्योंमें स्व० लालचन्द्रजी सेठी, अनन्तराजजी आयुर्वेदाचार्य, हकीम फूलचन्द्रजी जैसे लोगोंने अतीव सहयोग दिया, प्रेरणा दी। आज आप लगभग बीस संस्थाओंसे सम्बद्ध हैं। आपने अनेक आयोजन कराये परन्तु प्रदर्शनको महत्त्व नही दिया। शास्त्र-प्रवचनमें आप अतीव प्रवीण हैं। पर्यूषणपर बाहर भी गये।

साहित्यिक सेवायें

सेठीजीका सर्वप्रथम निबन्ध खंडेलवाल जैन हितेच्छु जयपुरमें छपा । इसके बाद तो आपके निबन्ध विशेषतया वीरवाणी, अहिंसावाणी आदिमें छपे । सेठीजीके निबन्ध बडे ही मर्मस्पर्शी सरल सुबोध और अनुभव सम्पन्न होते हैं । सामाजिक-धार्मिक उत्सवोंके संयोजकके रूपमें भी सेठीजीकी सेवायें सराहनीय है ।

●

पं० सरमनलालजी 'दिवाकर'

●

पं० सरमनलालजी द्रोणगिरि क्षेत्रके समीप टीकमगढ जिलान्तर्गत एरौरा ग्राममें सिंघई श्री दुलीचन्दजीके यहाँ जन्मे । आपका परिवार जहाँ एक ओर अज्ञानके अन्धकारमें डूबा था, वही दूसरी ओर आर्थिक विपन्नतामें जी रहा था ।

निर्धनताकी भीषण परिस्थितिमें शिक्षा ले पाना सम्भव नहीं दिख रहा था, परन्तु कुछ पुण्योदयसे आप जब छ: वर्षके थे आपके पिताजी व दादी आपको द्रोणगिरि ले गये और पूज्य बडे वर्णीजी (पू० १०८ मुनि गणेशकीर्तिजी) से बालक सरमनलालके पढ़ानेके लिए निवेदन किया । पू० वर्णीजीकी स्वीकृति आपके जीवनके लिए वरदान हो गयी । आपने ८ वर्ष वहाँ रहकर बडे लगनसे अध्ययन किया और प्रथमा तथा विशारद करनेके पश्चात् दो वर्ष आप इन्दौर जैन बोर्डिंग हाउस अध्ययनार्थ रहे । चूँकि पारिवारिक स्थिति बहुत दयनीय थी अतः पुन. आपको पारिवारिक उत्तरदायित्वने घर बुला लिया और शादीके बन्धनके साथ भरण-पोषणके रहटमें चक्कर लगाने लगे । भविष्यके आगे मानो कोई लक्ष्य न रह गया हो परन्तु मन यहाँसे भाग जानेको करता था ।

एक विज्ञापनके आधारपर, आप ला० हुकुमचन्द्रजी (लक्षाधीश) द्वारा व्यक्तिगत रूपसे सचालित जैन पाठशालाके सहायक अध्यापक नियुक्त हुए । छः वर्ष बाद आप इसके प्रधानाध्यापक (१९६४ में) नियुक्त हो गये । अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियोंका ईमानदारीसे निर्वाहन कर अपने चार छोटे भाईयोंको जहाँ शिक्षा सुलभ कराकर उन्हें यथायोग्य नौकरियाँ दिलवायी वही स्वाध्यायी रूपसे जैन-दर्शन शास्त्री, साहित्य-भूषण और बी० टी० सी० (प्रशिक्षण) आदि उपाधियोंको प्राप्त किया ।

संघर्षोंमें पले प० सरमनलालजी धनिक वर्गके खिलाफ एक क्रान्तिकारी विचारोंके पोषक तथा समाजवादके पक्षपाती है । 'देहज' जैसी रुग्ण सामाजिक रूढियोंके विरुद्ध आवाज बुलन्द की और अपने दो भाईयोंके विवाह आदर्शरूपसे बिना दहेज लिए किये । नये निर्माण एवं गजरथोंमे होने वाले अपव्ययके भी विरोधी हैं ।

प्रतिभायें : आपकी प्रवचन-शैली मनोवैज्ञानिक एवं प्रभावक होनेसे चण्डीगढ़की जैन समाजने आपका

बड़ा सम्मान किया और प्रतिवर्ष पर्यूषण पर्वमें आमंत्रित करते रहते हैं। १०८ मुनि श्री विद्यानन्दजी महाराजका वरदहस्त और विशेष आशीर्वाद आपको मिला है। और आपको मुनिश्रीने १९७३ में हिमालयके अलकनन्दाके तटपर बसे श्रीनगर तथा उत्तराखण्डमें प्रचारार्थ भेजा था। साहित्यिक प्रवृत्तिके रूपमें आपने छोटे-छोटे संग्रह टेक्टके रूपमें प्रकाशित करवाये हैं।

एक योग्य शिक्षक : शिक्षण-दक्षताकी आपके उच्च अधिकारियोंने बडी प्रसंशाकी तथा आपको बेसिक शिक्षाके पूर्ण सिद्धान्तोंके संचालनमें एक सफल अध्यापक घोषित किया।

श्री प० पन्नालालजी धर्मालंकारसे प्रतिष्ठाकार्य सीखा और समाजमें करीब १२ वेदी प्रतिष्ठायें, सिद्ध चक्र विधान आदि सम्पन्न करा चुके है। जैन जनगणना कार्यमें उ० प्र० व बिहारमें भ्रमण कर बडा कार्य किया है। आप मुनि विद्यानन्दजीका आशीर्वाद एवं प्रेरणा लेकर जैन सिद्धान्तोंके प्रचारार्थ दक्षिण भारत जाने वाले है। अपने सरधनाके समीपस्थ जैन रिकार्डोंके माध्यमसे जैन-भजनोंका प्रसारण जैन स्वाध्याय शिविरोंका आयोजन, नेत्र दान शिविरका आयोजन तथा वीर गान प्रतियोगिताएँ करवाते रहते हैं।

●

पं० सुभाषचन्द्रजी पंकज

●

जैन जगतके प्रसिद्ध कलाकार श्री पं० सुभाष चन्द्र जैन पकजका जन्म सहारनपुर जिलाके प्रसिद्ध नगर झबरेडामें दिगम्बर जैन अग्रवाल जातिके रत्न श्रीमान् लाला गगारामजी जैन रईसके गृहमें माँ श्री सुपलादेवीकी कोखसे १४ जुलाई उन्नीस सौ चालीसको हुआ था। आपकी बचपनसे ही संगीत, साहित्य तथा धर्मके प्रति विशेष रुचि थी। अपने उर्दू, हिन्दी, अंग्रेजी व धर्मकी पढाईके साथ-साथ ही सगीत तथा साहित्यकी विशेष शिक्षा भारतके कई प्रसिद्ध गुरुजनोंसे प्राप्त की।

आपने जैन समाजकी प्रख्यात सस्था श्री भा० दि० जैन संघ चौरासी, मथुरामें पाँच वर्षों तक बडे उत्साह और लगनके साथ कार्य किया।

नवम्बर सन् १९६७ में श्री दि० जैन विधान समिति दमोह (म० प्र०) की ओरसे 'सार्वजनिक सम्मान' और एक हजार रु० की थैली एवं इटौरिया बन्धुओंकी ओरसे एक स्वर्ण पदक भेंट किया गया। सितम्बर १९६८ में म० प्र० की ऐतिहासिक नगरी इन्दौरमें सार्वजनिक सम्मान किया गया। मार्च सन् १९७० में ईसरीके विशाल पंच कल्याणकमें अरविन्द कन्स्ट्रक्शन प्राइवेट लिमिटेडके जनरल मैनेजर श्री एस० सी० जैनकी ओरसे 'स्वर्ण पदक' भेंट किया गया।

जैन समाज बागीदौरा एवं समस्त उपस्थित जैन समाज बागर प्रान्तकी ओरसे अभिनन्दन पत्र भेंट किया एवं समाजरत्नकी उपाधिसे विभूषित किया गया। सितम्बर सन् १९६७ में श्री दि० जैन समाज

खियागंज (प० बं०) की ओरसे एक हजार एक रु० की थैली भेंट की गई। अप्रैल सन् १९७१ में महामहीम उपराष्ट्रपतिजी श्री गोपाल स्वरूप पाठककी सभामें विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किया।

आपने अनेकों गीत, कवितायें, एवं खंड काव्योंकी रचनायें की हैं। आपके गीतोंकी पुस्तिकायें पंकज पुष्पांजलीके नामसे प्रकाशित होती है जिनके नौ अंक निकल चुके हैं, दसवाँ अंक प्रकाशनके लिये तैयार है। आपके प्रमुख खंड काव्य हैं—शुभ चन्द्र, भर्तृहरि, पुण्यका फल, सती अंजना, इलायचीकुमार, द्वारका दहन, पार्श्व प्रभूकी जीवन झाँकी आदि अनेकों खण्ड काव्योंकी रचना की है। पंकज प्रकाशन मन्दिर कृष्णानगर, मथुराके नामसे आपका अपना स्वतंत्र केन्द्र है।

अपना स्वतंत्र व्यवसाय होते हुए भी आपका अधिक प्रभू भक्ति, संगीत साधना, साहित्यिक व धार्मिक ग्रन्थोंके अध्ययनमें व्यतीत होता है।

●

श्री स्वरूपचन्द्जी

●

जीवन-परिचय

स्वरूपचन्द्रजीका जन्म माघ शुक्ला ६ को वि० सं० १९७९ में हुआ। दमोह आपकी जन्मभूमि है। पिता श्री चौधरी-रामप्रसादजी थे और माता सीताबाई। आप गोलापूर्व समाजके भूषण हैं। आपके पूर्वज नरसिंहगढ निवासी थे। आपके पिता श्री भी बीसवी सदीके चतुर्थ दशकमें विश्वव्यापी मन्दीके शिकार हुए। आपकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही। आपके तीन पुत्र और एक पुत्री है। स्वरूपचन्द्रजी सबसे छोटे है।

शिक्षा-विवाह-कार्य

आपने दमोह, कोतमा, सहारनपुर, आरामें धार्मिक शिक्षा प्राप्त की। संस्कृत-हिन्दीपर सामान्य अधिकार होते हुए लेखन-भाषणकी दिशामें आप बढे। आपके दो विवाह हुए। दोनों ही विवाह आपके अनुकूल सिद्ध नही हुए पर फिर भी गृहस्थीकी गाडी आगे बढी ही सही। आपके दो पुत्रियाँ व दो पुत्र है। एक पुत्रीका विवाह हो गया। एक पुत्र प्रेसका संचालन कर रहा है। आप आरा-आसनसोलके जैन मन्दिरमें पाँच वर्ष पुजारी रहे। फिर सेण्ट्रल आर्डनेन्स जबलपुरमें सहायक रहे, अनन्तर चिरमिरीमें क्लर्क रहे। तत्पश्चात् जयहिंद दैनिकमें जन विभागमें रहे। अनन्तर नवभारतमें संवाददाता रहे, विज्ञापन विभागमें कार्य किया। फिर नई दुनियाँ जबलपुरके कार्यमें भाग लिया। इसके बाद महाकौशल कामर्शियल कम्पनी जबलपुरमें कार्य किया। वर्तमानमें जबलपुर व भोपालसे जगवाणी पत्रका सम्पादन-प्रकाशन कर रहे हैं।

समाज-सेवा

आप युवकोंको धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक सेवाके लिए अग्रसर करते रहते हैं। बुन्देलखण्ड सांस्कृतिक मंडल भोपालके संयोजक हैं। स्फुट गद्य-पद्य विद्यार्थी-जीवनमें लिखे थे। अभी अभागे

का आत्म-निवेदन लिखते जा रहे हैं। आप अपने जीवनको अभाग्यकी गाथा मानते हैं और कवि बच्चनजीके शब्दोंमें कहना चाह रहे—

अल्पतम इच्छा यहाँ मेरी बनी बन्दी पड़ी है।
विश्व क्रीडा-स्थल नहीं रे ! विश्व कारागार मेरा ॥

आपकी ही भाँति आजका प्रत्येक भारतीय विषम स्थितियोंमें समतापूर्वक जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास कर रहा है। आपकी प्रवृत्ति कठिनाइयोंमें भी आगे बढ़नेकी सभीके लिए प्रेरणाप्रद है।

●

पं० सुरेन्द्रकुमारजी सिद्धांतशास्त्री

●

जीवन-परिचय

पंडित सुरेन्द्रकुमारजीका जन्म फाल्गुन शुक्ला अष्टमीको संवत् १९६७ में किसलवास (ललितपुर) उ० प्र० में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुरसौरा-जखौरामें हुई। फिर नाभिनन्दन दिगम्बर जैन विद्यालय बीनामें विशारदका अध्ययन किया। अनन्तर सर से० हु० दिगम्बर जैन विद्यालय इन्दौरसे न्यायतीर्थ शास्त्री परीक्षायें पास की। आयुर्वेदका अध्ययन कर आयुर्वेद वाचस्पति हुए।

सेवा-कार्य

आपने आजीविकाके हेतु भी आयुर्वेदका सहारा लिया। इस दिशामें आपको आशातीत सफलता मिली। आपको अनेक स्वर्ण-रजतपदक व सम्मान पत्र मिले। आप एक युग पूरे बारह वर्ष तक भानपुरामें वैद्यराज बन कर रहे। अनन्तर बीनामें छह वर्ष तक धर्मार्थ औषधालयमें कार्य किया। फिर स्वतन्त्र रूपसे कार्य करने लगे। आप जहाँ कहीं रहे धर्म और समाजकी सेवा करते ही रहे। आपका समयसार प्रिय धर्मग्रन्थ है।

पंडितजी विद्वत्परिषद्के स्थायी सदस्य हैं। म्यूनिसिपल बोर्डके अध्यक्ष रहे। जिला कांग्रेसके अध्यक्ष रहे। अनेक संस्थाओंके निकट सहयोगी रहे।

●

प्रज्ञाचक्षु शिवरामसिंहजी

●

जीवन-परिचय

शिवरामसिंहजी जैनको शिक्षा तो अतीव सामान्य हुई। कक्षा ८वी तक हिन्दी अगरेजी उर्दू का अभ्यास मात्र था पर आप अध्यापक बने, जैन विद्यालय खोला। विद्यालयके २५ वर्ष तक मन्त्री रहे। जब आपकी नेत्रशक्ति जाती रही तब आपमे भी प्रज्ञाचक्षुओं जैसे गुण आ गये। आपने अपनी बुद्धिको शुभोपयोगकी दिशामें बढ़ाया।

आपने उत्सवों, धर्मसभाओं, मन्दिरोंमें गाने योग्य एक बहुत बड़ी मात्रामें भजन तैयार किये। आप अपने भजनोंमें पूर्णतया अध्यात्म रसिक है। आपकी भगवद्‌भक्ति सराहनीय है। आप स्नेहमूर्ति है। शिवराम पुष्पांजलिके आपने अनेकों भाग बनाये है। आपने सत्संग, भजनमाला, वीर पुष्पांजलि, बाल पुष्पांजलि भी बनाई। मनोरमा नाटक लिखा। भाव संग्रह वैराग्य भजनमाला दर्शन आरती भी आपकी कृतियाँ हैं।

●

पं० सुमतिबेन नेमचन्द्र शाह

●

जीवन-परिचय : पंडिता सुमतिबेन नेमचन्द्रशाहका जन्म सुसम्पन्न सुसंस्कृत उच्च शिक्षित परिवारमे हुआ। आपने सोलापुर, पूना, इन्दौर में रहकर न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ और बी० ए० की परीक्षायें उत्तीर्ण की। आपने महर्षि कर्वेजी और पूज्य क्षुल्लिका राजुलमतीजीसे प्रेरणा मार्ग दर्शन लेकर स्त्री-शिक्षाके लिये सोलापुरमे काफी कार्य किया। आपकी श्राविका संस्था महाराष्ट्रमें चालीस वर्ष से कार्य कर रही हैं। यह आपकी कीर्त्ति की पताका ही है। आपके कार्य की प्रशंसा यशवन्तराव चह्वाण, बसन्तराव नाइक तक ने की है।

आपने लगभग २५०० पृष्ठोंमें बारह पुस्तकें लिखी है। उनमें से कुछ के नाम ये है —१ भाव पल्लवी, २. ज्ञान गीता, ३. महापुराण, ४. भाव गीता, ५. षट्खंडागम, ६. रामायण, ७. आदि गीता, ८. सुवर्ण रेख ९. हृदग्रन्थ।

आपने गद्य-पद्य दोनों में रचनायें लिखी। साथ ही जैन महिलादर्श और श्राविका मासिक पत्रोका सम्पादन भी किया।

आप म्यूनिसिपल बोर्ड सोलापुरकी उपाध्यक्ष रही। महाराष्ट्र राज्यमुख्याध्यापक परिषद् की स्वागताध्यक्षा रही। वर्तमान में क्षुल्लिका राजुलमती श्राविकाश्रम, संस्कृत महाविद्यालय महिलाशिक्षण मंडल उमाबाई श्राविका हाईस्कूल, औद्योगिक कला मंदिर आदि संस्थाओंसे सम्बद्ध है। आपने राष्ट्रीय सेवाकार्य भी किया। सन् १९३० में मार्शललाके समय महिला संगठन किया। महिला नगर सेना संगठित की। गांधी जन्म शताब्दी महोत्सवकी अध्यक्षा रही।

सरकार द्वारा सम्मानित हुई। आप जैसी विदुषी सेवाभावी महिला समाजमें बिरली ही हैं।

●

पं० सुरज्ञानीचंदजी न्यायतीर्थ

●

जन्म : १४ जून सन् १९५४।
शिक्षा : न्यायतीर्थ।
पिता : श्री बोदीलाल लुहाड़िया।
व्यवसाय : कपड़ेका व्यापार।

श्री सुरज्ञानीचन्दका जन्म जयपुरके प्रसिद्ध कपड़ेके व्यवसायी घरानेमें १४ जून सन् १९२४ को हुआ। आपके पितामह श्री जमनालालजी तथा पिता श्री बोदीलालजी लुहाड़िया थे। बोदीलालजी जमनालालजीके यहाँ निवाई (टौंक) से दत्तक आये थे। इसी कारण उनके मित्रगण उन्हे नवाब भी कहते थे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गुलाबजी चात्रलवालेकी चटशालाके पश्चाद् जैन महापाठशालामें हुई। पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थके सान्निध्यमें संस्कृत प्रवेशिका तथा अँग्रेजीमें मिडिल पास करनेके पश्चात् आप व्यापारमे लग गये।

अल्प आयुमें ही पितामह तथा पिताजीका स्वर्गवास हो जानेके कारण व्यापारका समस्त उत्तरदायित्व सँभालते हुए भी आपने पं० चैनसुखदासकी प्रेरणासे अपना अध्ययन नही छोड़ा और सन् १९४६ में न्यायतीर्थकी परीक्षा उत्तीर्ण की।

समाज सेवामें आपकी विशेष रुचि है। वर्तमानमें दि० जैन संस्कृत कालेज, दि० जैन औषधालय, श्री पदमपुरा अ० क्षेत्रके कोशाध्यक्ष हैं। आल इण्डिया भगवान् महावीर २५००वी निर्वाण महोत्सव समिति जयपुर संभागके आप मन्त्री है। जयपुरकी प्रायः सभी सामाजिक संस्थाओंमें आपका पूर्ण सहयोग है। समाजसेवाके साथ-साथ व्यापारमें रुचि अच्छी है। जमनालाल बोदीलाल लुहाड़िया, लुहाड़िया ब्रदर्स, लुहाडिया टैक्सटाइल्स, लुहाडियाज, लूहाडियाज एम्पोरियमके आप प्रोप्राइटर है।

आप स्वभावसे मिलनसार तथा विनम्र प्रकृतिके है।

●

श्रीमती सुशीलादेवीजी बाकलीवाल

●

जन्म ५ सितम्बर १९३५।
शिक्षा : एम० ए०, विदुषी आनर्स।
पिता : श्री मनोहरलालजी रारा।
पति : श्री ताराचन्दजी बाकलीवाल।

श्रीमती सुशीलादेवी बाकलीवाल जयपुरकी एक उच्च शिक्षित महिला हैं। सन् १९५१ में आपने विदुषी आनर्सकी परीक्षा उत्तीर्ण की। विवाहके पश्चात् भी आप अध्ययनकी ओर बराबर लगी रही और सन् १९७० में राजस्थान विश्वविद्यालयसे एम० ए० किया। आप एक अच्छी लेखिका एवं वक्तृत्व सम्पन्न महिला है। सामाजिक कार्योंमें विशेष रुचि रखती हैं।

आजकल महिला जाग्रति संघकी मन्त्री एवं दि० जैन परिषद् जयपुर शाखा तथा संभागीय महावीर निर्वाण समितिकी सक्रिय सदस्या है। गोष्ठियों एवं सेमिनारोंमें विशेष उत्साहसे भाग लेती हैं।

महिला जाग्रति संघका प्रमुख उद्देश्य महिलाओंमें साहित्यिक एवं सास्कृतिक जागृति उत्पन्न करना है। विभिन्न पत्रोंमें आपके लेख आदि प्रकाशित होते रहते हैं। समालोचनात्मक लेख लिखनेमे आप विशेष रुचि रखती हैं।

आपका सम्पूर्ण परिवार सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत है। आपके पति श्री ताराचन्दजी अच्छे व्यवसायी व्यक्ति हैं।

●

श्रीमती स्नेहलताजी

●

श्रीमती स्नेहलताजी जयपुर नगरके प्रसिद्ध समाज सेवी स्व० श्री दौलतचन्दजी जजकी सुपुत्री है। आप समाज शास्त्र एवं हिन्दीसे एम० ए० हैं तथा प्रयाग महिला विद्यापीठमे विदुषी आचार्य है। जैन साहित्यके अनुसन्धानमें आप विशेष रुचि लेती रही है तथा वर्तमानमें "मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यमें प्रेमाख्यानक काव्य" विषयपर रिसर्च कर रही हैं। महिला जाग्रति संघ जयपुर, राजस्थान जैन साहित्य परिषद् एवं वीर निर्माण महोत्सव सोसाइटी टोंक द्वारा आयोजित विभिन्न सेमिनारों एवं संगोष्ठियोंमें आप भाग ले चुकी है तथा निबंध-वाचन एवं परिचर्चामें भाग लिया है। महिलाओंके साहित्यिक एव सास्कृतिक विकासमे आप विशेष रुचि लेती हैं तथा महिला जागृति संघ जयपुरकी कार्यकारिणीकी सक्रिय सदस्य है। वीरवाणी आदि जैन पत्रोंमें आपके लेख प्रकाशित होते है। वर्तमानमें आप वीर बालिका महाविद्यालयमे समाज शास्त्रकी अध्यापिका है। आपके पति श्री प्रकाशचन्दजी जैन कृषि उपकरणोंके व्यवसायी है।

●

स्व० पं० सिद्धिसागरजी

●

मन्दिरोंकी नगरी मडावरा (झाँसी) में आपका जन्म हुआ था। आरम्भमे आपकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त कमजोर थी। छात्रावस्थासे ही आप प्रतिभाशाली रहे है। धार्मिक ज्ञान प्राप्त करनेके उपरान्त आपने अनेक सामाजिक सस्थाओंमें नौकरी की और फिर वैद्यकका कार्य करने लगे। अपने सिद्धहस्त कार्यसे आपने एक छोटी-सी फार्मेसी खोली जो अल्प समयमें एक वडी एवं भारतीय स्तरको हो गई। सिद्धि फार्मेसीसे भारी मात्रामें औषधियाँ देशमें भेजी जाने लगी। आपके २ पुत्र हुए जिनका नाम बाहुवली एवं भरत हैं। भरत असमयमें युवावस्थामें आते-आते चल बसे। श्री बाहुबलि कुमार उच्चकोटिके चिकित्सक समाजसेवी कर्मठ कार्यकर्त्ता है। पण्डितजी अपने समयके महानतम बिद्वान्-साहित्यकार एवं प्रतिष्ठाचार्य थे। वर्तमानमें आपका निजी चैत्यालय, डाकघर, फार्मेसी एवं प्रेस है। ललितपुर नगरमें आपका परिवार प्रतिष्ठित परिवारोंमें माना जाता है।

●

सौ० सरोजिनीदेवीजी

सौ० सरोजिनीदेवीजी वीरके प्रसिद्ध सम्पादक श्री कामताप्रसादजीकी सुपुत्री हैं। आपका जन्म १ जून १९२९ को अलीगंज (एटा) में हुआ था। सन् १९४३ में आपने लोअर मिडिलकी परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पास की थी। जिसमें द्वितीय भाषा उर्दू में आपको 'डिस्टिंक्शन' मिला था। इस ओरकी जैन समाजमें आप पहली सुलेखिका और कवियित्री हैं। सन् १९४३ में आपका विवाह दि० जैन परिषद् कायमगंजके उत्साही अग्रणी युवक श्री सुमतिचन्द्रजीके साथ हुआ था। श्री सरोजिनीदेवीने भा० दि० जैन परिषद परीक्षा बोर्डकी कई धार्मिक परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्णता पाई है और पुरस्कार भी पाया है।

जैन महिलादर्शमें आप बराबर लेख, मोहक कविताएँ लिखती रहती हैं। आपकी कवितामें स्वाभाविक गति है। और आपकी दृष्टिमें मौलिकता है। प्रसिद्ध कवियित्री श्री मणिप्रभादेवीने लिखा है कि सरोजिनीने कविता सुन्दर शब्दावलीमें गूँथी है। आपकी दृष्टिसे भी उनकी कविता काफी अच्छी है। इन्होंने डाली तथा कुसुमका बड़ा सुन्दर और शुद्ध साहित्यिक संवाद लिखा है। इनकी अब तककी रचनाओं में यह सबसे श्रेष्ठ रचना है। सरोजिनी इसी तरह उत्तरोत्तर उन्नति करती रहें।

पं० सुमतिचन्दजी

कुशल प्रशासक एवं मूर्धन्य विद्वान्। 'जैनधर्ममें आत्माका स्थान' विषयपर अत्यन्त खोजपूर्ण महा-प्रबन्ध लिखकर आगरा विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। समाजसेवी एव कुशल वक्ता। सम्प्रति देहलीमें प्राचार्य हैं।

श्रीमती सुदर्शन देवी जी छावड़ा

जयपुर नगरकी विदुषियोमें श्रीमती सुदर्शन देवी छावड़ाका नाम उल्लेखनीय है। श्रीमती छावडाका जन्म जयपुरमें सवत् १७८४ में हुआ। आपके पिताजी गुलाबचन्दजी मुशरफ राष्ट्रीय विचारोंके व्यक्ति थे। वे वर्षों तक अतिशय क्षेत्र श्रीमहावीरजीके मैनेजर रहे। सुदर्शनाजीका लालन-पालन एवं शिक्षा-दीक्षा राष्ट्रीय वातावरणमें हुई। आरम्भमें ही आप सुधारवादी विचारधारासे ओत-प्रोत रही। ३३ वर्ष पूर्व आपने बिना पर्दा विवाह करके एक आदर्श उपस्थित किया। कहते है जब आप प्रथम बार बिना घूँघटके अपनी ससुराल राणोली (सीकर) गयी तो आपको देखनेके लिये एक मेला लग गया। आपके पति श्री कुन्दनमलजी छावडा गोहाटी (आसाम) में कुशल वस्त्र व्यवसायी है।

विवाहके पश्चात् राजस्थान जैनसाहित्य परिषद् परीक्षालयके सर्वोच्च परीक्षा धर्मालंकार प्रथम-श्रेणीमे उत्तीर्णकी तथा गोम्मटसार, द्रव्यसंग्रह, पंचाध्यायी, समयसार, प्रवचनसार जैसे ग्रन्थोंका गम्भीर अध्ययन किया। लिखनेमें आपकी आरम्भमें ही रुचि रही। समय-समयपर आपके लेख वीरवाणी, अहिंसा-वाणी, सन्मतिसन्देश आदि पत्रोंमें प्रकाशित होते रहते हैं।

विदुषी होनेके साथ ही आप सामाजिक कार्योंमें विशेष रुचि लेती है। दहेज, लेन-देन जैसी बुराइयों-का आप डटकर विरोध करती हैं। आपका नगरकी अनेक संस्थाओंसे विशेष सम्बन्ध है। वर्तमानमें आप महिला जाग्रति संघ जयपुरकी उपाध्यक्षा हैं। व्रत उपवास करनेमें विशेष आस्था है तथा एकबार दशलक्षण पर्वमें दस दिनके उपवास कर चुकी हैं। आपके पति श्री कुन्दनमलजी छाबडा भी उदार स्वभावके हैं। आपके दो पुत्र एवं २ पुत्रियाँ हैं।

●

श्रीमती सुशीला देवी जी कासलीवाल

●

जयपुर नगरकी सक्रिय एवं निष्ठासे कार्य करनेवाली जैन महिलाओंमें श्रीमती सुशीला देवीजी कासलीवालका नाम विशेष उल्लेखनीय है। सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सभी क्षेत्रोंमें आप निष्ठा-पूर्वक कार्य करती हैं और इसी कारण आप जयपुरके अनेक संस्थाओंकी क्रियाशील सदस्या है। आप धर्मालंकार उपाधिसे सम्मानित महिला है। लेख लिखने, व्याख्यान देने एवं किसी भी सामाजिक कार्यमें भाग लेनेमें आप विशेष रुचि लेती रहती हैं। वीरवाणी अहिंसावाणी एवं सन्मति सन्देश आदि पत्रोंमें आपके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। समाज सुधार एवं अध्यात्म परक लेख लिखनेमें आपकी विशेष रुचि रहती है।

आपके पति श्री महेन्द्रकुमारजी राजकीय सेवामें है।

●

श्री सुदेशचन्द्रजी कोठिया

●

जीवन परिचय : सुदेशचन्द्रजीका जन्म १५ जुलाई १९४१ को मोंरई (ललितपुर) उ० प्र० में हुआ। आपके पिता श्री पं० शोभारामजी शास्त्री है। पिता श्रीके नही रहनेसे बाल्यकालमें विशेष शिक्षा नही हुई। सागरमें सिलाईका कार्य किया। दहेज प्रथाको ठुकरा निर्धन कन्यासे विवाह किया, बी० ए०, बी० टी० कराकर शिक्षिका बनाया फिर स्वय एम० ए०, एल० एल० बी० किया। आपके परिवारमें माँ, पत्नी और तीन पुत्र तथा एक पुत्री है। वर्तमानमें आप पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन गुरुकुलमें गृहपति व हिन्दी शिक्षक है।

साहित्य-समाज सेवा . सागरमें पन्द्रह वर्ष सामाजिक कार्यकर्ता रहे। संस्थाओंमें पदाधिकारी प्रमुख कार्यकर्ता रहे। बाहुबलि नाटय मडलीके निर्देशक रहे। लिखनेके लिये आपको आरम्भसे अभिरुचि रही। कहानी-निबन्ध नाटक- गीत लिखे, जो छपे हैं। व्यथा कहानीपर हिन्दी साहित्य परिषद् विश्व-विद्यालय सागरसे प्रथम पुरस्कार मिला था। आजकल आप व्यंग्य शैलीमें गद्यगीत लिख रहे। दो खण्ड काव्यपूर्ण होनेको है।

●

पं० शोभाचन्द्जी भारिल्ल

●

समस्त जैनदर्शन एवं साहित्यको अपने व्यक्तित्वमें आत्मसात् करनेवाले स्वनामन्य श्री शोभाचन्दजी भारिल्लका जन्म मध्यप्रदेश जिला सागरके खैराना ग्राममें सन् १९०४ में हुआ था। बाल्यावस्थासे ही आपमें ज्ञानकी असीम पिपासा थी जिसके कारण आप समस्त स्नेहमय परिवारसे दूर होकर ग्यारह वर्षकी उम्रमें मथुरा अध्ययनार्थ चले गये। वर्षों ज्ञानार्जन करनेके उपरान्त आप जैन एवं अन्य भारतीय धर्म दर्शनका विशेष एवं तुलनात्मक अध्ययन करने हेतु राजस्थानके बीकानेर नगरमें स्थित प्रसिद्ध एवं विशाल ग्रन्थागार 'सेठिन जैन लाइब्रेरी' में रहे। आपकी विद्वत्ता एवं प्रतिभाको देखकर श्री जैन गुरुकुल ब्यावर (राज०)ने प्रधानाचार्य पदके लिए आपको आमन्त्रित किया और ३० वर्ष तक उक्त संस्थाकी अनवरत सेवा की। साथ ही ब्यावरकी एक सस्था—'जैन सिद्धान्तशाला' में सैकडों जैन साधु-साध्वियोंको जैन आगम, दर्शनका अध्यापन करते रहे। आपने दिल्ली विश्वधर्म सम्मेलनकी संचालन समितिके मन्त्री पदका उत्तरादियत्व पूर्ण कार्य भी बडी निष्ठासे किया।

इस सारी अवधिमें आपने सैकडों धर्मग्रन्थोंका लेखन, सम्पादन एवं संशोधन किया। 'श्री मरुधर केशरी जैसे विशाल उच्चकोटिके अभिनन्दन ग्रन्थोंका सम्पादन आपकी विद्वत्ता पूर्ण कलमसे ही हुआ। आपकी प्राञ्जल भाषा, सुलझे विचार और तर्क-गूढताने जैन साहित्यको बडा समृद्ध किया।

इसके साथ आपमें कुशल पत्रकारिता और सम्पादकत्वका गुण है। आपने 'वीर', 'जैन-शिक्षण सन्देश', 'सुधर्मा', 'जैन जीवन' आदि पत्रोंका कुशल सम्पादन किया।

सम्प्रति आप श्रमणी विद्यापीठ बम्बईके प्रधान आचार्य हैं जो जैन आगम शास्त्रोंके उच्चतम अध्ययन का प्रधान केन्द्र है। प्राचीन जैन साहित्य अपभ्रंश आदिमें शोध करनेवाले अनेक जिज्ञासु छात्र आपसे निरन्तर मार्गदर्शन प्राप्त करते रहते है।

आपने अपनी प्रखर प्रतिभा, गहन चिन्तन और विशिष्ट लेखन द्वारा जैन साहित्यकी श्री वृद्धि की है।

●

डा० शंकरलालजी काला

●

डॉ० शंकरलालजी काला, डी० आई० एम०, इन्दौर, मध्य भारतके उदीयमान हिन्दी कवि और लेखक हैं। आपकी रचनाएँ 'जीवन प्रभा', 'जैन मित्र' और 'जैन बन्धु' आदि पत्रोंमें प्रकाशित होती रही है। वर्तमानमें आप 'आत्मबोध' संस्कृत ग्रन्थका हिन्दी पद्यानुवाद कर रहे हैं। आप बालकोंके लिए ओजमयी सुन्दर रचनाएँ भी करते हैं। प्रतिभावान साहित्यकार एवं नैसर्गिक कविके रूपमें आप साहित्य जगत्‌में सदैव प्रकाशवान रहेंगे।

●

पं० शीलचन्द्रजी शास्त्री

संघर्षशील परिवेषमें जीनेवाले श्री शीलचन्द्रजी ५६ वर्षके प्रौढ़ व्यक्ति हैं। प्रारम्भिक शिक्षा स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी मे सन् १९३४ तक न्यायतीर्थ एवं धर्मशास्त्रीकी परीक्षा उत्तीर्ण की। १९३६ में कुन्दकुन्द जैन हाईस्कूल खतौली (मुजफ्फरनगर) में अध्यापन कार्य। १९३७ में 'दस्साओंका पूजाका अधिकार' विषय पर एक सभामें भाषण देने पर जैन हाईस्कूल खतौलीसे सेवामुक्ति-आदेश। १९३९ में 'तिलक बीमा कम्पनीमें ला० तनसुखरायके साथ कार्य किया। १९४०-४२ तक 'दैनिक विश्वमित्र' का सहायक सम्पादक तथा राष्ट्रीय कार्यमें प्रवृत्त रहे।

उल्लेखनीय घटना : १९४७ में मवाना म्यूनिसिपिल बोर्डका चेयरमैन चुने गये और इस पदकी हैसियतसे भारतवर्षमें सर्वप्रथम मवाना नगरका बूचड़खाना (पशुवधशाला) बन्द किया तथा गोश्तके लाने और बेचने पर प्रतिबन्ध। मुस्लिम आबादी आधेके करीब होने पर भी पशुवधशाला नही खुलने दी। भारत-विभाजनके समय स्पेशल मजिस्ट्रेट। १९४९ से १५ वर्ष तक ऐंग्लो संस्कृत कालेजका अध्यक्ष तथा पश्चात् ५ वर्ष तक डिग्री कालेजके अध्यक्ष पद पर।

सामाजिक सेवायें : १९५० में अ० भा० दि० जैन परिषद दिल्लीके महामन्त्री। तथा १९४९ से दि० जैन तीर्थक्षेत्र प्रबन्धकारिणी समिति हस्तिनापुरके दस वर्ष संयुक्तमन्त्री और आज तक सदस्य है। राष्ट्रीय सेवाके सम्दर्भमें जेलयात्राका अनुभव।

सम्प्रति : मेरठमें रोहताश इन्डस्ट्रीज लि० डालमियाँ नगरका पेपर व बोर्डके वितरक और मवाना व्यापार मण्डलके अध्यक्ष।

पं० शिवमुखरायजी शास्त्री

जन्म

आश्विन कृष्ण प्रतिपदा स० १९५९ कुतकपुर (आगरा)। पिता श्री लाला कंचनलाल जैन जमीदार। बाबा श्री लाला हीरा लालजी जारखीवाले जिन्होंने कुतकपुरमें जिनालय आदि बनवाया। मातश्री—श्रीमती दुर्गा देवी।

प्रारम्भिक शिक्षा

बरहन (आगरा) में। चौरासी मथुराके पश्चात् सर सेठ स्वरूपचन्द हुकमचन्द महाविद्यालय, इन्दौरमें शास्त्री तक अध्ययन किया।

अध्ययनके पश्चात् १० वर्ष तक श्री गोपाल दि० जैन सि० महाविद्यालय मोरेना (ग्वालियर) में

गृहपतिका गुरुत्व-पद सम्भाला। इस बीच १९३० में परमपूज्य आचार्य शान्तिसागरजी महाराजके संघ पर छिघा नामके ब्राह्मण और उनके साथियों द्वारा नंगी तलवारोंका उपसर्ग आता देखकर दूर किया। उपसर्ग राजाखेड़ा (धौलपुर) में हुआ था। श्री आचार्यवरके संघका सत्समागम रहा।

आप तीर्थ वन्दन प्रेमी और वात्सल्य-गुणके आगार हैं। गार्हस्थिक धर्मका परिपालन ही जिनकी दैनिक जीवनचर्या है। मोरेना विद्यालयके गृहपतिके कार्यभारसे विमुक्त होकर आज तक (लगभग ३६ वर्ष से) दि० जैन पंचायत पाठशाला मारोठमें अध्यापन कार्य।

पाँच लाख रुपयेसे श्रीमंत सेठ मगनलालजी हीरालालजी पाटनी (रायबहादुर) द्वारा स्थापित पारमार्थिक ट्रस्टके मैनेजर एवं सदस्य मनोनीत हुए।

१९५० में जोधपुर रेडियो स्टेशन, आलइण्डिया एवं देहली आदि रेडियो स्टेशनोंसे धार्मिक प्रोग्राम प्रसारित करवानेमें अपना सक्रिय सहयोग। एवं स्वय रेडियो स्टेशन जोधपुरसे भाषण दिये।

अ० भा० जैन जनगणना समिति बड़ौत एवं पशुबध निरोधक समिति देहली एवं एटाके कार्योंमें सहयोग। स्थानीय जीव दया पालक समितिके सदस्य।

एक हिंसात्मक व्यापारी ब्रा० श्री कँवरलालजी पारासरको अपने प्रभावक उपदेश द्वारा इस व्यापारसे त्याग दिलवाया। तथा पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा जीव दया भवनका निर्माण करवाया।

सामाजिक कार्य

अपने प्रयासोंसे मारोठमें हायर सेकेण्डरी स्कूलकी स्थापना शासनके सौजन्यसे करवायी। जो श्री ऋषभचन्द जैन गोधा उच्च० माध्यमिक विद्यालयके नामसे चल रहा है।

एक सुपुत्र श्री मणीन्द्रकुमार और पाँच सुपुत्रियोंके बीच एक भरे पूरे शिक्षित परिवारमें शान्ति और सन्तोषका असीम रस लेते हुए जीवनयापन कर रहे है। धर्मपत्नी सौ० फूलमाला देवी सरल धार्मिक प्रवृत्तिपरक महिला है।

जैन पत्र-पत्रिकाओंमे विविध लेख एवं सामाजिक सुधार मासाहार वर्जन सम्बन्धी प्रेरक विचार प्रकाशित होते रहते है।

●

श्री शान्तिलालजी 'बालेन्दु'

●

जन्म एवं जन्म स्थान : ४ दिसम्बर १९३३। कुंचडोद जिला मन्दसौर (म० प्र०)।

शैक्षणिक योग्यतायें : एम० ए० (हिन्दी), एम० एस-सी० (भौतिकशास्त्र), एम० ए० एस० (कलकत्ता) डी० लिट्० (नागपुर), साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य एव ज्योतिषाचार्य (काशी), ज्योतिष-पुराण तीर्थ (कलकत्ता) साहित्यरत्न, आचार्य (बम्बई) एवं पुस्तकालय-विज्ञान (प्रमाण-पत्र)।

विशेष अध्ययन : भारतीय प्राच्य विद्या।

संस्कृतेतर भाषादिकी योग्यता : १. अंग्रेजी, २. हिन्दी, ३. प्राकृत, ४. उर्दू और ५. फ्रेंच (French) के ज्ञाता।

आपके शिक्षा गुरु : पद्मविभूषण डा० हजारीप्रसाद शास्त्री, डा० अमरनाथ झा एवं जैनाचार्य श्री १०८ धर्मसागरजी महाराज आदि हैं।

सम्प्रति : हिन्दी साहित्य एवं भारतीय संस्कृतिका प्रचार। सम्पूर्ण भारतमें हिन्दी प्रचार केन्द्र खोलना।

संचालक : हिन्दी ज्ञानपीठ इन्दौर। उपकुलपति अ० भा० विद्वत्परिषद् कलकत्ता शाखा मध्यप्रदेश इन्दौर। सभापति मालवा प्रान्तीय श्री शान्तिवीर दि० जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा इन्दौर।

सम्माननीय सदस्य : अ० भा० दि० जैन शास्त्रिपरिषद्, अ० भा० ज्योतिष तत्त्व प्रकाशिनी समिति, बैंगलोर तथा आयुर्वेद परिषद् प्रयाग।

उपाध्यक्ष : म० प्र० पुस्तकालय संघ इन्दौर।

संपादित पत्र-पुस्तकें आदि : १. हिन्दी काव्य-शास्त्र (१९५३ ई०), २ बृहत्पर्यायवाची शब्दकोष (१९५६ ई०), ३. कुल्लि याते-हिलाल (१९५७ ई०) ४. भारतीय फलित ज्योतिष (१९५८ ई०) एवं भ० ऋषभदेव आदि सभ्यता एवं संस्कृतिके जन्मदाता (अप्रकाशित)।

●

पं० शीलचन्द्जी

●

संस्कृत, व्याकरण और साहित्यमें अभिरुचि रखनेवाले पं० शीलचन्द्रजीका जन्म ग्राम गुरसौरा पो० किसलवास (ललितपुर) जिला झांसी (उ० प्र०) में १ नवम्बर १९३१ को हुआ था। आपके पिता श्री फुन्दीलालजी पंचायत अदालतके सम्माननीय पंच रहे और अच्छे साहूकारोंमें आपकी गिनती रही। अपने माँ बापकी सबसे बड़ी सन्तान होनेके कारण आपपर पारिवारिक उत्तरदायित्व अधिक रहा।

प्रारम्भिक शिक्षा

श्री नाभिनन्दन दि० जैन विद्यालय बीना (सागर) में तथा धर्ममें शास्त्री, साहित्यरत्न एवं काव्य-तीर्थ स० हु० दि० जैन संस्कृत महाविद्यालय, इन्दौरसे करनेके पश्चात् १९६० में पंजाब विश्वविद्यालयसे एम० ए० (हिन्दी) एवं १९६३ में बी० एड० किया। गुजराती भाषाका भी स्वाध्यायी रूपसे अध्ययन किया है। विद्यार्थी जीवनमें संस्कृतमें वाद-विवाद प्रतियोगितामें प्रथम आते रहे। प्रारम्भमें आपने जैन पाठशाला टोडारायसिंह (टोंक) में बादमें क्रमशः जैन हाई स्कूल रोहतक, पानीपत एवं जैन संस्कृत कार्मशियल हायर से० स्कूल, कूचा सेठ दिल्लीमें धर्माध्यापक हुए। वर्तमानमें आप हीरालाल जैन हा० से० स्कूल, सदर बाजार दिल्ली–६ में स्नातकोत्तर शिक्षकके रूपमें कार्य कर रहे हैं।

सामाजिक सेवा कार्य

आप जैन विद्यालय जवरीबाग इन्दौरके १९५१ से १९५४ तक मन्त्री रहे। १९५८ से ६२ तक जैन युवक संघ रोहतकके उपमन्त्री, जैन समाज सुधार समिति दिल्लीके मन्त्री तथा अहिंसा शिक्षक संघ दिल्लीके अब संयुक्तमन्त्री हैं। आपने १९६५ में गान्धीनगर दिल्लीमें जैन धर्मार्थ औषधालय तथा १९७१ में जैन कन्या पाठशालाकी स्थापना करवायी। निर्धनोंको मुफ्त औषधि-दान देकर महान् पुण्य उपार्जन किया है।

●

पं० श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री

आपके पिता श्री ओंकारप्रसादजी जैन जमीदार थे। कुशल वैद्य होनेके नाते आपने जीवन भर निःशुल्क औषधि रोगियोंको दी।

जन्म स्थान : ग्राम गोंछ, डाकघर फीरोजाबाद, जिला आगरा (उ० प्र०), आषाढ़ वदी अष्टमी सन् १९१९ में पद्मावती पुरवाल आम्नायमें संस्कारित।

शास्त्री तक शिक्षा : श्री गोपाल दिगम्बर जैन महाविद्यालय मोरेनामें १९३५ में। विद्वत्वर्य पं० मक्खनलालजी शास्त्री न्यायालंकार आपके शिक्षा-गुरु। अविवाहित रहे तथा आर्थिक उपार्जन हेतु प्रारम्भसे कपडेका व्यापार किया। दो भाइयों और दो बहिनोंका सौभाग्य प्राप्त है।

प्रतिभा के पृष्ट : देव शास्त्र गुरुकी भक्ति एवं सिद्धान्तशास्त्रोंका अच्छा अध्ययन है। दिगम्बर जैन समाज बम्बई, पावागढ, कुथलगिरि, बाराबकी, कलकत्ता और फिरोजाबादमें प्रवचन हेतु गये तथा अपनी पाडित्य-प्रतिभासे समाजको प्रभावित कर सिद्धान्त विज्ञ-शिरोमणि तथा वाणी-भूषणकी उपाधि एव अभिनन्दन पत्र प्राप्त किये। संस्कृत हिन्दी गद्य पद्य दोनोंमें लिखा।

आपकी स्वतन्त्र रचनायें आ० विमलसागर भक्तामर स्तोत्र, आ० महावीर कीर्ति पूजन, षट्कर्म समुच्चय और आ० सुधर्मसागर चरित्र हैं। 'बाल केशरी' और 'स्याद्वाद मार्तण्ड' पत्रिकाओंके सम्पादक रहे।

सामाजिक कार्य : आप श्री पन्नालाल दि० जैन इण्टर कालेज एवं स्थानीय दि० जैन मेला महोत्सव, समितिके मंत्री प्रारम्भसे १९५५ तक रहे। तथा प्रमुख कार्यकर्त्ताके रूपमें स्थानीय सभी प्रमुख संस्थाओंमें महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

जैन मेला भूमि सत्याग्रहका नेतृत्व किया और इस सन्दर्भमें १०० व्यक्तियोंके एक जत्थे सहित जेल-यात्रा भी की। बाराबकी-प्रवचन हेतु पहुँचनेपर इन्हें भोजक समझा गया और प्रथम रात्रि एक पौरीमें कष्ट पूर्वक व्यतीत करनी पडी थी। दूसरे दिन वास्तविकताकी स्थितिमें आपका बहुत सत्कार हुआ।

श्री शान्तिस्वरूपजी 'कुसुम'

श्री शान्तिस्वरूप 'कुसुम' को काव्य-रचनाके लिए जन्म-जात प्रतिभा मिली है। आपका जन्म १५ अक्टूबर सन् १९२४ को धनोरा (मेरठ) मे हुआ। आपने हाईस्कूल तक ही शिक्षा प्राप्त की है। और आजकल सहारनपुरमें इम्पीरियल बैंकमें खजांची है।

आपको हिन्दी साहित्यसे बचपनसे ही अनुराग रहा है। और स्वत स्फूर्तिसे प्रेरित होकर आपने कविता-रचना प्रारम्भ की है। थोडे ही समयमें आपने इस दिशामें बहुत उन्नति कर ली है, और भविष्यमें आप निःसन्देह हिन्दी कवि-समाजमें विशेष गौरव आदरका स्थान प्राप्त कर सकेंगे।

आपके गीतोंमें उच्च कला, सफल सौन्दर्य और अभिनव सरसताके दर्शन होते हैं। इनकी कवितामें प्रवाह होता है जो इस बातका प्रमाण है कि कविता और कविताकी शब्द-योजना हृदयके स्पन्दनसे निकलते है।

पं० शेरसिंहजी

●

आपके बाबाजी म्युनिसिपल बोर्डके मेम्बर तथा पिता श्री मोहनलालजी रईस, फरूखनगर (पंजाब) के अच्छे बिजनिसमैन तथा पंजाब गवर्मेन्टके कुरसी नशीन थे। जन्म : भादव सुदी एकम सं० १९५८। जन्म स्थान : फरूखनगर जिला गुड़गाँवाँ (पंजाब)। वर्तमान हरियाणा प्रान्त। आपके एक पुत्र, एक पौत्र तथा चार बहिनें हैं। आपके सम्बन्धी-जन तथा पुत्र, पौत्र उच्चपदोंपर शासकीय सेवामें रत हैं। १९१४ में मिशन हाईस्कूल दिल्लीसे वरनाक्युलर मिडिल पास की थी। कातन्त्र रूपमाला शाकटायन तर्कशास्त्रमें प्रवीण हैं। उसी समय आपको बा० भागीरथजी वर्णी, ब्र० शीतलप्रसादजी और क्षु० गणेशवर्णीजी द्वारा न्यायदिवाकरकी पदवीसे विभूषित किया गया। ब्रिटिश सरकारसे गोल्डमेडल तथा अपनी सेवाओंके उपलक्ष्यमें लगभग बीस प्रमाणपत्र प्राप्त हुए। १९२८ से २१ वर्ष तक आप ब्रिटिश राज्यमें शेसनकोर्टके जूरी-मेम्बर रहे। १९४४ से १९५९ तक दिल्ली क्लोथ एण्ड जनरल मिल्सके प्रोडक्सन आफीसर, सेल्स एवं परचेज आफीसर रहे। दो स्वयंकी हौजरी और वर्तमानमें अमर डाईस्टफस कम्पनीके चीफ एका० तथा हेडकैशियर हैं।

जैन विद्वत् परिषद् दिल्लीके प्रबन्धकारिणी सदस्य हैं। जैन संगठन सभाके संस्थापकके रूपमें आपने दिगम्बर, श्वेताम्बर एवं स्थानकवासी तीनोंको एक मंचपर लानेका प्रयास किया। आजादीसे पहिले गोपनीय कार्य देशकी स्वतन्त्रताके लिए किये और १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलनमें सक्रिय भाग लिया। १९१९ में रोलिट एक्टके विरोधमें प्रदर्शन किया। स्वतंत्र रचनायें नहीं लिखीं। परन्तु प्रारम्भसे ही आर्यसमाजी विद्वानोंसे तर्क एवं शास्त्रार्थ करनेमें दखल रखते रहे। शास्त्रोंका स्वाध्याय और उपदेश करना आपके जीवनका प्रमुख कार्य रहा। मन्दिर एवं समाजपर आयी हर विपत्तिके समय आपने वालन्टीयरी सहयोग दिया।

●

पं० शिखरचन्द्रजी

●

श्रावण कृष्णा ६ विक्रम सं० १९७५ (२९ सितम्बर १९२८) में सखावतपुर (जोधरी) जिला आगरा (उ० प्र०) में श्रीमती बतासोदेवीजीकी कुक्षिसे हुये। पिता श्री सुखलालजी मध्य श्रेणीकी आर्थिक स्थिति वाले थे।

प्रारम्भिक शिक्षा गोधरीमें। प्रवेशिका : गो० दि० जैन विद्यालय मुरेना तथा १९३८ में शास्त्री सर सेठ हुकमचन्द दि० जैन विद्यालय इन्दौरसे उत्तीर्ण की। उस समय प० वंशीधरजी शास्त्री धर्माध्यापक थे। आप अविवाहित रहे।

शिक्षा समाप्त करनेके पश्चात् आष्टा (भोपाल) की पंचायतके आग्रहपर श्री १०८ स्व० मुनि जयकीर्तिजीको संस्कृत धार्मिक शिक्षा हेतु सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् १९३९ से ४९ तक नौंदगाँव इटावा, अजमेर आदि की जैन पाठशालामें ३० रु० मासिकपर धर्माध्यापकी की। इसी बीच दो सालके परचूनीकी स्वतन्त्र दूकान की सन् १९४९ से १९६२ तक भा० दि० जैन महासभा दिल्ली व अजमेरके मैनेजर एवं जैन गजटके प्रकाशक। १९७० में श्री पद्मावती पुरवाल दि० जैन पंचायतके तत्वाधानमें रात्रिकी धार्मिक पाठशालाकी स्थापनामें योगदान दिया।

श्री १०८ स्व० चन्द्रसागरजीके इन्दौरमें किये गये बहिष्कारके समय नवयुग संघके मंत्री होनेके नाते बहिष्कारके विरोधमें अखिल भारतीय स्तरपर आन्दोलन किया।

आपके दो भ्राता एवं दो भगिनी हैं।

आपको दि० जैन पाठशाला अजमेर छोड़ते समय एक मान-पत्र दिया गया था।

●

श्री शर्मनलालजी सरस

●

काव्य-साहित्यकी प्रतिभा लिये श्री 'सरस' एक आशु-कवि है। यद्यपि आपने किसी महाविद्यालयसे कोई उपाधि प्राप्त नही की परन्तु आपकी काव्य सृजन प्रतिभा नैर्सगिक और दैवीय ही स्वीकारनी होती है। निर्धन परिवारमें आर्थिक संघर्षसे जूझते आपका जन्म १४ जनवरी १९३७ में सकरार (झाँसी) उ० प्र० में स्व० श्री छक्कीलालजीके घर हुआ था। पिताजी गायक और कवि थे। वही विरासतमें मिली शक्ति प्रस्फुटित होकर आज भारतमें एक हास्य कविके रूपमें उभरे है।

विविध जैन पत्र पत्रिकाओंमें तथा प्रमुख सामाजिक पत्रों जैसे—नव जीवन, दैनिक जागरण (झाँसी), भास्कर, करुणादीप, 'जनदूत', बुन्देला आदिमें अभी तक पाँच सौसे अधिक हास्य व्यंग्य, धार्मिक एवं करुण-रससे ओत प्रोत कविताएँ एवं गीत प्रकाशित हो चुके हैं। इनके गीतोंको पढ़कर लगता है आपकी साहित्य साधनाका प्रासाद अलमारियों, पाण्डुलिपियों, सजे ड्राईग कक्षोंसे युक्त होगा परन्तु कच्ची मिट्टीकी बनी' 'पौर' में आपने अभी तकको साहित्य सर्जना की है। पहिले जीविकोपार्जनसे बाध्य होकर बादमें यह आपके जीवनकी पूजा बन गयी।

अभी तक छोटी बड़ी १०-१२ पुस्तकें स्वतंत्र रूपसे लिख चुके हैं जो इनकी स्फुट रचनाओंके संग्रह तथा पूजन और क्षेत्र-परिचय आदि हैं। कुछ प्रमुख पुस्तकें—'पपौरा-वैभव' आहार-गौरव, झाँसीका पानी, सरस सुधा, जनजागरण-गीत, नए चरण, जैनधर्मका द्वार, सोनागिरि-सुषमा, देवगढ़ दर्शन, तथा पार्श्वनाथ-पूजन आदि है। इसके अलावा हास्य और व्यंग्य पूर्ण कविताओंके कई संग्रह प्रकाशित हो चुके है जैसे—सरसके समोसे, साली, विवाह पुष्पांजलि आदि।

भारतवर्षके प्रमुख प्रमुख नगरों, बुन्देलखण्डके छोटे बड़े शहरों और ग्रामोंमें होने वाले कवि-सम्मेलन-की मंचसे आपने काफी ख्याति अर्जित की है। और बिना 'सरस' के मंच सूना सा लगता है। भारतके श्रेष्ठ हास्य-कवि जैसे 'काका हाथरसी' आदिसे घनिष्ठ परिचय है।

दहेज प्रथाके विरोधमें जितना अच्छा और प्रभावक आपने लिखा शायद ही किसीने लिखा हो। कई कवितायें आपकी इतनी प्रसिद्ध हुई कि उन्हें अन्य कवि-सम्मेलनोंमें आपके नामसे पढ़ते हैं।

आपने अपने ग्राम सकरारमें 'वीर वाचनालय' एव 'साहित्य सेवा संगम' की स्थापना की है।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा विशारद तक श्री वीरविद्यालय पपौरा (टीकमगढ) म० प्र० में हुई थी। आप अविवाहित रहे। जिसका कारण गरीबी और एक आँखमें खराबी ही था। उस रिक्तताकी पूर्ति आपने काव्य-साधना द्वारा पूरी की। आप १६ वर्षसे कविसम्मेलनोंके माध्यमसे समाजमें चेतना जागृति और जन-जागरणका कार्य कर रहे हैं। बुन्देली भाषामें आपने सैकडो लोक-गीतोंका प्रणयन किया।

बुन्देलखण्ड रामायण महासभा झाँसीने आपको 'हास्य शिरोमणि' की उपाधि तथा एक जिला कांग्रेस अधिवेशनमें भारत सरकारकी स्वास्थ्य मंत्री श्रीमती सुशीला नैय्यरने आपको 'आशु-कवि' की उपाधिसे अलंकृत किया था।

आप भावुक, सवेदनशील और सरल प्रकृतिके युवक हैं।

●

महता शिखरचन्द्रजी कोचर

●

बीकानेरके एक प्रतिष्ठित ओसवाल-जैन घरानेमें एक अगस्त १९१५ को मातु श्री तुलमादेवीने आपको जन्म दिया था। आपके पिता-महता जतनलालजी कोचर भूतपूर्व बीकानेर राज्यमें सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ कस्टम्स थे, और बड़े भाई महता-चम्पालालजी कोचर, राजस्थान बननेके पश्चात् कलेक्टर एण्ड डिस्ट्रिक्ट-मजिस्ट्रेटके पदसे तथा भाई महता कन्हैयालालजी विकास-अधिकारीके पदसे निवृत हुए हैं। सन् १९३२ में डूंगर कालेज, बीकानेरसे हाईस्कूल तथा उच्च शिक्षा हेतु काशी विश्व-विद्यालयमें प्रवेश लिया जहाँ से १९३६ में बी० ए० और १९३८ मे एल-एल० बी० की उपाधियाँ हासिल की। तीन वर्ष हाईकोर्ट—बीकानेरमें वकालात की तथा १९४१ से न्यायिक सेवामें प्रवेश किया और रजिस्ट्रार, हाईकोर्ट मुन्सिफ-मजिस्ट्रेट, सिटी-मजिस्ट्रेट, सिविल जज, सीनियर सिविल एण्ड एडीसनल सेशन्सजज, डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन्स जज आदि उत्तरदायित्व-पूर्ण पदोंपर कार्य करके १९७० में सेवासे अवकाश ग्रहण किया है। अवकाश ग्रहण करते समय आपका वेतन २२००) मासिक था। साहित्यिक एवं सामाजिक सेवाएँ—आपको बचपनसे ही लिखनेका शौक रहा। तथा पहिले हस्तलिखित पत्रिका 'ओसवाल-नवयुवक' में और बादमें वीर पुत्र, जन-क्रान्ति, 'विजयानन्द' राजस्थानी गौरव आदि विभिन्न पत्रिकाओंमें आपकी स्फुट-रचनाएँ निकलती रही।

अ० भा० विद्वत् सम्मेलन अलीगढ़ने १९४३ में 'हिन्दीसाहित्य शिरोमणि तथा साहित्याचार्यकी उपाधि दी थी। श्री शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीटयूट, बीकानेरने F. S. R. I. की उपाधि १९४५ में

दी थी। आप जैन पाठशाला बीकानेरके माननीय सदस्य भी रहे हैं। आपको एक पुत्र और तीन पुत्रियाँ हैं। अवकाश ग्रहण करनेके पश्चात् स्वाध्याय तथा साहित्य-सेवा कर रहे हैं।

आपने अपने जीवनमें अनेक उतार-चढ़ाव देखे हैं। आपके जीवनका दृष्टि कोण—आशावादी है। आपके कथनानुसार मनुष्य विषमसे विषम परिस्थितिमें धैर्य, लगन व अध्यवसायके द्वारा सफलता प्राप्त कर सकता है। देश विदेशके लोगोंसे आपका काफी सम्पर्क रहा और जाना है कि महापुरुषोंके जीवन-चरित्र 'प्रकाशस्तम्भ' के समान जीवनके लिए मार्ग दर्शक होते हैं। आपको नैतिकता तथा आध्यात्मिकताकी शक्ति-पर पूर्ण विश्वास है। यद्यपि आपने अपने जीविकोपार्जनके लिए कानूनकी शिक्षाका सहारा लिया परन्तु इससे साहित्य और इतिहासमें आपकी रुचि कम नहीं हुई।

आपने सार्वजनिक हितमें कई विशिष्ट संस्थाओंमें कार्य किया है। आप जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय समिति बीकानेरके उपाध्यक्ष एवं माननीय सदस्य रहे हैं।

●

पं० श्यामलालजी न्यायतीर्थ

●

आपका जन्म फाल्गुन कृष्णा १३ सं० १९६८ के दिन ग्राम लागौन जिला ललितपुरमें हुआ था। आपके पिताजीका नाम चौ० थोवनलालजी एवं माताजीका नाम श्रीमती पूना-बाई था।

जब आपकी उम्र मात्र ७ वर्षकी थी आपके पिताजीका देहावसान हैजेकी बीमारीके कारण हो गया था। परिणामत. आपके ताऊ श्री चौ० प्यारेलालजीकी संरक्षतामें आपका पालन पोषण हुआ।

आरंभिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करनेके बाद श्री सिं० हजारीलालजी लागौनकी प्रेरणासे श्री नाभिनदन दि० जैन पाठशाला बीना (इटावा) में पढ़ने गए। वहाँ आपने धर्मशास्त्र, न्याय, व्याकरणका अध्ययन आरंभ किया और स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीसे न्याय-तीर्थ, काव्यतीर्थ तथा धर्म शास्त्रीकी परीक्षाएँ उत्तम श्रेणीमें पास की।

छात्रावस्थासे ही आप वाक्पटु तथा भाषण देनेमें कुशल रहे। धार्मिक ग्रंथोका अध्ययन आपने मात्र परीक्षा देनेकी नियतम ही नहीं अपितु ज्ञानार्जनकी तीव्र आकाक्षासे किया। आपने अपना जीवन निर्वाह नौकरी करनेकी अपेक्षा व्यापार द्वारा अर्थ उपार्जन करके व्यतीत करना सर्वोत्तम समझा। परिणामतः आपने गोरेलाल श्यामलाल जैनके नामसे फर्मकी स्थापना की और अनाजका व्यापार करने लगे। आज भी इसी व्यापारमें संलग्न हैं।

आपके मात्र ३ पुत्रियाँ हुईं। समाज सेवाके क्षेत्रमें आपका योगदान स्तुत्य रहा है। पर्यूषण पर्व आदि धार्मिक प्रसगोंपर देशके अनेक जगहोंपर धर्मोपदेश द्वारा जिनवाणीके प्रचार प्रसारमें आपका महत्त्व पूर्ण योगदान है।

●

श्री शान्तिचन्द्रजी

●

पं० बिहारीलाल, जिन्होंने उर्दू भाषामें २४ पुस्तकें तथा उर्दू में अनुवादित ८ पुस्तकें तथा हिन्दी भाषामें 'बृहत् जैन शब्दार्णवकोष' लिखा, के आप सुपुत्र हैं। आपका जन्म बुलन्दशहर (उ० प्र०) में २४ अप्रैल १९०३ में श्रीमती सूर्यकला देवीके गर्भसे हुआ था। ४ वर्षकी अल्पायुमें आपकी माताजीका स्वर्गवास हो गया था।

सन् १९२८ से ४९ तक एक 'चैतन्य प्रिन्टिग प्रेस' चलाया तथा अब रिटायर्ड जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इसके पूर्व एक वर्ष आप अ० भा० दि० जैन परिषद्के मैनेजर रहे तथा कुछ दिन अमरोहा (मुरादाबाद) और बाराबंकीमें कार्य किया।

आपके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। दोनों पुत्र ऊँचे अधिकारी हैं।

सामाजिक कार्य : आपने १९३५-३८ में एक सार्वजनिक पुस्तकालय व वाचनालय स्वयं अपने खर्चेसे चलाया। तथा इसी समयमें 'प्रकाश' साप्ताहिक हिन्दी पत्र बिजनौरसे प्रकाशित करवाया। १८ वर्ष की आयुसे ही आप विविध विषयोंके लेख और छोटी-छोटी पुस्तिकायें प्रकाशित करवाते रहे। अन्य जैन अखबारों जैसे—जैन प्रदीप (उर्दू), 'पारस-ज्योति' 'दिगम्बर जैन', जैनमित्र, जैन सन्देश आदिमें अपनी रचनायें देते रहते हैं।

●

संगीत सरस्वती श्रीमती शरनरानीजी

●

सुश्री शरनरानी सुप्रसिद्ध सरोदवादिका हैं। उन्होंने इस दिशामें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्तकरके भारत का, विशेषतया जैन समाजका मस्तक ऊँचा किया। आपको पद्मश्री उपाधिसे सन् १९६८ में विभूषित किया गया।

समाजकी पुरातन रूढियोंसे विद्रोह करके आपने संगीत साधनाके कण्टकाकीर्ण पथपर पदार्पण किया। कत्थक और मणिपुरी नृत्यमें कुशलता प्राप्त करने बाद—सरोद वादनमें ऐसी निपुणता प्राप्त की कि शास्त्रीय वाद्य संगीतमें आप शीर्षस्थ हुईं।

सौभाग्यसे आपके पति सुल्तानसिंहजी बाकलीवाल भी कला विशेषज्ञ हैं जो मणिकाञ्चन सहयोग है। अब तो लोग शरनरानीको सरोदरानी भी कहने लगे हैं।

●

स्व० मास्टर शिखरचन्दजी साहित्यरत्न

जीवन परिचय : आपका जन्म सन् १९०८ में हुआ था। आपने अमित अध्यवसायसे शिक्षा प्राप्त की और त्रिलोकचन्द्र जैन हाईस्कूलमें शिक्षक रहे। हिन्दी भाषामें आपने काफी साहित्यका सृजन किया। आप लेखक, कवि, कहानीकार और सम्पादक सभी रूपोंमें गम्भीरता लिये रहे।

लेखक : आपका सर्वप्रथम लेख 'समाज को आवश्यकता' जैनमित्रमें सन् १९१६ में छपा था। अनन्तर वीर वीणा, चाँद, विद्यार्थी, मनोरमा, खंडेलवाल जैन हितेच्छु जैन गजटमें लेख लिखे। ग्रंथोंमें सूर : एक अध्ययन, कविवर भूधरदास और जैन शतक, हिन्दी नाट्य चिन्तन बासन्ती आदि हैं।

कहानीकारके रूपमें आपने चिन्तनप्रधान 'जीवनकी बूँदें कृति दी।

वीरमें मिस्टर एक्सके नामसे लिखा।

आप वीणा और खंडेलवाल जैन हितेच्छुमें सहायक सम्पादक रहे। आपने स्वतन्त्र अपना नवनिर्माण पत्र भी निकाला।

आपने नरेन्द्र साहित्य कुटीर प्रकाशनको जन्म जीवन दिया।

आपने वीर वाचनालयकी स्थापना की और उसके उपसभापति भी रहे। वीर वाचनालय और म० हिन्दी साहित्य समितिके तत्त्वावधानमें साहित्यिक कक्षायें भी विशारद साहित्यरत्नकी आपने वर्षों नि:शुल्क ली।

आपका स्वभाव अतीव शान्त था। आपके उच्च विचार अनुकरणीय थे।

आपने अपने पुत्रोंको सम्य शिक्षित उच्च पदाधिकारी बनाया।

आपमें एक ही बातकी कमी थी कि आप खुशामदसे दूर भागते थे। इस कारण आपका जीवन जटिल विषम रहा।

सन्मतिवाणीके यशस्वी सम्पादक पं० नाथूलालजीके शब्दोंमें श्री शिखर जैन मालवा प्रान्त और जैन समाजके उन साहित्यकारोंमें से हैं जिन्होंने हिन्दीमें स्थायी साहित्यका निर्माण कर राष्ट्रभाषाकी अपूर्व सेवा की है।

स्व० पांडे शिवचन्दजी

आप पंचायती मन्दिर देहली मस्जिद खजूरके भट्टारककी गद्दीपर बैठे। आप ज्योतिष वैद्यक मन्त्र-शास्त्रमें अतीव निपुण थे। प० पन्नालालजी अग्रवालके शब्दोंमें आपकी साहित्य-साधना काफी विस्तृत है। आपने २४ पुस्तकें लिखी हैं।

जिनमेंसे कुछके नाम ये है—१. पंचस्तोत्र सटीक, २ अलौकिक गणित, ३. इतिहास रत्नाकर, ४ गृहस्थचर्या, ५ जैनमत प्रबोधिनी, ६ धर्मप्रश्नोत्तर, ७. भक्ति पाठ, ८ लोकचर्चा वचनिका, ९. नीति-वाक्यामृत।

कतिपय ग्रन्थोंमें आपने रचनाकाल १९२०-२७ दिया इससे विदित होता है कि आप विक्रमकी बीसवीं सदीमें हुए।

श्री श्रेयान्सकुमारजी शास्त्री

आपका जन्म आजसे पचपन वर्ष पूर्व किरतपुर (बिजनौर) में हुआ था। बचपनसे ही आप बडे विद्या व्यसनी थे। आपने अमित अध्यवसायसे सिद्धान्त न्याय साहित्य शास्त्री जहाँ किया वहाँ बी० ए० और साहित्यरत्न भी किया। आप हिन्दी, संस्कृत, उर्दू व अँगरेजी भाषाओंके ज्ञाता है।

आप धर्मात्मा व स्वाध्यायी विद्वान् है। अध्यात्मसम्बन्धी आपकी अभिरुचि अधिक है, करणानुयोगके ग्रन्थ आपको विशषतया प्रिय हैं। आप वर्तमानमें हिन्दू इण्टर कॉलेज किरतपुरमे प्राध्यापक है। आपने पंचस्तोत्र बृहत्स्वयम्भू स्तोत्रका हिन्दीमे अनुवाद किया। आध्यात्मिक पाठ संग्रहका संकलन सम्पादन किया।

पंडितजी सादा जीवन उच्च विचारके केन्द्र बिन्दु है यह आपके किरतपुर, जम्बू महाविद्यालय सहारनपुर, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें शिक्षित होनेका सुस्पष्ट प्रभाव है।

प्राचार्य श्रीचन्द्रजी एम० ए०

जीवन परिचय . वर्तमानमे सान्दीपनि स्नातकोत्तर महाविद्यालय उज्जैनके प्राचार्य श्रीचन्द्रजी जैनका जन्म २२ जनवरी सन् १९११ मे ग्राम अमरा (झाँसी, उत्तरप्रदेशमे हुआ था। आपके परिवारमे दो भाई और दो बहने थी। आर्थिक दृष्टिसे परिवार अत्यन्त समृद्ध था। आप परवार जातिके भूषण है। ग्रामकी आरम्भिक शिक्षा समाप्त करनेके बाद-आप जैन-दर्शन साहित्यका अध्ययन करनेके लिये ऋषभदेव ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरमे आ गये। आपने महात्मा भगवानदीन, रमानाथजी व्याकरणाचार्य, बाबूलालजी शास्त्री, शिवमुखरायजीके से धार्मिक शिक्षा ली। आगरा विश्वविद्यालयसे बी० ए० किया। १९३७ मे नागपुर विश्वविद्यालयसे एम० ए० किया। आगरा विश्वविद्यालयसे एल० एल० बी० किया।

पारिवार परिचय : जब आपकी प्रथम पत्नी क्षमादेवी (सुपुत्री धर्मालंकार पंडित पन्नालालजी काव्यतीर्थ) का स्वर्गवास हो गया तब आपने सुशीलादेवीसे द्वितीय विवाह किया, जो आपके ही समान विदुषी महिला (एम० ए०, बी० एड०) हैं शासकीय सेवाकार्यमें रत हैं तथा तुलसी साहित्यमें लोक संस्कृति विषयपर पी० एच० डी० के लिये शोध ग्रन्थ लिख रही है। आपके एक सुपुत्र अजयकुमार जैन एम० एस-

सी (Ag) हैं वे शासकीय कृषि महाविद्यालय ग्वालियरमें सहायक प्राध्यापक हैं। आपने अपने परिवार-की प्रतिष्ठाको उतना बढ़ाया कि जितना शक्य और संभव है।

कार्य परिचय : जब समथरके राजकुमार इन्दौरके डेली कालेजमें पढ़ने गये तब आप उनके साथ निजी शिक्षकके रूपमें गये थे। इस समय आप ५०० रुपये मासिक पाते थे। सन् १९३१-३७ तक आप इसी प्रकार कार्य करते रहे। १९३७-४० तक यही समथरमें सिविलजज रहे और डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट रहे (१९४०-४८ तक) इसके बाद १९४७-६७ तक आप मध्यप्रदेशके महाविद्यालयोंमे व्याख्याता, सहायक प्राध्यापक और प्राध्यापक रहे। वर्तमानमें (१९६७ से ७५) आप उज्जैनमें है।

साहित्यिक कार्य : आप गत ३२ वर्षोंमे लगातार लिख रहे हैं और लगभग इतनी ही पुस्तकें लिख चुके हैं। आपकी सात पुस्तकें विभिन्न प्रदेशोंकी सरकारों द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। पुरस्कृत पुस्तकोंकी सूची निम्नलिखित है।

१ विन्ध्य भूमिकी लोक कथायें	भारत शासनद्वारा पुरस्कृत
२ भुइयाँ परे है ताल	विन्ध्य प्रदेश द्वारा ,,
३. विन्ध्यकी गौरव गाथायें	,, ,,
४. मध्यप्रदेशके मुसलमान कवि	,, ,,
५. विन्ध्यभूमिकी लोक कथायें	,, ,,
६. बघेलखण्डके आदिवासियोंके गीत	उत्तरप्रदेश शासन द्वारा ,,
७. जैन कथाओंका सांस्कृतिक अध्ययन	अ० भा० दिग० जैन विद्वत्परिषद द्वारा

आपकी अन्य पुस्तकोंमेंसे कुछके उल्लेखनीय नाम निम्नलिखित है—

१ काव्यमे पादप पुष्प, २ काव्यमें पशु-पक्षी, ३ विन्ध्यके लोक कवि, ४. हिन्दी पहेली साहित्य, ५ भारतीय कहावतें, ६ थिरकते पैर, ७ वन-वन घूमा वनजारा, ८ मेरी धरती मैया, ९. बुन्देली लोक कथायें, १० आदिवासियोंकी लोक कथायें, ११. वज्जुर है छाती किसानकी, १२ पतझर।

आपने बालसाहित्यकी दृष्टिसे १० १२ पुस्तके लिखी है और आठ पुस्तकें शीघ्र छपकर प्रकाशमे आनेवाली हैं। उनमेंसे कुछके नाम ये है—

१ हिन्दी जैन गीत काव्य . उद्भव और विकास।

२ जैन कथाओके नारी पात्र और उनका दायित्व।

३ भारतीय लोक कथाओका अध्ययन।

४. मध्यप्रदेशके आदिवासी और उनकी संस्कृति।

५. धरतीके धनंजय।

६. मेरे ११ निबन्ध।

पूर्वोल्लिखित पुस्तकोंके अतिरिक्त आपने समय-समयपर अनेक साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओंमें भी निबन्ध लिखे है। जिन अभिनन्दन ग्रन्थोमें आपने लिखा उनमेंसे कुछके नाम ये है—चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, सरसेठ हुकमचन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ, मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रन्थ, ऋषि आनन्द अभिनन्दन ग्रन्थ।

ज्ञातव्य निष्कर्ष . आप गाँधी विचारधारासे प्रभावित है और लगभग ४० वर्षोंसे खादी पहन रहे है। आपके जीवनका आदर्श है—सादा जीवन और उच्च विचार।

आप अपने जीवनमें स्वयं एक सस्था है। आप विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनकी अनेक समितियोंके सदस्य है। आप जैसे यशस्वी साहित्यकार सपूतको पाकर समग्र जैन समाज गौरवान्वित हुआ है।

●

स्व० पं० शोभारामजी शास्त्री

●

जीवन परिचय : पं० शोभारामजीका जन्म संवत् १९४८ में सोंरई में हुआ था। आपके पिता श्री नन्दूरामजी व माता हीराबाई थीं। जब बचपन में ही आपके पिताश्री की मृत्यु हो गई तब बड़े भाई अयोध्याप्रसाद संरक्षक बने। आपकी प्राथमिक शिक्षा सोंरई में हुई। प्रवेशिका परीक्षा जैन पाठशाला बंडा से, शास्त्री परीक्षा स्याद्वाद विद्यालय बनारस से उत्तीर्ण की। विक्रम सवत् १९७२ में फदालीलालजी जैन की पुत्री प्यारीबाई से आपका विवाह हुआ। आपके परिवारमें तीन पुत्रियाँ व दो पुत्र हुए; जिनमें सुदेशचन्द्रजी आपके सही अर्थोंमें उत्तराधिकारी कहे जा सकते है।

धर्म-समाज-सेवा : अध्ययनकी अधिक अभिलाषा रही। इसलिये आजीविका हेतु अध्यापन कार्य चुना। आपने एक से अधिक स्थानों पर अध्यापन कार्य किया। जिनमें महाराजपुर, सहारनपुर, देहली, महावीरजीके नाम उल्लेखनीय है। पपौरा, बीना क्षेत्र के सभापति रहे। राजिम नवापारा, जबेरा बाँदीमे पंचकल्याणक वेंदी प्रतिष्ठायें कराईं। गृहस्थ होते हुए भी क्षुल्लक सदृश आचरण लिये थे। विमलकुमारजी सोंरया के शब्दोंमें उन्हे अनेक धर्म ग्रन्थ कण्ठस्थ थे। उनकी कथनी और करनी में अन्तर न था। उन्हें अपनी मृत्यु का पूर्व आभास हो गया था। ८५ वर्ष की अवस्था में भी प्रतिदिन मंदिर जाते थे।

●

पं० शिखरचन्द्रजी

●

जीवन-परिचय पंडित शिखरचन्द्रजीका जन्म लुहारी (सागर) म० प्र० दिनाक ३१-३-४१ को हुआ था। आपके पिता श्री प० बालचन्द्रजी जैन थे। जो अपने समयके सम्मानित प्रतिष्ठाचार्य थे। आपने जैन पाठशाला कटरा मदिर सागरमें मोक्षशास्त्र तक पढा। बादमें लौकिक शिक्षाकी ओर ही आपकी अधिक अभिरुचि हुई। इसलिये मैट्रिक विद्या-इंजीनियरिंगकी की दिशा मे आगे बढे। आपके बडे भाई रतनचन्द्रजी संस्कृतके विद्वान् व जैन पडित है। शासकीय प्राध्यापक हैं।

विवाह-कार्य : आपका १२ मई १९६४ को गुलाबचन्द्रजी गोदरेकी सुपुत्री रेखा जैन से विवाह हुआ। रेखा जैन बी० ए० तक पढी हैं। आपने भिलाई स्टील प्लाटमें आजीविका हेतु कार्य किया और अभी भी अच्छे पदपर रहकर समुचित बेतनभोगी बनकर कार्य कर रहे है। आपके परिवारमें तीन भाई दो बहनें है। लगभग चौदह वर्ष से ही आप गद्य-पद्य व्यंग्य शैली में लिखने लगे। सरिता में रचना छपी। आकाश वाणी से भी प्रसारित हुई।

●

सौ० शांतिदेवीजी शास्त्री

•

जन्म · लागौन (जिला ललितपुर) उ० प्र० सन् । १९२८ जनवरी ।

पिता श्री मंगलसेनजी ।

प्रारम्भिक शिक्षाके उपरान्त १९४१ में पं० भैया शास्त्री काव्यतीर्थके साथ परिणय सम्बन्ध । पति की इच्छासे अध्ययनको आगे बढ़ाया । 'हिन्दी प्रभाकर' तथा आयुर्वेद शास्त्री (१९४६) उत्तीर्ण की । धर्म शास्त्रमें भी सर्वार्थसिद्धि तकका मनन चिन्तन । प्रथमानुयोगके ग्रंथोंका अच्छा स्वाध्याय ।

सेवायें . १९४४-४७ में दि० जैन कन्या पाठशाला फिरोजपुर (केन्ट) पंजाब तथा १९५०-५१ में जैन पाठशाला दौलतगंज लश्करमें धर्म अध्यापन कार्य । दि० जैन महिला जागरण, महिलादर्श आदि मासिक पत्रोंका समय-समय पर सामयिक लेख लिखना ।

सम्प्रति . अपने पतिके साथ शास्त्री चिकित्सा कार्य । रात्रिमें महिला समाजमें शास्त्र प्रवचन एवं स्वाध्याय ।

•

सिंघई श्रीनन्दनकुमारजी

•

सिंघई श्री नन्दनकुमारजीका जन्म १ जनवरी १९३७ को बेशरा (सागर) उत्तर प्रदेशमें हुआ । आपके पिता श्री सुन्दर-लालजी थे, जो धर्मात्मा थे व गजरथ चलाकर सिंघई बने थे । आपकी माता राजमतीबाई हैं । आपके पिताजीका बाल्यकालमें स्वर्गवास हो गया था अतएव पितृ-प्रेमसे वंचित रहे ।

आपने अर्थशास्त्र विषयमें एम० ए० किया और वर्णी जैन इण्टर कॉलेज ललितपुरमें अध्यापक रहे । अनन्तर नाप तौल विभागमें लिपिक रहे । आप सन् १९६३ से महावीर दिगम्बर जैन विद्यालय साढूमलमें अध्यापन कार्य कर रहे हैं । सामाजिक सस्थाओंमें कार्य करनेसे आपका धार्मिक ज्ञान भी बढा है और रही-सही कमी आप बुन्देलखण्ड स्याद्वाद परिषद् व विद्वत्परिषद् एवं शास्त्रि परिषद्के सदस्य बनकर पूर्ण करनेके विचारमें हैं ।

आपका विवाह सन् १९५५ में श्रीमती निशादेवीके साथ हुआ । आपके परिवारमें चार भाई, दो बहनें, तीन पुत्र व तीन पुत्रियाँ हैं । आजीविकाके उपार्जनके लिए आपने बीमा एजेण्टका भी काम किया । धार्मिक-सामाजिक कार्योंमें आप अग्रसर रहे । आप प्राचीन मन्दिर मूर्तियोंके संरक्षणके लिए जितना उचित समझते हैं उनकी उपेक्षा करके नवीन निर्माणको अनावश्यक अपव्यय मानते हैं ।

•

स्व० डॉ० हीरालालजी

डॉ० हीरालाल जीका जन्म गागई ग्राम (नरसिंहपुर) मध्यप्रदेशमें अप्रैल सन् १८९९ मे हुआ था। विशेष शिक्षा प्राप्त करनेके लिए आप इलाहाबाद आए और १९२० में बी० ए० किया तथा सन् १९२२ में संस्कृत विषय लेकर एम० ए० किया। अनन्तर प्रथम श्रेणीमे एल० एल० बी० भी किया। जैन छात्रावासमें जब आप डॉ० लक्ष्मीचन्द्र जी और बैरिस्टर जमना प्रसाद जीके सम्पर्कमें आये तब आप लोगोंके सत्प्रयत्नसे छात्रावासमें एक नवीन जीवनका श्रीगणेश हुआ। जैन भ्रातृसघ, जैन होस्टल, जैन पुस्तकालय, जैन चैत्यालय शीघ्र ही अपने नगरमे आकर्षकके केन्द्र बिन्दु बन गये।

कार्य-क्षेत्र

जब यू० पी० के शिक्षा विभागने आपको १०० रु० मासिक छात्रवृत्ति देकर सस्कृत विभागमें शोधकार्य-हेतु आमन्त्रित किया तब आपने जैनसाहित्य विषय चुना और तीन वर्षों तक जैनसाहित्यके इतिहासकी रूप-रेखा पर गम्भीरतापूर्वक मनन-चिन्तन किया। चूँकि जैनसाहित्य बहुभागमे प्राकृत भाषामे है, अतएव आपने भिन्न-भिन्न प्राकृत भाषाओंका भी अध्ययन किया।

सन् १९२३ में बैरिस्टर जुगमदिरलाल जीकी प्रेरणासे और ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जीके सहयोगसे आपने गोम्मटसारकी टीकाके त्रुटित भागकी पूर्ति की अन्यथा यह ग्रन्थ अजितप्रसाद जी एडवोकेट प्रकाशमे ही नही ला पाते। जब प० नाथूराम जी प्रेमीने आपसे श्रवणबेलगोलाके सभी शिला लेखोंका देवनागरीम अनुवाद सग्रह करनेका अनुरोध किया तब आपने जैन शिला-लेख भाग १ को जन्म और जीवन दिया। जब आपने संस्कृत-प्राकृतके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूची तैयार करनेका निश्चय किया तब कारजाके जैन-भडारोका सूक्ष्म रूपसे निरीक्षण किया। तीन-चार हजार ग्रन्थोंकी सूची तैयार की, जिनमे दस-बारह ग्रन्थ ऐसे भी थे जिनका विद्वानोने नाम तक नहीं सुना था। और जो भाषा-शैलीकी दृष्टिसे अतीव महत्त्वपूर्ण थे। आपने अपने निबन्धोंमें हिन्दीकी जड जैनसाहित्य सिद्ध की। अपभ्रंश भाषा पर तो आपका असाधारण अधिकार था। आपके प्रयत्नोको विदेशी विद्वानो तकने सराहा।

अपभ्रंश साहित्य-सेवा

जब आप किंग एडवर्ड कालेज अमरावतीमें संस्कृतके प्राध्यापक नियुक्त हुए तब ही आपने कारंजाके उदारमना सेठ गोपाल अम्बादास जी चँवरेकी प्रवृत्ति साहित्य प्रकाशनकी ओर की। आपके प्रयाससे कारजा जैन सीरीज और देवेन्द्रकीर्ति जैन सीरीज ग्रन्थमाला स्थापित हुई। इनसे आपके सम्पादकत्वमें णायकुमार चरिउ, करकण्डु चरिउ, सावयधम्म दोहा और पाहुड दोहा आदि ग्रन्थ निकले। आपके निर्देशसे श्री पी० एल० वैद्यने भी महापुराण (पुष्पदन्त कृत) सम्पादित कर प्रकाशित कराया था।

परिषद्‌की प्रोत्साहन

आप अपने धर्म और समाजको उन्नत देखनेके इच्छुक थे। अतएव आपने अपनी धार्मिक-सामाजिक-

साहित्यिक सेवाओंको अ० भा० दि० जैन परिषद् द्वारा भी प्रकट किया । परिषद्का खण्डवामें जो अधिवेशन हुआ उसके अध्यक्ष आप ही थे । आपकी अभूतपूर्व साहित्यिक उपलब्धियोंको लक्ष्य कर (बैरिस्टर चम्पतराय जी द्वारा संस्थापित) सोहनराय बाँकेराय जैन एकाडमी ऑफ विस्डम एण्ड कल्चरने आपको डॉक्टर ऑफ लाकी उपाधि देकर सम्मानित किया था ।

धवल सिद्धान्तोंका सम्पादन

सन् १९३६ में परिषद्के दशवें अधिवेशनके समय, जब बैरिस्टर जमनाप्रसाद जीकी प्रेरणासे श्रीमन्त सेठ लक्ष्मीचन्द्र जीने साहित्यके उद्धारके लिए दश हजार रुपयोंके दानकी घोषणा की और आपसे धवल सिद्धान्तोका सम्पादन करानेका सहयोग चाहा तो आपने सहर्ष स्वीकार किया । आप अपने कार्यमें ऐसे तन्मय हुए कि श्रीमती जीकी मृत्यु और द्वितीय विवाहकी बात आप विचार ही नही सके । आपने पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री और पं० हीरालाल जी सिद्धान्त शास्त्रीके सहयोगसे धवलाके सभी भाग पूर्ण किये ।

जैनसाहित्य समुद्र पारगामी

डॉ० सा० का दिगम्बर साहित्यका जितना बढ़ा-चढ़ा ज्ञान था उतना श्वेताम्बर साहित्यका भी ज्ञान था । आपने एकसे अधिक निबन्धोंमें जैनसाहित्य, जैनसिद्धान्त, जैनसमाज, जैनइतिहास, जैनकला, जैनसंस्कृति विषयक बातें कही । मध्यप्रदेश शासन साहित्य परिषद् भोपालके निमन्त्रणको स्वीकार कर आपने जैनधर्मका उद्भव और विकास, जैनसाहित्य, जैनदर्शन, जैनकला पर जो सारगर्भित भाषण दिये थे, वे 'भारतीय संस्कृतिको जैनधर्मका योगदान' शीर्षक ग्रन्थमें संकलित हैं । आपका यह ग्रन्थ अतीव उच्च-कोटिका तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । आपका १५ फरवरी १९७३ को स्वर्गवास हो गया है ।

आपने स्वयं व प्रेरणा देकर लगभग तीस ग्रन्थोंका सृजन किया ।

●

कविवर स्व० हरिप्रसादजी 'हरि'

●

वाणी पुत्र हरिप्रसाद 'हरि' एक ऐसी नदी है जिसकी कभी मौत नही होती । वे सरस्वतीके वरद पुत्र थे । ललितपुर (बुन्देलखण्ड) प्रतिवर्ष १४ सितम्बरको जिनकी स्मृतिमे 'हिन्दी दिवस' मनाकर एक वृहत कविसम्मेलनके आयोजनसे उन्हे हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता है ।

आपका जन्म चैत्र कृष्णा १३ सं० १९७९ में ग्राम पाली (झांसी) में हुआ था और जीवनकी ४६ वर्षकी अल्पकालीन अवस्थामे युगोंकी उपलब्धि प्राप्त कर ली थी । यही अवधि उनके लिए गतको गतिमान बनाकर गतिकी ओर अग्रसर होना रहा है । जिनके लिए प्रेमकी बात ही गति थी । और प्रेमकी प्रतिष्ठा ही जीवन । स्याही किसीको स्याह करने नही वरन् सांवलेके अनुरूप (कृष्णके मनुसर) अनुरूपता लानेके लिए प्रयोगकी—इस प्रकार उनके काव्यका हर अक्षर प्रेमकी बात करता है ।

काव्य सृजन : राजुल, रत्नावली (भारतीय ज्ञानपीठसे), देवगढ़, जैन ज्योति, बाहुबलि झनकार तथा दरश व्रत नाटक (वामके मोती) आपके प्रकाशित काव्य है। तथा महावीर (महाकाव्य), स्वप्न (खण्ड काव्य), वियोगिनी (बुन्देली गीत संग्रह) सिरहन और मौलिक गीत आपकी अप्रकाशित काव्य कृतियाँ हैं।

काव्य रचना एवं भाषा : के विषयमें आचार्य नन्ददुलारेजीके शब्दोंमें "जहाँ हरिजीके काव्यमें चरित्र रचनामें एक अकाट्य निष्ठाके साथ एक अकल्पमीय मृदुलता है, उसी प्रकार भाषामे भी समुचित सौष्ठव है। लगता है—छोटी सी परिधिमें बृहत् उपादान उपस्थित किये हैं जो चावलके दाने पर गीताके श्लोक उरेद देनेकी भाँति कष्ट साध्य और सूक्ष्म है।"

कृतित्व पर एक विहंगम दृष्टि

हिन्दी सागरमें तुम्हारी वियोगिनी 'रत्ना' और 'राजुल' की नौकायें बेसहारे पडी हैं। आपने इतिहासमें भूले हुए पृष्ठोंका मूल्यांकन किया। रत्नावली जैसी सिद्ध कृतिसे उक्त तथ्य उद्घाटित हुआ। हरिजीने वियोगको प्रेमका प्रतीक माना और काव्य साधनाका अंग बनाया (राजुल)। करुण भावनाओं और भावुक अनुभूतियोंसे भरे कोमल प्रतीतियोंके धनी हरिजीका काव्य उनके जीवनकी प्रति-छाया है। 'देवगढ़' प्रकृति चित्रणमे विश्वकी श्रेष्ठतम रचनाओंमेंसे है जिसमें विशुद्ध कलाकी बन्दना है। उदाहरण : प्रश्न है—

देवत्व, सुरभि किन उद्यानों में ?
उत्तर है—धरा के पाषाणों में।

हरिजीकी जितनी कृति है, उतनी ही उनकी सृष्टि हैं। उनके काव्य जगतमें राजुल, रत्ना, महावीर आदि भाव हैं जो उसमें स्पन्दन कर रहे हैं। डॉ० वृन्दावनलाल वर्मा जीके शब्दोंमें—'कविवर श्री हरिप्रसाद-जी 'हरि' का हमें अभिमान है। पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी एवं यशपाल जैन जैसे मूर्धन्य साहित्यकार 'हरिजी' के निकट प्रेमी थे। आपके बड़े सुपुत्र श्री विजय पाली वाले एक होनहार तरुण-कवि है। जिन्होंने आप पर शोध प्रबंध लिखकर पी-एच० डी० की सम्माननीय उपाधि प्राप्त की।

●

श्री हीरालालजी

●

समाजसेवी युवा कार्यकर्ता श्री हीरालालजीका जन्म सन् १९३३ में नवम्बर मासमें बण्डा तहसीलके दलपतपुर ग्राममें हुआ था। आप दिगम्बर जैन गोलापूर्व समाजके होनहार युवक है।

आपके पिता श्री परसादीलालजी जितने लोकप्रिय थे उनसे कही अधिक आपके अग्रज पंडित बाबूलालजी आकुल है। आप वर्तमानमें सुदर्शन प्रेसके संचालक है। आपने दिगम्बर जैन सस्कृत महाविद्यालय सागरसे विशारदकी परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके बाद ही व्यवसायमे लग गये।

आप एक परिश्रमी लगनशील सामाजिक कार्यकर्ता हैं। आप अखिल भारतवर्षीय दिग० जैन विद्वत्परिषदके सदस्य हैं और स्थानीय वीर सेवा संघके मंत्री हैं।

आपकी गति-विधियोंसे आपका भविष्य अतीव उज्ज्वल लगता है।

●

स्व० नितान्त निस्पृह लाला हुकमचन्द्रजी

लाला हुकमचन्द्रजी मूलत: गोहानाके निवासी थे । उन्होंने दिल्लीमें आकर सर्राफीका व्यवसाय किया और लाखों रुपये कमाये। प्रौढ होते ही अर्थ और कामको उपेक्षा करके धर्म और मोक्षकी दिशामें बढ़नेका उपक्रम करने लगे ।

आपने अपनी सभी सम्पत्ति पाँच भागोंमें विभाजित कर ली । चार भाग पुत्रोंको दे दिये । एक भाग अपने लिये रख लिया । उससे दरियागंज दिल्लीमें चैत्यालय बनवाया । आप जीवन पर्यन्त अपनी आमदनीसे ही काम चलाते रहे, किसीसे कुछ भी फल तक नही चाहा । पर दूसरोंके लिये अपनी आमदनीके फल सर्वदा खिलाते रहे । आपके जीवनकी एक घटना प्रस्तुत प्रसंगको उभार देती है—

सन् १९२४ में—जबलपुरमें पूज्य श्री गणेशप्रसादजी वर्णी और पूज्य बाबा भागीरथजी वर्णीका चातुर्मास था । आपके प्रवचनोंसे लाभ लेनेके लिये लालाजी भी जैन छात्रावासमें ठहरे थे । जब आप लार्डगंजके मन्दिरसे दर्शन करके लौटते थे तब छात्रावासके विद्यार्थियोंके लिये अपने साग भाजीके साथ फल भी ले आते थे और उन्हें खिलाकर अतीव आनन्दित होते थे ।

पुत्र-पौत्रोंसे भरे पूरे कुटुम्बमें आपकी स्थिति जलमें भिन्न कमल सरीखी थी । इसलिये आपने चैत्यालयमें रहते हुए सन्यास पूर्वक प्राणोंका विसर्जन किया था । पं० हीरालालजी सिद्धान्त शास्त्रीके शब्दोंमें आपका दिव्य भव्य जीवन न केवल उनके परिवारके लिये ही बल्कि समग्र समाजके लिये आदर्श बना है ।

स्व० पं० हजारीलालजी

पंडित हजारीलालजी परसौन (सागर) के निवासी थे । उनकी धार्मिक शिक्षा सागर पाठशालामें हुई थी । आपने यहाँ केवल न्यायतीर्थकी परीक्षा ही पास नही की बल्कि अपने अध्ययन-अनुभव और अभ्यासको काफी गति-मति दी । आपकी साहित्यिक सेवा आज भी प्रेरणास्पद है ।

आपने पंचाध्यायी और सागारधर्मामृतके अनुवादक पंडित प्रवर देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्रीको उतना सहयोग दिया था कि जितना भी शक्य और सम्भव था । इसके सिवाय आपने स्वतन्त्र रूपसे आलापपद्धतिका भी अनुवाद किया था, जिसे सम्पादित करके पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री बनारसने प्रकाशित कराया था । प० फूलचन्द्रजीके शब्दोंमें आपका यह अनुवाद आज भी अपनी गौरव-गरिमा लिये हुए है ।

कहा जाता है कि आप कविता भी करते थे । खेद है कि आज आप हमारे बीचमें नही है ।

स्व० सर सेठ हुकुमचन्द्र जी

"सुनो साब, शास्त्रोंकी बात तो ये पंडित लोग जानें, मैं तो म्हारे अणुभवकी बात कहूँ छूँ—दान देनेसे पैसा कदै (कभी) घटता नाहीं ।"

ये वाक्य हैं स्व० सर सेठ हुकमचन्द्रजी इन्दौरके, जो उन्होंने अपने जन्म-दिवस पर (आषाढ़ शुक्ला

द्वितीया) २५००० रुपयोंके दानकी घोषणा करनेके बाद कहे थे। जब गणेशप्रसादजी वर्णीने इतने ही दानके हेतु अन्य सागरके श्रीमानोंका आह्वान किया तो दूसरे ही दिन इतना रुपया और आ गया।

पंडित हीरालालजी सिद्धान्तशास्त्री ब्यावरके शब्दोंमें सर सेठ धार्मिक-सामाजिक कार्य करते हुए भी व्यापार कर लेते थे। सर सेठ यों तो स्वयं ही एक संस्था थे पर उन्होंने अपने कार्य क्षेत्रमें इन्द्रपुरीमें जो आठ-दस संस्थायें स्थापित की हैं वे आज भी उनकी दूरदर्शिता और दानवीरताकी कथायें कह रही हैं।

सर सेठ साहबने दिगम्बर जैन संस्कृतिके प्रचार और प्रसारके लिये उतना प्रयत्न किया कि जितना भी उनसे शक्य और सम्भव था। वे जैन समाज के अभिषेक विहीन सम्राट् थे। वे विद्वानोंके अतीव अनुरागी थे। उनके इन्द्रभवन पर आयोजित धर्म सभाओंमें पंडितोंका समूह उपस्थित रहता था।

सर सेठ धर्म-अर्थ-काम और मोक्षके केन्द्र थे। उन्होंने अपने जीवन कालमें पुरुषार्थसे वह सब कुछ किया जो वे कर सकते थे। उनका आदर्श जीवनचरित्र आज भी हम सभीके लिये पठनीय-मननीय अनुकरणीय बना है।

●

●

आपका जन्म ११ मई १९१४ को ललितपुर (उ० प्र०) में श्री रामप्रसादजीके यहाँ हुआ था। आप प्रारम्भसे ही अत्यन्त प्रतिभाशाली रहे है। प्राथमिक शिक्षा ललितपुरमें प्राप्त करनेके पश्चात् आपने १९२८–३६ तक सर सेठ हुकमचन्द जैन महाविद्यालय इन्दौरमें जैनसिद्धान्तके मर्मज्ञ प० वशीधरजी न्यायालंकारसे सिद्धान्त, सुप्रसिद्ध दार्शनिक प० जीवन्धरजीसे दर्शनशास्त्र तथा धुरन्धर विद्वान् पं० शम्भुनाथजी त्रिपाठीसे व्याकरण और साहित्यका गम्भीर अध्ययनकर शास्त्री और न्यायतीर्थकी परीक्षायें उत्तीर्ण की। विद्यालय-जीवनमें आप प्रथम श्रेणी प्राप्त करते रहे तथा भाषण, लेखन और कवितामें दक्षता प्राप्त की।

१९३४ में 'साहित्यरत्न' उपाधि-पत्र राष्ट्रपिता महात्मा गान्धीके कर-कमलोंसे प्राप्तकर साहित्य सेवाकी जो प्रेरणा और आशीर्वाद दिया था, उसका प्रभाव आपके जीवनमें परिलक्षित हुआ। बापूकी मांगलिक प्रेरणाके फलस्वरूप आपको अनेकों पुरस्कार, रजत एवं स्वर्णपदक प्राप्त हुए।

सर्वप्रथम आपने मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति विद्यापीठ इन्दौरमें अवैतनिक अध्यापन तथा समितिकी मुख्य मासिक पत्रिका "वीणा" के सम्पादक मण्डलमें कार्य किया। सन् १९३६ में सूरत (गुजरात) में श्री पं० परमेष्ठीदासजीके सहयोगीके रूपमें हिन्दी शिक्षाका प्रचार एवं प्रसार किया जिसकी दक्षिण हिन्दी प्रचार सभा मद्रास एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागने अत्यन्त सराहना की और आप इसके स्थायी सदस्य बना लिये गये।

दो वर्ष तक जैन स्कूल दरियागंज देहलीमें कार्य करनेके पश्चात् सन् १९३८ में "हीरालाल जैन-उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सदरबाजार देहलीमें उच्च कक्षाओंको हिन्दी एवं नैतिक शिक्षा देने लगे। आप जन्मजात एक आदर्श शिक्षक हैं। एम० ए० तकके छात्रोंको नैतिक शिक्षाकी प्रेरणा देकर परिषद् परीक्षा बोर्डकी जैनधर्मकी परीक्षाओंके लिए तैयारी कराते हैं।

साहित्य-सेवा

इस क्षेत्रमें भी आपने बडा कार्य किया। उर्दू पत्र 'जैनप्रचारक' को हिन्दीमें करके आपने १० वर्ष तक उसका सम्पादन किया तथा कई महत्त्वपूर्ण विशेषाक निकाले। अनेक ग्रन्थोंकी उच्चकोटिकी भूमिकाएँ लिखकर जनताको सुलभ बनाया। कई ग्रन्थोंका सम्पादन भी किया।

भारतीय संस्कृति और धर्मोंके आप अच्छे ज्ञाता एवं सुयोग्य वक्ता हैं। आपके विद्वत्तापूर्ण भाषण एव प्रतिदिन रात्रिमें शास्त्र-प्रवचन आपकी प्रतिभाका परिणाम है।

आपकी विद्वत्तासे प्रभावित होकर समाजने बैरिस्टर चम्पतरायकी उपस्थितिमें विद्याभूषणकी उपाधि दी।

आप जैन विद्वत्समिति तथा जैनसिद्धान्त ग्रन्थमाला देहलीके अध्यक्ष, जैनपरिषद् परीक्षा बोर्डके उपमंत्री, भा० जैन विद्वत्परिषद् आदि अनेक संस्थाओंके कार्यकारिणीके सदस्य हैं।

राजकीय सम्मान

आपको ५ सितम्बर१९७२ में शिक्षक दिवस पर देहली प्रशासनकी ओरसे विज्ञान भवन, नई दिल्ली मे केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री नरूल हसन साहबने आपको राजकीय सम्मानसे सम्मानित किया जो विद्वत् समाजके लिए अत्यन्त गौरवकी बात है। इस प्रकार आपका जीवन शिक्षा, साहित्य और समाजकी सेवामें निरत है।

●

डा० हरीन्द्रभूषण जी साहित्याचार्य

●

मन और शरीर दोनोंसे सौम्य, मन वचन और कर्म तीनोंसे एक रूप छोटे-बडे, गरीब-अमीर, सजातीय-विजातीय, विद्वान् और मति रंक सभी पुरुषोसे समान रूपसे उन्मुक्त हृदयमें मिलने वाले डा० हरीन्द्र भूषणका जन्म १६ अगस्त १९२१ में सागर जिलेके नरयावली नामक स्थानमें हुआ था।

आपके जन्मके समय आपके पिताजी मालगुजार थे। नरयावली राम छापरी एवं कन्हैरा गाँव उनकी मालगुजारीमें थे। आप करीब छै वर्षके थे जब मातुश्रीका स्वर्गवास हो गया था।

भारत विख्यात प्रात.स्मरणीय श्रीमान् गणेशप्रसाद जी वर्णीकी सत्संगतिसे आपके पिताजीको असार संसारके प्रति विरक्ति हो गयी। जब आप १४-१५ वर्षके ही थे तभी आपके पिताश्री घर-बार छोड ब्रह्मचारी बनकर इन्दौरके दिगम्बर जैन उदासीन आश्रममें आ गए।

यद्यपि कि पिताजीके इस सुकृत्यसे आप माता-पिता दोनोंके स्नेहसे वंचित हो गए तथापि लोकोपकारका विचारकर पिताजीके उस गृह त्यागसे आपको अपार हर्ष हुआ। आपने अपने अध्ययनका क्रम जारी

रेखा उस समय शायद आप श्री सत्तर्क सुधा तरंगिणी दिगम्बर जैन पाठशालामें विशारदके छात्र थे। आप अध्ययनके साथ-साथ ट्यूसन भी करते थे। १९३९ में न्याय, व्याकरण, साहित्य और आयुर्वेदादि विषयोंसे विशारदकी परीक्षा उत्तीर्ण कर श्री स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें प्रविष्ट हुए। वहाँसे आपने सिद्धान्त-शास्त्री, व्याकरण शास्त्री, मैट्रिक तथा इन्टरकी परीक्षाएँ अच्छे अंकोंमें उत्तीर्ण की। उसी समय आपने टाइप तथा चित्रकलाका अभ्यास भी किया। तत्पश्चात् बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयसे आपने बी० ए० किया। बी० ए० करनेके बाद सागर विश्वविद्यालयसे आपने प्रथम श्रेणीमे संस्कृतसे एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। उस समय आप श्री गणेश विद्यालय सागर में पार्ट-टाइम अध्यापन कार्य भी करते थे। एम० ए० करनेके उपरान्त आपने सागर विश्वविद्यालयसे ही डा० रामजी उपाध्यायके निर्देशनमे पी०-एच० डी० किया।

६ फरवरी १९४५ में आपका विवाह दमोह निवासी श्री दुलीचन्द जी चौधरीकी सुपुत्री केशरदेवी जैनके साथ हो गया। विवाहके तीन वर्ष पहले सन् बयालीसके राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलनमें सक्रिय भाग लेनेके कारण आपके नाम गिरफ्तारीका वारन्ट निकला। आपको छै माह तक कारावासमें रहना पड़ा।

जेलसे निकलनेके पश्चात् आप एक "बम षड्यन्त्र" में सम्मिलित हो गए। उस षड्यन्त्रका पता चल गया और उसके कारण आपको बनारस छोड़कर भाग जाना पडा। इसके बाद १९४७ मे कॉंग्रेस शासन हो जानेके कारण आप पुनः स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस एव बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय में अध्ययन करने लगे थे।

शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त आप सागर विश्वविद्यालयमें व्याख्याता हो गए। दूसरे ही वर्ष आप उसे छोड़कर ललितपुर चले आए और वहाँके वर्णी जैन इन्टर कालेजमें अध्यापन कार्य करते रहे। छै वर्षों तक उक्त संस्थामें सेवा करनेके उपरान्त आप एक वर्ष श्री महरानी लाल कुवरि डिग्री कालेज बलरामपुरमें व्याख्याताके पद पर रहे उसके बाद आप विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनमें संस्कृतके व्याख्याता बनकर पहुँचे। आज भी आप वहीं पर प्राध्यापकके रूपमें पदासीन हैं।

आपकी लेखनीका विषय आरम्भसे ही शोध निबन्धोका लेखन रहा। आपकी रचनाएँ विक्रम, साग-रिका आदि उच्च श्रेणीकी शोध पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती हैं। आपके कालिदाससे सम्बन्धित लगभग सात शोध निबन्ध एवं संस्कृत साहित्य तथा जैनधर्मसे सम्बन्धित लगभग १५ शोध निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। आपने संस्कृत गद्य कलिका नामक पुस्तकको रचना की जो सागर विश्वविद्यालयके बी० ए० प्रथम वर्षकी पाठ्य पुस्तकके रूप चलती हैं।

आपकी भाषा अत्यन्त सरस और सारगर्भित हैं। शैली रोचक है, पाठक पाठोंसे ऊब नही सकता यह उस रचनाकी प्रमुख विशिष्टता है।

लेखनीके साथ-साथ आपने तूलिका को भी अपने हाथोंकी कठपुतली बनाया। आरम्भसे ही चित्रकला आपका सुरुचि पूर्ण विषय था। जब आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके बी० ए० के छात्र थे उस समय भारतके प्रसिद्ध चित्रकार श्री राणदा उकीलके 'उकील्स स्कूल आफ आर्ट्स' में आप चित्रकलाकी शिक्षा लेते रहे। आपने उस समय अनेक सुन्दर चित्रोंका सृजन किया किन्तु बादमें उस कलाका विकास जितना आप चाहते थे नही हो पाया।

आप अखिल भारतीय कालिदास परिषद्के सन् ६० से सदस्य हैं। इस संस्थामें प्रविष्ट होकर संस्कृत साहित्य तथा कालिदास साहित्यके प्रचारमें आपने महत्त्वपूर्ण प्रयास किए। चार वर्षों तक आप बोर्ड आफ स्टडीज इन संस्कृत–विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनके भी सदस्य रहे। सन् ६६ से व्यवस्था-पिका सभा (सीनेट) विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैनके सदस्य हैं।

आपने अब तक अनेक सामाजिक कार्य किए। जैन शिक्षण समिति उज्जैनकी स्थापनाका कार्य वस्तुत: प्रशंसनीय है। १९६५ में आपने उक्त समितिकी स्थापना की। इस संस्थाका उद्देश्य उज्जैनके विश्वविद्यालय तथा अन्य शिक्षण संस्थाओंमें अध्ययनरत निर्धन छात्रोंकी आर्थिक सहायताका प्रबन्ध करना तथा उनमें जैनधर्मके प्रति रुचि उत्पन्न करना है।

आपके निर्देशनमें अब तक लगभग एक दर्जन छात्र पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर चुके हैं। उक्त छात्रोंमें से दो छात्रोंने जैनधर्म पर अनुसंधान कार्य किया है।

इस तरहसे आप एक उच्चकोटिके विद्वान्, चोटीके साहित्यकार, मर्मस्पर्शी चित्रकार, सुयोग्य शिक्षक, कर्मठ समाज सुधारक और देश-प्रेमके दीवानेके रूपमें हमारे समाजके ही नही अपितु देशके गौरव हैं।

●

धर्मालंकार पं० हेमचन्द्रजी 'कौंदेय'

●

आगरा अन्तर्गत ग्राम चावली अनेक विद्वानोंकी जन्मभूमि रही है। यहाँ पं० नरसिंह दासजी शास्त्री 'जैनधर्म दिवाकर' एक अच्छे प्रतिष्ठाचार्य हो गये है। पं० हेमचन्द्रजी आपके होनहार पुत्र हैं जिन्होंने जनसाधारणके बोधके लिए साहित्य निर्माणकी उत्कट भावनाको साकार रूप दिया। आप मुनिभक्त हैं। आपका जन्म असोज वदी ६ सं० १९७३ में माँ श्रीमती फूलमाला देवीकी कोखसे हुआ था।

प्रारम्भिक शिक्षा जैन जम्बू विद्यालय सहारनपुरमें तथा श्रद्धेय पं० कैलाशचन्दजी शास्त्रीके शिष्यत्वमें स्याद्वाद महाविद्यालय बनारसमें जैनदर्शनशास्त्री, न्यायतीर्थ, काव्यतीर्थ उपाधि प्राप्त कर आगरा विश्वविद्यालयसे एम० ए० और पंजाबकी 'प्रभाकर' परीक्षा उत्तीर्ण की।

अध्ययन समाप्त कर जैन हाई स्कूल फिरोजपुर छावनीमें २ वर्ष (१९३८-३९) तथा राजकीय टी० जैन हायर सेकण्डरी स्कूल अजमेरमें ३२ वर्ष (१९४०–७२) तक शासकीय सेवामें रहकर अध्यापन कार्य किया।

साहित्यिक एवं सामाजिक सेवायें

अजमेरमें ३५ वर्ष तक आपने पर्युषणपर्व पर अपनी गम्भीर एवं रोचक भाषण शैली द्वारा ज्ञान प्रसार और स्वाध्याय सवर्द्धनका सराहनीय कार्य किया। आपकी विद्वत्तासे प्रभावित होकर गिरीडीह, जोधपुर, सुजानगढ़, कलकत्ता और गोहाटीमें आपका सादर अभिनन्दन किया गया तथा सुजानगढ़ समाजने आपको 'धर्मालंकार' की सम्मानित उपाधि प्रदान की।

आपकी प्रमुख रचनायें : 'आस्तिकका नमस्कार, भक्तिमार्ग, विचित्र परिणय, 'बाहुबलि वैराग्य' समदर्शी (हिन्दी एकाकी) आदि है। इसके अलावा कुछ धार्मिक निबन्ध भी लिखे जो अभिनन्दन ग्रन्थोंमें यथा समय प्रकाशित होते रहे।

आपको क्रियाकाण्डोंका विस्तृत ज्ञान है जो धरोहरके रूपमे प्राप्त हुआ। आपने अनेक वेदी प्रतिष्ठायें सम्पन्न करायी। आपको मत्र शास्त्रोंका विशेष ज्ञान एवं अनुभव है।

१९९८ में आपने आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजकी प्रेरणासे सहारनपुरमें रात्रि विद्यालयकी स्थापना की तथा उसके मंत्री रहे जो अनवरत चालू है। आप शास्त्रि परिषद्की प्रबन्धकारिणीके सदस्य तथा अजमेरकी कई स्थानीय संस्थाओंके सदस्य रहे।

●

स्व० पं० हरिश्चन्द्रजी शास्त्री

●

पण्डितजी का जन्म संवत् १९५२ की माघ सुदी पूर्णिमाको ग्राम महरौनी जिला झाँसी उत्तर प्रदेशमें हुआ। आपके पिता श्री किशोरीलालजी साधारण परिस्थितिके व्यक्ति थे। सराफीका धंधा करते थे किन्तु संगीत शास्त्रके निपुण विद्वान् थे। वे अपने समयके एक उच्च गायक थे। समाजमें उनकी प्रतिष्ठा थी। वे समाजके एक आदरणीय विद्वान् एवं कुशल कलाकार थे।

आपकी शिक्षाका श्रीगणेश सन् १९०० से स्थानीय प्राथमिक शालासे ही हुआ। प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त आपने स्थानीय दि० जैन पाठशालामें ही बालबोधसे लेकर तत्त्वार्थसूत्र तक शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद आप स्थानीय पाठशालामें ही दो वर्षों तक अध्यापन कार्य करते रहे। तत्पश्चात् जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैनासे शास्त्रीकी परीक्षा उत्तीर्ण की।

संगीत कलाका ज्ञान आपको उत्तराधिकारके रूपमें पिताश्रीसे ही प्राप्त हुआ फलत अपने विद्यार्थी जीवनमें ही आपने संगीतमें विशिष्ट निपुणता प्राप्त कर ली थी।

हर्षका विषय है कि एक कर्मनिष्ठ समाजसेवी पुरुषके रूपमें आज भी आप समाजमें विद्यमान हैं। आपने अध्ययन और अध्यापन इन दो ही कार्योंको महत्त्व प्रदान नही किया अपितु आपके समक्ष समाजकी नि:स्वार्थ भावनासे सेवा करनेका स्तुत्य भाव भी प्रेरक बन कर आपको इस कार्यके लिए सदैव उकसाता रहा।

आपने संवत् १९७८ में कुचामन रोडमें श्री नेमिनाथ दिगम्बर जैन पाठशालाकी स्थापना की। आपकी कर्मठता, उदारवृत्ति, परसेवा भावना तथा अनन्य निस्पृहताका एकमात्र प्रतीक उस शालाका इतिहास आज भी स्वर्णिम पृष्ठोसे सुसज्जित है।

●

श्री हुकुमचन्द्रजी बुखारिया 'तन्मय'

●

श्री बुखारियाजी का जन्म उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलान्तर्गत ललितपुर नामक शहरमें हुआ। आपके पिताजी का नाम श्री फूलचन्द्र बुखारिया एवं माताका नाम श्रीमती जगरानी है। आपके जन्मके समय पिताश्री की नगर एवं जैन समाजमें अच्छी खासी प्रतिष्ठा थी। इतना ही नही, नगरके सम्पन्न व्यक्तियोंमें भी आपके पिताजी की गणना थी। नगरपालिका ललितपुरके वे मनोनीत सदस्य थे। यह सदस्यता उनको लोकप्रियता एवं प्रतिभाके फलस्वरूप ही प्राप्त हुई थी।

बी०ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनेके बाद आप स्थानीय पी०एन० हाईस्कूलमें अध्यापक हो गये। उसी समय आपने हिन्दीमें एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके

पश्चात् नियमित छात्रके रूपमें सन् १९५४ में होल्कर कालेज इन्दौरसे आपने एल० एल० बी० परीक्षा उत्तीर्ण की। एल० एल० बी० परीक्षाके समय इन्दौरके एक स्थानीय दैनिक पत्र "इन्दौर समाचार"में कुछ महीनोंके लिए सम्पादकीय विभागमें नौकरी की।

अर्थोपार्जनके सम्बन्धमें सबसे पहले व्यवसायके नाम पर आपने ललितपुरमें एक खादी भण्डार खोला था जिससे नेताओंकी उधारीके कारण बहुत अधिक घाटा हुआ था। अस्तु आपने उस व्यवसायको स्थगित कर दिया। इसके पश्चात् आप चार वर्षों तक अध्यापक रहे। इस कार्यके पीछे आपका ध्येय अर्थोपार्जन नहीं था बल्कि परीक्षाएँ देनेके लिए आपने शिक्षकीय कार्यको अपनाया था। इसके बाद १९५५ से ६१ तक आपने ललितपुरमें वकालतका कार्य किया। इसके बाद आपको इस पेशे से अरुचि हो गयी अस्तु आपने वकालत करना छोड दिया। अब १९६६ से आप पुन. वकालत करने लगे हैं।

सन् १९३५ में श्रीशाह रज्जूलाल की सुपुत्री कुमारी निराशा देवीके साथ आपका विवाह हो गया। उस समय आप राजनैतिक आन्दोलनोंके सक्रिय सदस्य थे।

आपकी रुचि प्रारम्भसे ही कविता तथा दर्शनके प्रति रही। इसके साथ ही बचपनसे ही आपका हृदय देशभक्तिकी पुनीत भावनासे ओत-प्रोत रहा। नेताओं द्वारा अँगरेजी राज्यके नृशंस अत्याचारोंकी करुणामयी कहानियाँ सुन-सुनकर पन्द्रह सोलह वर्षके अपरिपक्व वयसे ही राजनीतिमें रुचि लेने लगे। सन् १९४०-४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रहके समय छै महीने तथा १९४२ के भारत छोडो आन्दोलनमें एक वर्ष तक आप क्रमशः नैनी एवं झाँसीके कारागृहों में रहे।

आप सन् १९५४ से १९५९ तक नगरपालिका ललितपुरके सदस्य एवं शिक्षा चेयरमैन रहे। तथा १९६१ से १९६४ श्री वर्णी जैन इण्टर कालेज ललितपुर मत्री एव प्रबंधक रहे। आपको वाद-विवाद प्रतियोगिताओंमें लगभग १०वाँ प्रथम स्थान प्राप्त करनेके उपलक्षमें ट्राफियाँ मिली। आपको "वीरलाल-पद्मधर" नामक खण्ड काव्यके उपलक्षमें १००१) पुरस्कार स्वरूप प्रदान किये गये। इसके अलावा सैकड़ों अभिनन्दन पत्रों और सम्मान पत्रोंसे भी भिन्न-भिन्न संस्थाओं द्वारा आपको सम्मानित किया गया।

आपकी रचनाएँ शृंगारिक तथा वीररस पूर्ण है आपकी प्रकाशित रचनाओमेंसे "आहुति", "पाकिस्तान", "मेरे बापू", "प्रहलाद", "वीरलाल पद्मधर" एवं "मराठा मुक्तिका द्वार" प्रमुख हैं। इनके अलावा पत्र एव पत्रिकाओंमें सैकड़ों कविताएँ और लेख प्रकाशित हो चुके है। अप्रकाशित रचनाओंके रूपमे आपने सैंकडों गीत अनेक अतुकान्त रचनाएँ और अन्य बहुत सारी कविताएँ आपने लिखी है जो लगभग चार-पाँच सकलनोंके रूपमें प्रकाशित हो सकती है।

इस तरहसे आप कानूनके पण्डित, देशभक्त, साहित्यसेवी, पवित्र प्रेमसे पूरित हृदयमें स्वामी, समाज सेवक अन्तर्जातीय विवाहोंके पोषक तथा विधवा विवाहके समर्थक है।

●

पं० हरिप्रसादजी जैन

●

आपका जन्म माघ कृष्णा प्रतिपदा सोमवार संवत् १९८० में उत्तर प्रदेशके झाँसी जिलान्तर्गत गोना नामक गाँवमें हुआ। आपके पिताजीका नाम श्री परमानन्दजी जैन एवं माताश्रीका नाम श्रीमती

हीराबाई जैन था । माता एवं पिता धार्मिक स्वभावके थे । जन्मके समय आपकी आर्थिक स्थिति साधारण थी । दूकानदारीका काम चलता था ।

शिक्षा प्राप्त करने हेतु आप स्थानीय प्राथमिक शालामें प्रविष्ट हुए । वहाँसे प्राथमिक शिक्षा ग्रहण कर आपने श्री महावीर दि० जैन पाठशाला साढ़ूमलमें प्रवेश करके प्रवेशिका एवं विशारदकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की । तत्पश्चात् सर सेठ हुकुमचन्द दिगम्बर जैन महाविद्यालय इन्दौरसे आपने शास्त्री एवं जैन साहित्यरत्नकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं । इसी समय आपने श्री दिगम्बर जैन रात्रि पाठशाला संयोगितागंजमें अध्यापन कार्य भी किया । यह इस बातका सूचक है कि जितनी रुचि आपकी अध्ययनके प्रति थी शायद अध्यापनके प्रति भी उससे कहीं कम नही थी ।

आप प्रारम्भसे ही यह चाहते आये कि समाजके बालक अधिक से अधिक होनहार बनें । उन्हें अपने धर्मका सम्यक् ज्ञान हो । और शिक्षित बनकर वे समाज तथा देशके ऐसे कर्णधार बनें कि जिस वस्तुमें उनके हाथका स्पर्श हो जाय वही सँवर जाय । आपकी यह भावना अनुकरणीय एवं स्तुत्य है ।

धनोपार्जन हेतु आपने प्रारम्भसे आज तक सिर्फ शिक्षण संस्थाओंमें ही कार्य किया । यद्यपि कि बीचमें एकाध बार आपने दुकानदारीका भी काम किया किन्तु उसे आपने नाम मात्रके लिए ही अपनाया । सन् १९४७ से ५२ तक आपने श्री सर हुकुम चन्द दिगम्बर जैन बोर्डिंग हाउस इन्दौरमें १०५ रुपया मासिक वेतन पर असि० सुपरि० के पद पर कार्य किया । इसके बाद सामाजिक संस्था श्री दि० जैन पाठशाला लोहारदा (म० प्र०) में आपने ८० रुपया मासिकसे अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया । आप मानसिक विकासके लिए अर्थलाभका मुँह कभी नही देखते थे । आपने उक्त सस्थामें ५ वर्षों तक कार्य किया इसके बाद श्री बाल शिक्षण शाला चादखेडी (राजस्थान) में अध्यापन कार्य करने लगे । दो वर्षके उपरान्त आप वहाँ से भी चले आए और श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन पाठशाला सिंगौली (म० प्र०) में अध्यापन कार्य करने लगे ।

आप प्रारम्भसे ही सामाजिक शिक्षण संस्थाओंमें कार्य करते आए जो आज भी पूर्ववत् चालू है । समय समय पर मंडल विधान, वेदी प्रतिष्ठा एवं मंदिर प्रतिष्ठा आदि धार्मिक कार्योंको भी सम्पन्न करते रहे । डूब एरियाके चार ग्रामोंमें आपने श्री जिनालयोंकी स्थापना करवायी ।

समाज एवं धर्मके प्रति महान् आस्था होनेके कारण आपने अच्छी लगनसे उनकी सेवायें की । आपने सिंगौलीमें जैन युवक मण्डलकी स्थापना की । वह संस्था आज भी समाज सेवामें कर्मठता एवं लगनके साथ संलग्न है । इसके अलावा श्री मध्य प्रदेशीय तीर्थ रक्षा समिति शीश महल इन्दौरके संयोजन कार्यको भी आपने सम्हाला । आज भी उक्त संस्थाके संयोजक पद पर आप लगनके साथ कार्य कर रहे है ।

समाजमें फैली हुई कुरीतियोंको देखकर जब आपका हृदय रो उठता है तब आप उनके निवारणार्थ किसीके आगे हाथ नही फैलाते । स्वतः उस काममें जुट जाते हैं और जब आप इन कामोंमें संलग्न हो जाते हैं तो आपको सहसा ज्ञान होता है कि मैं अकेला नही हूँ बल्कि मेरे पीछे मेरे सहयोगीके रूपमें अपार जनसमूह है ।

आपके व्यक्तित्वकी यह सबसे बडी विशेषता है । धार्मिक और सामाजिक कार्योंमें लोगोंकी प्रवृत्त करने हेतु आप उपदेशोंका आश्रय नही लेते बल्कि स्वतः उदाहरण बनकर कार्य क्षेत्रमें नि.स्वार्थ भावनासे प्रेरित होकर कूद पडते हैं । यही कारण है कि बिना बुलाए ही आपकी निःस्वार्थ परसेवा भावनाको देखकर लोग आपके साथ जुट जाते हैं ।

●

श्री हजारीलाल जी 'काका'

हजारीलाल 'काका' जिनका जीवन वृत्त पाठक पढ़ने जा रहे हैं एक ऐसे ही पुरुष हैं जिनका पीछा परिस्थितियों एवं हृदय विदारक वेदनाओंने आज तक नहीं छोड़ा। २४ दिसम्बर १९१९ में उत्तर प्रदेश के झाँसी जिलान्तर्गत सकरार नामक छोटेसे गाँवमें आपका जन्म हुआ। जब आप पाँच वर्षके दुधमुँहे बच्चे थे तभी आपकी मातुश्री ललिताबाई भगवान्‌को प्यारी हो गईं। संयोगसे आपकी विधवा मौसी आपके लिए वरदान बनकर आपके घर आ गईं और आपके लालन-पालनका भार अपने ऊपर लेकर उसका निर्वाह किया।

आप गाँवकी प्राथमिक शालामें ही पढ़ रहे थे उस समय आप १० वर्षके थे तभी आपके पिताजी-का भी स्वर्गारोहण हो गया।

इसके बाद आपने अपने भाई साहबकी देख-रेख व मददमें गल्लेका व्यपार आरम्भ किया। इसी बीच आपके बड़े भाई साहबकी शादी हो गई। किन्तु दुर्दैवसे वह भी न देखा गया। और आपकी भाभी ५ वर्ष बाद ही विधवा हो गईं। भ्रातृ-वियोगका दारुण दुःख आपकी सहन शक्तिसे बाहर हो गया। आपका जीवन अब पूर्णरूपेण अन्धकारमय हो गया। आपकी जर्जर जीवन नौका आपत्ति ऊर्मियोंके प्रबल थपेड़े खाती हुई उन्हींके इशारोंपर नाचती रही। इसी बीच आपकी भाभीके प्रयत्नोंसे आपका विवाह उन्हींके मायकेमें कस्तूरी बाई नामक सौन्दर्यवती एवं गुणवती युवतीसे हो गया। आपके पाणिग्रहण संस्कारके दो वर्ष भी पूरे नहीं हो पाए थे कि आपकी भाभी साहिबा भी चल बसी।

इसके उपरान्त आपके दो बच्चियाँ हुईं। तीसरी सन्तान गर्भ स्थित हुई तभी एक दिन आपकी पत्नीको स्वप्नमें एक बाबाने बताया कि अबकी तेरे पुत्र होगा किन्तु तेरा बचना असम्भव है। आपकी पत्नी-ने लाख कोशिश की कि स्वप्नकी बात वे आपसे न कहे किन्तु उस गरल घूँटको आपकी पत्नीने एक दिन ओठोंके बाहर कर दिया। स्वप्न समाचार सुनते ही आपके पैरोंके तलेकी जमीन खिसक गई। दिन बीते, महीने बीते और आखिरकार वह अमङ्गल घड़ी भी आ पहुँची जब आपकी पत्नीने एक नवजात शिशुको पार्श्वमें रखे हुए प्रसूतिका गृहमें आपको बुलाया।

आपके वहाँ पहुँचने पर आपकी धर्मपत्नीने आपकी गोदमें उस नवजात शिशुको रखकर अपना सिर आपके पैरोंमें रख दिया। बच्चेको सम्हालकर आपने जब पत्नीका शिर दोनों हाथोंसे उठाया तो आपने देखा कि पत्नीके प्राण पखेरू उड़ गए हैं सिर्फ पिञ्जर अवशेष रह गया है।

कितने आश्चर्यकी बात है कि निरन्तर संघर्षोंसे जूझने वाला व्यक्ति उन सब आपदाओंको भूलकर एक हास्य कलाकार बन जाय।

आपकी पुस्तकोंमें से १. दहेजका दानव, २. दहेजके दानवोंसे ३. पावागिरि परिचय ४. साला-साली ५. पावागिरपूजन-भजन यह कृतियाँ प्रकाशित है। शेष प्रकाशनाधीन है।

पण्डित हुकुमचन्द्रजी भारिल्ल

पण्डितजी का जन्म २५ जून १९३० में झाँसी जिलाके बरोदा स्वामी नामक स्थानमें माँ पार्वतीकी पुनीत कुक्षिसे हुआ। आपके पिताश्रीका नाम श्री हरदासजी है। आपका जन्म मध्य-वर्गीय परिवार में हुआ। जन्मके समय आर्थिक स्थिति दयनीय अवस्था में थी।

आपने सिद्धान्त तथा न्याय विषय लेकर शास्त्री और हिन्दी लेकर एम० ए० तथा साहित्य रत्नकी परिक्षाएँ उत्तम अंकोंमें उत्तीर्ण की।

शास्त्री और न्यायतीर्थकी परीक्षाएँ उत्तीर्ण करनेके उपरात आप जैन पाठशाला महुआ (राजस्थान)में अध्यापन कार्य करने लगे किन्तु वहाँ आप चार माह ही रहे इसके पश्चात् आप जैन मिडिल स्कूल पारोलीमें प्रधानाध्यापक पद पर नियुक्त हो गये।

विवाहके पश्चात् आप उत्तर प्रदेशके बबीना एवं अशोकनगर नामक स्थानोंमें अध्यापक रहे। जुलाई ६६ से अक्टूबर ६८ तक आपने दि० जैन हायर सेकेण्ड्रीमें अध्यापन कार्य किया। आजकल आप जयपुर में साहित्यिक कार्य कर रहे हैं।

आपने अपनी लेखनीका विषय अध्यात्मको चुना। आजीविका हेतु कार्य करते हुए तथा प्रतिवर्ष परीक्षाएँ देते हुए भी आपने अध्यात्म विषयका गहन अध्ययन एवं प्रचार कार्य सतत अजस्ररूपसे करते आये। *आप आरम्भसे ही स्फुट कविताएँ एवं लेख लिखते चले आये है। १९५८ में लिखी गयी आपकी* देवशास्त्र गुरुपूजन नामक कृति बहुत ही लोकप्रिय हुई।

आपके "मैं कौन हूँ", "सुख क्या है", तत्त्वविचार" और "आत्मानुभूति" भाग १, २, ३, "अहिंसा" और जिनागमका सार आदि निबन्ध हैं। अप्रकाशित निबन्धोंमें उत्तम क्षमादि दशधर्मों पर दश निबन्ध, तत्त्वज्ञान पाठमाला चार भाग और वीतराग विज्ञान पाठमाला के तीन भाग है। आपने "पं० टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व" विषय पर शोधकार्य कर पी-एच० डी० की सम्मानित उपाधि प्राप्त की।

राजनैतिक विचारधाराकी दृष्टिसे आप सर्वोदयी है। सामाजिक क्षेत्रमें आप कितने उदार विचारों के है इसका ज्वलन्त उदाहरण आपकी आदर्श शादी है जो सर्वप्रथम आपने ही की थी। वैसे सम्प्रति आप पूर्ण आध्यात्मिक रुचिके व्यक्ति हैं।

श्री हीराचन्द्र जी बोहरा

●

जन्म : आपका जन्म १७ फरवरी १९२८ में हुआ। आपके पिताका नाम श्री मोहरीलाल जी बोहरा और माताका नाम श्रीमती रतनदेवी बोहरा है।

शिक्षा आपने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करनेके बाद एल० एल० बी० किया तथा साहित्य सम्मेलन प्रयागसे विशारद-की परीक्षा उत्तीर्ण की।

अर्थोपार्जन : सर्व प्रथम आपने अजमेरके रा० ब० सरसेठ भागचन्द जी सोनीके यहाँ प्राइवेट सेक्रेटरीके रूपमें कार्य किया। तेरह वर्षों तक यह काम करनेके उपरान्त फरवरी ६० से आप मेट्रोपोलिटन एन्टरप्राइजेज प्रा० लि० कलकत्तामें मैनेजरका कार्य करने लगे। तीन वर्षों तक उक्त कार्यको करनेके बाद आप वजवजके न्यू सेन्ट्रल जूट कम्पनीमें अकाउन्टेटके रूपमे कार्य करने लगे।

साहित्य सेवा

आपकी रुचि प्रारम्भसे ही संगीत, अभिनय एवं साहित्यमें लिप्त रही। आपकी रचनाएँ सुमधुर एवं सारगर्भित है। आपकी रचनाएँ सरस्वती, जैनगजट, जैनसन्देश, अहिंसा, वीरवाणी, सन्मति सदेश, जैनबोधक, जैन मित्र और दिगम्बर जैन आदि पत्रिकाओंमें प्रकाशित होती रहती है।

आपका गोमटेश्वर दर्शन प्रकाशित हो चुका है। इसके अलावा १२५, १३० स्फुट लेख तथा कवि-ताएँ प्र।शित हो चुकी हैं। गद्य एवं पद्य दोनोंमें आपका समानाधिकार है। आपकी कविताएँ सरस एवं गद्य प्रभावोत्पादक होते है।

आप समाजके सफल साहित्यकार, संगीतज्ञ एवं कुशल अभिनेता है। साहित्यके हर अंगोंपर आपका अधिकार है।

●

पं० हुकुमचन्द्रजी

●

मृदुल स्वभाव, निष्कपट व्यवहार, भोली चितवन तथा स्नेहपूर्ण बातें, ये आपके व्यक्तित्वकी प्रमुख बाते हैं। आपके घर जब अपरिचित व्यक्ति भी पहुँच जाता है तो उसे यही आभास होता है कि मैं यहाँ सादर आमन्त्रित अतिथि हूँ। आप दिल खोलकर मिलते हैं तथा दिल खोलकर बातें करते है—आगन्तुक चाहे पूर्व परिचित हों चाहे अपरिचित, कोई अन्तर नही आता यह आपके व्यक्तित्वकी अपनी अनूठी विशि-ष्टता है। आपके व्यवहारमें बनावटीपन नही है।

आपका जन्म झाँसी जिलेके रायपुर नामक ग्राममें सं० १९८१ में हुआ। आपके पिता श्री मौजी-लालजी विलक्षण प्रतिभाके व्यक्ति थे। आपके सुन्दर व्यक्तित्व एवं चरित्रका गठन उन्हीके द्वारा हुआ था।

विशारद तक शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त आप जैन पाठशालाओंमें अध्यापन कार्य करते हुए

अध्यापन कार्य करते हुए धंधेको भी अपनाया । अब आप डोंगरगाँव (जिला दुर्ग) में कपड़ेका व्यापार करते हैं । गत एक दशकसे जीवनबीमा निगमकी सेवामें योग दे रहे हैं ।

आप सच्चे समाजसेवी हैं । समाज सेवाके पीछे आपने जिस-जिस तरहके त्याग किये वे अवर्णनीय हैं । सच्ची श्रद्धा, अथक लगन और कर्मठताके साथ आज भी आप समाज सेवामें लगे हुए हैं ।

आप संगीत शास्त्रके ज्ञाता तथा सफल कलाकार है । मानव हृदयको सहज ही में खींच लेनेकी आपकी उपरोक्त सभी कलायें सक्षम है । वर्तमानमें भारतीय वस्त्र भण्डार डोंगरगाँवमे मुख्य रूपसे वस्त्रका व्यापार करते हैं ।

●

पं० हुकुमचन्द्रजी

●

पं० हुकुमचन्दजीका जन्म मध्यप्रदेशके सागर जिलेके अन्तर्गत पडवार नामक ग्राममे हुआ । आपने न्यायतीर्थ, प्रभाकर और मैट्रिकको परीक्षाएँ उत्तीर्ण की । आप प्राचीन धार्मिक मान्यताओंके अनुयायी है । धर्मके प्रति आपकी आस्था महान् है । आपका ज्ञान भी विस्तृत है । स्थानीय मन्दिरोंमें रात्रिके समय आप श्रावकोंको शास्त्रों और आध्यात्मिक विषयोंका ज्ञानार्जन कराते हैं ।

आप समाजके पोषक हैं शोषक नही । यही कारण है कि आप दहेज ग्रहण वृत्तिको दस्युवृत्ति की संज्ञा देते हैं जो सचमुच यथार्थ है । दहेज प्रथाके उन्मूलनमें आपके प्रयास वन्दनीय है । बालकोंमें अधिक से अधिक धार्मिक ज्ञान और धर्मप्रेमकी भावनाको जागृत करनेकी आपकी ललक स्तुत्य हैं । आप मात्र अहिंसाके अनुयायी ही नही बल्कि हिंसा निवृत्ति कार्यके कर्मठ कार्यकर्ता है । कसाईखाने या हिंसाके कार्यों-के विरोधमें केन्द्रीय सरकारके व्यक्तियोंसे आप मात्र पत्र व्यवहार ही नही करते बल्कि उनसे मिलकर उनमें ऐसा प्रभाव भरते है कि वे अहिंसाकी ओर उन्मुख हो हिंसा निवृत्ति कार्यमें आपके सहयोगी बन जाते हैं ।

इसके अलावा आप सफल साहित्यकार और कुशल सम्पादक भी हैं । आपकी सम्पादित तथा सृजित पुस्तकोंमें धर्म शिक्षा पाँच भाग, श्री जैन पूजापाठ, आत्म दर्शन और मानवकी महानता आदि प्रमुख है ।

"विश्व शांति और जैनधर्म" पर विद्वत् परिषदसे आपको द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था । इस तरहसे आप एक समाज सुधारक तथा समाज सेवी, अहिंसाके पुजारी, साहित्यकार तथा कर्मठ विद्वान् है । जैन समाजको आपसे अनेक आशाएँ हैं ।

वर्तमानमें आप श्री महावीर जैन विद्यालय रफीगंज गयामें प्रधानाध्यापकके पद पर हैं ।

●

पं० हजारीलाल जी एम० ए०

आपका जन्म सीमल्या ग्राम जिला कोटा (राजस्थान) में माघ वदी ४ सं० १९७१ को हुआ था। आपकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न होनेके कारण स्वाध्यायी रूपसे अध्ययन किया और जल्दी ही अध्यापन कार्यसे जीविकोपार्जन करने लगे। लेकिन अपनी शिक्षाको आगे बढ़ाते हुए आपने हिन्दी और संस्कृतमें एम० ए० उत्तीर्ण किया और १९६१ में बी० एड० प्रशिक्षण प्राप्त किया। अपनी शासकीय सेवामें आप बराबर पदोन्नति करते हुए कोटाके हायर सेकण्डरी स्कूलमें मुख्याध्यापक (१९५१) से मल्टीपरपज हायर सेकण्डरी स्कूलके प्राचार्य, विद्यालय निरीक्षक और अन्तमें उपनिदेशक जैसे वरिष्ठ पदसे सेवा निवृत्त (१९७२) होकर श्रीमहावीरजी अतिशय क्षेत्रमें ६ माह मैनेजर पद पर आसीन रहे। सम्प्रति आप श्री अकलंक विद्यालय कोटामें मुख्याध्यापकके रूपमें कार्यरत हैं।

सामाजिक सेवायें :

आप कोटाके अकलंक विद्यालयके अवैतनिक मंत्री (१९४०–५१) तथा श्री दि० जैन अतिशय क्षेत्र चादखेडी (खानपुर) जिला झालावाड (राजस्थान) के अवैतनिक मन्त्री (१९५५–६६) तथा अ० भा० दि० जैन बघेरवाल संघके १९५१ से मंत्री हैं।

साहित्यिक सेवाये

आप राजस्थान सरकार शिक्षा विभाग द्वारा संचालित अभिनव संस्कृत पाठावलि (कक्षा ६, ७, एवं ८) के लेखक और विवेक विलासके सम्पादक थे। आप स्काउटिंगमें दक्ष थे और डि० कमिश्नरके पद तक रहकर कार्य किया। अन्य धार्मिक एवं सामाजिक चेतनाके कार्य समय-समय पर करते रहे।

पं० हीरालालजी

नाम : पं० हीरालाल मुकंदराम जैन। जाति : दिगम्बर जैन (पद्मावती पोरवाल)।

जन्म स्थान एवं समय : तालोद जिला–देवास मध्यप्रदेश, विक्रम संवत् १९७३।

धार्मिक एवं लौकिक शिक्षण : मिडिल एवं प्रवेशिका।

जीविकोपार्जन : स्वतंत्र किराणा दुकान अभिरुचि : स्वाध्याय एवं ग्रन्थावलोकन।

सामाजिक गतिविधि

सरपंच ग्राम पंचायत, चेयरमैन कृषि समिति, माध्यमिक शाला लसूडलियापार शिक्षण समितिके अध्यक्ष तथा जैन सन्मार्ग समिति-आष्टाके चार वर्ष तक मंत्री।

समाजसेवा कार्य

छोटे-छोटे गाँवोंमें जाकर धार्मिक उपदेश, लग्न-लगाना, घर शुद्धि कराना तथा गायन-कीर्तनमें अभिरुचि।

स्व० डा० हकीम गौरीलालजी

●

आपका जन्म संवत् १९४८में रियासत राघौगढ़में हुआ था। आपकी शिक्षा लाहौर, गुजरात, बजरंगगढ़में हुई परन्तु आपकी प्रारम्भसे ही रुचि यूनानी इलाज एवं वैद्यककी ओर रही। और अपने इस संकल्पको उन्होंने बड़ी निष्ठा एवं लगनसे प्राप्त किया।

आगे चलकर आप इतने लब्धप्रतिष्ठित डाक्टर एवं हकीम बन गये कि राजाबहादुर सिंहजी राघौगढ़ एवं सर सेठ हुकुमचन्दजी इन्दौर वाले तथा मारवाड़के कई रईस सेठोंका इलाज करने आप सम्मान-पूर्वक बुलाये जाते थे। आपने सच्चे अर्थोंमें यूनानी वैद्यकका नाम ऊँचा किया। और इन्दौर, ग्वालियर जैसे बड़े शहरोंमें आकर आपने हकीमके रूपमें बड़ा नाम अर्जित किया।

एक ऊँचे हकीम होनेके साथ-साथ संगीतके प्रति बड़ी अभिरुचि रही। शास्त्रीय सगीत एवं राग-रागिनीके अच्छे जानकार रहे।

जहाँ तक जैन शास्त्रोंके ज्ञानका प्रश्न था, उस दृष्टिसे आप शास्त्रोंके अच्छे ज्ञाता थे और प्रतिदिन आपके दवाखाने पर शंका समाधान हेतु विद्वानोंका आना-जाना लगा रहता था।

१९३०में आप राघौगढ़से इन्दौर चले आये और अपनी कुशल बुद्धि तथा मिलनसारतासे कुछ ही दिनोंमें इन्दौरमें अपना नाम कमा लिया। होल्कर स्टेटकी ओर से आप तीन वर्ष मेडिकल कोन्सलर तथा सरकारी तौर पर १५ वर्ष तक उक्त पद पर रहकर वैद्योंका बड़ा उपकार किया। आप मालवा सहकारी पेढीके वाइस प्रेसीडेन्ट भी रहे। आपने गौराकुण्ड इन्दौरमें जैन यूनानी दवाखानाकी स्थापना कर हजारो रोगियोंको आरोग्य लाभ दिया।

सेवाभा ी एवं प्रवीण चिकित्सक

मानवीय सेवाका व्रत लेकर आपने जिस निस्पृह भावसे इस कार्यको किया वह वस्तुतः स्पृहणीय है। जब-जब मुनिराजोंका संघ राघौगढ़ या इन्दौर आया, आपने उन्हें न केवल आहार दान दिया अपितु धार्मिक सिद्धान्तोंके अनुसार मूलाचार रखते हुए शुद्ध औषधियोंका निर्माण कर मुनिराजोंको औषधि दान भी दिया। गरीबोंको निःशुल्क दवायें दे देना आपका स्वभाव था।

साहित्य सेवी

आप उर्दू एवं फारसीमें यदाकदा कवितायें भी लिखा करते थे। और मुशायरोंमें आमंत्रित किये जाते थे।

आप शाही पोशाकें पहननेके लिए भी मशहूर थे। कभी निजाम सिंधिया की तो कभी होल्कर ड्रेसमें अपने दवाखानेमें आते थे जो आपके व्यक्तित्वमें चार चाँद लगा देते थे।

जब भी बड़े-बड़े वैद्य किसी असाध्य रोगका निदान कर पानेमें अपनेको असमर्थ पाते थे तब आपसे सलाह लेकर जो नुसखे तैयार करते थे वह बड़े महत्त्वपूर्ण हुआ करते थे।

जीवनके अन्तिम समय तक आपका स्वास्थ्य काफी अच्छा रहा। और ९३ वर्षकी आयु पाकर आपका १० मार्च १९७३को दिलकी बीमारीसे स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार हकीम साहबका सम्पूर्ण जीवन बड़ा ही गौरवमय रहा।

●

श्री हुकुमचन्द्रजी 'कंचन'

एक जनवरी १९४८में मऊरानीपुर (झांसी)में आपका जन्म हुआ। आपके पिताका नाम कीरतनचंद एवं माताका नाम श्री शान्तिबाईजी है। आपके पिता धार्मिक प्रवृत्तिमें उदार हृदय थे तथा अपने समयमें प्रतिष्ठित एवं मान्य थे। जन्मके समय आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। पिता श्री कपडेके साथ एल्म्यूनियमका थोक व्यापार करते थे। सामाजिक एवं धार्मिक कार्योंमें सदैव अग्रणी रहते थे और निष्ठाके साथ कार्य करते थे। योग्य पिताके सत्संस्कारोंका प्रभाव उनके बेटे पर पडा। जब आपकी उम्र मात्र ६ वर्षकी थी तब पिताके सुखसे वंचित होना पड़ा। पिताकी मृत्युसे आर्थिक परिस्थिति कमजोर हो गयी। आपके अग्रजने घरकी स्थिति सँभाली और कपड़ेका व्यापार साधारण रूपमें आरम्भ किया।

आपमें साहित्यिक संस्कारोंका होना आपकी प्रतिभाकी श्री वृद्धि करता है। यद्यपि परिस्थिति वश आपकी शिक्षा साधारण ही है और सरकारी प्राथमिकशालामें वर्तमानमें आप शिक्षकके पद पर कार्यरत हैं। परन्तु कविता लिखने एवं लेख आदि लिखने, सामाजिक कार्योंमें आगे आकर कार्य करनेकी प्रवृत्ति ही आपके भावी उन्नतिमय जीवनकी प्रतीक है। हमारा विश्वास है यदि आप अपने निरन्तर स्वाध्यायसे अपने ज्ञानको विकसित करते गये तो निकट भविष्यमे अवश्य प्रतिभावान बनकर समाजके सामने आयेंगे।

स्व० धर्मानुरागी बाबू ऋषभदास जी बी० ए०

●

आप सूरजभान जी वैकरके द्वितीय पुत्र थे और ला० मन्नूलालजीके अनुज थे। आप बड़े सरल चित्त शान्त परिणामी धार्मिक विद्वान् थे। आपने अजैन पत्र-पत्रिकाओंमें जैनधर्म सम्बन्धी अनेक निबन्ध हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजीमें लिखे। जैनसंसार, वीर, अंग्रेजी जैनगजटमें समाजसुधार विषयक निबन्ध लिखे। कलकत्ता थियासोफिस्टमें जैनधर्म सम्बन्धी जो निबन्ध निकले, उनका संग्रह प्रकाशित हुआ।

●

स्व० पंडित ऋषभदास जी चिलकाना

●

पंडित ऋषभदासजी चिलकाना निवासी थे। आपके पिता श्री पंडित मंगलसेनजी जमीदार थे। आपकी शिक्षा घरपर ही हुई। स्वाध्यायके बलसे आपकी तीक्ष्ण बुद्धिने और भी अधिक गति पाई। आपके पिताश्रीने आपको भी साहूकारीके लिये दुकान खुलवा दी थी।

आपमें वस्तु तत्त्वको समझनेके प्रति असाधारण अभिरुचि थी। आप घण्टो शान्त होकर दूसरोंकी बहस सुनते थे। असन्तोष होने पर अन्य विद्वान्से पूछते थे। सन् १८८६ में रामपुरके उत्सवमें आप गये। जैन विद्वानोंके उत्तरसे असन्तुष्ट होकर आप बाबू सूरजभान जीके साथ बाबू बुलन्दराय जीके पास पूछने गये। आपने रायसाहब मथुरादास व पंडित सन्तलाल जीके बीच लिखित चल रही बहसका भी लाभ लिया। जो ईश्वर सृष्टि कर्तृत्वपर थी। आपने सन्तलाल जीके उत्तरके स्थानपर अपना नवीन उत्तर तब भेजा जब जैन विद्वान् भीमसेन जीका उत्तर देनेमें संकोच कर रहे थे। मुन्शी मुकुन्दरायने इस उत्तरके सम्बन्धमें आपकी कडी परीक्षा ली तो वे भी आपकी बुद्धिको मान गये।

आपने ईश्वर सृष्टि कर्तृत्वके विषयमें श्रेष्ठ पुस्तक लिखकर दुकानमें रखी तो कुछ लोगोंने चोरी करवा दी। उसमें वह पुस्तक भी चली गई। आप निराश नही हुए पुनः पुस्तक लिखी। आपने मिथ्यात्व नाशक नाटक लिखा जिसका कुछ भाग हितोपदेशके ग्राहकोंके समीप नमूनेके तौरपर प्रकाशित करके भेजा। वह ग्रन्थ भी अधूरा रहा।

अल्प आयुमें आपका अवसान हो गया। अन्यथा आप काफी धर्म व समाज की सेवा करते।

●

श्री ऋषभदास जैन फिरोजाबाद

●

आपका जन्म पौष कृष्णा चतुर्थी संवत् १९९१ में आगरा जिलेके नदगर्मा गाँवमें एक धनी एवं प्रतिष्ठित परिवारमें हुआ। आपके ताऊजी और पिताजी दुकानका कार्य किया करते थे साथ ही घी और गल्लेका व्यापार भी चलता था। ढाई वर्ष की आयुमें आपकी माता श्रीमती मौश्री जैनका देहावसान हो

गया। तदनन्तर आपके लालन-पालनका भार आपकी दादी पर आ पड़ा। आपके ऊपर ताऊ एवं ताई की भी विशेष कृपा रही।

बचपनमे ही आपके घरको दोबार दस्युओंने लूटा जिससे आपके परिवार की आर्थिक स्थिति बहुत कुछ बिगड गयी। आपने स्थानीय प्राथमिक शालामे कक्षा ४ उत्तीर्ण किया। इसी बीच आपकी फुआ आयी और उन्हे आपकी मातृहीन दुखद अवस्था पर तरस आया फलतः वे आपको अपने साथ फिरोजाबाद ले गयी। सन् १९४६ मे आप S. R K इन्टर कालेज फिरोजाबादमें कक्षा ५ में प्रविष्ट हो गए। उसी वर्ष वहाँ प्लेगका प्रकोप हुआ जिससे आपके फूफा जी परिवार सहित इटावा आ गए।

सन् १९४९ में आप बाहुबली संघके स्वयसेवक बने। बादमें आप इस संस्थाके मत्री, उपसभापति और निरीक्षक बने। सन् १९५३ में आप विद्यालय छात्र संघके अध्यक्ष चुने गये। दुर्भाग्य बस उस वर्ष छात्र आन्दोलनने खूब जोर पकडा। दो महीनोंके लिए कालेज बन्द रहे। आन्दोलनमें आपका भी हाथ रहा किन्तु फूफा जी की कडाईके कारण आप घर पर ही नजरबन्द कर दिये गये। कालेजसे आपके पिता जीके पास नोटिस भेजो गयी जिससे आप आन्दोलनसे अलग हो गए। आप तब तक एक योग्य अभिनेता एवं वक्ता बन चुके थे। आपने १९५७ में बी० ए०, १९६० में एम० ए० तथा १९६५ मे एल० टी० करनेके बाद १९७१ में बी० काम० किया।

जुलाई १९५४ मे आप श्री पी० डी० जैन इन्टर कालेज फिरोजाबादमें अध्यापक हो गए। तबसे आप उसी कार्यमें सलग्न है। इसके अलावा समय-समयपर आप सामाजिक कार्य भी करते आए है।

●

पं० क्षेमंकरजी शास्त्री

●

पण्डित क्षेमंकर जी एक निस्पृही, सरल स्वभावी और मृदुभाषी व्यक्ति है। एक बारके आये सम्पर्कमें भी व्यक्ति इन्हे विस्मृत नही कर पाते है।

भाद्रपद शुक्ला एकादशी स० १९६१ मे ग्राम मालथौनमें जन्मे बालक क्षेमंकरने अपनी प्राथमिक शिक्षा वही सम्पन्न की। बादमे मथुरा, बनारस तथा इन्दौर जाकर आगामी शिक्षा ग्रहण की।

शिक्षा : न्याय, धर्म, साहित्यमे शास्त्री तक शिक्षा प्राप्त की। शोलापुर (बम्बई) से तथा बंगाल एसोसियेन कलकत्तासे—न्यायतीर्थ।

अध्यापन कार्य : श्री ज्ञा॰सागर दि० जैन विद्यालय कोलारसमें ३ वर्ष तक प्रधानाध्यापक पदपर तथा जैन विद्यालय खण्डवामें ७ वर्ष तक प्रधानाध्याक तत्पश्चात् ३६ वर्ष तक श्री हि० दि० जैन छात्रावास बडवानीमें धर्माध्यापक एवं गृहपति पदसे सेवा निवृत्त होकर सम्प्रति उक्त सस्थाके प्रचार मंत्री। पश्चिमी निमाड की इस एक मात्र संस्थाको ही अपना कार्य क्षेत्र चुना और इस माध्यमसे बालकोंके चारित्रिक निर्माण और संस्थाके उन्नयनमें अपनी जीवन-साधना समर्पित की।

सामाजिक प्रतिष्ठा . पण्डित जी की महान् सेवासे उत्प्रेरित होकर निमाड प्रान्तीय दि० जैन परिषद् तथा अन्य अधिकारी एवं शिष्योंने १९६३ के बावनगजाजीके महामस्ताभिषेकके समय अभिनन्दन पत्रके साथ ढाई हजार रुपया एवं जमीनका प्लाट भेंट स्वरूप प्रदान किया।

●

श्री ज्ञानचन्द्र जी 'स्वतंत्र'

●

आपका जन्म मध्यप्रदेशके गुना जिलेमें बहादुरपुर जागीरके अन्तर्गत ३० दिसम्बर सन् १९१३की रात्रिको दो बजे हुआ। आपके पिता श्री मथुराप्रसादजी मूलतः चन्देरीके समीपस्थ प्राणपुरा ग्रामके निवासी थे। बचपनमें मझले भाईसे अनबन हो जानेके कारण १४ वर्षकी आयुमें वे प्राणपुरासे भाग आये थे तब बहादुरपुर जागीरकी एक धनिक परवार जातिकी वृद्ध विधवा महिलाने उन्हें दत्तक पुत्रके रूपमें रख लिया तबसे वे उसी घरके अधिकारी हो गये। उसी वृद्ध महिलाने सिरोंजके सुप्रसिद्ध सर्राफ रेवाराम किशनचन्द्रकी सुपुत्री मुक्तादेवीके साथ उनका विवाह कर दिया जिनकी पवित्र कुक्षिसे आपका मङ्गलमयी जन्म हुआ।

आपकी अवस्था उस समय तेरह मासकी ही थी जब आपकी माँ इस असार ससारको छोडकर चल बसी थी।

आपके जीवनमें अनेकानेक भीषण समस्यायें आयी। नाना तरहके कष्ट भोगने पडे किन्तु आपने उन सबका दृढतापूर्वक सामना किया और हमारे सामने सोनेकी भाँति तपे हुए व्यक्तित्वके साथ उपस्थित हुए।

आपने प्रवेशिका, विशारद, शास्त्री, मैट्रिक, कोविद एवं साहित्यरत्न आदिकी योग्यता ग्रहण कर परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। आपने अपने जीवनमें आध्यात्मिक ग्रंथोंका खूब आलोडन एवं मथन किया। ईमानदारी एवं सन्तोषका सहारा लेकर आपने जिस काममें हाथ डाला उसीमें साफल्यने आपके चरण चूमे।

अर्थोपार्जन हेतु आपने अध्यापन, सम्पादन, सामाजिक एवं धार्मिक कार्योंको अपनाया। वेदी प्रतिष्ठा, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, सिद्धचक्र विधान, भाषण एवं प्रवचन आपके प्रिय एवं दक्षतापूर्ण कार्य हैं।

आप राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धाके प्रमाणित प्रचारक रहे, महासभा परीक्षा बोर्ड इन्दौरके परीक्षक, विद्वत् परिषद् सागर, शास्त्रि परिषद् बडौत एवं दि० जैन युवक संघ सूरतके सदस्य रहे। इन समस्त सामाजिक संस्थाओंके पीछे आपके योगदानका विशिष्ट स्थान रहा। आपकी अमूल्य सेवायें कभी भी विस्मृत नही की जा सकती हैं।

भारत छोड़ो आन्दोलनमें आपने सक्रिय भाग लिया तथा देशप्रेमका अनुकरणीय आदर्श देशके सक्षम प्रस्तुत किया।

आपकी साहित्य साधना अत्यन्त ही विस्तृत है—आप जैनधर्म परलोक मत, नाटक समयसार, अ० क्षेत्र चाँदखेडी इतिहास, स्वर्गनरक, गागरमें सागर, मानवताके पथप्रदर्शक (दो भाग), हम कैसे सुधरें, भगवान् वीर और उनका सन्देश, प्रायश्चित्त शुद्धि, आत्म धर्म, विवाह जीवनकी एक आदर्श संस्था, विवाह क्या है, दाम्पत्य जीवन तीन जीवन झाँकिया, मुनि वीरसागर जीवन चरित्र, दाम्पत्य जीवन, मानव-मानव बने, बेसुराराग, जैनधर्म लोकमत, प्रकाशकी किरणें, विवाह धार्मिक अनुबन्ध और मधुर मिलन आदि अनेकों कृतियोंके प्रणेता हैं।

इनके अलावा जैनशतक, जैनव्रत कथासंग्रह, रामचन्द्रजीकी विशिष्टता, सोनानुपांजरू, दि० साहित्यचर्चा विकार आदि कृतियोका अनुवाद भी आपकी प्रतिभाशालिनी लेखनीके द्वारा हुआ। साथ ही आपने अर्द्धशतक कृतियोंकी भूमिका लेखन एवं संशोधन कार्य भी किया।

वस्तुतः आपकी साहित्याराधना अथक है। आपकी लगभग ५०से ऊपर रचनाएँ अप्रकाशित हैं।

●

पं० महादेव उर्फ ज्ञानचन्द्र धनुष्कर

नाम : श्री पं० महादेव उर्फ ज्ञानचन्द्र धनुष्कर पुत्र श्री गोविन्दराव जी जैन ।

योग्यता : जैनदर्शनाचार्य, साहित्याचार्य, धर्मरत्न, बी० एस-सी०, कोविद ।

जीवन परिचय · आपका जन्म सावलापुर (महाराष्ट्र) ग्राममें ११ नवम्बर १९४२ में हुआ। आपने मैट्रिककी परीक्षामें श्री महावीर ब्रह्मचर्याश्रम गुरुकुल कारञ्जा (महाराष्ट्र) में अध्ययनकर प्रथम श्रेणी तथा भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्रमें विशेष योग्यता प्राप्त की। उसके बाद आपने राजस्थानकी राजधानी जयपुरमें जैनदर्शनके प्रकाण्ड विद्वान् स्व० श्री पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थके सांनिध्यमें अध्ययनकर जैन-दर्शनाचार्यकी परीक्षा द्वितीय श्रेणीमें उत्तीर्ण की। साथ ही बी० एस-सी० भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र एवं गणित विषयोंसे उत्तीर्ण की। इसके बाद आपने साहित्याचार्य की परीक्षा श्री पं० गुलाबचन्द जी आचार्य M. A के सांनिध्यमें अध्ययनकर राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुरसे उत्तीर्ण की। वर्तमानमें आप श्री दिगम्बर जैन संस्कृत कालेजमें प्रवक्ता पद पर कार्यरत हैं। साथ ही आप समय-समयपर धार्मिक विधान जैसे वेदी प्रतिष्ठा विधान, कलशारोहण विधान, सिद्धचक्र विधान, एवं शान्तिविधान आदि एवं सामाजिक संस्कार जैसे–विवाह, शिलान्यास, नागल आदि संस्कार सम्पन्न करवाकर (जैनसंस्कार विधिसे) जैनधर्म एवं समाज की अपूर्व निःशुल्क सेवा करते हैं।

आपको प्रारम्भसे ही जैनधर्मकी ओर विशेष रुचि रही है। आप जैनदर्शनके प्रकाण्ड विद्वान् हैं।

पं० ज्ञानचन्द्रजी जैन

आपका जन्म पौष शुक्ल एकादशी संवत् १९४९ में देहलीमें हुआ। आपकी माता श्रीमती सोनादेवी एक धर्मानुरागिनी महिला थी। बचपनसे ही उन्होंने आपके हृदयमें धर्मके प्रति अनु-रागमयी भावनाका सृजन करना आरम्भ कर दिया था। आपके पिता श्री मनोहरलाल जी रेलवेमें नौकरी करते थे। वे एक भव्य प्रतिभा एवं विलक्षण व्यक्तित्व वाले पुरुष थे। आपके दादा जी की देहली समाजमें अच्छी खासी प्रतिष्ठा थी। वे ज्योतिषमें महान् विद्वान् थे।

ऐसे सभ्य सुसंस्कृत एवं शिक्षित परिवारमें जन्म लेनेके कारण आपमें अपने पूर्व पुरुषोंके सभी सद्‌गुण स्वाभाविक रूपसे आ गए थे। आपने उच्च शिक्षा तो किन्ही कारणों बस नही प्राप्त कर सकी किन्तु लौकिक और धार्मिक शिक्षा जितने अंशों तक प्राप्त की, आपका ज्ञान उससे कई गुना अधिक था।

अपनी विलक्षण प्रतिभाके कारण आपने कर्मकांड सम्बन्धी अपार ज्ञान प्राप्त किया। स्वाध्याय की ऐसी लगन अभीतक हमने देखी क्या सुनी तक नही। एक अल्प शिक्षा प्राप्त व्यक्ति होते हुए भी आपने शास्त्र प्रवचन, पंच कल्याणक और विधान कार्योंमें जितनी प्रतिष्ठा पाई वह एक उच्चसे उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी नही हासिल कर सकते। यथार्थतः आपके व्यक्तित्व की यही सबसे बड़ी और विलक्षण विशिष्टता है।

तरुण कवि ज्ञानचन्द्रजी

●

ग्वालियर रेडियो-केन्द्रसे कभी-कभी आपके अध्यात्म परक गीत सुनकर आपके कवि-हृदयका सहज परिचय मिल जाता है। आपके पिता श्रीलक्ष्मीचन्दजी भिण्डके निवासी हैं तथा जैनधर्मके अध्यात्म-गीतोंपर लगभग आधा दर्जन पुस्तकें प्रकाशित करा चुके हैं। आपने भी अपनी कलमसे वही लिखा जो पिताकी कलमसे अछूता रहा। और पिताजीकी भाँति अपनी सारी उमर कलमको समर्पित कर दी है।

आपकी एक पुस्तक "उमर हार दी एक दाँव पे" प्रकाशित हो चुकी है। तथा २५००वें निर्वाण महोत्सवपर एक पुस्तक "धर्ममें बन्धन मत डालो" प्रकाशकाधीन है।

आप अभी तक १५०० स्कूलोंमें अपने गीतोंके प्रोग्राम दे चुके हैं तथा करीब १०–१२ बार ग्वालियर रेडियो केन्द्रसे आपके गीत प्रसारित हो चुके हैं।

●

श्री ज्ञानचन्द्रजी

●

पिता : श्री हजारीलाल जैन, वैद्य। **जन्मस्थान** : बडा गाँव, जिला टीकमगढ, (म० प्र०)।

शिक्षा : साहित्यरत्न, आयुर्वेदाचार्य।

साहित्य एवं अन्य सेवा : जैन जैनेतर पत्र-पत्रिकाओंमें लेख एवं कविताएँ लिखना। आयुर्वेदिक-चिकित्साके कार्यसे मानवीय सेवा करना।

वर्तमान—ढाना जिला सागरमें अपने चिकित्सक-व्यवसायके साथ गांधी संस्कृत महाविद्यालय ढानाके मंत्रित्व पदका कार्य-संचालन। विविध सामाजिक संस्थाओंके सदस्य और पदाधिकारी होनेके नाते सार्वजनिक कार्योंमें अभिरुचि रखना।

●

श्री ज्ञानचन्द्रजी 'आलोक'

●

श्री ज्ञानचन्दजी आलोक जिजयापनके रहनेवाले हैं। आरम्भसे ही कुशाग्र बुद्धिके होनहार छात्र रहे। आपने लौकिक शिक्षाके साथ-साथ धार्मिक शिक्षाका भी ज्ञानार्जन किया। श्रीस्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी—आपका मुख्य शिक्षा केन्द्र रहा।

साहित्यिक अभिरुचि आपमें आरम्भसे ही रही—कविताके क्षेत्रमें आपका अधिकृत प्रभाव है।

वर्तमानमें आप श्रीसाहू शान्तिप्रसादजीकी औद्योगिक संस्थानोंमें उच्चपदपर कार्यरत हैं।

●

परिशिष्ट

श्री जिनेश्वरदासजी जैन, साहित्यरत्न, एम० ए०

जन्म-स्थान—ननौरा (झाँसी) उ० प्र० ।
जन्म-तिथि—१६ जुलाई १९३८ ई० ।
पिता—श्री अनन्दी लाल जैन कोठादार ।
माता—श्रीमती पत्ती देवी जैन ।
बहिन—श्रीमती दक्खी देवी जैन ध० प० श्री पं० बाबूलाल जमादार ।
शैक्षिक योग्यतायें—एम० ए० (हिन्दी), साहित्यरत्न, प्रभाकर, धर्म विशारद ।
शिक्षणके क्षेत्रमें अनुभव एवं प्रतिभा—दिगम्बर जैन इन्टर मिडिएट कालिज, बड़ौत (मेरठ) में अध्यापन कार्य १९५६ ई० से लगातार ।
सामाजिक गतिविधि—सन् १९५६ ई० से अ० विश्व जैन मिशन, अ० भा० दि० जैन परिषद्, अ० भा० जैन जनगणना, दि० जैन त्रिलोक शोध सस्थान हस्तिनापुर, एवं अ० भा० दि० जैन शास्त्रि परिषद् कार्यालयोंकी व्यवस्था करते हुए सामाजिक सेवाओंमें तत्पर। वर्तमानमें दि० जैन इन्टर कालिज बड़ौत (मेरठ) में धार्मिक शिक्षणका भी कार्य करते हुए समाजमें श्री दि० जैन महावीर पाठशालाके माध्यमसे बच्चोंमें धर्मशिक्षण एवं धर्म प्रचारमें रत । सार्वजनिक वीर पुस्तकालयके द्वारा साहित्यका प्रचार ।

परिवार—उच्चवंशमे सम्बन्धित राजघरानेके कोठादार राजपूती आनबानके परिवेशमें पालन-पोषण एवं जमादार वंशमें प० वाणीभूषण बाबूलाल जी जैन जमादारके संरक्षणमें शिक्षण एवं सामाजिक कार्यविकासका एवं प्रवर्तनका श्लाघनीय है ।

दो पुत्र, दो पुत्रियां, शिक्षिता पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी जैन सादा जीवन उच्चविचारके पोषक देवशास्त्र गुरुके अखंड भक्त, श्रद्धानी स्वाध्यायी समाज सेवक ।

पं० त्रिलोकचन्द्रजी जैन, न्यायतीर्थ, शास्त्री

●

जन्म एटा प्रान्तमें बिलराम कस्बेमें अगहन सुदी ५ वि० सं० १९७३ को लमेचू जातिमें धर्मस्नेही लाला मिश्रीलाल जी जैनके यहाँ हुआ था। प्राइमरी स्कूलकी ५ वी कक्षा पास करके स्व० कुँवरलाल जी जैन न्यायतीर्थ एवं पू० पं० जिनेश्वरदास जी जैन शास्त्री हाल (नूतन शहादरा दिल्ली) की प्रेरणासे श्रद्धेय महात्मा भगवानदीन जी द्वारा संस्थापित श्री अ० प्र० आश्रम गुरुकुल चौरासी मथुरामें धर्म-शिक्षाप्राप्ति हेतु दाखिल हुआ। यहाँ ब्रह्मचारी वेषमें ५ वर्ष तक विद्याभ्यास किया। विशारदकी सम्पूर्ण विषयकी परीक्षा पास करके सन् १९३३ में महासभाश्रित दि० जैन महाविद्यालय ब्यावर (रा० स्था०) में पढ़ने चला गया। इस विद्यालयका संचालन इस समय रा० सा० स्व० से० मोतीलाल जी रानीवाले, तोताबाबू आदि करते थे। इन्हींकी धर्मनिष्ठतासे विद्यालय मथुरासे ब्यावर लाया गया। रा० सा० की माता जी तो उस समय हम विद्यार्थियोंको अपना बालक समझकर बड़ा लाड़ प्यार करती थी। न्यायतीर्थ, शास्त्री ब्यावर विद्यालयसे पास की। यहाँसे विद्याभ्यास पूरा करके ४ वर्ष तक समाजकी पाठशालाओं, छात्राओंमें अध्यापकी एवं गृहपति पदपर कार्य किया। कविता लिखनेका भी काफी शौक था। वर्तमानमें समाजकी प्राचीन संस्था भारतवर्षीय दि० जैन संघ चौरासी मथुरामें मैनेजरी एवं जैन संदेशके व्यवस्थापकीय पद पर कार्यरत हैं।

●

पं० स्वरूपचन्द्रजी, दर्शनशास्त्री, आयुर्वेद विशारद

●

आपका जन्म सन् १९२४ आसौज कृष्णा ४को ललितपुर नगरी में हुआ। आपके पिता स्व० सिंघई तुलसी-रामजी बड़े धार्मिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता थे। आपकी माता श्रीमती बैनीबाई हैं। आपके पिताजी की मृत्यु, जब आप ९ वर्षके थे तब ही हो गई थी। आपके दो बड़े भाई एवं तीन बहिनें हैं। ६ बच्चोंके भारको ढोती हुई एवं आश्रयहीन होकर आपकी माता जी अत्यन्त दुखी थी। आर्थिक स्थिति भी कमजोर थी। ऐसी विषम स्थितिमें आपके मामा जी श्रीमान् बाबू मुन्नालाल जी बी० ए० एल० एल० बी वकील बरुआसागरने अभूत पूर्व सहयोग दिया। आपके परिवारके सभी सदस्य मामाजीके उपकारसे उऋण नहीं हो सकते। आपके पूज्य चाचा श्रीमान् स्व० सि० रज्जूलाल जीने अपूर्व यातनाओंको सहते हुए आपकी हर प्रकारसे सहायता की, और उन्हीकी प्रेरणासे "श्री पार्श्वनाथ दि० जैन पाठशाला बरुआसागर में प्रवेशिका तक धार्मिक अध्ययन करके श्री स्व० हु० दिगम्बर जैन महाविद्यालय इन्दौरमें ७ वर्ष रहकर शास्त्री परीक्षा एवं जैन दर्शनशास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। साथ ही लाहौर विद्यापीठसे आयुर्वेद विशारद परीक्षा उत्तीर्ण की। आपका विवाह सन् १९४६में श्रीमान् स्व० मन्नूलाल जी अछरौनी (वर्तमान ललितपुर) की सुपुत्री श्रीमती कमला देवीके साथ हुआ। आपकी दो सन्तानें हैं।

आपका जीवन सामाजिक शिक्षण सस्थाओंमें ही शान्ति पूर्वक व्यतीत हो रहा है। आप निस्पृह विद्वान् है। आप मूक सेवक हैं। आप वर्तमानमें ललितपुरमें ही स्थानीय संस्थाओंमें धार्मिक शिक्षक दे रहे हैं। आप हमेशा सामाजिक एवं धार्मिक सेवाके लिये तत्पर रहते हैं। पर्दोसे दूर रहकर व्यक्तिको योग्य सलाह देकर उसे आगे बढ़ा देना आपकी प्रकृति बन गई है।

●

श्री मोतीचंद् जी जैन

•

मध्यप्रदेशके मध्यमें मालवा प्रांतके सुप्रसिद्ध शहर इन्दौरसे ४४ मील दक्षिणमें सनावद नामका एक व्यापारिक नगर है। वहीं पर आपका जन्म हुआ था।

श्री मोतीचन्दजीका जन्म वि० सं० १९९७ में आसौज वदी १४ को हुआ था। चूँकि स्वय माता रूपाबाई तथा पिता अमोलकचन्द जो धार्मिक तथा सात्विक विचारोंके थे इसलिए बच्चोंको भी लौकिक शिक्षणके साथ-साथ धार्मिक अध्ययन घर पर भी करनेके लिए जोर दिया जाता था। माता पिताकी गति-विधियोंका प्रभाव प्राय संतानपर पडता है।

माता रूपाबाईने विवाहसे पूर्व (१४ वर्षकी अल्पवयमें) ही गृहीत मिथ्यात्वका त्याग कर दिया था। विवाहके बाद कभी भी अपनी संतानको रात्रिमें अन्नकी कोई भी वस्तु न तो खिलाई न खाने दी। प्रतिदिन प्रात कालमें अपने बच्चोंको सदैव देवदर्शन करनेकी प्रेरणा दी। रात्रिमें जब स्वयं शास्त्र पढ़ती तो बच्चोंको भी सुननेके लिए बिठा लेतीं। संतानपर पिताकी अपेक्षा माँ का अधिक प्रभाव पड़ता है। माता रूपाबाई का जीवन बाल्यावस्थासे ही धर्ममय रहा है।

जब श्री मोतीचन्दजीने प्राथमिक अध्ययन करके हाईस्कूलका शिक्षण प्रारंभ किया तभीसे (संतानोंमें बडे होनेके कारण) घरेलू कार्योंमें माँ को तथा दुकानमें पिताजीको भी (स्कूल जानेके अतिरिक्त समयमें) सहायता करनी पडती थी।

दूकानदारी करने योग्य शिक्षण हो जानेके कारण पिताजीने और अधिक न पढाकर सन् १९५८ वि० स० २०१५ में मेट्रिककी परीक्षा पास करनेके बाद ही व्यापारिक जीवनमें प्रवेश करा दिया। निजी व्यापार (दूकान) होनेके कारण तथा बाल्यावस्थासे ही व्यापार सबन्धी कार्योंसे संलग्न होनेके कारण सामान्य ज्ञान होनेसे व्यापार सम्हालनेमें कठिनाई महसूस नही हुई। परपरागत सोने चाँदीका व्यापार होनेसे चाँदी सोने की परीक्षा करनेका ज्ञान प्राप्त करनेमें अधिक समय नही लगा। पिताजीको मदद मिल जानेसे व्यापारमें दिनदूनी उन्नति होने लगी।

१४ वर्षकी उम्रसे ही स्वयं पिता श्री ने धार्मिक तथा सामाजिक कार्योंमें श्री मोतीचन्दजीको भेजना प्रारभ कर दिया था।

ब्रह्मचर्य व्रत लेनेके पश्चात् श्री मोतीचन्दजीने अपने जीवनको और अधिक मर्यादित तथा सात्विक बनाया। जैसे—सिनेमाका त्याग, वस्त्रोंमें सादगी (खादीका प्रयोग), बाजारकी बनी मिठाई आदिका त्याग इत्यादि।

विरक्त विचारोंको देखकर पिताजीने व्यापार संबन्धी सारा कार्यभार पुत्र (मोतीचन्द जी) पर डाल दिया अर्थात् चोरके हाथमें चाबी पकड़ा दी। जिसके कारण पैर घरमें बँध गये। अवस्था एवं योग्यता विशेष होनेसे व्यापारके साथ-साथ धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रमें भी कार्य करनेकी रुचि बढने लगी। धार्मिक क्षेत्रमें स्वयं आगे होकर अनेक कार्य किये। जिस धार्मिक पाठशालामें बाल्यावस्थामें अध्ययन किया था उसीका समाजने आपको मंत्री बना दिया। प्रतिदिन शास्त्रकी गद्दीपर भी आपको ही शास्त्र प्रवचन करनेका भार सौंप दिया गया। पूजन तथा स्वाध्याय तो दैनिक जीवनका अंग था ही। सन् १९५९

में आचार्य श्री धर्मसागरजीका सनावद आगमन हुआ था तब आचार्य श्री ने इन्हें यज्ञोपवीतसे संस्कारित किया था ।

अब २७ वर्षकी आयु हो चुकी थी । इससे पहले अपने माता पिता तथा नगरवासियोंके साथ अनेक तीर्थोंकी यात्राएँ की थी । केवल दक्षिण भारतकी तीर्थयात्रा शेष थी । सन् १९६७ में श्रवणबेलगोलामें हुए भगवान् बाहुबलीके महामस्तकाभिषेकके समय (अन्य कोई साथी न मिलनेके उपरांत भी) अकेले जाकर उधरके तीर्थोंकी यात्रा की । वहाँसे लौटते समय ज्ञात हुआ कि बडवानीकी ओरसे आर्यिका श्रीज्ञानमती माताजीका सघ श्री सिद्धवरकूट सिद्धक्षेत्रकी वदनार्थ आ रहा है साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि माताजी महान् विदुषी है तथा धारावाहिक प्रवचन बडा ही प्रभावशाली होता है । इत्यादि रूपसे प्रशंसा सुनकर यात्राके मध्य ही बडी व्यग्रता रही । मनमें यह सोचकर आकुलता हो जाती थी कि कही ऐसा न हो कि मेरे लौटनेसे पूर्व ही उनका उधरसे बिहार हो जावे । घर आनेपर मालूम हुआ कि अभी वे बडवानी हैं । बडवानीसे बिहार करके पू० आर्यिका श्री ज्ञानमतीमाताजी चैत्र शुक्ला पूर्णमासी (वि० स० २०२४) को संघ (३ आर्यिकाओं तथा २ क्षुल्लिकाओं) सहित सनावद पधारी ।

समाजके अति आग्रहपर माताजीका चातुर्मास (सन् १९६७ में) सनावद हुआ । प्रारभमे ही पू० माताजीने श्री मोतीचन्दजीको कातत्र व्याकरणके दो दो सूत्र तथा दो तीन फुटकर विषय (समाधिशतक, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय आदि) पढाना प्रारभ कर दिया । पू० माताजीके सानिध्यमें ९ माहका समय देखते-देखते व्यतीत हो गया ।

अब माताजीके बिहार होनेका समय आ गया । अत्यधिक आग्रह होनेके कारण माताजीको साथमें चलनेके लिए हाँ कर दी थी किंतु मन डाँवाडोल हो रहा था । फैले हुए विशाल व्यापारको छोडकर जानेके अलावा यह हिम्मत नही हो पा रही थी कि माता-पिताको यह कह दिया जाय कि मै अब मुनिसघमें रहकर धर्माध्ययन करते हुए सुख शांति पूर्वक जीवन यापन करूँगा ।

बाँसवाडा पहुँचकर पू० माताजीके चरणोंमें अपने आपको समर्पित कर दिया । स्वस्थ होनेपर माताजीने क्रमसे न्यायप्रथमा तथा शास्त्री प्रथमवर्षके विषयोंको पढाना प्रारभ कर दिया । कुछ ही दिन पीछे घरसे पत्र आने लगे कि बहुत दिन हो गये माताजीका स्वास्थ्य अब ठीक होगा, शीघ्र लौट आओ । उत्तरमें केवल यही लिखा जाता रहा कि मेरा धार्मिक अध्ययन प्रारंभ हो गया है और सत्र कुशल मगल है ।

इस समय पू० माताजी आचार्य श्री शिवसागरजी महाराजके सघके साथ थी । श्री मोतीचन्दजीके शात परिणामों एव विद्याध्ययनको रुचिको देखकर सघके सभी साधु बडे प्रभावित हुए । इस प्रकार शीघ्र ही सबके स्नेहभाजन बन गये । धार्मिक अध्ययन एव साधुओंकी वैयावृत्ति करते हुए माताजीके मार्गदर्शनमे सानद समय व्यतीत होने लगा । श्री मोतीचन्दजीके निमित्तसे अन्य नगरवासियोका भी सघमे आवागमन होने लगा ।

पू० आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजीकी पुनीत प्रेरणासे दिल्लीमें सन् १९७२ में दि० जैन त्रिलोक शोध सस्थानकी स्थापना हुई जिसकी समितिमें आपको अनिच्छा होते हुए भी कोषाध्यक्षका पदभार सम्हालना पड़ा । सस्थानकी ओरसे सचालित श्री वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमालाके आप संपादक है । अभी तक इस ग्रन्थमालासे अष्टसहस्री आदि छोटे बड़े १२ पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं जो कि बहुत ही लोकप्रिय हुए । उनका संपादन भी आपने ही किया । भगवान् महावीर स्वामीके पच्चीससौवे निर्वाण महोत्सवके संदर्भमें संस्थानके मुखपत्रके रूपमें जुलाई १९७४ से 'सम्यग्ज्ञान' नामक एक मासिक पत्रिका प्रकाशित हो

रही है। उसका सुयोग्य संपादन भी आप ही कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त संस्थानके माध्यमसे ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर पर बनने जा रही विशाल जम्बू द्वीप रचना संबंधी समस्त कार्यभार भी आपपर ही है।

जहाँ आप तन-मनसे इन कार्योंको करनेमें संलग्न हैं वहाँ आपका आर्थिक सहयोग भी श्लाघनीय ही नही अनुकरणीय भी है। जम्बूद्वीप रचना निर्माणमें आपने २५०००) पच्चीस हजार रुपयेकी एक विपुलराशि प्रदान की है। इसी प्रकार बालकोंको धार्मिक ज्ञान करानेके लिए ग्रंथमाला द्वारा प्रकाशित पुस्तक "बाल विकास" में भी आपके पिताजी द्वारा निर्मित ट्रस्टकी ओरसे १५००) पन्द्रह सौ रुपयोंका पुनीत सहयोग प्राप्त हुआ है।

जैसी आपकी लेखन शैली प्रभावशाली है वैसे ही आपकी वाणीमें भी ओज है। कार्य करनेकी असीम क्षमता होते हुए भी निरभिमानता है। इसी प्रकार सहिष्णुता तो आपकी नस-नसमें समाई हुई है। साधुओंकी सेवा आपका चरमध्येय है। धर्म प्रसारके साथ-साथ धर्म प्रभावनाके भाव आपके मनमें सदैव जागृत होते रहते हैं।

●

पं० रवीन्द्र कुमारजी जैन शास्त्री, बी० ए०

●

जन्मस्थान—टिकैतनगर गाँव रेलवे स्टेशन-दरियाबादसे ६ मील उत्तर दिशामें है यहाँ पर जैन अग्रवालोंके ४० घर हैं। एक विशाल दि० जैन मंदिर है तथा जैन समाज द्वारा ५० वर्षोंसे संचालित श्री पार्श्वनाथ दि० जैन विद्यालय है जो धीरे-धीरे प्राइमरी शिक्षासे बढते-बढते आज हाईस्कूल तक व्यवस्था करने में सक्षम हो चुका है। इसी विद्यालयमें धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था भी है।

परिवारका परिचय—रवीन्द्र कुमारके पिता श्री छोटेलाल तथा माता श्री मोहिनी देवी (वर्तमान-में आर्यिका रत्नमती माताजी) की कूँखसे जन्म लेनेवाली १३ संतानें हैं।

अध्ययनकाल—श्री रवीन्द्रकुमार प्रारम्भसे ही प्रत्येक कक्षामें अपने सहयोगी विद्यार्थियोंसे विशिष्ट रहे है तथा हर कक्षामें प्रथम श्रेणी और विशेष योग्यता आदि प्राप्त करके पारितोषिक भी प्राप्त करते रहे हैं। जूनियर परीक्षामें पाठशालामें सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थीकी हैसियतसे पाठशाला द्वारा निर्धारित एक मात्र पारितोषिक प्राप्त किया। तत्पश्चात् हाईस्कूलकी परीक्षा भी प्रथमश्रेणीमें उत्तीर्ण की। हाईस्कूलके बाद रवीन्द्रकुमारने जिस कालेजमें प्रवेश लिया उस कालेजमें प्रवेश लेनेवाले समस्त विद्यार्थियोंकी तुलनामें आपके नम्बर सर्वाधिक थे जिससे कालेजकी मेरिट स्कालरशिप लगातार इण्टरके २ वर्ष तक आपको प्राप्त हुई। पश्चात् आपने लखनऊ-विश्वविद्यालयमें प्रवेश किया और सन् १९७० में लखनऊ विश्वविद्यालयसे बी० ए० की परीक्षा भी अच्छे प्राप्तांकोंसे उत्तीर्ण कर ली।

जीवनका मोड़—२२ वर्ष पूर्व जिस समय आर्यिका रत्न श्री ज्ञानमती माताजीने घर छोडा था उस समय रवीन्द्र कुमारकी अवस्था २ वर्षकी थी—अत्यन्त प्यारसे मैनादेवी (ज्ञानमती माताजी) की गोदमें पला हुआ बालक बडा होनेपर उन्हींके संस्कारोंमें ढला—इसी कारणसे विश्वविद्यालयका वातावरण तथा लखनऊकी भौतिक चकाचौंध अपना असर रवीन्द्र कुमारपर नहीं डाल सकी।

त्यागके कदम—रवीन्द्रकुमार बी० ए० में प्रवेश लेते ही सन् १९६८ में अपने पिताजी, भाईसाहब तथा परिवारके अन्य सदस्योंके साथ पूज्य माताजीके दर्शनार्थ प्रतापगढ गये थे। उस समय आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी आ० श्री शिवसागरजी महाराजके विशाल संघमें थी। वहीपर पूज्य माताजीने रवीन्द्रकुमारको २ वर्षका ब्रह्मचर्य व्रत दिया तथा साथमें पुनः २ वर्ष बाद दर्शनार्थ आनेका नियम भी दिया—परिणामस्वरूप बी० ए० की परीक्षा पास करनेके बाद पुन. रवीन्द्रकुमार टोंक पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठामें अपने भाई श्री कैलाशचन्दजीके साथ टोक आये और यहीसे आपके जीवनने एक नया मोड ले लिया।

धार्मिक अध्ययन—टोंककी पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा समाप्त हुई—भाई कैलाशचन्द तथा अन्य लोग जो टिकैतनगरसे आये थे—वापस जानेको तैयार हुए। उसी समय पूज्यमाताजीने रवीन्द्रकुमारको चल रहे धार्मिक शास्त्री कोर्सके अध्ययनार्थ संघमें कुछ समय रुक जाने की प्रेरणा की परन्तु रवीन्द्रकुमारके भाईसाहब किसी तरह छोडनेके लिए तैयार नही हो रहे थे। अन्ततोगत्वा पूज्य माताजीने वात्सल्य भावसे भरसक कोशिश करके १५ दिनका वायदा लेकर रवीन्द्रकुमारको घरवालोंसे छुड़ा ही लिया और भाई वगैरह अश्रु गिराकर टिकैतनगर वापस चले गये। रवीन्द्रकुमारको भी एकाएक घरसे इस प्रकार प्रथमबार वियोग होनेसे दुख तो हो ही रहा था लेकिन संघमें अनेक विद्यार्थियोंके मध्य चल रहे अध्ययनमें रमकर कुछ दिन बाद उस दुखको भूलने लगे। धीरे-धीरे पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये और घरसे पत्रोंके आनेका तांता शुरू हो गया लेकिन माताजीने घर जाने नही दिया। पूज्य माताजीके अथक परिश्रम तथा स्वयंके परिश्रमके कारण अल्प समयमें ही रवीन्द्रकुमारने सभी संघस्थ विद्यार्थियोंके साथ शास्त्रीके तीनों खण्डोंकी परीक्षा देकर समस्त विद्यार्थियोंसे अधिक नम्बरोंमें उत्तीर्णता प्राप्त की—धीरे-धीरे साहस बढ़ा और लौकिक अध्ययनसे रुचि समाप्त होती गयी। कुछ समय बाद भाई कैलाशचन्द आये और उनके साथ रवीन्द्रकुमार घर चले गये।

कुछ समय बाद पुन. आचार्य धर्मसागरजी महाराजके १९७१ वर्षमें अजमेर चातुर्मासके मध्य आप अजमेर आकर रहे और ३ माह तक निरन्तर धर्माध्ययन एवं साधु वैयावृत्तिका लाभ लिया—अजमेरमें ही आपकी माँने आर्यिका दीक्षा विशेष समारोहमें आचार्य धर्मसागरसे ली। यहाँसे पुन· रवीन्द्रकुमार घर चले गये और ६ माह बाद ब्यावरमें पूज्य माताजीके पास पधारे। ब्यावरमें आकर आपने विद्यावाचस्पति प्रथम खण्डकी परीक्षा दी।

ब्रह्मचर्य—ब्यावर में पुन. पूज्य माताजी के काफी प्रयास एवं स्वयंकी उदासीनताके कारण आपने नागौर जाकर आचार्य धर्मसागरजी महाराजसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करनेकी प्रार्थना की। क्षयोपशम विशेष होनेसे आचार्य महाराजने कुछ बातें रवीन्द्रकुमारसे पूछीं और उत्तरमें दृढ़ता को देखकर शुभमुहूर्तमें ५ मई १९७२ को आचार्यने रवीन्द्रकुमारको ब्रह्मचर्य व्रत दे दिया। नागौर निवासियोंने इस अवसर पर समारोह पूर्वक रवीन्द्रकुमारका अच्छा स्वागत किया। नागौरसे रवीन्द्रकुमार आचार्यका आशीर्वाद ग्रहण कर ब्यावर वापस आगये। ब्यावर नगरके निवासियों ने रवीन्द्रकुमारके ब्रह्मचर्य व्रतका समाचार पाकर विशालसभामें स्वागत समारोहमें अपनी अपनी शुभकामनाएं प्रदर्शित कीं। ब्यावरसे रवीन्द्रकुमार पुनः टिकैतनगर आकर व्यापारमें संलग्न हो गये।

आर्यिका रत्न श्रीज्ञानमती माताजी का ब्यावरसे दिल्ली १९७२में मंगलपदार्पण हुआ। वहीं पर चातुर्मास समाप्तिके बाद रवीन्द्रकुमार भी संघमें आ गये। 'सम्यग्ज्ञान' मासिक पत्रिका का प्रकाशन चल रहा है।

वास्तव में रवीन्द्रकुमार एक आदर्श परिवारके आदर्श नवयुवक हैं। आपसे भविष्यमें अनेकों आशाएं है। आशा है अन्य लोग भी आपके आदर्श परिवारसे कुछ शिक्षा ग्रहणकर त्यागमार्गमें अग्रसर होनेका प्रयास करेंगे।

●

कुमारी मालती शास्त्री, धर्मालंकार

●

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ० प्र० लखनऊ और अयोध्याके मध्य ।

पिता—श्री छोटेलाल जैन ।

माता—श्री मोहिनी देवी (वर्तमान आर्यिका श्री रत्नमती माताजी) ।

अध्ययन—मैट्रिक तक ।

धार्मिक अध्ययन—शास्त्री, धर्मालंकार, विद्यावाचस्पतिके २ खण्ड एवं न्यायतीर्थके २ खण्ड ।

आयु—(२२ वर्ष) बालब्रह्मचारी ।

आप आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजीकी गृहस्थ अवस्थाकी बहन है तथा रवीन्द्रकुमार जैन शास्त्रीकी बहिन है ।

●

कुमारी माधुरी, शास्त्री

●

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ० प्र० लखनऊ और अयोध्याके मध्य ।

पिता—श्री छोटेलाल जैन ।

माता—श्रीमती मोहिनी देवी (वर्तमानमें आर्यिका रत्नमतीजी) ।

अध्ययन—मैट्रिक तक ।

धार्मिक अध्ययन—शास्त्री परीक्षा पास ।

आयु—१८ वर्ष (बालब्रह्मचारी) ।

आप भी आर्यिकारत्न श्रीज्ञानमती माताजीकी गृहस्थ अवस्थाकी बहन है तथा रवीन्द्र कुमार जैन शास्त्रीकी बहिन है ।

●
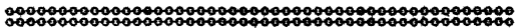
चतुर्थ खण्ड

साहित्य एवं संस्कृति

चतुर्थ खण्ड
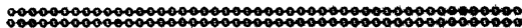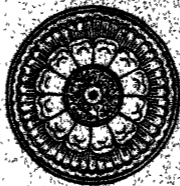
साहित्य एवं संस्कृति

सार्वधर्म

स्व० गुरु गोपालदासजी बरैया

●

यह जीव अनादि कालसे अनादिबद्ध जड़कर्मके वशीभूत अपने स्वाभाविक भावोंसे च्युत चतुर्गति सम्बन्धी घोर दुःखोंमें व्याकुलित चित्त मोह निद्रामें निमग्न पाप पवनके झकोरोंमें कभी उछलता और कभी डूबता विकराल अपार संसार-सागरमें वनमें व्याघ्रसे भयभीत मृगीकी नाई इतस्ततः परिभ्रमण कर रहा है। जबतक यह जीव निगोदादिक विकल चतुष्क पर्यन्त मनोज्ञान शून्य भवसमुद्रके मध्यप्रवाहमें अगृहीत मिथ्यात्व-की अविकल तरङ्गोंसे व्यग्र कर्मफल चेतनाका अनुभव करता हुआ स्वपर भेद विज्ञान विमुख ज्ञान-चेतनासे कोसों दूर घोर दुःखरूप पर्वतोंमें टकराता टकराता अपनी मौतके दिन पूरे करता फिरता है, तबतक ये प्रश्न उसको स्वप्नमें भी नही उठते कि, मैं कौन हूँ ? मेरा असली स्वरूप क्या है ? मैं इस संसारमें दुःख क्यों भोग रहा हूँ ? मै इन दुःखोंसे छूट सकता हूँ या नही ? क्या अब तक कोई भी इन दुःखोंसे छुटा है ? क्या इन दुःखोंसे छूटनेका कोई मार्ग बता सकता है ? इत्यादि विचार उत्पन्न होनेका कोई साधन ही नही है। दैवयोगसे कदाचित् सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रिय अवस्थाको प्राप्त होकर भी तिर्यञ्च तथा नरक गतिमें निरन्तर दुःख घटनाओंसे विह्वल होनेके कारण और देवगतिमें विषम विष समान विषय भोगोंमें तल्लीनताके कारण आत्म-कल्याणके सन्मुख ही नही होता। मनुष्य भवमें भी बहुतसे जीव तो दरिद्रताके चक्करमें पड़े हुये प्रातःकालसे सायंकाल तक जठराग्निको शमन करनेवाले अन्न देवताकी उपासनामें ही फँसे रहते है और कितने ही लक्ष्मीके लाल अपनी पाणिगृहीत कुलदेवीसे उपेक्षित होकर धन ललनाओंकी सेवा सुश्रूषामें ही अपने इस अपूर्वलब्ध मनुष्य जन्मकी सफलता समझते है। इतना होनेपर भी कोई कोई महात्मा इस मनुष्य शरीरसे रत्नत्रय धर्मका आराधन करके अविनाशी मोक्ष लक्ष्मीका अपूर्व लाभ उठाकर सदाके लिये लोक शिखरपर विराजमान हो अमर पदको प्राप्त होते है। यह ऊपर लिखा सब राग अलापनेका साराश यह है कि, इस संसारमें भ्रमण करते करते यह मनुष्य जन्म बड़ी दुर्लभतासे मिला है। इसलिये इसको व्यर्थ न खोकर हमारा कर्तव्य यह है कि, यह मनुष्यभव ससार समुद्रका किनारा है यदि हम प्रयत्नशील होकर इस संसार समुद्रसे पार होना चाहे तो थोड़ेसे परिश्रमसे हम अपने अभीष्ट फलको प्राप्त हो सकते है। और यदि ऐसा मौका पाकरभी हम इस ओर लक्ष्य न देंगे तो सम्भव है कि फिर अथाह समुद्रके मध्य प्रवाहमें पड़कर डाँवाडोल हो जाँय। ससारमें समस्त प्राणी सदा यह चाहते रहते है कि, हमको किसी प्रकार सुखकी प्राप्ति होवे तथा सदा उसके प्राप्त करनेका ही उपाय करते रहते है। परन्तु अज्ञानवश यथार्थ सुखसे वञ्चित रहकर घोर दुःखमें ही फसे रहते हैं। जिन जीवोंके कर्मभार कुछ हलका हो जाता है वे आत्मकल्याणकी खोजमें प्रयत्नशील हो जाते है। परन्तु इन खोजियोंमेंसे बहुतसे भोलेजीव ससारमें प्रचलित अनेक मिथ्यामार्गोंमें फँसकर अपने अभीष्ट फलको प्राप्त नही होते। इस असार संसारमें जैसे सच्चे महात्माओंके सदुपदेशसे सुखका यथार्थ मार्ग प्रचलित है उस ही प्रकार विषय लोलुपोंने भोले जीवोंको ठगनेके लिये बहुतसे मिथ्यामत रूपी जाल बिछा रखे है, जिनमें विवेकशून्य महाशय सहजहीमें फस जाते हैं। इस आत्मकल्याणके खोजियोंसे निवेदन है कि, जैसे छदामकी हाडीको भी

चतुर मनुष्य अच्छी तरह ठोक बजाकर ग्रहण करते है, उस ही प्रकार आपको भी चाहिये कि जिस धर्मपर आपके आत्माके कल्याणका दारमदार है, उस धर्मको अच्छी तरह परीक्षा करके ग्रहण करे। चिरकालसे यह भारतवर्ष विद्यादेवीकी उपासनामें शिथिल हो गया था इसी कारण विद्यादेवी भी इससे रुष्ट होकर युरुप अमेरिका, जापानादि देशोमें विहार करनेको चली गई थी, जिससे यह आरत भारत गारत हो गया। अपना सब गौरव खोकर नितान्त दरिद्रावस्थामें फसकर ज्यो त्यो अपनी मौतके दिन पूरे करने लगा। ऐसी ही अवस्थामें अनेक विषयाशक्तोंने अपने विषय पोषण करने के लिये अनेक मिथ्या धर्मोको प्रचलित कर बहुतसे भोले जीवोंको अन्धकूपमें पटक दिया। भारतकी यह शोचनीय दशा देख कुछ सच्चे परोपकारियोसे नही रह गया और उन्होंने इस निद्राग्रस्त भारतको ढोल बजाबजाकर जगाना शुरू कर दिया। हर्षकी बात है कि अब भारतवासियोकी आँखे खुल गई है और विद्यादेवीका आह्वाननभी हो चुका। अब ऐसे शुभ लक्षण दिखाई देने लगे है कि अब शीघ्र ही महारानी विद्यादेवी इस चिर विस्मृत भारतमें पदार्पण करेगी। और यह भारत फिर पहलेकी तरह वैभवयुक्त और आनन्द ध्वनित हो जाय। सच्चा आनन्द और मनुष्यजन्मकी यथार्थ सफलता वही हो सकती है कि, जहाँ भोग और लक्ष्मीकी आराधनाके साथ-साथ धर्म देवीकी भी उपासना होती हो, नीतिकारोंने भी ऐसा ही कहा है कि—

त्रिवर्गससाधनमन्तरेण पशोरिवायुर्विफलं नरस्य।
तत्रापि धर्म प्रवर वदन्ति न तद्विना यद्भवतोऽर्थकामौ ॥

भावार्थ—धर्म-अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थोके साधनसे ही मनुष्यजन्मकी सफलता है, उसमें भी धर्म प्रधान है। क्योकि धर्मके बिना अर्थ और काम उपलब्ध नही होते है। हर्षका विषय है कि विद्यादेवीकी आवनीमें चतुर भारतवासियोंने पहलेहीसे धर्मकी घोषणाका प्रारम्भ कर दिया है और सच्चे विद्वान् निष्पक्ष दृष्टिसे इस विषयकी खोजमें लग गये है कि, इस आत्माका सच्चा कल्याण करनेवाला यथार्थ धर्म कौन है। और अब इन निष्पक्ष महानुभावोंके सामने मिथ्यामतोंकी ढोलकी पोल अधिक कालतक छुपी नही रह सकती और ऐसा अच्छा मौका पाकर आज हमभी आपके सामने धर्मतत्त्वका विवेचन उपस्थित करते है। आशा है कि, आप इसको सावधानतया पढकर और उपादेय तत्त्वको विवेकपूर्वक स्वीकार करके हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

धृ धातुसे धरतीति धर्म इस प्रकार धर्म शब्दकी व्युत्पत्ति है। अर्थात् ससारके दुःखसे प्राणियोको निकालकर उत्तम सुखमें धरै उसको धर्म कहते है। यह धर्म इस आत्माकी निज विभूति है। इसपर किसी खास समाज या जातिका मौरुसी हक नही है। मनोज्ञान सहित पशु पक्षी मनुष्य देव नारकी जीवमात्र उसको धारण करके अपना कल्याण कर सकते है। इस ही कारणसे यह धर्म समस्त प्राणियोंका हितरूप होनेसे सर्वेभ्यो हित सार्व इस सार्व विशेषण विशिष्ट सार्वधर्म कहलाता है। अब आगे इस विषयका विवेचन किया जाता है कि, यह जीव इस ससारमें क्यो दुःख भोग रहा है और इस दुःखसे छूटनेका उपाय क्या है।

जब तक द्रव्यसामान्यका स्वरूप ध्यानमें न आ जावे तब तक द्रव्य विशेषका स्वरूप नही समझा जा सकता, इसलिये पहले द्रव्य-सामान्यका संक्षिप्त स्वरूप लिखा जाता है। द्रव्य (Matter) का स्वरूप पूर्व ऋषियोंने इस प्रकार कहा है कि अनेक गुणों (Qualities) के अविष्वग्भाव विशिष्ट अखण्ड पिण्डको द्रव्य कहते है। भावार्थ, द्रव्य एक अखण्ड पदार्थ है और वह अनेक कार्य करता है। इस कारण कार्यसे अनुमित कारणरूप शक्त्यंशोंकी कल्पना की जाती है। इन ही शक्त्यशोंको गुण कहते है। ये गुण उस अखण्ड पिण्ड स्वरूप द्रव्यसे भिन्न सत्तावाले कोई भिन्न पदार्थ नही है। किन्तु इस गुणोका जो समुदाय है सोई द्रव्य है और

वह द्रव्य है सोई ये गुण हैं। द्रव्यमे भिन्न गुण नही और गुणोंसे भिन्न द्रव्य नही है। संसारमें जितने शब्द हैं वे धातुओसे बने हुए है और क्रियावाचक शब्दको ही धातु कहते है, तथा क्रिया गुणकी ही होती है इसलिये प्रत्येक शब्द गुणवाचक है। गुणोंमे भिन्न द्रव्य जब कोई पदार्थ ही नही है तो द्रव्यवाचक शब्द ही कहाँसे आवेगा। जब वक्ताको समस्तगुणोंका समुदायरूप द्रव्य पदार्थ कहना अभीष्ट होता है तो अनेक गुणोमेंसे किसी एक गुणवाचक शब्दका प्रयोग करके ही द्रव्यका निरूपण करता है और ऐसे समयमें उस वाक्यको सकलादेश वाक्य कहते है। शब्द शास्त्रका मत है कि 'प्रत्यर्थ शब्दनिवेश.' अर्थात् प्रत्येक शब्दका अर्थ भिन्न रहे और कोषमे एक पदार्थके वाचक अनेक शब्द प्रतीत होते है उसका अभिप्राय यही है कि प्रत्येक पदार्थ अनेक गुणोंका समुदाय है और एक पदार्थ वाचक अनेक शब्द उसके भिन्न-भिन्न गुणोंके वाचक है। द्रव्यका निरूपण उसके अशभूत अनेक गुणोमेंसे किसी एक गुणवाचक शब्दके द्वारा किया जाता है। इसलिये किसी एक वक्ताने उसका निरूपण किसी एक गुणद्वारा किया तो दूसरे वक्ताने उसका निरूपण किसी दूसरे गुणद्वारा और तीसरे वक्ताने किसी तीसरे गुणद्वारा निरूपण किया और इस प्रकार एक द्रव्य-वाचक अनेक शब्द होनेसे 'प्रत्यर्थ शब्दनिवेश' इस शब्दशास्त्रके मतमे अविरुद्ध कोषकारने एक द्रव्यवाचक अनेक शब्द लिखे है। किन्तु जिस समय एक गुणवाचक एक शब्दसे केवल वही गुण विवक्षित होता है, उस समय उस वाक्यको विकलादेश कहते है। सकलादेश और विकलादेश वाक्यकी पहचान प्रकरणवश ज्ञाताकी बुद्धिमत्तापर निर्भर है। एक द्रव्यके अनेक गुणोमेंसे कुछ गुण ऐसे होते है कि वे समस्त द्रव्योमें पाए जाते है और ऐसे गुणोंको सामान्य गुण कहते है। और इस ही प्रकार कुछ गुण ऐसे पाए जाते है जो समस्त द्रव्योमें नही होते और ऐसे गुणोको विशेष गुण कहते है। सामान्य गुण यद्यपि अनेक है तथापि उनमें छह गुण प्रधान है उन ही छह गुणोका यहाँ पर संक्षिप्त स्वरूप लिखा जाता है। १ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका सदा काल सद्भाव रहे उसको अस्तित्व (Existance) गुण कहते है। २ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य अर्थात् उसके समस्त गुण प्रति क्षण एक अवस्थाको त्याग अन्य अवस्थाको प्राप्त होते रहे उसको द्रव्यत्व गुण कहते है। ३ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमे अर्थक्रियाकारित्व होय उसको वस्तुत्व गुण कहते है। ४ जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी न किसीके ज्ञानका विषय होय उसको प्रमेयत्व गुण कहते हैं। ५ जिस शक्तिके निमित्त-से द्रव्यका कुछ सस्थान होय उसको प्रदेशवत्त्व गुण कहते है। ६ जिस शक्तिके निमित्तसे वस्तुका वस्तुत्व अवस्थित रहे अर्थात् द्रव्यमे द्रव्यान्तररूप आदिक परिणमन न होकर जलमें कल्लोलकी तरह आप आपरूप ही परिणमे उसको अगुरुलघुत्व गुण कहते है। जिस समय द्रव्यका निरूपण अस्तित्व गुणकी मुख्यतासे करते है तब उसको सत् कहते है। जिस समय द्रव्यका कथन वस्तुत्व गुणकी मुख्यतासे करते है उस समय उसको वस्तु कहते है। जिस समय उसका प्रतिपादन द्रव्यत्व गुणकी मुख्यतासे करते है उस समय उसको द्रव्य कहते है। और जिस समय उसका वर्णन प्रमेयत्व गुणकी मुख्यतासे करते है उस समय उसको प्रमेय कहते है। इस ही प्रकार अन्य गुणोंकी अपेक्षासे भी कथन जानना।

द्रव्यके छह भेद है। अर्थात् जीव १, पुद्गल २, धर्म ३, अधर्म ४, आकाश ५ और काल ६। जोव, पुद्गल और काल अनेक भेद स्वरूप है और धर्म, अधर्म और आकाश ये तीन अनेक भेद स्वरूप न होकर केवल एक-एक अखण्ड द्रव्य है। जो गुण अपने समस्त भेदोमें रहकर अन्य द्रव्यमें न पाया जाय वही विशेष गुण लक्षणस्वरूप होता है और उसहीसे इन द्रव्योकी पहचान होती है। जीवका लक्षण चेतना है। पुद्गलका लक्षण स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण है। धर्मका लक्षण गति सहकारित्व है। अधर्मका लक्षण स्थिति सहकारित्व है। आकाशका लक्षण अवगाहन सहकारित्व है। और कालका लक्षण परिणमन सहकारित्व है। इसका खुलासा इस प्रकार है। आकाश द्रव्यमें अवगाहन नामक एक ऐसा गुण है जो समस्त द्रव्योंको युगपत्

अवकाश देनेमें समर्थ है। आकाश द्रव्य सर्वव्यापी है तथा शेष पाँच द्रव्य कुछ थोडेसे आकाशमें रहते हैं। जितने आकाशमें शेष पाँच द्रव्य रहते हैं उतने आकाशको लोकाकाश और शेष आकाशको अलोकाकाश कहते हैं। अलोकाकाशमें केवल आकाश ही है दूसरा द्रव्य कोई नही है। उपादान निमित्त प्रेरक उदासीन आदि अनेक कारणोंके मिलने पर कार्य होता है। जिस प्रकार मछलीके गमनको जल उदासीन कारण है उसही प्रकार गति विशिष्ट जीव पुद्गल (शेष चार द्रव्य गतिरहित अचल हैं) को गमनमें उदासीन कारण धर्म-द्रव्य (अचेतन) है। तथा जिस प्रकार गमन करते हुए पुरुषकी स्थितिमें उदासीन कारण पृथ्वी है उस ही प्रकार गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणत जीव पुद्गलोंको अधर्म द्रव्य (अचेतन) उदासीन कारण है। यह दोनों द्रव्य समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं। समस्त द्रव्योंके परिणमनमें उदासीन कारण काल द्रव्य है। इस काल द्रव्यके असंख्यात भेद है और एक-एक काल द्रव्य लोकाकाशके एक-एक प्रदेश (एक पुद्गल परमाणु जितने आकाशको रोकता है उतने आकाशको प्रदेश कहते हैं) पर रत्नोंकी राशिकी तरह स्थित है। चेतना उस गुणको कहते हैं कि, जिससे यह जीव समस्त पदार्थों को जानता है। यह चेतना गुण समस्त जीवोंमें है और पुद्गलादिक पाँच द्रव्योंमें नही है। इसलिये जीव द्रव्य चेतन है और शेष पाँच द्रव्य अचेतन है। स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार गुण केवल पुद्गल और पुद्गलके सर्व भेदोंमें पाये जाते है और शेष पाँच द्रव्योंमें ये गुण नही हैं इसलिये पुद्गल मूर्त्त द्रव्य है तथा शेष पाँच द्रव्य अमूर्त्त हैं। पुद्गल द्रव्यके दो भेद है एक परमाणु और दूसरा स्कन्ध। पुद्गलके सबसे छोटे खण्डको परमाणु (Atom) कहते है। अनेक परमाणुओंके पिण्डको स्कन्ध कहते हैं। स्कन्धके २२ भेद है। उनमेंसे केवल पाँच भेदरूप स्कन्धोका जीवमे बन्ध होता है और शेष स्कन्धोंका जीवसे बन्ध नही होता है। उन पाँच स्कन्धोके नाम इस प्रकार है—आहारवर्गणा १, तैजसवर्गणा २, भाषावर्गणा ३, मनोवर्गणा ४ और कार्माणवर्गणा ५। जीव द्रव्यके दो भेद हैं—मुक्त और संसारी। संसारीके दो भेद है—त्रस और स्थावर। स्थावरके पाँच भेद है—पृथ्वी १, जल २, अग्नि ३, पवन ४ और वनस्पति ५। इन पाँचों ही स्थावरोंके केवल एक स्पर्शनेन्द्रिय होती है। जिनके स्पर्शन और रसना दो इन्द्रिय होती है उनको द्वीन्द्रिय और जिनके घ्राण सहित तीन इन्द्रिय होती हैं उनको त्रीन्द्रिय तथा जिनके नेत्र सहित चार इन्द्रिय होती है उनको चतुरिन्द्रिय और जिनके श्रोत्र सहित पाँच इन्द्रिय होती हैं उनको पञ्चेन्द्रिय कहते है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय इन चारो प्रकारके जीवोंको ही त्रस जीव कहते हैं। पञ्चेन्द्रियके दो भेद है—सञ्ज्ञी और असञ्ज्ञी। जिनके मन होय उनको सञ्ज्ञी और जिनके मन नही होय वे असञ्ज्ञी कहलाते हैं। चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सब जीव असञ्ज्ञी होते है। सञ्ज्ञी जीवोंके चार भेद हैं—मनुष्य १, तिर्यञ्च (पशु) २, देव ३ और नारकी ४। असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त समस्त जीव तिर्यञ्च ही कहलाते हैं।

'मूलं नास्ति कुतः शाखा' इस वाक्यको अवलम्बन करके हमारे बहुतसे भाइयोंका कथन इस प्रकार है कि यह बन्ध, मोक्ष आदिकका कथन तब युक्तिसगत हो सकता है जब जीवकी सत्ता सिद्ध हो जाय। जीवकी सत्ताकी सिद्धिके बिना यह सब कथन आकाशपुष्पवत् है। ऐसी शङ्का होनेपर हम भी उचित नहीं समझते कि इस शङ्काका समाधान किये बिना आगे बढें इसलिये अब जीव द्रव्यकी सत्ता न्याय (Logic) से सिद्ध की जाती है। आगे भी तत्त्वके विवेचनमें अनेक शङ्कायें उठेंगी और उनका भी समाधान न्यायकी रीतिसे ही किया जायगा। इसलिये जिन महाशयोंने न्यायशास्त्रका कुछ अभ्यास किया है, वे ही इस निबन्धके समझनेके अधिकारी हैं। जिन महाशयोंने न्यायका अभ्यास बिल्कुल नही किया है उनसे प्रार्थना है कि, वे कमसे कम हेतु और हेत्वाभासका स्वरूप अवश्य जान लें। न्यायके इतनेसे ज्ञानके बिना इस निबन्धके पढनेवाले कृतकार्य्य नहीं हो सकते।

मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ, मैं राजा हूँ, मैं रंक हूँ, इत्यादिक स्वसंवेदन प्रत्यक्षमें 'मैं' शब्दका वाच्य जीव ही है अर्थात् जिसको सुख दुःखादिकका अनुभव होता है वही जीव पदार्थ है, इसलिये जीव पदार्थका अनुभव प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है। अथवा जीवच्छरीरं सात्मकं प्राणादिमत्त्वात् प्रश्नोत्तरदातृत्वाच्च घटादिवत्। अर्थात् जिन्दा शरीर आत्मासहित हैं क्योंकि श्वासोच्छासवाला है, जो जो पदार्थ श्वासोच्छ्वास सहित नहीं हैं सो आत्मा सहित भी नहीं हैं, जैसे घटादिक। अथवा जिन्दा शरीर आत्मासहित हैं क्योंकि वह प्रश्नका उत्तर देता है। जो जो पदार्थ प्रश्नका उत्तर नहीं देता वह आत्मा सहित भी नही है जैसे घटादिक। इस प्रकार केवल व्यतिरेकी अनुमान प्रमाणोंसे भी जीवका अस्तित्व सिद्ध होता है। यहाँ शंकाकार फिर कहता है कि, उपर्युक्त प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाणोंसे जीवका अस्तित्व सिद्ध है यह तो हम स्वीकार करते हैं, परन्तु इस प्रकारके जीवका अस्तित्व गर्भसे लगाकर मरणपर्यन्त ही प्रतीत होता है। गर्भसे पहले और मरणके पश्चात् जीवका अस्तित्व प्रतीत नहीं होता। इस शंकाका समाधान इस प्रकार है कि जीव अनादि निधन है, क्योंकि यह अस्तित्ववान् होनेपर कारणजन्य नहीं है। जो जो पदार्थ अस्तित्ववान् होनेपर कारणजन्य नहीं होते वे वे नित्य होते है, जैसे पृथ्वी आदि। और जो जो अस्तित्ववान् होनेपर कारणजन्य होते हैं वे वे नित्य नहीं होते, जैसे घटादिक। इस प्रकार अनुमान प्रमाणसे जीव पदार्थ अनादि निधन सिद्ध होता है। अब यहाँ शंकाकार फिर कहता है कि, यह हेतु भागासिद्ध नामक हेत्वाभास है। क्योंकि हेतुका कारणजन्यत्वाभाव अंश असिद्ध है अर्थात् जीव भूतचतुष्टय जन्य है। समाधान—भूत चतुष्टय जीवके निमित्त कारण है या उपादान कारण ? यदि निमित्त कारण है तो भूत चतुष्टयसे भिन्न उपादान कारण कोई दूसरा ही ठहरा और जो वे उपादान कारण हैं वही जीव पदार्थ है। और यदि भूत चतुष्टय जीवका उपादान कारण है तो पृथ्वी, अप्, तेज और वायु ये चारों पदार्थ भिन्न भिन्न जीवके उपादान कारण है, या चारों मिलकर जीवके उपादान कारण है ? यदि भिन्न-भिन्न जीवके कारण हैं तो पृथ्वीके बने हुए जीव दूसरे और जलके बने हुए दूसरे तथा पवनके बने हुए अन्य और अग्निके बने हुए अन्य इस प्रकार चार तरहके जीव होने चाहिये। परन्तु इस प्रकार चार तरहके जीव प्रतीत नही होते इसलिये भूत चतुष्टय भिन्न-भिन्न रीतिसे कारण नही है। यदि चारों मिलकर जीवके उपादान कारण हैं तो भी युक्तिसंगत नही है। क्योंकि घटपटादिक कार्योंका उपादान कारण सजातीय होता है, इसलिये यदि जीवका उपादान कारण भूतचतुष्टय है तो भूत चतुष्टयके स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गुण जीवमें जाने चाहिये थे परन्तु जीवमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, ये चार गुण नही हैं, यदि ये चार गुण जीवमें होते तो जैसे पृथ्वी, अप्, तेज, वायु चार गुणसहित होनेसे वे स्वयं तथा घटपटादिक उनके कार्य इन्द्रियगोचर होते है उस ही प्रकार जीव भी इन्द्रियगोचर होता। परन्तु जीव इन्द्रियगोचर नही है, इसलिये जीव भूतचतुष्टयजन्य नही है। यदि कहो कि पृथ्वी अप्, तेज, वायुका कार्यभूत यह शरीर इन्द्रिय गोचर है और शरीर ही जीव है सो भी ठीक नही है, क्योंकि ऐसा माननेसे मृतक शरीरमें भी जीवका प्रसंग आवेगा। इस प्रकार हेतुमें भागासिद्ध दोष नही आ सकता। अथवा जीव अनादि निधन है क्योंकि तत्काल जात बालकके दूध पीनेकी आकांक्षा होती है। यह हेतु असिद्ध भी नही है क्योंकि दूध पिलानेसे बालक रोनेसे बन्द हो जाता है। आकांक्षा उस ही पदार्थमें होती है जिसका पहिले अनुभव किया हो और पूर्व अनुभव सिद्ध होनेसे जीवका भी जन्मसे पहले अस्तित्व सिद्ध होता है। अथवा अनेक मनुष्योंको पूर्वभवके वृत्तान्तका जातिस्मरण होता है और उसकी सत्यताकी अनेक महाशयोंने अच्छी तरह परीक्षा की है। तथा अनेक समाचारपत्रोंमें भी इस विषयके लेख निकल चुके हैं। अथवा अनेक मनुष्य मरण प्राप्त करके भूतादिक देव योनिमें उत्पन्न होते हैं और वे अपनेको मनुष्य शरीर त्यागकर वहां उत्पन्न हुआ बताते है। इस विषयके भी अनेक लेख समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो चुके हैं। अथवा गुजरात प्रातमें एक मोहम्मद छैल नामक महाशय हैं जिनको कि कोई देव सिद्ध है। उन्होंने

अनेक बार ऐसे-ऐसे कार्य करके दिखाये हैं कि जो कि मनुष्यशक्तिके सर्वथा बाहर हैं। जैसे चलती हुई मेल-ट्रेनको रोक देना। ये महाशय अभी विद्यमान है प्राय करके आप गुजरातमें घूमते रहते है, यदि किसी महाशयको उपर्युक्त कथनमें संशय हो तो वे प्रत्यक्ष मिलकर उनसे अपना संशय दूर कर सकते हैं। इन सबका खुलासा इस प्रकार है कि समस्त द्रव्योंमें अस्तित्व नामक एक सामान्य गुण है। उस गुणका कार्य यह है कि जो द्रव्य है वह हमेशासे है और हमेशातक रहेगा अर्थात् सत् (Existence) का कभी विनाश (No Existence) नही होता और असत् (No Existence) का कभी उत्पाद (Existence) नही होता। भावार्थ—जो पदार्थ है वह हमेशासे है और हमेशातक रहेगा और जो नही है वह हमेशासे ही नही है और आगे भी हमेशातक कभी भी नही होगा। संसारमें जो अनेक पदार्थोंका उत्पाद और विनाश दीखता है वह केवल भ्रम है, न किसीकी उत्पत्ति होती है और न किसीका विनाश होता है। संसारमें जो घटका विनाश और घटकी उत्पत्ति यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है उसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि, द्रव्य एक आकारसे दूसरे आकारमें हो गया। अर्थात् पहले मृत्तिका द्रव्य पिण्डाकारमें था सो घटाकार हो गया इसही को घटोत्पत्ति कहते है और जो घटाकारको छोडकर कपालाकारमें हो गया उसही को घटका विनाश कहते है। वस्तवमें न कोई पदार्थ नष्ट हुआ है और न कोई पदार्थ उत्पन्न हुआ है। पहले जैसा लिख आये है कि, द्रव्यमें एक द्रव्यत्व नामक गुण है जिसके निमित्तसे समस्त सत्‌रूप पदार्थ प्रतिक्षण एक-एक अवस्थाको छोडकर अवस्थान्तरको प्राप्त होते रहते हैं, न किसीका नाश होता और न किसीकी उत्पत्ति होती है। इसहीको आधुनिक फिलासफीमें विकास सिद्धान्त कहते हैं। प्रत्येक द्रव्य अखण्ड है न तो कभी अखण्ड द्रव्य खण्डरूप होता है और न कभी उसकी उत्पत्ति या विनाश होता है। उस अखण्ड द्रव्यके कल्पित अंशरूप गुण (Qualities) भी सब काल अस्तित्व-रूप रहते है। उनका भी कभी उत्पत्ति विनाश नही होता। किन्तु द्रव्यकी तरह वे भी प्रतिक्षण एक अवस्थासे अवस्थान्तरको प्राप्त होते हुए कथञ्चित् नित्यानित्यात्मक है। इस अवस्थासे अवस्थान्तर होनेको ही परिण-मन कहते है और यही द्रव्यत्व गुणका कार्य है। और इन अवस्थाओंमेंसे प्रत्येक अवस्थाको पर्याय कहते हैं। जीवके अस्तित्वको स्वीकार करके भी जो महाशय जीवको एक स्वतन्त्र द्रव्य नही मानते हैं, उनसे पूछा जाता है कि जो जीव द्रव्य नही है तो जीव गुण है या पर्याय है। इनसे अतिरिक्त कोई वाच्य हो ही नही सकता। क्योंकि जितने वाच्य पदार्थ हैं वे द्रव्य गुण और पर्याय इन तीनोंमेंसे किसी न किसीके वाच्यमें अन्तर्भूत हो जायगे। यदि जीव गुण है तो उसका गुणी कौन ? गुणीके विना गुण होता नही। यदि कहोगे कि जीव गुणका गुणी जीव द्रव्य है तो जीव द्रव्य स्वतन्त्र सिद्ध हुआ। यदि कहोगे कि जीव गुण पुद्गल द्रव्यका है तो गुण नित्य होता है, इसलिये घटपटादिक समस्त पुद्गल द्रव्योंमें उसकी प्रतीति होनी चाहिये। परन्तु प्रतीति होती नही इसलिये जीव पुद्गलका गुण नही है। यदि जीव पर्याय है तो पर्याय किसी गुणकी अवस्था विशेषको कहते है, इसलिये फरमाइये कि वह जीव पर्याय पुद्गलके कौनसे गुणकी अवस्था विशेष है और उस गुणका नाम क्या है ? तथा उसका लक्षण क्या है ? प्यारे भाइयो, न तो कोई ऐसा गुण ही है और न कोई उसका लक्षण ही है और यदि है तो कोई बतावे और प्रमाण कसौटीपर उसकी परीक्षा करावे। इस संसारमें अनेक मास मदिराके लोलुपोंने जीवके अस्तित्वको कुयुक्तियोंके आवरणसे छिपाकर जीव दयाके सिद्धान्तको मटियामेट करनेके लिये भोले भाइयोंको मिथ्या जालमें फसाया है। हमारे भोले भाई मिथ्या दृष्टान्तोंमें उलझकर सनातन सिद्धान्तोंसे च्युत होते है। यह नही समझते कि केवल दृष्टान्त साध्यकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं है। जबतक समीचीन हेतु उपस्थित नही किया जायगा तबतक साध्यकी सिद्धि नही हो सकती। रसोई घरमें धुआ और अग्निको साथ देखकर कोई यह व्याप्ति बना लेवे कि, जहाँ जहाँ अग्नि होती है वहाँ वहाँ धूम होता है तो उसके इस सिद्धान्तको कोई भी बुद्धिमान् स्वीकार नही कर सकता, क्योंकि

तप्त लोहेके गोलेमें धूम रहित अग्नि दीखती है। जीवके अस्तित्वको लोप करनेवाले महात्माओंने भोले भाइयोंको भ्रममें डालनेवाले अनेक कुदृष्टान्त दे रखे हैं, उनमेंसे नमूनेके वास्ते एक दृष्टान्त और उसकी समीक्षा यहाँपर दिखलाई जाती है। उन महाशयोंका कहना है कि जैसे गुड महुआ आदिक अनेक पदार्थोंके मिलानेसे मदिरामें नशेकी शक्ति हो जाती है उस ही प्रकार पृथ्वी जलादिक अनेक पदार्थोंके मिलनेसे पुद्गलमें चेतना शक्ति हो जाती है। प्यारे पाठको! जरा स्वस्थ चित्तसे विचारिये कि पृथ्वी आदिक अनेक द्रव्योंके परमाणुओंमें जो चेतनाशक्ति उत्पन्न हुई है वह चेतनाशक्ति किसी खास परमाणुमें हुई है या समस्त परमाणुओंमें हुई है? अथवा उन समस्त परमाणुओंसे भिन्न कोई नवीन पदार्थ उत्पन्न हुआ है। यदि कहोगे कि किसी एक परमाणुमें चेतनाशक्ति उत्पन्न हुई है तो यह बात युक्तिसे असंगत है, क्योंकि सायोगका फल सयुक्त पदार्थोंके समस्त अशोमें होता है। यदि कहोगे कि समस्त परमाणुओंसे भिन्न एक नवीन पदार्थ उत्पन्न हो गया है तो असत्के उत्पादका प्रसग आवेगा। यदि कहोगे कि समस्त परमाणुओंमें वह शक्ति हो गई है तो शरीरके समस्त अगोंको काटकर भिन्न करने पर नाकको सूंघनेका काम, जिह्वाको चखनेका काम, कानको सुननेका काम, हाथको लिखनेका काम करना चाहिये था। जैसे कि एक बोतल मदिरा किसीने तैयार की तो उसमें जो नशेकी शक्ति है वह उसके समस्त परमाणुओंमें हुई है, इसलिये उसमें अगर किसीको एक प्याला भी भिन्न करके पिलाई जावे तो वह भी नशा करती है। परन्तु शरीरके भिन्न भिन्न अग इस प्रकार कार्य नही करते है। यदि कहो कि शरीरके अग भिन्न भिन्न होनेसे वह चेतनाशक्ति नष्ट हो जाती है तो मदिराकी नशेकी शक्ति क्यो नही नष्ट हो जाती है। यदि कहो कि दृष्टान्त सब अंशोंमें नहीं मिलता तो विवाद ग्रस्त अशमे ही मिलान करते है। खैर, मान भी लिया जाय कि खण्ड होनेपर वह शक्ति नष्ट हो जाती है तो अनेक पुरुषोके हस्तादिक एक एक अंग नष्ट होनेपर शेष अंगोंमें चेतनाशक्ति क्यों दीखती है? और यदि कहो कि छोटे टुकडेकी शक्ति नष्ट हो जाती है और बडेकी नष्ट नही होती सो भी क्यों? हम भी विपक्षमें कह सकते हैं कि बडे की नष्ट नही होती। तभी छोटे टुकडे मस्तकके जुदा होनेपर बडे टुकडे खण्डमें भी वह शक्ति नही रहती। इत्यादि विचार करनेमे दोष ही दोष नजर आते है। प्यारे भाइयो! जरा विचार करके देखो तो गुड महुवा आदिक अनेक पुद्गल द्रव्योंके मिलानेसे जो मदिरा बनी है उसमें कौन-सा नशा उत्पन्न हो गया। यदि मदिरामें नशा उत्पन्न हुआ होता तो बोतल उछलती फिरती। प्यारे भाइयो! मदिराके उपादान कारणोंमें जो स्पर्श, रस, गध और वर्ण मौजूद थे वे ही वर्णादिक गुण ही कुछ तारतम्य अवस्थाको प्राप्त होकर केवल अवस्थामे अवस्थान्तररूप हुए हैं, उनके निमित्तसे जीवका चेतनागुण विकृत होकर उन्मत्त अवस्थाको प्राप्त होता है। मदिरामें कोई भी नवीन चीज उत्पन्न नही हुई है। इस प्रकार अनेक प्रकारसे परीक्षा करनेपर यही बात निर्विवाद सिद्ध होती है कि, जीव एक स्वतन्त्र द्रव्य अनादि निधन है। न कभी इसकी उत्पत्ति होती है और न कभी इसका नाश होता है किन्तु अवस्थासे अवस्थान्तर होती रहती है और यही युक्ति और अनुभव सिद्ध होता है।

जीव द्रव्यके मुक्त और संसारी इस प्रकार दो भेद पहले कह आये हैं। परन्तु बहुतसे महाशय इस विषयमें सहमत न होकर फरमाते हैं कि ऐसा नही है किन्तु चेतन द्रव्यके दो भेद हैं—एक परमात्मा और दूसरा जीवात्मा। परमात्मा सर्वज्ञ सर्वव्यापी सर्व-शक्तिमान अनादि शुद्ध जगत् का कर्ता हर्ता जीवात्मासे नितान्त भिन्न सच्चिदानद है। और जीवात्मा अल्पज्ञ इच्छा द्वेष प्रयत्न सहित अनेक द्रव्य हैं। ऐसे महाशयोंसे निवेदन है कि, वे पहले ऐसे ईश्वरकी सत्ता सिद्ध कर लें पीछे उनके विशेष धर्मोंपर विचार किया जायगा। उस ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करनेके लिये वे महाशय इस प्रकार अनुमान प्रमाण उपस्थित करते है—पृथ्वीसूर्यचंद्रादयः ईश्वरजन्याः मनुष्याजन्यत्वे सति कार्यत्वात्। अर्थात् पृथ्वी चन्द्रसूर्यादिक ईश्वरजन्य है क्योंकि

मनुष्यकर्तृक न होकर कार्य हैं। जो मनुष्य के अजन्य होनेपर कार्य नहीं हैं। वे वे ईश्वरजन्य भी नही हैं। जैसे आकाशादिक, इस प्रकारके केवल व्यतिरेकी अनुमानसे ईश्वरकी सत्ता सिद्ध होती है। अब आगे इस अनुमितिका विवेचन किया जाता है। इस अनुमिति के हेतुमें जो कार्य पद पडा है यदि कार्यका लक्षण प्राग-भावका प्रतियोगी माना जाय तो हेतु भागासिद्ध नामक हेत्वाभास है, क्योंकि सूर्य चन्द्रादिका अभाव पहले सिद्ध हो जाय तब उनमें कार्यत्व हेतु सिद्ध हो। अथवा कार्यत्व हेतु व्यभिचारी नामक हेत्वाभास है, क्योंकि घासादिक कार्य होनेपर भी कर्तृजन्य नहीं हैं। यदि कहोगे कि घास साध्य कोटिमें पडा हुआ है इसलिये हेतु व्यभिचारी नहीं है, तो महाशयजी पहले आप यह बताइये कि आपके साध्यमें जो ईश्वरजन्यत्व पद है उससे आपको क्या अभिप्रेत है। क्या ईश्वर घटको बनाने वाले कुम्भकारकी तरह सूर्यादिकके उपादान कारण भूत परमाणुओंको एकत्रित करके उनको सूर्यादिके आकाररूप बनाता है अथवा व्यूह रचनेवाले सेनापतिकी तरह परमाणुओंको आज्ञा देता है कि, जिसको सुनते ही सब परमाणु सूर्यादिक आकार हो जाते हैं। या ईश्वरके ऐसी इच्छा होती है कि इन परमाणुओंके सूर्यादिक बन जायं। उसकी ऐसी इच्छा होते ही वे परमाणु स्वयं सूर्यादिकके आकार हो जाते हैं। यदि प्रथम पक्ष माना जाय अर्थात सूर्यादिकके उपादान कारणभूत परमाणुओंको एकत्रित करके ईश्वर उनको सूर्यादिकके आकार बनाता है तो हेतु अनुमानबाधित (सत्प्रतिपक्ष) हेत्वाभास है। क्योंकि उसके साध्यके अभावका साधक अनुमानान्तर विद्यमान है। और वह अनुमान इस प्रकार है। ईश्वर पर-माणुओंको एकत्र करके सूर्यादिकको नही बनाता, क्योंकि वह क्रिया रहित है, जो जो क्रियारहित होता है वह वह परमाणुओंको एकत्र नहीं कर सकता जैसे आकाशादिक। यह हेतु असिद्ध भी नही है क्योंकि उसकी सत्ता अनुमानान्तरसे सिद्ध है। जैसे, ईश्वर क्रियारहित है क्योंकि वह सर्वव्यापी है, जो जो सर्वव्यापी होते हैं वे वे क्रियारहित होते है। जैसे आकाशादिक। यदि दूसरा पक्ष माना जाय अर्थात् ईश्वरकी आज्ञासे परमाणु सूर्या-दिकके आकार हो जाते हैं तो भी पूर्वोक्त दोष आता है क्योंकि ईश्वर शब्दरहित है इसलिये आज्ञा नहीं दे सकता। यदि ईश्वर शब्दसहित माना जाय तो सब झगडा जल्दी तय हो सकता है। ईश्वर शब्द द्वारा सबको अपनी सत्ता सिद्ध करा सकता है। परन्तु खेदके साथ लिखना पडता है कि अनेक प्रार्थना करने पर भी ईश्वर एक भी प्रश्नका उत्तर नहीं देता। जिस प्रकार ईश्वरमें शब्दोच्चारणकी शक्ति नही है उस ही प्रकार परमाणुओंमें शब्द सुननेकी शक्ति नहीं है, क्योंकि वे जड है तथा कर्ण इन्द्रिय रहित है। यदि तीसरा पक्ष माना जाय अर्थात् ईश्वरकी इच्छा होनेमात्रसे परमाणु सूर्यादिकके आकार हो जाते हैं सो भी युक्तिसगत नही है, क्योंकि परमाणुओंको ईश्वरकी इच्छाका ज्ञान हो सकता। अथवा ऐसी इच्छा ईश्वरका स्वभाव है या विभाव। यदि कहोगे ऐसी इच्छा ईश्वरका स्वभाव है तो स्वभाव नित्य होता है, तो जिस समय ईश्वरके सूर्यादिक रचनेकी इच्छा हुई उससे पहले भी ईश्वरके ऐसी इच्छाका सद्भाव हुआ और जब पहले ही ईश्वरके इच्छा थी तो सूर्यादिक भी पहले ही बन चुके थे बने हुयेको क्या बनाया। अथवा ईश्वर जब हमेशासे है तो उसका स्वभावरूप इच्छा भी अनादिसिद्ध हुई और इच्छाके अनादिसिद्ध होनेपर उसके कार्य सूर्यादिक भी अनादिसिद्ध हुए। यदि उस इच्छाको विभाव माना जाय तो ईश्वर शुद्ध नही ठहर सकता। क्योंकि विभाव भाव अशुद्ध द्रव्यके ही होते हैं। तथा इच्छा अनुपलब्ध पदार्थकी उपलब्धिके लिये होती है इसलिये इच्छा दु:खात्मक होनेसे ईश्वरके दु:खी होनेका प्रसंग आता है। इस प्रकार कार्यत्वहेतुमें जो घासादिकमें व्यभिचार दिखाया था और उसपर शंका-कारने घासको साध्य कोटिमें डाल दिया था सो घास साध्य कोटिमें नहीं जा सकता; क्योंकि ईश्वरके कर्तृत्वमें जो तीन पक्ष दिखाये वे तीनों ही बाधित हैं। इसलिये घासका यदि कोई कर्त्ता कल्पना किया जाय तो वह कर्त्ता वैसा ही कृषाण होगा जैसा कि गेहूँ चने वगैरहके खेतोंको जोतनेवाला कृषाण होता है। परन्तु घासका पैदा करनेवाला ऐसा कोई कृषाण प्रतीत नही होता है। इसलिये हेतु व्यभिचारी है। अथवा कार्यत्व हेतु सत्प्रतिपक्ष नामक हेत्वाभास है क्योंकि साध्यके अभावका साधक अनुमानान्तर विद्यमान है। वह अनुमान इस

प्रकार है—सूर्यादिक ईश्वर कारणक (जन्य) नहीं है; क्योंकि सूर्यादिकका ईश्वरके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नहीं होता। जिसका जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नहीं होता वह तत्कारणक नही होता। जैसे आकाशका घटके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नहीं होता है इसलिये घट आकाशकारणक नही है। सूर्यादिकका भी ईश्वरके साथ अन्वय व्यतिरेक घटित नही होता, इसलिये सूर्यादिक ईश्वरकारणक नहीं हैं। कार्यके सद्भावमें कारणके सद्भावको अन्वय कहते हैं। तथा कारणके अभावमें कार्यके अभावको व्यतिरेक कहते है। अन्वय व्यतिरेकभाव और कार्यकारणभावमें परस्पर गम्यगमक सम्बन्ध है। सोई न्यायसिद्धान्तकारोंने कहा है कि—"अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभाव"। यद्यपि सूर्यादिकके सद्भावमें होनेसे अन्वय तो घटित हो जाता है, परन्तु क्षेत्र व्यतिरेक अथवा कालव्यतिरेक इन दोनों व्यतिरेकोंमेंसे एक भी व्यतिरेक घटित नहीं होता। इसका खुलासा इस प्रकार है कि, यदि यह बात सिद्ध हो जाती कि जहाँ-जहाँ ईश्वर नहीं है वहाँ-वहाँ सूर्यादिक भी नही है तो ईश्वर और सूर्यादिकमें क्षेत्रव्यतिरेक सिद्ध हो जाता। परन्तु ईश्वर सर्वव्यापी है इसलिये उसका कहीं भी अभाव न होनेसे क्षेत्रव्यतिरेक घटित नही होता। तथा इस प्रकार जब यह बात सिद्ध हो जाती कि जब-जब ईश्वर नही है तब-तब सूर्यादिक भी नहीं है तो कालव्यतिरेक सिद्ध हो जाता परन्तु ईश्वर नित्य द्रव्य है इस लिये उसका कभी भी अभाव न होनेसे सूर्यादिकके साथ उसका कालव्यतिरेक सिद्ध नहीं होता इसलिये अन्वय व्यतिरेक घटित न होनेसे सूर्यादिक ईश्वरकारणक नहीं हैं। यदि कार्यत्वका लक्षण सावयवत्व माना जाय तो सावयवत्वके दो अर्थ होते हैं। अर्थात् अवयवोंमे बना हुआ या अवयववान्। यदि प्रथम पक्ष माना जाय तो हेतु साध्यसम नामक हेत्वाभास है और यदि द्वितीय पक्ष माना जाय तो ईश्वर तथा आकाशादिक नित्य द्रव्य अवयववानपना होनेसे हेतु व्यभिचारी है। यदि कार्यका लक्षण कृतबुद्ध्युत्पादक अर्थात् यह किया हुआ है ऐसी बुद्धि उत्पन्न करने वाला माना जाय तो कही पर गडा खोदनेसे उस खुदे गढेको देखनेवाले के इस गढेका आकाश किसीने किया है ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है इसलिये आकाशमें वृत्ति होनेसे हेतु व्यभिचारी है। यदि कार्यत्वका लक्षण विकारित्व किया जाय तो विकारित्वकी वृत्ति ईश्वर में होनेसे हेतु व्यभिचारी है। ईश्वरके अस्तित्वमें दूसरा अनुमान प्रमाण इस प्रकार दिया जाता है कि ईश्वर है क्योंकि जीवोंके कर्मफल प्राप्तिकी अन्यथा अनुपपत्ति है। सो यह हेतु भी असिद्ध नामक हेत्वाभास है। क्योंकि विषादिक भक्षण करनेवालोंको मरणादिक फल बिना किसी फलदाताके ही मिल जाता है। यदि कहोगे कि विषादिक भक्षणका फल भी ईश्वर ही देता है, क्योंकि जीव कर्मोंके करनेमें तो स्वतन्त्र है परन्तु उनके फल भोगनेमें परतन्त्र है। सो भी युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि जैसे किसी धनाढ्यने ऐसा कर्म किया था कि, जिसका फल उसका धन हरण होनेसे मिल सकता है। ईश्वर स्वय तो उस धनको चुरानेके लिये आता नही किन्तु किसी चोरके द्वारा उसका धन हरण करता है। ऐसी अवस्थामें अर्थात् जबकि एक चोरने एक धनाढ्यका धन हरा तो इस एक क्रियासे धनाढ्यको तो पूर्वकृत कर्मका फल मिला और चोरने नवीन कर्म किया। अब फरमाइये कि चोरने जो यह धनाढ्यके धन हरणरूप क्रिया की है वह स्वतन्त्रतासे की है या ईश्वरकी प्रेरणासे की है। यदि स्वतन्त्रतासे की है और ईश्वरकी उसमें कुछ भी प्रेरणा नही है तो धनाढ्यको जो कर्मका फल मिला वह ईश्वरकृत नही हुआ। और जो ईश्वरकी प्रेरणासे चोरने धन हरा है तो चोर कर्मके करनेमें स्वतन्त्र नही रहा और चोर निर्दोष हुआ और उस ही चोरको वही ईश्वर राजाके द्वारा चोरीका दण्ड दिलाता है तो स्वयं उससे चोरी कराई और फिर स्वय ही उसको दण्ड दिलाता है यह ईश्वरके न्यायमें बडा भारी बट्टा लगा। संसारमें जितने अनर्थ होते है उन सबका विधाता ईश्वर ठहरेगा। परन्तु उन सब कर्मोका फल बिचारे निर्दोष जीवोंको भोगना पडेगा। देखो! कैसा अच्छा न्याय है अपराधी ईश्वर और दण्ड भोगें जीव। इस प्रकार प्रमाणकी कसौटपर कसनेसे ऐसे कल्पित ईश्वरकी सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती। प्यारे पाठको! जरा निष्पक्ष दृष्टिसे विचारिये कि इस संसारमें अनादिकालसे

समस्त द्रव्य प्रतिक्षण एक एक अवस्थाको त्यागकर अन्य अन्य अवस्थाको प्राप्त होते रहते हैं। इस परिणमनको ही क्रिया कहते हैं। **अनन्तर पूर्वक्षणवर्ती परिणाम विशिष्ट द्रव्य उपादान कारण है और अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती परिणाम विशिष्ट द्रव्य कार्य है।** इस परिणमनमें सहकारीस्वरूप अन्य द्रव्य निमित्त कारण हैं। निमित्त कारण दो प्रकारके होते हैं—एक उदासीन निमित्त कारण और दूसरा प्रेरक निमित्त कारण। इन्ही कारणोंमें कारक व्यवहार है। क्रियानिष्पादकत्व कारकका लक्षण है। कारकके छह भेद हैं अर्थात् कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण। क्रियाके उपादान कारणको कर्त्ता कहते हैं। क्रिया जिसको प्राप्त हो उसे कर्म कहते हैं। क्रियामें साधकतम अन्य पदार्थको करण कहते हैं। कर्म जिसको प्राप्त हो उसे सम्प्रदान कहते हैं। दो पदार्थोंके वियोग होनेमें जो ध्रुव रहे उसको अपादान कहते है। आधारको अधिकरण कहते हैं। इस कथनका अभिप्राय यह है कि संसारमें **जितने पदार्थ हैं वे अपने-अपने भाव के कर्त्ता है, परभावका कर्त्ता कोई पदार्थ नहीं है।** वास्तवमें कुम्भकार घट बनानेरूप अपनीक्रिया का कर्त्ता हैं। व्यवहारमें जो कुम्भकारको घटका कर्त्ता कहते है वह केवल उपचार मात्र है। घट बननेरूप अपनी क्रियाका कर्त्ता घट है। घटकी बननेरूप क्रियामें कुम्भकार सहायक निमित्त है। इस सहायक निमित्तको ही उपचारसे कर्त्ता कहते है। इस कर्त्ताके दो भेद हैं। एक वास्तविक कर्त्ता और दूसरा उपचरित कर्त्ता। क्रियाका उपादान कारण ही वास्तविक कर्त्ता है। इसलिये कोई भी क्रिया वास्तविक कर्त्ताके बिना नही हो सकती। परन्तु उपचरित कर्त्ताका नियम नहीं है। घटरूप कार्यके बननेमें उपचरित कर्त्ताकी जरूरत है परन्तु नदीके बहनेरूप कार्यमें उपचरित कर्त्ताकी जरूरत नही है। इस सृष्टिकर्तृत्ववादमें कर्त्ता शब्दसे चेतन निमित्त कारण अभिप्रेत है और कार्यत्व हेतुसे उसे अविनाभावी मानकर सूर्यादिकमें कर्तृजन्यत्व सिद्ध करते हैं। परन्तु वास्तवमें कार्यसामान्यकी व्याप्ति कारणसामान्यके साथ है, कारण विशेषके साथ नही है। कार्यत्व हेतुसे निमित्तकारण सिद्ध हो सकता है परन्तु निमित्त कारण चेतन भी होते हैं और अचेतन भी होते है। यह नियम नही कि समस्त कार्य चेतन निमित्तसे ही होते हों। एक दृष्टान्तमें किसी दो पदार्थोंका सद्भाव रहनेसे सर्वत्र उनकी व्याप्ति सिद्ध नही हो सकती किन्तु विपक्षमें बाधक केवल ही व्याप्तिक निश्चय होता है। किसी मनुष्यके मित्रके चार पुत्र थे और वे चारों ही श्यामवर्ण थे। कुछ कालमें मित्रकी भार्या गर्भवती हुई तो महाशयजीने इस प्रकार अनुमान किया कि—मित्रकी भार्याके गर्भस्थित पुत्र श्याम होगा, क्योंकि वह मित्रका पुत्र है। जो जो मित्रके पुत्र है वे वे श्याम हैं। और जो जो श्याम नही है। वे वे मित्रके पुत्र भी नही है। गर्भस्थ मित्रका पुत्र है इसलिये श्याम होगा। परन्तु यदि मित्रका पुत्र गोरा हो जाय तो बाधक कौन। इसलिये विपक्षमें बाधकके अभावसे मित्रपुत्रत्व और श्यामत्वमें व्याप्ति नही हो सकती। इस ही प्रकार कार्य और चेतन कर्त्तामें भी विपक्षमें बाधकके अभावसे व्याप्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार कार्यत्वहेतु ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करनेमें असमर्थ है। संसारमें छह द्रव्य हैं। उनमेंसे जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंका शुद्ध तथा अशुद्ध दो प्रकारका परिणमन होता है। किन्तु शेष चार द्रव्योंका शुद्ध ही परिणमन है। अन्य द्रव्यसे अलिप्त किसी द्रव्यके आपमें आपरूप परिणमनको शुद्ध परिणमन कहते हैं। परन्तु एक द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यसे मिलकर एकीभावको प्राप्त होकर बन्धपर्यायरूप परिणमें तो उस परिणमनको अशुद्ध परिणमन कहते है। जैसे हल्दी चूना परस्पर मिलकर श्वेत और पीतभावको त्यागकर रक्तभावरूप एकत्वको प्राप्त होकर अशुद्ध परिणमनरूप परिणमे हैं। कमलपत्र और जलकी तरह केवल संयोगमात्रको बन्धन अथवा अशुद्ध परिणमन नहीं कहते है। जीव और पुद्गलमें एक गुण ऐसा है जिसको कि वैभाविकी शक्ति कहते हैं। उसके वशसे इन दोनोंका अशुद्ध परिणमन होता है। किन्तु शेष चार द्रव्योमें यह गुण नहीं है इसलिये उन चार द्रव्योंका अशुद्ध परिणमन नही होता है। इस ही अशुद्ध परिणमनको बन्ध कहते है। बन्ध दो प्रकारका है—एक सजातीय बन्ध और दूसरा विजातीय बन्ध। पुद्गलके साथ पुद्गलके बन्धको सजातीय

बन्ध कहते हैं। और जीवके साथ पुद्गलके बन्धको विजातीय बन्ध कहते हैं। एक जीवका दूसरे जीवसे बन्ध नहीं होता है। इसलिये जीवमें केवल विजातीय बन्ध होता है। किन्तु पुद्गलमें सजातीय और विजातीय इस प्रकारके दोनों बन्ध होते हैं। अनेक कारणोंके एकत्र होनेपर कार्यकी सिद्धि होती है। इस कारण जीव और पुद्गलमें भी केवल वैभाविक शक्तिसे ही बन्ध नहीं हो जाता, किन्तु बन्ध होनेके वास्ते दूसरे सहकारी कारणोंकी आवश्यकता रहती है। पुद्गल द्रव्यमें एक स्पर्श गुण है। उस स्पर्श गुणकी स्निग्ध और रूक्ष ये दो पर्याय होती रहती है। यह स्निग्ध और रूक्ष परिणमन तारतम्य अर्थात् तीव्र और मन्दरूप होता है। इस तीव्रता और मन्दता-के परिमाण परिज्ञानार्थ गुणमें अविभागी शक्त्यंशोंकी कल्पना की जाती है। इन अविभागी शक्त्यंशोंको अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। स्निग्धगुण परमाणुका स्निग्धगुण परमाणुसे, तथा स्निग्धगुण परमाणुका रूक्षगुण परमाणुसे और रूक्षगुण परमाणुका रूक्षगुण परमाणुसे बन्ध होता है। जिन परमाणुओंमें स्निग्ध अथवा रूक्षका केवल एक अविभाग प्रतिच्छेद होता है वह अन्य परमाणुके साथ बन्धको प्राप्त नहीं होता। किन्तु जिन परमाणुओंमें दो तीन आदिक अविभाग प्रतिच्छेद होते है वे यथा योग्य अन्य परमाणुओंके साथ बन्धको प्राप्त होते हैं। परन्तु इनमें भी अनियमसे बन्ध नहीं होता है किन्तु जिन परमाणुओंके अविभाग प्रतिच्छेदका अन्तर होता है उन ही परमाणुओंका अनुकूल क्षेत्रमें अवस्थान होनेसे बन्ध होता है। जैसे दो अविभाग प्रतिच्छेदवालेका चार अविभाग प्रतिच्छेदवालेसे, तीन अविभाग प्रतिच्छेदवालेका पाँच अविभाग प्रतिच्छेदवालेसे, इत्यादि। बन्धमें अधिक अविभाग प्रतिच्छेदवाला ही कम अविभाग प्रतिच्छेदवालेको अपने रूप परिणमा लेता है। जिस प्रकार परमाणु-का परमाणुसे बन्ध होता है उस ही प्रकार परमाणु स्कन्धसे यथायोग्य अनुकूलता होनेपर बन्ध होता है। एक स्कन्धके यथायोग्य कारण मिलनेपर दो अथवा अनेक खण्ड भी हो जाया करते हैं। और वे खण्ड स्कन्ध तथा परमाणु दोनो स्वरूप होते रहते हैं। भावार्थ—अनेक परमाणु तथा एक परमाणु और एक स्कन्ध तथा अनेक स्कन्ध परस्पर बन्धको प्राप्त होकर एक स्कन्धरूप हो जाते हैं। इस ही प्रकार एक स्कन्ध बिखरकर कभी अनेक स्कन्धरूप कभी स्कन्ध और परमाणुरूप और कभी अनेक परमाणुरूप हो जाता है। इस प्रकार इस संसारमे कभी परमाणु स्कन्धरूप हो जाते हैं और कभी स्कन्ध परमाणु हो जाते है। परन्तु ऐसा नियम नहीं है कि संसारके सब ही स्कन्ध परमाणुरूप तथा सब ही परमाणु स्कन्धरूप होते ही रहें। किन्तु अनेक परमाणु ऐसे हैं जो हमेशासे परमाणु है और हमेशा तक परमाणुरूप ही रहेंगे। और इस ही प्रकार सूर्य, चन्द्र, सुमेरु पर्वत, पृथ्वी आदिक अनेक स्कन्ध ऐसे है जो हमेशासे स्कन्धरूप हैं तथा हमेशा तक रहेंगे। और इन नित्य स्कन्धोंमें भी अनेक परमाणु ऐसे हैं जो उन स्कन्धोंसे न तो आजतक निकले हैं और न कभी निकलेंगे। और अनेक परमाणु ऐसे हैं जो इन स्कन्धोंमें आते रहते हैं तथा अनेक उनमेंसे निकलते रहते हैं। इस प्रकार पुद्ग-लका पुद्गलके साथ बन्ध होनेमें सहकारी कारण स्पर्शगुणकी स्निग्ध और रूक्ष पर्याय है। यह स्निग्ध रूक्ष पर्याय स्कन्धमें भी होती है और अशुद्ध परमाणुमें भी होती है इसलिये पुद्गलका पुद्गलके साथ बन्ध अशुद्ध अवस्थारूप स्कन्धोंमें भी होता है तथा शुद्ध अवस्थाको प्राप्त परमाणुओंमें भी होता है। परन्तु जीव और पुद्गलके विजातीय बन्धमें ऐसा नहीं होता है। अब आगे जीव और विजातीय बन्धका स्वरूप कहते हैं।

एक द्रव्य जब दूसरे द्रव्यके साथ बन्धको प्राप्त होता है उस समय उसका अशुद्ध परिणमन होता है। उस अशुद्ध परिणमनमें दोनों द्रव्योंके गुण अपने स्वरूपसे च्युत होकर विकृत भावको प्राप्त होते हैं। जीव द्रव्यके गुण भी अशुद्ध अवस्थामें इस ही प्रकार विकारको प्राप्त होते रहते हैं। जीव अशुद्ध परिणमनका मुख्य कारण तो वैभाविकी शक्ति है और सहायक निमित्त जीवके गुणोंका विकृत परिणमन है। इसलिये जीवका पुद्गलके साथ अशुद्ध अवस्थामें ही बन्ध होता है। शुद्ध अवस्था होनेपर विकृत परिणमन नहीं होता। विकृत परिणमन ही बन्धका सहायक निमित्त है और शुद्ध अवस्थामें उसका अभाव है। इसलिये एक बार शुद्ध

होनेपर कारणके अभावसे पुनः कदापि बन्ध नहीं होता। परन्तु पुद्गल द्रव्य शुद्ध होनेपर भी बन्धके कारण स्निग्ध रूक्ष आदिकके सद्भावसे बन्धको प्राप्त हो जाता है। संसारमें अनेक जीव देखे जाते है वे सब अशुद्ध हैं। यदि उनको शुद्ध माना जाय तो क्रोधादिक परिणाम जीवके स्वाभाविक गुण ठहरेंगे। स्वाभाविक गुण नित्य होते हैं। परन्तु क्रोधादिक अनित्य है। इसलिये क्रोधादिक गुणोंके अभावमें जीव गुणीके भी अभावका प्रसंग आयेगा। इसलिये जीव बन्ध-सहित है। अथवा अनुमानसे भी जीव बन्ध सहित अशुद्ध ही सिद्ध होता है। वह अनुमान इस प्रकार है कि संसारी जीव बंधवान है क्योंकि यह परतन्त्र है। जो जो परतन्त्र होते है वे वे बंधवान हैं। जैसे स्तंभ और जजीरसे बंधा हस्ती। यह हेतु असिद्ध नही है। क्योकि उसकी सत्ताका साधक यह अनुमान है। यह संसारी परतन्त्र है क्योकि इसने हीनस्थानका ग्रहण कर रक्खा है। जो जो हीनस्थानका ग्रहण करता है वह वह परतन्त्र होता है, जैसे कैदी। यह हेतु भी असिद्ध नही है, क्योंकि इसने शरीरको ग्रहण कर रक्खा है। शरीरका ग्रहण करना प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है। ओर शरीरके हीनस्थानपना इस इस अनुमान प्रमाणसे सिद्ध है—शरीर हीनस्थान है क्योंकि दुःखका कारण है। जो जो दुःखका कारण होता है सो मो हीनस्थान होता है, जैसे जेलखाना। यह हेतु देवशरीरमें व्यभिचारी नही है क्योकि मरणका दुःख वहाँपर भी मौजूद है। इस प्रकार अनुमान प्रमाणसे यह ससारी जीव बन्ध सहित अशुद्ध सिद्ध होता है। अब यहाँ यह शङ्का उठ सकती है कि संसारी जीव अनादिकालसे अशुद्ध है या पहले शुद्ध था और पीछेमे अशुद्ध हो गया। उत्तरमें निवेदन है कि यह जीव सन्तानक्रमसे बीजवृक्षवत् अनादिकालमे अशुद्ध है। यदि पहिले शुद्ध होता तो बिना कारण बीचमें अशुद्ध कैसे हो जाता और यदि बिना कारण ही बीचमें अशुद्ध हो गया है तो उससे पहले अशुद्ध क्यों नही हो गया। तथा मुक्त जीवके भी पुन बन्धका प्रसग आवेगा। तथा विना कारणके कार्य होनेसे कार्यकारणभावके भगका भी प्रसग आवेगा। यदि कहो कि अनादिकालीन अशुद्धता अनंतकाल पर्यन्त रहनी चाहिये, सो भी ठीक नही है। क्योकि धानका बीजवृक्ष सम्बन्ध अनादिकालमे चला आ रहा है। परन्तु जब धानपरसे छिलका उतार लिया जाता है तो चावल अनेक प्रयत्न करनेपर भी नही ऊगता है। उस ही प्रकार जीवके भी अनादि सन्तानक्रममे विकृत भावोसे कर्मबन्ध और कर्मके उदयसे विकृतभाव होते चले आये है। परन्तु जब छिलकारूपी विकृतभाव जुदे हो जाते है तो फिर चावलरूपी शुद्ध जीवके अङ्कुरोत्पत्तिरूपी कर्मबन्ध नही होता। जिस प्रकार चुम्बक पाषाणमें लोहेको आकर्षण करनेकी शक्ति है। और लोहेमें आकर्षण होनेकी शक्ति है। अन्य पदार्थोंमें ऐसी शक्तिके अभावमे न तो इतर पदार्थ लोहेको खींचता है और न चुम्बक पत्थरसे लोहेके सिवाय दूसरा पदार्थ खिचता है। उस ही प्रकार पुद्गलके बाईस प्रकारके स्कन्धोंमेंसे केवल पाँच स्कन्ध अर्थात् १ आहारवर्गणा, २ तैजसवर्गणा, ३ भाषावर्गणा, ४ मनो-वर्गणा, और ५ कार्माणवर्गणा रूप पाँच स्कन्ध जीवकी आकर्षण शक्तिसे खिचते है और जीव अपनी आकर्षण-शक्तिसे इनको आकर्षण करता है। जीव और इन पच स्कन्धोंके सिवाय इतर द्रव्य तथा स्कन्धोमे आकर्षक आकर्ष्य शक्तिके अभावसे आकर्ष्य आकर्पक भाव भी नही है। जीवकी इस आकर्षक शक्ति अर्थात् एक गुणके विकृत परिणामको योग कहते है। योग शक्तिके निमित्तसे अनुकूल क्षेत्रमे अवस्थित पंच स्कन्ध आकर्षित होकर आकर्षण करनेवाले जीवके साथ बन्ध पर्यायको प्राप्त होकर एक क्षेत्रावगाहरूप अवस्थित होते है। जीव और पुद्गलके इस एक क्षेत्रावगाहरूप अवस्थानको उभय बन्ध कहते है। और इस एक क्षेत्रावस्थानके लिये पञ्च स्कन्धोंके आगमनको द्रव्यास्रव कहते है। उभयबन्धकी कारणभूत जीवकी योगशक्तिको भावबन्ध कहते है। तथा द्रव्यास्रवको कारणभूत जीवकी योगशक्तिको भावास्रव कहते है और पञ्चस्कन्धोंका आकर्ष्य शक्तिको द्रव्यबन्ध कहते है। पञ्च स्कन्धोंमेंसे पहले कार्माणवर्गणाके स्कन्धके बन्धका स्वरूप लिखते हैं। कार्माण स्कन्धका बन्ध चार प्रकार है। १ प्रकृतिबन्ध, २ प्रदेशबन्ध, ३. स्थितिबन्ध और ४. अनुभागबन्ध।

कार्माण स्कन्ध अनेक भेदस्वरूप है और उन स्कन्धोंमें जीवके गुणोंको घातनेका स्वभाव अर्थात् प्रकृति है। प्रकृति और प्रकृतिवान्में कथंचित् अभेद है इसलिये प्रकृति शब्दसे जीवके गुणोंको घातनेके स्वभाववाले कार्माण स्कन्धोंका ग्रहण है। भावार्थ, जीवके अनेक शुभाशुभ परिणाम विशिष्ट योगमें जीवके गुणोंको घातनेके स्वभाववाले कार्माण स्कन्धोंके बन्धको प्रकृतिबन्ध कहते हैं। बध्यमान कार्माण स्कन्ध में परमाणुओंकी संख्या-विशेषको प्रदेशबन्ध कहते हैं। ये कार्माण स्कन्ध ही जब जीवके साथ बन्धको प्राप्त हो जाते हैं तब कर्म कहलाते हैं। ये कर्म बन्ध होनेके समयसे जितने काल पीछे फल देंगे उतने कालको स्थितिबन्ध कहते हैं। कर्ममें फल देनेकी शक्ति विशेषको अनुभागबन्ध कहते हैं। अब आगे यह कथन किया जाता है कि कौन-कौन सा कर्म फलकालमें आत्माके किस-किस गुणमें क्या-क्या विकार करता है।

जीवके अनेक गुणोंमेंसे कुछ थोडेसे गुण ऐसे हैं जिनका कर्मोंसे सम्बन्ध है और उनमें भी केवल पाँच गुण प्रधान हैं। उन पाँच गुणोंके नाम इस प्रकार हैं—१ चेतना, २ वीर्य, ३ सुख, ४ सम्यक्त्व, और ५ चारित्र। आत्मा की जिस शक्तिसे पदार्थोंका प्रतिभास होता है उसको चेतना कहते हैं। विषयके भेदसे चेतनाके दो भेद हैं अर्थात् जिस समय चेतनामें पदार्थ सामान्यका प्रतिभास होता है उस समय उस चेतनाको दर्शन कहते हैं और जिस समय उस चेतना में पदार्थ विशेषका प्रतिभास होता है, उस समय उस चेतनाको ज्ञान कहते हैं। बलको वीर्य गुण कहते हैं। सत्य पदार्थों के विश्वासको सम्यक्त्व गुण कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और धन कुटुम्बादिकमें ममत्वरूप बाह्यक्रिया तथा योग (पंचस्कंधोकों ग्रहण करनेकी शक्ति) और कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) रूप अभ्यन्तर क्रियाकी निवृत्तिसे प्रादुर्भूत आत्माके गुण-विशेषको चारित्र कहते है। आकुलताकी निवृत्ति पूर्वक आह्लादात्मक आत्माके गुण विशेषको सुख कहते है। कर्मोके घाति और अघाति इस प्रकार दो भेद है। जो आत्माके गुणको घाते उन कर्मोंको घातिकर्म कहते है। जो कर्म जीवके गुणोको न घाते किन्तु जीवके शरीरादिक तथा इष्टानिष्ट पदार्थोंका संयोग वियोगादिक करें उनको अघातिकर्म कहते है। घातिकर्मोंके चार भेद है—१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण, ३ मोहनीय और ४ अन्तराय। ज्ञानको घाते उसको ज्ञानावरण कहते है। दर्शनको घाते उसको दर्शनावरण कहते है। जो वीर्यगुणको घाते उसको अन्तराय कर्म कहते हैं। मोहनीय कर्मके दो भेद है—एक दर्शन-मोहनीय, दूसरा चारित्रमोहनीय। सम्यक्त्व अर्थात् सम्यग्दर्शनगुणको जो कर्म घाते उसको दर्शनमोहनीय कहते है। जो कर्म चारित्रगुण को घाते उसको चारित्रमोहनीय कहते है। घाति कर्मोंमें घातनेकी शक्ति दो प्रकारकी है—एक सामान्य शक्ति और दूसरी विशेषशक्ति। विशेष शक्तियोंसे तो उपर्युक्त अनुसार भिन्न-भिन्न गुणोंको घातते है परन्तु समस्त ही घातिकर्म अपनी सामान्य शक्तिसे जीवके सुख गुणको घातते है। इष्ट तथा अनिष्ट इन्द्रिय विषयोका जो अनुभवन करावे सो साता और असाता दो भेदरूप वेदनीयकर्म है। जिस कर्मके फलसे उच्च तथा नीच कुलमें जन्म हो उसको गोत्रकर्म कहते है। नरक, पशु, मनुष्य और देवोंके शरीरमें जो जीवोंका अवस्थान करावे उसको आयुकर्म कहते है। शुभ तथा अशुभ शरीरादिक सामग्री जिस कर्मके फलसे हो उसको नामकर्म कहते है। इस प्रकार वेदनीय, गोत्र, आयु और नाम ये चार भेद अघाति कर्मके है। जीवोके शरीर दो प्रकारके है—स्थूल और सूक्ष्म। सूक्ष्म शरीर भी दो प्रकारके है—तैजस और कार्माण। स्थूल शरीरको कान्ति देनेवाले शरीरको तैजस शरीर कहते है। अष्ट कर्मोंके समूहको कार्माण शरीर कहते हैं। आहारवर्गणासे स्थूल शरीर, तैजस वर्गणासे तैजस शरीर और कार्माण वर्गणासे कार्माण शरीर बनता है। मनोवर्गणासे मन और भाषावर्गणासे वचन बनते हैं। मन, वचन और समस्त शरीर नाम कर्मके फलसे प्राप्त होते है। जिन कर्मोके फलसे इष्ट पदार्थकी प्राप्ति होती है उनको पुण्यकर्म और जिससे अनिष्ट पदार्थोंकी प्राप्ति होती है उनको पापकर्म कहते है। प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबंधका कारण योग है। तथा स्थितिबंध और

अनुभागबंधका कारण कषाय है। इन ही चारों प्रकारके बंधके कारणभूत जीवके योगकषायरूप परिणामोंको भावबन्ध कहते हैं। इस प्रकार बंधका कथन समाप्त हुआ।

नवीन कर्मोंके आगमनको द्रव्यास्रव कहते हैं। द्रव्यास्रवके दो भेद हैं—एक ईर्यापथ आस्रव और दूसरा सांपरायिक आस्रव। जो कर्म बन्धके समयमें ही अपना फल देकर आत्मासे जुदे हो जांय उनको ईर्यापथ आस्रव कहते हैं और जो बन्ध होकर कुछ कालतक जीवके साथ बन्धे रहें उनको साम्परायिक आस्रव कहते हैं। कषाय विशिष्ट योगसे साम्परायिक आस्रव होता है। किन्तु कषाय रहित केवल शुद्ध योगसे ईर्यापथ आस्रव होता है। कषायके दो भेद हैं, मन्द और तीव्र। मन्द कषायको शुभ परिणाम कहते हैं और तीव्र कषायको अशुभ परिणाम कहते हैं। शुभ परिणाम विशिष्ट योगको शुभयोग और अशुभ परिणाम विशिष्ट योगको अशुभ योग कहते हैं। असत्य पदार्थोंके विश्वासको मिथ्यात्व कहते हैं। यह मिथ्यात्वरूप परिणाम भी अशुभ परिणाममें अन्तर्भूत है। शुभ योगसे पुण्य कर्मका आस्रव होता है और अशुभ योगसे पापकर्मका आस्रव होता है। इन ही शुभ, अशुभ और शुद्ध योगोको भावास्रव कहते हैं। योग और कषायोंमें कर्मोंके आस्रव तथा बन्ध इस प्रकार दो कार्योंकी कारणभूत दो शक्ति है। इसलिये इन ही योग और कषायों-को भावास्रव भी कहा है और भावबन्ध भी कहा है। इस प्रकार अनादि सन्तानक्रमसे पूर्वबद्ध कर्मोंके फलसे विकृत परिणामोंको प्राप्त होकर जीव अपने ही अपराधसे आप नवीन कर्मोका बन्ध करता है। तथा इन ही नवीन बद्धकर्मोंके उदयसे पुन इसके विकृत परिणाम होते है और उनसे पुन पुन नवीन नवीन कर्मोका बन्ध करता हुआ अनादि निधन असार संसारमें पर्यटनकर नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चतुर्गतिके घोर दु:खोंको भोग रहा है। इस जगत्को न तो किसी सृष्टिकर्ता ईश्वरने रचा है और न कोई इसको प्रलय करता है, न जीवोंको किसीने बनाया है और न कोई इससे कर्म कराता है तथा न कोई इस जीवको कर्मोका फल देनेवाला है। जगत्में न कोई नवीन पदार्थ उत्पन्न होता है और न किसी पदार्थका विनाश होता है। इसलिये समस्त पदार्थ नित्य हैं। परन्तु समस्त ही पदार्थ प्रतिक्षण एक-एक अवस्थाको त्याग दूसरी-दूसरी अवस्थाको प्राप्त होते रहते हैं। इसलिये समस्त ही पदार्थ अनित्य हैं। इन समस्त पदार्थोंके समूहको ही जगत् कहते है। समस्त पदार्थ कथंचित् नित्यानित्यात्मक है इसलिये यह जगत् भी कथंचित् नित्यानित्यात्मक है। दर्शनमोहनीय कर्मके निमित्तसे भ्रमवश इस जीवने अनेक भ्रमात्मक पदार्थोंका असत्य विश्वास करके किसी पदार्थको इष्ट और किसी पदार्थको अनिष्ट मान रक्खा है। तथा चारित्रमोहनीय कर्मके वशमें इष्टानिष्ट पदार्थों-में रागद्वेष करके अनेक कर्मोंके बन्धनसे बद्ध अपनी ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सुख, सम्यक्त्व और चारित्र रूप अविनाशी विभूतिको भूला हुआ अनादि कालसे घोर दुःख सहन कर रहा है। इस प्रकार दु:खके कारणका प्रतिपादन कर अब आगे इन दु:खोंसे मुक्त होनेके उपायका वर्णन किया जाता है।

जिस प्रकार खानिमेंसे सुवर्ण अनेक पदार्थोंसे मिश्रित अशुद्ध निकलता है और यदि कोई महाशय उस अशुद्ध सुवर्णको शुद्ध करनेका उपाय करे तो वह सुवर्ण शुद्ध हो जाता है। उस ही प्रकार इस जीव द्रव्यको भी यदि कोई शुद्ध करनेका उपाय करे तो यह जीव भी शुद्ध हो सकता है। जिस कारण से जिस कार्यकी उत्पत्ति होती है उस कारणके अभावमें उस कार्यकी उत्पत्तिका भी अभाव हो जाता है। इसलिए जिन कारणों से नवीन नवीन कर्मोंका आस्रव होता है उन कारणोके प्रतिपक्षी पदार्थोंकी उपासना करनेसे आस्रवके कारणों-का अभाव हो जावेगा और कारणके अभावसे नवीन आस्रवका भी अभाव हो जावेगा। इस नवीन आस्रवके रुकनेको द्रव्यसंवर और जीवके जिन भावोंसे यह द्रव्यसंवर हो आत्माके उन भावोंको भावसंवर कहते हैं। बन्धके कारणभूत जीवके परिणामोंसे विपक्षी परिणामोंकी आराधना करनेसे बंधे हुए कर्म आत्मासे जुदे हो जाते हैं। बंधे हुए कर्मोंके इस प्रकार आत्मासे जुदे होनेको द्रव्यनिर्जरा कहते हैं और जिन भावोंसे वह द्रव्य-

निर्जरा हो जीवके उन भावोंको भावनिर्जरा कहते हैं। जब नवीन कर्मोंका तो आस्रव नहीं होगा और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा हो जायगी तो आत्मासे सब कर्म जुदे होनेके सबबसे आत्मा शुद्ध हो जायगा और आत्माकी इस शुद्ध अवस्थाको ही मोक्ष कहते हैं। मोक्षमें आत्मासे सब कर्म जुदे हो गये, इसलिये कर्मजनित विकार भी आत्मासे दूर हो गये। ये विकार ही नवीन बन्धके कारण हैं, इसलिए मोक्ष होनेके बाद ये पुन. कर्म मलसे लिप्त नही होते। ज्ञानावरण कर्मके अभावसे अनन्तज्ञान, दर्शनावरण कर्मके अभावसे अनन्त दर्शन, अन्तरायके अभावसे अनन्तवीर्य, दर्शनमोहनीयके अभावसे शुद्ध सम्यक्त्व और चारित्रमोहनीयके अभावसे शुद्ध चारित्र और समस्त घातिकर्मोंके अभावसे अनन्त सुख इस प्रकारसे घातिकर्मोंके अभावसे आत्माके छहों गुणोंका निर्विकार प्रादुर्भाव हो जाता है। तथा वेदनीय कर्मके निमित्तसे संसारमें आकुलता होती थी परन्तु अब वेदनीय कर्मके अभावसे निराकुल अर्थात् अव्याबाध हो जाता है। गोत्रकर्मके निमित्तसे उच्च नीच कुलमें जन्म लेकर उच्च नीच कहलाता था। परन्तु अब गोत्रकर्मके अभावसे अनुच्चनीच अर्थात् अगुरु लघु हो जाता है। नामकर्मके निमित्तसे शरीरादिकसे बद्ध होनेके कारण यह जीव मूर्त अवस्थाको प्राप्त हो रहा था किन्तु अब नाम कर्मके अभावसे अमूर्त अर्थात् सूक्ष्म हो जाता है। आयुकर्मके निमित्तसे ससारमें रुक रहा था किन्तु अब आयुकर्मके अभावमे स्वतन्त्र अवगाहरूप होकर अपने ऊर्ध्वगमन स्वभावसे जिस स्थानपर कर्मोंसे मुक्त होता है उस स्थानसे सीधा पवनके झकोरोंरहित अग्निकी तरह ऊर्ध्वगमन करता है। जहाँ तक गमनसहकारी धर्मद्रव्यका सद्भाव है वहाँ तक गमन करता है। आगे धर्मद्रव्यका अभाव होनेसे अलोकाकाशमें गमन नही होता, इस कारण समस्त मुक्त जीव लोकके शिखरपर विराजमान रहते हैं। यद्यपि यथार्थमें आत्मा लोकाकाश प्रमाण है परन्तु सकोच-विस्तारशक्ति युक्त होनेसे कर्मके निमित्तसे छोटा-बड़ा जैसा शरीर पाता था उतना ही बड़ा-छोटा दीपप्रकाशकी तरह जीवका आकार होता था। यह सकोच विस्तार कर्मके निमित्तसे होता था, परन्तु अब कर्मका अभाव हो गया है, इसलिये संकोच विस्तार भी नहीं होता है। उस ही शरीर प्रमाण (किंचिदून) जीवका आकार होता है। यदि यहाँ कोई यह शंका करे कि जब जीव मोक्षसे लौटकर तो आते नही तथा नवीन जीव उत्पन्न होते नही और मोक्ष जानेका सिलसिला हमेशा जारी रहता है तो एक दिन संसारके सब जीव मोक्षको चले जाँयगे और ससार खाली हो जायगा। उत्तरमें निवेदन है कि जीवराशि अक्षय अनन्त है इसलिये इसका कभी अत नही आवेगा। जिस प्रकार आकाशद्रव्य सर्वव्यापी अनन्त है तो किसी एक दिशामें बिना मुड़े निरन्तर यदि कोई गमन करता चला जाय तो कभी भी उसका अंत नही आता है अन्यथा सर्वव्यापित्वके अभावका प्रसंग आवेगा। अथवा जैसे कोई मुरगीकी उत्पत्ति अडेके बिना नही होती और अडेकी उत्पत्ति मुरगीके बिना नही होती है। उपर्युक्त मुरगीकी भूतकालकी संतानमें यदि मुरगी और अडोंकी गणना की जाय तो इस मुरगीकी संतान परंपरामें नवीन वृद्धि तो होती नही है क्योंकि मुरगी बिना अंडा दिये मर-गई। जितनी-जितनी भूत संततिरूप मुरगी अडोंकी गणना करते जाते हैं उतनी-उतनी कमी हो जाती है। अब यहाँ पूछा जाता है कि इस प्रकार गणना करते-करते कभी मुरगीके अंडोंकी सतान संख्याका अंत आ जायगा या नही ? यदि आ जायगा तो अंतिम मुरगी या अंडा बिना अंडे या मुरगीके उत्पन्न हुआ मानना पड़ेगा और ऐसा माननेसे कार्यकारणभावके भंगका प्रसंग आवेगा। और यदि कहोगे कि कभी भी अंत नही आवेगा तो जीवोंका भी मोक्ष जाते-जाते कभी भी अंत नहीं आवेगा। यदि कोई महाशय यह शंका करें कि मोक्षमें जितने जीव पहुँचे हैं वे सब संसारसे गये हैं इसलिये पहले किसी दिन मोक्षस्थान शून्य होगा। उत्तरमें निवेदन है कि यदि मोक्षका जाना किसी खास कालसे प्रारम्भ होता तो अवश्य किसी समय मोक्षस्थान शून्य होनेका प्रसंग आता परन्तु मोक्षका होना, अनादिकालसे जारी है इसलिये मोक्षस्थानमें शून्यताका प्रसंग नही आता है। जिस प्रकार प्रत्येक चावलकी उत्पत्ति धानका छिलका उतरनेसे होती है परन्तु संसारमें ऐसा कोई समय नही था

कि अब संसारमें चावल नहीं थे, क्योंकि चावलोंकी उत्पत्ति अनादि कालसे जारी है। इस ही प्रकार मुक्ति होनेका सिलसिला भी अनादि कालसे जारी होनेके सबसे मोक्षस्थान कभी भी शून्य नही था। इस प्रकार मोक्षतत्त्वका स्वरूप निर्विवाद सिद्ध हुआ। ऐसी अविनाशी अनन्तसुखरूप मुक्ति आत्माके जिन भावोंकी उपासना करनेसे प्राप्त हो आत्माके उन्ही भावोंको सार्वधर्म कहते हैं। ये भाव न तो किसी तीर्थमें हैं न किसी मन्दिर या प्रतिमामें। किन्तु ये भाव आपकी आत्मामें ही है उनको ढूंढ़नेके लिये अन्यत्र जानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि आप अपना कल्याण चाहते है तो आप बिना किसी पराधीनताके स्वत: ही अपने ही भाव-स्वरूप सार्वधर्मकी उपासना करनेसे अपनेसे आप अपना कल्याण कर सकते हैं। अब आगे इस ही सार्वधर्मका कुछ विशेष स्वरूप लिखा जाता है।

अपनी स्थिति पूरी करके कर्मोंके फल देनेको उदय कहते है। जिस समय कर्म सत्तामें तो होंय, लेकिन फल न देते होंय, उसको उपशम कहते हैं। कर्मकी आत्यन्तिक निवृत्तिको क्षय कहते है। घातिकर्मके दो भेद हैं—सर्वघाति और देशघाति। जो प्रतिपक्षी गुणको पूर्णरूपसे घाते उसको सर्वघाति कहते हैं। और जो प्रतिपक्षी गुणके एकदेशको घाते उसको देशघाति कहते है। एक समयमें उदय आने योग्य कर्मपरमाणुओंके समूहको निषेक कहते हैं। वर्तमान निषेकमें सर्वघाति स्कन्धोंका उदय, क्षय (बिना फल दिये निर्जरा) और देशघाति स्कन्धोंका उदय तथा वर्तमान निषेकको छोडकर ऊपरके (आगामी समयोंमें उदय आने योग्य) निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम, कर्मकी ऐसी अवस्थाको क्षयोपशम कहते है। समस्त कर्मोका राजा मोहनीय कर्म है। इस ही कर्मके उदयसे यह जीव ससारमें भ्रमण कर रहा है और इस ही कर्मके नाश करनेसे यह जीव मोक्षको प्राप्त होता है। मोहनीय कर्मके दो भेद हैं—एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीयको मिथ्यात्व भी कहते है। इस मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जीवका सम्यग्दर्शन गुण विकार भावको प्राप्त होता हैं। सम्यग्दर्शन गुणकी इस विकृत अवस्थाको मिथ्यादर्शन कहते हैं। जब तक मिथ्यात्व कर्मका उदय रहता है तब तक यह जीव अपने शुद्धस्वरूपका अनुभव नही कर सकता और मोक्षमार्गमे बिल्कुल दूर तथा विषय भोगोंकी अन्तरग तृष्णा इसका पिण्ड नही छोडती। जैसे दाहज्वर पीडित मनुष्य वैद्यके उपदेशसे जलपानको दुखदायी जान नहीं पीता है। परन्तु जलकी तृष्णाने अभी तक उसका पिण्ड नही छोडा है। इस ही प्रकार मिथ्यात्वकर्मके उदयसे मिथ्यादृष्टि जीव सद्गुरुके उपदेशसे विषय भोगोको नरक पशुगतिके घोर दुखों का कारण जान उनके आसेवनका त्याग कर देता है। परन्तु अन्तरगमे विषयभोगकी तृष्णासे अलिप्त नही है। परन्तु जिन जीवोंके सम्यग्दर्शनका प्रादुर्भाव हो जाता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव जलकी तृष्णारहित निरोगी पुरुषकी तरह विषयभोगोंकी तृष्णासे बिल्कुल अलिप्त रहते है। सम्यक्त्वके बिना चाहे जितना तपश्चरण करो तो भी संसारसे मुक्त नही होता। सम्यक्त्वके बिना ज्ञान मिथ्याज्ञान है और चारित्र मिथ्याचारित्र हैं। जिन जीवोंके एक बार भी सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव हो जाता है वे नियमसे थोडे ही कालमें अवश्य मोक्षको जाते है। इस गुणका स्वरूप सूक्ष्म है, इसका स्वरूप अस्मदादि नही जान सकते। जैसे जन्मान्ध पुरुषके ज्ञानका साधन न होनेके सबबसे रूपको नहीं जान सकता इस ही प्रकार अस्मदादि भी सम्यक्त्वको नही जान सकते। यह सम्यक्त्व गुण प्रत्यक्ष ज्ञानी ऋषियोंके ज्ञानके गोचर है, स्थूल ज्ञान और शब्दोंके गोचर नही है। जैसे जन्मान्धोंको हरे और पीले आमका ज्ञान उस हरे और पीले गुणसे अविनाभावी गधके द्वारा कराया जाता है उस ही प्रकार हम स्थूल ज्ञानियोंके समझानेके लिये श्रीगुरुदेवने सम्यक्त्वसे अविनाभावी शुद्धात्मानुभूतिको ही उपचारसे सम्यक्त्व बताया है तथा उपचारसे ही शुद्धात्मानुभूति करके सहित तत्त्वार्थश्रद्धान तथा रुचि और प्रतीतिको भी सम्यक्त्व कहा है। चारित्रमोहनीय कर्म उसको कहते हैं जो आत्माके चारित्र गुणको घाते। चारित्र गुणके दो भेद हैं—एक स्वरूपाचरणचारित्र और दूसरा संयमाचरणचारित्र। पर पदार्थमें इष्टानिष्टत्व निवृत्ति पूर्वक निजस्व-

रूपमें प्रवृत्तिको स्वरूपाचरणचारित्र कहते हैं हिंसादि पापोंसे तथा क्रोधादिक कषायोंसे निवृत्तिपूर्वक आत्माके विशद तथा उदासीन भावको संयमाचरणचारित्र कहते हैं। संयमाचरणचारित्रके तीन भेद हैं अर्थात्, १. देश-चारित्र, २. सकलचारित्र, और ३. यथाख्यातचारित्र। हिंसादिक पापोंके एक देशत्यागको देशचारित्र कहते हैं। हिंसादिक पापोंके पूर्णरूपसे त्यागको सकलचारित्र कहते हैं। और सूक्ष्मकषायोंके भी अभावको यथाख्यात चारित्र कहते हैं। सम्यग्दर्शन सहित ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं तथा सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्रको सम्यक्चारित्र कहते हैं। चारित्रमोहनीय कर्ममें दो भेद हैं एक कषाय और दूसरा नोकषाय। कषायके चार भेद हैं। १. अनन्तानुबन्धी, २ अप्रत्याख्यान, ३. प्रत्याख्यान, और ४. सज्वलन। और इन चारोंमेंसे प्रत्येकके क्रोध, मान, माया और लोभको अपेक्षासे चार चार भेद हैं। इस प्रकार कषायके सोलह भेद हैं। नोकषायके नौ भेद हैं—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद। अनन्तानुबन्धी क्रोधादिक सम्यक्त्व और स्वरूपाचरण चारित्रको घातते हैं। अप्रत्याख्यान क्रोधादिक देशचारित्रको घातते हैं। तथा संज्वलन और नोकषाय यथाख्यातचारित्रको घातते हैं। इस प्रकार इसी मोहनीय कर्मके निमित्तसे यह जीव इस संसारमें घोर दुःख सहन कर रहा है। मोक्षमें उन दुःखोंका नितान्त अभाव है और अविनाशी अनन्त सुख है। उस मोक्षकी प्राप्तिका उपाय धर्म है। उपर्युक्त लक्षणविशिष्ट सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्रकी एकताको ही धर्म कहते हैं। तथा इन्हीं तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं। इन रत्नत्रयकी पूर्णता होनेपर तत्काल मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। यह रत्नत्रय एकदम पूर्ण नही होता है परन्तु क्रमसे पूर्ण होता है। ज्यो-ज्यों रत्नत्रयकी मात्रा बढती जाती है त्यो-त्यों यह जीव मोक्षके निकट पहुँचता जाता है। इस रत्नत्रयके तारतम्य (हीनाधिकता) की अपेक्षासे चौदह स्थान हैं। इन ही चौदह स्थानोंको अन्वर्थसंज्ञासे चौदह गुण स्थान कहते है। जब तक इस जीवके सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव नहीं होता और दर्शन मोहनीयरूप मिथ्यात्वकर्मका उदय रहता है तब तक इस जीवके मिथ्यात्वसज्ञक प्रथम गुणस्थान रहता है। एकेन्द्रीसे लगाकर असंज्ञी पंचेन्द्रीपर्यन्त मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। सज्ञीपंचेन्द्रीके समस्त गुणस्थान होते हैं। यह मिथ्यादृष्टि यथार्थका श्रद्धान नही करता किन्तु कपोलकल्पित मिथ्या पदार्थोंका श्रद्धान करता है। काललब्धि आनेपर कोई जीव सद्गुरुके उपदेशको पाकर अपने विशुद्ध परिणामोंसे अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व इन पाँचप्रकृतियोंका उपशम कर उपसम सम्यक्त्वको प्राप्त होता है। इस उपशम सम्यक्त्व परिणामोंमें सत्तामें स्थित मिथ्यात्वकर्मके तीन खण्ड हो जाते है। कुछ परमाणुओकी अनुभागशक्ति इतनी क्षीण हो जाती है कि वे सम्यक्त्वको मूलसे घात तो कर नही सकते किन्तु उसमें शंकादिक मल उत्पन्न करते हैं। इन परमाणुओंके समूहको सम्यक् प्रकृति कहते है। कुछ परमाणुओंकी शक्ति ऐसी क्षीण हो जाती है कि जिसके उदयसे जीवके परिणाम न तो सम्यकत्व रूप ही होते हैं और न मिथ्या रूप ही होते हैं किन्तु मिश्ररूप होते है। और ऐसे परमाणुओंके समूहको मिश्र प्रकृति कहते हैं। उपशम सम्यक्त्वके अतर्मुहूर्त कालमें कुछ थोडासा काल शेष रहनेपर यदि अनंतानुबन्धीकी किसी एक प्रकृतिका उदय आ जाय और मिथ्यात्वका का उदय नही आया होवे तो अनतानुबधीके उदयसे सम्यक्त्वका तो घात हो गया किन्तु मिथ्यात्वका उदय नही आया इसलिये मिथ्यादृष्टि भी नही हुआ। ऐसे जीवके सासादन संज्ञक दूसरा गुणस्थान होता है। जिस जीवके मिश्र प्रकृतिका उदय होता है उसके मिश्रसज्ञक तीसरा गुणस्थान होता है। जिस जीवके सम्यक्प्रकृतिका तो उदय हो और मिथ्यात्व मिश्र तथा अनतानुबंधी क्रोधादिक चार इस प्रकार छः प्रकृतियोंका उपशम हो तो उस समय जीवके वेदक सम्यक्त्व होता है। तथा कोई जीव सातों प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व अर्थात् उपशम वेदक क्षायिक जिसके हो वे जीव सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं। जिन सम्यग्दृष्टियोंके चारित्र नहीं हो उनके अविरत सम्यग्दृष्टि संज्ञक चौथा गुणस्थान होता है। चौथे गुणस्थानतक चारित्र नहीं होता है इसलिये ये चारों ही गुणस्थानवाले जीव अव्रती होते है। चौथे गुणस्थान तथा पंचमादि

समस्त गुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टी होते है। उपशम और वेदक ये दो सम्यक्त्व सातवें गुणस्थान तक ही होते है आगे केवल द्वितीयोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है। जिन सम्यग्-दृष्टियोंके देशचारित्र होता है उनके देशविरतसंज्ञक पचमगुणस्थान होता है। देव ओर नारकी आदिके चार गुणस्थान होते हैं। पशुओंके आदिके पाँच गुणस्थान होते हैं। आगेके गुणस्थान केवल साधुओंके ही होते हैं। पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थके ग्यारह भेद है। जहाँ निर्दोष स०.क्त्व और अष्टमूल गुणका पालन हो उसको पहिला भेद दर्शनप्रतिमा कहते है। मद्य त्याग १. मांसत्याग २ मधु त्याग ३ पंच-उदम्बरफल त्याग ४. रात्रिभोजन त्याग ५ जीवदयापालन ६. जल छानकर पीना ७. और अपने इष्टदेवकी-उपासना करना ८ ये आठ मूलगुण है। सप्तव्यसनका त्यागी भी इन ही अष्टमूल गुणोंमें गर्भित है। सप्तव्यसन इस प्रकार हैं—जुआ खेलना १, मासभक्षण २, मदिरापान ३, वेश्यासेवन ४, शिकार खेलना ५, चोरी करना ६, परस्त्रीगमन ७,। गृहस्थोंके नित्यके षट्कर्म इस प्रकार हैं। देवपूजा १. गुरुसेवा २. धर्मशास्त्रोंका पढ़ना पढाना ३ इन्द्रियोंके विषयोंका त्याग तथा त्रसस्थावर जीवोंकी रक्षा करना ४ उपवासादिक शक्ति-अनुसार तपश्चरण ५. और स्वपरोपकारक दान ६। बारह व्रतोंके निर्दोष पालनेको दूसरी व्रत प्रतिमा कहते हैं। बारह व्रतोंके नाम इस प्रकार हैं—सकल्पी त्रसहिंसाका त्याग १ स्थूल असत्यका त्याग २ स्थूल चोरी-का त्याग ३ स्वदारसन्तोष ४ परिग्रह (धनधान्यादिक) का प्रमाण ५. दशोंदिशाओंमें गमनक्षेत्रकी मर्यादा ६. प्रतिदिवस गमनक्षेत्रकी अन्तर्मर्यादा ७ व्यर्थ स्थावर हिंसादिका त्याग ८ उचित भोगोपभोगका प्रमाण करना ९ सामायिक—कुछ कालके वास्ते सर्व जीवोंसे साम्यभाव धारणकर ध्यानारूढ होना। १० पर्वतिथियों-में उपवासादिक करना ११. पात्रोंको भक्तिपूर्वक दान देना १२। नित्य प्रति त्रिकाल सामायिक करनेको सामायिक संज्ञक तीसरी प्रतिमा कहते हैं। पर्व तिथियोंमें नियम पूर्वक जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदरूप शक्त्य-नुसार उपवासादिक करनेको प्रोषधोपवास संज्ञक चतुर्थ प्रतिमा कहते है। कच्चा जल, वनस्पति आदिक सचित्त (जीवसहित) पदार्थोंके खानेके त्यागको सचित्तत्याग नामक पंचम प्रतिमा कहते है। दिवा मैथुन त्यागको षष्ठम प्रतिमा कहते हैं। स्वस्त्री अर्थात् स्त्रीमात्रके संसर्गके त्यागको ब्रह्मचर्य्य संज्ञक सप्तम प्रतिमा कहते है। हिंसाके कारणभूत कृषिवाणिज्यादिक आरम्भोंके त्यागको आरम्भत्याग संज्ञक अष्टम प्रतिमा कहते है। गृहस्थाश्रमका भार पुत्रोंको सौंपकर सब धनधान्यादिक परिग्रहमे ममत्व त्याग किंचित् कालपर्यन्त गृहमें ही निवासकर धर्म सेवनको परिग्रहत्याग संज्ञक नवमी प्रतिमा कहते है। गृहत्याग चैत्यालय तथा धर्मशालामे निवासकर धर्म सेवन करने तथा भोजनके समय किसी सद्गृहस्थके बुला ले जानेपर उनके यहाँ भोजन कर आना, किन्तु पहिले-से किसीका निमत्रण नही मानना, इस प्रकारके धर्म सेवनको अनुमति त्याग नामक दशमी प्रतिमा कहते हैं। गृहवास त्याग वनमें जाकर गुरुदीक्षा लेकर धर्मका सेवन करना, भोजनके लिये किसीके बुलानेमे न जाना किन्तु गृहस्थोंने स्वतः जो अपने वास्ते आरम्भकर भोजन बनाया हो उसहीको ग्रहण करे, अपने वास्ते बनाये हुए भोजनको ग्रहण नही करना, किन्तु भोजनके समय गृहस्थोंके घर जाना और उनको अपना आगमन जनाकर यदि वे भक्तिपूर्वक आहार करावें तो आहार करना, अन्यथा अति शीघ्र वहाँसे लौट जाना और इस ही प्रकारसे जिस गृहस्थके भोजन हो जाय वहाँसे लौटकर वनमें जाय धर्मसेवन करना, इस प्रकार धर्म सेवनके भेदको उद्दिष्टत्याग नामक ग्यारहवीं प्रतिमा कहते हैं। ग्यारहवी प्रतिमाके दो भेद हैं—एक क्षुल्लक और दूसरा ऐलक। क्षुल्लक लंगोटी और ओढ़नेके वास्ते एक खंडवस्त्र, जिससे शरीर पूर्णरूपसे नही ढक सके, रखते हैं। किन्तु ऐलक एक लंगोटी ही रखते हैं। ऐलक स्थानादिक संशोधनके लिये एक मयूरपिच्छका रखते है किन्तु क्षुल्लक मयूरपिच्छका न रखकर अपने खंडवस्त्रसे ही स्थान संशोधन कर लेते हैं। क्षुल्लक छुरा अथवा कैंचीसे बाल कटवाते हैं किन्तु ऐलक अपने हाथोंसे ही केशलुंचन करते है। देशव्रत संज्ञक पंचम गुणस्थानके ये ग्यारह

भेद हैं। इस गुणस्थानमें अप्रत्याख्यानावरणका कर्मका उपशम रहता है। अप्रत्याख्यानका जबतक किंचित् भी उदय रहता है, तबतक देशव्रत धारण नही कर सकता है। प्रत्याख्यान कर्म यद्यपि मुख्यतासे सकलचारित्रका घातक है तथापि गौणतासे देशचारित्रका भी घातक है। इस ही कारण जबतक प्रत्याख्यानावरण कर्मका तीव्र उदय रहता है, तबतक पहली प्रतिमा होती है। और ज्यों-ज्यों प्रत्याख्यान कर्मका मंद उदय होता जाता है त्यों-त्यो द्वितीयादिक प्रतिमा होती हैं। ग्यारहवीं प्रतिमामें प्रत्याख्यान कर्मका उदय अत्यन्त मंद हो जाता है। इसलिये वह देशव्रत घातनेमें समर्थ नही होता और देशव्रत पूर्ण हो जाता है। प्रत्याख्यान कर्मके उपशमसे तथा संज्वलन और नोकषायके तीव्र उदयसे प्रमत्तविरत संज्ञक छठा गुणस्थान होता है। और जब संज्वलन और नोकषायका मद उदय होता है तब अप्रमत्तविरत सातवाँ गुणस्थान होता है। षष्ठम आदि ऊपरके सब गुणस्थान मुनि अवस्थामें होते है। मुनि अवस्थामें हिंसादिक पंच पापोंके सर्वथा त्यागसे मुनिके पंच महाव्रत होते हैं। मुनि जहाँतक हो सके मन वचन कायके योगोंकी निवृत्तिरूप गुप्तिधर्मका पालन करते हैं। जब गुप्तिधर्म पालनमें असमर्थ होते है तब पंच समितिरूप प्रवृत्ति करते हैं। गमन करते समय जुडा प्रमाण भूमिको शोधकर गमन करनेको ईर्यापथसमिति कहते है। विवेक पूर्वक हित मित वचन बोलनेको भाषासमिति कहते है। निर्दोप आहार ग्रहण करनेको एषणासमिति कहते है। देखभालकर पुस्तक पिच्छका कमंडलुको धरने उठानेको आदाननिक्षेपण समिति कहते है। भूमि संशोधनकर मलमूत्र निक्षेपणको व्युत्सर्गसमिति कहते हैं। वे भूमि इन्द्रिय विषयोंसे उपेक्षित होकर सदा काल ज्ञान, ध्यान और तपश्चरणमें लीन रहते हैं। आहारके वास्ते किसीसे याचना नही करते। भोजनके समय गृहस्थोंके घर जहाँ तक किसीको जानेकी मनाही नहीं है वहाँतक जाते हैं। बिजलीके चमत्कारवत् दर्शन देकर यदि किसीने भक्तिपूर्वक भोजनार्थ तिष्ठनेके लिये प्रार्थना नही की तो तत्काल वापिस लौट जाते है। दिनमें केवल एक बार ही एक स्थानमें खड़े हो अन्न जलका ग्रहण करते है। समस्त पदार्थोंसे ममत्व रहित केवल शरीरमात्र परिग्रहसहित नग्न दिगम्बर मुद्राको धारण करते हुए बिना सवारी पाँव पैदल अनेक देशोंमें बिहार करते हुए भव्य जीवोंको धर्मोपदेश दे स्वपर कल्याण करते है। शरीरसे ममत्व न होनेके कारण अनेक रोग आनेपर भी रोगका इलाज नही करते। पैरमें काँटा लग जाय तो उसको भी नही निकालते। पत्थर सुवर्णको समान समझते है, स्तुति तथा निन्दा करनेवालोंको समदृष्टिसे देखते है, शत्रु और मित्र जिनके समान हैं। यदि कोई दुष्ट आकर उनको कष्ट देवे तो समभाव धारण करके ध्यानमें लीन हो जाते है। और जबतक वह उपसर्ग दूर नही हो तबतक उस स्थानसे नही उठते। केशलुंचन अपने हाथोसे करते है। दन्तधावन तथा स्नानकी तरफ जिनका कभी उपयोग ही नहीं जाता। ध्यानमें ही जिनका समस्त काल व्यतीत होता है। कदाचित् निद्राकी बाधा होनेपर भूमिपर किंचित् कालके लिये शयन कर पुन ज्ञान ध्यानमें लीन हो जाते हैं। नाना प्रकारके परीषहोंको समभावोंसे सहन करते हुए उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य ब्रह्मचर्य दशविध धर्मोंका सेवन करते हैं। वैराग्य भावनाओका चिन्तवन करते हुए अनशन, अवमोदर्य, रसपरित्याग कायोत्सर्ग, ध्यान आदिक तपश्चरण-में लीन रहते है। ऐसे मुनियोंके जबतक संज्वलन और नोकषायका तीव्र उदय रहता है तबतक वे मलजनक प्रमादके सद्भावसे प्रमत्तसंज्ञक छठे गुणस्थानमें रहते हैं। जब संज्वलन और नोकषायका मन्द उदय होता है तब वह मन्द उदय प्रमाद उत्पादन करनेमें समर्थ नही होता इसलिये उस समय उनके अप्रमत्त संज्ञक सप्तम गुणस्थान होता है। इस सप्तम गुणस्थान तक जीवके जो कषाय होते है उनको यह स्वयं अनुभव कर सकता है। इसलिये इन कषायोंको बुद्धिपूर्वक कषाय कहते हैं। आठवें, नवें और दशवें अर्थात् अपूर्वकरण, अनि-वृत्तकरण और सूक्ष्मसाम्पराय इन तीन गुणस्थानोंमें उत्तरोत्तर कषाय ऐसे सूक्ष्म हो जाते हैं कि जिनको यह आत्मा स्वयं अनुभव नहीं कर सकता इसलिये इन कषायोंको अबुद्धिपूर्वक कषाय कहते हैं। सातवें गुणस्थानसे

आगे दो मार्ग हैं अर्थात् उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी। उपशम अर्थात् प्रथमोपशम तथा वेदकसम्यक्त्वका सद्भाव सातवें गुणस्थानसे आगे नही है। आगे चढनेवाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको छोडकर वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी कर्मको जो कि सत्तामें है अप्रत्याख्यानादिक अन्य कर्मरूप परिणमा देता है। और दर्शन-मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशम कर या तो द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है या क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी ये दोनों श्रेणी चढ सकता है किन्तु द्वितीयोपशम-सम्यग्दृष्टि क्षपक श्रेणी नही चढ सकता। जिस जीवके परिणाम कम विशुद्ध होते हैं वे चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका क्षय नही कर सकते किन्तु उपशम करते हैं। आठवें गुणस्थानसे उपशमका प्रारम्भ होकर दशवें गुणस्थानके अन्तपर्यन्त २१ प्रकृतियोंका उपशम कर चुकते हैं। चारित्रमोहनीय कर्मका उपशम होनेसे यथाख्यात चारित्रका प्रादुर्भाव होता है और तब इस जीवके उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवाँ गुणस्थान होता है। जब उपशमका काल व्यतीत हो जाता है तब चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे ग्यारहवें गुणस्थानसे च्युत होकर नीचेके गुणस्थानोंमें आ जाता है। किन्तु क्षपकश्रेणीवाला जीव आठवें गुणस्थानके प्रारम्भसे चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंको क्षय करनेका प्रारम्भ करके दशवें गुणस्थानमें चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंका क्षय कर चुकता है। और तब इसके यथाख्यात संयमका प्रादुर्भाव होता है और उस समय इस जीवके क्षीणमोह संज्ञक बारहवाँ गुणस्थान होता है। आठवेंसे लगाकर बारहवें गुणस्थान तक ध्यानारूढ अवस्था होती है। बारहवें गुणस्थानके अन्तमें शेष तीन घातिकर्मोंका भी नाश करके सयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानको प्राप्त होता है। इस गुणस्थानमें चारों घाति कर्मोंके अभावसे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्तसुख, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र ये आत्माके छहो गुण प्रगट हो जाते हैं। संसारके समस्त त्रिकालवर्ती चराचर पदार्थोंको युगपत् हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानते हैं, इस कारण सर्वज्ञ है। राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादिक कषायोंसे रहित है। इसलिये वीतराग है। नामकर्मका उदय विद्यमान है इसलिये आहार वर्गणाके ग्रहणसे शरीर तथा भाषा वर्गणासे ग्रहणसे दिव्यध्वन्यात्मक शब्दके सद्भावसे वक्तृत्व गुणविशिष्ट है। नामकर्मके उत्तरभेद स्वरूप प्रशस्त विहायोगतिके उदयसे अनेक देशोंमें विहार करते हैं। थोडे काल पीछे नियमसे मोक्षको जायेंगे तथा आयुकर्मके उदयसे वर्तमान कालमें जीवित है इसलिये जीवनमुक्त है। आत्माके समस्त गुण पराकाष्ठाको पहुँच गये है तथा शरीर करके सहित है इसलिये सकल परमात्मा है। समस्त गृहस्थ तथा साधुओं करि पूज्य है इसलिये अर्हन् है। परम विभूतिकर सहित है इसलिये परमेश्वर है। मोक्षमार्गके विधायक है इसलिये विधाता हैं। यह ही महत्तनाम-विशिष्ट जीवनमुक्त परमात्मा अनेक देशोंमें विहार करते हुए भव्यजीवोंको मोक्षमार्गका उपदेश देकर अपने गुणस्थानके अन्तमें योग निरोधकर अयोगकेवली संज्ञक चौदहवें गुणस्थानको प्राप्त होकर इस गुण-स्थानके अन्तमें अघाति कर्मोंका भी नाश करके अपने ऊर्ध्वगति स्वभावसे लोकशिखरको प्राप्त होकर मोक्षसे पाणिग्रहण कर स्वानुभूतिरूप निज परिणतिमें लीन हुए सदाके लिये अनन्तकाल पर्यन्त परमानन्दस्वरूप सुखसागरमें निमग्न रहते है। इस समस्त कथनका सारांश इस प्रकार है। यद्यपि इस संसारमें जड़, चेतन और उनके अन्तर्भेदोंकी अपेक्षासे अनेक पदार्थ है। परन्तु शुद्धात्मतत्स्वरूप परब्रह्मके सिवाय सब ही हेय हैं। केवल परब्रह्म ही उपादेय है दूसरा कोई भी उपादेय नही है; इसलिये उपादेयताको अपेक्षासे परब्रह्म अद्वितीय है। संसारमें यह जीवात्मा अष्ट कर्मरूप मायामें लिप्त होता हुआ संसारमें घोर दु:ख भोग रहा है। जब अष्ट कर्मरूप मायासे अलिप्त हो जाता है तब यह जीव लोकशिखरपर विराजमान अनेक शुद्धात्माओंके समूहरूप परब्रह्ममें एक क्षेत्रावगाहस्थितिरूप तल्लीन हो जाता है। इसलिये शुद्धात्मस्वरूप जीव और अनन्त शुद्धात्माओं-के समूहरूप परब्रह्ममें अंश-अंशी सम्बन्ध है।

जीव और मायाके सम्बन्धका हेतु मिथ्यात्व रागद्वेषादिक भाव स्वरूप भ्रम है। इस भ्रमके नाश होनेसे ही यह जीव मायासे अलिप्त होकर परब्रह्ममें मिल जाता है। इस रागद्वेषादिक भावोंके अभावको ही अहिंसा कहते हैं। इसलिये सार्वधर्म अहिंसा स्वरूप है। भ्रमात्मक ज्ञानके निमित्तसे आदिके दो गुणस्थानवर्ती जीव बहिरात्मा है। क्योंकि उन्होंने बाह्य पदार्थोंमें आत्मबुद्धि मान रक्खी है। तीसरे गुणस्थानवर्ती जीव मिश्रात्मा हैं। चौथेसे लगाकर बारहवें गुणस्थानपर्यन्तवाले जीव अन्तरात्मा हैं, क्योंकि ये निजात्मामें ही आत्मबुद्धि मान अपनी आत्माको परमात्मा बनानेके उपायमें निमग्न हो गये हैं। तेरहवें और चौदहवें गुण-स्थानवर्ती जीव सकल परमात्मा हैं। यह जीव बहिरात्मपदमें मग्न हुआ परमें आपा मान अनादि कालसे इस असार संसारमें घोर दुःखोंको सहन करता हुआ परिभ्रमण कर रहा है। भ्रमबुद्धिके मिटनेसे आपमें आपा मान परपदार्थोंसे रागद्वेष त्याग सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप रत्नत्रयात्मक सार्वधर्मका आराधन करनेसे यह जीव परमात्मपदको प्राप्तकर मोक्षधाममें अविनाशी अनन्त सुखको भोगता हुआ सदा आनन्दसागरमें मग्न रहेगा। इस कारण सत्यखोजी आत्मकल्याणभिलाषी निष्पक्ष महाशय इस छोटेसे निबन्धमेंसे सार्वधर्मकी आराधनासे तत्त्वको ग्रहणकर अपनी आत्माके हितमें प्रवृत्ति करेंगे। इस निबंधमें अज्ञान तथा प्रमादवश यदि कोई शब्द आपके चित्तको आघात पहुँचानेवाला लिखा गया हो तो मैं उसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। आशा है कि आप अपनी उदारशीलतासे क्षमा प्रदान करेंगे।

द्रव्य और उसके परिणामका कारण

स्व० श्रद्धेय पूज्य गणेश प्रसाद जी वर्णी

"अहम्प्रत्ययवेद्यत्वाज्जीवस्यास्तित्वमन्वयात् । एको दरिद्र एकः श्रीमानिति च कर्म्मणः ॥"

मैं सुखी हूँ, दुखी हूँ इत्यादि प्रत्ययसे जीवके अस्तित्वका साक्षात्कार होता है। अन्वयसे भी इसका प्रत्यय होता है कि 'यह वही देवदत्त है जिसे मैंने मथुरामें देखा था'। अब यहाँ देख रहा हूँ। इस प्रत्ययसे भी आत्माके अस्तित्वका निर्णय होता है। कोई तो श्रीमान देखा जाता है, कोई दरिद्र देखा जाता है, इस विभिन्नतामें कोई कारण होना चाहिए। यह विषमता निर्हेतुक नही। इसमें जो हेतु है उसीको कर्म नामसे कहा जाता है। नाममें विवाद नही-चाहे कर्म कहो, अदृष्ट कहो, ईश्वर कहो, खुदा कहो, विधाता कहो जो आपको रुचिकर हो, परन्तु यह अवश्य मानना कि यह विभिन्नता निर्मूल नही। यह भी मानना पडेगा कि जो यह दृश्यमान जगत है वह केवल एक जीवका परिणाम नही। यदि केवल एक पदार्थका हो तब उसमें नानात्व कहाँसे आया? नानात्वका नियामक द्रव्यान्तर होना चाहिये। केवल पुद्गलमें यह शब्दादि पर्यायें नहीं होती। जब पुद्गल-परमाणुओंकी बन्धावस्था हो जाती है तभी यह पर्यायें होती है। उस अवस्थामें पुद्गलपरमाणुओंकी सत्ता द्रव्यरूपसे अबाधित रहती है। शब्दादि पर्यायें केवल परमाणुओंकी नही, किन्तु स्कन्धपर्यायान्त परमाणुओं-की है।

जीवकी विकारी पर्याय

इसी तरह जो रागादि पर्यायें है वह उदयावस्थापन्न जो कर्म, उसके सद्भावमें ही जीवमें होती है। यदि ऐसा न माना जावे तब रागादि परिणाम जीवका पारिणामिक भाव हो जावे। ऐसा होनेसे संसारका अभाव हो जावे। यह किसीको इष्ट नही। किन्तु प्रत्यक्षसे रागादि भावोका सद्भाव देखा जाता है। इससे यही तत्त्व निर्गत होता है कि रागादि भाव औपाधिक है। जैसे स्फटिक मणि स्वच्छ है किन्तु जब स्फटिक मणिके साथ जपापुष्पका सम्बन्ध होता है तब उसमें लालिमा प्रतीत होती है। यद्यपि स्फटिक मणि स्वय रक्त नही किन्तु निमित्तको पाकर रक्तिमामय प्रत्ययका विषय होती है। इससे यह समझमें आता है कि स्फटिक मणि निमित्तको पाकर लाल जान पडता है, वह लालिमा सर्वथा असत्य नही।

ऐसा सिद्धान्त है कि जो द्रव्य जिस कालमें जिस रूप परिणमती है उस कालमें तन्मय हो जाती है। श्री कुन्दकुन्द महाराजने स्वयं प्रवचनसारमें लिखा है—

"परिणमदि जेण दव्वं तक्कालं तम्मयत्ति पण्णत्तं । तम्हा धम्मपरिणदो आदा धम्मो मुणेदव्वो ॥"

इस सिद्धान्तसे यह निष्कर्ष निकला कि आत्मा जिस समय रागादिमय परिणमेगा उस कालमें नियमसे उस रूप ही है। पर्यायदृष्टिसे उन्ही रागादिका उस कालमें भोक्ता होगा। जो भाव करेगा, वर्तमानमें उसीका अनुभव होगा। जल शीत है, परन्तु अग्निके सम्बन्धसे उष्ण पर्यायको प्राप्त करता है। यद्यपि उसमें शक्ति अपेक्षा शीत होनेकी योग्यता है परन्तु वर्तमानमें शीत नही। यदि कोई उसे शीत मानकर पान करे तब दग्ध ही होगा। इसी प्रकार यदि आत्मा वर्तमानमें रागरूप है तब रागी ही है। इस अवस्थामें वीतरागताका अनुभव होना असम्भव ही है। उस कालमें आत्माको रागादि रहित मानना मिथ्या है। यद्यपि रागादि

परिणाम परनिमित्तक हैं अतएव औपाधिक हैं, नाशशील हैं परन्तु वर्तमानमें तो औष्ण्य परिणत अयःपिण्डवत् आत्मा तन्मय हो रहा है। अर्थात् उन परिणामोंके साथ आत्माका तादात्म्य हो रहा है। इसीका नाम अनित्य तादात्म्य है। यह अलीक कथन नही जिस कालमें एक मनुष्यने मद्यपान किया वर्तमानमें जब वह मनुष्य मद्यपानके नशासे उन्मत्त होगा तब क्या वर्तमानमें वह मनुष्य उन्मत्त नही? अवश्य उन्मत्त है। किन्तु किसीसे आप प्रश्न करें कि मनुष्यका लक्षण क्या है? तब क्या वह उत्तर देनेवाला यह कह सकता है कि मनुष्यका लक्षण उन्मत्तता है? नही। उससे आप क्या यह कहेंगे कि उत्तर ठीक नही? नही कह सकते; क्योंकि मनुष्यकी सभी अवस्थाओंमें उन्मत्तताकी व्याप्ति नही। इसी तरह आत्मामें रागादि भाव होनेपर भी आत्माका लक्षण रागादि नही हो सकता, क्योंकि आत्माकी अनेक अवस्थाएँ होती हैं। उन सबमें यह रागादिभाव व्यापक रूपसे नहीं रहता, अत. यह आत्माका लक्षण नही हो सकता। लक्षण वह होता है जो सभी अवस्थाओंमें पाया जावे। ऐसा लक्षण चेतना ही है। यद्यपि रागादि परिणाम तथा केवलज्ञानादि भी आत्मा हीमें होते है परन्तु उन्हें लक्षण नहीं माना जाता; क्योंकि वे पर्यायविशेषमें होते है। व्यापकरूपसे नही रहते। चेतना ही आत्माका एक ऐसा गुण है जो आत्माकी सभी दशाओमें व्यापक रूपसे रहता है।

चेतना : जीवका लक्षण

आत्माकी दो अवस्थाएँ है—संसारी और मुक्त। इन दोनोंमें चेतना रहती है इसीसे अमृतचन्द्र स्वामीने लिखा है—

"अनाद्यनन्तमचलं स्वसम्वेद्यमिदं स्फुटम्। जीवः स्वय तु चैतन्यमुच्चैश्चकचकायते॥"

जीव नामक जो पदार्थ है वह स्वय सिद्ध है तथा परनिरपेक्ष अपने स्वयं अतिशयसे चकचकायमान—प्रकाशमान हो रहा है। कैसा है? अनादि है। कोई इसका उत्पादक नही। अनादि है, अतएव अकारण है। जो वस्तु अनादि अकारण है वह अनन्त भी होती है। ऐसे ही अनादि अनन्त तथा अचल अजीव द्रव्य भी है। इसमें इसका लक्षण स्वसम्वेद्य भी है यह स्पष्ट है। जीव नामक पदार्थमें अन्य अजीवोंकी अपेक्षा चेतनागुण ही भेद करनेवाला है। वही गुण इसमें विशद है। जो सब पदार्थोंकी और निजकी व्यवस्था कर रहा है। इस गुणको सभी मानते है परन्तु कोई उस गुणको उससे सर्वथा भिन्न मानते है, और कोई गुणसे अतिरिक्त अन्य द्रव्य नही, गुणगुणी सर्वथा एक है, ऐसा मानते है। कोई चेतना तो जीवमें मानते है परन्तु वह ज्ञेयाकार परिच्छेदसे पराङ्मुख रहता है। प्रकृति और पुरुषके सम्बन्धसे जो बुद्धि उत्पन्न होती है उसमें चेतनाके संसर्गसे जानपना आता है ऐसा मानते है। कोई कहता है कि पदार्थ नाना नही एक ही अद्वैत तत्त्व है। वह जब मायावच्छिन्न होता है तब यह संसार होता है। किसीका कहना है कि जीव नामक स्वतन्त्र जीवकी सत्ता नही। पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनकी विलक्षण अवस्था होती है, उसी समय यह जीवरूप अवस्था हो जाती है। यह जितने मत हैं सर्वथा मिथ्या नही।

जैनदर्शनमें अनन्त गुणोंका जो अविष्वग्भाव सम्बन्ध है वही तो द्रव्य है। वह गुण आत्मीय स्वरूपकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न है परन्तु कोई ऐसा उपाय नही जो उनमेंसे एक भी गुण पृथक् हो सके। जैसे पुद्गल द्रव्यमें रूप-रस-गन्ध-स्पर्श गुण है, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे पृथक्-पृथक् ज्ञानमें आते है, परन्तु उनमें कोई पृथक् करना चाहे तो नही कर सकता। वे सब अखण्डरूपसे विद्यमान हैं। उन सब गुणोंकी जो अभिन्न प्रदेशता है उसीका नाम द्रव्य है। अतएव प्रवचनसारमें श्री कुन्दकुन्द देवने लिखा है—

"णत्थि विणा परिणामं अत्थ अत्थं विणेह परिणामो। दव्वगुणपज्जयत्थो अत्थित्तणिप्पण्णो ......"

परिणामके बिना अर्थकी सत्ता नही तथा अर्थके बिना परिणाम नही। जैसे दुग्ध, दधि, घी, छांछ इनके बिना गोरस कुछ भी सत्ता नही रखता। इसी तरह गोरस न हो तब इन दुग्धादिकी सत्ता भी नहीं। एवं यदि आत्माके बिना ज्ञानादि गुणोंका कोई अस्तित्व नही। बिना परिणामीके परिणामका नियामक कोई नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि ये गुण सर्वदा परिणामशील हैं किन्तु अनादिसे आत्मा कर्मोंसे सम्बन्धित है इससे इसके ज्ञानादि गुणोंका विकाश निमित्तकारणोंके सहकारसे होता है। होता उसीमें है, परन्तु जैसे घटोत्पत्तिकी योग्यता मृत्तिकामें ही होती है, परन्तु कुम्भकारके व्यापारके बिना घट नही बनता। कलशकी उत्पत्तिके अनुकूल व्यापार कुम्भकारमें ही होगा। फिर भी मिट्टी अपने व्यापारसे घटरूप होगी। कुम्भकार घट-रूप न होगा।

निमित्तकी सहकारिता

उपादानको मुख्य माननेवालोंका कहना है कि कुम्भकारकी उपस्थिति वहाँ पर, जब मिट्टीमें घट पर्यायकी उत्पत्ति होती है, स्वयमेव हो जाती है। यहाँ पर यह कहना है कि घटोत्पत्ति स्वयमेव मिट्टीमें होती है इसका क्या अर्थ है ? जिस समय मिट्टीमें घट होता है उस कालमें क्या कुम्भरादि निरपेक्ष घट होता है या सापेक्ष ? यदि निरपेक्ष घटोत्पत्ति होती है तब तो एक भी उदाहरण बताओ, जो मृत्तिकामें कुम्भकारके व्यापार बिना घट हुआ हो, सो तो देखा नही जाता। साक्षेप पक्षको अङ्गीकार करोगे तब स्वयमेव आ गया कि कुम्भकारके व्यापार बिना घटकी उत्पत्ति नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि कुम्भकार घटोत्पत्तिमें सहकारी निमित्त है। जैसे आत्मामें रागादि परिणाम होते हैं, आत्माही इनका उपादान कर्ता है परन्तु चारित्रमोहके बिना रागादि नही होते। होते आत्मामें ही है, परन्तु बिना कर्मोदयके ये भाव नही होते। यदि निमित्तके बिना ये हों तब आत्माके त्रिकाल अबाधित स्वभाव हो जावें, सो ऐसे ये भाव नहीं। इनका विनाश हो जाता है। अत यह मानना पडेगा कि वे आत्माका निजभाव नही। इसका यह अर्थ नही कि ये भाव आत्माके होते ही नही। होते तो है परन्तु निमित्तकारणकी अपेक्षासे नही होते यदि ऐसा कहोगे तब आत्मामें मतिज्ञानादि जो चार ज्ञान उत्पन्न होते है वे भी तो नैमित्तिक है, उनको भी आत्माके मत मानो।

हम तो यहाँ तक माननेको प्रस्तुत है कि क्षायोपशमिक, औदयिक, औपशमिक जितने भी भाव है वे आत्माके अस्तित्वमें सर्वदा नही होते। उनकी कथा छोडो, क्षायिक भाव भी तो क्षयसे होते हैं वे भी अबाधित रूपसे त्रिकालमें नही रहते। अत वे भी आत्माके लक्षण नही। केवल चेतना ही आत्माका लक्षण है। यही त्रिकाल अवस्थित रहता है। इसी भावको प्रकट करनेवाला एक श्लोक अष्टावक्र-गीतामें अष्टावक्र ऋषिने लिखा है—

"नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्। अयमेव हि मे बन्धो मा स्याज्जीविते स्पृहा॥"

मैं देह नही हूँ, और न मेरा देह है, और न मैं जीव हूँ, मैं तो चित्त हूँ, अर्थात् चैतन्य गुण वाला हूँ, यदि ऐसा वस्तुका निज स्वरूप है तब आत्माको बन्ध क्यो होता है ? इसका कारण हमारी इस जीवमें स्पृहा है। यह जो इन्द्रिय, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास और आयु प्राणवाले पुतलेमें हमारी स्पृहा है यही तो बन्धका मूलकारण है। हम जिस पर्यायमें जाते हैं उसीको निज मान बैठते है। उसके अस्तित्वसे अपना अस्तित्व मानकर पर्यायबुद्धि होकर सब व्यवहार पर्यायके अनुरूप प्रवृत्ति करते-करते एक पर्यायको पूर्ण कर पर्यायान्तरको प्राप्त करते हैं। इससे यही तो निकला कि हम पर्यायबुद्धिसे ही अपनी जीवनलीला पूर्ण करते हैं।

इस तरह यह संसारचक बराबर चला जाता है। यदि इसको मिटाना है तब यह जो प्रक्रिया है

उसका अन्त करना पड़ेगा । इस प्रक्रियाका मूलकारण स्निग्ध परिणाम है । उसका अन्त करना ही इस भवचक्रके विध्वंसका मूल हेतु है । इसको दूर करनेके उपाय बड़े-बड़े महात्माओंने बतलाये है ।

स्व-पर विज्ञान

आज संसारमें जितने आयतन धर्मके दिखते हैं । इसी चक्रसे बचानेके हैं । किन्तु अन्तरङ्ग दृष्टि डाली तब यह सभी उपाय पराश्रित हैं । केवल स्वाश्रित उपाय ही स्वार्जित संसारके विध्वंसका कारण हो सकता है । जैसे शरीरमें यदि अन्न खाकर अजीर्ण हो गया है तो उसके दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय यह है कि उदरमें पर-द्रव्यका जो सम्बन्ध हो गया है उसे पृथक कर दिया जावे । अनायास ही नीरोगताका लाभ हो सकता है । मोक्षमार्गमें भी यह प्रक्रिया है । अपितु जितने कार्य है उन सबकी यही पद्धति है । यदि हमें संसार बन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा है तो सबसे प्रथम हम कौन है ? हमारा क्या स्वरूप है ? वर्तमान क्या है ? संसार क्यों अनिष्ट है ? जब तक यह निर्णय न हो जावे तब तक उसके अभावका प्रयत्न करना हो ही नही सकता ।

यह हम प्रारम्भमें ही वर्णन कर चुके है उसकी जो अवस्था हमें संसारी बना रही है उससे मुक्त होनेकी हमारी इच्छा है तब केवल इच्छा करनेसे मुक्तिके पात्र हम नही हो सकते । जैसे अग्निके निमित्तसे जल ऊष्ण हो गया है, अब हम माला लेकर जपने लगे 'शीत-स्पर्शवज्जलाय नमः' तब अनल्पकालमें भी जल शीत न होगा । उष्णस्पर्शको दूर करनेसे ही जलका शीत स्पर्श होगा । इसी तरह हमारी आत्मामें जो रागादि विभाव परिणाम है उनके दूर करनेके अर्थ 'श्री वीतरागाय नमः' यह जाप असंख्य कल्प भी जपा जावे तो भी आत्मामें वीतरागता न आवेगी किन्तु रागादि निवृत्तिसे अनायास वीतरागता आ जावेगी । वीतरागता नवीन पदार्थ नही, यह आत्मा परपदार्थोंसे मोह करता है । मोह क्या वस्तु है ? जिसके उदयसे परमें निजत्वबुद्धि होती है वही मोह है ।

मोहकी महिमा

परको निज मानना यह अज्ञानभाव है । अर्थात् मिथ्याज्ञान है इसका मूलकारण मोहका उदय है । ज्ञानावरणका क्षयोपशम ज्ञानसे होता है परन्तु विपर्यय अज्ञानसे होता है । जैसे शुक्तिकामें रजतका विभ्रम होता है । यद्यपि शुक्ति रजत नही हो गई, परन्तु दूरत्व, चाकचिक्यादि कारणोंसे भ्रान्ति हो जाती है, भ्रान्तिका कारण दूरत्वादि दोष हैं । जैसे कामला रोगी जब शङ्खको देखता है तब 'पीतः शङ्खः' ऐसी प्रतीति करता है । यद्यपि शङ्खमें पीतता नही, यह तो नेत्रमें कामला रोग होने शङ्खमें पीतत्व भासमान है । यह पीतता कहाँसे आयी ? तब यही कहना पड़ेगा कि नेत्रमें कामला रोग है वही इस पीतत्व ज्ञानका कारण हुआ । इसी प्रकार आत्मामें जो रागादि होते हैं उनका मूल कारण मोहनीय कर्म है । उसके दो भेद है—एक दर्शनमोह दूसरा चारित्रमोह । उसमें दर्शनमोहके उदयसे मिथ्यात्व और चारित्रमोहके उदयसे रागद्वेष होते है ।

मिथ्यादृष्टि जीव उन्हें निज मान अनन्त संसारके पात्र होते हैं । समझमें नहीं आता यह विषमता क्यों ? विषमताका मिटना सहज नहीं, स्वयमेव मिटती है या कारणकूटसे । यदि स्वयमेव मिटती है तब उसके मिटानेका जो प्रयास है वह व्यर्थ है । पुरुषार्थ तो प्रायः सभी करते हैं परन्तु सभी सफल मनोरथ क्यों नही होते ? तब यही उत्तर होगा कि जिसने यथार्थ प्रयास नहीं किया उसका कार्य सफल नहीं हुआ । फिर कोई प्रश्न करे कि अन्तरङ्गसे तो चाहता है परन्तु प्रयास अनुकूल नहीं बनते, इसमें कारण क्या है कुछ बुद्धिमें नही आता । अन्ततोगत्वा यही उत्तर मिलता है कि जब जीवका कल्याण होनेका समय आता है

अनायास कारणकूट जुड जाते हैं। कौन चाहता कि हमें आकुलता हो और हम दुःखके पात्र बनें। फिर भी जो नहीं चाहता वह होता है और जो चाहता है वह नही होता। यह प्रश्न हरएक करता है; उत्तर भी लोग देते हैं, किन्तु अन्तमें अकाट्य उत्तर नही मिलता। अत. इन झंझटोंके चक्रमें न पड़कर जितनी चेष्टा करो निवृत्तिके ऊपर दृष्टिपात कर करो।

अन्यकी कथा छोडो, यदि तीव्रोदयमें मिथ्यात्वरूपमें कार्य किये गये उनमें भी यही भावना करो कि अब न करने पड़ें। मेरी तो यह श्रद्धा हैं कि कोई भी कार्य करो, चाहे वह शुभ हो, चाहे अशुभ हो, यही भावना मानो कि अब फिर न करना पड़े। जैसे मन्द कषायोंके उदयमें पूजनादि कार्य करने पडते हैं उनमें यह भावना रक्खो कि हे भगवन्! अब कालान्तरमें यह न करना पडे। मिथ्या-ज्ञानी और सम्यग्ज्ञानीमें यही तो अन्तर है कि मिथ्याज्ञानी जीव शुभ कार्योंको उपादेय मानता है, सम्यग्ज्ञानी ऋण जान अदा करता है। यही विषमता दोनोंमें है। इस विषमताका वारण होना कठिन है। यही कारण है कि अनन्तजन्म तप करते-करते द्रव्य-लिंगसे मोक्ष नही होता। इसका मूल अभिप्रायकी ही मलिनता तो है। इस अभिप्रायकी मलिनताको मिटानेवाला यह आत्मा स्वयं प्रयत्नशील हो, मिट सकती है। यदि यह न होता तो मोक्ष-मार्ग ही न होता। जब आत्मामें अचिन्त्य शक्ति है तब उसका उपयोग आत्मीय यथार्थ परिणतिके लिए क्यों न किया जाय?

ज्ञानकी महत्ता

जो आत्मा जगतकी व्यवस्था करनेमें समर्थ है वह आत्मीय व्यवस्था न कर सके समझमें नही आता। किन्तु हम उस ओर लक्ष्य नही देते। यहाँपर इस शङ्काको अवकाश नही कि नेत्र पदार्थान्तरोंको जानता है परन्तु अपनेको नहीं जानता। इसका उत्तर यह है कि जब नेत्र अपनेको देखना चाहे तब एक दर्पणको समक्ष रक्खे, उसमें जब मुखका प्रतिबिम्ब पडता है तब नेत्रकी आकृतिका बोध हो जाता है। यह भी तो नेत्रने दिखाया। जब ज्ञान घटादि पदार्थोंको देखता है तब उनकी व्यवस्था करता है और जब स्वोन्मुख होता है तब यही तो विकल्प होता है कि जो घटादि देखनेवाला है वही तो मैं हूँ।

परमार्थसे ज्ञान बाह्य घटादिकोंकी व्यवस्था नही करता किन्तु ज्ञानमें जो विकल्प हुआ उसको जानता है। उसीकी व्यवस्था करता है। अर्थात् ज्ञानमें जो अर्थाकार विकल्प हुआ, ज्ञान उसी ज्ञानकी पर्यायका संवेदन करता है। तब इसका यही तो अर्थ हुआ कि ज्ञानने अपने स्वरूप ही का वेदन किया। इस तरह ज्ञेय और ज्ञानकी व्यवस्था है। यह व्यवस्था अनादिसे चली आई है। अनन्तकाल पर्यन्त रहेगी। किन्तु इस व्यवस्थामें जो हमारी परको निज माननेकी पद्धति है वही पद्धति रागद्वेषकी उत्पादक है। अत: जिन्हें अपनेको संसारबन्धनमें रखना इष्ट है उन्हें इस मान्यताको अपनाना चाहिए। यद्यपि किसीको यह इष्ट नही कि इस जालमें हम रहें परन्तु अनादि से हमारी मान्यता इतनी दूषित है जिससे निजको जानना ही असम्भव है। जैसे जिस मनुष्यने खिचडीका भोजन किया है उससे केवल चावलका स्वाद पूछो तो नही बता सकता। इसी तरह मोहके उदयमें जो ज्ञान होता है उसमें परको निज माननेकी ही मुख्यता रहती है। यद्यपि पर निज नहीं, परन्तु क्या किया जावे। जो निर्मल दृष्टि है वह मोहके सम्बन्धसे इतनी मलिन हो गई है कि निजकी ओर जाती ही नहीं। इसीके सद्भावमें यह दशा जीवकी हो रही है कि उन्मत्त पान करनेवालेकी तरह अन्यथा प्रवृत्ति करता है। अतः इस चक्रसे बचनेके अर्थ परमें ममता त्यागो। केवल वचनोंसे व्यवहार करनेसे ही सन्तोष मत कर लो। जो मोहके साधक हैं उन्हें त्यागो।

पञ्चेन्द्रियोंके विषय त्यागनेसे ही इन्द्रियविजयी होगा। कथा करनेसे कुछ तत्त्व नहीं निकलता। बात असलमें यह है कि हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान है, इस ज्ञानमें जो पदार्थ भासमान होगा उसीकी ओर तो हमारा लक्ष्य जावेगा। उसीकी सिद्धिके लिये हम प्रयास करेंगे, चाहे वह अनर्थकी जड हो। अनर्थकी जड बाह्य वस्तु नहीं। बाह्य वस्तु तो अध्यवसानमें विषय पडती है। बाह्य वस्तु बन्धका जनक नहीं। श्री कुन्दकुन्द देवने लिखा है—

"वत्थुं पडुच्च जं पुण अज्झवसाणं दु होदि जीवाणं। ण हि वत्थुदो य बंधो अज्झवसाणेण बंधो दु॥"

वस्तुको निमित्तकर अध्यवसानभाव जीवोंके होता है किन्तु पदार्थ बन्धका कारण नहीं। बन्धका कारण तो अध्यवसानभाव है। यदि ऐसा सिद्धान्त है तब बाह्य वस्तुका परित्याग क्यों कराया जाता है? अध्यवसानके न होनेके अर्थ ही बाह्य वस्तुका निषेध कराया जाता है। बाह्य वस्तुके बिना अध्यवसानभाव नही होता। यदि बाह्य पदार्थके आश्रय बिना अध्यवसानभाव होने लगे तब जैसे यह अध्यवसानभाव होता है कि मैं रणमें जाकर वीरसू माताके पुत्रको मारूँगा, यह भी अध्यवसान होने लगे कि बन्ध्यापुत्रको मारूँगा, नही होता, क्योंकि मारण क्रियाका आश्रयभूत बन्ध्यासुत नही है अतः जिन्हें बन्ध न करना हो बाह्य वस्तुका परित्याग कर देवें।

परमार्थसे अन्तरङ्ग मूर्छाका त्याग ही बन्धकी निवृत्तिका कारण है। परपदार्थके जीवन-मरण, सुख-दुःखका अध्यवसान तो सर्वथा ही त्याज्य है, क्योंकि हमारे अध्यवसानके अनुरूप कार्य नही होता। इससे यह सिद्धान्त निकला कि इन मिथ्या विकल्पोंको त्यागकर यथार्थ वस्तु-स्वरूपके निर्णयमें अपनेको तन्मय करो। अन्यथा इसी भवचक्रके पात्र रहोगे। तुम विश्वको अपनाते हो, इसमें मूल जड मोह है। यह अध्यवसान आदि भाव जिनके नहीं है वही महा-मुनि हैं। वही शुभ और अशुभ कर्मसे लिप्त नही होते।

बन्धके हेतु

ये मिथ्यात्व, अज्ञान तथा अविरति रूप जो त्रिविध भाव है वही शुभाशुभ कर्मबन्धके निमित्त हैं, क्योंकि यह स्वयं अज्ञानादिरूप है। वही दिखाते हैं। जैसे जब यह अध्यवसानभाव होता है 'अहं हिनस्मि' यह जो अध्यवसानभाव है यह अज्ञानमयभाव है और आत्मा सत् है, अहेतुक है, ज्ञप्तिरूप एक क्रियावान् है ऐसा जो आत्मा है उसका और रागद्वेषके विपाकसे जायमान हननादि क्रियाओंका विशेष भेदज्ञान न होनेसे, भिन्न आत्माका ज्ञान न होनेसे अज्ञान ही रहता है। भिन्न आत्मदर्शन न होनेसे मिथ्यादर्शन रहता है। भिन्न आत्माका चारित्र न होनेसे मिथ्याचारित्र हो का सद्भाव रहता है। इस तरहसे मोहकर्मके निमित्तसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रका सद्भाव आत्मामें है।

इसी मोहके उदयके साथ जब ज्ञानावरणका क्षयोपशम रहता है 'धर्मो ज्ञायते' जब यह अध्यवसान होता है, यह जो ज्ञेयभाव ज्ञानमें आते है, इनका और सहेतुक ज्ञानमय आत्माका भेदज्ञान न होनेसे अज्ञान, विशेष दर्शन न होनेसे अदर्शन, इसी तरह विशेष स्वरूपमें चर्या न होनेसे अचारित्रका सद्भाव रहता है। यदि परमार्थसे विचारा जावे तब आत्मा स्वतन्त्र है और यह जो स्पर्श-रस-गन्धवर्ण वाला पुद्गल द्रव्य है वह स्वतन्त्र है। इन दोनोंके परिणमन भी अनादि कालसे स्वतन्त्र हैं परन्तु इन दोनोंमें जीव द्रव्य चेतन गुणवान् है और उसमें यह शक्ति है कि जो पदार्थ उसके सामने आता है उसमें झलकता है, प्रतिभासित होता है। पुद्गलमें भी एक परिणमन इस तरहका है कि उसमें भी रूपी पदार्थ झलकता है परन्तु वह मेरेमें प्रतिभासित होता है यह उसे ज्ञात नहीं। आत्मामें जो पदार्थ प्रतिभासमान होता है उसे यह भाव होता है कि यह पदार्थ मेरे ज्ञानमें आये। यही आपत्तिका मूल है। उन पदार्थोंको अपनानेकी प्रकृति मोहके सम्बन्धसे हो जाती है,

यही अनन्त संसारका कारण होता है। प्रत्येक मनुष्य यह मानता है कि पर पदार्थका एक अंश भी ज्ञानमें नही आता है फिर न जाने उन्हें क्यों अपनाता है। यही महती अज्ञानता है। अतः जहाँ तक आत्मद्रव्यको आत्मा ही रहने देनेकी अपेक्षा जो अन्यरूप करनेका प्रयास है, यही अनन्त संसारको कारण है। ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो यह पर-द्रव्य है, यह मेरा है, नही कह सकता ? ऐसा सिद्धान्त है कि जो जिसका भाव होता है वह उसका स्व है। जिसका जो स्व होता है वह उसका स्वामी है, अत यह निष्कर्ष निकला कि अन्य द्रव्य अन्यका स्व नहीं तब अन्य द्रव्य अन्यका स्वामी नही, तब अन्य द्रव्य आपका स्वामी नहीं। यही कारण है जो ज्ञानी जीव परको ग्रहण नहीं करता।

परका स्वामित्व

मैं ज्ञानी हूँ अतः मैं भी परको ग्रहण नही करूँगा। यदि मैं परद्रव्यको ग्रहण करूँ तब यह अजीव मेरा स्व हो जावे और मैं अजीवका स्वामी हो जाऊँगा। अजीवका स्वामी अजीव ही होगा, उसे अजीव होना पड़ेगा, ऐसा नहो, मैं तो ज्ञाता दृष्टा हूँ अतः पर द्रव्यको ग्रहण नही करूँगा। जब परद्रव्य मेरा नही तब वह चाहे छिद जावो, भिद जावो, चाहे कोई ले जाओ अथवा जिस तिस अवस्थाको प्राप्त हो जाओ तथापि पर द्रव्यको ग्रहण नही करूँगा। यही कारण है कि सम्यग्ज्ञानी धर्म, अधर्म, असत्दान इनको नही चाहता। धर्म पदार्थ पुण्यको कहते है अर्थात जब इस जीवके प्रशस्त राग, अनुकम्पा परिणाम और चित्तमें अकलुषतारूप परिणाम होता है उसी समय इस जीवके पुण्यबन्ध होता है अर्थात् तिस कालमें अर्हत, सिद्ध, साधुके गुणोमें अनुराग होता है इसीका नाम भक्ति है। अर्थात् उनके गुणोंकी प्राप्ति हो यही तो भक्ति है। आचार्य श्री गृद्धपिच्छने यही तो लिखा कि—

"मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्। ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये ॥"

इसमें यही तो दिखाया है कि तद्गुणका लाभ हमें हो। ऐसा सिद्धान्त है कि जो जिस गुणका अनुरागी है वह उसको नमस्कार करता है। जैसे शस्त्रविद्याका इच्छुक शस्त्रविद्या-वेत्ताको नमस्कार करता है। इसी तरह धर्ममें जो चेष्टा अर्थात् धर्मलाभका अनुराग यही तो हुआ तथा गुरुओके पीछे रसिक होकर गमन करना। इत्यादि वाक्योंसे यही तो निकलता है कि इन सब वाक्योमें इच्छा ही की प्रधानता है।

इच्छा; दुःखकी जननी

इच्छा परिग्रह है क्योंकि इच्छाका जनक मोहकर्म है। मोहकर्मके उदयसे जो भाव होते है सामान्यसे वह इच्छारूप पड़ते हैं। मिथ्यात्वके उदयमें विपरीत अभिप्राय ही तो होता है। वह इच्छारूप ही है। क्रोध-कषायके उदयमें परका अनिष्ट करनेकी ही तो इच्छा होती है। तथा मानके उदयमें अन्यको तुच्छ दिखाना, अपनेको महान् माननेकी ही तो इच्छा रहती है। मायाके उदयकालमें अन्तरङ्गमें तो अन्य है, बाह्यसे उसके विरुद्ध कार्यमें प्रवृत्ति होती है। लोभकषाय का जब उदय आया है तब परपदार्थको अपहरण करनेकी ही तो इच्छा होती है। इसी प्रकार हास्यकषायके उदयमें हास्यका भाव होता है। रतिके उदयमें पर पदार्थके निमित्तको पाकर प्रसन्न होता है। अरतिके उदयमें पदार्थोंके निमित्तसे शोकातुर रहता है। भयके उदयमें भयभीत परिणाम होते हैं। जुगुप्साके उदयमें पदार्थोंके निमित्तसे ग्लानिरूप परिणति हो जाती है। जब स्त्रीवेदका विपाक आता है तब पुरुषसे रमण करनेकी चेष्टा होती है। दैवात् पुरुषका सम्बन्ध न मिले तब भावोंसे पुरुषकी कल्पनाकर अपनी इच्छा शान्त करनेकी चेष्टा यह जीव करता है। पुरुषवेदके उदयमें स्त्रीसे रमण करनेकी इच्छा होती है। निमित्त न मिलनेसे कल्पना द्वारा यह प्राणी जो जो अनर्थ करता है वह प्रायः सर्वविदित हैं। इसी तरह नपुंसकवेदके उदयमें उभयसे रमणके भाव होते हैं। इसकी इच्छा प्रथम दो

वेदवालोंकी अपेक्षा प्रबल है। इस विषयमें यदि कोई लिखना चाहे तब बहुत लिख सकता है। इन इच्छाओंसे संसार दुःखी है। इसीसे भगवानने इच्छाको परिग्रह माना है।

जिसके इच्छा नही है उसके परिग्रह नहीं है। इच्छा जो है सो अज्ञानमय भाव है। अज्ञानमय भाव ज्ञानीके नही है, ज्ञानीके तो ज्ञानमय भाव ही होता है। यही कारण है कि अज्ञानमय भावरूप इच्छाके अभावसे ज्ञानी जीव धर्मकी इच्छा नही करता। ज्ञानमय ज्ञायकभावके सद्भावसे धर्मका केवल ज्ञाता दृष्टा है, जब ज्ञानी जीवके धर्मका ही परिग्रह नही तब अधर्मका परिग्रह तो सर्वथा ही असम्भव है। इसी तरहसे न अशनका परिग्रह है और न पानका परिग्रह, क्योंकि इच्छा परिग्रह है। ज्ञानी जीवके इच्छाका परिग्रह नही, इनको आदि लेकर जितने प्रकारके पर-द्रव्यके भाव है तथा पर-द्रव्यके निमित्तसे आत्मामें जो भाव होते हैं उन सबको ज्ञानी जीव नहीं चाहता।

अपनी पहचान

इस पद्धतिसे जिसने सब अज्ञान भावोंको वमनकर दिया तथा सब पर पदार्थोंके आलम्बनको त्याग दिया केवल टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक भावको अनुभव करता है। पूर्वकर्मके विपाकसे ज्ञानीके उपभोग होता है, होओ किन्तु उसमें राग न होनेसे वह उपभोग परिग्रह भावको प्राप्त नही होता। रागादि परिणामके बिना मन, वचन और कायके व्यापार अकिञ्चित्कर हैं। जैसे यदि चूना आदिका श्लेष न हो तब ईटोंके समुदायसे महल नही बनता।

परमार्थसे विचार किया जावे सब पदार्थ नियमसे परिणमनशील है। सब पदार्थोंका परिणमन अपने अपनेमें हो रहा है, किसी पदार्थका अंश भी किसी दूसरे पदार्थमें नही जाता। यह जीव उनका ज्ञाता द्रष्टा बनता है, इतना ही नही किसीको अपनाता है। किसीको रागका विषय करता है। किसीको द्वेषका विषय करता है। इस तरह पर-पदार्थोंकी व्यवस्था कर ईश्वर बननेका दावा करता है। कोई अपनेको अकिञ्चित्कर मानकर अन्यको इसका कर्ता बनाता है, कोई कहता है यह सब भ्रम है। भ्रमसे ही यह अवस्था बन रही है। भ्रमके अभावमे संसारका अभाव है। अत. इन आलोंसे बचनेके लिये अपनेको जानना परमावश्यक है। आत्मद्रव्य चैतन्यगुणका आश्रय है। यद्यपि आत्मा अनन्तगुणोंका पिण्ड है किन्तु उन गुणोंमें चैतन्यगुण ऐसा है जो सबकी व्यवस्था करता है।

परमार्थ दृष्टिसे सभी द्रव्य अपने-अपने स्वरूपमें लीन है। इनमें जीवद्रव्य तो चैतन्य स्वरूपवान् है, पुद्गल चेतनागुणसे शून्य है किन्तु उन दोनोंका अनादिकालसे सम्बन्ध हो रहा हैं, इससे दोनों अपने अपने स्वरूपसे च्युत होकर अन्य अवस्थाको धारणकर विकृत हो जाते है। संसारमे जो विकृत परिणाम होते हैं वह परस्पर निमित्त-नैमित्तक सम्बन्धसे होते हैं। यह परिणमन अनादिकालसे धारावाही रूपमें चला आ रहा है और जब तक इसकी सत्ता रहेगी, आत्मा दु.खी रहेगा। जिन जीवोंको भेदज्ञान हो जाता है वे इन परपदार्थोंको अपनाना छोड देते है। उनको परमें निजत्व कल्पना नही होती। यही कल्पना संसारकी मूल जननी है। जिन्होंने इसका ध्वंस कर दिया वही जगतके प्रपञ्चोंसे छूट जाते है।

अनेकान्त; तत्त्वकी कुञ्जी

तत्त्वचर्चा को तो सभी शूर हैं परन्तु निजमें रहनेवाले विरले ही है। महती कथा करनेको भी सभी वक्ता है परन्तु यदि कोई प्रकृतिविरुद्ध बोले तब उसको निजशत्रु समझते है। शत्रु अन्य नहीं, आत्माका विभाव परिणाम ही शत्रु है। विभाव परिणामका जनक उपादानसे आत्मा और निमित्तसे आत्मातिरिक्त परद्रव्य है। वह तो जबरन रागादि नहीं करता। यदि यह रागादि विभाव रूप परिणमे तब अन्यद्रव्य निमित्त होता है। हाँ, यह नियम है कि जब अध्यवसान भावकी उत्पत्ति होगी तब उसमें कोई न कोई परद्रव्य विषय

होता । सर्वथा न मानना कुछ बुद्धिमें नहीं आता । यदि परद्रव्य निमित्त न हो और यह रागादिभाव आत्माके पारिणामिक भाव हो जाते तब जैसे पारिणामिक भाव अबाधित त्रिकाल सत्तावान् है ऐसे यह भी हो जावें । यदि शुभोपयोगमें परमेष्ठीको निमित्त न मानो तब अन्य जो कलत्र आदि पदार्थ भी ज्ञानमें आ जावें उन्हें त्यागकर वनमें जानेकी आवश्यकता नहीं । अत: यही कहना पड़ेगा कि परमेष्ठी शुभोपयोगमें निमित्त होनेसे, स्वर्गका कारण और अशुभोपभोगमें स्त्री आदि नरकका कारण हैं । परमार्थसे न तो अर्हत स्वर्गके कारण हैं और न कलत्रादि नरकके कारण हैं । अपने शुभ अशुभ कषाय स्वर्ग नरकादिके कारण है । अतः सर्वथा एकान्त मत पकड़ो । पदार्थका स्वरूप ही अनेकान्तमय है ।

अकलङ्क स्वामीने परमात्माकी जहाँ भक्ति की है वहाँ लिखा है कि प्रमेयत्वादि धर्मोंके द्वारा आत्मा अचेतन है और चैतन्यधर्मके द्वारा चिदात्मा है । इस तरहसे परमात्मा चिदात्मा भी है, और अचिदात्मा भी है । परमार्थसे देखा जावे तब वस्तु अनिर्वचनीय है । अन्यकी कथा छोड़ो, जब हम घटका निरूपण करते हैं उस समय रूपादिका जो बोध होता है, उस बोधमें जो विषय आता है वही घट है । अब यहाँ पर पूछने वाला हमसे यह प्रश्न कर सकता है कि जब यह सिद्धान्त है कि एक द्रव्यमें परद्रव्यका अणुमात्र भी नही आया तब ज्ञानने घटका क्या निरूपण किया ? ज्ञानमे जो विकल्प आया वही तो कहा । परन्तु वह विकल्प घटके निमित्तसे हुआ इससे कहते हैं यह घट है, वास्तवमें घट क्या है । मृत्तिका की पर्याय विशेष है, । यह भी कहना व्यवहार है । परमार्थसे न तो कोई पदार्थ कहीं जाता है और न आता है, सभी पदार्थ निज-निज चतुष्टयमें परिणमन कर रहे है ।

यह जो व्यवहार है सो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धसे बन रहा है । देखो, कुम्भकार जब मिट्टी लाता है तब जहाँ मृत्तिका थी कुम्भकारके द्वारा कुदालसे खोदी जाती है । कुम्भकारका व्यापार कुम्भकारमें होता है, उसके हाथके निमित्तको पाकर कुदालमे व्यापार होता है, कुदालके व्यापारसे मिट्टी अपने स्थानसे च्युत होती है, उसे कुम्भकार अपने गर्दभ द्वारा अपने गृहमे लाता है । पश्चात् उसमे पानी डाला जाता है, हाथोंके द्वारा उसे आर्द्र बनाता है पश्चात् मृत्तिकापिण्डको चाकपर रखकर दण्ड द्वारा व्यापार होनेसे चक्र-भ्रमण करता है, पश्चात् घट बनता है । वास्तवमें जितने व्यापार यहाँपर हुए सब पृथक्-पृथक् हुए परन्तु एक दूसरेमें निमित्त हुआ । इस तरह यह प्रक्रिया अनादिसे चली आ रही है ।

जिसकालमें आत्माका मोह चला जाता है उस समय यह ज्ञानावरणादि कर्म आत्मासे सम्बन्धित नहीं होते । इन कर्मोंके सम्बन्ध न होनेसे आत्मा गत्यादि भ्रमण नही करता तब अनायास ही शरीरादिके अभावमें आत्माका जो स्वरूप है उसमें रह जाता है । अब उसे जो आपके ज्ञानमें आवे कहिये । कोई कहता है वह अनन्तज्ञानी है—'सर्व द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य' अर्थात् केवलज्ञानका विषय सर्व द्रव्य पर्याय हैं । कोई कहता है अनन्त सुखवाला है, अनन्त शक्तिवाला है । कोई यही कह देता है कि उसकी महिमा अचिन्त्य है । नाना विकल्पोंसे उसका निरूपण करनेकी सर्वज्ञकी पद्धति है । वस्तुत. विचार किया जावे तब उसके भावेन्द्रियके अभाव होनेसे न तो उनके ज्ञानमें जैसे हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञान द्वारा पदार्थोंका विकल्प होता है—वह विकल्प उसके ज्ञानमें नही होता । हमारा तो यह विश्वास है कि हमारे मतिज्ञानमे जो पदार्थ आता है तथा रूपादि का विकल्प भी होता है परन्तु जिनके इन्द्रिय ही नही उनके पदार्थ तो आवेगा, कल्पना रूपादिकों की न होगी । तथा हमारे ज्ञानमें रूपादिक आते हैं कुछ हानि नही परन्तु हमारे मोहादिक कर्मका सद्भाव होनेसे उन पदार्थोंमें इष्टानिष्ट कल्पना होती है । यही कारण है कि हम इष्टसे राग और अनिष्टसे द्वेष कर इष्टका सद्भाव और अनिष्टका अभाव चाहते हैं । इस विवेचनसे सर्वज्ञमें जो ज्ञान है इससे उन्हें शान्ति है सो नहीं अपितु उनके इष्टानिष्ट करनेवाला मोह चला गया, यही उनके महत्त्वका कारण है ।

ज्ञानसे न तो सुख ही होता है और न दुःख ही होता है, ज्ञान तो केवल जाननेमें सहायक होता है। व्यवहारमें हमारा उपकारी श्रुतज्ञान है। इसीके द्वारा हम केवलज्ञानका निर्णय करते हैं। यदि श्रुतज्ञान न होता तब मोक्षमार्गका निरूपण होना असम्भव हो जाता। संसारमें जितनी प्रक्रियाएँ धर्म और अधर्मकी दृष्टिगोचर हो रही हैं वह श्रुतज्ञान ही का माहात्म्य है। भगवान्‌की दिव्यध्वनिको दर्शाने वाला श्रुतज्ञान ही तो है। आज संसारसे श्रुतज्ञान उठ जावें तो मोक्षमार्गका लोप ही हो जावे। जब पञ्चम कालका अभाव होकर छठवां काल आवेगा उस कालमें श्रुतज्ञान ही का लोप हो जावेगा, सभी व्यवहार लुप्त हो जावेंगे, मनुष्योंके व्यवहार पशुवत् हो जावेंगे। अत जिन्हें इन पदार्थोंकी प्रतीति करना है, उन्हें श्रुतज्ञानका अच्छा अध्ययन करना चाहिए। जितने मत संसारमें प्रचलित हैं श्रुतज्ञानके बलसे ही चल रहे हैं। कुन्दकुन्द स्वामीने तो यहाँ तक लिखा है कि—

"आगमचक्खू साहू इंदियचक्खूंसि सव्वभूदाणि। देवादि ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥"

अर्थात् आगमचक्षु साधु लोग होते हैं। संसारी मनुष्य इन्द्रियचक्षु होते हैं। देवलोग अवधिचक्षु होते हैं। सिद्ध भगवान् सर्वचक्षु होते है। अर्थात वह सभी पदार्थोंको इन्द्रियके बिना ही देखते हैं। विचार कर देखो तब यह बात आगम ही तो कहता है। इसीसे देवागममें समन्तभद्र स्वामीने लिखा है—

"स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने। भेदः साक्षादसाक्षाञ्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥"

शुल्कध्यानके वास्ते श्रुतज्ञानकी आवश्यकता है, मति अवधि मनःपर्ययकी नही।

एकमात्र कर्त्तव्य तत्त्वाभ्यास

कहनेका तात्पर्य यह है कि जिन्हें आत्मकल्याण करनेकी लालसा है वे सभी विकल्पोंको त्याग कर अहर्निश आगमाभ्यास करें और उससे अनादि कालकी जो पर पदार्थोंमें आत्मीय वासना है उसका त्याग करें। अकेले ज्ञानके अर्जनमे कोई लाभ नही। जिन ज्ञानार्जनसे आत्मलाभ न हो उस ज्ञानकी परिग्रहमें गणनाकी जावे तब कोई क्षति नही। बाह्य परिग्रहका त्याग इसीलिए कराया जाता है कि वह मूर्च्छामें कारण होता है। इसी प्रकार यह ज्ञानका अर्जन है उससे भी तो यह अभिमान होता है कि 'हम बहुज्ञानी है, हमारे सदृश कोई नहीं'। यह बेचारे पदार्थके मर्मको क्या समझें ? हम चाहें तब अच्छे अच्छे विद्वानों-को परास्त कर सकते हैं।' इन कल्पनाओंका कारण वह ज्ञान ही तो हुआ, यदि उसे परिग्रह कह दिया जावे तब कौन-सी क्षति है। ज्ञानकी कथा त्यागो, तप इत्यादि जो अहङ्कारसे किये जावें—'लोकमें हमारी प्रतिष्ठा हो, मैं महान् तपस्वी हूँ, मेरे समक्ष ये बेचारे क्या तप कर सकते हैं ?' इत्यादि दुर्भावोंके उदयमें यह तप हुआ तब इसे परिग्रहका कारण होनेसे यदि परिग्रह कह दिया जावे तब कौन-सी क्षति है ? यही कारण है कि समन्तभद्र स्वामीने इन सबको मदोंमें गिनाया है—

"ज्ञानं पूजां कुलं जातिं, बलमृद्धिं तपो वपुः। अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥"

तात्पर्य यह कि यह कि यह सब भाव कषायोत्पादक होनेसे यदि इन्हे परिग्रहमें गिना जावे तब कोई क्षति नहीं। धनादिक तो विचारसे देखो बाह्य पदार्थ हैं ही। वे उतने बाधक नही जितने ये हैं। उनके द्वारा आत्मा ठगाया नही जाता जितना इन तप ज्ञान आदिकसे जगत ठगाया जाता है। धर्म कार्य जितनी जगतकी वञ्चना करते हैं उतनी चोर आदि नही करते। चोर तो केवल बाह्य धनका ही हरण करते है। यदि उन्हें निर्व्याज धन दे दो तो अन्य हानि नही करते। ये लोग धन ही का तो हरण करते हैं किन्तु ये द्रव्य तपस्वी आपकी धर्म सम्पत्तिका अपहरण कर अनन्त संसारका पात्र बना देते हैं। अतः आवश्य-कता श्रुतज्ञानकी है जिससे पदार्थ तत्त्वका निर्णय हो जावे और हम किसीके द्वारा ठगाये न जावें। आज

सहस्रों मत संसारमें चल रहे हैं इन सबका मूलकारण हमने अ तत्त्वका सम्यक् अध्ययन नहीं किया यही है। अतः जिन जीवोंको इन उलझनोंसे अपनी रक्षा करना है उन्हे भेदज्ञानपूर्वक अपनी ज्ञानपरिणतिको निर्मल करना चाहिए।

आज संसारका जो पतन हो रहा है उसका मूलकारण यथार्थ पदार्थोंके कहने वाले पुरुषोंका अभाव है। यहाँ तक शास्त्रोंका दुरुपयोग किया कि बकरोंकी बलि करके भी स्वर्गका मार्ग खोल दिया। किसीने खुदाके नाम पर दुर्भावोंकी कुर्बानी कर स्वर्गका मार्ग खोल दिया। वास्तवमें कुर्बानी तो राग-द्वेष मोहकी करनी चाहिये। यही आत्माके शत्रु हैं। इस ओर लक्ष्य देना चाहिये। परन्तु इस ओर लक्ष्य नहीं। केवल पञ्चेन्द्रियोंके विषयमें अनादि कालसे संलग्न हैं। इनके होनेमें हम अपने प्राणों तकको विसर्जन कर देते हैं। जैसे स्पर्शन इन्द्रियके वशीभूत होकर हाथी अपनेको गर्तमें गिरा देता है। रसनेन्द्रियके वशीभूत होकर मत्स्य अपने कण्ठको छिदा देता है। घ्राण इन्द्रियके वशीभूत होकर भ्रमर अपने प्राण गमा देता है। चक्षु इन्द्रियके वशीभूत होकर पतङ्ग निज प्राणोंका प्रलय कर देता है। श्रोत इन्द्रियके वशीभूत होकर मृग बहेलियाके पल्ले पड जाते हैं। यह तो कुछ भी नही। इन विषयोंके वशीभूत होकर प्राणोंका ही घात होता है, परन्तु कषायोंके वशीभूत होकर बडे-बडे महापुरुष संसारके चक्रमें पड जाते हैं। आत्माके अहित विषय कषाय है, इनमें विषय तो उपचारसे अहित करता है। कषाय ही मुख्यतया अहित करने वाला है।

जिन्हें आत्महित करना है उन्हें अपनेको स्वतन्त्र बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। स्वतन्त्रता ही मूल सुखकी जननी है। सुख कहीं अन्यत्रसे नही आता, सुख आत्माका स्वभाव है उसका बाधककारण पर है। 'पर' क्या ? हम ही तो हैं। हमने अपने स्वरूपको नही समझा। हम ज्ञानदर्शनके पिण्ड हैं। ज्ञानका काम अपनेको और परको जानना है। ज्ञानकी स्वच्छतामें पदार्थ प्रतिभासित होता है, उसे हम अपना मान लेते हैं। ज्ञानके विकल्पको अपना मानना यहाँ तक तो कुछ हानि नही जो पदार्थ उसमें झलकता है, किन्तु उसे अपना मानना सर्वथा अनुचित है। हमारी तो यह श्रद्धा है कि ज्ञानमें ज्ञेय आया यह भी नैमित्तिक है अत उसे भी निज मानना न्याय सङ्गत नही। रागादिक भावोंका उत्पाद आत्मामें होता है। वह राग प्रकृतिके उदयसे होता है, उसे आत्माका न मानना सर्वथा अनुचित है। यदि वह भाव आत्माका न माना जावे तब आत्मा सिर्फ ज्ञान स्वरूप ही हुआ, फिर यह जो ससार है, इसका सर्वथा अभाव हो जावेगा। क्योंकि रागादिकके अभावमें कार्मण वर्गणाओंमें जो मोहादि रूप परिणमन होता है वह न होगा। ज्ञानावरणादि कर्मोंके अभावमें जो आत्माके गुण हैं, वह सदा विकाशरूप ही रहेंगे। तब संसार में जो तरतमता देखी जाती है उस सबका विलोप हो जावेगा, संसार ही न होगा। संसारके अभावमें मोक्षका अभाव हो जावेगा, क्योंकि मोक्ष बन्धपूर्वक होता है। अतः यह मानना पडेगा कि आत्मा द्रव्य स्वतन्त्र है और परिणमनमें भी स्वतन्त्र है। किन्तु यह निर्विवाद सिद्धान्त है कि जो रागादि कार्य होते हैं केवल एक द्रव्यसे नहीं होते, उनके होनेमें दो द्रव्य ही कारण है। उनमें जहाँ रागादिक होते हैं वह उपादान और जिसके सहकारितासे होते हैं उसे निमित्तकारण कहते हैं।

बहुतसे मनुष्य यह कहते हैं कि रागादिरूप परिणमन तो जीवमें हुआ, इसमें पुद्गलका कौन-सा अंश आया ? जैसे कुम्भकारके निमित्तसे मृत्तिकामें घट उत्पन्न हुआ उसमें कुम्भकारका कौन-सा अंश आया ? कौन कहता है कुम्भकारादिका अंश घटमें आया ? नही आया। परन्तु इतना बडा घट क्या कुम्भकारकी उपस्थितिके बिना ही होगा ? नही हुआ। तब यह मानों कुम्भकार ही घटपर्यायके उत्पादमें सहकारी होने-

से निमित्त हुआ। यह व्यवस्था कार्यमात्रमें आम लेनी। संसाररूप कार्य इन्हीं कारणोंके ऊपर निर्भर है। जहाँ पर, जीव और पुद्गलका निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं रहता, संसार नहीं रहता। संसार कोई भिन्न पदार्थ नहीं। जहाँ जीव और पुद्गल इन दोनोंका अन्योन्य निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धसे जीव रागादिरूप तथा पुद्गल ज्ञानावरणादिरूप परिणमता है इसीका नाम संसार है। केवल जीव और केवल पुद्गल इसका नाम संसार नहीं।

केवल जीवके स्वरूप पर परामर्श किया जावे तब यह 'अस्ति' आदि तत्त्व नहीं बनते। यह सबकी अपेक्षा रखते हैं। इन तीनोंके सम्बन्धसे यह सप्त तत्त्व बनते हैं। जब जीव रागादि भावोंसे रहित हो जाता है तब पुद्गलमें ज्ञानावरणादि नहीं होते। बद्धज्ञानावरणादि कर्म अन्तर्मुहूर्तमें क्षय हो जाते हैं। उस समयमें आत्मा केवलज्ञानादि गुणोंका आश्रय होकर सर्वज्ञ पदसे व्यपदेश होने लगता है। पश्चात् पूर्वबद्ध जो अघातिया कर्म हैं वे या तो स्वयमेव खिर जाते हैं या आयुसे अधिक स्थितिवाले हुए तब समुद्घात विधानसे आयुसमान स्थिति होकर स्वयमेव खिर जाते हैं, और आत्मा केवल शुद्धपर्यायका पात्र हो जाता है। यद्यपि यह पर्याय केवल आत्मामें होती है परन्तु अनादिसे लगा हुआ जो मोह है वह इसे व्यक्त नही होने देता।

जैनधर्ममें दो प्रकारके पदार्थ माने जाते हैं—एक चेतन और दूसरा अचेतन। चेतन किसको कहते ? जिसमें चेतना पाई जावे। उसका स्वरूप आगममें इस प्रकार कहा है—

"चेतनालक्षणो जीवोऽजीवस्तद्विपर्ययः।"

चेतना नामकी एक शक्ति है, जिसका काम पदार्थोंको जानना है। चेतना ही ऐसी शक्ति है जो स्व-परको संवेदन करती है। परमार्थसे तो ज्ञान स्वपर्याय ही को वेदन करता है। ज्ञानकी निर्मलतामें पदार्थके निमित्तको पाकर पदार्थका जो आकार है उस रूप आकार ज्ञानमें आता है, न कि वह वस्तु ज्ञानमें आती है। ज्ञानमें तो ज्ञानकी ही पर्याय आती है। मोही जीव, जो ज्ञानमें आता है, उसे ही निज मान लेता है। ज्ञानमे जो आया वह ज्ञानका परिणमन है, इसमें तो कोई विवाद नही, किन्तु ज्ञान परिणमनसे भिन्न जो वस्तु है उसे निज मानना मिथ्या है।

ज्ञानमें जैसे बाह्य पदार्थ आते है वैसे सुखादिक गुण भी आते हैं; किन्तु वे अभ्यन्तर हैं। वे भी ज्ञानगुणकी तरह आत्माके हैं, परन्तु स्वरूप सभीके पृथक्-पृथक् हैं। अपने अपने स्वरूपको लिये आत्मतत्त्वके साधक हैं। अर्थात् इन सब गुणोंका जो अविष्वग्भाव सम्बन्ध है इसीका नाम द्रव्य है। द्रव्य अनन्तगुणोंका पिण्ड है। इसीसे आत्मा ज्ञान भी है, दर्शन भी है, सुख भी है, वीर्य भी है। ज्ञान दर्शन भिन्न है। यह दोनों ही भिन्न भिन्न स्वरूप हैं। इसी तरह सभी गुण पृथक् पृथक् जानने। यथा पुद्गलमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण गुण भिन्न है। इस भिन्नताका द्योतक भिन्न इन्द्रियों द्वारा इनका ज्ञान होना है। भिन्न होने पर भी इनका अस्तित्व पृथक् नही हो सकता, इससे कथञ्चित् एक क्षेत्रावगाही होनेसे एक हैं।

कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे आत्मा अखण्ड एक द्रव्य है। वैसे ही पुद्गल भी अखण्ड एक द्रव्य है। जैसे अनन्त गुणोंका पिण्ड आत्मा है, वैसे ही अनन्त गुणोंका पिण्ड पुद्गल है। जैसे आत्मामें अनन्त शक्ति है, वैसे पुद्गलमें भी अनन्त शक्ति है। जैसे आत्मामें अनन्त पदार्थोंके जाननेकी सामर्थ्य है वैसे पुद्गलमें भी अनन्तज्ञानको प्रगट न होने देनेकी शक्ति है। अन्तर केवल इतना ही है कि आत्मा चेतन है, पुद्गल अचेतन है। केवल द्रव्यका विचार किया जावे तो न तो बन्ध है और न मोक्ष ही है। और न ये शब्द, बन्ध, इत्यादि जो पर्याय पुद्गल द्रव्यमें देखे जाते हैं आत्मामें हैं। पुद्गल और जीवके सम्बन्धसे ही यह संसार देखा जाता है। इस विकृतावस्थाही का नाम संसार है। संसारमें जीवकी नाना प्रकारकी नाना

अवस्थाएँ होती हैं। इन्हींसे जीवमें नाना प्रकारके दुःखोंका व अनेक प्रकारके वैषयिक सुखोंका अनुभव होता है। परमार्थसे कभी भी इस जीवको एक क्षणमात्र भी सुख नहीं।

यद्यपि सर्व द्रव्य स्वयंसिद्ध हैं किन्तु अनादिसे जीव और पुद्गलका अनादि सम्बन्ध चला आ रहा है। इससे जीवकी जो स्वाभाविक अवस्था है उससे वह च्युत है। पुद्गल भी अपने स्वाभाविक परिणमनसे च्युत हो रहा है। यद्यपि जीव द्रव्यका एक अंश न तो पुद्गल द्रव्यरूप हुआ है और न पुद्गलका एक परमाणु भी जीवरूप हुआ है फिर भी दोनों अपने अपने स्वरूप च्युत हो रहे हैं। जैसे तोला भर सुवर्णको और तोला भर चाँदीको गलानेसे एक पिण्ड हो गया। इस तोलाभर सोनामें एक खशखश भी न्यूनता न आई न एक खशखश वृद्धि हुई। यही अवस्था चाँदीकी हुई। फिर भी पिण्डको न शुद्ध सोना कहते हैं और न शुद्ध चाँदी ही कह सकते हैं। दोनों अपने अपने स्वरूपसे च्युत हैं। यही अवस्था जीव और पुद्गल की है। यद्यपि बन्धावस्थामें जीव द्रव्यका एक अंश न तो पुद्गल द्रव्यरूप हुआ है और न पुद्गलका एक अंश जीवरूप हुआ है फिर भी दोनों अपने अपने स्वरूपसे च्युत हैं।

इस अवस्थामें जीवकी क्या क्या दुर्दशा हो रही है सो किसीसे गुप्त नहीं। यह सम्बन्ध अनादिका है। जैसे बीज वृक्षका सम्बन्ध अनादिसे चला आ रहा है। यदि कोई बीजको दग्ध कर देवे तब वृक्ष नहीं हो सकता और वृक्षके अभावमें बीजोत्पत्ति नहीं हो सकती। इस तरह जीव और पुद्गलके सम्बन्धसे जो संसार सन्तति धारावाही रूपसे आ रही है इसका मूलकारण मोहादि परिणाम है। यदि आत्मा रागादिपरिणाम त्याग देवे तो अनायास ही नवीन बन्ध न हो। जो बद्धकर्म हैं वे उदयमें आकर स्वयमेव खिर जायेंगे। अनायास ही आत्मा इस बन्धनसे मुक्त हो सकता है। यह सब है परन्तु न जाने यह जीव क्यों इस चक्रमें मुक्त नहीं होता। अनादि कालसे मोहके चक्रमें परिवर्तन कर रहा है। प्रतिदिन वही कथा करता है, परको निज माननेमें जो जो उपद्रव होते हैं वे किसीसे गुप्त नहीं। केवल जानता ही नहीं किन्तु तज्जन्य दुःखका वेदन भी करता है। इसके अधीन होकर क्या क्या नहीं करता सो किसीको अविदित नहीं।

एक सेठजी थे। उनका दूसरा विवाह हुआ था। सेठ क्रूर प्रकृतिके थे। एक दिन सेठ जी का शिर दर्द करने लगा। उन्होंने दासीको आज्ञा दी कि सेठानीसे कहो चन्दन घिसकर लावे और मस्तकमें लगावे। दासीने आकर सेठानीसे कहा कि सेठजीके शिरमें वेदना हो रही है, शीघ्रतासे चन्दन रगड़ो और सेठके मस्तकको मालिश करो, अन्यथा लातोंकी मार खानी पड़ेगी। सेठानीने उत्तर दिया—मुझे ज्वर आ गया है, सेठजी से कह दो। जैसे ही सेठजी ने सुना, शिर वेदनाकी चिन्ता त्याग सेठानीके पास आकर पूछने लगे—क्या हुआ ? सेठानीने उत्तर दिया—आपकी शिर वेदना सुनकर मुझे तो ज्वर आ गया। सेठजीने कहा—इसके दूर करनेका उपाय क्या है ? सेठानीने कहा—उपाय है परन्तु यहाँ होना असम्भव है। सेठजी-ने पूछा—उपाय कौन-सा है ?

सेठानीने कहा—मेरे घर पिताजी चन्दनके तेलको मेरे तलवेमें मर्दन करते थे या मेरा भाई पैरको मलता था। आपसे क्या कहूँ ? उपाय सुनकर सेठजी चन्दनका तेल लेकर सेठानीके पैरका मर्दन करने लगे। सेठानीने बहुत मना किया पर उन्होंने एक न मानी और तलुओंको मलकर अपनेको कृतकृत्य माना।

कहनेका तात्पर्य यह है कि स्नेहके वशीभूत होकर जो जो कार्य न हों वे अल्प हैं। अन्य सामान्य मनुष्योंकी कथा त्यागो, तीन खण्डके अधिपति महाविवेकी, धर्मके परम अनुरागी लक्ष्मणने श्री रामचन्द्रजी-के स्नेहमें आकर प्राणोंका उत्सर्ग ही तो कर दिया। श्री रामचन्द्रजी महाराज, जो तद्भवमोक्षगामी थे, स्नेहके वशीभूत होकर छह मास पर्यन्त लक्ष्मणके शरीरको लिये फिरे और अन्तमें स्नेहको त्यागकर ही सुख-के पात्र हुए। श्री सीताजीका जीव सोलहवें स्वर्गका प्रतीन्द्र था। जब श्री रामचन्द्रजीने गृहस्थावस्थाको

त्याग दिगम्बर पद धारण किया। उस समय सीताके जीव प्रतीन्द्रने यह विचार किया कि एक बार देवलोक-में आवें पश्चात् यहाँसे च्युत होकर हम दोनों मनुष्यजन्म धारण कर साथ साथ संयम धारण करें और कर्मबन्धन काट मोक्षके पात्र होवें। ऐसा विकल्प कर जो उपद्रव किया सो पद्मपुराणसे सभीको विदित है सबको विदित होने पर भी इस मोह पर विजयी होना अतिकठिन है।

आत्म-विश्लेषण

अन्यकी कथा कहाँ तक लिखें ? हमारी अस्सी वर्षकी आयु हो गई और पचास वर्षसे निरन्तर इसी प्रयत्नमें तत्पर हैं कि मोहशत्रुको परास्त करें। जितने बार प्रयास किया बराबर अनुत्तीर्ण होते रहे। बालक-पनमें तो माता पिताके स्नेहमें दिन जाते थे। मेरी दादी मुझपर बहुत स्नेह करती थीं। प्रातःकाल ताजी रोटी और ताजा घी खिलाती थी और मेरा पालन-पोषण करती थीं। उस समय हम कुछ जानते ही न थे कि मोह दुखदायी पदार्थ है। प्रत्युत इसीको सुख मानते थे। ऐसे ही प्रमोदमें निरन्तर अपनेको धन्य समझते थे। हमारे एक मित्र श्री हरीसिंह सौंरया थे जो बहुत ही कुशाग्रबुद्धि थे। उनसे हमारा हार्दिक स्नेह था। इतना स्नेह कि एक दूसरेके बिना हम लोग एक मिनट भी नहीं रह सकते थे। इसी तरह रात्रिदिन काल व्यतीत करते थे। परलोकका कोई विचार न था। जब कुछ पण्डितोंका समागम हुआ तब कुछ व्यवहार धर्ममें प्रवृत्ति हुई। भगवानकी पूजा और पद्मपुराणका श्रवण कर अपनेको धन्य समझने लगे। इसी पूजा आदि कार्योंमें धर्म मानने लगे और अपनेको धर्मात्मा समझने लगे। कुछ दिन बाद व्रत करने, लगे, रात्रि भोजन त्याग दिया, कभी रसपरित्याग करने लगे।

इतनेमें पिताजीने विवाह कर दिया। थोड़े ही दिनोंमें माँ ने मेरी पत्नीको ऐसे रंगमें रँग दिया कि वह हमसे कहने लगी कि अपनी परम्परामें अपने धर्मका परित्याग कर तुमने जो धर्म अङ्गीकार किया उसमें बुद्धिमत्ता नहीं की। हमने भी उससे विना विचारे कह दिया कि यदि तुम्हारी आत्मा हमारे धर्मसे विमुख है तब हमारा तुम्हारा व्यवहार अच्छा नहीं। उसने भी आवेगमें आकर कहा मैं भी तुमसे सम्बन्ध नहीं चाहती। अस्तु, हम और हमारी पत्नीमें ३६ का सा (परस्पर विरुद्ध) सम्बन्ध हो गया।

हम टीकमगढ प्रान्तमें चले गये और वहीं एक पाठशालामें अध्यापकी करने लगे। दैवयोगसे वहीं पर श्री चिरौंजीबाईजीके गाँव सिमरा गये। धर्ममूर्ति बाईजीने बहुत सान्त्वना दी तथा एक अपढ़ क्षुल्लक-के चक्रसे रक्षा की। पढ़नेकी सम्मति दी किन्तु कहा शीघ्रता मत करो, मैं सब प्रबन्ध कर भेज दूँगी। परन्तु मैंने शीघ्रता की, फल अच्छा न हुआ। अन्तमें अच्छा हो हुआ। अच्छे अच्छे महापुरुषों और पण्डितोंका समागम हुआ, तत्त्वज्ञानके व्याख्यान सुने, व्यवहार धर्ममें प्रवृत्ति हुई, तीर्थयात्रा आदि सब कार्य किये परन्तु शान्तिका आस्वाद न आया। मनमें यह आया कि सबसे उत्तम काम विद्याप्रचार करना है। जो जातिसे च्युत हो गये है उन्हें पंचायत द्वारा जातिमें मिलाना। जो दस्से है उन्हें मन्दिरोंके दर्शन करनेमें जा प्रतिबन्ध है उसे हटाना, तथा बाईजी द्वारा जो मिले उसे परोपकारमें दे देना आदि। सब किया भी, परन्तु शान्तिका अंश भी नहीं आया। इन्हीं दिनोंमें बाबा भागीरथजीका समागम हुआ। आपके निर्मल त्यागका आत्माके ऊपर बहुत ही प्रभाव पड़ा। मैं भी देखा-देखी निरन्तर कुछ करने लगा, परन्तु कुछ सफलता नहीं मिली।

व्रत-ग्रहण

अन्तमें यही उपाय सूझा जो सप्तम-प्रतिमाके व्रत अङ्गीकार किये। यद्यपि उपवासादिककी शक्ति न थी फिर भी यद्वा तद्वा निर्वाह किया। बाईजीने बहुत विरोध किया—'बेटा! तुम्हारी शक्ति नहीं, परन्तु

हमने एक न मानी। फल जो होना था वही हुआ। लोग न जाने क्यों मानते रहे? काल पाकर बाईजीका स्वर्गवास हो गया। तब मैं श्री मोतीलालजी वर्णी और कमलापति सेठजीके समागममें रहने लगा। रेलकी सवारी त्याग दी। मोटरकी सवारी पहले ही त्याग दी थी। अन्तमें यह विचार हुआ कि श्री गिरिराजकी यात्रा करनी चाहिये। भाग्यसे बाबू गोविन्दरायजी गया वाले आ गये। बरुआसागरसे चार आदमियोंके साथ चल दिये। दो मील चलनेके बाद थक गये, चित्त बहुत उदास हुआ इतनेमें एक नौकर था वह बोला—

'सागर दूर सिमरिया नियरी।'

इसका अर्थ यह है कि बरुआ सागरसे अभी आप दो मील आये है, वह तो दूर है, सिमरिया यद्यपि ७०० मील है परन्तु उसके सन्मुख हो अत: वह समीप है। कहनेका तात्पर्य यह कि गिरिराज समीप है। बरुआसागर दूर है। इस वाक्यको श्रवण किया और उस दिन १० मील मार्ग तय किया।

शान्ति कहाँ

कुछ माह बाद शिखरजीकी वन्दना की, वहाँपर कई वर्ष बिताए, परन्तु जिसे शान्ति कहते है, नही पाई। प्रायः बिहारमें भ्रमण भी किया। श्री वीरप्रभुके निर्वाण क्षेत्रमें श्री राजगृही चार माह रहे। स्वाध्याय किया। वन्दनाएँ की। शान्तिके अनुकूल परस्पर तत्त्वचर्चा भी की, परन्तु जिसको शान्ति कहते है, अणुमात्र भी उसका स्वाद न आया। वहाँसे चलकर वाराणसी आये। अच्छे अच्छे विद्वानोंका समागम हुआ, परन्तु शान्तिका लेश भी न आया। वाराणसी त्यागनेपर दशमीप्रतिमाका व्रत लिया, परन्तु परिणामोंकी जो दशा पहले थी वही रही—शान्तिका आस्वाद न आया। कुछ दिनों बाद मनमें आया कि क्षुल्लक हो जाओ, नटकी तरह इन उत्तम स्वांगोंकी नकल की—अर्थात् क्षुल्लक बन गये। इस पदको धारण किये पाँच वर्ष हो गये परन्तु जिस शान्तिके हेतु यह उपाय था उसका लेश भी न आया। तब यही ध्यानमें आया अभी तुम उसके पात्र नही। किंतु इतना होनेपर भी व्रतोंके त्यागनेका भाव नही होता। इसका कारण केवल लोकैषणा है। अर्थात् जो व्रतका त्यागकर देवेंगे तो लोकमे अपवाद होगा। अतः कष्ट हो तो भले ही हो, परन्तु अनिच्छा होते हुए भी व्रतको पालना। जब अन्तरङ्गमें कषाय है, बाह्यमें आचरण भी व्रतके अनुकूल नही तब यह आचरण केवल दम्भ है।

श्री कुन्दकुन्द स्वामीका कहना है कि यदि अन्तरङ्ग तप नही तब बाह्यवेष केवल दुःखके लिये है। पर यहाँ तो बाह्य भी नही; अन्तरङ्ग भी नही। तब यह वेष केवल दुर्गतिका कारण है, तथा अनन्त संसार-का निवारक जो सम्यग्दर्शन है उसका भी घातक है। अन्तरङ्गमें तो यह विचार आता है कि इस मिथ्यावेष को त्यागो। लौकिक प्रतिष्ठामें कोई तत्त्व नही। परन्तु यह सब कहने मात्रको है। अन्तरङ्गमें भय है कि लोग क्या कहेंगे? यह विचार नही कि अशुभकर्मका बन्ध होगा। उसका फल तो एकाकी तुम ही को भोगना पड़ेगा। यह भी कल्पना है। परमार्थसे परामर्श किया जावे तब आगे क्या होगा? सो तो ज्ञानगम्य नहीं, किन्तु इस वेषमें वर्तमानमें भी कुछ शान्ति नही। जहाँ शान्ति नहीं वहाँ सुख काहेका? केवल लोगोंकी दृष्टिमें मान्यता बनी रहे इतना ही लाभ है।

तब क्या करें

मेरा यह विश्वास है कि अधिकांश जनता भयसे ही सदाचारका पालन करती है। जहाँ लोगोंकी परवा नही वहाँ पापाचरणसे भी भय नही देखा गया। जहाँ लोकभय गया वहाँ परलोककी कौन गणना। अतः जिन्हे आत्मकल्याण करना हो वे मनुष्य तत्त्वाभ्यास करें और यह देखें कि हम कौन हैं? हमारा स्वरूप क्या है? हमारा कर्त्तव्य क्या है? पुण्य-पापादिका क्या स्वरूप है? पुण्य पापादि परमार्थसे हैं या केवल

कल्पना है ? जो वर्तमानमें विषय सुख होता है क्या उसके अतिरिक्त कोई सुख है या कल्पना मात्र है ? आज जगतमें अनेक मतोंका प्रचार हो रहा है। उनमें तथ्यांश है या कुछ नही ? इत्यादि विचारकर निर्णयकर अपनी प्रवृत्तिको निर्मल करनेकी चेष्टा करना उचित है। केवल गल्पवादमें ही काल पूर्ण न कर देना चाहिये। अनादिकी कथाको छोडो, वर्तमान पर्यायपर विचार करो। जबसे पैदा हुये पाँच या छह वर्ष तो अबोधमें ही गये। कुछ पर्यायके अनुकूल ज्ञानका विकास बिना शिक्षाके ही हुआ। जैसा देखा वैसा स्वयमेव होगा। बहु-भाग भाषाका ज्ञान बिना किसीके सिखाये आ गया। अनन्तर पाठशालामें जानेसे अङ्कविद्या और अक्षरका आभास गुरु द्वारा होने लगा। सात वर्षमें हिन्दी या उर्दू का इतना ज्ञान हो गया जो व्यवहारके योग्य हो गया। अनन्तर जिस धर्ममें अपने माता-पिता और कुटुम्बी जनकी प्रवृत्ति देखी उसी मतमें अपनी भी प्रवृत्ति करने लगा। यदि माता-पिता श्रीरामके उपासक हैं तब आप भी उसी धर्मको मानने लगता है। जैनधर्मा-नुयायी माता-पिता हुए तब जिन मंदिरमें जाने लगा। मुसलमान हुए तब मसजिदमें जाने लगा। ईसाई हुए तब गिरजाघरमें जाने लगा इत्यादि। कहाँतक लिखें जो परम्परासे चला आया है उसीसे अपने उद्धारकी श्रद्धा प्रत्येक मत वालेको है। जो मुसलमान है वह खुदाका नाम लेनेसे ही मोक्ष मानता है। इत्यादि। कहाँतक लिखें अपनी श्रद्धाके अनुकूल कल्याणके मार्गको अपनानेकी सबकी प्रवृत्ति रहती है। यह सब होते हुए भी कई महानुभावोंने इस विषयमें अच्छा प्रकाश डाला है। कोई परमेश्वर हो इसमें विवाद करनेकी आवश्यकता नही परन्तु आत्मकल्याण-मार्ग अपने ही पास है अन्यके पास नहीं। यदि नेत्रमे ज्योति नही, तब चश्मा चाहे हीराका हो चाहे काँचका हो, कोई लाभ नही हो सकता। इसी तरह यदि हमारी अन्तरङ्ग परि-णति मलिन है तब चाहे गङ्गास्नान करो, चाहे प्रयाग स्नान करो, चाहे मक्काशरीफ जाओ, चाहे मन्दिर जाओ, चाहे हिमालयकी शीतल पहाड़ियों पर भ्रमण करो, शाति नही मिल सकती। अतः परमात्माके विषयमें विवाद करना छोडो। केवल परिणति निर्मल बनाओ। कल्याणके पात्र हो जाओगे और यदि परिणति निर्मल न बनाई तब परमात्माकी कितनी ही उपासना करो कुछ भी शातिके अस्वादके पात्र न होंगे।

मध्ययुग का एक अध्यातमियाँ नाटक

डॉ० प्रेमसागर जैन

●

कवि बनारसीदासने 'नाटक समयसार'की रचना की थी। वे अपने युगके प्रख्यात साहित्यकार थे। यद्यपि उनका जन्म एक व्यापारी कुलमें हुआ था, किन्तु वे अपने भावाकुल अन्तर मानसका क्या करते, जो सदैव कविताके रूपमें प्रस्फुटित रहनेके लिए व्याकुल रहता था। उन्होंने पन्द्रह वर्षकी आयुमें ही एक 'नवरस रचना' लिख डाली, जिसमें एक हजार दोहे-चौपाइयाँ थी। इस रचनामें भले ही 'आसिखीका बिसेस वरनन' था, किन्तु काव्य-कलाकी दृष्टिसे वह एक अच्छा काव्य था। इसका प्रमाण है। एक दिन, जब बनारसीने उस कृतिको गोमतीमें बहा दिया तो सहृदय मित्र हा-हा करते हुए घर लौटे। बनारसीदासकी दूसरी कृति 'नाममाला' एक छोटा-सा शब्दकोश है। इसमें १७५ दोहे हैं। उसका मुख्य आधार धनञ्जयकी नाममाला है। किन्तु, इसमें केवल संस्कृतका ही नही, अपितु प्राकृत और हिन्दीका भी समावेश है। अतः यह एक मौलिक कृति है। हिन्दीमें इतना सरस शब्दकोश अन्य नही है। आगरेके दीवान जगजीवनने वि० सं० १७०१ में बनारसीदासकी ६१ मुक्तक रचनाओंको एक ग्रन्थके रूपमें संकलित कर दिया था। उसका नाम रक्खा था 'बनारसी विलास'। यह ग्रन्थ बम्बई और जयपुरसे प्रकाशित हो चुका है। बनारसीका 'आत्मचरित' अर्धकथानकके नामसे प्रसिद्ध है। बनारसीदास चतुर्वेदीने उसे हिन्दीका पहला आत्मचरित माना है। और इस दृष्टिसे वह हिन्दी साहित्यकी एक महत्त्वपूर्ण धरोहर है। 'नाटक समयसार' बनारसीदासकी सशक्त रचना है। सशक्त इसलिए कि उस युगकी 'अध्यात्ममूला भक्ति'में वह अनुपम है। उसका कोई सानी नही, तुलना नही। अभिव्यक्ति परिमार्जित है, तो स्वभाविक भी। इसका निर्माण आगरेमें वि० सं० १६९३, आश्विन सुदी १३, रविवारके दिन हुआ था। उस समय बादशाह शाहजहाँका राज्य था। इस कृतिमें ३१० सोरठा-दोहे, २४५ सवैय्या-इकतीसा, ८६ चौपाई, ३७ तेईसा-सवैय्या, २० छप्पय, ७ अडिल्ल और ४ कुण्डलियाँ हैं।

नाटक समयसारका पूर्वाधार

'नाटक समयसारका' मूलाधार था आचार्य कुन्दकुन्दका 'समयसारपाहुड'। आचार्य कुन्दकुन्द विक्रम संवत्की पहली शतीमें हुए हैं। उनके रचे हुए तीन ग्रन्थ—समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। जैन परम्परामें आचार्य कुन्दकुन्द भगवान्‌की भाँति ही पूजे जाते हैं। श्री देवसेनने वि० सं० ९९० में अपने दर्शनसार नामके ग्रन्थमें लिखा है कि यदि कुन्दकुन्दाचार्यने ज्ञान न दिया होता तो आगेके मुनिजन सम्यक् पथको विस्मरण कर जाते। श्रुतसागर सूरिकृत 'षट्प्राभृत'की टीकाके अन्तमें उनको 'कलिकाल सर्वज्ञ' कहा गया है। चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरिके शिलालेखोंमें उनकी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। 'समयसार' अध्यात्मका सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। अपने स्वभाव और गुण-पर्यायोंमें स्थिर रहनेको 'समय' कहते हैं। जैन मान्यतानुसार छः द्रव्य 'समय' संज्ञासे अभिहित होते हैं, क्योंकि वे सदैव अपने गुण-पर्यायोंमें स्थिर रहते हैं। इनमें-भी आत्मद्रव्य ज्ञायक होनेके कारण सारभूत है। उसका मुख्यतया विवेचन करनेसे

इस ग्रन्थको समयसार कहते हैं। इसमें प्राकृत भाषामें लिखी गई ४१५ गाथाएँ हैं। इसका प्रकाशन बम्बई, बनारस और मारोठ आदि कई स्थानोंसे हो चुका है।

इन प्राकृत गाथाओं पर आचार्य अमृतचन्द्रने वि० सं० की ९ वीं शतीमें 'आत्मख्याति' नामकी संस्कृत टीका कलशोंके रूपमें लिखी। आचार्य अमृतचन्द्र प्रसिद्ध टीकाकार थे। उन्होंने केवल समयसारकी ही नहीं, अपितु पंचास्तिकाय और तत्त्वसारकी भी टीकायें लिखी हैं। टीकाकी विशेषता है कि उसका मूल-ग्रन्थके साथ पूर्ण तादात्म्य होना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि अमृतचन्द्रने आचार्य कुन्दकुन्दकी प्रतिमामें घुमकर ही इस टीकाका निर्माण किया हो। आचार्य अमृतचन्द्र विद्वान् थे और कवि भी, कवि प्रतिभा उनमें जन्मजात थी, किन्तु आत्मख्याति टीका, टीका है, अतः उसे अपने मूल ग्रन्थ समयसार पाहुडका सही प्रतिनिधित्व करना चाहिए था, वह उसने किया है। शायद इसी कारण उसमें दार्शनिकता ही मुख्य है। उसमें कविका भावसंकुलताका समन्वय नही हो सका। आचार्य अमृतचन्द्रने जिन अन्य ग्रन्थोंका निर्माण किया है, वे भी दार्शनिक ही हैं। 'तत्त्वसार' और 'पुरुषार्थसिद्ध्युपाय' उनकी मौलिक कृतियाँ हैं।

विक्रम संवत्की १७वी शतीमें प० राजमल्लने 'समयसार' पर बालबोधिनी नामकी टीका लिखी, जो हिन्दी गद्यमें थी। ये ढूँढाहड प्रदेशके वैराटनगरके रहने वाले थे। अतः उनकी मातृभाषा ढूँढारी हिन्दी है। हिन्दी गद्यके इतिहासमें उनका गौरवपूर्ण स्थान है।

प० राजमल्लकी विद्वत्ताकी ख्याति चतुर्दिक्में व्याप्त थी। वे संस्कृत और प्राकृतके भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनका व्यक्तित्व भी आकर्षक और समुन्नत था। विद्वत्ताके समन्वयने उसे और भी निखार दिया था। किन्तु, अर्धकथानकमें लिखा है कि इस टीकाको पढकर बनारसीदासको 'आत्मा'के विषयमें भ्रम हुआ था। इसका अर्थ यह हुआ कि प० राजमल्ल जी 'समयसार' का सही अर्थ नही समझ सके। सच तो यह है कि समयसार एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका मूल समझ लेना आवश्यक है। बिना उसके पाठक उलझ जाता है। हो सकता है, प० राजमल्ल भी कही मूलमें ही भूल कर गये हों।

बनारसीदासके नाटक समयसार पर उपर्युक्त तीनों आचार्योंका प्रभाव है।

नाटक समयसार और उसकी मौलिकता

'नाटक समयसार' को अमृतचन्द्रके संस्कृत कलशोंका अनुवाद नही कहा जा सकता, उसमें पर्याप्त मौलिकता भी है। अमृतचन्द्रकी आत्मख्याति टीकामें केवल २७७ कलश हैं, जबकि नाटक समयसारमें ७२७ पद्य हैं। अतका १४वां 'गुणस्थान अधिकार' तो बिल्कुल स्वतन्त्र रूपमें लिखा गया है। प्रारम्भ और अन्तके १०० पद्योंका भी आत्मख्याति टीकासे कोई सम्बन्ध नहीं है। जिनका सम्बन्ध है, वे भी नवीन है। उनमें 'कलशका अभिप्राय तो अवश्य लिया गया है; किन्तु विविध दृष्टान्तों, उपमा और उत्प्रेक्षाओंसे ऐसा रस उत्पन्न हुआ है, जिसके समक्ष कलश फीका जँचता है। एक दृष्टान्तमे यह बात स्पष्ट हो जायेगी। अमृत-चन्द्रने एक कलशमें लिखा है—

नाश्नुते विषयसेवनेऽपि यत्स्वं फलं विषयसेवनस्य ना।
ज्ञान वैभव विरागता बलात्सेवकोऽपि तदसौऽसेवकः ॥

इस पर लिखा गया नाटक समयसारका पद्य इस प्रकार है—

"जैसे निशिवासर कमल रहैं पंक ही में,
पंकज कहावै पै न वाके ढिग पंक है।
जैसे मन्त्रवादी विषधर सों गहावें गात,
मन्त्रकी शकति वाके बिना विष डंक है।

जैसे जीभ गहे चिकनाई रहे रूखे अंग,
पानीमें कनक जैसे काईसे अटंक है।
तैसे ज्ञानवान नाना भाँति करतूत ठानैं
किरिया तैं भिन्न माने मोतें निकलंक है॥"

स्पष्ट ही है कि उपर्युक्त शब्दोंके चयन, पंक्तियोंके गठन, प्रसाद गुण और दृष्टान्तालंकरकी सहायतासे "ज्ञानवान् नाना कार्योंको करता हुआ भी उनसे पृथक् रहता है", यह दार्शनिक सिद्धान्त सजीव हो उठा है। सच तो यह है कि समयसार और उसकी टीकाएँ दर्शनसे सम्बन्धित हैं, जबकि बनारसीदासका नाटक समयसार साहित्यका ग्रन्थ है। उसमें कविकी भावुकता प्रमुख है, जबकि समयसारमें दार्शनिकका पाण्डित्य। दर्शनके रूखे सिद्धान्तोंका भावोन्मेष वह ही कर सकता है, जिसने उन्हें पचाकर आत्मसात् कर लिया हो। कवि बनारसीदासने अपनी आध्यात्मिक गोष्ठीमें समयसारका भली भाँति अध्ययन, पारायण और मनन किया था इसमें उन्होंने वर्षों खपा दिये थे। बीचमें गलत अर्थ समझनेके कारण उन्हें कुछ भ्रम हो गया था, परिणामवशात् वे और उनके चार साथी एक बन्द कोठरीमें नग्न होकर मुनि बननेका अभ्यास करते थे। बादमें पाण्डे रूपचन्द्र, जिनकी समूची शिक्षा बनारसमें हुई थी, से गोम्मटसार सुनकर उन्हें वास्तविक ज्ञान हुआ और समयसारका सही अर्थ समझ सके। किन्तु, केवल अर्थ समझना और उसकी अनुभूति करना दो भिन्न बातें है। अनुभूति तभी हो सकती है, जबकि अर्थको साक्षात् किया गया हो। अर्थात् अनुभूतिके लिए केवल ज्ञाता ही नहीं, द्रष्टा होना भी आवश्यक है। कवि बनारसीदासने आचार्य कुन्दकुन्दके समयसार की गाथाओंका अमृतचन्द्रको आत्मख्याति टीकाके माध्यमसे अध्ययन किया, आध्यात्मिक गोष्ठीमें मनन किया और एकान्तमें साक्षात् किया। इनके समन्वयसे जागृत हुई अनुभूतिने 'नाटक समयसार'को जन्म दिया। बनारसीदासकी दृष्टिमें सच्ची अनुभूति ही सच्चा ब्रह्म है। तज्जन्य आनन्द परमानन्द ही है, उससे कम नहीं। वह कामधेनु और चित्रवेलिके समान है। उसका स्वाद पंचामृत भोजन-जैसा है। नाटक समयसारमें यह पंचामृत भोजन पग-पग पर उपलब्ध है। 'देह विनाशवान है, उसकी ऊपरी चमक-दमक धोका देती है', दर्शनके इस मरुस्थलमें-से फूटने वाला एक निर्मल जलका स्रोत देखिए—

"रेत की-सी गढ़ी किधौं मढी है मसान की-सी अन्दर अन्धेरी जैसी कन्दरा है सैल की।
ऊपर की चमक-दमक पटभूखन की धोखे लागे भली जैसी कली है कनैंल की।
औगुन की ओंडी महाभौंडी मोह की कनौडी माया की मसूरति है मूरति है मैल की।
ऐसी देह याहि के सनेह याकी संगति सों ह्वै रही हमारी मति कोलू के-से बैल की॥"

समयसारकी 'नाटक' संज्ञा

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि 'समयसार' अध्यात्म का ग्रन्थ था, उसमें आचार्य कुन्दकुन्दके दार्शनिक विचार मुख्य है, भाव नहीं। उन्होंने समयसारको नाटक संज्ञासे अभिहित नहीं किया। सर्वप्रथम आचार्य अमृतचन्द्रने समयसारको 'नाटक' कहा। किन्तु, केवल कह देने मात्रसे कोई ग्रन्थ नाटक नहीं बन जाता। उसमें भावोन्मेष की आवश्यकता बनी ही रहती है। वह आत्मख्याति टीकामें नहीं हो सका। बनारसीदासने समयसारकी नाटक संज्ञाको सार्थक किया और इसी कारण उन्होंने इसका नाम ही नाटक समयसार रखा।

नाटक समयसारमें सात तत्त्व-जीव, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष अभिनय करते हैं। इनमें प्रधान होनेके कारण जीव नायक है और अजीव प्रतिनायक। उनके प्रति स्पर्द्धा अभिनयोंने चित्रमयताको

जन्म दिया है। जीवको अजीवके कारण ही विविध रूपोंमें नृत्य करना पड़ता है। आत्माके स्वभाव और विभावको नाटकीय ढंगसे उपस्थित करनेके कारण इसको नाटक समयसार कहते हैं। यह एक आध्यात्मिक रूपक है। एक स्थान पर आत्मारूपी नर्त्तक सत्तारूपी रंगभूमि पर ज्ञानका स्वांग बना कर नृत्य करता है। पूर्वबंधका नाश उसकी गायन विद्या है, नवीनबंधका संवर ताल तोड़ना है, निःशंकित आदि आठ अंग उसके सहचारी हैं, समताका आलाप स्वरोंका उच्चारण है, निर्जराकी ध्वनि ध्यानका मृदंग है। वह गायन और नृत्यमें लीन होकर आनन्दमें सराबोर है—

"पूर्वबंधनासै सो तो संगीत कला प्रकासै
नवबंध रुधि ताल तोरत उछरिकै।
निसंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरि
समता अलापचारी करै सुर भरिकै॥
निरजरा नाद गाजै ध्यान मिरदंग बाजै
छक्यौ महानंद मैं समाधि रीझि करिकै।
सत्तारंग भूमि मैं मुकत भयौ तिहूंकाल
नाचै सुद्ध दिष्टि नट ग्यान स्वांग धरिकै॥

आत्मा ज्ञानरूप है और ज्ञान तो समुद्र ही है, जब वह मिथ्यात्वकी गांठको फोड़कर उमगता है, तो त्रिलोकमें व्याप्त हो जाता है। इसीको दूसरे शब्दोंमें यों कहा जा सकता है कि जब आत्मा मिथ्यात्वको तोडकर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, तो ब्रह्म बन कर घर-घरमें जा विराजता है। इसीको कविने एक रूपकके द्वारा प्रस्तुत किया है। रूपकमें आत्माको पातुरी बनाया गया है। वह वस्त्र और आभूषणोंसे सजकर, रातके समय नाट्यशालामें, पटको आडा करके आती है, तो किसीको दिखाई नही देती, किन्तु जब दोनों ओरके शमादान ठीक करके परदा हटाया जाता है तो सभाके सब लोग उसको भली भाँति देख लेते हैं। यह ही दशा आत्मा की है—

जैसे कोऊ पातुर बनाय वस्त्र आभरन
आवति अखारे निसि आडौ पट करिकैं।
दुहूं ओर दीवटि संवारि पट दूरि कीजै
सकल सभाके लोग देखैं दृष्टि धरिकै॥
तैसें ज्ञानसागर मिथ्याति ग्रंथि भेदि करि
उमग्यौ प्रगट रह्यौ तिहूं लोक भरिकै।
ऐसो उपदेस सुनि चाहिए जगत जीव
सुद्धता संभारै जग जाल सौं निसरि कै॥

जीव एक नट है और वह वटवृक्षके समान है। वटवृक्षमें अनेक फल होते हैं, प्रत्येक फलमें बहुतसे बीज तथा प्रत्येक बीजमें वटवृक्ष मौजूद रहता है। बीजमें वट और वटमें बीजकी परम्परा चलती रहती है। उसकी अनंतता कम नही होती। इसी प्रकार जीव रूपी नटकी एक सत्तामें अनन्त गुण, पर्यायें और कलाएँ हैं। वह एक विलक्षण नट है—

जैसे वटवृक्ष एक, तामैं फल हैं अनेक
फल-फल बहु बीज, बीज-बीज वट है।

बट माँहि फल, फल माँहि बीज तामैं बट
कीजै जो विचार, तो अनंतता अघट है ॥
तैसे एक सत्ता मैं, अनंत गुन परजाय
परजै में अनंत नृत्य, तामैं अनंत ठट हैं।
ठटमें अनंतकला, कला मैं अनंत रूप
रूपमें अनंत सत्ता, ऐसो जीव नट है ॥

इस संसाररूपी रंगशालामें यह चेतन जो विविध भाँतिके नृत्य करता है, वह अचेतनकी संगतिसे ही। तात्पर्य है कि अचेतन ही उसे संसारके आवागमनमें भटकाता है। यदि अचेतनका साथ छूट जाय तो चेतनका नृत्य भी बन्द हो जाये। इसीको कविने लिखा है—

बोलत विचारत न बोले न विचारे कछु
भेखको न भाजन पै भेखको धरत है।
ऐसो प्रभु चेतन अचेतन कौ संगति सों
उलट पलट नटवाजी सी करत है ॥

जब चेतन अचेतनकी संगति छोड देता है, तो वह उस नाटकका केवल दर्शक-भर रह जाता है, जो भ्रम-पूर्ण, विशाल एवं महा अविवेकपूर्ण अखाड़ेमे अनादिकालसे दिखाया जा रहा है। यह अखाड़ा जीवके घटमें ही बना है। वह एक प्रकारकी नाट्यशाला है। उसमें पुद्गल नृत्य करता है और बेष बदल-बदल कर कौतुक दिखाता है। चिन्मूरति जो मोहसे भिन्न और जड़से जुदा हो चुका है, इस नाटकका देखने वाला है। अर्थात् चेतन मोह और जडसे पृथक् होकर शुद्ध हो जाता है, अत. वह सासारिक कृत्यों-को केवल देखता-भर है, उनमें संलग्न नही होता। बनारसीदासका कथन है—

या घट में भ्रमरूप अनादि, विसाल महा अविवेक अखारौ।
तामहि और स्वरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करै अति भारौ ॥
फेरत भेष दिखावत कौतुक सौजि लियें वरनादि पसारौ।
मोह सों भिन्न जुदौ जड सौं चिन्मूरति नाटक देखन हारौ ॥

कोई नट जब रंगमंच पर अभिनय करता है, तो उसकी अभिनयोपयुक्त वेशभूषा होती है। वह अपनी वास्तविकता भूलकर उसीको सच्ची मान बैठता है। नाटककी तन्मयतासे उभरते ही उसे अपने वास्तविक रूपका ज्ञान होता है। ठीक यह ही हाल चेतनका है। वह घटमें बने रंगमंचपर अनेक विभावों-को धारण करता है। विभावका अर्थ है कृत्रिम भाव। जब सुदृष्टि खोलकर वह अपने पदको देखता है तो उसे अपनी वास्तविकताका ज्ञान हो जाता है। चेतनरूपी नटका यह कौतुक—

ज्यौं नट एक धरै बहु भेख, कला प्रगटै बहु कौतुक देखै
आपु लखै अपनी करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत भेखै।
त्यौं घट में नट चेतन राव, विभाउ दसा धरि रूप विसेखै
खोलि सुदृष्टि लखै अपनो पद, दुं विचारि दसा नहिं लेखै ॥

चेतन मूर्ख है, वह अचेतनके धोकेमें सदैव फँसा रहता है। अचेतन चेतनको या तो भटकाता है अथवा मोहकी नींदमें सुला देता है, अपना रूप नही देखने देता। नाटक समयसारमें चेतनकी सुषुप्तावस्था का एक चित्र अंकित किया गया है। वह कायाकी चित्रसारीमें मायाके द्वारा निर्मित सेजपर सो रहा है।

उस सेजपर कलपना (तड़पन) की चादर बिछी है। मोहके झकोरोंसे उसके नेत्र ढँप गये हैं। कर्मोंका बलवान उदय ही श्वांसका शब्द है। विषयभोगोंका आनन्द ही स्वप्न है। इस भाँति चेतन मस्त होकर सो रहा है। वह ऐसी मूढ़ दशामें तीनों काल मग्न रहता है, भ्रम-जालमें फँसा रहता है। उससे कभी उभर नहीं पाता—

"काया चित्रसारी में करम परजंक भारी, माया की संवारी सेज चादर कलपना।
शैन करै चेतन अचेतनता नींद लिये, मोह की मरोर यहै लोचन को ढंपना॥
उदै बल जोर यहै श्वास को शबद घोर, विषै सुखकारी जाकी दौर यहै सुपना।
ऐसी मूढ़दशा में मगन रहै तिहुँकाल, धावे भ्रमजाल में न पावे रूप अपना॥"

नाटक समयसारमें वीर रसके अनेक चित्र हैं, जिनमेंसे एकमें आस्रव और ज्ञानका युद्ध दिखाया गया है। कर्मोंके आगमनको आस्रव कहते हैं। वह बहुत बड़ा योद्धा है, अभिमानी है। संसारमें स्थावर और जंगमके रूपमें जितने भी जीव हैं, उनके बलको तोड़-फोडकर आस्रवको अपने वशमें कर रखा है। उसने मूंछोंपर ताव देकर रण-स्तम्भ गाड़ दिया है। अर्थात् उसने अपनेको अप्रतिद्वन्द्वी प्रमाणित करनेके लिए अन्य योद्धाओंको चुनौती दी है। अचानक उस स्थानपर ज्ञान नामका एक सुभट, जो सवाये बलका था, आ गया। उसने आस्रवको पछाड़ दिया, उसका रण-थंभ तोड़ दिया। ज्ञानके शौर्यको देखकर बनारसीदास नमस्कार करते हैं—

"जेते जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करि राखे बल तोरि के।
महा अभिमानी ऐसो आस्रव अगाध जोधा, रोपि रन थंभ ठाढो भयो मूछ मोरि के॥
आयो तिहि थानक अचानक परम धाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो बल फोरिके।
आस्रव पछार्यो रनथंभ तोरि डार्यो ताहि, निरखि बनारसी नमत कर जोरि के।"

नाटक समयसारमें भक्तितत्त्व

निष्कल और सकल अर्थात् निर्गुण और सगुणकी उपासनाका समन्वय जैन भक्तिकी विशेषता है। कोई जैन कवि ऐसा नही, जिसने दोनोंकी एक साथ भक्ति न की हो। जैन सिद्धान्तमें आत्मा और जिनेन्द्र-का एक ही रूप माना गया है, अतः वह शरीरी हो अथवा अशरीरी, जैन भक्तको दोनों ही पूज्य हैं। नाटक समयसारमें इस परम्पराका पालन किया गया है। कवि बनारसीदासने यदि एक ओर निष्कल ब्रह्मकी आराधना की है, तो दूसरी ओर सकलके चरणोंमें भी श्रद्धाके पुष्प चढ़ाये हैं।

'निष्कल' का दूसरा नाम है सिद्ध। कर्मोंके आवरणसे मुक्त आत्माको सिद्ध कहते हैं। 'नाटक समयसार' मे शुद्ध आत्माके प्रति गीतोंकी भरमार है; एक स्थान पर कविने लिखा है कि शुद्धात्माके अनुभवके अभ्याससे ही मोक्ष मिल सकता है, अन्यथा नही। उनका यह भी कथन है कि आत्माके अनेक गुण-पर्यायोंके विकल्पमें न पड कर शुद्ध आत्माको अनुभवका रस पीना चाहिए। अपने स्वरूपमें लीन होना और शुद्ध आत्माका अनुभव करना ही श्रेयस्कर है। सिद्ध शुद्ध आत्माके ही प्रतीक हैं। उनके विशेषणों-का उल्लेख करते हुए कविने उनकी जै-जैकारकी है। एक पद्य देखिए—

"अविनासी अविकार परमरस धाम है, समाधान सरवंग सहज अभिराम हैं।
सुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हैं, जगत शिरोमनि सिद्ध सदा जयवंत हैं॥"

एक दूसरे स्थान पर कविने शिवलोकमें विराजमान 'शिवरूप' की वन्दना की है। उनका कथन है कि जो अपने आत्मज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाशित है, सब पदार्थोंमें मुख्य है, निष्कलंक है, सुख सागरमें

विश्राम करता है, संसारके सब जीव और अजीवोंकी घट-घटका जानने वाला है और मोक्षका निवासी है, उसे भव्य जीव सदैव नमस्कार करते हैं। भक्तके वन्दनीयको शिवरूप तो होना चाहिए ही, साथ ही तेजवान भी, किन्तु तेज भौतिक न होकर, दिव्य हो, वह तभी हो सकता है, जबकि सासारिक कलक निकल जावे। तभी उसे अनंत सुख और केवलज्ञान उपलब्ध हो सकता है। ऐसे भगवान्के भक्तका भक्ति परक मापदण्ड निश्चय रूपसे ऊँचा है। वह पद्य इस प्रकार है—

जो अपनी दुति आ विराजत, है परधान पदारथ नामी।
चेतन अंक सदा निकलक, महासुखसागर कौ विसरामी॥
जीव अजीव जिते जग मैं, तिनको गुन ज्ञायक अंतरजामी।
सो सिवरूप बसै सिवथान, ताहि ; बिलोकि नमैं सिवगामी॥"

निर्गुनिए संतोंकी भाँति ही बनारसीने यह स्वीकार किया कि जिनराज घट मन्दिरमें विराजमान रहता है। उसमें ज्ञानशक्ति विमल आरसीकी भाँति दमक उठती है, जिससे वह समूचे विश्वको देख पाता है। इस देख सकनेकी सामर्थ्यसे अन्तर-राग और महामोह दोनों समाप्त हो जाते हैं और आत्मा परम महारस रूप बन जाती है। महारस वह है, जिसमें एक ओर मनकी चपलता नही रहती तो दूसरी ओर योगसे भी उदासीनता आ जाती है। .अर्थात् आत्मा सहजयोगीका रूप धारण कर लेती है। 'सहजयोगी' का तात्पर्य है कि परम महारसके प्राप्त हो जानेसे योगीको योगकी दुरूह साधनासे स्वत. निर्वृति मिल जाती है। वह साधनाके बिना स्वाभाविक ढंगसे ही योगी बना रहता है। बनारसीदासकी सहजतामे व्रजयानियोंके सहजयानी सम्प्रदायका 'सहज' नही है, इसमें आत्माका स्वाभाविक रूप ही मुख्य है। अर्थात् बनारसीदास पहले महारस प्राप्त करते है, तब सहजता स्वाभाविक ढंगसे आ ही जाती है। सहजयानी पहले सहजता प्राप्त करते हैं, फिर महारसकी ओर आँख लगाते है। कुछ भी हो, बनारसीदास घटमे शोभायमान सहज-योगी चेतनकी वन्दना करते है।

जैन आचार्योंने 'परम महारस' में डूबी आत्माको ब्रह्म कहा है। बनारसीदासने भी उसे ब्रह्म कहा उसके स्याद्वाद रूपका विवेचन किया। उन्होंने लिखा है कि वह एक भी है और अनेक भी, अर्थात् वह आत्मसत्तामें एक रूप है और परसत्तामें अनेक रूप। वह ज्ञानी है और अज्ञानी भी—अर्थात् शुद्धरूपमें ज्ञानी और कर्मसंगतिमें अज्ञानी है। इसी भाँति वह प्रमादी है और अप्रमादी भी—जब अपने रूपको भूल जाता है तो प्रमादी और जब अपने रूपको जागृत होकर स्मरण करता है तो अप्रमादी। अपेक्षाकृत दृष्टिसे ही वस्तुका वास्तविक निरूपण हो सकता है, अन्यथा नही। इस दृष्टिको ही स्याद्वाद कहते हैं। यह सिद्धान्त आत्मापर भी घटित होता है। आत्माका ऐसा निष्पक्ष और सत्य विवेचन अन्यत्र दुर्लभ ही है। बनारसी-दासने उस आत्म ब्रह्मकी प्रशंसामें लिखा है—

"देखु सखी यह ब्रह्म विराजित, याकी दसा सब याही कौ सो है।
एक मैं अनेक अनेक में एक, दुंदु लिये दुविधामह दो हैं॥
आपु संभारि लखै अपनौ पद, आपु विसारिकै आपुहि मो है।
व्यापक रूप यहै घट अंतर, ग्यान मैं कौन अग्यान मैं को है॥"

बनारसीदासने सकल ब्रह्मके भी गीत गाये। सकल ब्रह्म वह है, जो केवलज्ञान उत्पन्न होनेपर भी, आयुकर्मके अवशिष्ट रहनेसे विश्वमें शरीर सहित मौजूद रहता है। अर्थात् उसके घातिया कर्मोंका क्षय हो जाता है, अत. उसकी आत्मामें ब्रह्मत्व तो जन्म ले ही लेता है, किन्तु आयुके क्षीण होने तक उसे संसारमें रुकना पड़ता है। केवलज्ञान उत्पन्न होनेके उपरान्त अर्हन्तकी यह ही दशा होती है। उन्हें जीवन्मुक्त कहा

जा सकता है। वे सशरीरी ब्रह्म हैं। आचार्य ओइन्दुने उन्हें 'सकल ब्रह्म' की संज्ञासे अभिहित किया है। सूर और तुलसीने ऐसे ब्रह्मको सगुण कहा है। बनारसीदासने तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथकी वन्दना करते हुए लिखा है कि उनकी भक्ति करनेसे समूचे डर भाग जाते हैं, अर्थात् भक्त निर्भय हो जाता है। भगवान् पार्श्वप्रभुका शरीर सजल-जलदकी भाँति है। उनके सिरपर सप्तफणियोंका मुकुट लगा है। उन्होंने कमठके अहंकारको दल डाला है। ऐसे जिनेन्द्रको बनारसीदास नमस्कार करते हैं। यह सच है कि जिनेन्द्रने अपने भक्तोंको कभी नरकमें नहीं जाने दिया, उनके पापोंको बादल बनकर हरण कर लिया, इतना ही नहीं, किन्तु उन्हें अगम्य अपार भव-समुद्रसे पार कर दिया। वह भगवान् कामदेवको भस्म करनेके लिए रुद्रके समान है। भक्तजन सदैव उसकी जै जैके गीत गाते हैं।

जिनेन्द्र (सकल ब्रह्म) की भक्तिकी सामर्थ्यका बखान करते हुए बनारसीदासने एक स्थानपर लिखा है कि जिनेन्द्रकी भक्ति कभी तो सुबुद्धि रूप होकर कुमतिका हरण करती है, कभी निर्मल ज्योति बनकर हृदयके अन्धकारको दूर भगाती है, कभी करुणार्द्र होकर कठोर हृदयोंको भी दयालु बना देती है, कभी स्वयं प्रभुकी लालसा रूप होकर अन्य नेत्रोंको भी तद्रूप कर देती है, कभी आरतीका रूप धारण कर भगवान्के सम्मुख आती है और मधुर भावोंको अभिव्यक्त करती है। कहनेका तात्पर्य है कि भक्ति भक्तको प्रभुकी तद्रूपताका आनन्द देती है। कविने लिखा है—

> कबहूँ सुमति ह्वै कुमति कौ विनास करै, कबहूँ विमल ज्योति अंतर जगति है।
> कबहूँ दया ह्वै चित्त करत दयाल रूप, कबहूँ सुलालसा ह्वै लोचन लगति है॥
> कबहूँ आरती ह्वै कै प्रभु सन्मुख आवै, कबहूँ सुभारती ह्वै बाहरि बगति है।
> धरै दसा जैसी तब करै रीति तैसी ऐसी, हिरदै हमारे भगवंत की भगति है॥

जिनेन्द्रकी मूर्ति अथवा बिम्बको देखकर जिनेन्द्रकी याद आती है, उनके गुणोंको प्राप्त करनेकी चाहना उत्पन्न होती है। जिनेन्द्रमें कुछ ऐसा सौन्दर्य है, जिसके समक्ष इन्द्रका वैभव भी न-कुछ-सा लगता है। उसके यशका गान हृदयके तमस्को भगानेमें पूर्ण समर्थ है। भक्त उससे तमसो मा ज्योतिर्गमयकी याचना करता है। उससे मलिन बुद्धि शुद्ध हो जाती है। इस भाँति जिनेन्द्र बिम्बकी छविकी महिमा स्पष्ट ही है।

बनारसीदासने केवल निष्कल और सकल ब्रह्मकी ही नहीं, अपितु उन सब साधुओंकी भी वन्दना की है, जो सद्गुणोंसे युक्त हैं। उन्होंने लिखा है कि मुनिराज ज्ञानके प्रकाश तो होते ही है, सहज सुख-सागर भी होते हैं। अर्थात् ज्ञानके उत्पन्न होते ही उन्हें परम सुख स्वतः प्राप्त हो जाता है। वे प्रयत्न-शील नहीं होते और सुख मिल जाता है। पापी शरणागतको भी वे शरण देते हैं। उन्हें मौतका भय नहीं सताता। वे धर्मकी स्थापना और भ्रमका खण्डन करते हैं। वे कर्मोंसे लड़ते हैं, किन्तु विनम्र होकर, क्रोध अथवा भावावेशके साथ नहीं। ऐसे मुनिराज विश्वकी शोभा बढ़ाते हैं। बनारसीसे उन्हें पुनः पुनः नमन किया है।

भक्त आराध्यकी वाणीमें भी श्रद्धा करता है। उसकी महिमाके गीत गाता है। जिनवाणी जिनेन्द्र-के हृदयरूपी तालाबसे निकलती है और श्रुत-सिन्धुमें समा जाती है, अर्थात् वह एक सरिताके समान है। यह वाणी सत्यरूपा है। सत्य अनन्त नयात्मक है। अनेक अपेक्षाकृत दृष्टियोंसे वह विविध रूप है। उसका कोई एक लक्षण नहीं, कोई एक रूप नहीं। उसे समझनेके लिए वैसी सामर्थ्य आवश्यक है। अर्थात् सम्यग्दृष्टि ही उसे समझ सकता है, अन्य नहीं। बनारसीदासका कथन है कि वह जिनवाणी सदा जयवंत हो—

"तासु हृदै-द्रह सौं निकसी, सरिता-सम ह्वै श्रुत-सिन्धु समानी।
याते अनन्त नयातम लच्छन, सत्य स्वरूप सिधंत बखानी।
बुद्ध लखै न लखै दुरबुद्ध, सदा जगमाहिं जगै जिनवानी॥"

कवि बनारसीदासने नवधा भक्तिका निरूपण किया है। उन्होंने लिखा है, "श्रवन कीरतन चितवन सेवन वंदन ध्यान। लघुता समता एकता नौधा भक्ति प्रवान॥" नाटक समयसारमें इस नौधा भक्तिके उद्धरण बिखरे हुए हैं।

नाटक समयसारकी भाषा

कवि बनारसीदासने अपने अर्धकथानककी भाषाको 'मध्य देस की बोली' कहा है। डा० हीरालाल जैनने 'मध्यदेस की बोली' की व्याख्या करते हुए लिखा है, "बनारसीदास जीने अर्धकथानककी भाषामें ब्रजभाषाकी भूमिका लेकर उसपर मुगलकालमें बढ़ते हुए प्रभावशाली खड़ी बोली की पुट दी है, और इसे ही उन्होंने 'मध्यदेस की बोली' कहा है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेसमें काफी प्रचलित हो चुकी थी।" डा० माताप्रसाद गुप्तका कथन है, "यद्यपि मध्यदेसकी सीमायें बदलती रही है, पर प्राय. सदैव ही खडी बोली और ब्रजभाषी प्रान्तोंको मध्यदेशके अन्तर्गत माना जाता है और प्रकट है कि अर्धकथाकी भाषामें ब्रजभाषाके साथ खडी बोलीका किंचित सम्मिश्रण है, इसलिये लेखकका भाषा विषयक कथन सर्वथा सगत जान पडता है।" यह सत्य है कि अर्धकथानकमें खडी बोली और ब्रजभाषाका समन्वय है। इस भांति वह जनसाधारण की भाषा है। प० नाथूराम प्रेमी ने 'बोली' को बोलचालकी भाषा कहा है। मध्यदेशकी बोली ही मध्यदेशकी बोलचालकी भाषा थी।

बनारसीदासने अर्धकथानक बोलचालकी भाषामें लिखा, किन्तु उनके अन्य ग्रन्थ साहित्यिक भाषामें हैं। 'साहित्यिक' का तात्पर्य यह नही है कि उसमेंसे खडी बोली और ब्रजभाषा निकल कर दूर जा पडी हों। रही दोनों किन्तु संस्कृत-निष्ठ हो जानेसे उन्हे 'साहित्यिक' की संज्ञासे अभिहित किया गया। अर्ध-कथानकमें प्रत्येक स्थानपर 'श' को 'स' किया गया है, जैसे वहाँ शुद्धको सुद्ध, वंशको बंस और पार्श्वको पास लिखा है, किन्तु नाटक समयसारमें अधिकाशतया 'श' का ही प्रयोग है। शुद्ध चेतना, शुद्ध आतम और शुद्धभाव। इसी प्रकार अशुभ, शशि, विशेषिये, निशिवासर और शिवसत्ता आदि। अर्धकथानकमे 'ष' के स्थानपर 'स' का आदेश देखा जाता है, किन्तु नाटक समयसारमें सब स्थानपर ष का ही प्रयोग हुआ है। उस समय 'ष' का ख उच्चारण होता था, अतः लिपिमें वह 'ख' लिखा हुआ मिलता है। किन्तु ऐसा बहुत कम स्थानोंपर हुआ है। विषधर, मेष, दोष, विशेष और पिऊष आदिमें ष का ही प्रयोग है, किन्तु पोषके स्थानपर पोख, विशेषियेके स्थानपर विशेखिये, अभिलाषके स्थानपर अभिलाखमें ख देखा जाता है।

अर्धकथानकमें 'ऋ' कहीं कहीं ही सुरक्षित रह पाया है, किन्तु नाटक समयसारमें उसका कहींपर भी स्वरादेश नहीं हुआ है। जैसे अर्धकथानकमें 'दृष्टि' को दिष्टि प्रयोग किया गया है, नाटक समयसारमें वह दृष्टि ही है। इसके अतिरिक्त कृपा, कृपाण, मृषा आदि शब्द ऋकारान्त ही हैं।

संस्कृतके संयुक्त वर्णोंको स्वरभक्ति या वर्णलोपके द्वारा आसान बनानेकी प्रवृत्ति नाटक समयसार-में भी पाई जाती हैं। जैसे—निहचै (निश्चय), हिरदै (हृदय), विवहार (व्यवहार), सुभाव (स्वभाव), शकति (शक्ति), सासत (शाश्वत), दुन्द (द्वन्द्व), जुगति (युक्ति), थिर (स्थिर), निरमल (निर्मल), मूरतीक (मूर्तिक), सरूप (स्वरूप), मुकति (मुक्ति), अभिअंतर (अभ्यन्तर), अध्यातम (अध्यात्म), निरजरा (निर्जरा), विभचारिनी (व्यभिचारिनी), रतन (रत्न) आदि। 'य' के स्थान पर 'ज' का प्रयोग हुआ है। जैसे—जथा (यथा), जथारथ (यथार्थ), जथावत (यथावत), जोग (योग), विजोग (वियोग) और आचारज (आचार्य) कोई स्थान ऐसा नहीं जहाँ 'य' का प्रयोग हुआ हो।

तद्भवपरक प्रवृत्तिके होते हुए भी नाटकमें संस्कृत निष्ठा ही अधिक है। अर्थात् अर्धकथानककी भाँति चलताऊ शब्दोंका प्रयोग नहींके बराबर है। भले ही परपरिणतिको परपरिनति कर दिया गया हो किन्तु शब्द तो संस्कृतका ही है। इस श्रेणीमें उपर्युक्त शब्दोंको लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सानवन्त, कलावन्त, सम्यक्त्व, मोक्ष, विचक्षण और निर्विकल्प आदि अधिकांश संस्कृतके तत्सम शब्दोंका प्रयोग हुआ है। उर्दू-फारसीके शब्द अर्धकथानकमें भरे पड़े हैं, किन्तु समूचे नाटक समयसारमें बदफैल और खुरापाती जैसे शब्द दो-चारसे अधिक नहीं मिलेंगे। बनारसीदास उर्दू-फारसीके अच्छे जानकार थे। उन्होंने जौनपुरके नवाबके बड़े बेटे चीनी किलिचको उर्दू-फारसीके माध्यमसे ही संस्कृत पढ़ाई थी। किन्तु नाटक समयसारका विषय ही ऐसा था, जिसके कारण वे फारसीके शब्दोंका प्रयोग नही कर सके। बनारसीदासने विषयानुकूल ही भाषाका प्रयोग किया है। यह उनकी विशेषता थी।

भाषाका सौन्दर्य उसके प्रवाहमें है, संस्कृत अथवा फारसी निष्ठामें नही। प्रवाहका अर्थ है भाव का गुम्फनके साथ अभिव्यक्तीकरण। नाटक समयसारके प्रत्येक पद्यमें भावको सरसताके साथ गूथा गया है, कही विशृंखलता नही है, लचरपन नही है। एक गुलदस्तेकी भाँति सुन्दर है। दृष्टान्तोंकी आकर्षक पंखुडियोंने उसके सौन्दर्यको और भी पुष्ट किया है। विचारोंकी अनुभूति जब भावपरक होती है तो उसको प्रकट करना आसान नही है। किन्तु बनारसीदासने सहजमें ही प्रकट कर दी है। इसका कारण है उनका सूक्ष्मावलोकन। उन्हें वाह्य संसार और मानवकी अन्त प्रकृति दोनों ही का सूक्ष्म ज्ञान था। इसी कारण वे भावानुकूल दृष्टान्तोंको चुनने और उन्हें प्रस्तुत करनेमें समर्थ हो सके। एक उदाहरण देखिए—

जैसे निशिवासर कमल रहै पंकहि में, पंकज कहावै पैन वाके ढिग पंक है।
जैसे मन्त्रवादी विषधर सों गहावै गात, मंत्रकी सकति वाके बिना विष डक है॥
जैसे जीभ गहै चिकनाई रहै रूखे अंग, पानी में कनक जैसे काई सों अटंक है।
तैसे ज्ञानवत नाना भाँति करतूति ठानै, किरिया को भिन्न मानै याते निकलंक है॥

दृष्टान्तोंके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपकोंकी छटा भी अवलोकनीय है। रूपकोंमें सांग और निरग दोनो ही है। अनुप्रासोंमें सहज सौन्दर्य है। बनारसीदासको अलंकारोंके लिये प्रयास नही करना पडा। वे स्वतः ही आये हैं। उनकी स्वाभाविकताने रसपरकताको अभिवृद्ध किया है। बनारसीदास एक भक्त कवि थे। उनके काव्यमें भक्तिरस ही प्रमुख है। उनकी भक्ति अलंकारोंकी दासता न कर सकी, अपितु अलंकार ही भक्तिके चरणों पर सदैव अर्पित होते रहे। वे रसरकूलके विद्यार्थी थे। शरीर-की विनश्वरता दिखानेके लिये उत्प्रेक्षाका सौन्दर्य देखिए—

धारे से धका के लगे ऐसे फट जाय मानो, कागद की पुरी किधौं चादर है चैल की॥

छन्दो पर तो बनारसीदासका एकाधिपत्य था। उन्होंने 'नाटक समयसार' में सवैया, कवित्त, चौपाई, दोहा, छप्पय और अडिल्लका प्रयोग किया है। इनमें भी 'सवैया इकतीसा' का सबसे अधिक और सुन्दर प्रयोग है। 'सवैया' तो वैसे भी एक रोचक छन्द है, किन्तु बनारसीके हाथोंमें उसकी रोचकता और भी बढ़ गई है।

कुल कहनेका तात्पर्य यह है कि बनारसीदासने जैन आध्यात्मिक विचारोंका हृदयके साथ तादात्म्य किया, अर्थात् उन्होंने जैन मन्त्रोंको पढ़ा और समझा ही नही, अपितु देखा भी। इसी कारण मन्त्रदृष्टाओं-की भाँति वे उन्हे चित्रवत प्रकट करनेमें समर्थ हो सके। ऐसा करनेमें उनकी भाषा सम्बन्धी शक्ति भी सहायक बनी। वे शब्दोंके उचित प्रयोग, वाक्योंके कोमल निर्माण और अलंकारोंके स्वभाविक प्रयोगमें निपुण थे। उनकी भाषा भावोंकी अनुवर्त्तिनी रही, यह ही कारण था कि वह निर्गुनिए संतोंकी भाँति अटपटी न बन सकी।

पुण्य : एक तात्विक विवेचन

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री

जीवन एक द्वन्द्व है। उस द्वन्द्वमें दो विरोधी शक्तियाँ सक्रिय है—राग-विराग, पुण्य-पाप, शुभ, अशुभ, धर्म-अधर्म आदि। इन सबका सापेक्ष रूपसे कथन किया जाता है, क्योंकि अपने आपमें शुभ या अशुभ कुछ नहीं है। मनुष्यकी वृत्तियाँ ही अपनी प्रवृत्तियोंको शुभ-अशुभ कहकर निर्दिष्ट किया करती है। इसलिए इनको समझनेके लिए नयों एव सापेक्षताका ज्ञान आवश्यक है। जीवनकी प्रत्येक क्रिया हमारे परिणामोंसे परिचालित होती है। भाव ही मनुष्यके पाप-पुण्य बन्धके कारण तथा जीवन-मरण-मोक्षके कारण हैं। पाप-पुण्य आदि जिन कर्मोंके उदयसे उत्पन्न होते हैं व्यवहार नयसे जीव उन शुभ-अशुभ कर्मोंके उदयसे होने वाले सुख-दुःख आदिका भोक्ता है। स्वामी कार्तिकेयका कथन है—

जीवो वि हवे पाव अइ-तिव्व-कसाय-परिणदो णिच्च।
जीवो वि हवइ पुण्णं उवसम-भावेण संजुत्तो॥

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा, १, १९०

अर्थात जब यह जीव अत्यन्त तीव्र कषाय रूप परिणमन करता है तब पापरूप होता है और जब उपशम-भावरूप परिणमन करता है तब पुण्यरूप होता है। दूसरे शब्दोंमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व आदि परिणामोसे युक्त जीव पापी है, किन्तु औपशमिक सम्यक्त्व, औपशमिक चारित्र तथा क्षायिक सम्यक्त्व एव क्षायिकचारित्र रूप परिणामोंसे युक्त पुण्यात्मा है।

जब यह जीव अरहन्त या सिद्ध हो जाता है तो पुण्य और पाप दोनोसे रहित हो जाता है। इस प्रकार भावों के तीन भेद किये गये है—अशुभ, शुभ और शुद्ध। पाप का ही दूसरा नाम अशुभ है और पुण्य-का दूसरा नाम शुभ है तथा धर्मका दूसरा नाम शुद्ध है। आचार्य कुन्दकुन्दके शब्दोमें—

भाव तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं।
असुह च अट्टरुद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं॥ भावपाहुड, ७६

अर्थात् जिनेन्द्रदेवने भावोंके तीन प्रकार कहे है—शुभ, अशुभ और शुद्ध। उनमेंसे आर्त्त-रौद्र ध्यान अशुभ है और धर्मध्यान शुभ है। शुद्ध भाव वाले तो सदा अपने शुद्ध स्वभावमें लीन रहते है।

पंडित जयचन्द्रजी छावडा "भावपाहुड" की भाषावचनिका (गाथा ११८) में कहते है—"पूर्वे कह्या जिनवचन तै पराङ्मुख मिथ्यात्वसहित जीव तिस तैं विपरीत कहिये जिन आज्ञाका श्रद्धानी सम्यग्दृष्टि जीव है सो विशुद्धभाव कूं प्राप्त भया शुभकर्म कूं बाँधै है जातै याके सम्यक्त्वके महात्म्य करि ऐसे उज्ज्वल भाव है ताकरि मिथ्यात्वकी लार बध होती पापप्रकृतीनिका अभाव है, कदाचित् किञ्चित् कोई पाप प्रकृति बंधे है तिनिका अनुभाग मन्द होय है, कछू तीव्र पाप फलका दाता नाँही तातैं सम्यग्दृष्टि शुभकर्मका ही बाँधने वाला है। ऐसे शुभ-अशुभ कर्मके बन्धका सक्षेप करि विधान सर्वज्ञदेव नैं कह्या है सो जानना।"

इस विवेचनसे स्पष्ट है कि एक ही जीव काल-भेदसे कभी पुण्यरूप परिणाम करनेके कारण पुण्यात्मा और पापरूप परिणाम करनेके कारण पापात्मा कहा जाता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि सम्यग्दृष्टि जीव शुभ

कर्मको करनेवाला तथा शुभ भावोंका आराधक होता है। क्योंकि जब जीव सम्यक्त्व सहित होता है तब तीव्र कषायोंका समूल उन्मूलन हो जाता है और इसलिए वह पुण्यात्मा कहलाता है। अतएव पुण्य शुभ भाव है। शुभ भाव परम्परित मोक्षका कारण है। शुभ भावके बिना जीव शुद्ध दशामें नहीं पहुँच सकता। पुण्य एक ऐसी स्थिति है जिसमें पहुँचकर मनुष्य पापकी प्रवृत्तिकी ओर उन्मुख हो सकता है और धर्मकी वृत्तिमें भी लग सकता है। इस कारणसे पुण्यको समझना अत्यन्त आवश्यक है। पुण्यको ठीकसे नहीं समझनेके कारण आज निश्चय और व्यवहार पन्थ बन गये हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि किसी सीमा तक पुण्य उपादेय है, पश्चात् हेय है। योगीन्दुदेवका कथन है—

पावें णारउ तिरिउ जिउ पुण्णें अमर वियाणु।
मिस्सें माणुसगइ लहइ दोवि खयें णिव्वाणु॥

अर्थात् पापसे जीव नरक और तिर्यंच गतिमें जाता है, पुण्यसे देव होता है और पुण्य-पापके मेलसे मनुष्य होता है। जब पुण्य-पाप दोनोंका क्षय कर देता है तब मोक्ष प्राप्त करता है।

पुण्य किसे कहते हैं ?

'पुण्य' शब्दकी व्युत्पत्ति है—'पुनातीति पुण्यम्'। जिससे आत्मामें उपशम भाव प्रकट होता है और जो आत्माकी शुद्धिका कारण है उसे पुण्य कहते हैं। आचार्य कुन्दकुन्द जीवके शुभ परिणामको 'पुण्य' कहते हैं। पुण्य और पाप दोनों ही जीवके साथ बने रहनेवाले नित्य परिणामी नहीं है। किन्तु संसारकी अच्छी या बुरी स्थिति इन दोनों परिणामोंके बिना नहीं बन सकती। आचार्य कुन्दकुन्दके इस कथनकी ओर तो सभीका ध्यान रहता ही है कि जिस जीवका राग प्रशस्त (शुभ) है, जिसके परिणामोंमें अनुकम्पा या दया है और जिसका मन-मलिन नहीं है उसके पुण्यका आस्रव होता है। उनके ही शब्दों में—

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपा सहिदीय परिणामो।
चित्ते णत्थि कलुस्स पुण्णं जीवस्स आसवदि॥ पंचास्तिकाय, १३५

किन्तु यह कथन किसके लिए है इसपर प्राय. ध्यान नहीं देते। आचार्य कुन्दकुन्द स्वयं कहते हैं—

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा॥ मोक्षपाहुड, २८

पं० जयचन्दजी छावडा अर्थ करते हुए कहते है—योगी व ध्यानी मुनि है सो मिथ्यात्व अज्ञान पाप-पुण्य इनिकू मन, वचन, काय करि छोड़ि मौनव्रत करि ध्यान विषैं तिष्ट्या आत्मा कूं ध्यावै है।

यही बात 'पचास्तिकाय' में भी स्पष्ट की गई है—

जस्स ण विज्जदि रागो दोसो मोहो व सव्वदव्वेसु।
णासवदि सुहं असुहं समसुह-दुक्खस्स भिक्खुस्स॥ पंचा० १४२

अर्थात् जिस श्रमण (साधु) के सभी द्रव्योंमें राग-द्वेष, मोह आदि विद्यमान नहीं होते उसके शुभ-अशुभ भावोका आस्रव भी नहीं होता।

संक्षेपमें अध्यात्म ग्रन्थोंमें 'पुण्य-पाप' का वर्णन 'आस्रवाधिकार' में किया गया है और पुण्य-पापका निषेध 'संवराधिकार' में किया गया है। इसी प्रकारसे श्रमण साधुओंके लिए पुण्य-पाप समान रूपसे हेय बताया गया है। वास्तविकता भी यही है कि जो ध्यान, तप आदिमें शुद्धात्मानुभूतिमें लीन रहता है वह शुभ-अशुभ भावोंके चक्करमें नहीं पडता। वह शुद्ध आत्मानुभवमें रत रहनेकी ओर उन्मुख रहता है। किन्तु साधारण जनोंकी स्थिति उससे भिन्न होती है। अतः क्या पुण्य उनके लिए सर्वथा हेय हो सकता है, यह एक जटिल प्रश्न है ?

क्या पुण्य सर्वथा हेय है ?

जो लोग यह कहते हैं कि पुण्य विष्टाके समान त्याज्य है वह वास्तवमें अतिशयोक्ति है। पाप और पुण्य बन्धकी दृष्टिसे लोहे और सोनेकी बेड़ियाँ हो सकती हैं, पर वे दोनों एक नहीं हैं। पाप-पुण्य तुच्छ नहीं हैं। क्योंकि सारे संसारकी प्रवृत्ति अशुभ और शुभपर आधारित है। उसे व्यर्थ समझकर हम अपने जीवनको सुधारनेमें असमर्थ रहते है। पुण्यके प्रति हमारी वृत्ति उपेक्षित हो जाती है। न हम शुद्धोपयोगमें ही लग पाते हैं और न शुभोपयोगकी वृत्ति जाग्रत हो पाती है। ऐसी स्थितिमें केवल वाणी और चर्चामें हम शुद्ध उपयोगकी बात करते हैं और व्यवहारमें हमारा अधिकतर समय अशुभ कार्योंमें व्यतीत होता है। आजके आत्मवादी लोगोंका जीवन इसी प्रकारका दिखलाई पड़ता है। वे पुण्य-पापको सर्वथा हेय एवं विष्टाके समान मानते है, पर पूर्वजन्मके पुण्योदयसे जो वैभव उन्हें प्राप्त होता है उसका वे बराबर भोग करते हैं। इसका अर्थ तो यही है कि राजसी ठाठ-बाट उन्हे पसन्द है तभी तो उसका उपभोग करते हैं। जो पुण्यका उपभोग करता है वह उससे विरत कैसे है ? यही जीवनकी विडम्बना है कि कथनीमें कुछ है और करनीमें कुछ है। स्वानुभूतिके गीत गानसे स्वानुभूति नहीं मिल सकती। स्वानुभूति तो चारित्र गुणकी पर्याय है। वह आत्माकी निराकुल, कषायविहीन एवं चारित्रगुणकी शुद्ध अवस्थामें प्रकट होती है। स्वानुभूति मतिज्ञानकी पर्याय नही है। आचार्य गुणभद्र पुण्यका वर्णन करते हुए कहते है—

> पुण्यं त्वया जिन विनेयविधेयमिष्टं गत्यादिभि: परमनिर्वृत्तिसाधनत्वात्।
> नैवामराखिलसुखं प्रति तच्च यस्माद् बन्धप्रदं विषयनिष्ठमभीष्टघाति ॥ ७६, ५५३

अर्थात् हे जिनेन्द्र ! आपने जिस पुण्यका उपदेश दिया है वही ज्ञान आदिके द्वारा परम निर्वाणका साधन होनेसे इष्ट है तथा भव्य जीवोंके द्वारा साधने योग्य है। देवताओंके सभी सुख देनेवाला जो पुण्य है वह पुण्य नही है, क्योंकि उससे कर्मबन्ध होता है और जीव विषय-वासनाओंमें उलझ जाता है तथा परमपुरुषार्थ मोक्षसे छूट जाता है।

जो पुण्यको मिथ्यात्व कहकर उसका अनादर करते हैं वे वास्तवमें भूलपर हैं। क्योकि पुण्य मिथ्यात्व नहीं है। पुण्यके उदयसे जो दैवादिकके वैभव प्राप्त होते हैं उन वैभवोंकी आकांक्षा रखना और केवल इसीलिए पुण्यको मोक्षका कारण मानना मिथ्यात्व है। परन्तु 'पुण्य भाव मोक्षका कारण है' ऐसा कथन करना व्यवहार है। क्योंकि पुण्य-पापका भेद अघातिया कर्मकी दृष्टिसे है, घातिया कर्मकी अपेक्षा तो दोनों समान हैं। कषाय चाहे तीव्र हो अथवा मन्द हो वह कषाय ही है। 'समयसार' में भी अशुभकर्मको कुशील और शुभकर्मको शील कहा गया है। आचार्य कुन्दकुन्दके शब्दोंमें—

> कम्ममसुहं कुसीलं सुहकम्मं चावि जाणह सुसीलं।
> किह तं होदि सुसीलं जं संसारं पवेसेदि ॥ समयसार, १४५

अर्थात् जो अशुभकर्म है वह तो निन्दनीय है, बुरा है इसलिए नही करने योग्य है। परन्तु शुभकर्म पुण्यरूप है, सुहावना है, सुखदायक है इसलिए उपादेय है, यह कथन व्यवहारसे है। परमार्थसे पुण्य और पाप दोनों संसारको बनाए रखनेवाले हैं। अतएव कुशील और सुशीलको एक ही वर्गका कहा गया है। परन्तु व्यवहारमें ऐसा नहीं है। आचार्यश्री ज्ञानसागरजी इसका विशेष अर्थ स्पष्ट करते हुए कहते हैं—'आचार्यदेवने यह ग्रन्थ ऋषि, मुनि, योगी लोग जो कि एकान्तसे निराकुलताके ग्राहक होते हैं उन्हींको लक्ष्यमें लेकर लिखा है। इसलिए लिखते हैं कि हे साधो ! तुम लोगोंके लिए निराकुलताके लिए तो केवल आत्मनिर्भर होना पड़ेगा। इससे यदि कोई गृहस्थ भी अपने लिए ऐसा ही समझ ले तो या तो उसे गृहस्थाश्रम छोड़ देना होगा नहीं

तो वह मनमानी करके कुगतिका पात्र बनेगा। अतः उसे तो चोरी-जारी आदि कुकर्मसे दूर रहकर परिश्रम-शीलता, परोपकार, दान, पूजा, आदि सत्कर्म करते हुए अपने गृहस्थ जीवनको निभाना चाहिए।'

पं० बनारसीदासजी नाटक समयसारमें कहते हैं—

> मोहको विलास यह जगतको वास मैं तो, जगत सौं शून्य पाप पुण्य अन्ध कूप है।
> पाप किने किये कोन करे करि है सो कौन, कियाको विचार सुपनेकी दौर धूप है ॥९१॥

एक ओर पं० बनारसीदासजी जहाँ पाप-पुण्यको अन्धकूप बतलाते है वहीं "बनारसीविलास" में पुण्यका महत्त्व बतलाते हुए कहते हैं—

> पूरव करम दहै; सरवज्ञ पद लहै; गहै पुण्यपंथ फिर पाप मैं न आवना।
> करुनाकी कला जागै कठिन कषाय भागै, लागै दानशील तप सफल सुहावना ॥
> पावै भवसिंधु तट खोलै मोक्षद्वार पट, शर्म साध धर्मकी धरा मैं करै धावना।
> एतै सब काज करै अलखको अंग धरै, चेरी चिदानन्दकी अकेली एक भावना ॥८६॥

इस प्रकार से पुण्य परम्परित मोक्षका कारण है। सच्चे पुण्यको प्राप्त कर लेनेके पश्चात् पापमें लौट कर नहीं आना पडता। इसलिए पं० आशाधरजीने "सागारधर्मामृत" में कहा है—

> भावो हि पुण्याय मतः शुभः पापाय चाशुभः।
> तं दुष्यन्तमतो रक्षेद्धीरः समयभक्तितः ॥ सागारधर्मामृत, ६५

पुण्यकी यथार्थता

जैनधर्मका महत्त्व निर्दिष्ट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्दने प्रतिपादन किया है कि सभी धर्म रूपी रत्नोंमें जिनधर्म श्रेष्ठ है। उत्तम जैनधर्ममें धर्मका स्वरूप इस प्रकार है—

> पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
> मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो ॥ भावपाहुड, ८३

अर्थात् जिनेन्द्रदेवने जिनशासनमें पूजादिकको तथा व्रतोंको पुण्य कहा है और मोह, क्षोभसे रहित आत्माका परिणाम धर्म बताया है। पण्डित जयचन्द्रजी छावड़ा इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं—'जिनमतमें जिन भगवान् ऐसें कह्या है जो पूजादिक विषै और व्रतसहित होय सो तो पुण्य है, तहाँ पूजा आदि शब्द करि भक्ति-वन्दना, वैयावृत्य आदिक लेना। यह तो देव, गुरु, शास्त्र कै अर्थि होय है बहुरि उपवास आदिक व्रत हैं सो शुभक्रिया हैं। इनि मैं आत्माका रागसहित शुभ परिणाम हैं ताकरि पुण्यकर्म निपजै है तातै इनि कू पुण्य कहै है, याका फल स्वर्गादिक भोगकी प्राप्ति है। बहुरि मोहका क्षोभ रहित आत्माका परिणाम लेणें, तहाँ मिथ्यात्व तौ अतत्त्वार्थश्रद्धान है, बहुरि क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, ये छह तो द्वेषप्रकृति है, बहुरि माया, लोभ, हास्य, रति, पुरुष, स्त्री, नपुसक ये तीन विकार ऐसे सात प्रकृति रागरूप है। इनि के निमित्तमें आत्माका ज्ञान, दर्शन स्वभाव विकारसहित क्षोभरूप चलाचल व्याकुल होय है, यातै इनिका विकारनि तैं रहित होय तब शुद्ध दर्शन ज्ञानरूप निश्चय होय सो आत्माका धर्म है; इस धर्म तै आत्माके आगामी कर्मका तौ आस्रव रुकि संवर होय है पूर्व बँधे कर्म तिनिकी निर्जरा होय है, सम्पूर्ण निर्जरा होय तब मोक्ष होय है; तथा एकदेश मोहके क्षोभकी हानि होय है तातै शुभ परिणाम कूं भी उपचार करि धर्म कहिये है, और जे केवल शुभ परिणाम ही कूं धर्म मानि सन्तुष्ट है तिनि कै धर्मकी प्राप्ति नांही है, यह जिनमतका उपदेश है।"

व्यवहारचारित्र : पुण्य

'अशुभ भावोंसे हटकर शुभ भावोंमें लगना' यह धर्मकी प्रथम व्यावहारिक उत्थानिका है। आचार्य

कुन्दकुन्द, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आदि आचार्योंने 'असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं' कहकर पुण्यको चारित्ररूप निरूपित किया है। 'चारित्तं खलु धम्मो' चारित्र ही निश्चयसे धर्म है। व्यवहारमें भी चारित्र धर्म है और निश्चयमें भी चारित्र धर्म है। अतः चारित्र धर्म है, इसमें किसीको विवाद नहीं है। लोकमें भी चारित्रसे व्यक्ति परखा जाता है। "सोना जानिए कसनेसे, आदमी जानिए बसनेसे।"

कैसा पुण्य उपादेय है ?

बिना श्रद्धान और ज्ञानके आचरण शुद्ध नहीं होता है। अतएव ज्ञानीके पुण्यमूलक कर्मोंमें तथा क्रियाओंमें और अज्ञानीके कार्योंमें महान् अन्तर देखा जाता है। पुण्यकी क्रियाओंको करते हुए भी पुण्यसे तृष्णा नहीं होनी चाहिए। जिस प्रकारसे एक मनुष्य बीमार हो जानेपर रोग तथा अशक्तिको दूर करनेके लिए औषधका सेवन करता है और दूसरा काम-भोग-शक्ति बढानेके लिए औषध-सेवन करता है, इन दोनोंमें अत्यन्त दृष्टि-भेद है। उसी प्रकारसे अज्ञान और ज्ञानीके पुण्यमें बडा अन्तर है। स्वामी कार्तिकेय कहते है—

जो अहिलसेदि पुण्णं सकसाओ विसय-सोक्ख-तण्हाए।
दूरे तस्स विसोही विसोहि-मूलाणि पुण्णाणि ॥ कार्ति० ४११

अर्थात् जो कषायवान होकर विषय-सुखकी तृष्णासे पुण्यकी अभिलाषा करता है, उससे विशुद्धि दूर है और पुण्यकर्मका मूल विशुद्धि है।

साधुजनोंको सम्बोधित करते हुए आगे कहा गया है—

पुण्णासाए ण पुण्णं जदो णिरीहस्स पुण्ण-संपत्ती।
इय जाणिऊण जइणो पुण्णे वि म आयरं कुणह ॥ कार्ति० ४१२

अर्थात् पुण्यके आशयसे जो पुण्य किया जाता है उससे पुण्यका बन्ध नहीं होता, किन्तु इच्छारहित व्यक्तिको ही पुण्यकी प्राप्ति होती है। यह जानकर योगियोंको पुण्यमें भी आदर भाव नहीं रखना चाहिए। जो भोगोंकी तृष्णासे पुण्य करता है उसे सातिशय पुण्यका बन्ध नहीं होता। निरतिशय पुण्यका बन्ध होनेसे वह सानुराग होकर भोगोंका सेवन करता हुआ पुनः नरक आदि दुर्गतिमें चला जाता है। इसलिए उसका निषेध किया गया है। परन्तु सातिशय पुण्य उपादेय है। जो मोक्ष-प्राप्तिकी भावनासे शुभकर्मोंको करता है वह मन्द-कषायी होनेसे सातिशय पुण्यका बन्ध तो करता ही है, परम्परासे मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। अतएव विषय-सुखकी चाहसे पुण्य करना हेय कहा गया है, न कि पुण्यका निषेध किया गया है। क्योंकि जीव-दया आदि जितने भी अहिंसामूलक भाव तथा कर्म हैं सभीमें शुभ भावोंको महत्त्व दिया गया है। आचरणकी विशुद्धिके लिए श्रद्धान और ज्ञानकी विशुद्धता सापेक्ष है। अतएव एकान्तसे पुण्यका सर्वथा निषेध करना जिनागमके अनुकूल नहीं है।

●

महाकवि स्वयम्भू और तुलसीदास

डॉ० प्रेमसुमन जैन

सभी भारतीय साहित्य एवं दिग्गज साहित्यकारोंसे रामकथा अन्तरंग रूपसे सम्बन्धित है। देशमें जब कोई नया विचार, सम्प्रदाय या बोली आई, तो उसने रामकथाके पटपर ही अपनेको अङ्कित किया। रामकथा पुरानी बनी रही, पर माध्यमसे कितनी ही नवीनताएं साहित्यके वातायनसे जन-जीवन तक पहुँचती रही।[1] रामकथा जैन-साहित्यमें भी पल्लवित हुई है। ईसाकी दूसरी-तीसरी शताब्दीसे लेकर १९वी शताब्दी तक प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओंमें उसका सृजन होता रहा है। इनमें विमलसूरिकृत 'पउमचरिय' (प्राकृत), रविषेणकृत 'पद्मचरित' (संस्कृत) और स्वयम्भूकृत 'पउमचरिउ' (अपभ्रंश) रामकथा की प्रमुख रचनाएं हैं। ये अपने पूर्व और परवर्ती रामकथा-साहित्यसे तुलनात्मक अध्ययनकी अपेक्षा रखती है।[2]

महाकवि स्वयम्भू और तुलसीदास रामकथाके समर्थ भाषाकवि हुए हैं। यद्यपि इन दोनों कवियोंकी विषयवस्तु, युगचेतना, दार्शनिक-मान्यता आदिमें बहुत अन्तर है, फिर भी कई बातोंमें वे समान भी हैं। इस विषयका परिवेक्षण लोकभाषाओंके पारस्परिक सम्बन्धोंपर विशेष प्रकाश डाल सकता है।

वैयक्तिक जीवन एवं व्यक्तित्व

महाकवि स्वयम्भू और तुलसीदासके वैयक्तिक जीवनमें भिन्नता है, किन्तु व्यक्तित्वमें समानता है। स्वयम्भू कर्णाटक, दक्षिण भारतके थे।[3] तुलसीदासका जन्म राजापुर (बादा), उत्तरभारतमें हुआ था।[4] वे अवधके निवासी थे।[5] दोनो महाकवियोंमें करीब आठ सौ वर्षोंका अन्तर है। स्वयम्भूका समय ईसाकी आठवी सदीका प्रथम चरण माना गया है,[6] तुलसीदास सोलहवी सदी (सं० १५८९)में जन्मे थे।[7] दोनों कवियोके पारिवारिक जीवनमें कोई समानता नही है। स्वयम्भू परम्परागत कवि थे और उनके बाद भी

---

१. पउमचरिउ, डा० देवेन्द्रकुमार, दो शब्द।

२. द्रष्टव्य–डा० के० आर० चन्द्रा, 'पउमचरियं : ए स्टडी'
   डा० आर० सी० जैन–'रविषेणकृत पद्मचरितका सास्कृतिक अध्ययन'
   डा० एस० पी० उपाध्याय–'महाकवि स्वयम्भू'

३ पउमचरिउ की भूमिका–डा० भायाणी द्वारा सम्पादित।

४ तुलसीदास–डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १९९।

५ तुलसीदास और उनके ग्रंथ, पृ० ४६।

६. पउमचरिउ की भूमिका–डा० देवेन्द्रकुमार।

७. तुलसीदास–डा० गुप्त, पृ० १४०

घरानेमें साहित्य-सृजन होता रहा। तुलसीदासकी परम्परा उन्हीं तक सीमित है। वे एक पूर्ण गृहस्थ तथा एक घुमक्कड़ साधु थे। स्वयम्भू सम्पन्न थे। तुलसीदास हमेशा अपनी निर्धनता दरसाते रहे। यथा—

बारे तें ललात बिललात द्वार-द्वार दीन।
जानत हो चारि फल चारि ही चनन कों॥[1]

स्वयम्भूकी मृत्यु और जीवनपर कोई सूचना प्राप्त नहीं है, जबकि तुलसीदास स्वयं अपनी जीवनी लिखकर सं० १६८०में काशीमें मृत्युको प्राप्त होते हैं।

व्यक्तित्व दोनों महाकवियोंका समान था। दोनों ही स्वभावसे दयालु और भावुक थे तथा शारीरिक सौन्दर्यकी जगह आत्मसौन्दर्यके प्रशंसक थे। दोनों ही उत्कृष्ट प्रतिभा और गहन अनुभूतियोंके स्वामी थे और एक-से साहित्यकार भी। यद्यपि स्वयम्भूकी रचनायें तीन ही हैं, किन्तु गोस्वामी तुलसीदासकी १५-१६ रचनाओंके समक्ष बैठनेमें वे समर्थ भी हैं। चिन्तनकी मौलिकता और आध्यात्मिकताके पुजारी होनेके नाते दोनोंका व्यक्तित्व और सन्निकट हो जाता है।

काव्य-सृजनका उद्देश्य एवं प्रारम्भ

स्वयम्भूके पउमचरिउके सृजनके मूलमें क्या कारण थे, स्पष्ट नहीं हैं। यद्यपि पउमचरिउकी सन्धियोंकी पुष्पिकाओंसे इतना ही विदित होता है कि किसी धनंजय नामके व्यक्तिकी प्रार्थनापर कविने प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना की थी—'इय रामचरिए धणंजयासिय सयंभुएव कए। पउ (१-१६) लेकिन इतना ही कारण न रहा होगा।

स्वयम्भू अपनी काव्य-रचनाका ध्येय आत्माभिव्यक्ति मानते हैं। रामायण काव्यके द्वारा वह अपने आपको व्यक्त करना चाहते थे—'पुणु अप्पाणउ पायडमि रामायण कावें। (पउ० १-१-१९) उनका लौकिक लक्ष्य था—यशकी प्राप्ति। इसलिए उन्हंने अपने यशको चिरस्थायी रखनेके लिए रामकथाका ही माध्यम चुना। क्योंकि उनके पूर्व कम से कम दो जैन महाकवि विमलसूरि और रविषेण रामसाहित्यका सृजनकर प्रसिद्ध हो चुके थे। सम्भवतः उनकी कृतियोंका आदर भी जन-साधारणमें स्वयम्भूके समय था, जिससे प्रेरित और प्रभावित होकर ग्रंथ-प्रणयनके समय उनको कहना पड़ा है—

णिम्मल-पुण्ण-पवित्त-कह कित्तणु आढप्पइ।
जेण समाणिज्जन्तएण थिर कित्ति विढप्पइ॥ (पउ० १, २, १२)

जैन-साहित्यमें रामकथाका प्रणयन लोक प्रचलित कुछ शंकाओंके समाधानके रूपमें भी हुआ है।[2] हो सकता है, इसके प्रचार-प्रसारकी भावना भी स्वयम्भूके मनमें रही हो।

महाकवि तुलसीदासका लक्ष्य रामचरितमानसके प्रणयनमें इससे भिन्न था। पत्नीकी अवहेलना व प्रेरणासे उनमें रामभक्ति उपजी। स्वाभाविक है, वे जो भी लिखते या लिखा है, रामके विषयमें ही। दूसरी बात, वे अपने आराध्यका चरित बखानकर अपनी वाणीको पवित्र करना चाहते थे। उन्होंने परम्परासे प्राप्त रामकथाका भी अध्ययन किया था—

'जो प्राकृत कवि परम सयाने, भाषा जिन हरि चरित बखाने॥'

इनके अतिरिक्त तुलसीदास अपने युगसे कम प्रभावित नहीं थे। तत्कालीन दार्शनिक व सामाजिक

---

१. कवितावली ३, ७३।
२. जइ रामहो तिहुअणु उवरे माइ। तो रावणु कहिं तिय लेवि जाइ॥ इत्यादि—वही, १, १०

स्थितिको नया मोड़ देनेके लिए एक इतने ऊंचे आदर्श की आवश्यकता थी जो केवल रामचरितके वर्णनसे ही सम्भव थी। अतः तुलसीदासने हिन्दू संस्कृतिको मुगलशासनके प्रभावसे सुरक्षित रखनेके लिए रामचरित-मानसका प्रणयन किया और हर सम्भव प्रयत्न उन्होंने इस ग्रन्थके द्वारा करना चाहा, जिससे वे परिवर्तन की दिशाको एक नया मोड़ दे सकें :

स्वयम्भू और तुलसीदासने अपने प्रस्तुत ग्रन्थोंका प्रारम्भ प्रायः एक-सा किया है। सर्वप्रथम देवताओं और अपने आराध्यकी वन्दनाकर आत्मलघुता दोनोंने प्रगट की है। यथा—

तिहुअण लग्गाण खम्भु गुरु परमेट्ठि णवेप्पिणु।
पुणु आरम्भिय रामकह आरिसु जोणेप्पिणु॥ पउ० १-१

बंदऊं गुरुपद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा।
बंदऊं नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥[1]

तथा—

बुहयण सयम्भु पइं विण्णवई। मइं सरिसउ अण्णु णाहिं कुकई।
हऊं कि पिण जाणमि मुक्खु मुणें। णिय बुद्धि पयासमि तो वि जणें॥ (पउ० १, ३-१, ९)
कवि न होउं नहिं चतुर प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥ इत्यादि।

इसके अतिरिक्त खलनिन्दा, सज्जन प्रशंसा आदि प्राचीन परम्पराका निर्वाह दोनोंने किया है।

स्वयम्भूने रामकथाको अनेक गुणोंसे युक्त माना है।[2] तथा सरिताके रूपमें उसका चित्रण किया है। रामकथा अक्षरविन्यासके जलसमूहसे मनोहर, सुन्दर अलंकार तथा छन्दरूपी मत्स्योंसे परिपूर्ण और लम्बे प्रवाहरूपसे अङ्कित है। यह संस्कृत और प्राकृतरूपी पुलिनोंसे अलंकृत देशीभाषारूपी दो कूलोंसे उज्ज्वल है। इसमें कही कठिन घनशब्दरूपी शिलातल है, कहीं यह अनेक अर्थरूपी तरंगोंसे अस्त-व्यस्त हो गई है और कही सैकडों आश्वासरूपी तीर्थोंसे प्रतिष्ठित है।

एहि रामकह तोरे सोहन्ती। गणहर देवहि दिट्ठ वहन्ती॥ (पउ० १, २)

गोस्वामी तुलसीदास रामकथाको सरिता मानकर तो चलते ही हैं—

चली सुभग कविता सरिता-सी। राम विमलजस जल भरिता-सी॥ (रा० बाल० ३६-३८)

उसकी उपमा सरोवरसे भी देते हैं और अनेक तरहसे इसका गुणगान करते हैं।

दोनों ही कवि रामकथाको प्रारम्भ करते समय अपने पूर्वके आचार्यों व भगवत्कृपाके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं—

वद्धमाण,-मुह-कुहर-विणिग्गय। राम कहा-णइ-एह कमागय॥ (पउ० १.२,१)

तथा—

जस कछु बुधि विवेक बल मेरे। तस कहिहउं हिअ हरि के फेरे॥

---

१. रामचरितमानस, बालकाण्ड।
२. दसरह तव कारणु सम्मुद्धारणु वज्जयण्ण सम्मयभरिउ।
जिणवरगुणकित्तणु तीयसहसणु तं विसुणहु राहव-चरिउ॥—पउ० संधि ४०

अतः काव्यसृजनके उद्देश्य एवं प्रारम्भमें दोनों कवि काफी साम्य रखते हैं। उनमें भिन्नता जो भी है; नहीके बराबर है। फिर भी खल-निन्दा और सज्जन-प्रशंसाके बहाने तुलसीदासने जो अपने युगका और अपनी आन्तरिक भावनाओंका चित्रण किया है, वह स्वयम्भू में नहीं है।

वस्तु-विन्यास

गोस्वामी तुलसीदासने रामकथाका जो स्वरूप प्रस्तुत किया है उसका घटनाक्रम इतना प्रसिद्ध हो चुका है कि यदि हम अन्य रामकथाओको पढते हैं तो उनके परिवर्तनोंपर हमें विश्वास ही नही होता। लेकिन यह तो मानना ही पडेगा, रामकथा जब भी जिस किसी भाषा लिखी गई, कई रूपोंमें परिवर्तित हुई है। स्वयं तुलसीदासको रामकथामें वे घटनाएँ व प्रसंग नही हैं जिनसे रामके आदर्शमें कुछ कमी आती थी और जिन्हे बाल्मीकि आदिने निर्मित किया था। यह सब प्रत्येक कविके उद्देश्य-भेदके कारण हुआ है।

स्वयम्भूके पउमचरिउकी रामकथामें परिवर्तन स्वाभाविक है। यहाँ न केवल कविकी दृष्टिमें ही भेद है, अपितु रामकथाको जैन विचारधाराके अनुकूल ढाला भी गया है। मानसकी रामकथाके साथ—रामजन्म, धनुषभंग, सीता-विवाह, वन-गमन, भरत-मिलाप, सीता-हरण, शूर्पणखा का अपमान, खरदूषण-वध, रावणवध आदि प्रसंगोंके वर्णनोंमें पउमचरिउका कोई विशेष विरोध नहीं है, केवल कही नामोंमें भिन्नता व वर्णनशैलीकी विविधता है। लेकिन पउमचरिउमें स्वयम्भूकी अपनी कुछ मौलिक स्थापनाएं भी है। जैसे—(१) राम-लक्ष्मण और रावणको न केवल जैनधर्मावलम्बी मानना अपितु त्रिषष्टि शलाका महापुरुषोंकी कोटिमें रखकर बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव मानना। (२) राक्षस और वानर-वंशोंको विद्याधरवशकी भिन्न-भिन्न शाखाएं मानना। (३) दशरथकी तीन रानियोंके साथ चौथी रानी सुप्रभाको शत्रुघ्नकी माता मानना। (४) राम और लक्ष्मणको अनेक पत्नियोंका उल्लेख। (४) राम-लक्ष्मण और सीताकी कामदशाका वर्णन। (६) वनवासमें जलक्रीडा आदिके उल्लेख। (७) लक्ष्मण द्वारा रावणका वध तथा राम, सीता, लक्ष्मण आदि प्रमुख पात्रों द्वारा जिनदीक्षाका ग्रहण, इत्यादि।

तुलसीदास और स्वयम्भूकी कथावस्तुमें इस तरह साम्य, वैषम्य होते हुए भी कथाकी स्वाभाविकता किसीमें समाप्त नही हुई है। दोनों जगह जो परिवर्तन व भिन्नता है उसके अपने कुछ अनिवार्य कारण भी हैं। यद्यपि स्वयम्भू प्रौढ प्रतिभाके धनी थे किन्तु वस्तु-विन्यासमें वह सुघडता वे नही ला सके जो महाकवि तुलसीदासके रामचरितमानसमें है। गोस्वामीजीका प्रबध सौष्ठव कमालका है।[1]

काव्य-सौष्ठव

महाकाव्यगत समस्त विशेषताओंका समावेश स्वयम्भू और तुलसीदासके प्रस्तुत ग्रन्थोंमें है। संध्या-वर्णन, वसन्त, नदी, समुद्र, वन, युद्ध आदि काव्योपयुक्त प्रसंगोंके वर्णनोंमें दोनों कवि सिद्धहस्त हैं। प्रकृति-चित्रणमें स्यम्भूने प्रकृतिके शान्तरूपकी अपेक्षा उसके उग्ररूपके वर्णनमें जहाँ अधिक रुचि दिखाई है[2] वहाँ तुलसीदासने प्रकृतिचित्रणके बहाने समाजका चित्र उपस्थित किया है। 'परम रम्य आराम यह जो रामहि सुख देत'के व्याजसे रामप्रेमसे ओतप्रोत सन्त समाजकी सृष्टि की है।[3] और 'चातक कोकिल कीर चकोरा' पक्षियोंके वर्णनमें भक्तोंके गुण गाये है। दोनों कवि जन-साधारणमें प्रचलित उपमानोंका उपयोग करते हैं यही उनकी प्रमुख विशेषता है।

---

१. तुलसी-दर्शन, डॉ० बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ० ३४७।

१. अपभ्रंश-साहित्य, कोछड़, पृ० ६३।

२. तुलसी-दर्शन, पृ० ३४७।

चरित्रचित्रणमें स्वयम्भूके पात्र उतने सशक्त और सजीव नहीं हैं, जितने तुलसीदास के। स्वयम्भू ने हर पात्रको जिन-भक्तिके रंगमें रंगनेकी कोशिश की है और उसमें संसारकी असारता आदिका कथन कराया है, जबकि तुलसीदासका प्रत्येक पात्र सधी हुई तूलिकासे निर्मित और स्वाभाविक है। स्वयम्भूके राम धीरोदात्त भक्ति, क्षमा, दृढ़ता और आत्मगौरवसे युक्त साधारण मानवकी तरह पूर्ण विकासकी ओर बढ़ते हैं, जबकि तुलसीके राम परमात्मासे मनुष्यका अवतार ग्रहण करते हुए सरलता, स्नेह, नम्रता, उदारता एवं निःस्वार्थताके आदर्शको उपस्थित करते हैं।

भाव-चित्रणमें दोनों कवि बेजोड़ हैं। नव-रसोंका समावेश दोनों ग्रन्थोंमें है। किन्तु शान्तरसकी प्रधानता है। स्वयम्भूने यद्यपि निवृत्ति मार्गका प्रतिपादन किया है, किन्तु जलक्रीडाके वर्णनमें स्वयम्भूकी प्रसिद्धि है।[१] उन्होंने शृङ्गाररसका चित्रण भी बड़ी उदारतासे किया है। यहाँ तक कि ससारत्यागी साधु भी हृदयग्राही शृङ्गारिक वर्णन करते नजर आते हैं। जबकि गोस्वामीजीका शृङ्गार रस मर्यादापूर्ण और विशुद्ध है। करुण रसके चित्रणमें स्वयम्भूने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। राम-वनगमनके समय व्याकुल सुमित्राका चित्रण कविने किया है—

रोवंतिए लक्खण-मायरिए, सयल लोउ रोवावियउ।
कारुण्णइ कव्व कहाए जिह, कोवल अंसु मुआवियउ॥ (पउ० ६९-१३)

इसी तरह तुलसीदासकी कौशल्याका विषाद हृदय-विदारक है—

कहि न जाई कुछु हृदय विषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
दारुन दुसह दाहु उर व्यापा। बरनि न जाहिं विलाप कलापा॥
(रा० अयो० ५४-५७)

तुलसीदास रस सिद्ध कवीश्वर थे। उनका मानस दिव्य-रससे परिपूर्ण है। उन्होंने प्रत्येक भावकी अभिव्यजना इतने स्वाभाविक और सरल ढंगसे की है कि कई स्थलों पर नौ रसोंका माधुर्य समेटकर रख दिया है। तीव्रता और वेगके भावों और मनोवेगोंका चित्रण करनेमें वे सिद्धहस्त थे। इसलिए जन-मानसके अन्तस्थल तक पैठ गये हैं।

कल्पना-विलासमें दोनों कवियोंने विभिन्न अलंकार व छन्दोंका प्रयोग किया है। स्वयम्भूके महाकाव्यमें उपमा, उत्प्रेक्षा, यमक, अनन्वय, तद्‌गुण आदि अनेक अलंकारोंका स्वाभाविकतासे प्रयोग हुआ है। अलंकारोंमें कहो-कही हल्की-सो उपदेश-भावना भी दृष्टिगत होती है। यथा—

लक्खण कहिं वि गवेसिह तं जलु। सज्जणहियउ जेम जं निम्मलु॥[२]

तुलसीदासका अलंकार विधान भी परम मनोरम है। उत्प्रेक्षा, रूपक और उदाहरण उनके सबसे प्रिय अलंकार है। इनके समन्वयको असाधारण क्षमता भी उनमें है।[3]

दोनों कवियोंने अपने-अपने युगकी प्रतिनिधि भाषामें लिखा है। स्वयम्भूने साहित्यिक अपभ्रंश भाषाका प्रयोग किया है। अनुकरणात्मक शब्दोंका प्रयोग—'तड़ि-तड-तड़ड पड्ड घडु गज्जई,' 'भावानुकूल शब्द-योजना एवं शब्दोंमें समाहार शक्तिके दर्शन स्वयम्भूकी भाषाकी मुख्य विशेषता है।[४] तुलसीदासकी भाषा क्रमशः

१. अपभ्रंश-साहित्य, पृ० ५७ तथा द्रष्टव्य, डॉ० उपाध्याय, 'महाकवि स्वयम्भू'।
२. अपभ्रंश साहित्य, पृ० ६७।
३. तुलसीदास, पृ० ३५२।
४. अपभ्रंश-साहित्य, पृ० ६५।

प्रौढ़ हुई है। मानसमें भाषाका अत्यन्त सुथरा हुआ रूप प्राप्त होता है। तुलसीदासने अवधी भाषाको अपने भाव व्यक्त करनेका माध्यम बनाया है। किन्तु वे संस्कृत, प्राकृत एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओंके भी जानकार थे। शब्द-भंडार इनका अत्यन्त विशाल है। अभिधा, लक्षणा, व्यंजना शक्तियोंका चामत्कारिक प्रयोग उन्होंने किया है। इस प्रकार तुलसीदासजीकी शैलीमें ऋजुता, सुबोधिता, चारुता, अल्पालंकारप्रियता और उपयुक्त प्रवाह आदि गुणोंका समावेश हो गया है। भाषा शैली विषयक विशेषताएं उनकी अपूर्व प्रतिभाकी ही परिचायक है।[1]

स्वयम्भूने यद्यपि अपभ्रंशके प्राय सभी छन्दोंका प्रयोग किया है[2] किन्तु उनके ग्रन्थमें कडवकका प्रयोग बहुलतासे हुआ है, जिसमें ८ अर्धालियोंके बाद घत्ता छन्दका व्यवहार किया गया है। यही शैली रामचरितमानसमें भी पाई जाती है। तुलसीदासने ८ अर्धालियों अर्थात् चौपाईके बाद दोहेका प्रयोग किया है।[3] छन्दप्रयोगमें तो वे निश्चित स्वयम्भू एवं अपभ्रंश-शैलीसे प्रभावित थे।

दोनों ही महाकवि नैतिक-आदर्शोंके प्रतिष्ठापक हैं। अत स्वभावत. उनके ग्रंथोंके वर्णनोंमें से कुछ पंक्तियोंने रसभरी उक्तियोंका स्थान लिया है और जन-साधारणमें सरलतासे प्रयोग की जाती हैं। तुलसीकी उक्तियाँ तो प्रसिद्ध हैं, किन्तु स्वयम्भूके पास भी उनका कम भंडार नही है। जैसे 'तिय दुक्खहुँ खाणि विओय-णिहि', 'सच्चउ जीविउ जलबिन्दु-सउ', गय दियहा कि एन्ति पडीवा, इत्यादि।[4]

आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण :

महाकवि स्वयम्भू और तुलसीदास दोनोके ग्रन्थ-प्रणयनके मूलमें आध्यात्मिक एव दार्शनिक भावना ही अधिक प्रबल है। दोनों महाकवियोंके समय धार्मिकताके क्षेत्रमें परिवर्तन जोरोंसे हो रहा था। अत प्राय दोनो ने विभिन्न दार्शनिक मतभेदोंके समन्वय एव आध्यात्मिक विचारोंके प्रसारके लिए प्रयत्न किये है। दोनोंकी दृष्टि अपनी-अपनी विशेष दार्शनिक परिधिमें उदार है। किन्तु दार्शनिक सिद्धान्तोंमें पर्याप्त अन्तर भी है।

स्वयम्भूका मुख्य उद्देश्य प्राचीन रामकथाकी कुछ भ्रान्तिमूलक घटनाओंको बदलकर उसे जैनधर्ममें ढालना था। यद्यपि इसमें वे पूर्ण सफल नहीं हुए, किन्तु इस बहाने उन्होने जैनधर्मके प्रमुख सिद्धान्तोंका प्रचार खूब किया है। शायद ही कोई जैनतत्त्वमीमांसाका क्षेत्र उनकी दृष्टिसे बचा हो। मनुष्य जीवनकी सार्थकता, सासारिक जीवनमें धार्मिक अनुष्ठानोंका विधान, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक आदिकी तात्त्विक व्याख्या कर स्वयम्भूने अपना आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। दार्शनिक विचारोंके अन्तर्गत उन्होंने क्षणिकवाद, सर्वास्तिवाद आदि अन्य मतोंका खण्डन कर स्याद्वाद और समत्वयोगकी प्रतिष्ठापना की है। यद्यपि ये सब परं-परागत जैन सिद्धान्त है तथापि अभिव्यक्तिकी नवीनतामें स्वयम्भूकी अपनी मौलिकता है। जिनवर-भक्ति द्वारा सवसामान्यको प्रवृत्तिसे निवृत्तिकी ओर प्रेरित करना उनका प्रमुख उद्देश्य था, जिसमें वे काफी हद तक सफल हैं। इनके द्वारा नैतिक उपदेशोंका प्रतिपादन सम्प्रदायके घेरेसे बाहर है।

महाकवि तुलसीदासकी आध्यामिकता एवं दार्शनिकता, जो रामचरितमानसमें चित्रित हुई है, भक्तिवादसे प्रभावित है। तुलसीदासने धर्मभावनामें बाह्याडम्बर, भूत-प्रेत-पूजा तथा रहस्यवादका खण्डनकर नैतिकधर्मकी

---

१. तुलसीदास, पृ० ३६५।

२. पउमचरिउ, डॉ० भायाणी, पृ० ७८।

३. भारतीय जैन साहित्य संसद परिवेशन १, पृ० ७७—डॉ० राजाराम जैनका निबन्ध।

४. द्रष्टव्य-डॉ० उपाध्याय—'महाकवि स्वयम्भू'

स्थापनामें अहिंसावादको सर्वोच्च स्थान दिया है और हिंसाका परम्परागत रूपसे विरोध किया है—'परपीड़ा सम नहीं अधमाई' आदि।

गोस्वामीजीकी दार्शनिक पद्धति स्वतंत्र है।[1] उनका ज्ञान प्रत्यक्ष है, तर्क और वादपर अवलम्बित नही।[2] उनके द्वारा माया, ब्रह्म, जीव, जगत् आदिके निरूपणमें उपासक और उपास्यकी पृथक् सत्ता पूर्णतया प्रतिष्ठित है।[3] शरीर और आत्माको भिन्न मानते हुए उन्होंने कर्मसिद्धान्तका अनुकरण किया है। किन्तु वे इस जगत्को मिथ्या, क्लेशयुक्त आदि नही मानते। उन्हें समस्त जगत् ही परमात्मामय दिखाई पड़ता है। इसलिए रामभक्तिको उन्होंने सर्वोपरि माननेका आग्रह किया है। किन्तु इस सबके बावजूद भी वे कट्टर व संकोर्ण सम्प्रदायवादी नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे मूलतः उदार चिन्तक थे। उनका कहना है—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबलकर मानै।
तुलसीदास जो तजै तीनि भ्रम सो आपुन पहिचानै॥

योगदान

इसमें कोई शक नही, स्वयम्भू और तुलसीदास दोनोंने ही अपने-अपने युगका प्रतिनिधित्व किया है। भारतीय संस्कृति और आजके सम-सामयिक परिवेशमें उनका कितना योगदान है, इसका मूल्याकन करना सहज नही है।

स्वयम्भूके पउमचरिउने पूर्व प्रसिद्ध रामकथाको एक नयो भाषामें जीवित रखा है और उसे नये परिवेशमें देखनेकी कोशिश की। रामकथा और अपभ्रंश भाषा दोनों एक दूसरेके परस्पर उपकृत है। रामकथाको माध्यम बनाकर जैनधर्मके सिद्धान्तोका प्रचार-प्रसार सर्वसामान्यमें करनेके लिए स्वयम्भूने प्रयत्न किया और जनभाषाका आधार होनेके कारण उस समय उसे प्रसिद्धि भी मिली, यह असंदिग्ध है। किन्तु पउमचरिउ के कथानकको समुचित आदर नही मिला फिर भी कविने अपनी असाधारण काव्य-प्रतिभा, सरसता और अनुभव-गम्भीरताके कारण अपने जीवनकालमें पर्याप्त सम्मान एवं यश विद्वत्समाज द्वारा अर्जित कर लिया था, जो कविका प्रतिपाद्य भी था।

पउमचरिउ वर्तमानमें पठन-पाठन एवं मनन-चिन्तनसे भले उपेक्षित हो किन्तु हिन्दी साहित्यके विकासमें भाषा-विज्ञान एवं काव्यात्मक दृष्टिसे उसकी उपयोगिता कम नही है। तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक जीवनका चित्र उपस्थित करनेमें भी समर्थ है। इस दृष्टिसे शोधके क्षेत्रमें कई विद्वानोने अध्ययन प्रस्तुत किया है, किन्तु अभी तक वह अन्यान्य कारणोंसे प्रकाशमें नही आ पाया।[4]

महाकवि तुलसीदासके योगदानको परिधिमें बाँधना उसकी विशालताको कम करना है। वे भारत के उन प्रमुख रत्नोंमें है जिन्होंने भारतकी संस्कृतिपर प्रभाव डालकर हमारी मानसिक, व्यावहारिक और सामाजिक भावनाके स्वरूपको बहुत कुछ बदल दिया है। भाषा और साहित्यके माध्यमसे उन्होंने विश्व-साहित्यमें भी प्रतिष्ठापूर्ण स्थान बना लिया है। आज गोस्वामीजीके रामचरितमानसका घर-घर, गाँव-गाँव और झोपड़ी-झोपडीमें जो प्रचार और प्रसार हमें दिखाई देता है उसका कारण ग्रन्थ द्वारा सदाचारकी प्रवृत्तियोंका

---

१ तुलसी-दर्शन—डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र।
२. रामचरितमानसकी भूमिका, पृ० १०८।
३. तुलसीदास और उनका युग, पृ० ३०२।
४. द्रष्टव्य, जैनलाजिकल रिसर्च सोसायटीके दिल्लीसेमिनार ७३ की स्मारिका एवं ज्ञानपीठ-पत्रिका, ६९।

विकास, राम एवं सीताकी आध्यात्मिक भावना और सांसारिक-जीवनका पारिवारिक व व्यक्तिगत उत्थानको ही मानना चाहिए। आज भी ये भावनाएं हमारे लिए वैसी ही उपयोगी हैं जैसी गोस्वामीजीके समयमें थी।[1] किन्तु समाजके बदलते परिवेश और वातावरणके अनुकूल हमें काफी सजग होकर उसमें प्रवृत्त होना चाहिए।

तुलसीदासकी इस अपूर्व देनके बावजूद भी रामचरितमानस, यद्यपि जन-साधारणमें प्रसिद्ध एवं समादरणीय है, किन्तु व्यावहारिक रूपमें उसके आदर्शोंका कितना उपयोग हुआ है या हो रहा है, सोचनेका विषय है? तुलसीदासने परम्परा, अपने व्यक्तित्व एवं समयसे प्रभावित होकर—

पूजिय विप्र शील गुन हीना। नहीं शूद्र गुनगान प्रवीना॥
विधिहुँ न नारि हृदयगति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
अधम तें अधम अधम अति नारी।

इत्यादि जो बातें कहीं है इनसे कविके व्यक्तित्वपर कोई अच्छा प्रभाव नही पडा है। भले ही उनके साथ मजबूरी रही हो।

द्वैतवादका खण्डन तुलसीदासको अवतारवादको स्थापनाके लिए करना पडा। किन्तु वही अवतारवाद मानसके आदर्शोंके अनुकरणमें बाधा स्वरूप उपस्थित हुआ है। क्योंकि समाजके महानुभाव जब अवतार कोटिमें चित्रित किये जाते है तो वे भक्ति और श्रद्धाके योग्य तो हो जाते है, किन्तु उनके जीवनचरितोसे हम आदर्श और स्फूर्ति ग्रहण नही कर पाते। उनकी अलौकिक, अननुभूत शक्तियोके अनुकरणमें हम असमर्थ हो जाते है। अत रामचरित मानसके आदर्शोंको मानवीय स्तर ग्रहण किया जाना अधिक अपेक्षित है। इस दृष्टिसे 'पउमचरिउ'का कथानक अधिक व्यावहारिक है। उसके आदर्श अधिक दूर नही लगते। वे व्यक्तिको स्वयं पुरुषार्थके लिए प्रेरित करते है।

उक्त पर्यवेक्षणके फलस्वरूप महाकवि स्वयम्भू और तुलसीदासके व्यक्तित्व एव कृतित्वका प्रत्येक पक्ष सक्षेप रूपसे हमारे समक्ष स्पष्ट हुआ है। दोनोंके वैयक्तिक जीवनमें भिन्नता होते हुए भी व्यक्तित्वमें प्राय समानता है, साहित्य-सृजनमें यदि एकका उद्देश्य धार्मिक प्रचार तथा कीर्तिलाभ करनेका है तो दूसरा सामाजिक उत्थान और आध्यात्मिक भावनाके प्रसारसे प्रेरित है। काव्यसौष्ठवमें दोनों बेजोड हैं। एकका दार्शनिक चिन्तन यदि ससारकी असारतापर मनन करता हुआ निर्वाण की ओर उन्मुख हुआ है तो दूसरेने सारे जगत्‌को ही परमात्मामय बना देनेकी कोशिश की है। एकके राम मानवतासे पूर्णतया की ओर उन्मुख है तो दूसरेके राम पूर्णतासे अवतरित हो मानवताको सृष्टि करते हैं। भारतीय संस्कृतिको परिष्कृत एवं समृद्ध बनानेमें दोनोंका योगदान इतना है कि आनेवाली पीढी हमेशा ऋणी रहेगी।

स्वयम्भू और तुलसीदासका यह तुलनात्मक अध्ययन एक उदाहरण है इस बातका कि प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंके साहित्यने आधुनिक क्षेत्रीय भाषाओंके साहित्यको कितना प्रभावित किया है। कितना स्वरूप एवं उपयोगिताकी दृष्टिसे दोनोंमें साम्य-वैषम्य है? भारतीय भाषाओंकी रचनाओंके तुलनात्मक अध्ययनका यह क्रम जितना बढ़ेगा उतनी ही सास्कृतिक एकताकी दिशाएं उद्घाटित होंगी।

●

---

१. तुलसीदास और उसके ग्रन्थ पृ० २।

देश के बौद्धिक जीवन में जैनों का योगदान

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

जैन धर्मानुयायी प्रारम्भसे ही देशके सबसे अधिक सुसंस्कृत, शिक्षित एवं विचारक रहे हैं। अपनी दार्शनिक बुद्धिके माध्यमसे उन्होंने सभी क्षेत्रोंमें क्रान्तिकारी परिवर्तन किये और भगवान् ऋषभदेवसे लेकर भगवान् महावीर एवं उनके पश्चात् होने वाले आचार्योंने देशके बौद्धिक विकासमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविका इन चार भागोंमें समस्त जैन संघको विभक्त करके भगवान् महावीरने सभीको बौद्धिक विकासका सुअवसर प्रदान किया। यही कारण है कि जैनाचार्यों, मनीषियों एवं विचारकोंने अपने विचारोंसे, साहित्यिक एवं दार्शनिक कृतियोंसे देशके जनमानसको सदैव जाग्रत रखा। इसे परम्पराओंसे चिपटे रहनेसे बचाकर बुद्धिपूर्वक सोचनेपर विवश किया और स्याद्वाद एवं अनेकान्त जैसे दार्शनिक सिद्धान्तोंको व्यावहारिक जीवनमें खुलकर उतारा। अपरिग्रहवादके माध्यमसे लोगोंमें संग्रह वृत्तिकी भावनाको उभारनेसे बचाया और स्वाध्यायकी प्रेरणा देकर जन जनको ज्ञानार्जनकी दिशामें प्रवृत्त होनेके मार्गको प्रशस्त बनाया।

प्रमुख आचार्योंका योगदान

भगवान् महावीरके आचारमें अहिंसा, विचारोंमें अनेकान्त, वाणीमें स्याद्वाद और जीवनमें अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तोंसे देशवासियोंको बौद्धिक विकासकी ओर प्रवृत्त होनेकी विशेष प्रेरणा मिली। महावीरके पश्चात् होने वाले आचार्यों एवं साधुओंने उक्त सभी सिद्धान्तोंको दृढ़तासे अपने जीवनमें उतारा और वे उन्ही के अनुसार श्रावकों एवं सामान्य जनताको इस ओर प्रवृत्त होनेकी प्रेरणा देते रहे। सर्व प्रथम आचार्य उमास्वामीने तत्त्वार्थाधिगमकी रचना करके चिन्तनके क्षेत्रमें एक नयी क्रान्ति उपस्थित की। उन्होंने प्राकृतके आगम ग्रन्थोंमें विकीर्ण जैन तत्त्वज्ञानको अपने तत्त्वार्थ सूत्रमें समेटकर रख दिया।[1] उमास्वामी प्रथम जैनाचार्य थे जिन्होने जैन तत्त्वज्ञानको योग, वैशेषिक आदि दार्शनिक पद्धतियोंके अनुरूप वैज्ञानिक ढंगसे बुद्धिजीवियोंके समक्ष उपस्थित किया। सूत्र रूपमें लिखे इस ग्रन्थमें दर्शन, आचार एवं कर्मसिद्धान्त आदिका जो विवेचन हुआ है वह अवर्णनीय है। जैन साहित्यके क्षेत्रमें यह इतना प्रभावशील सिद्ध हुआ कि दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंमें यह ग्रन्थ समान रूपसे समादृत ही नही हुआ किन्तु अनेक आचार्योंने इसपर छोटी-बडी टीकायें लिखकर उसके प्रचारको सर्वोच्च प्राथमिकता दी।

दूसरी तीसरी शताब्दीमें होनेवाले आचार्य समन्तभद्रका बहुचर्चित व्यक्तित्व था। वे उच्चकोटिके दार्शनिक थे। शास्त्रार्थमें अपने विरोधियोंको परास्त करनेमें अत्यधिक पारंगत थे। उन्होंने अपने आपको आचार्य, कवि, वादिराज, पंडित, ज्योतिषी, वैद्य, यान्त्रिक एवं तांत्रिक आदि सभीकी तो घोषणा की थी। शास्त्रार्थ करते-करते वे पाटलिपुत्र, मालवा, सिन्धु, ढाका, कांचीपुर एवं विदिशामें अपनी विद्वत्ता एवं तार्किकपनेकी दुन्दुभि बजायी।[2] उन्होंने आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन एवं स्वयम्भूस्तोत्र जैसे दार्शनिक ग्रन्थों

---

१. जैन लक्षणावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १६।

२. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ १७२।

तथा रत्नकरण्डश्रावकाचार जैसे आचार प्रधान ग्रन्थोंकी रचना करके जन साधारणमें तार्किक बुद्धिके विकासमें योग दिया।

चतुर्थ शताब्दीमें होनेवाले आचार्य सिद्धसेनका जैन दार्शनिकोंमें उल्लेखनीय स्थान है। वे बडे ही तार्किक विद्वान् थे तथा सन्मतिसूत्र एवं सिद्धसेनद्वात्रिंशिका जैसे दार्शनिक ग्रन्थोंकी रचना करके देशके बौद्धिक चिन्तनके विकासमें महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।[1] इन दार्शनिकोंके अतिरिक्त अकलंक, हरिभद्रसूरि, सिद्धसेन, अनन्तवीर्य, विद्यानन्द, अनन्तकीर्ति, माणिक्यनन्दि, प्रभाचन्द्रदेव सूरि, मल्लिषेण आदि दार्शनिकोंने देशकें बौद्धिक धरातलको समुन्नत बनानेमें उल्लेखनीय योगदान किया और अपने दार्शनिक विचारोंसे देशके वातावरणको चिन्तनशील बनाया। १३वीं शताब्दीमें होने वाले हेमचन्द्राचार्य बहुश्रुत विद्वान् थे जिन्होंने समूचे भारतमें ज्ञानके प्रति जन जनमें अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न की। उनकी लेखनी सशक्त थी। वाणीमें अद्भुत आकर्षण था एवं वे चुम्बकीय व्यक्तित्वके धनी थे। ज्ञानके किसी भी अंगको उन्होंने अछूता नहीं छोडा। काव्य लिखे। पुराण, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, कोष आदि सभी पर तो उन्होंने लिखा और देशमें हजारों लाखोंको बुद्धिजीवी बनानेमें अपना योग दिया।[2]

व्याकरणोंका योग

वैय्याकरणोंने दार्शनिकोंके समान ही देशके बौद्धिक विकासमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। मेधा शक्तिके स्वतंत्र विकास और चिन्तनकी परमोच्च स्थितिका निर्माण करनेमें व्याकरणका पहला स्थान रहा है। पूज्यपाद प्रथम जैनाचार्य थे।[3] जिन्होंने अष्टाध्यायी पर टीका लिखी और जैनेन्द्र व्याकरणकी रचना की। इस पर अभयनन्दि (८वी शताब्दी) एवं सोमदेवने (११वी शताब्दी) में टीकायें लिखकर उसके प्रचारमें सहायक बने। नवमी शताब्दीमें होने वाले शाकटायनने शब्दानुशासनकी रचना की। इस कृतिकी टीका भी स्वयने ही लिखी जिसका नाम अमोघवृत्ति है। यह व्याकरण शाकटायनके नामसे ही प्रसिद्ध हो गया। ११वी शताब्दीमें आचार्य हेमचन्द्रने शब्दानुशासन लिखकर इस क्षेत्रमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। इसी तरह शिववर्माने एक नये कातन्त्र व्याकरणको जन्म दिया। यह व्याकरण अत्यधिक सरल एव संक्षिप्त है।[4] इसके प्रारम्भिक संधिके सूत्र जन जनके जीवनमे उतर गये थे और जैन विद्यालयोके अतिरिक्त ब्राह्मण पंडितों द्वारा भी अपनाये गये और सर्वप्रथम इसी व्याकरणके सूत्रोंका अपभ्रंश रूप करके पढाया जाने लगा। 'ओ नामी सीधम्' (ओ नमः सिद्धेभ्य.) पचोवरणा (पंचवरणा.) दऊ धिवारा (द्वौ स्वरौ) जैसे सूत्रोंके साथ अध्ययन प्रारम्भ किया जाने लगा और छात्रोको याद कराया जाने लगा। एक ओर वैदिक विद्वान् जहां केवल संस्कृतसे ही चिपके रहे वहाँ जैनाचार्योंने देशकी सभी लौकिक भाषाओंका आदर किया और उनमें नयी-नयी कृतियोंका निर्माण करके जन-जनमे ज्ञान प्रसारका विशेष प्रयास किया।[5]

जैनाचार्योंने बौद्धिक क्षेत्रमें और भी अनेक क्रान्तिकारी प्रयोग किये। उन्होंने भाषा विशेषसे चिपके रहनेकी नीतिको छोडकर उन सभी भाषाओंमें साहित्य निर्माण किया जो जनभाषायें थी। इनमें अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी एवं मराठी भाषाओंके नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

१. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ ५०१।
२. राजस्थानके जैन सन्त, व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रस्तावना।
३. जैन लक्षणावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १८।
४. जैन ग्रन्थ भण्डार इन राजस्थान, पृष्ठ १६८।
५. महावीर बौलगय नामावली-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, प्रस्तावना, पृष्ठ २।

अपभ्रंशमें साहित्य निर्माण

अपभ्रंश भाषाके महाकवि स्वयम्भूने लौकिक एवं प्रादेशिक भाषाओंको समान आदर देकर देशके बौद्धिक विकासमें जबरदस्त योग दिया। उन्होंने उन सभी तत्त्वोंको अपना लिया जो तत्कालीन समाजमें अत्यधिक लोकप्रिय थे। इसलिए एक तो जन सामान्यमें उनकी कृतियोंको पढ़नेमें अभिरुचि जाग्रत हुई दूसरी इन आचार्यों एवं विद्वानोंको अपनी कृतियोंके माध्यमसे अपने क्रान्तिकारी विचारोंको जनसाधारण तक पहुँचानेमें सहायता मिली।[1] इस दृष्टिसे पुष्पदन्त, धनपाल, वीर, नयनन्दि, नरसेन, यश.कीर्ति एवं रइधूके नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। यशःकीर्तिको छोड़कर शेष सभी श्रावक थे लेकिन सभी बुद्धिजीवी थे। अपभ्रंश काव्यों एवं पुराणोंके माध्यमसे ज्ञानके प्रसारका जितना कार्य कवियोंने किया वह साहित्यिक इतिहासका एक शानदार अध्याय है। इनकी सशक्त लेखनीके द्वारा जनप्रिय काव्योंके निर्माणके कारण कुछ समय तक तो पाठक प्राकृत एवं संस्कृत काव्योंको भुला बैठे और चारों ओर अपभ्रंश काव्योंकी माँग होने लगी। इस भाषामें प्रमुखतः काव्य, चरित्र, पुराण एवं कथायें ही लिखी गयी इससे स्पष्ट है कि उनकी रचना जनरुचिको देखकर ही होती थी। महाकवि स्वयम्भू एवं पुष्पदन्त दक्षिण भारतके कवि थे लेकिन उनके काव्योंका सबसे अधिक प्रचार उत्तर भारतमें हुआ। अपभ्रंशके सभी कवियोंने काव्योंकी रचना स्वाध्याय प्रेमी श्रावकोंके आग्रहसे की जिनकी प्रशस्तियाँ काव्योंके अन्तमें लिखी हुई मिलती हैं जो उन कवियोंकी लोकप्रियताकी ओर स्पष्ट संकेत है।[2]

अपभ्रंश ग्रन्थोंकी प्रशस्तियोंके आधार पर तत्कालीन समाजकी साहित्यिक अभिरुचिका पता लगता है। उस समय श्रावकगण विद्वानोंसे ग्रन्थ निर्माणकी प्रार्थना करते थे। अपभ्रंश एवं हिन्दी साहित्यके निर्माणमें ऐसे ही श्रावकोंकी वि ेष प्रेरणा रही थी। कविवर बुलाकीदासको तो उनकी माता जैनीने पाण्डवपुराण एवं प्रश्नोत्तरोपासकाचारके निर्माणमें प्रेरणा दी थी।[3] जिसका कविने पाण्डवपुराणमें स्पष्ट उल्लेख किया है। महाकवि रइधूका सारा साहित्य ऐसी ही प्रेरणा देनेवाले व्यक्तियोंके परिचयसे भरा पड़ा है।

हिन्दीको प्रोत्साहन

अपभ्रंशके पश्चात् जैन कवियोंने प्रादेशिक भाषाओंमें ऐसे काव्य-साहित्यका निर्माण किया जिसे जन साधारण भी बड़े चावसे पढ सके। उन्होंने चरित्र काव्योंकी रचना की। रास काव्य लिखे। वेलि फागुके नामसे उनमें कुछ नवीनता दिखलाई। बारह मासा लिखकर घटना वर्णनके साथ-साथ प्रकृति वर्णन किया। सतसई, शतक, पंचासिका, चौबीसी नाम देकर पाठकोंमें सख्यावाचक कृतियोंके प्रति अभिरुचि पैदा की। विभिन्न प्रकारके स्तवन लिखे और उनमें भक्तिका अलग अलग पुट भी दिया। इन काव्योंमें तत्कालीन समाजकी आर्थिक दशा, व्यापार, व्यापारके तरीके, रहन-सहन, खानपान आदिका अच्छा परिचय मिल सकता है। साहित्य निर्माणके अतिरिक्त तात्त्विक एवं दार्शनिक अर्थमें विद्वानों एवं जनसाधारण द्वारा रस लेना बौद्धिक जागृतिका एक अभूतपूर्व लक्षण है। देशमें छोटे-छोटे स्वाध्याय मंडल खोले गये। आध्यात्मिक सैलियाँ चलायी गयी जिसमें विभिन्न श्रावक श्राविकाएँ भाग लेकर चर्चायें करते थे। यही नहीं, गुणस्थान, मार्गणा, अष्टकर्म एव उनकी प्रकृतियों पर विस्तृत चर्चा ग्रन्थ लिखे गये। आगरामें इसी प्रकारकी एक आध्यात्मिक सैली थी जिसका महाकवि बनारसीदासने उल्लेख किया है।[4]

---

१. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, पृष्ठ १०२।

२. अपभ्रंश साहित्य, प्रा० हरिवंश कोछड, पृष्ठ ५१।

३. देखिये, राजस्थानके जैन शास्त्र भण्डारोंकी ग्रन्थ सूची, भाग ३, पृष्ठ ९४।

४. अर्धकथानक—नाथूराम प्रेमी, पृष्ठ १५।

आध्यात्मिक चर्चा

जैनाचार्योंने आध्यात्मिक साहित्यका निर्माण करके जनजीवनको जाग्रत बनानेका प्रयास किया। "पुनरपि जननं पुनरपि मरणं" के भुलावेसे बचानेके लिये उन्होंने आध्यात्मिक ग्रन्थोंकी रचना की। आत्माकी सच्ची अनुभूतिके लिये उन क्रियाओं पर जोर दिया जिसमें भेद विज्ञानकी चर्चा की गयी है। ईश्वरके प्रभावसे बचने, उसमें आस्था रखकर स्वयं निष्क्रिय बननेसे बचानेके लिये स्वयं परमात्मा बनानेकी कल्पना अनूठी है तथा इससे उसमें स्वयं ही एक कर्तृत्व शक्ति पैदा होती है। आध्यात्मिक साहित्यके रचयिताओंमें आचार्य कुन्दकुन्द[1] का नाम सर्वोपरि है जिन्होंने प्राकृत भाषामें प्रवचनसार, समयसार जैसी कृतियाँ लिखकर बुद्धिजीवियोंका महान् उपकार किया। हमारे आगम साहित्यमें तो अध्यात्मका अनूठा वर्णन मिलता ही है। लेकिन उनके पश्चात् लिखे जानेवाले प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत ग्रन्थोंमें आत्मा, परमात्मा, जन्म-मरण आदिकी जो चर्चायें मिलती हैं उन सबसे बौद्धिक जीवन पर गहरी छाप पड़ी तथा उसने वैचारिक क्रान्ति करनेमें अपना विशेष योग दिया।[2]

शास्त्रार्थ परम्परा

शास्त्रार्थोंकी परम्पराने भी बौद्धिक विकासमें विशेष योग दिया। शंकराचार्यने शास्त्रार्थों द्वारा ही बौद्ध धर्मको देशसे बाहर जानेको मजबूर किया था। लेकिन जैनाचार्य शंकराचार्यकी आंधीमें भी अप्रभावित रहे और अकलंक, विद्यानन्दि, हरिभद्र सूरि, समन्तभद्र जैसे आचार्योंने अपने शास्त्रार्थों द्वारा देशमें एक नयी लहर पैदा की। आचार्य समन्तभद्रके ये दो पद्य तत्कालीन बौद्धिक जीवन पर अच्छा प्रकाश डालते हैं—

[3]पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये कांचीपुरे वैदिशे ॥
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कट संकटं वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥
[4]आचार्योऽहं कविरहमहं वादिराट् पंडितोऽहं देवोऽहं भिषगहमहं मान्त्रिकस्तान्त्रिकोऽहम् ॥
राजन्नस्यां जलधिवलयामेखलायामिलायामाज्ञासिद्धः किमिति बहुना सिद्धसारस्वतोऽहम् ॥

जन सामान्यके बौद्धिक विकासके लिये शिक्षणसंस्थान स्थापित किये गये। देशके प्राचीनतम नगरोंमें ऐसे ही विद्यालय थे। जिनमें प्राइमरी शिक्षाके पश्चात् विद्यार्थियोंको दार्शनिक, साहित्यिक एवं धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। नालन्दाके समान अन्य भी शिक्षण संस्थायें थी जिनमें गुरुकुलोंके रूपमें विद्यार्थियोंको शिक्षा दी जाती थी। १०वी शताब्दीमें बारामें[5] और १५वी शताब्दीमें नैणवा[6] (राज०) में ऐसी ही शिक्षण संस्थायें थी। इनके अतिरिक्त राजस्थानमें ही आमेर, अजमेर, जैसलमेर, नागौर, सागवाडामें विद्यार्थियोंको पढ़ानेके लिये शिक्षण संस्थान थे।[7]

●

---

१. जैन लक्षणावली, प्रस्तावना, पृष्ठ ५।
२. अपभ्रंश साहित्य, पृष्ठ २६५।
३. जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश, पृष्ठ १।
४. वही, पृष्ठ २४२।
५. जैन ग्रन्थ भण्डार इन राजस्थान, पृष्ठ २२७।
६. वही, पृष्ठ २३१।
७. वही, पृष्ठ २०२।

देवपूजा और उसका माहात्म्य

प्रो० उदयचन्द्र जैन, एम० ए०, जैन-बौद्ध-सर्वदर्शनाचार्य

जैनधर्ममें ही नहीं किन्तु अन्य भारतीय धर्मोंमें भी प्राचीनकालसे ही पूजाका एक विशिष्ट स्थान रहा है। साथ ही पूज्यका स्वरूप, पूजाकी विधि और उसके उद्देश्यमें भिन्नता भी रही है, जो कि अपने-अपने धर्मके अनुसार स्वाभाविक है। जब हम जैनधर्ममें पूजाके विषयमें विचार करते है तो हम देखते हैं कि इस धर्मके दो मुख्य स्तम्भ हैं—मुनि और गृहस्थ। और देवपूजा दोनोंका ही आवश्यक कर्तव्य है। यह अवश्य है कि दोनोंकी पूजा करनेकी विधि भिन्न-भिन्न है।

देवपूजाका प्राचीन रूप

कृतिकर्म देवपूजाके अभिप्रायको प्रकट करनेवाला एक प्राचीन शब्द है। यह एक व्यापक शब्द है जिसमें देवपूजाके अतिरिक्त कुछ अन्य बातें भी समाविष्ट हैं। कृतिकर्म मुनि और गृहस्थ दोनोंका आवश्यक कर्तव्य है। भोजनग्रहण, गमनागमन आदि क्रियाओंमें प्रवृत्ति करते समय लगे हुए दोषोंका परिमार्जन करनेके लिए साधुको कृतिकर्म करना चाहिए। गृहस्थकी प्रवृत्ति तो निरन्तर सदोष रहती ही है। अतः उसे भी कृतिकर्म करना आवश्यक है। मूलाचारके षडावश्यकाधिकारमें पूजाकर्मको कृतिकर्मका पर्यायवाची कहा गया है। कृतिकर्मके पर्यायवाची अन्य दो नाम हैं—चितिकर्म और विनयकर्म। कृतिकर्मका अर्थ नित्यकरणीय कर्म भी किया जा सकता है। मुनिके २८ मूल गुणोंमें ६ आवश्यक बतलाये गये हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। षट्खण्डागममें बतलाया गया है कि कृतिकर्म तीनों सन्ध्याकालोंमें करना चाहिए। तीनों सन्ध्याकालोंमें जो कृतिकर्म किया जाता है उसमें सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव और वन्दना इन तीनोंकी मुख्यता रहती है। तीनों सन्ध्याकालोंमें किया जानेवाला कृतिकर्म साधु और श्रावक दोनोंके लिए समानरूपसे आवश्यक है। साधु उक्त प्रकारका कृतिकर्म करके देवपूजा ही करता है। यह बात पृथक् है कि अपरिग्रही होनेके कारण साधु कृतिकर्म करते समय अक्षत आदि द्रव्यका उपयोग नहीं करता है और गृहस्थ कृतिकर्म करते समय अक्षत आदि सामग्रीका भी उपयोग करता है।

यथार्थ बात यह है कि पूजा दो प्रकारसे की जाती है—द्रव्यसे और भावसे। साधु जो पूजा करता है वह भाव पूजा है। मूलाचारमें यह भी कहा गया है कि देवपूजा अपने विभवके अनुसार करनी चाहिए। इस कथनका तात्पर्य गृहस्थके द्वारा की गई द्रव्यपूजासे है। मूलाचारकी टीकामें आचार्य वसुनन्दीने कहा है कि जिनेन्द्र देवकी पूजाके लिए अक्षत, गन्ध, धूप आदि जिस सामग्रीका उपयोग किया जाय उसे प्रासुक और निर्दोष होना चाहिए।

आचार्य अमितगतिने अपने श्रावकाचारमें पूजाके दो भेद करके उनका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

> वचो विग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते। तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥
>
> गन्धप्रसूनसान्नाद्य दीपधूपाक्षतादिभिः। क्रियमाणाऽथवा ज्ञेया द्रव्यपूजा विधानतः ॥
>
> व्यापकानां विशुद्धानां जिनानामनुरागतः। गुणानां यदनुध्यानं भावपूजेयमुच्यते ॥

अर्थात् पूर्वाचार्योंके अनुसार वचन और शरीरकी क्रियाको रोकनेका नाम द्रव्यपूजा है और मनकी क्रियाको रोकनेका नाम भावपूजा है। किन्तु स्वयं अमितगतिके मतानुसार गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और अक्षत आदिसे पूजा करनेका नाम द्रव्यपूजा है और जिनेन्द्रके गुणोंके चिन्तन करनेका नाम भावपूजा है।

आचार्य जिनसेनने महापुराणके ३८वें पर्वके प्रारम्भमें —

इज्यां वार्तां च दत्तिं च स्वाध्यायं संयमं तपः। श्रुतोपासकसूत्रत्वात् स तेभ्यः समुपादिशत् ॥

इस श्लोक द्वारा षट्कर्म—इज्या, वार्ता, दान, स्वाध्याय, संयम और तपका वर्णन करते हुए पूजाके चार भेद बतलाये हैं—

प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्धा सदार्चनम्। चतुर्मुखमह. कल्पद्रुमाश्चाष्टाह्निकोऽपि च ॥

नित्यपूजा, चतुर्मुखपूजा, कल्पद्रुमपूजा और आष्टाह्निकपूजा। ये सब द्रव्य पूजाके ही प्रकार हैं। प्रतिदिन अपने घरसे गन्ध, पुष्प, अक्षत इत्यादि ले जाकर जिनालयमें श्री जिनेन्द्रदेवकी पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्य पूजा है। महा मुकुटबद्ध राजाओंके द्वारा जो पूजा की जाती है उसे चतुर्मुख पूजा कहते हैं। चक्रवर्ती राजाओंके द्वारा किमिच्छिक दानपूर्वक जो पूजा की जाती है वह कल्पद्रुम पूजा है। और आष्टाह्निक पर्वमें जो पूजा की जाती है वह आष्टाह्निक पूजा है। इससे पूर्वके उपलब्ध साहित्यमें पूजाके भेद नहीं मिलते हैं।

आचार्य सोमदेवने पूजाके कोई भेद नहीं बतलाये किन्तु पूजकोंके दो भेद अवश्य बतलाये हैं। एक पुष्पादिमें पूजाकी स्थापना करके पूजन करनेवाले और दूसरे प्रतिमा (मूर्ति) का अवलम्बन लेकर पूजन करनेवाले। प्रतिमाके अभावमें पुष्पादिमें अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी स्थापना करके प्रत्येककी अष्टद्रव्यसे पूजा करना बतलाया गया है। उसके बाद क्रमसे दर्शनभक्ति, ज्ञानभक्ति, चारित्रभक्ति, अर्हद्भक्ति, सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पचगुरुभक्ति, शान्तिभक्ति और आचार्यभक्ति करना बतलाया है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रतिमाके अभावमें भी पूजा की जा सकती है।

सोमदेवने यशस्तिलकमें पूजाकी पद्धति या प्रकारको इस प्रकार बतलाया है—

प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम्। पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम् ॥

अर्थात् प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, सन्निधापन, पूजा और पूजा का फल इस तरह छह प्रकारसे देवकी पूजा की जाती है।

जिनेन्द्र देवका गुणानुवाद करते हुए अभिषेक विधिकी प्रस्तावना करना प्रस्तावना है। पीठके चारों कोणों पर जलसे भरे हुए चार कलशोंकी स्थापना करना पुराकर्म है। पीठ पर यथाविधि जिनेन्द्र देवको स्थापित करना स्थापना है। ये जिनेन्द्र देव हैं, यह पीठ मेरुपर्वत है, जलसे पूर्ण ये कलश क्षीरोदधिसे पूर्ण कलश हैं और मैं इन्द्र हूँ जो इस समय अभिषेकके लिए उद्यत हुआ हूँ, ऐसा विचार करना सन्निधापन है। अभिषेकके बाद अष्टद्रव्यसे पूजा करना पूजा है। और सबके कल्याणकी भावना करना पूजाका फल है।

आचार्य वसुनन्दीने पूजाके ६ भेद बतलाये हैं—

णामट्ठवणादव्वे खित्ते काले वियाण भावे य। छव्विहपूया भणिया समासउ जिणवरिं देहिं ॥

अर्थात्, नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव यह छह प्रकारकी पूजा जिनेन्द्र भगवान्ने संक्षेपमें कही है।

अर्हन्त आदिका नाम उच्चारण करके शुद्ध स्थानमें पुष्प क्षेपण करना नामपूजा है। सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारकी स्थापना होती है। साकार वस्तुमें भगवान्के गुणोंका आरोपण करना सद्भाव स्थापना है। अक्षत, कमलके बीज या किसी पुष्पमें यह संकल्प करना कि यह अमुक देव है और वैसा ही उच्चारण करना असद्भाव स्थापना है। पं० आशाधरजीने भी जिनप्रतिमाके न रहने पर अक्षत आदिमें

जिनेन्द्रकी स्थापना करनेका विधान बतलाया है। जल, चन्दन, अक्षत आदि द्रव्यसे जो पूजा की जाती है उसे द्रव्यपूजा कहते हैं। जिनेन्द्र देवकी जन्मभूमि, दीक्षाभूमि, केवलज्ञान भूमि और मोक्ष प्राप्त होनेकी भूमिमें जो पूजा की जाती है वह क्षेत्रपूजा है। भगवान्‌के गर्भकल्याणक आदिके दिनोंमें, नन्दीश्वर पर्वके आठ दिनोंमें तथा अन्य पर्वके दिनोंमें जो पूजा की जाती है वह कालपूजा है। और अनन्त ज्ञानादि गुणोंकी स्तुति करके जो त्रिकाल वन्दना की जाती है वह भावपूजा है।

उपर्युक्त विवेचनसे यही तात्पर्य निकलता है कि पूजा दो प्रकारसे की जाती है—द्रव्यसे और भावसे। जो साधु है वह भाव पूजा ही करता है। किन्तु श्रावक द्रव्य पूजा और भाव पूजा दोनों कर सकता है। पं० आशाधरजीने सागारधर्मामृतमें श्रावककी दिनचर्याका वर्णन करते हुए त्रिकाल देववन्दनाके समय दोनों प्रकारसे पूजा करनेका विधान किया है।

वर्तमान पूजा विधि

वर्तमान पूजा विधिमें वे सब गुण नहीं रह गये हैं जो षट्खण्डागम, मूलाचार आदिमें प्रतिपादित हैं। त्रिकाल देववन्दना, प्रतिक्रमण और आलोचनाकी विधि समाप्त प्राय है। अब श्रावकका कृतिकर्म देवदर्शन और देवपूजा दो भागोंमें विभक्त हो गया है। यद्यपि देवदर्शन भी पूजाका एक प्रकार ही है किन्तु उसे दर्शन ही कहते हैं। जिन मन्दिरमें जाकर देवदर्शन करना प्रत्येक श्रावक और श्राविकाका नित्य कर्तव्य है। वह जिन मन्दिरमें जाकर मूर्तिके समक्ष स्तुति पाठ करते हुए जिन भगवान्‌को नमस्कार करके तीन प्रदक्षिणा देता है। यह देवदर्शन है। पूजा करनेके लिए पहले स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहिनकर सबसे पहले मूर्तिका जलसे अभिषेक किया जाता है। कहीं-कहीं दूध, दधि, घृत, इक्षुरस और सर्वौषधिरससे भी अभिषेक करनेकी पद्धति है। अभिषेकके बाद पूजाके प्रारंभमें जिस देवकी पूजा करते हैं उसका आह्वानन, स्थापन और सन्निधिकरण किया जाता है। उसके बाद क्रमशः जल आदि आठ द्रव्योंसे पूजन किया जाता है। अन्तमें आठ द्रव्योंको मिलाकर अर्घ चढ़ाया जाता है। प्रत्येक द्रव्य चढ़ाते समय उसका उद्देश्य बोलकर उसे चढ़ाते हैं। जैसे जल चढाते समय कहते हैं—जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा। अर्थात् जन्म, जरा और मृत्युके विनाशके लिए जल चढ़ाता हूँ। पूजाके अन्तमें सबके लिए शान्तिपाठ पढ़ा जाता है।

शान्ति पाठमें—

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके,
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि॥

यह पद्य मुख्य है और इसमें सम्पूर्ण राष्ट्रकी सब प्रकारसे भलाईकी कामनाकी गई है। शान्तिपाठके अन्तमें विसर्जन किया जाता है।

मूर्तिपूजाका प्रारम्भ और उपयोगिता

जैनधर्ममें मूर्तिपूजनकी परम्परा बहुत प्राचीन कालसे प्रचलित है। द्वितीय शताब्दी ई० पू० के सम्राट् खारवेलके शिलालेखमें ऋषभनाथकी मूर्तिका उल्लेख है जिसे मगधका राजा नन्द कलिंग विजयके बाद पाटलिपुत्र (पटना) ले गया था और जिसे खारवेलने मगधपर चढ़ाई करके पुनः प्राप्त किया था। इससे सिद्ध होता है कि आजसे लगभग २५०० वर्ष पूर्व राजघरानों तकमें जैनोंके प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेवकी मूर्तिकी पूजा होती थी। एक मौर्यकालीन मूर्ति पटनाके संग्रहालयमें स्थित है। आचार्य कुन्दकुन्दने पंचास्तिकायमें अरहन्त, सिद्ध, चैत्य और प्रवचन भक्तिका उल्लेख किया है। तथा प्रवचनसारमें देवता, यति और गुरुकी

पूजाका विधान किया है। उत्तरकालमें तो जिन प्रतिमा और जिन मन्दिरोंका निर्माण अधिक संख्यामें हुआ है। इसी युगमें प्रतिष्ठापाठों आदिकी रचनाएँ हुई हैं। पूजन साहित्य भी इस युगमें विशेषरूपसे लिखा गया है।

जैनधर्ममें अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच पद बहुत प्रतिष्ठित माने गये हैं। इन्हें पञ्च परमेष्ठी कहते हैं। इन पाँच परमेष्ठियोंमें से अरहन्त परमेष्ठीकी मूर्ति जैन मन्दिरोंमें विराजमान रहती है। ये मूर्तियाँ २४ तीर्थंकरोंमें से किसी न किसी तीर्थंकरकी होती हैं किन्तु होती अरहन्त अवस्थाकी ही है। क्योंकि अरहन्त अवस्थाके बिना धर्म तीर्थका प्रवर्तन नहीं हो सकता है। अत धर्म तीर्थके प्रवर्तक जैन तीर्थंकरोंकी मूर्तियाँ जैनमन्दिरोंमें विशेषरूपसे पायी जाती हैं। निराकार सिद्धोंकी मूर्ति भी मन्दिरोंमें प्रायः रहती है। आचार्य, उपाध्याय और साधुकी मूर्तियाँ भी कहीं कहीं पायी जाती हैं। इनकी मूर्तियोंमें साधुके चिह्न पीछी और कमण्डलु अंकित रहते हैं। ये सभी मूर्तियाँ ध्यानस्थ अवस्थाकी होती हैं। आत्म-ध्यानमें लीन योगीकी जैसी आकृति होती है वैसी ही आकृति उन मूर्तियोंकी होती है। उनके मुखपर शान्ति, निर्भयता और निर्विकारता विद्यमान रहती है। उनके शरीर पर कोई आभरण नहीं होता है और न हाथमें कोई अस्त्र-शस्त्र। दिगम्बर जैन मूर्ति निरावरण (नग्न) और अलंकार रहित होती हैं। जो लोग सवस्त्र और सालंकार मूर्तिकी उपासना करते हैं उन्हे नग्न मूर्ति अश्लील प्रतीत हो सकती है। यहाँ प्रश्न यह है कि क्या नग्नता वास्तवमें अश्लीलताकी प्रतीक है। इस विषयमें प्रसिद्ध गान्धीवादी काका कालेलकरने श्रवणबेलगोला (कर्णाटक) में स्थित भगवान् बाहुबलिकी विश्वविख्यात नग्न मूर्तिको देखकर जो भाव व्यक्त किये थे वे ध्यान देने योग्य हैं—

"अब मैं कारकलके पास गोमटेश्वरकी मूर्तिको देखने गया उस समय हम स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध अनेक थे। हममें से किसीको भी इस मूर्तिका दर्शन करते समय संकोच जैसा कुछ भी मालूम नहीं हुआ। मैंने अनेक नग्न मूर्तियाँ देखी हैं और मन विकारी होनेके बदले उल्टा इन दर्शनोंके कारण ही निर्विकारी होनेका अनुभव करता है। अतः हमारी नग्नता विषयक दृष्टि और हमारा विकारोंकी ओर झुकाव दोनों बदलना चाहिए।"

मूर्तिके द्वारा मूर्तिमान्की उपासना की जाती है तथा मूर्तिको देखते ही मूर्तिमान्का स्मरण हो जाता है। मूर्ति मनुष्यके चंचल चित्तको स्थिर रखनेके लिए एक आलम्बन है। उस आलम्बनके निमित्तसे मनुष्यका चंचल चित्त कुछ क्षणके लिए पूज्यके गुण कीर्तन या चिंतनमें लीन हो जाता है। मूर्ति पूजा उस आदर्शकी पूजा है जो प्राणिमात्रका सर्वोच्च लक्ष्य है। मूर्तिके द्वारा हमें उस मूर्तिमान्के स्वरूपको समझनेमें सहायता मिलती है। अतः वर्तमान कालमें तो मूर्तिका होना अत्यन्त आवश्यक है। पं० आशाधरजीने मूर्तिकी उप-योगिताके विषयमें सागारधर्मामृतमें कहा है—

धिक् दुःषमाकालरात्रिं यत्र शास्त्रदृशामपि। चैत्यालोकादृते न स्यात् प्रायो देवविशामतिः॥

अर्थात् इस पंचमकालमें शास्त्रवेत्ताओंको भी मूर्तिके दर्शनके बिना देवबुद्धि नहीं होती है।

जिन पूजाका उद्देश्य

जिनेन्द्रदेवकी पूजा किसी भौतिक सुखकी कामनासे नहीं की जाती है, किन्तु उसका उद्देश्य आत्मामें निर्मलता द्वारा आध्यात्मिक सुख और शान्तिकी प्राप्ति है। जिनदेव वीतराग होते हैं। अतः उनकी पूजा या स्तुति करनेसे न तो वे प्रसन्न होते हैं और न प्रसन्न होकर कुछ देते हैं। अपरिग्रही और वीतराग होनेसे उनके पास देनेको कुछ है या नहीं। उनकी निन्दा करनेसे वे नाराज भी नहीं होते हैं। तब उनकी पूजासे क्या लाभ है? इसका उत्तर यही है कि उनके पवित्र गुणोंका स्मरण हमारे चित्तको पापोंसे बचाता है। इसी विषयमें आचार्य समन्तभद्रने बृहत्स्वयम्भू स्तोत्रमें कहा है—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि तव पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥

हे नाथ ! तुम वीतराग हो इसलिए तुम्हें अपनी पूजासे कोई प्रयोजन नही है। और वीत द्वेष होनेके कारण निन्दासे भी कोई प्रयोजन नहीं है। फिर भी तुम्हारे पवित्र गुणोंकी स्मृति हमारे चित्तको पापरूपी मलसे बचाती है।

अभिषेक

पूजाके प्रारम्भमें अभिषेककी परम्परा है। जिन प्रतिमाका अभिषेक तीर्थंकरोंके जन्मकल्याणकके समय सुमेरु पर्वतपर इन्द्रके द्वारा किये गये अभिषेकका ही प्रतिरूप है। इन्द्रने केवल क्षीरसागरके जलसे ही भगवान्का अभिषेक किया था। अतः शुद्ध आम्नायके अनुसार जलसे अभिषेक करना ही ठीक है। फिर भी जैन परम्परामें कहीं-कहीं दूध, दधि, घृत आदिसे भी अभिषेक किया जाता है। यह परम्परा कबसे चली ? पञ्चामृतसे सम्बन्ध रखनेवाले दुग्ध, दधि, घृत, इक्षुरस और सर्वौषधिरसका सर्वप्रथम स्पष्ट उल्लेख हरिवंश पुराणमें मिलता है। किन्तु वरांगचरित्रमें जो हरिवंशपुराणसे प्राचीन है, अभिषेकके समय दूध, दधि आदिसे भरे हुए कलशोंका उल्लेख होते हुए भी उनसे अभिषेक किये जानेका उल्लेख नही है, केवल जलसे ही अभिषेकका उल्लेख है। पद्मपुराणमें भी अभिषेकके लिए घृत, दूध आदिसे पूर्ण कलशोंका उल्लेख है। किन्तु जिनसेनने महापुराणमें और उनके शिष्य गुणभद्रने उत्तर पुराणमें जलसे ही अभिषेक करनेका विधान किया है। सोमदेवने उपासकाध्ययनमें इक्षुरस, घृत, धारोष्ण दूध, दधि और अन्तमें जलसे अभिषेक करनेके पश्चात् पूजा करनेका विधान किया है।

आह्वानन और विसर्जन

वर्तमानमें जो पूजाकी विधि प्रचलित है उसमें जिसकी पूजा की जाती है उसका आह्वानन और विसर्जन किया जाता है। यह विधि कहाँ तक उचित है इसपर भी विचार करना आवश्यक है। जैन सिद्धान्तके अनुसार जिस देवकी पूजा की जाती है वह न तो कहीसे आता है और न कही जाता है। सोमदेवने पूजनसे पूर्व जो स्थापन और सन्निधापन क्रियाएँ बतलाई हैं वे आजके प्रचलित आह्वानन, स्थापन और सन्निधिकरणसे भिन्न हैं। उनकी विधिमें आह्वानन तो है ही नही, विसर्जन भी नहीं है। विसर्जनका सम्बन्ध तो आह्वाननके साथ है। जब किसीको बुलाया नहीं जाता है तो भेजनेका प्रश्न ही नही उठता। ऐसा प्रतीत होता है कि पं० आशाधर (वि० स० १३००) के बाद ही पूजामें उक्त प्रक्रिया समाविष्ट हुई है। धर्मसंग्रह श्रावकाचार (सोलहवी शताब्दी) और लाटी संहिता (सत्रहवी शताब्दी) में आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण, पूजन और विसर्जन ये पाँच प्रकार पूजाके बतलाये हैं। यथार्थमें बात यह है कि भगवान्के पंच कल्याणकमें देव आते थे। अतः पंच कल्याणक प्रतिष्ठामें देवोंका आह्वानन और विसर्जन तो ठीक प्रतीत होता है। इसी बातको ध्यानमें रखकर देवसेन कृत भावसंग्रहमें इन्द्रादि देवताओंका आह्वानन तथा उन्हें यज्ञका भाग अर्पित करके पूजनके अन्तमें उन आहूत देवताओंका विसर्जन भी किया गया है। इस प्रकार पहले जो आह्वानन और विसर्जन इन्द्रादि देवताओंके लिए किया जाता था उसको उत्तर कालमें पूजाका आवश्यक अंग मानकर जिनेन्द्र देवके लिए भी किया जाने लगा। पूजनके अन्तमें विसर्जन करते समय निम्नलिखित श्लोक भी पढ़ा जाता है—

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम्। ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथास्थितिम्।

इसको हिन्दीमें इस प्रकार पढ़ते हैं—

आये जो जो देवगण पूजे भक्ति प्रमाण। ते सब जावहु कृपाकर अपने-अपने थान ॥
यथार्थमें यह विसर्जन इन्द्र आदि देवताओंके लिए है, जिनेन्द्र देवके लिए नही ।

देवपूजाका माहात्म्य

सातवी शताब्दीके आचार्य रविषेणने पद्मचरितमें मूर्ति निर्माण तथा उसकी पूजाके फलके विषयमें लिखा है—

जिनबिम्बं जिनाकारं जिनपूजां जिनस्तुतिम् । यः करोति जनस्तस्य न किंचिद् दुर्लभं भवेत् ॥

अर्थात् जो व्यक्ति जिनदेवकी आकृतिके अनुरूप जिनबिम्ब बनवाता है तथा जिनदेवकी पूजा और स्तुति करता है उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नही है ।

इसी प्रकार सातवी शताब्दीमें रचित अध्यात्म ग्रन्थ परमात्म प्रकाशमें लिखा है—

दाण न दिण्णउ मुणिवरहं ण वि पुज्जिउ जिणणाहु ।
पंच ण वंदिय परमगुरु किमु होसइ सिवलाहु ॥

अर्थात् जिसने न तो मुनिवरोंको दान दिया, न जिन भगवान्की पूजा की और न पञ्च परमेष्ठीको नमस्कार किया उसको मोक्षका लाभ कैसे होगा ।

आचार्य अमितगतिने सुभाषितरत्नसन्दोहमें लिखा है—

येनाङ्गुष्ठप्रमाणार्चा जैनेन्द्री क्रियतेऽङ्गिना । तस्याप्यनश्वरी लक्ष्मीर्न दूरे जातु जायते ॥

अर्थात् जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान्की अंगुष्ठ प्रमाण मूर्ति बनवाता है वह भी अविनाशी लक्ष्मीको प्राप्त करता है ।

आचार्य पद्मनन्दि पंचसंग्रहमें उनसे भी आगे बढ़कर कहते हैं—

बिम्बादलोन्नतियवोन्नतिमेव भक्त्या ये कारयन्ति जिनसद्म जिनाकृतिं वा ।
पुण्यं तदीयमिह वागपि नैव शक्ता स्तोतुं परस्य किमु कारयितुर्द्वयस्य ॥

अर्थात् जो बिम्बपत्रके प्रमाण जिनमन्दिर बनवाकर उसमें जौ बराबर जिन प्रतिमाकी भक्तिपूर्वक स्थापना करते हैं उनके पुण्यका वर्णन सरस्वती भी नही कर सकती, फिर जो बड़ा मन्दिर और बड़ी प्रतिमा बनवायें उनका तो कहना ही क्या है ।

आचार्य वसुनन्दीने अपने श्रावकाचारमें पद्मनन्दिसे भी आगे कहा है—

कुंथुंभरिदलमेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडियं । सरिसवमेत्तं पि लहइ सो णरो तित्थयरं पुण्णं ॥

अर्थात् जो कुंथुंभरिके पत्र बराबर जिनमन्दिर बनवाकर उसमें सरसोंके बराबर भी जिनप्रतिमा की स्थापना करता है वह मनुष्य तीर्थंकर पदके योग्य पुण्यबन्ध करता है ।

अन्तमें वे कहते हैं—

एयारसंगधारी जीहसहस्सेण सुरवरिंदो वि । पूजाफलं ण सक्को णिस्सेसं वण्णिउं जम्हा ॥

अर्थात् ग्यारह अंगके धारी मुनि तथा देवेन्द्र भी हजार जिह्वासे पूजाके फलको पूरा वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है ।

आचार्य समन्तभद्रने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें पूजाके माहात्म्यको इस प्रकार बतलाया है—

अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवत् । भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥

अर्थात् राजगृह नगरमें हर्षसे आनन्दित मेंढकने एक पुष्पके द्वारा भव्य जीवोंको अरहन्त भगवान्के चरणोंकी पूजाके माहात्म्यको बतलाया था । तात्पर्य यह है कि जिस समय भगवान् महावीरका समवशरण राजगृहमें आया हुआ था उस समय राजा श्रेणिक आदि नगरके सब लोग भगवान्की वन्दनाके लिए गये । उस समय

एक मेंढक भी धर्मकी भावनासे प्रेरित होकर मुखमें एक कमलपुष्प लेकर भगवान्‌की पूजाके लिये चला। इसी बीच वह मेंढक राजा श्रेणिकके हाथीके पैरसे कुचल कर मर गया और पूजा करनेकी पवित्र भावनाके कारण उपार्जित पुण्यके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें ऋद्धिधारी देव हुआ। और तत्काल ही वह मुकुटके अग्रभागमें मेंढकका चिह्न बनाकर भगवान्‌के समवशरणमें आ गया। इस प्रकार उसने सबके समक्ष पूजनके माहात्म्यको प्रकट कर दिया।

अष्ट द्रव्यसे पूजन करनेका पृथक् पृथक् फल

सोमदेवने जलादि अष्ट द्रव्यसे पूजा करनेका पृथक्-पृथक् कोई फल नहीं बतलाया है किन्तु वसुनन्दीने पूजाके समय जल आदि चढ़ानेका फल इस प्रकार बतलाया है—

पूजाके समय जलधारा छोड़नेसे पापरूपी मैल धुल जाता है और चन्दन चढ़ानेसे पूजा करनेवाला भाग्यवान् होता है। अक्षतसे पूजा करनेवाला ९ निधि और १४ रत्नोंका स्वामी होता है। पुष्पसे पूजा करनेवाला मनुष्य कामदेव तुल्य होता है। नैवेद्यको चढ़ानेवाला मानव अति सुन्दर होता है। दीपसे पूजा करनेवाला मनुष्य केवलज्ञानी होता है। धूपसे पूजा करने वाला नर निर्मल कीर्तिको प्राप्त करता है। और फलसे पूजा करनेवाला मनुष्य निर्वाण सुखको प्राप्त करता है।

पं० आशाधरजी ने इस विषयमें सागारधर्मामृतमें लिखा है—

वार्धारा रजसः शमाय पदयोः सम्यक् प्रयुक्तार्हतः, सद्गन्धः तनुसौरभाय विभवाच्छेदाय सन्त्यक्षताः।
यष्टु: स्रग्दिविजस्रजे चरुरुमास्वाम्याय दीपस्त्विषे, धूपो विश्वदृगुत्सवाय फलमिष्टार्थाय चार्घाय सः॥

अर्थात् अर्हन्त देवके चरणोंमें जलकी धारा चढ़ानेसे पापोंका शमन होता है, चन्दन चढ़ानेसे शरीर सुगन्धित होता है, अक्षतसे अविनाशी ऐश्वर्य प्राप्त होता है, पुष्पमाला चढ़ानेसे स्वर्गीय पुष्पोंकी माला प्राप्त होती है, नैवेद्यके अर्पणसे पूजा करनेवाला लक्ष्मीका स्वामी होता है, दीपसे शरीरकी कान्ति प्राप्त होती है, धूपसे परम सौभाग्य प्राप्त होता है, फलके चढ़ानेसे इष्ट अर्थकी प्राप्ति होती है और अर्घके चढ़ानेसे मूल्यवान् पद प्राप्त होता है। भाव संग्रहमें इसी प्रकारका फल बतलाया गया है।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रतीत होता है कि आचार्य वसुनन्दी, पं० आशाधर आदिके समयमें जलादि द्रव्योंके चढ़ानेका फल प्रायः सौभाग्य सूचक वस्तुओंकी प्राप्ति था। किन्तु दूसरे आचार्योंके मतसे उस समय भी पूजाके फलमें पूर्ण आध्यात्मिकता रही होगी। उसीके अनुसार पं० आशाधरके बादकी पूजाओंमें जन्म, जरा और मृत्युके विनाशके लिए जल, संसार तापके विनाशके लिए चन्दन, अक्षय पदकी प्राप्तिके लिए अक्षत, काम बाणके विनाशके लिए पुष्प, क्षुधारोगके नाशके लिए नैवेद्य, मोहान्धकारके नाशके लिए दीप, अष्टकर्मोंके नाशके लिए धूप और मोक्ष फलकी प्राप्तिके लिए फल चढ़ानेका विधान किया गया है। पूजा करनेका यही वास्तविक फल है जो पूर्णरूपसे आध्यात्मिक है। जिनेन्द्र देवकी पूजासे भौतिक सुखकी कामना करना ठीक नहीं है।

इस प्रकार जिनपूजाके माहात्म्य तथा फलको जानकर प्रत्येक गृहस्थको यथाशक्ति देवदर्शन, पूजन और स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। इसीमें मानव जीवनकी सफलता है।

●

सन्तकवि रइधू और उनका साहित्य

डा० राजाराम जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०

●

भारतीय वाङ्मयके उन्नयनमें जिन वरेण्य साधकोंने अनवरत श्रम एवं अथक साधना करके अपना उल्लेख्य योगदान किया है, उनमें महाकवि रइधू अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। उन्होंने अपने जीवनकालके सीमित समयमें २३ से भी अधिक विशाल अपभ्रंश, प्राकृत ग्रन्थोंकी रचना करके साहित्य-जगत्को आश्चर्य-चकित किया है। रचनाओंका विषय-वैविध्य, संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश एवं हिन्दी आदि भाषाओंपर असाधारण पाण्डित्य, इतिहास एव संस्कृतिका तलस्पर्शी ज्ञान, समाज एवं राष्ट्रको साहित्य, सगीत एवं कलाके प्रति जागरूक करानेकी क्षमता जैसी उक्त कविमें दिखाई पड़ती है, वैसी अन्यत्र कठिनाईसे ही प्राप्त हो सकेगी।

कविकी कवित्व शक्ति उसके वर्ण्य-विषयमें तो स्पष्ट दिखती ही है, किन्तु समाज एवं राजन्यवर्गके लोगोंको भी उसने साहित्य एवं कलाप्रेमी बना दिया था। यह महाकवि रइधूकी अद्वितीय देन है। ऐसी लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी एवं सरस्वतीका सदासे वैरभाव चला आया है। कई जगह यह उक्ति सत्य भी सिद्ध हुई है, लेकिन कविने उनका जैसा समन्वय किया-कराया, वही उसकी विशिष्ट एवं अद्‌भुत मौलिकता है। उदाहरणार्थ कविकी प्रशस्तियोंमेंसे एक अत्यन्त मार्मिक प्रसंग उपस्थित किया जाता है, जिससे कवि-प्रतिभाका चमत्कार स्पष्ट देखनेको मिल जाता है।

महाकवि रइधूकी साधना-भूमि गोपाचल (ग्वालियर)में तत्कालीन तोमरवंशी राजा डूंगरसिंहके मन्त्री संघवी कमलसिंह निवास करते थे। जो स्थितिपालक एवं उदारमना थे। राज्यपदाधिकारी होनेसे वे राज्य-कार्योंमें बडे व्यस्त रहते थे। एक दिन वे उससे घबराकर रइधूसे भेंट करते हैं तथा निवेदन करते हैं—

सयणासण तंबेर तुरग — धय-छत्त-चमर-भामिणि-रहंग।
कंचण-धण-कण-धर-दविण-कोस — जाणइ जंपाइ जणिय तोस।
तह पुण णयरायर-देस-गाम — बंधव णंदण णयणाहिराम।
सारयरु अणु पुणु वच्छु भाउ — जं जं दीसइ णाणा सहाउ।
तं तं जि एत्थु पावियइ सव्वु — लब्भइ ण कव्व-मणिक्कु भव्वु।
एत्थु जि बहु बुह णि वसहिउ किट्ठु — णउ सुकउ को वि दीसइ मणिट्ठु।
भो णिसुणि वियक्खण कहमि तुज्झु — रक्खमि ण किंपि णियचित्तगुज्झु।

घत्ता—तहु पुणुकव्वरयण-रयणायरु बालमित्तु अम्हहं णेहाउरु।
तुहु महु सच्चउ पुण्ण सहायउ महु मणिच्छ पूरण अणुरायउ॥

सम्मत०—१।७।१—७ तथा १।१४।८—९

अर्थात् "हे कविवर, शयनासन, हाथी, घोड़े, ध्वजा, छत्र, चमर, सुन्दर रानियाँ, रथ, सेना, सोना, धन-धान्य, भवन, सम्पत्ति, कोष, नगर, देश, ग्राम, बन्धु-बान्धव, सुन्दर-सन्तान, पुत्र, भाई आदि सभी मुझे उपलब्ध हैं।

सौभाग्यसे किसी भी प्रकारकी भौतिक सामग्रीकी मुझे कमी नहीं है। किन्तु इतना सब होनेपर भी मुझे एक वस्तुका अभाव सदैव खटकता रहता है, और वह यह कि, मेरे पास काव्यरूपी एक भी सुन्दर मणि नहीं है। इसके बिना मेरा सारा ऐश्वर्य फीका-फीका लगता है। हे काव्यरूपी रत्नोंके रत्नाकर, तुम तो मेरे स्नेही बालमित्र हो, तुम्हीं हमारे सच्चे पुण्य-सहायक हो, मेरे मनकी इच्छा परिपूर्ण करनेवाले हो, इस नगरमें बहुतसे विद्वज्जन निवास करते हैं, किन्तु मुझे आप जैसा कोई भी अन्य सुकवि नहीं दिखता। अतः हे कवि श्रेष्ठ, मैं अपने हृदयकी ग्रन्थि खोलकर सच-सच अपने मनकी बात आपसे कहता हूँ कि आप एक काव्यकी रचना करके मुझपर अपनी महती कृपा कीजिए''। कमलसिंहके उक्त निवेदनपर कविने 'सम्मत्तगुणणिहाण-कव्व' नामक एक अध्यात्म एवं दर्शनके ग्रन्थकी रचना की।

उक्त महाकविका काल अन्तर्बाह्य साक्ष्योंके आधारपर वि० सं० १४४०–१५३० सिद्ध होता है। पिछले १५ वर्षोंके निरन्तर प्रयासोंसे उक्त कविके २१ ग्रन्थ इन पंक्तियोंके लेखकको भारतके विविध शास्त्र भण्डारोंसे उपलब्ध अथवा ज्ञात हो सके हैं, जिनकी वर्गीकृत सूची इस प्रकार है—

चरित-साहित्य

(१) मेहेसर चरिउ (मेघेश्वरचरित), (२) बलहद्दचरिउ (बलभद्रचरित), (३) जिमंधरचरिउ (जीमन्धरचरित), (४) सिरि सिरिवालचरिउ (श्री श्रीपालचरित), (५) जसहरचरिउ (यशोधरचरित), (६) सम्मइजिणचरिउ (सन्मतिजिनचरित), (७) हरिवंसचरिउ (हरिवंशचरित), (८) सुक्कोसलचरिउ (सुकौशलचरित), (९) धण्णकुमारचरिउ (धन्यकुमारचरित), (१०) सतिणाहचरिउ (शान्तिनाथ चरित), (११) पासणाहचरिउ (पार्श्वचरित)।

आचार, दर्शन एवं सिद्धान्त साहित्य

(१२) पुण्णासवकहा (पुण्याश्रवकथा), (१३) सावयचरिउ (श्रावकचरित), (१४) सम्मतगुणणिहाण-कव्व (सम्यक्त्वगुणनिधान काव्य), (१५) अप्पसबोहकव्व (आत्मसम्बोधकाव्य), (१६) अणथमिउकहा (अनस्त-मितकथा), (१७) सिद्धंतत्थसार (सिद्धान्तार्थसार), एव (१८) वित्तसार (वृत्तसार)।

अध्यात्म साहित्य

(१९) बारा भावना, (२०) सोलहकारण जयमाला, (२१) दशलक्षणधर्म जयमाला।

उक्त ग्रन्थोंके अतिरिक्त कवि द्वारा विरचित महापुराण, सुदंसणचरिउ (सुदर्शनचरित), पज्जुणचरिउ (प्रद्युम्नचरित), भविसयत्तचरिउ (भविष्यदत्त चरित), करकडचरिउ (करकंडुचरित) प्रभृति ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं, किन्तु उनका अन्वेषण कार्य जारी है।

रइधू-साहित्यकी विशेषताएँ

रइधू-साहित्यकी सर्वप्रथम विशेषता है उसकी विस्तृत आद्यन्त-प्रशस्तियाँ। कविने अपने प्रायः सभी ग्रन्थोंके आदि एवं अन्तमें प्रशस्तियोंका अंकन किया है, जिनके माध्यमसे कविने समकालीन साहित्यिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियोंपर सुन्दर प्रकाश डाला है। इन प्रशस्तियोंसे विदित होता है कि तोमरवंशी राजा डूंगरसिंह एवं कीर्त्तिसिंह तथा चौहानवंशी राजा रुद्रप्रताप कविके परमभक्त तथा साहित्य एवं कथारसिक थे। राजा डूंगरसिंह तथा उनके पुत्र राजा कीर्त्तिसिंहने राज्यकी कोटि-कोटि मुद्राएं व्यय करके तैतीस वर्षोंतक लगातार अगणित जैन मूर्त्तियोंका निर्माण गोपाचल-

दुर्गमें कराया था। उनमेंसे कई मूर्तियाँ विशाल हैं। एक मूर्त्ति तो ५७ फीट ऊँची है। संख्या, विशालता एवं कला-वैभवमें वे अनुपम हैं।

इसी प्रकार चन्द्रवाडपट्टन (आधुनिक चन्दुवार, जिला फिरोजाबाद, उ० प्र०) निवासी श्री कुन्थुदास-नगरसेठने भी कविकी प्रेरणासे हीरे, मोती, माणिक्यकी अनेक मूर्त्तियोंका निर्माण कराकर पंचकल्याणक प्रतिष्ठाएं की थीं। उपलब्ध भारतीय इतिहासमें मूर्त्तिकला सम्बन्धी उक्त घटनाओंकी चर्चा नहीं की गई। ऐसा क्यों हुआ ? यह कारण अज्ञात है। किन्तु अब रइधू-साहित्य-प्रशस्तियोंके आधारपर मध्यकालीन भारतीय इतिहासके पुनर्लेखनकी आवश्यकता है।

प्रशस्तियोंकी दूसरी विशेषता यह है कि उनमें काष्ठासंघ, माथुरगच्छकी पुष्करगण शाखाके अनेक भट्टारकोंको क्रमबद्ध परम्परा प्राप्त है। कविने देवसेन, विमलसेन, धर्मसेन, भावसेन, सहस्रकीर्त्ति, गुणकीर्त्ति, यशःकीर्त्ति, श्रीपालब्रह्म, खेमचन्द्र, मलयकीर्त्ति, गुणभद्र, विजयसेन, क्षेमकीर्त्ति, हेमकीर्त्ति, कमलकीर्त्ति, शुभचन्द्र एवं कुमारसेनके उल्लेख किए हैं। यद्यपि ये उल्लेख संक्षिप्त एवं प्रसंगप्राप्त हैं, किन्तु उनके क्रम एव समय-निर्धारण तथा उनके साधनापूर्ण कार्योंको समझनेके लिए वे महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ-सामग्री प्रस्तुत करते है।

रइधूने पूर्ववर्त्ती अपभ्रंश कवियोंमें चउमुह (चतुर्मुख) द्रोण, ईशान, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धनपाल, वीर, धवल, धीरसेन, पविषेण, सुरसेन तथा दिनकरसेन तथा संस्कृत कवियोंमें देवनन्दि, जिनसेन (प्रथम और द्वितीय) एवं रविषेणके उल्लेख किए हैं। अपभ्रंश एवं हिन्दीके अनुसन्धित्सुओंके लिए धीरसेन, पविषेण, सुरसेन एवं दिनकरसेन इन चार कवियोंके नाम नवीन हैं। रइधूने उनकी क्रमशः प्रमाण, नय प्रमाण, मेहेसरचरिउ एवं अणंगचरिउ नामकी कृतियोंके उल्लेख किए है। इन ग्रन्थोंके अन्वेषण एवं प्रकाशनसे निश्चय ही साहित्यिक इतिहासके पुनर्निर्माणमें कई दृष्टियोंसे सहायता मिलेगी।

महाकवि रइधूने अपने आश्रयदाताओंकी ११–११ पीढ़ियोंतककी कुलपरम्पराए एव उनके द्वारा किए गए साहित्य, धर्म, तीर्थ, मूर्त्ति-निर्माण, मन्दिर-निर्माण, दान एवं राज्य-सेवा सम्बन्धी कार्योंपर अच्छा प्रकाश डाला है। इन सन्दर्भोंके आधारपर मालवाके मध्यकालीन समाजके सांस्कृतिक इतिहासका प्रामाणिक लेखा-जोखा तैयार हो सकता है। इस विषयमें संक्षेपमें यह कहा जा सकता है कि रइधू-साहित्य मध्यकालीन परिस्थितियोंका एक प्रतिनिधि साहित्य है। उसमें राजतन्त्र एवं शासन-व्यवस्था, सामाजिक-जीवन, परिवार-गठन एव परिवारके घटक, वाणिज्य-प्रकार, आयात-निर्यातकी सामग्रियोंकी सूची, समुद्र-यात्राए, आचार-व्यवहार, मनोरंजन, शिक्षा-पद्धति सम्बन्धी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है।

प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतोय-भूगोलकी दृष्टिसे भी रइधू साहित्य कम महत्त्वपूर्ण नही। भारत-वर्षकी मध्यकालीन राजनैतिक सीमाएं; विविध नगर, देश, ग्राम, पत्तन, पर्वत, नदियाँ, वनस्पतियाँ, जीव-जन्तु आदिम जातियाँ, खनिज-पदार्थ, यातायातके साधन आदि सम्बन्धी सामग्री इसमें प्रस्तुत है।

साहित्यिक दृष्टिसे रइधूके प्रबन्धात्मक आख्यानोंका गम्भीर अध्ययन करनेसे उनकी निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्षित होती हैं—

१. पौराणिक पात्रोंपर युग-प्रभाव।

२. प्रबन्धोंकी अन्तरात्मामें पौराणिकताका पूर्ण समावेश रहनेपर भी कवि द्वारा प्रबन्धोंका स्वेच्छया पुनर्गठन।

३. चरित-वैविध्य।

४. पौराणिक-प्रबन्धोंमें काव्यत्वका संयोजन।

५ प्रबन्धावयवोंका सन्तुलन।

५. मर्मस्थलोंका संयोजन।

७. उद्देश्यकी दृष्टिसे सभी प्रबन्ध-काव्योंका सादृश्य, किन्तु जीवन की आद्यन्त अन्वितिका पृथक्त्व-निरूपण।

प्रबन्ध-आख्यानोंके अतिरिक्त कविने 'सम्मत्तगुणणिहाणकव्व', 'वित्तसार', 'सिद्धान्तार्थसार' जैसे दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं आध्यात्मिक ग्रन्थोंका भी प्रणयन किया है। यद्यपि उक्त ग्रन्थोंमें निरूपित विषय कुन्दकुन्द प्रभृति पूर्वाचार्योंसे ही परम्परा-प्राप्त है। इसी कारण उनमें मौलिकता भले ही न हो, तो भी 'नया नवघटे जलम' वाली उक्तिके अनुसार विषयके प्रस्तुतीकरणमें अवश्य ही निम्न प्रकारके वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होते हैं—

१. सिद्धान्त-प्रस्फोटनके लिए आख्यानका प्रस्तुतीकरण।

२. बहुमुखी प्रतिभा द्वारा सिद्धान्तोंका सरल रूपमें प्रस्तुतीकरण।

३ विषयोंका क्रम-नियोजन।

४. दार्शनिक विषयोंका काव्यके परिवेशमें प्रस्तुतीकरण।

५. आचारके क्षेत्रमें मौलिकताका प्रवेश।

महाकवि रइधूने अपने समस्त वाङ्मयमें चार भाषाओंका प्रयोग किया है—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी। संस्कृतमें कविने कोई स्वतन्त्र रचना नहीं की, किन्तु ग्रन्थोंकी सन्धियोंके आदि एवं अन्तमें आदि मंगल या आशीर्वादात्मक विचार संस्कृतके आर्या, वसन्ततिलका, मालिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित जैसे विविध श्लोकोंके माध्यमसे व्यक्त किए हैं। उपलब्ध ग्रन्थोंमें ऐसे श्लोकोंकी संख्या १२०के लगभग है। श्लोकोंकी संस्कृत भाषा पाणिनि-सम्मत ही है, किन्तु कहीं-कहीं उस पर प्राकृत,अपभ्रंशका प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है।

रइधूकी प्राकृत रचनाओंमें शौरसेनी प्राकृतका प्रयोग मिलता है। उसमें क्वचित् अर्धमागधी एवं महाराष्ट्रीके शब्द-प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं।

कविकी एक रचना हिन्दीमें भी उपलब्ध है। यद्यपि वह अत्यन्त लघुकृति है, जिसमें मात्र ३९ पद्य हैं, किन्तु भाषा, विधा एवं छन्दरूपोंकी दृष्टिसे वह महत्त्वपूर्ण कृति है। उस रचनाका नाम है—'बारा-भावना'। इसमें दोहा, चौपाई, मिश्रित गीता-छन्दमें द्वादशानुप्रेक्षाओंका बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। इस रचना की हिन्दी अपभ्रंशसे प्रभावित है और उसके 'करउ', 'केरो' जैसे परसर्गोके प्रयोग उपलब्ध है। उसमें राजस्थानी, ब्रज, बुन्देली, एवं बघेली, शब्दोंके प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। वस्तुत कविकी इस लघुकृतिमें प्राचीन हिन्दीके विकासकी एक निश्चित परम्परा वर्तमान है।

महाकवि रइधू मूलतया अपभ्रंशके कवि हैं। अत उनकी तीन कृतियाँ छोडकर शेष सभी अपभ्रंश-भाषा निबद्ध हैं। उनकी अपभ्रंश परिनिष्ठित अपभ्रंश है, पर उसमें कहीं-कहीं ऐसी शब्दावलियाँ भी प्रयुक्त हैं, जो आधुनिक भारतीय भाषाओंकी शब्दावलीसे समकक्षता रखती हैं। उदाहरणार्थ कुछ शब्द यहाँ प्रस्तुत है—

टोपी, मुग्गदालि (मूंग की दाल), लइगउ (ले गया), सालो (पत्नी की बहिन), पटवारी, बक्कल

(बुन्देली, बकला—छिलका), ढोर, जंगल, पोटलु, (पोटली), खट्ट (खाट), गाली, झडप्प, खोज्ज (खोजना), लक्कड़ी, पीट्टि (पीटकर), ढिल्ल (ढीला) आदि।

बहुमुखी प्रतिभाके धनी महाकवि रइधू निस्सन्देह ही भारतीय वाङ्मयके इतिहासके एक जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। विपुल एवं विविध साहित्य रचनाओंकी दृष्टिसे उनकी तुलनामें ठहरनेवाले किसी अन्य प्रतिस्पर्द्धी कवि या साहित्यकारके अस्तित्वकी सम्भावना नहीं की जा सकती। रसकी अमृत स्रोतस्विनी प्रवाहित करनेके साथ मध्यकालीन भारतीय संस्कृतिके चिरन्तन आदर्शोंकी प्रतिष्ठा करनेवाला यह प्रथम सारस्वत है, जिसके व्यक्तित्वमें एक साथ इतिहासकार, दार्शनिक, आचारशास्त्र-प्रणेता एवं क्रान्तिद्रष्टाका समन्वय हुआ है।

कवि की उपलब्ध समस्त रचनाओंका परिशीलन बिहार सरकारके शिक्षा-विभागकी ओरसे 'अपभ्रंशके महाकवि रइधूकी रचनाओंका आलोचनात्मक परिशीलन' नामक शोधग्रन्थके रूपमें शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है तथा 'जीवराज ग्रन्थमाला' शोलापुर (महाराष्ट्र) की ओरसे 'रइधू-ग्रन्थावली'के रूपमें समग्र रइधू-साहित्य १६ भागोंमें सर्वप्रथम सम्पादित होकर प्रकाशित होने जा रहा है। उसका प्रथम भाग प्रकाशित है। तथा द्वितीय एवं तृतीय भाग यन्त्रस्थ हैं। इनके प्रकाशनसे कई नवीन तथ्यों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावनाएँ हैं।

जैनदर्शनमें नयमीमांसा

प्रो० सुखनन्दन जैन एम० ए०

१. नयका स्वरूप और उसकी उपयोगिता

जैन दर्शनमें तत्त्वाधिगम-वस्तुस्वरूपके परिज्ञानके लिये प्रमाणके साथ नयका प्रतिपादन किया गया है। नय यद्यपि प्रमाणका अंश है तथापि भारतीय दर्शन शास्त्रमें प्रमाणका जैसा महत्त्व है वैसा ही महत्त्व जैन दर्शनमें नयका है। वस्तुतः नय जैन दर्शनकी अपनी एक विशिष्ट और व्यापक विचार-पद्धति है। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तुका विश्लेषण नयसे करता है। अनेकान्त और स्याद्वाद सिद्धान्तका विवेचन नयके द्वारा किया जाता है। स्याद्वाद जिन विभिन्न दृष्टि कोणोंका अभिव्यञ्जक है, वे दृष्टिकोण जैन परिभाषामें नयके नामसे अभिहित होते हैं। जैनदर्शनमें अनेकान्त दृष्टिके निर्वाह एवं विस्तारके लिये तथा उसके विविध प्रकारसे उपयोगके लिये स्याद्वाद, नयवाद, भंगवाद आदि विविध रूपोंका निरूपण किया गया है।

महान् दार्शनिक आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, सिद्धसेन, अकलङ्क, विद्यानंद, वादिदेव, प्रभाचन्द्र आदिने नयवाद आदि सापेक्ष दृष्टियोंके समर्थन द्वारा सत्-असत् नित्य-अनित्य, भेदाभेद, द्वैताद्वैत आदि विविध वादोंमें पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित किया। इन्होंने अपने अनुभव और तर्कके आधारपर उक्त सापेक्ष दृष्टियोंकी बड़ी सूक्ष्मता एवं गम्भीरतासे विवेचन किया।

जितनी भी सापेक्ष दृष्टियां है उन सबका आधार है नय और नयका ध्येय है समन्वय अर्थात् अनेकान्त कोटिका व्यापक दर्शन कराना, जुदेजुदे पहलू या दृष्टि बिन्दुओंका यथोचित सापेक्षिक विन्यास करना। इसीलिये किसी भी विषयका सापेक्ष निरूपण करनेवाला विचार नय कहा गया है। नयका अर्थ ही अभिप्राय, दृष्टिकोण (point of view), विवक्षा या अपेक्षा है। नय विविध दृष्टिकोणोंको स्वीकार करके उनका समन्वय करता है। क्योंकि नय स्वयं एक दृष्टिकोण है, जिसके आधारपर हम किसी पदार्थके विषयमें कोई भी कथन कर सकते है। किसी विशेष दृष्टिकोणको अपनानेका मतलब यह नही कि हम अन्य दृष्टिकोणोंका निराकरण करें। नयका निर्देश है कि जहाँ हम अपने दृष्टिकोणको प्रस्तुत करना चाहते हैं, वहाँ अन्यके दृष्टिकोणको भी महत्त्व दें। इससे ही विभिन्न समस्याओंका समाधान हो सकता है। प्रायः समस्त दार्शनिक तथा पारस्परिक लौकिक जीवनके विवाद एकाङ्गीदृष्टिकोणको अपनानेसे ही उठते हैं, किन्तु जैन दर्शनका यह नय-सिद्धान्त एक निपुण निर्णायककी तरह सभी दृष्टिकोणों और विवक्षाओंको स्वीकार करता हुआ विश्वके विवादों और विरोधोंको समाप्त करता है, उनमें सामञ्जस्य स्थापित करता है। वह सापेक्ष कथन करके विश्वकी बड़ी-बड़ी समस्याओंका समाधान प्रस्तुत करता है। इसीलिये इसे सापेक्षवाद भी कहा गया है। जैन दर्शनका यह सापेक्ष सिद्धान्त विज्ञानकी कसौटीपर भी पूरी तरहसे खरा उतरा है। यही कारण है कि बड़े-बड़े दार्शनिकों, प्रबुद्ध-साधकों एवं चिन्तकोंने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। वैज्ञानिक आन्सटाइनने तो अपने सापेक्षतावादके सिद्धान्त (Theory of relativity) द्वारा इस सापेक्षदृष्टिका पूर्ण समर्थन किया है।

नयकी मीमांसा विचारणा या विवेचना जैनदर्शनका एक अनिवार्य अंग है। जैनदर्शनमें एक भी सूत्र और अर्थ ऐसा नही है, जो नय-शून्य हो।[1] जैनदर्शनको समझनेके लिये नय-दृष्टिको समझना नयकी मीमांसा करना अत्यावश्यक है; क्योंकि नयदृष्टिको समझे बिना नयकी मीमांसा किये बिना जैनदर्शनमें प्ररूपित वस्तु-तत्त्वको नहीं समझा जा सकता है। तात्पर्य यह है कि नयोंका सम्यग्ज्ञान हुए बिना वस्तु स्वरूपका ठीक-ठीक परिज्ञान ही नहीं हो सकता।

श्री माइल्लधवलने नय दृष्टिका महत्त्व बताते हुये कहा है—'जो नय-दृष्टि-विहीन है, उन्हे वस्तुके स्वरूपकी उपलब्धि—वस्तु स्वरूपका परिज्ञान नही हो सकता और जिन्हे वस्तु स्वरूपका परिज्ञान नही है, वे सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते है ?'[2] सम्यग्दृष्टि बननेके लिये वस्तु स्वरूपका परिज्ञान होना आवश्यक है और वस्तु स्वरूपके परिज्ञानके लिये नयदृष्टिको समझना आवश्यक है। नय दृष्टिको समझे बिना वस्तुके स्वरूपको ठीक-ठीक नहीं जाना जा सकता। वस्तु स्वरूप या जीवादितत्त्वोंके प्रति सच्ची श्रद्धा तभी जाग्रत हो सकती है जब हम उनके स्वरूपको यथार्थ रूपमें जान सकें और उनके स्वरूपको समझनेके लिये हमें नय दृष्टिका सहारा लेना ही पडेगा।

विश्वके अन्य सभी दर्शन एकान्तवादी हैं, वे वस्तुको एक धर्मात्मक ही मानते हैं। विरुद्ध उभय धर्मात्मक नही मानते। इसीलिये उनमें प्रमाणके सिवाय अंशग्राहीरूपसे नयकी कोई चर्चा ही नही है, किन्तु *अनेकान्तवादी जैनदर्शनका काम नयके बिना चल ही नही सकता, क्योंकि अनेकान्तका मूल नय है।*[3] नयका विषय एकान्त है इसलिये नयको एकान्त भी कहते हैं और एकान्तोंके समूहका नाम अनेकान्त है। यदि एकान्त न हों तो उनका समूहरूप अनेकान्त भी नही बन सकता। जो वस्तु प्रमाणकी दृष्टिमें अनेकान्तरूप है, वही वस्तु नयकी दृष्टिमें एकान्त स्वरूप है। अनेकान्तमें अनेकान्तको घटित करते हुए आचार्य समन्तभद्रने भगवान् जिनेन्द्रकी स्तुतिके माध्यमसे कहा है—'प्रमाण और नयके द्वारा सिद्ध होने वाला अनेकान्त भी अनेकान्त स्वरूप है। प्रमाणकी अपेक्षासे जो वस्तुके सभी धर्मोंको एक साथ जाननेवाला है वह अनेकान्त अनेकान्त—अनेक धर्म स्वरूप है और विवक्षित नयकी अपेक्षा वह अनेकान्त एकान्त स्वरूप है—एक स्वभावको बताने वाला है। अतः नयके बिना अनेकान्त सम्भव नही है।'[4]

तात्पर्य यह है—प्रमाण और नयसे अनेकान्त स्वरूप वस्तुकी सिद्धि होती है। प्रमाण वस्तुके सभी धर्मोंको जाननेवाला है और नयवस्तुके उन धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मको जाननेवाला है। प्रमाणकी अपेक्षासे अनेकान्त अनेकान्त स्वरूप है। अर्थात् अनेक धर्मस्वरूप वस्तु अनेक धर्म स्वरूप ही दिखती है। वही अनेकान्त स्वरूप वस्तु जब किसी विशेष नयकी अपेक्षासे देखी जाती है तब किसी एक धर्म स्वरूप दिखती है। उस समय वस्तुके अन्य धर्म गौण होते हैं। अतएव वह एकान्त स्वरूप कही जाती है। इस तरह वस्तु स्वरूपका सापेक्ष कथन करनेसे कोई विरोध नहीं आता। अपेक्षारहित अनेकान्त और एकान्त सब सदोष होते हैं। वस्तु नित्यानित्यात्मक, एकानेकात्मक, भेदाभेदात्मक, सामान्य-विशेषात्मक आदि अनेक धर्म स्वरूप

१. 'णत्थि णएहि विहूणं सुत्तं अत्थोय जिणमए किंचि।' विशे० भा०, ७६२।
२. 'जेणयदिट्ठिविहीणा ताणण वत्थू सहाव उवलद्धि॥ वत्थुसहावविहूणा सम्मादिट्ठि कहं हुन्ति।' नयचक्र, गाथा, १८१।
३. 'णयमूलो अणेयन्तो।' नयचक्र, गाथा १७५॥
४. "अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाणनयसाधनः।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्॥" बृ० स्व० स्तोत्र श्लोक, १०३।

है। इसी वस्तु स्वरूपको समझनेके लिए जैन दर्शनमें प्रमाण और नय—ये दो साधन माने गये हैं। प्रमाणकी अपेक्षा वस्तु अनेक धर्म स्वरूप झलकती है और नयकी अपेक्षा एक-एक धर्म स्वरूप। नय वस्तुके किसी एक धर्मको मुख्य करके और उसी समय उसके अन्य धर्मोंको गौण करके बताता है। वह वस्तुके एक धर्मको मुख्य करके कहते हुए उसके अन्य धर्मोंका निषेध नहीं करता है। इस प्रकार जैनदर्शनमें स्याद्वाद और नय-पद्धतिसे निर्बाध वस्तु स्वरूपकी सिद्धि होती है।

नयकी उपयोगिता बतलाते हुए माइल्ल धवलने कहा है—"अनेक स्वभावोंसे परिपूर्ण वस्तुको प्रमाणके द्वारा ग्रहण करके तत्पश्चात् एकान्तवादका नाश करनेके लिए नयोंकी योजना करनी चाहिये।"[१]

इसी बातको आचार्य देवसेनने भी कहा है—"नानास्वभावों-धर्मोंसे युक्त द्रव्यको प्रमाणके द्वारा जान करके सापेक्ष सिद्धिके लिए उसमें नयोंकी योजना करनी चाहिये।"[२]

श्री माइल्ल धवल पुनः कहते हैं—"नयके बिना मनुष्यको स्याद्वादका बोध नहीं हो सकता इसलिये जो एकान्तका विरोध करना चाहता है। उसे नयको जानना चाहिये।"[३]

आशय यह है—प्रमाणसे गृहीत वस्तुके एक अंशका ग्राही नय है। वस्तु अनेकान्तात्मक या अनन्त धर्मात्मक है।[४] वस्तुके उन अनन्त धर्मोंमें ऐसे भी धर्म है, जो परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं। जैसे सत्व-असत्व, एकत्व-अनेकत्व, नित्यत्व-अनित्यत्व आदि। इन परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले धर्मोंको लेकर ही नाना दार्शनिक पथ खड़े हुए हैं। कोई वस्तुको केवल सत् स्वरूप ही मानता है तो कोई असत् स्वरूप ही, कोई एक रूप ही मानता है तो कोई अनेक रूप ही, कोई केवल नित्य ही मानता है तो कोई अनित्य ही। इस प्रकार केवल एक-एक धर्मको माननेवाले एकान्तवादियोंका समन्वय करनेके लिए नयमीमांसाका उपक्रम भगवान् महावीरने किया था। उन्होंने प्रत्येक एकान्तको नयका विषय बतलाकर और नयोंकी सापेक्षता स्वीकार करके अनेकान्तवादकी प्रतिष्ठा की थी। अतः एकान्तोंकी निरपेक्षता विसंवादकी जड़ है और एकान्तोंकी सापेक्षता सवाद या समन्वयका मार्ग है। पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा पदार्थ नियमसे उत्पन्न होते है और नाशको प्राप्त होते हैं; किन्तु द्रव्यदृष्टिसे न तो पदार्थोंका कभी नाश होता है और न उत्पाद ही होता है। वे ध्रुव-नित्य है। ये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—तीनों मिलकर ही द्रव्यके लक्षण है।[५] केवल द्रव्यार्थिक या केवल पर्यायार्थिक नयका जो विषय है, वह द्रव्यका लक्षण नही है। क्योंकि वस्तु न केवल उत्पाद, व्यय—अनित्य रूप ही है, जैसा बौद्ध लोग मानते है और न केवल ध्रौव्य-नित्य रूप ही है, जैसा कि न्याय-वैशेषिक, सांख्यादि मानते है। अतः अलग-अलग दोनों नय मिथ्या है।

इसी विषयका विश्लेषण आचार्य हेमचन्द्रने भगवान् महावीरकी स्तुति करते हुए वैशेषिकोंके सर्वथा-एकान्त नित्य और सर्वथा-एकान्त अनित्य पक्षमें दोष प्रदर्शनपूर्वक किया है—'दीपकसे लेकर आकाशपर्यन्त

---

१. "णाणासहावभरियं वत्थुं गहिऊण त पमाणेण।
एयंतणासणट्ठं पच्छा णयजुं जण कुणह॥" नयचक्र, १७२।

२. "नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयं मिश्रितं कुरु॥" आ० प० १०, पृष्ठ १६८।

३. 'जम्हा णएण विणा होइ ण णरस्स सियवाय पडिवत्ती।
तम्हा सो बोहव्वो एयंतं हंतु-कामेण॥' नयचक्र, गाथा १७४।

४. 'अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वम्।' अन्ययोगव्य०, का० २२।

५. 'उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्।' सद्द्रव्यलक्षणम्।' तत्त्वार्थसूत्र, ५।२९, ३०।

सभी पदार्थ समान स्वभाववाले नित्यानित्य स्वभाववाले हैं; क्योंकि जगत्का कोई भी पदार्थ स्याद्वादकी मर्यादाका अतिक्रमण—उल्लंघन नही करता है। इसकी मर्यादाका उल्लंघन करनेपर पदार्थोंकी स्वरूप व्यवस्था ही नहीं बन सकती है। ऐसी वस्तुस्थितिमें भी भगवन्! आपकी देशनासे द्वेष रखनेवाले वैशेषिक आदि दीपक आदि पदार्थोंको सर्वथा अनित्य और आकाशादि पदार्थोंको सर्वथा नित्य मानते है।'[1]

जैन दर्शनके अनुसार प्रत्येक वस्तु किसी अपेक्षासे नित्य और किसी अपेक्षासे अनित्य स्वीकार की गई है। वस्तुका यह नित्यानित्य स्वरूप सबलोगोंके अनुभवमें भी आता है।

कहा भी है—'नरसिंहके एक भागमें सिंहका आकार पाया जाता है और दूसरे भागमें मनुष्यका आकार पाया जाता है इस प्रकार जो पदार्थ दो भाग रूप है—दो भागोंको धारण किये हुये हैं, उस अविभक्त-भागरहित पदार्थको नृसिंहावतारको विभागरूपसे नरसिंह कहा जाता है।'[2]

जिस प्रकार नर-सिंह न केवल मनुष्य था और न केवल सिंह ही। उसे दो भागोंमें अलग-अलग बाँटना भी चाहे तो भी ऐसा करना सम्भव नही है। वह एक होते हुए भी शरीर की किसी रचनाकी अपेक्षा मनुष्य भी था और किसी रचनाकी अपेक्षा सिंह भी था। इस प्रकार इस नर और सिंह की दो विरुद्ध आकृतियोंको धारण किये हुए था फिर भी वह नृसिंहावतार 'नृसिंह, नामसे कहा जाता था। इसमें कोई विरोध नहीं पडता था। उसी प्रकार जगत्के प्रत्येक पदार्थमें नित्य-अनित्य आदि परस्पर विरोधी धर्मोंके रहनेपर भी स्याद्वाद और नयवादके सिद्धान्तमें कोई विरोध नही आता है; क्योंकि उसके अनुसार जगत्का प्रत्येक पदार्थ नित्यानित्यात्मक, सदसदात्मक, एकानेकात्मक, भेदाभेदात्मक और सामान्य-विशेषात्मक माना गया है। इस नित्यानित्यादिके सिद्धान्तको दूसरे वादी भी प्रकारान्तरसे स्वीकार करते ही है। जैसे वैशेषिक लोग पृथ्वीको नित्य और अनित्य—दोनों रूप मानते हैं तथा एक अवयवीको ही चित्ररूप-परस्पर विरुद्धरूप, एकही पटको चल और अचल, रक्त और अरक्त, आवृत और अनावृत आदि विरुद्ध धर्मयुक्त स्वीकार करते है। बौद्धदर्शन भी एक ही चित्रपटमें नील और अनील—दो विरुद्ध धर्मोंको मानता है। पातञ्जल मतके अनुयायी भी धर्म, लक्षण और अवस्थाको धर्मोंसे भिन्न और अभिन्न मानते है। इस प्रकार एक ही वस्तुमें परस्पर विरोधी दो धर्मोंके एक साथ रहनेमें कोई बाधा नही आती; किन्तु उन दोनों धर्मोंका वस्तुमें एक साथ कथन नहीं किया जा सकता है। इनका क्रमसे या किसी अपेक्षासे या किसी दृष्टिकोण विशेषसे कथन करना पडता है। इसलिए जिस समय जिस धर्मका कथन किया जाता है उस समय उसको स्वीकार करनेवाली दृष्टि मुख्य हो जाती है और उससे विरोधी धर्मका स्वीकार करनेवाली दृष्टि गौण हो जाती है। इस प्रकार एक वस्तुमें परस्पर विरोधी दो धर्मोंकी सिद्धि नयके द्वारा ही हो सकती है। लोक-व्यवहारमें भी हम देखते हैं एक ही व्यक्ति एक ही समयमें पिता भी है, पुत्र भी है, भाई भी है, भतीजा भी है, मामा भी है, भानजा भी है। वही एक ही व्यक्ति अपने पुत्रकी अपेक्षा पिता है, अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र है, अपने भाईकी अपेक्षा भाई है, अपने पिताके भाईकी अपेक्षा भतीजा है, अपने भानजेकी अपेक्षा मामा है और अपने मामाकी अपेक्षा भानजा है। इस प्रकार देखनेसे तो प्रतीत होता है कि पितापना, पुत्रपना,

---

१. 'आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वाद मुद्रानतिभेदि वस्तु।
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञा द्विषतां प्रलापाः॥' अन्ययोगव्य०, श्लोक ५।

२. 'सिंहोभागे नरोभागे योऽर्थो भागद्वयात्मकः।
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते॥' जयधवला टी०, पृ० २५६।

भाईपना, भतीजापना, मामापना, मामाजापना आदि विशेषताएं परस्पर जुदी-जुदी या विरोधी हैं किन्तु उनका एक ही व्यक्तिमें भिन्न-भिन्न दृष्टियोंकी अपेक्षासे बिना विरोधके सुन्दर समन्वय पाया जाता है ! इसी प्रकार वस्तु-धर्मोंके विषयमें भी सापेक्षताकी दृष्टिसे अविरोधी तत्त्व प्राप्त होता है। यही अनेकान्तवाद, स्याद्वाद तथा नयवादकी मर्यादा है, जिसका किसी भी प्रकार उल्लंघन नहीं किया जा सकता है। उसका उल्लंघन करनेपर वस्तु स्वरूपकी सिद्धि तथा उसका यथार्थ परिज्ञान नहीं हो सकता है। इस तरह वस्तुके एक-एक अंशको ही पूर्ण सत्य माननेवाले एकान्तवादी दर्शनोंका समन्वय करनेके लिए जैन दर्शनमें नय-मीमासाकी यीजना की गई है; क्योंकि नयका प्रयोजन और उसकी उपयोगिता ही परस्पर विरोधी धर्मोंके समन्वय करनेमें है।

सभी दर्शन अपनी-अपनी मान्यताओंका प्रतिपादन अपने-अपने अभिप्रायोंके अनुसार करते है। अतः जितने अभिप्राय हैं, उतने ही वाद हैं। आचार्य सिद्धसेन दिवाकरने कहा है—

"जितने वचन मार्ग हैं—अभिप्राय हैं, उतने ही नयवाद हैं और जितने नयवाद हैं, उतने ही पर समय-मत हैं।"[१] इन सभी मतोंका समन्वय सापेक्ष नय योजनासे ही सम्भव है। यदि प्रत्येक अभिप्रायको दूसरे अभिप्रायोंसे सापेक्ष रूपसे जोड़ दिया जावे तो विसंवाद ही समाप्त हो जाता है। झगड़ा 'ही' का है। 'ऐसा ही है' यह कहना मिथ्या है और झगडेकी जड है। 'ऐसा भी है' यह कहना सम्यक् है और सभी प्रकारके झगडो और विवादोंको शान्त करनेका सरल उपाय है। इस विषयको और अधिक स्पष्ट करनेके लिये एक बोध पूर्ण उदाहरण उपयोगी समझकर यहाँ प्रस्तुत किया जा सकता है—

एक बहुत बडा दार्शनिक विद्वान् था। वह दार्शनिक गुत्थियोंको सुलझानेके लिये विशाल दार्शनिक ग्रन्थोंके अध्ययन एवं मननमें निरन्तर निरत रहता था। उसे इधर-उधर की, यहाँ तक कि अपनी गृहस्थी की भी कोई परवाह नही थी। अपने अध्ययन 'कक्षमें ही बन्द रहता था। किसीसे मिलता ही नही था। उसकी पत्नी चिन्तित रहने लगी। एक दिन उसने पूछा—क्या मामला है ? इतना ज्ञानार्जन करके अबतक क्या किया ? और क्या करोगे ? विद्वान् दार्शनिक सरल और सरल ढंगसे अपनी पत्नीके प्रश्नोंका समाधान करनेके लिये बोला—प्रिये ! आओ आज हम दोनों घूमनेके लिये चलें। वही तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा। चल दिये, घूमते घूमते गगाके किनारे पहुँचे, किनारे पहुँचनेपर दार्शनिकने पूछा—प्रिये ! बताओ तो सही—हम दोनों इस पार हैं या उस पार ? पत्नी बोली—इस पार। दार्शनिक बोला—प्रिये ! जरा फिरसे सोचो, खूब सोचो और बताओ कि हमलोग इस पार हैं या उस पार ? पत्नी कडककर बोली—पण्डितजी महाराज ! इसमें सोचना समझना क्या है ? यह तो साफ ही दीख रहा है कि हमलोग इस पार ही हैं। क्या आप नहीं देख रहे हैं ? पण्डितजी बोले—अच्छा ! आओ ! प्रिये ! बैठो, इस नौकामें। चलो, उस पार चलें। दोनों पहुँचे उस पार। विद्वान्ने फिर पूछा—प्रिये ! अब बताओ, हम इस पार है या उस पार ? पत्नीने फिर वही उत्तर दिया—इस पार। दार्शनिक बोला—अरे ! प्रिये ! जल हम दोनों वहाँ—उस किनारेपर थे तब तुम कह रही थीं—इस पार। और अब यहाँ—इस किनारे पर हैं तब भी वही कह रही हो—इस पार। क्या बात है ? समझी कुछ ? वास्तवमें यह न इस पार है, न उस पार और न ही वह पार भी न इस पार है, न उस पार। किन्तु उस पारकी अपेक्षा यह इस पार है और इस पारकी अपेक्षा वह भी इस पार है। इस

१. "जावइआ वयणपहा तावइया चेव होंति णयवाया।
जावइ आणयवाया तावइया चेव परसमया॥" सन्मतितर्क, ३—४७।

प्रकार यह इस पार भी है और उस पार भी है। तथा वह पार भी इस पार भी है और उस पार भी है। इस सरल और सुबोध ढंगसे दार्शनिककी पत्नीका समाधान हो गया और वह अच्छी तरह समझ गई कि वास्तवमें इसी प्रकार जगत् की प्रत्येक वस्तु अपेक्षा भेदसे नित्य भी है और अनित्य भी है। एक भी है और अनेक भी है। आदि। जैसा ऊपर कहा जा चुका है—एक व्यक्ति पिता भी है और पुत्र भी है, नाना भी है। और दादा भी है, छोटा भी है और बड़ा भी है। इस प्रकार जैन दर्शनमें प्रतिपादित वस्तु स्वरूपको ठीक ठीक समझनेके लिये—इसका सापेक्ष निरूपण करनेके लिये नयों की मीमांसा–विचारणा और प्ररूपणा आवश्यक है।

२ नयका व्युत्पत्तिपरक लक्षण

'नय' शब्द 'णीञ्' प्रापणे धातुसे कृदन्तका 'अच्' प्रत्यय लगनेपर सिद्ध होता है, जिसकी व्युत्पत्ति कर्तृवाच्यमें 'नयति, प्राप्नोति, जानाति वस्तु स्वरूपं यः सः नयः' इस रूपसे और कर्मवाच्यमें 'नीयते, गम्यते, परिच्छिद्यते, ज्ञायतेऽनेन येन वा अर्थः सः नयः' इस रूपसे की जाती है।

आचार्य देवसेन स्वामीने 'नय' शब्द की व्युत्पत्ति कर्तृवाच्यमें करते हुए कहा है—

"जो नाना स्वभावोंसे हटाकर एक स्वभावमें वस्तुको ले जाता है, प्राप्त कराता है, उसे स्थापित करता है या उसका ज्ञान कराता है, उसे नय कहते है।[1] अर्थात्—अनेक गुण पर्यायात्मक द्रव्यका किसी एक धर्म की मुख्यतासे निश्चय करानेवाले ज्ञानको नय कहते हैं।

श्री जिनभद्रगणीके विशेषावश्यक भाष्यकी वृत्तिमें भी नय शब्दका यही व्युपत्तिपरक अर्थ किया गया है।[2]

आचार्य उमास्वातिने भी नय शब्द की कर्तृवाच्यमें व्युत्पत्ति करके उसका विभिन्न दृष्टि कोणोंसे अर्थ किया है।[3]

आचार्य वीरसेन स्वामीने भी नय शब्दकी कर्तृवाच्यपरक व्युत्पत्ति करके उसका विश्लेषण किया है।[4]

आचार्य विद्यानन्द स्वामीने नय शब्द की कर्मवाच्य परक व्युत्पत्ति करते हुए लक्षण किया है—

'जो श्रुतप्रमाण द्वारा जाने गये अर्थके किसी एक अंश या धर्मका कथन करता है, वह नय है।[5]

श्री मल्लिषेणसूरिने भी कर्मवाच्यपरक व्युत्पत्ति करते हुए कहा है—

जिसके द्वारा पदार्थके एक अंश या धर्मका ज्ञान हो उसे नय कहते हैं।[6]

महान् तार्किक आचार्य समन्तभद्रने श्रुतज्ञानका 'स्याद्वाद' शब्दसे निर्देश करते हुए 'स्याद्वाद' अर्थात्—श्रुतज्ञान द्वारा गृहीत अनेकान्तात्मक पदार्थके धर्मोंका अलग अलग कथन करनेवाले ज्ञानको नय कहा है।"[7]

---

१. "नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोति वा नयः।"
आलाप पद्धति, पृ० १८१।

२. "नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयतीति नयः।" वि० भा० वृत्ति।

३. "देखो—तत्त्वार्थाधिगमभाष्य, १-३५, पृ० ८३।

४. "देखो—धवलाटीका, पृ० ११।

५. "नीयते गम्यते येन श्रुतार्थांशो नयो हि सः।" त० श्लोक वा०, १-३३।६।

६. "नीयते परिच्छिद्यते एकदेशविशिष्टोऽर्थोऽनेनेति नयः।" स्या० मं०, का० २८। पृ० ३०७।

७. "स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यञ्जको नय.।" १०६। —आप्तमीमांसा।

यह नय श्रुतज्ञानका भेद है। इसलिये श्रुतके आधारसे ही नय की प्रवृत्ति होती है। श्रुत प्रमाण होनेसे सकल ग्राही अर्थात् वस्तुके सभी धर्मोंको जाननेवाला है और नय वस्तुके एक अंश–धर्मको ग्रहण करनेवाला है। इसीसे नय विकल्प रूप है। इस प्रकार श्रुतज्ञानके द्वारा जाने गये अर्थका अंश जिसके द्वारा जाना जाता है, उसे नय कहते हैं। यह नय प्रमाण सापेक्ष होता है। इसीलिये आचार्य विद्यानंदने 'प्रमाणके विषयस्वरूप 'स्व' और 'अर्थ'–पदार्थके एकदेश–अंशका जिसके द्वारा निर्णय किया जावे, उसे नय कहा है।'[1] प्रमाणसे जानी गई वस्तुके एक देशमें वस्तुत्वकी विवक्षाका नाम नय है। प्रमाणसे ग्रहीत वस्तुमें जो एकान्त रूप व्यवहार होता है, वह नयमूलक है। अतः समस्त व्यवहार नयके अधीन है।

अकलङ्कदेवने भी नयका सामान्य लक्षण करते हुए कहा है—

प्रमाणसे गृहीत अस्तित्व, नास्तित्व, नित्यत्व, अनित्यत्व आदि अनन्त धर्मात्मक जीवादि पदार्थोंके जो विशेष धर्म है, उनका निर्दोष कथन करनेवाला नय कहलाता है।'[2]

इसी प्रकार दिगम्बर और श्वेताम्बर–अन्य आचार्योंने भी नयका विश्लेषण करते हुए उसकी तर्क संगत परिभाषायें की हैं। इन सभीका नय विषयक अभिप्राय यही है कि जैनदर्शनके अनुसार प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मवाली है। वह न केवल सत् स्वरूप ही है और न असत् स्वरूप ही। न सर्वथा नित्य ही है और न सर्वथा अनित्य ही। न सर्वथा सामान्य रूप ही है और न सर्वथा विशेष रूप ही किन्तु दृष्टि भेदसे या कथं-चित्–किसी अपेक्षासे वह नित्य है तो किसी अपेक्षासे अनित्य। किसी अपेक्षासे सामान्य स्वरूप है तो किसी अपेक्षासे विशेष रूप। किसी अपेक्षासे वाच्य है तो किसी अपेक्षासे अवाच्य।[3]

इस प्रकार यह अनेकान्तात्मक वस्तु ही प्रमाणका विषय है। प्रमाण इस अनन्त धर्मवाली वस्तुको समग्रभावसे ग्रहण करता है। इसीलिये प्रमाणको सकलादेशी कहा है।[4] किन्तु इस अनन्त धर्मवाली वस्तुके किसी एक धर्मकी मुख्यतासे वक्ता अपने अभिप्रायके अनुसार कथन करता है। उस समय विवक्षा भेदसे वस्तुके एक धर्मका जो कथन किया जाता है, उसे नय कहते हैं। नय वस्तुके किसी एक विवक्षित धर्मका ग्राहक है—उसका ज्ञान कराता है, इसीलिये नयको विकलादेशी कहा गया है।[5] समस्त लोकव्यवहार नयाधीन है। क्योंकि ज्ञाता पूर्ण वस्तुको जानकर भी अपने अभिप्रायके अनुसार उसका कथन करता है। इसी ज्ञाताके अभिप्रायको नय कहते हैं[6] और प्रमाणसे गृहीत वस्तुके एक देशमें वस्तुका निश्चय ही अभिप्राय है।[7] नय ज्ञान ज्ञाताके अभिप्रायसे सम्बन्ध रखता है, इसलिये ज्ञाताका वह अभिप्राय विशेष नय है, जो प्रमाणके द्वारा जानी गई वस्तुके एक देशका ठीक ठीक परिज्ञान कराता है। नय अनन्त धर्मात्मक वस्तुके एक एक–अंश–धर्मका ज्ञान मुख्यतासे कराता है। इस आधारपर नयका सैद्धान्तिक लक्षण इस प्रकार किया जा सकता है—'वक्ताने अनेकान्तात्मक वस्तुके जिस धर्मकी विवक्षासे शब्द कहा है उसके उसी अभिप्रायको जाननेवाले ज्ञानको नय कहते हैं।'

---

१ "स्वार्थैकदेशनिर्णीतिलक्षणो हि नयः स्मृतः।" त० श्लोक वा०, १-६, वा० ४।

२. "प्रमाणप्रकाशितार्थविशेषप्ररूपको नयः।" राजवा० १-३३।

३. "स्यान्नाशि नित्यं सदृशं विरूपं वाच्यं न वाच्यं सदसत्तदेव।" अन्य० व्य० श्लोक–२५।

४. "सकलादेशः प्रमाणाधीनः।" सर्वार्थसिद्धि। १-६। पृ० २०।

५ "विकलादेशो नयाधीनः।" वही स० सिद्धि। १-६। पृ० २०।

६. "नयो ज्ञातुरभिप्रायः।" लघीयस्त्रय, श्लोक ५२।

७. "प्रमाणपरिग्रहीतार्थैकदेशवस्त्वध्यवसायः अभिप्रायः।" ध० टीका पु० ९, पृ० १६३।

वस्तुतः नय वस्तुका सापेक्ष निरूपण करता है इसीसे नय ज्ञान सापेक्ष होनेपर ही सम्यक् कहे जाते हैं; क्योंकि प्रत्येक नय दृष्टिभेदसे वस्तुके एक धर्मको ग्रहण करता है। अनन्त धर्मात्मक वस्तुके किसी एक धर्मकी अपेक्षासे उसके अन्य धर्मोंका निषेध करते हुए किन्तु उनको गौण करते हुए उस वस्तुका विवेचन करता नय है। नय किसी वस्तुमें अपने अपेक्षित धर्मको सिद्ध करते हुए अन्य धर्मोंमें उदासीन होकर उस वस्तुका विवेचन करता है। तात्पर्य यह है—नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत्-असत् आदि परस्पर विरोधी अनेक धर्मोंवाली वस्तुके विरोधी धर्मका निराकरण न करते हुए उस वस्तुके किसी एक अंश-धर्मको ग्रहण करनेवाले ज्ञाताके अभिप्रायको नय कहते हैं।

३. प्रमाण और नयमें अन्तर

प्रमाण अनन्त धर्मात्मक वस्तुके पूर्णरूपको ग्रहण करता है जबकि नय प्रमाणके द्वारा गृहीत वस्तुके एक रूपको ही ग्रहण करता है। उसका ज्ञान कराता है। इस कारण नय प्रमाणका एक अंश—धर्म है। जैसे—'समुद्रका एक अंश न समुद्र ही कहा जा सकता है और न असमुद्र ही; इसी प्रकार नय न प्रमाण है और न अप्रमाण। किन्तु प्रमाणका एक अंश है।'[1] अनेक धर्मात्मक वस्तु प्रमाणस्वरूप ज्ञानका विषय और उन अनेक धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मसे विशिष्ट वस्तु या पदार्थ नयका विषय माना गया है।[2]

प्रमाण और नयके पारस्परिक सम्बन्ध और भेदके विषयको यहाँ अधिक न बढ़ाते हुए संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि प्रमाण यदि अंग है तो नय उपांग, प्रमाण यदि अंशी है तो नय अंश, प्रमाण यदि समुद्र है तो नय तरंग निकर, प्रमाण यदि सिन्धु है तो नय उसका बिन्दु, प्रमाण यदि सूर्य है तो नय रश्मि-जाल, प्रमाण यदि वृक्ष है तो नय शाखा समूह; प्रमाण यदि व्यापक है तो नय व्याप्य। प्रमाण नयमें समाविष्ट नहीं है बल्कि नय ही प्रमाणमें समाविष्ट है। प्रमाणका सम्बन्ध पाँचों ज्ञानोंसे है जबकि नयका सम्बन्ध केवल श्रुतज्ञानसे ही है। पाँचों ज्ञानोंको प्रमाण कहते हैं जबकि नय श्रुतज्ञान रूप प्रमाणका अंश विशेष है।

४. सुनय, दुर्नय

नय जब अनेकधर्मात्मक वस्तुके विवक्षित धर्मको ग्रहण करके भी इतर धर्मोंका निराकरण नहीं करता है बल्कि उन्हें मुख्य या गौण करके वस्तु स्वरूपका प्रतिपादन करता है तब सुनय कहलाता है और जब वही किसी एक धर्मका आग्रह करके दूसरे धर्मोंका निराकरण करने लगता है तब वह दुर्नय हो जाता है। जैसे—'अस्त्येव घटः' 'यह घडा ही है' यहाँ यह 'एव कार' ही अन्यके निराकरणका सूचक है। वस्तुमें अभीष्ट धर्मकी प्रधानतासे अन्य धर्मोंका निषेध करने के कारण ही दुर्नयको मिथ्या कहा गया है।

जैनदर्शनके अनुसार जगत्‌को प्रत्येक वस्तु अस्तित्व-नास्तित्व, नित्यत्व-अनित्यत्व, एकत्व-अनेकत्व, भेदत्व-अभेदत्व, सामान्य-विशेष आदि अनन्त धर्मात्मक है।[3] या यों कहिये कि अनन्त धर्मोंका पिण्ड ही वस्तु है। क्योंकि वस्तुमें इन अनन्त धर्मोंका अस्तित्व माने बिना उसके अस्तित्वकी कल्पना ही सम्भव नहीं है।

---

१. 'न समुद्रोऽसमुद्रो वा, समुद्रांशो यथोच्यते।
नाऽप्रमाणं प्रमाणं वा प्रमाणांशस्तथा नयः।' नयोपदेश।

२. 'अनेकान्तात्मकं वस्तु गोचरः सर्वसंविदाम्।
एकदेशविशिष्टोऽर्थो नयस्य विषयो मतः॥' सिद्धसेन दिवाकर।

३. 'अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वम्।' वही अन्य० व्य० का०, २२।

उस अनन्त धर्मात्मक वस्तुके पूर्णरूपको ग्रहण करनेवाला प्रमाण है और उसके उन अनन्त धर्मोंमेंसे किसी एक धर्मका बोधक ज्ञाताका अभिप्राय या ज्ञान विशेष नय है। यद्यपि नय प्रमाणके ही अंश हैं पर इनमें यदि सापेक्षता है तो ये सुनय हैं अन्यथा दुर्णय। क्योंकि नय सदा सापेक्ष कथन करते हैं और दुर्णय निरपेक्ष। सुनय अनेकान्तात्मक वस्तुके किसी एक अंशको मुख्यभावसे ग्रहण करके भी अन्य अंशोंका निराकरण नहीं करता है जबकि दुर्णय अन्य अंशोंका निराकरण करता है, उनकी उपेक्षा करता है।

प्रमाण वस्तुके अनेक धर्मोंको ग्रहण करता है—जानता है जबकि नय किसी एक धर्मको, किन्तु एक धर्मको ग्रहण करता हुआ भी नय दूसरे धर्मोंका निषेध नहीं करता है। वह धर्मान्तर सापेक्ष एक धर्मका ज्ञान कराता है और इतर धर्म निरपेक्ष एक ही धर्मका ज्ञान करानेपर वह दुर्णय कहा जाता है।

जैनन्यायके प्रतिष्ठापक महान् दार्शनिक विद्वान् अकलङ्कदेवने एक श्लोक उद्धृत करते हुए प्रमाण, नय और दुर्णयका तर्क सम्मत विवेचन किया है—

'अनेक धर्मात्मक पदार्थके ज्ञानको प्रमाण और उसके एक अंशके धर्मान्तर सापेक्ष ज्ञानको नय कहते है तथा अन्य धर्मका निराकरण करने वाला एक अंशका ज्ञान दुर्णय है।'[1] नय सदा सापेक्ष होता है और दुर्णय निरपेक्ष। अर्थात् वस्तुका सापेक्ष कथन करना सुनय और निरपेक्ष कथन करना दुर्णय है तथा वस्तुके पूर्ण धर्मोंका कथन करना प्रमाण है।

इसीका विश्लेषण करते हुए आचार्य विद्यानन्दने कहा है—

'प्रमाण वस्तुके सभी धर्मोंको ग्रहण करता है—जानता है, नय धर्मान्तरोंकी उपेक्षा करता है और दुर्णय उनकी हानि—निराकरण करता है। प्रमाण 'तत् और अतत्' सभी अंशोंसे परिपूर्ण वस्तुको जानता है, नयसे केवल 'तत्-विवक्षित अंश'की प्रतिपत्ति—ज्ञान होता है और दुर्णय अन्य अंशोंका निराकरण करता है।'[2]

आचार्य हेमचन्द्रने भी प्रमाण, नय और दुर्णयके विषयको बड़े सुन्दर ढंगसे प्रस्तुत किया है—

'प्रमाण 'सत्'—'वस्तु सत् स्वरूप हैं' इस प्रकारसे वस्तु स्वरूपका विवेचन करता है और नय 'स्यात् सत्'—'वस्तु कथंचित्—किसी अपेक्षासे सत् है' इस प्रकार सापेक्षरूपसे वस्तु स्वरूपको निरूपण करता है तथा दुर्णय 'सदैव'—'पदार्थ सत् स्वरूप ही है' ऐसा 'एवकार'—'ही' द्वारा अवधारणकर उसके अन्य धर्मोंका निराकरण—निषेध करता है।'[3]

तात्पर्य यह है—प्रमाण वस्तुको समग्र रूपसे ग्रहण करता है और नय किसी वस्तुमें अपने इष्टधर्मको सिद्ध करते हुए उसके अन्य धर्मोंमें उदासीन होकर उसका विवेचन करता है जबतक दुर्णय किसी वस्तुमें अन्य धर्मोंका निषेध करते अपने अभीष्ट एकान्त अस्तित्वको सिद्ध करनेकी चेष्टा करता है। जैसे—'अस्त्येव घटः' यह 'घट ही है' यहाँ 'एवकार' अन्य नास्तित्व आदि धर्मोंका निषेध करता है। वस्तुमें अभीष्ट धर्मकी प्रधानतासे अन्य धर्मोंका निषेध या निराकरण करनेके कारण दुर्णयको मिथ्या कहा गया है। नयमें दुर्णयकी तरह एक धर्मके अतिरिक्त अन्य धर्मोंका निषेध या निराकरण नहीं किया जाता है, इसलिये नयको दुर्णय न

---

१ 'अर्थस्यानेकरूपस्य धीः प्रमाणं तदंशधीः।
नयो धर्मान्तरापेक्षी दुर्णयस्तन्निराकृतिः॥'' अष्टशती, पृ० २९०।

२ 'धर्मान्तरादानोपेक्षाहानिलक्षणत्वात् प्रमाणनयदुर्णयानां प्रकारान्तरासम्भवाच्च, प्रमाणात् तदतत्स्वभाव-प्रतिपत्तेः तत्प्रतिपत्तेः तदन्यनिराकृतेश्च।' अष्ट सहस्री, पृ० २९०।

३. 'सदेव सत् स्यात् सदिति त्रिधार्थो मीयेत दुर्नीतिनयप्रमाणैः।' अ० व्य०, का० २८।

कहकर सम्यक् ही कहा जाता है। नयका सम्यक्पना यही है कि वह वस्तुके सभी सापेक्षिक धर्मोंको लेकर ही वस्तुका विवेचन करता है। इसीलिये जैनदर्शनमें नयको महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है; क्योंकि वह समस्त विवादोंको दूरकर निर्विवाद वस्तु स्वरूपको सामने रखता है। नयको समझे बिना दुर्णयका परिज्ञान नहीं हो सकता है और न ही नयसे दुर्णयका भेद किया जा सकता है।

इस प्रकार ये नय यदि सापेक्ष हैं तो सुनय होते हैं और निरपेक्ष हों तो दुर्णय होते हैं। सुनयसे ही नियम पूर्वक समस्त व्यवहारोंकी सिद्धि होती है।[1] दुर्णयके विषयभूत एकान्तरूप पदार्थ वास्तविक नहीं हैं; क्योंकि दुर्णय केवल स्वार्थिक हैं—स्वेच्छा प्रवृत्त हैं—दूसरे नयोंकी अपेक्षा न करके केवल अपनी ही पुष्टि करते हैं और जो स्वार्थिक हैं वे विपरीत ग्राही होते हैं अतएव सदोष होते हैं।[2] इन सदोष या मिथ्या नयोंसे कभी भी वस्तु स्वरूपकी सिद्धि नहीं हो सकती है। वस्तु स्वरूपकी सिद्धि सापेक्ष कथन या सुनय द्वारा ही हो सकती है। जगत्को प्रत्येक वस्तु स्वरूपकी अपेक्षासे सत्—विद्यमान है और पर रूपकी अपेक्षा असत्—अविद्यमान है। यदि वस्तुको पररूपसे भी सत् रूप—भावरूप स्वीकार किया जावे, असत् रूप न माना जावे तो एक वस्तुके सद्भावमें सम्पूर्ण वस्तुओंका सद्भाव माना जाना चाहिये और यदि वस्तुको स्वरूपकी अपेक्षासे भी असत् रूप—अभावरूप माना जावे, सत् स्वरूप न माना जावे तो वस्तुको सर्वथा स्वभाव रहित मानना चाहिये। ऐसी स्थितिमें वस्तुओंका कोई स्वरूप ही नहीं रह जायगा जो कि वस्तुत्वरूपसे सर्वथा विपरीत है।[3] मतलब यह है कि प्रत्येक पदार्थ स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षा सत् स्वरूप और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षा असत् स्वरूप है।

इसी विषयका विवेचन आचार्य समन्तभद्रने भी किया है—

'संसारमें ऐसा कौन व्यक्ति है, जो चेतन-अचेतन आदि समस्त पदार्थोंको स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षासे सत् स्वरूप ही न माने और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षासे असत् स्वरूप ही न माने? यदि पदार्थको स्वद्रव्यादिकी अपेक्षा सत् स्वरूप और परद्रव्यादि अपेक्षा असत् स्वरूप न माना जावे तो किसी भी पदार्थकी व्यवस्था नहीं बन सकती है।[4]

द्रव्यका मतलब है गुण और पर्यायोंका समूह। अथवा गुण और पर्यायोंका अधिष्ठान द्रव्य कहलाता है। अपने गुण और पर्यायोंके समूहकी अपेक्षा होना ही द्रव्यकी अपेक्षा सत् या अस्तित्व कहलाता है। जैसे—'घड़ा' घट रूपसे सत्—भाव रूप है और पटरूपसे असत्—अभाव रूप है। अर्थात् घड़ा घड़ा ही है, कपड़ा नहीं है, अतः कहना चाहिये, हर एक वस्तु स्वद्रव्यकी अपेक्षासे है और परद्रव्यकी अपेक्षासे नहीं है।

द्रव्यके अंशोंको क्षेत्र कहते हैं। अथवा द्रव्यका संस्थान—आकृति उसका स्वक्षेत्र है। घड़ेके अंश-

---

१. 'ते सावेक्खा सुणया णिरवेक्खा ते वि दुण्णया होंति।
सयल-ववहार-सिद्धी सुणयादो होदि णियमेण।' स्वा० का० गाथा २३६।

२. 'दुर्णयैकान्तमारूढा भावानां स्वार्थिका हि ते।
स्वार्थिकाश्च विपर्यस्ताः सकलङ्काः नया यतः॥' आलाप पद्धति, पृ० १५७।

३. 'सर्वमस्ति स्वरूपेण पररूपेण नास्ति च।
अन्यथा सर्वसत्वं स्यात्, स्वरूपस्याप्यसम्भवः॥' प्रमाण मीमांसा, पृ० २९।

४. 'सदेव सर्वं को नेच्छेत्स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते॥' आप्तमीमांसा १५।

अवयव-संस्थान—आकृति ही घड़ेका क्षेत्र है। घड़ेका क्षेत्र वह नहीं है, जहाँ घड़ा रखा है। वह तो उसका व्यावहारिक क्षेत्र या स्थान है। इस अवयव रूप क्षेत्रकी अपेक्षा होना ही घड़ेका स्वक्षेत्रकी अपेक्षा होना है।

पदार्थके परिणमनको काल कहते हैं। अथवा उसकी पर्यायें ही उसका स्वकाल है। हरएक पदार्थका परिणमन पृथक् पृथक् है। घड़ेका अपने परिणमनकी अपेक्षा होना ही स्वकालकी अपेक्षा होना है; क्योंकि यही उसका स्वकाल है। घण्टा, घड़ी, मिनट, सैकेण्ड आदि वस्तुका स्वकाल नहीं है, वह तो व्यावहारिक काल है।

वस्तुके गुणको भाव कहते हैं। हरएक वस्तुका स्वभाव अलग-अलग होता है। घड़ा अपने ही स्वभावकी अपेक्षा है, वह अन्य पदार्थोंके स्वभावकी अपेक्षासे कैसे हो सकता है?

इस प्रकार स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावकी अपेक्षा पदार्थ है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभावकी अपेक्षा नहीं है। वस्तु इस चतुष्टयसे गुम्फित एक रसरूप है। कहने मात्रके लिए ही ये चार हैं, वास्तवमें एक ही हैं। क्योंकि तीन कालमें कभी भी ये बिखरकर वस्तुसे पृथक् नहीं हो सकते या यों कहिये कि इनसे शून्य वस्तु असत् है। इस सापेक्ष दृष्टिकोणसे कथन सम्यक् और निरपेक्ष कथन मिथ्या होता है। इसीलिये निरपेक्ष नय मिथ्या और सापेक्ष नय सम्यक् कहे गये हैं और इन्हीं सापेक्ष नयोंसे वस्तु स्वरूपकी सिद्धि होती है, लोक व्यवहारकी सिद्धि होती है।

किसी भी विषयपर विचार करनेके अनेक तरीके या दृष्टिकोण होते हैं। यदि उनका ठीक प्रकारसे समन्वय किया जावे, उनको सापेक्षताका रूप दिया जावे तो हम उस विषयमें किसी एक सही निर्णयपर पहुँच सकते हैं। जैसे किसी उद्यानमें जानेके अनेक मार्ग होते हैं, कोई मार्ग पूर्वसे जाता है तो कोई उत्तरसे, कोई पश्चिमसे जाता है तो कोई दक्षिणसे किन्तु अन्दर आकर वे सब मार्ग परस्पर मिल जाते हैं। इसी प्रकार एक ही वस्तुके सम्बन्धमें विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं किन्तु उनका समन्वय होना जरूरी है। इस समन्वयके सिद्धान्तको ही स्याद्वाद या सापेक्षवाद या नयवाद कहा जाता है। इसीको नयमार्ग भी कहते हैं। इस नयमार्गसे ही विभिन्नमतों तथा विभिन्न विचारोंका समन्वय किया जा सकता है। जो नय एक दूसरेके पूरक हैं, सहयोगी हैं, वे ही सुनय कहे जाते हैं और वे ही कार्यकारी होते हैं। किन्तु जो परस्पर एक दूसरे-का विरोध करते है, निराकरण या निषेध करते है वे प्रतिद्वन्दी होनेसे दुर्णय हैं अतएव हानिकारक हैं।

यही विचारधारा महान् स्तुतिकार आचार्य समन्तभद्रने श्री विमलनाथ तीर्थंकरकी स्तुति करते हुए अभिव्यक्त की है—"हे भगवन्! जो ये नित्य-अनित्य, सत्-असत् आदि एकान्त रूप नय हैं, वे परस्परमें एक दूसरेकी अपेक्षा न रखनेके कारण अपने व दूसरेका विनाश—अहित करनेवाले हैं। वे न तो कहनेवालेका भला करते है और न ही समझनेवालेका भला करते हैं। किन्तु वे ही नय आपके मतमें परस्पर एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेके कारण अपना व दूसरोंका उपकार करते हैं। वे ठीक प्रकारसे वस्तु स्वरूपका प्रतिपादन करते है और उस यथार्थ वस्तु स्वरूपको सुननेवाले भी आत्मकल्याणके मार्गपर लग जाते हैं। इसीलिये वे तत्त्व स्वरूप-यथार्थस्वरूप अथवा सुनय कहे जाते हैं।"[1]

वस्तुका स्वरूप यदि सर्वथा एकान्त रूपसे सत् या असत्, एकरूप या अनेकरूप, नित्य या अनित्य, वक्तव्य या अवक्तव्य माना जावे तो वस्तु स्वरूपकी सिद्धि ही नहीं हो सकती है और यदि वही वस्तुका

१. य एव नित्य-क्षणिकादयो नया मिथोऽनपेक्षाः स्वपरप्रणाशिनः।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः परस्परेक्षाः स्वपरोपकारिणः॥" स्वयम्भू स्तोत्र, ६१।

स्वरूप किसी अपेक्षासे सत् तो दूसरी अपेक्षासे असत्, किसी अपेक्षासे एकरूप तो दूसरी अपेक्षासे अनेकरूप, किसी अपेक्षासे नित्य तो दूसरी अपेक्षा अनित्य, किसी अपेक्षासे वक्तव्य तो दूसरी अपेक्षासे अवक्तव्य माना जावे तो सब कथन बाधा रहित सिद्ध हो जावेगा ।[1]

वस्तु अपने द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षासे सत्—भाव रूप है और पर द्रव्यादि चतुष्टय की अपेक्षासे असत्—अभाव रूप है। वह वस्तु 'अखण्ड गुण समुदाय रूप है' इस दृष्टिसे एक है और वही 'अनेक गुणोंको रखनेवाली है' इस दृष्टिसे अनेक है। वह 'अपने स्वरूपसे कभी भी नष्ट नहीं होती है' इस दृष्टिसे नित्य है और वही 'पर्यायों या अवस्थाओंके परिवर्तित होते रहनेके कारण नाशवन्त है' इस दृष्टिसे अनित्य है। वस्तु-धर्मों को क्रमसे कहे जा सकने की अपेक्षासे वह वक्तव्य है और 'उन्हीं अनेक धर्मोंको एक ही समयमें एक ही साथ वचनों द्वारा नही कहा जा सकता है' इस दृष्टिसे अवक्तव्य है। यह सब कथन नयोंके योगसे सिद्ध होता है और यदि वही वस्तु स्वरूप सर्वथा सत्—भावरूप या सर्वथा असत्—अभावरूप आदि माना जावे तो यह सब मान्यता मिथ्या है। इसे ही दुर्णय कहा जाता है।[2]

इस प्रकार वस्तु स्वरूपका कथन सर्वथा एकान्त दृष्टिसे न करके सापेक्ष रूपसे किया जावे तो विवादके लिये कोई अवसर ही प्राप्त नही होगा और समस्त एकान्त वादी दर्शनोंका समन्वय किया जा सकता है। इसके लिये सुनय ही एक ऐसा प्रशस्त मार्ग है जो सापेक्ष दृष्टिकोणको उपस्थित करके समस्त एकान्त वादोंके एकांगी दृष्टिकोणोंको समाप्त कर देता है। वह परस्पर विरुद्ध प्रतिभासित होनेवाले सभी वादोंका निर्दोष समन्वय करता है। क्योंकि विभिन्न दृष्टिकोणोंसे विचार करनेपर ही वस्तुका वास्तविक स्वरूप जाना जा सकता है।

बौद्धादि अनित्यत्ववादी दर्शन यदि अनित्यत्व धर्मको सर्वथा एकान्त दृष्टिसे स्वीकार न करके उसे सापेक्ष दृष्टिसे अर्थात् पर्याय दृष्टिसे स्वीकार करें और सांख्य, न्याय-वैशेषिक आदि नित्यत्ववादी दर्शन नित्यत्व धर्मको सर्वथा स्वीकार न करके द्रव्यदृष्टिसे स्वीकार करें तो कोई विवाद ही उपस्थित नही हो सकेगा और इस प्रकार दोनों ही दृष्टिकोण सापेक्ष रूपसे सत्य सिद्ध होंगे। नयवाद एक दृष्टिकोणको मानकर दूसरे दृष्टि-कोणका निराकरण—निषेध नहीं करता बल्कि सभी दृष्टिकोणोंका समन्वय करके सत्यको ग्रहण करता है।

जैन दर्शनमें वस्तुके परस्पर विरोधी अनेक धर्मोंका कथन करनेके लिये 'स्यात्' शब्दका प्रयोग किया जाता है। 'स्यात्' शब्दका अर्थ—'शायद', सम्भव या संशयादि नही है जैसा कि कुछ लोग साधारण बोलचाल की भाषामें इसका अर्थ करते है। इसका गूढ़ अर्थ है—कथंचित्, कथंचन, अपेक्षा या दृष्टिकोण यह 'स्यात्' शब्द निपातरूप अव्यय, सर्वथापनेका निषेधक, अनेकान्तका द्योतक, कथंचित्—विवक्षित अर्थका बोधक है।[3] इस 'स्यात्' शब्दका प्रयोग नयोके साथ करनेपर वे नय अभीष्ट अर्थके साधक होते हैं। वे दुराग्रहको दूर

---

१. "सदेकनित्यवक्तव्यास्तद्विपक्षाश्च ये नयाः।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥" स्वयंभूस्तोत्र, १०१।

२. "कथंचित्ते सदेवेष्टं कथंचिदसदेव तत्।
तथोभयमवाच्यं च नययोगान्न सर्वथा ॥" आप्तमीमांसा। १४१

३. 'वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्यं प्रतिविशेषकः।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात्तव केवलिनामपि ॥' आप्तमीमांसा।१०३।
'सर्वथात्वनिषेधकोऽनेकान्तताद्योतकः कथंचिदर्थे स्याच्छब्दो निपातः' पंचास्ति० टीका

करके दृष्टिको विशाल और हृदयको उदार बनाते हैं। वे वस्तुके विविध रूपोंका विश्लेषण हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं; क्योंकि 'स्यात्' पदसे लाञ्छित नयोंके द्वारा अपेक्षा पूर्वक वस्तुके किसी एक धर्मका कथन करनेपर उसके दूसरे धर्मोंका लोप नहीं होता।

इसीका विवेचन आचार्य समन्तभद्रने भ० विमल नाथकी स्तुतिके रूपमें किया है—

'हे भगवन्। जिस प्रकार सिद्ध सुसंस्कृत रसोंके संयोगसे लोह-धातु स्वर्ण बनकर अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले बन जाते हैं, उसी प्रकार आपके द्वारा उपदिष्ट द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक आदि सैद्धान्तिकनय तथा निश्चय व्यवहार आदि आध्यात्मिक नय 'स्यात्' पदसे चिन्हित होकर मनोवाञ्छित फल देने वाले हो जाते हैं—वस्तुके यथार्थ स्वरूपका सापेक्ष निरूपण द्वारा मुमुक्षु जनोंको एकान्त मिथ्या मार्गसे हटाकर अनेकान्तके मार्गमें लगाकर सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति कराते हैं। इसी लिये हितैषी आर्यजन आपको नमस्कार करते हैं।'[1]

इस प्रकार 'स्यात्' पद अङ्कित इन सापेक्ष नयोंसे विभिन्न दृष्टियोंका समन्वय होता है। एकान्तका निरसन होकर अनेकान्तका समर्थन होता है। एकान्त दृष्टि कहती है कि तत्त्व 'ऐसा ही है' और अनेकान्त दृष्टि कहती है कि तत्त्व ऐसा भी है। ये सापेक्षनय ही सुनय और निरपेक्ष नय दुर्णय हैं। यह 'भी' और 'ही' का प्रयोग ही सुनय और दुर्णयका निर्देश करता है। सुनय वस्तुका यथार्थ स्वरूप दर्शाता है जब कि दुर्णय वस्तुके वास्तविक स्वरूपका भान नहीं होने देता है। इस प्रकार जैन दर्शनमें यह नयमीमांसा वस्तु स्वरूपको ठीक ठीक समझनेके लिये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतीय दर्शन शास्त्रके लिये इसका बहुत बड़ा योगदान है।

१. 'नयास्तवस्यात्पदसत्यलाञ्छिता रसोपविद्धा इव लोहधातवः।
भवन्त्यभिप्रेतफलायतस्ततो भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः॥' बृ० स्वं, स्तोत्र, ६५।

पद्मचरितमें उल्लिखित विद्याएँ और उनका स्वरूप

डा० रमेशचन्द्र, जैनदर्शनाचार्य

●

सातवीं शताब्दीके आचार्य रविषेण द्वारा लिखित पद्मचरित संस्कृत जैनकथा साहित्यका आद्य ग्रन्थ है। इसका महत्त्व अन्य दृष्टियोंसे तो है ही, विभिन्न प्रकारकी विद्याओंके विषयमें इसमें महत्त्वपूर्ण सामग्री विद्यमान है। इसके अध्ययनसे विदित होता है कि उस समय विद्या लिखित और मौखिक दो प्रकारसे दी जाती थी। प्रारम्भमें वर्णमालाका ज्ञान कराया जाता था। एक स्थानपर चक्रपुरके राजा चक्रध्वज और उनकी मनस्विनी नामक स्त्रीसे उत्पन्न चित्तोत्सवा नामक कन्याका गुरुके घर जाकर खड़िया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखनेका कथन किया गया है।[१]

विद्याप्राप्तिके लिए आवश्यक बातें

विद्या प्राप्तिके लिए स्थिर चित्त होना आवश्यक माना जाता था।[२] यदि शिष्य शक्तिसे युक्त होता था तो वह गुरुके लिए प्रसन्नताका विषय होता था। जिस प्रकार सूर्यके द्वारा नेत्रवान् (अर्थात् नेत्रशक्तिसे युक्त) पुरुषको समस्त पदार्थ सुखसे दिखाई देते हैं। नेत्रहीन पुरुषको सूर्यका प्रकाश होनेपर भी कुछ भी नहीं दिखाई देता उसी प्रकार शक्ति रहित अथवा अल्पशक्तिवाले शिष्यको भी विद्याप्राप्तिमें कठिनाई होती है।[3] पात्र, अपात्रका उस समय बहुत अधिक ध्यान रखा जाता था। पात्रके लिए उपदेश देनेवाला गुरु कृत-कृत्यताको प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार उल्लूके लिए किया हुआ सूर्यका प्रकाश व्यर्थ होता है।[४] कर्मके प्रभावसे शीघ्र या देरसे विद्याकी सिद्धि होती है। किसीको दस वर्षमें, किसीको एक माहमें, किसीको एक ही क्षणमें विद्यायें सिद्ध हो जाती हैं। यह सब कर्मोंका प्रभाव है।[५]

गुरुका महत्त्व—गुरुका उस समय अधिक महत्त्व था। शिष्य कितना ही निपुण क्यों न हो वह गुरु या आचार्यकी मर्यादाका सदैव ध्यान रखता था। विद्युत्केश विद्याधरने एक मुनिराजसे पूछा कि हे देव! मैं क्या करूँ? मेरा क्या कर्तव्य है? इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा कि चार ज्ञानके धारी हमारे गुरु पास ही विद्यमान् हैं, अतः हम लोग उन्हींके पास चलें, यही सनातन धर्म है। आचार्यके समीप रहनेपर भी जो उसके पास नहीं जाता है और स्वयं उपदेश आदि देकर उनका काम करता है वह मूर्ख शिष्यपनाको ही छोड देता[६] है। शिष्य और गुरुका बडा आत्मिक सम्बन्ध होता है। शिष्य अपनी विशेष बातोंको गुरुसे निवेदन कर बड़े भारी दुःखसे छूट जाता है।[७] सामान्य शिष्यसे लेकर राजपुत्र तक गुरुकी सेवामें तत्पर रहते थे।[८] गुरुके समक्ष लिया हुआ व्रत भङ्ग करना बहुत दुःखकर माना जाता था। रामद्वारा परित्यक्ता सीता कहती है कि निश्चित ही मैंने अन्य जन्ममें गुरुके समक्ष व्रत लेकर भङ्ग किया होगा, जिसका यह फल प्राप्त हुआ है।[९] शिष्यके अभिभावक भी गुरुका यथायोग्य सम्मान करते थे।[१०]

विद्या प्राप्तिका स्थान—विद्या प्राप्ति कुछ लोग गुरुके घर पर करते थे।[११] कहीं-कहीं विशिष्ट विद्वानोंको राजा लोग अपने घर पर ही रख लिया करते थे।[१२] उस समयके विद्यालय भी विद्याप्राप्तिके

---

१. पद्मचरित २६।७। २. वही २६।७। ३. वही १००।५०। ४. वही १००।५२। ५. पद्म ७।३१८। ६. वही ६।२६२-२६४। ७. वही १५।१२२-१२३। ८. वही १००।८१। ९. वही ९७।१६०। १०. वही ३९।१६३। ११. वही २६।५,६। १२. वही ३९।१६०।

उत्तम स्थान थे।[1] तापसी लोगोंके बड़े-बड़े आश्रमोंका भी उल्लेख मिलता है। जिनके घर बहुतसे शिष्य विद्याध्ययन करते थे।[2]

लिपि—लेखन कलाका उस समय विकास हो गया था। पद्मचरितमें चार प्रकारकी लिपि कही गई है।

अनुवृत्त[3]—जो लिपि आमतौरसे अपने देशमें चलती है, उसे अनुवृत्त कहते हैं।

विकृत[4]—लोग अपने संकेतानुसार जिसकी कल्पना कर लेते हैं उसे विकृत कहते हैं।

सामयिक[5]—प्रत्यङ्ग आदि वर्णोंमें जिसका प्रयोग होता है उसे सामयिक कहते हैं।

नैमित्तिक[6]—वर्णोंके बदले पुष्पादि रखकर जो ज्ञान कराया जाता है उसे नैमित्तिक कहते हैं। इस लिपिके प्राच्य, मध्यम, यौधेय, समाद्र आदि देशोंकी अपेक्षा अनेक भेद हैं।

विद्याप्रदाता—विद्याप्रदाताओंकी श्रेणीमें गुरु[7], उपाध्याय[8], विद्वान्[9], यति[10], आचार्य[11] तथा मुनि नाम आए हैं।

विद्याप्रदाताके गुण—विद्याप्रदाताको महाविद्याओंसे युक्त, पराक्रमी, प्रशान्तमुख, धीरवीर, सुन्दर आकृतिका धारक शुद्ध भावनाओंसे युक्त, अल्पपरिग्रहका धारी, उत्तमव्रतोंसे युक्त, धर्मके रहस्यको जाननेवाला, कलारूपी समुद्रका पारगामी, शिष्यकी शक्तिको जाननेवाला तथा पात्र, अपात्रका विचार करनेवाला होना चाहिए[12]।

विद्याओंके प्रकार—पद्मचरितसे व्याकरण, गणित शास्त्र, धनुर्वेद, अस्त्रशस्त्रविद्या, आरण्यकशास्त्र, ज्योतिषविद्या, जैनदर्शन, वेद, वेदान्त, बौद्धदर्शन, निमित्तविद्या, शकुनविद्या, आरोग्यशास्त्र, कामशास्त्र, संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी आदि भाषायें, लोकज्ञता, संगीतविद्या, नृत्यविद्या, कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र आदि विद्याओंके संकेत मिलते हैं।

व्याकरण विद्या—व्याकरण विद्याका उस समय तक अधिक विकास हो गया था, ऐसा पद्मचरितके अध्ययनसे विदित होता है। नवम पर्वमें कैलास पर्वतकी उपमा व्याकरणसे देते हुए रविषेण कहते हैं—जिस प्रकार व्याकरण अनेक धातुओंसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत अनेक धातुओं (चाँदी, सोना आदि) से युक्त था, जिस प्रकार व्याकरण हजारों गणों (शब्द समूहों) से युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी हजारों गणों (साधु समूहों) से युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण सुवर्ण अर्थात् उत्तमोत्तम वर्णोंकी घटनासे मनोहर है उसी प्रकार वह पर्वत भी सुवर्ण अर्थात् स्वर्णकी घटनासे मनोहर था। जिस प्रकार व्याकरण पदों अर्थात् सुबन्त तिङन्त रूप शब्द समुदायसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक पदों अर्थात् स्थानों या प्रत्यन्त पर्वतों अथवा चरण चिह्नोंसे युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण प्रकृति अर्थात् मूल शब्दोंके अनुरूप विकारों अर्थात् प्रत्ययादिजन्य विकारोंसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी प्रकृति अर्थात् स्वाभाविक रचनाके अनुरूप विकारोंसे युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण बिल अर्थात् मूल सूत्रोंसे युक्त है उसी प्रकार वह पर्वत भी बिल अर्थात् ऊसर पृथ्वी अथवा गर्त आदिसे युक्त था। जिस प्रकार व्याकरण (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित आदि) अनेक स्वरोंसे पूर्ण है उसी प्रकार वह पर्वत भी अनेक प्रकारके स्वरों अर्थात् प्राणियोंके शब्दोंसे पूर्ण था। इस

---

१ वही ३९।१६२। २. वही ८।३३३, ३३४। ३. पद्मचरित २४।२४। ४. वही २४।२४। ५. वही २४।२५। ६. वही २४।२५, २६। ७. वही २६।६। ८. वही ३९।१६३। ९. वही ३९।१६०। १०. वही ३९।३०३। ११. वही २५।५३। १२. वही १००।३२, ३३, ३४, १००।५०, ५२।

उपमामें आए धातु गण, सुवर्ण, पद, प्रकृति, बिल तथा स्वर शब्द व्याकरणके विकासका द्योतन करते हैं[1]। व्याकरण शास्त्रके नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात जैसे पारिभाषिक शब्दोंका भी यहाँ प्रयोग हुआ है[2]।

गणितशास्त्र—पद्मचरितमें इसे सांख्यिकी कहा है। जम्बू द्वीपके भरत क्षेत्रके पद्मक नगरके रम्भ नामक पुरुषको गणितशास्त्रका पाठी कहा गया है।[3]

धनुर्वेद—राजा सहस्ररश्मिके ऊपर जब रावणने बाण छोड़े तब सहस्ररश्मिने कहा कि हे रावण! तुम तो बड़े धनुर्धारी मालूम पड़ते हो। यह उपदेश तुम्हें किस गुरुसे प्राप्त हुआ है। अरे छोकरे! पहले धनुर्वेद पढ़ और अभ्यास कर, पश्चात् मेरे साथ युद्ध करना।[4] पच्चीसवें पर्वमें राजगृह नगरके वैवस्वत नामक एक विद्वान्‌का उल्लेख किया गया है जो धनुर्वेदमें निपुण था और विद्याध्ययनमें श्रम करनेवाले एक हजार शिष्यों सहित था। काम्पिल्य नगरके शिखी नामक ब्राह्मणका लड़का ऐर उसीके पास विधिपूर्वक विद्या सीखने लगा और कुछ ही समयमें उसके हजार शिष्योंसे भी अधिक निपुण हो गया।[5] इससे धनुर्वेद सीखने-सिखानेका प्रचलन सूचित होता है।

आरण्यक शास्त्र—पद्मचरितके ११वें पर्वमें क्षीरकदम्बक द्वारा नारद आदि शिष्योंको आरण्यक शास्त्र पढ़ानेका उल्लेख है[6]। आरण्यक शास्त्रसे तात्पर्य यहाँ बृहदारण्यक हो सकता है।

ज्योतिष विद्या—ज्योतिष विद्या बहुत प्राचीन है। मंगलकार्यसे पूर्व ज्योतिषी द्वारा ग्रहों आदिकी स्थितिका ज्ञान प्राप्त कर शुभाशुभ मुहूर्तकी जानकारी कर ली जाती थी। विवाहकी तिथि ज्योतिषी निश्चित करते थे[7]। किसी शुभ दिन जब सौम्यग्रह सामने स्थित होते थे, क्रूरग्रह विमुख होते थे और लग्न मङ्गलकारी होती थी तब प्रस्थान किया जाता था। अंजनाने[8] मामासे अपने पुत्रके ग्रहोंके विषयमें जानना चाहा तब उसके मामाके पार्श्वग नामक ज्योतिषीने पुत्रके जन्मका समय पूछकर संक्षेपसे उसके जीवनके विषयमें बतलाया—यह चैत्रके कृष्ण पक्षकी अष्टमी तिथि है, श्रवण नक्षत्र है, सूर्य दिनका स्वामी है। सूर्य मेषका है अतः उच्च स्थानपर बैठा है। चन्द्रमा मकरका है अत मध्यगृहमें स्थित है। मङ्गल वृषका है अत. मध्य-स्थानमें बैठा है। बुध मीनका है वह भी मध्यस्थानमें स्थित है। शुक्र और शनि दोनों ही मीनके है तथा उच्च स्थानमें आरूढ हैं। उस समय मीनका ही उदय था। सूर्य पूर्ण दृष्टिसे शनिको देखता है और मङ्गल सूर्यको अर्धदृष्टिसे देखता है। बृहस्पति चन्द्रमाको पूर्ण दृष्टिसे देखता है और चन्द्रमा भी अर्धदृष्टिसे बृहस्पतिको देखता है। बृहस्पति शनिको पौन दृष्टिसे देखता है और शनि बृहस्पतिको अर्धदृष्टिसे देखता है। बृहस्पति

---

१. नाना धातुसमाकीर्णं गणैर्युक्तं सहस्रश.।
सुवर्णघटनारम्यं पदपंक्तिभिराजितम् ॥ पद्म० ९।११२।
प्रकृत्यनुगतैर्युक्तं विकारैर्बिलसंयुतम्।
स्वरैर्बहुविधैः पूर्णं लब्धव्याकरणोपमम् ॥ पद्म० ९।११३।

२. नामाख्यातोपसर्गेषु निपातेषु च संस्कृता।
प्राकृती शौरसेनी च भाषा यत्र त्रयी स्मृता ॥ पद्म० २४।११।

३. पद्मचरित ५।११४।

४. अहो रावण धानुष्को महानसि कुतस्तव।
उपदेशोऽयमायातो गुरोः परमकौशलात् ॥ पद्म० १०।१२७।
वत्स तावद्धनुर्वेदमधीष्व कुरु च श्रमम्।
ततो मया समं युद्धं करिष्यसि नयोज्झितः ॥ पद्म० १०।१२८।

५. पद्म० २५।४६, ४७। ६. वही ११।१५। ७. वही १५।९३। ८. वही ८।१८, १९।

शुक्रको पौन दृष्टिसे देखता है और शुक्र भी बृहस्पति पर पौन दृष्टि डालता है। अवशिष्ट ग्रहोंकी पारस्परिक अपेक्षा नहीं है। उस समय इसके ग्रहोंके उदय क्षेत्र कालका अत्यधिक बल है। सूर्य मङ्गल और बृहस्पति इसके राजयोगको सूचित कर रहे हैं और शनि मुक्तिदायी योगको प्रकट कर रहा है। यदि एक बृहस्पति ही उच्चस्थान पर स्थित हो तो समस्त कल्याणको प्राप्तिका कारण होते हैं। इसके तो समस्त ग्रह उच्चस्थान में स्थित हैं। उस समय ब्राह्म नामका योग और शुभ नामका मुहूर्त था अतः ये दोनों ही ब्राह्मस्थान अर्थात् मोक्ष सम्बन्धी सुखके समागमको सूचित करते हैं। इस प्रकार इस पुत्रका यह ज्योतिष्चक्र सर्ववस्तुको दोषोंसे रहित सूचित करता है।[1]

वेद—पद्मचरितके ११वें पर्वमें सर्वज्ञसिद्धिके प्रसङ्गमें वेदके दोष दिखाए गए हैं।[2] वेदका कोई कर्ता है इस बातको अयुक्तिसंगत सिद्ध कर वेदका कोई कर्ता नहीं है इस पक्षमें अनेक प्रमाण दिए गए हैं। इसमें प्रथम उक्ति यह है चूँकि वेद पद और वाक्यादि रूप है तथा विधेय और प्रतिषेध अर्थसे युक्त है अतः किसी कर्ताके द्वारा बनाया गया। जिस प्रकार मैत्रका काव्य पद वाक्यादि रूप होनेसे किसीके द्वारा बनाया गया है।[3] यहाँ वेद शास्त्र है इसी बातको असिद्ध ठहराया गया है; क्योंकि शास्त्र वह कहलाता है जो माताके समान समस्त संसारके लिए हितकर उपदेश दे। जो कार्य निर्दोष होता है उसमें प्रायश्चित्तका निरूपण करना उचित नहीं। परन्तु याज्ञिक हिंसामें प्रायश्चित्त कहा गया है इसलिए वह सदोष है।[4] प्रायश्चित्तके भी यहाँ कुछ उदाहरण दिए गए हैं।[5]

वेदान्त—पद्मचरितमें अग्निभूत तथा वायुभूत नामक दो ब्राह्मणोंकी हँसी उड़ाते हुए लोगोंके मुखसे यह कहलाया गया है कि ब्रह्मतावादमें मूढ़ एवं पशुओंकी हिंसामें आसक्त रहने वाले इन दोनों ब्राह्मणोंने सुखकी इच्छुक प्रजाको लूट डाला है।[6]

बौद्धदर्शन—पद्मचरितके दूसरे पर्वमें राजा श्रेणिकका वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस प्रकार बुद्धका दर्शन अर्थवाद (वास्तविकतावाद) से रहित होता है उसी प्रकार उसका दर्शन (साक्षात्कार) अर्थवाद (धनप्राप्ति) से रहित नहीं होता था।[7]

निमित्तविद्या—पद्मचरितमें अष्टाङ्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज[8] और क्षुल्लकका[9] उल्लेख हुआ है। लोगोंने उनसे अपने मनोनुकूल प्रश्न पूछे। शकुन-पद्मचरितमें शकुनोंका विस्तृत उल्लेख मिलता है। यहाँ प्राप्त स्वप्नोंको निम्नलिखित भागोंमें विभाजित कर सकते हैं—

---

१. पद्म० १७।३६४, ३७१। २. पद्म० ११।१८४। ३. पद्म० ११।१९०।

४. वेदागमस्य शास्त्रत्वमसिद्धं शास्त्रमुच्यते।
तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम्॥ पद्म० ११।२०९।
प्रायश्चित्तं च निर्दोषे वक्तु कर्मणि नोचितम्।
अत्र सूक्तं ततो दुष्ट तच्चेदमभिधीयते॥ पद्म० ११।२१०।

५. पद्म० ११।२११–२१५।

६. एताभ्यां ब्रह्मतावादे विमूढाभ्या सुखार्थिनी।
प्रजेयं मुषिता सर्वा सकाम्यां पशुहिंसने॥ पद्म० १०९।७९।

७. बुद्धस्येव न निर्मुक्तमर्थवादेन दर्शनम्।
न श्रीर्बहुलदोषोपघातिनी शीतगोरिव॥ पद्म० २।६४।

८. पद्म० ५१।२९। ९. पद्म० १००।४४।

१. प्राणियोंके शुभाशुभसूचक दर्शन एवं क्रियाओंसे प्राप्त शकुन। २. प्राकृतिक तत्त्वोंसे प्राप्त शकुन। ३. शारीरिक लक्षणोंसे प्राप्त शकुन। ४. स्वप्नोंसे प्राप्त शकुन। ५. ग्रहोपग्रहोंसे प्राप्त शकुन।

आरोग्य शास्त्र—पद्मचरितमें विकसित आरोग्यकलाके दर्शन होते हैं। एक स्थानपर कहा गया है कि जब रोग उत्पन्न होता है तो उसका सुखसे विनाश किया जाता है, पर जब जड़ बाँधकर व्याप्त हो जाता है तो मरनेके बाद ही उसका प्रतीकार हो सकता है।[1] एक अन्य स्थानपर औषधि कड़वी होनेपर भी उसे ग्रहण योग्य बतलाया है।[2] उस समय होनेवाले रोगोंमेंसे कुछ रोगोंके[3] नाम भी प्रसङ्गवश पद्मचरितमें आये हैं। जैसे उरोघात (जिसमें वक्षःस्थल, पसली आदिमें दर्द होने लगता है), महादाह ज्वर (जिसमें महादाह उत्पन्न होता है), लाल परिस्राव (जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है), सर्वशूल (जिसमें सर्वाङ्गमें पीड़ा होती है), अरुचि (जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है), छर्दि (जिसमें वमन होने लगता है), श्वयथु (जिसमें शरीरपर सूजन आ जाता है), स्फोटक (जिसमें शरीरपर फोड़े निकल आते हैं) तथा वायुरोग[4]।

कामशास्त्र—पद्मचरितके १५ वें पर्वमें दस काम वेगोंको आधार मानकर अञ्जनाकी प्राप्तिके लिए पवनञ्जयकी दशाका वर्णन है। चिन्ता, आकृति देखनेकी इच्छा, मन्द लम्बी और गरम साँसें निकालना, ज्वर, बेचैनी, अरति (विषयद्वेष), विप्रलाप (बकवाद), उन्मत्तता, मूर्छा तथा दुःख संभार (दुःखका भार) इस प्रकार कामकी दस अवस्थायें यहाँ गिनाई गई हैं।[5] प्रेमकी उत्पत्ति यहाँ पाँच कारणोंसे बतलाई गई है। पहले स्त्री पुरुषका मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है तथा तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है।[6]

संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी आदि भाषायें—२४वें पर्वमें राजकुमारी केकयाके सङ्गीतज्ञानके प्रसङ्गमें प्रातिपदिक, उपसर्ग और निपातोंमें संस्कारको प्राप्त प्राकृत, संस्कृत और शौरसेनी भाषाओंकी स्थितिका संकेत किया गया है।[7]

संगीत विद्या—पद्मचरितमें सङ्गीतविद्या सम्बन्धी अनेक पारिभाषिक शब्द आए हैं। इसका विस्तृत वर्णन एक अन्य लेखमें किया जा चुका है।

नृत्यविद्या—पद्मचरितमें कई स्थानोंपर नृत्यका वर्णन मिलता है। साधारण[9] लोगोंसे लेकर राजपरिवार[10], भूमगोचरी[11] और विद्याधरों[12] तकके यहाँ नृत्यकला सीखी जाती थी। राजा सहस्रारके यहाँ २६ हजार नृत्यकार नृत्य करते थे।[13] किन्हीं-किन्हीं पशुओं तकको नृत्यकी शिक्षा दी जाती थी।[14]

काव्यशास्त्र—पद्मचरितमें शृंगार, हास्य, करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, रौद्र, बीभत्स और शान्त ये ९ रस कहे गये हैं।[15] लक्षण, अलंकार, वाच्य, प्रमाण, छन्द तथा आगम इनका भी अवसरके अनुसार यहाँ वर्णन हुआ है।[16]

अर्थशास्त्र—७३ वें पर्वमें अर्थशास्त्रका नाम आया है।

---

१. पद्म० १२।१६१। २. पद्म० ७३।४८। ३. पद्म० ६४।३५। ४. पद्म० ३७।४१।
५. पद्म० १५।९६-१००। ६. पद्म० २६।८। ७. पद्म० २४।१२।
८. पद्म० ३८।१३०, ३९।५३, ३९।५६, ४०।२३, ३७।९५, ८८।२८, ३७।१०८, ७३।४८, ७३।१६, १०३।६६, २।२२, २४।६०, ७१।८, ३७।१०९। ९. पद्म० ७१।८। १०. पद्म० २४।६। ११. पद्म० १०३।६६।
१२. पद्म० १०३।६६। १३. पद्म० ७।२५। १४. पद्म० २४।२२, २३। १५. पद्म० १२३।१८६।
१६. ७३।२८।

नीतिशास्त्र—सीताहरणके बाद शुक आदि श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर मन्दोदरी कहती है कि आप लोग राजा रावणसे हितकारी बात क्यों नहीं कहते हैं। रावण समस्त अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्रको जानते हैं तो भी मोहके द्वारा क्यों पीड़ित हो रहे हैं।[1]

नाट्यशास्त्र—गीत नृत्य और वादित्र इन तीनोंका एक साथ होना नाट्य कहलाता है।[2]

मानविद्या—मेय, देश, तुला और कालके भेदसे मान चार प्रकारका होता है।[3]

मेय—प्रस्थ आदिके भेदसे जिसके अनेक भेद हैं उसे मेय कहते हैं।[4]

देश—वितस्ति (हाथसे नापना) आदि देशमान कहलाता है।[5]

तुलामान—पल आदि (छटाक सेर आदिसे नापना) तुलामान कहलाता है।[6]

कालमान—समय (घड़ी, घण्टा आदिसे नापना) कालमान कहलाता है।[7]

अश्वविद्या—२७वें पर्वमें एक मायामयी घोड़ेके वर्णनसे श्रेष्ठ घोड़ेके लक्षणों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। इससे अनुमान होता है कि उस समयके अश्वपरीक्षक कतिपय लक्षणोंके आधार पर अश्वकी श्रेष्ठता या अश्रेष्ठताका ज्ञान करते थे।

लोकज्ञता—इसी लोकमें जीवकी नाना पर्यायोंकी उत्पत्ति हुई है, इसीमें यह जीव स्थित है और इसीमें इसका नाश होता है यह सब जानना लोकज्ञता है। यह लोकज्ञता प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है।[8]

मंत्र शक्तिसे प्राप्त विद्यायें—लक्ष्मी और बलकी वृद्धिके लिए मन्त्र शक्तिसे भी अनेक विद्याओं-को सिद्ध किया जाता था। इनमेंसे अनेक युद्ध कार्यमें सहायक होती थी। मंत्रका जाप पूरा करनेके बाद या दृढ़ निश्चयके कारण कभी-कभी पहले ही ये विद्यायें शरीरधारिणीके रूपमें हाथ जोड़कर उपस्थित हो जाया करती थी।[9] पश्चात् समय पड़ने पर स्वामीके स्मरण मात्रसे अपनी शक्तिके अनुसार यथेष्ट कार्य करती थीं। पद्मचरितमें इस प्रकारकी निम्नलिखित विद्याओंके नाम आए हैं।

सर्वकामान्नप्रदा (७।२६४), नभःसंचारिणी (७।३२५), कामदायिनी (कामदामिनी—७।३२५), दुर्निवारा (७।३२५), जगत्कम्पा (७।३२५), प्रज्ञप्ति (७।३२५), भानुमालिनी (७।३२५), अणिमा (७।३२६), लघिमा (७।३२६), क्षोभ्या (७।३२६), मनःस्तम्भनकारिणी (७।३२६), संवाहिनी (७।३२६), सुरध्वंसी (७।३२६), कौमारी (७।३२६), वधकारिणी (७।३२६), सुविधाना (७।३२७), तपोरूपा (७।३२७), दहनी (७।३२७), विपुलोदरी (७।३२७), शुभप्रदा (७।३२७), रजोरूपा (७।३२७), दिनरात्रिविधायिनी (७।३२७), वज्रोदरी (७।३२८), अदर्शनी (७।३२८), अजरा (७।३२८), अनलस्तम्भिनी (७।३२८), तोयस्तम्भिनी (७।३२८), गिरिदारिणी (७।३२८), अवलोकिनी (७।३२९), अरिध्वंसी (७।३२९), घोरा (७।३२९), धीरा (७।३२९), भुजङ्गिनी (७।३२९), वारुणी (७।३२९), भुवना (७।३२९), अवध्या (७।३२९), दारुणा (७।३२९), मदनाशिनी (७।३२९), भास्करी (७।३३०), भयसंभूति (७।३३०), ऐशानी (७।३३०), विजया

---

१. पद्म० ७३।२८। २. पद्म० २४।२२। ३. मेयदेशतुलाकालभेदान्मानं चतुर्विधं—पद्म० २४।६०।

४ तत्र प्रस्थादिभिर्भिन्नं मेयमानं प्रकीर्तितम् पद्म० २४।६०। ५ देशमानं वितस्त्यादि—पद्म० २४।६१।

६. तुलामानं पलादिकम्—पद्म० २४।६१।

७. समयादि नु यन्मानं तत्कालस्य प्रकीर्तितम् ॥ पद्म० २४।६१।

८. तत्र नाना भवोत्पत्तिः स्थितिर्नश्वरता तथा।
ज्ञायते यदिदं प्रोक्तं लोकज्ञत्वं सुदुर्गमम् ॥ पद्म० २४।७१।

९. पद्म० ७।३१५।

(७।३३०), जया (७।३३०), बन्धनी (७।३३०), मोचनी (७।३३०), वाराही (७।३३०), कुटिलाकृति (७।३३०), चित्तोद्भवकरी (७।३३१), शान्ति (७।३३१), कौबेरी (७।३३१), वशकारिणी (७।३३१), योगेश्वरी (७।३३१), बलोत्सादी (७।३३१), चण्डा (७।३३१), भीति (७।३३१), प्रवर्षिणी (७।३३१), सर्वाह्वा (७।३३३), रतिसंवृद्धि (७।३३३), जृम्भिणी (७।३३३), व्योमगामिनी (७।३३३), निद्राणी (७।३३३), सिद्धार्था (७।३३४), शत्रुघ्नी (७।३३४), खगामिनी (७।३३४), स्तम्भिनी (५५।६९), प्रतिबोधिनी (६०।६२), अमोघविजया (९।२१०), उल्का विद्या (५०।३४), स्तम्भिनी (५२।६९), सिंहवाहिनी (६०।१३५), गरुडवाहिनी (६०।१३५), तथा बहुरूपिणी (६०।१३५)।

अन्य विद्यायें—उपर्युक्त विद्याओंके अतिरिक्त वज्र (हीरा), मोती, वैडूर्य (नीलम), स्वर्ण, रजतायुध तथा वस्त्र शङ्खादि रत्नोंको उनके लक्षण आदिसे अच्छी तरह जानना, वस्त्रपर धागेसे कढ़ाईका काम करना तथा वस्त्रको अनेक रंगोंमें रंगना, लोहा, दन्त, लाख, क्षार, पत्थर तथा सूत आदिसे बननेवाले अनेक उपकरणोंका बनाना, भूतिकर्म (बेलबूटा खींचना), निधिज्ञान (गड़े हुए धनका ज्ञान), रूपज्ञान, वणिग्विधि (व्यापार कला), जीवविज्ञान, मनुष्य, घोड़ा आदिकी निदान सहित चिकित्सा करना। विमोहन अर्थात् मूर्च्छा तथा नाना प्रकारके कल्पित मत (सांख्य आदि) विद्याओंका उल्लेख पद्मचरितमें किया गया है।

उपासक का आचार

सि० पं० जम्बूप्रसादजी जैन शास्त्री
मडावरा (ललितपुर)

जो सत्-श्रद्धा सद्-विवेक और सद्-आचरण रूप क्रिया करता है वही श्रावक कहलानेका पात्र हो सकता है। आस्तिक्य गुणको धारण कर सर्वप्रथम आत्माके अस्तित्व, तथा यह चैतन्य स्वभाववाला, अविनाशी और अनन्त गुणोंका समूह है, इसकी सुख शान्ति इसीके पास है, आदि आत्मविषयक बातोंपर श्रद्धान करना, पुनर्जन्म पर आस्था, कर्मोंका आगमन, उनका आत्म-प्रदेशोंसे बन्ध, उनका रुकना और उनकी निर्जरा तथा अन्तिम परिणाम मोक्ष किस तरह होता है, आदिका आगमानुकूल श्रद्धान करना, सत्श्रद्धामें आता है।

विवेक सद्ज्ञानको कहते हैं जिसके प्राप्त कर लेनेसे आत्म-दर्शन हो जाता है। स्वानुभूत्यावरण कर्मका क्षयोपशम हो जब आत्म-बोध होता है तो साधक आत्माको उन्नतिके पथपर ले जाता है। हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार विवेकसे ही होता है। जैसे दीपक अन्धकारमें डूबे मार्गको प्रशस्त करता है ठीक उसी भाँति विवेकी आत्मोन्नतिके मार्गमें बढ़ता है।

जिस प्रकार औषधिका परिज्ञान मात्र, रोगीको रोग-मुक्त नहीं कर सकता परन्तु उसका सेवन आवश्यकीय होता है, इसी प्रकार आत्मकल्याणके लिए सन्मार्ग पर चलना भी अनिवार्य है। कहा है—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः, यस्तु क्रियावान् पुरुषः सः विद्वान्।

अर्थात् शास्त्रको पढ़कर भी बहुतसे मूर्ख होते हैं किन्तु जो क्रियावान् है वही विद्वान्। इसीलिए आचरणकी प्रमुखता है। यही कारण है कि सदाचरणसम्पन्न श्रावक ही प्रशंसनीय होता है। शेष कौटुम्बिक व्यवधानोंमें फँसे और शास्त्रोक्त आचरण न करनेवाले गृहस्थ श्रावक कहलानेके योग्य नहीं हैं।

सत्कर्तव्यकी आवश्यकता क्यों है? इस प्रश्न पर थोड़ा विचार करें।

प्रत्येक प्राणी चाहता है और दुःखसे डरता है। 'जे त्रिभुवनमें जीव अनन्त, सुख चाहें दुखते भयवन्त।' वास्तवमें यह उद्देश्य प्रत्येक प्राणीमात्रका है। जिस प्रकार 'उपयोगो लक्षणम्' जीवका लक्षण उपयोग है, यह सभी संसारी और मुक्त जीवोंमें घटित होता है उसी प्रकार सुखकी चाह और दुखकी अचाह, यह संसारी प्राणीमात्रकी अभिलाषा है और यही जीवमात्रकी समानताका बोध कराती है। इसी हेतुकी प्राप्तिके लिए सत्कर्तव्यकी आवश्यकता होती है, जो सदुपदेशके श्रवण और सद्विवेककी सहकारितासे मिलता है। लेकिन व्यवहारमें हम करते कुछ हैं और चाहते कुछ हैं—

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति, पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः। पापफलं च नेच्छन्ति, पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

यह सर्वविदित है कि पुण्यका फल इन्द्रिय-सुख और महानता आदि तथा पापका फल दुख एवं तिरस्कृत अवस्था है। परन्तु यह प्राणी पुण्यके फलको चाहकर भी पुण्य नहीं करता और पापके दुख रूप फलको न चाहकर भी यत्नपूर्वक पाप करता है। इस विपरीततामें जाता हुआ मनुष्य कैसे सुखी हो सकता है?

पुण्य और पाप क्या है? यह भी ज्ञातव्य है। 'सुह-असुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवन्ति खलु जीवा।' अर्थात् शुभ और अशुभ परिणाम सहित यह जीव पुण्य और पाप रूप प्रवृत्तिवाला होता है। पाप शब्दकी व्याख्यामें कहा है—

'पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम्। अर्थात् जो आत्माको शुभसे दूर करे वह पाप है। पाप ऐसा शत्रु है जो आत्माके साथ छायावत् चलता है। जिस व्यक्तिको आत्मासे प्रेम नहीं वही आत्माके हितकी उपेक्षा करता हुआ पापाचरण करता है। आत्माको समझनेवाला आत्मस्नेही पाप नहीं किया करता। संसार में जितने भी दुख देखनेमें आ रहे हैं, वे सब पापके फल हैं। वे पाप प्रधानतः हिंसा, झूठ, चोरी अब्रह्मचर्य और परिग्रहके भेदसे पाँच प्रकारके हैं। यद्यपि अभक्ष्यभक्षण, रात्रिभोजन और सप्त व्यसन सेवन भी पाप हैं तथापि उन पापोंका समावेश इन्हीं पाँचमें हो जाता है।

पुण्यकी व्याख्यामें कहा है कि—'पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्' अर्थात् जो आत्माको पवित्र करे वह पुण्य है। इसलिए जो गृहस्थ समर्थ होकर भी नित्य जिनेन्द्र भगवान्की उपासना, आराधना, स्तुति आदि नहीं करता है और जो मुनि आदि सुपात्रोंको दान नहीं देता है उसका गृहस्थाश्रम भवसागरमें पाषाण-नौकाके समान है जो उसे डुबाकर नष्ट कर देता है।

जो मूलोत्तर गुणोंसे सहित पंचपरमेष्ठीके चरणोंकी शरणवाला है, योग्यतानुसार षट्कर्म जिसका प्रधान कार्य है, ऐसा ज्ञान-अमृतपिपासु श्रावक ही उत्तम है।

अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत और परिग्रहपरिमाणाणुव्रत, इन पंच अणुव्रतों-को धारण करना तथा मद्य, मांस एवं मधुका त्याग, ये अष्ट मूलगुण श्री समन्तभद्राचार्यके कथनानुसार हैं। यद्यपि कोई कोई पंच उदम्बर फलके त्यागके साथ तीन मकारोंके त्यागको भी अष्टमूलगुण मानते है, लेकिन मेरी अपनी आस्था उपर्युक्त मूलगुणोंमें ही है।

जब पंच अणुव्रतोंमें दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत ये तीन गुणव्रत तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोग-परिमाण और अतिथि-संविभाग ये चार शिक्षाव्रत सम्मिलित हो जाते हैं तो श्रावकके १२ व्रत कहलाने लगते हैं। इनका पालन करते हुए अन्तिम समय निरतिचार सल्लेखना धारण करना गृहस्थका श्रावकाचार है। बारह व्रतोंका समीचीन रूपसे पालन करनेके लिए भूमिका रूपमें गृहस्थमें निम्नलिखित विशेषताएँ जरूरी हैं—

(१) न्यायपूर्वक धनका कमाना—क्योंकि अन्यायपूर्वक कमाया हुआ धन एक तो ठहरता नही और दूसरे उससे भोजनादि किया जाता है उसके प्रभावसे बुद्धि धार्मिक नही बन सकती।

(२) अपनेसे अधिक गुणोंवाले व्यक्तिका सम्मान करना।

(३) सत्यभाषी प्रकृतिवाला होना।

(४) परस्परमें विरोध रहित धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थोंका सेवन करना।

(५) योग्य धार्मिक कुलवधूका होना।

(६) योग्य स्थान (आलय) का होना।

(७) लज्जावान् होना।

(८) योग्य आहार-विहार करनेवाला हो।

(९) सत्संगति करनेवाला हो।

(१०) बुद्धिमान् हो, (११) कृतज्ञ हो, (१२) धार्मिक विधि-विधानोंको हमेशा प्रेमपूर्वक सुननेवाला हो, (१३) पापोंसे हमेशा डरनेवाला हो, (१४) दयावान हो, आदि।

ये उपर्युक्त बातें जिस गृहस्थमें होती हैं वही निर्दोष श्रावकाचारका पालन कर सकता है। आत्म-कल्याणेच्छुकोंको इन गुणोंको धारण करना चाहिए।

इसके अतिरिक्त विशिष्ट साधनाके लिए श्रावकके ग्यारह दर्जे होते हैं जिन्हें ग्यारह 'प्रतिमाओं' के नामसे कहा गया है। इन दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषध, सचित्तत्याग, रात्रिभोजनत्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ-त्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग और उद्दिष्टत्याग प्रतिमाओंको पालन करनेवाला क्रमसे उच्च-उच्चतर श्रेणियों पर बढ़ता हुआ उत्तम श्रावककी श्रेणी पर पहुँचकर मुनिके समान ही आचरण करनेवाला हो जाता है। इसलिए श्रावकोंको अपने योग्य· जितना भी व्रत आचरण हो सके, पालन करते हुए मनुष्यजन्मको सफल करना चाहिए।

जिस मनुष्यभवके लिए इन्द्रादिक महान् देव भी लालायित रहते हैं, यदि सौभाग्यसे वह प्राप्त हो गया तो उसे व्यर्थ नहीं खो देना चाहिए। उसमें भी यह उत्तम कुल, जिनवाणीका श्रवण, तत्त्वविचारकी बुद्धि, आरोग्यता और सम्पन्नता आदि ऐसी बातें प्राप्त हुईं जो बिना पूर्वोपार्जित पुण्यके नहीं हो सकतीं। अतः पुरुषार्थ-पूर्वक आत्मोन्नति द्वारा इस सामग्रीको सफल करना चाहिए। क्योंकि मोक्षप्राप्तिमें पुरुषार्थकी प्रधानता-का प्रतिपादन करते हुए श्री अकलंक देवने तत्वार्थराजवार्तिक (अध्याय १ सूत्र ३) में कहा है—मोक्ष जाने-का कोई काल नियत नहीं है। जब भी यह आत्मा योग्य पुरुषार्थ करता है तो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव-की अनुकूलता मिलने पर इसकी मुक्ति हो सकती है।

यह राग रूपी आग जीवको हमेशा जलाती आ रही है। इसे समता रूपी जलसे शान्त करना चाहिए। विषय और कषाय रूप प्रवृत्ति जीवने अनादि कालसे रक्खी, अब उसे त्याग करके आत्म-स्वरूपको प्राप्ति करनी चाहिए। भोगोंकी लिप्सा जब देवों व चक्रवर्तीके सुखोंको भोगने पर भी पूर्ण नहीं हुई तब इस स्वल्पकालिक जन्ममें क्या तृप्ति होगी ? समुद्र भर जल पीकर जिसकी प्यास नहीं बुझी क्या वह तृणके ऊपर स्थित जल-बिन्दुके पीनेमें बुझ सकती है ? कदापि नहीं। इस प्रकार अपने मनमें निश्चय कर भोगोंकी लालसा-को छोड़ना चाहिए।

आर्त-रौद्र जैसे खोटे ध्यान, जो कि नरक और तिर्यंच गतिके कारण हैं, छोड़कर मोक्षके कारणभूत धर्मध्यानका चिन्तन करना चाहिए। यद्यपि गृहस्थ धर्मध्यानकी चरम पराकाष्ठा तक नहीं पहुँच सकता तथापि पचपरमेष्ठीके मंत्रोंका जाप व स्मरण रूप ध्यान तो नित्य कर ही सकता है।

सबके प्रति सद्भावना रखना श्रावकका परम कर्तव्य है, क्योंकि जिनवाणीमें बंध और मोक्ष मुख्यतः भावना पर ही निर्भर है। यदि ऐसा न होता तो इस जीव-जन्तुओंसे भरे संसारमें अहिंसात्मक प्रवृत्ति न बनती और न मुनि-प्राप्तिकी सम्भावना ही हो सकती थी। इसलिए मन, वचन, कायकी शुभ प्रवृत्तिको, जो पुण्यका कारण है, करते हुए शुद्धोपयोगकी ओर लक्ष्य रखना चाहिए, जो मुनिका साक्षात् कारण है।

मनुष्य स्वय अपने भाग्यका निर्माता होता है। जैसा शुभ या अशुभ आचरण वह करता है आगे चलकर वही भाग्य रूपमें परिणत होकर फल देता है। यह विशेष जाननेकी बात है कि मनुष्य कर्म करनेमें तो स्वतन्त्र होता है परन्तु उनके फल भोगनेमें परतन्त्र। इसलिए आत्मस्नेहीको सत्-कर्म करना चाहिए।

जैनधर्मकी मौलिकताएँ

समाजरत्न पं० तेजपालजी काला,
संपादक जैनदर्शन

●

संसारमें अनन्त प्राणी हैं और सभीकी अभिलाषा सुख शान्तिपूर्वक जीनेकी है। इसके लिए सभी रात-दिन परिश्रम भी करते है। लेकिन रात-दिन प्रयत्न और परिश्रम करने पर भी सुखकी वास्तविक परितुप्ति किसीकी भी नहीं होने पाती। जब अतुल वैभवके बीच रहनेवाला इन्द्र और अचिन्त्य संपदाका धनी चक्रवर्ती भी वास्तविक सुख प्राप्तिकी दृष्टिसे अतृप्तसे रहते हैं—इष्ट वियोग एवं अनिष्ट संयोग जनित दुःख उन्हें भी झेलने पडते हैं तब साधारण मनुष्योंके और अन्य प्राणियोंके दु.खोंकी तो कल्पना भी नही की जा सकती है। वास्तवमें संसारमें रहते हुए सुखकी अभिलाषाकी परितृप्तिकी आशा मृगमरीचिकाकी तरह भ्रम और विषाद पूर्ण है। कारण यह है कि जिन संपत्ति, वैभव, शरीर, परिवार आदि बाह्य पदार्थोंसे मनुष्य सुखकी आशा करता है वे सभी पदार्थ अनित्य और नश्वर हैं। उनका संयोग वियोग कर्माधीन है। अत· जो पदार्थ स्वयं नश्वर है और पराधीन हैं उनसे स्थायी और वास्तविक सुखकी प्राप्ति तीन कालमें भी संभव नही है। तब सहज यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वास्तविक शाश्वत और निराकुल सुख कहाँ है और ऐसा कौनका मार्ग है जिससे मनुष्य अपनी इस शाश्वतिक सुख प्राप्तिकी इच्छासे संतुष्ट हो सकता है।

धर्मोंकी उत्पत्ति

संसारमें जितने भी प्रभावशाली महापुरुष हुए है, उन्होंने जनहितकी दृष्टिसे परिस्थितिके अनुसार जो भी विचार उनके मनमें आया उसे जनताके सामने रखा और उसका उन्होंने अपने समयमें प्रचार भी किया। उनको अनुयायी मिले और बादमें उनके विचारोंको धर्मका रूप उनके नामसे दे दिया गया। जैसे बौद्धधर्म, इसाई धर्म, इस्लाम धर्म, हिंदू धर्म, जैनधर्म आदि। इन सबमें जैनधर्म अपवाद स्वरूप है। यह अन्य धर्मों-की तरह किसी व्यक्ति विशेषका नया विचार या मत नहीं है जो बादमें अन्य मतोंकी तरह धर्म नामसे घोषित कर दिया गया हो। जैनधर्म स्वयं ही धर्म स्वरूप है। यह नया विचार या नई मतप्रणाली नहीं है। किन्तु जैसे संसार अनादिकालीन है—उसमें व्याप्त जीवादि द्रव्य भी अनादिकालीन हैं वैसे धर्म भी अनादिकालीन है।

वास्तविकता यह है कि जब संसारके समस्त प्राणियोंका एकमात्र उद्देश्य जीवनमें वास्तविक सुख और शांति प्राप्त करना है तो उसकी प्राप्तिमें सहायक धर्म भी एक ही सकता है—दो या अनेक नही। आज संसारमें जितने भी अपनेको धर्म नामसे घोषित करते हैं वे वास्तवमें महापुरुषोंके अपने-अपने स्वतंत्र विचार हैं—मत हैं। धर्म नही। तब देखना यह है कि जब धर्म एक ही हो सकता है तो इन सभी वर्तमान प्रचलित मतोंमें ऐसा कौनसा मत है जो मनुष्यके वास्तविक सुख प्राप्तिके उद्देश्यकी सही परिपूर्ति कर सकता है?

धर्मकी मौलिक व्याख्या

धर्मकी मौलिक, नि·संदिग्ध और तर्क संगत व्याख्या है—वस्तुका निजस्वभाव और धर्मका अर्थ है धारण करना। याने वस्तुका अपने स्वभावमें स्थिर रहना ही उस वस्तुका धर्म है। संसारमें अनंत वस्तुएँ हैं

और वे मुख्यतः जीव (चैतन्यता), धर्म (गतिशीलता), अधर्म (स्थिरता), आकाश (अवगाहनत्व), काल (वर्तना) और पुद्गल (रूपित्व)—इस प्रकार छह भागोंमें विभाजित हैं। इनको द्रव्य भी कहते हैं। इन सबके अलग-अलग स्वभाव हैं—धर्म हैं। ये धर्म कभी अपने द्रव्यको छोड़कर नहीं रहते—सदा सर्वकाल वस्तुको धारण करके रहते हैं। जैसे पानीका स्वभाव शीतलता है और अग्निका स्वभाव उष्णता है। इसी प्रकार चैतन्यशील जीवका स्वभाव (धर्म) ज्ञान दर्शन है। अतः यह सिद्ध हुआ कि जीव या आत्माका अपने ज्ञान दर्शनरूप स्वभावमें स्थिर रहना ही आत्माका वास्तविक धर्म है और यह धर्म ही आत्माका अविनाशी निराकुल सच्चा सुख है, अन्य नही। जब जीव इस संसारमें अनादि कालसे है तब उसका यह धर्म भी उसके साथ अनादि कालसे है और एक है एवं सब जीवोंका होनेसे सार्वजनिक है। सच्चे सुखके कारणभूत इस धर्मको धारण करनेका जो मार्ग वह मार्ग भी धर्मके नामसे सम्बोधित किया जाने लगा। अतः धर्म एक ही हो सकता है। अधिक नहीं।

धर्मकी जीवनमें आवश्यकता

जब आत्माका स्वभाव या धर्म ज्ञानदर्शन सदासे जीवके साथ रहते हैं तब फिर जीवनमें सुख प्राप्तिके लिए धर्मके मार्गको धारण करनेकी या उस मार्गपर चलनेकी आवश्यकता है? यद्यपि यह सत्य है कि ज्ञानदर्शन स्वरूप स्वभाव (धर्म) आत्माके साथ सदासे रहते हैं तथापि संसार अवस्थामें जीवके साथ अन्य पदार्थोंका संयोग वियोग होता रहता है। इन बाह्य पदार्थोंके संयोग वियोगके कारण जीवमें रागद्वेषादि विभाव भावोंकी विकृति उत्पन्न होती है। यह वैभाविक विकृति ही दुःख है। जैसे पानीका स्वभाव (धर्म) शीतलता होनेपर भी ईंधन अग्निके संयोगसे वह गरम हो जाता है। यह गरमपना ही पानीकी विकृति है। ईंधन और अग्निके संयोगके निमित्तके दूर कर देनेपर पानी वापिस अपने पूर्वस्वभाव (धर्म) शीतलताको प्राप्त हो जाता है। उसी प्रकार जीव अनादिकालसे संसारमें बाह्य पदार्थोंके निमित्तसे रागद्वेषादिक विभाव परिणतियोंसे विकृत होकर हमेशा दुःखी बना रहता है, वास्तविक सुखकी अनुभूति इसके जीवनमें कभी नही आती। कर्मवश शरीर और इन्द्रिय जनित अनुभव भोगोपभोगकी सामग्रियोंके प्राप्त हो जानेपर यद्यपि जीव अपनेको सुखी मानने लगता है और उसीको सुख मानकर उसकी निमित्तभूत सामग्रियों और परिग्रहको जुटानेमें रात-दिन संलग्न रहता है तथापि यह सुख कर्मपरवश होनेसे एक तो पराधीन और क्षणनश्वर है। दूसरे विकृति और चिन्ताजन्य है। पराधीनता, नश्वरता, विकृति और चिन्ताको सुखका कारण मानना नितान्त भ्रम और अज्ञानता है। वास्तविक और निराकुल सुख तो अपने आत्मस्वभावरूप ज्ञान-दर्शन धर्ममें है। अतः इस सच्चे सुखको प्राप्त करनेकी दृष्टिसे सुखाभिलाषी मनुष्यका अपने निज स्वभावमें स्थिर रहना ही आवश्यक है। इसके सिवा सच्चे सुख या धर्मका अन्य कोई मार्ग नहीं हो सकता है।

जैनधर्म धर्म है—नया मत या विचार नहीं

अपने आत्मस्वरूपमें ही स्थिर रहनेकी प्रक्रिया या मार्गको ही धर्म कहते हैं। यह प्रक्रिया जैनधर्मसे जानी जा सकती है, अतः जैनधर्मको ही धर्म कह लें या जैनधर्म कह लें एक ही बात है। जिन असंख्य महापुरुषोंने आत्मस्वभाव स्थिरता रूप अक्षय सुख प्राप्त करनेकी भावनासे स्वपुरुषार्थके द्वारा अपनी आत्माकी अनादिकालीन रागद्वेष युक्त विकृतिको दूरकर शुद्ध निर्मल अवस्था प्राप्त कर ली एवं समस्त कर्मकालिमाको नष्टकर जो परमसुखी परमात्मा कर्मविजेता बन गये वे 'जिन' कहलाये। जिस मार्गसे उन्होंने यह 'जिन' अवस्था प्राप्त की वह मार्ग या धर्म ही उनके नामसे 'जैनधर्म' इस संज्ञाको प्राप्त हो गया। वस्तुतः धर्म और जैनधर्ममें कोई अन्तर नही है। अतः यह सुतरां सिद्ध है कि जैनधर्म अन्य धर्मोंकी तरह किसी व्यक्ति

विशेषके द्वारा प्रस्थापित नया मत, सम्प्रदाय या विचार नहीं है। यह स्वयं धर्म है और तबसे है जबसे संसार है, जीव है और अन्य द्रव्य है। यह धर्म आत्मस्वभावी होनेसे समस्त प्राणियोंका है। अतीतके अनन्त जिनोंकी तरह इस धर्मने जहाँ संसारके समस्त मनुष्योंको स्वपुरुषार्थसे सम्पूर्ण आत्मविकासोन्मुख अक्षय सुखस्वरूप परमात्मपद प्राप्त करनेका अवसर प्रदान किया है वहाँ समस्त प्राणिमात्रको 'परस्परोपग्रहो जीवानां' के अनुसार सहअस्तित्वके साथ सुख शान्तिपूर्वक जीने और जीने देनेकी स्वीकृति भी प्रदान की है। अत. जैनधर्म सार्वधर्म भी है। यही इसकी सबसे बड़ी मौलिकता है।

आत्मस्वभाव (धर्म) में स्थिर होनेका मार्ग

शाश्वत सुखस्वरूप आत्मस्वभावमें स्थिर होनेका एकमेव मार्ग आत्मश्रद्धा, आत्मज्ञान और आत्म-लीनतारूप रत्नत्रयीमें है। इसे सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान व सम्यक्चारित्र भी कहते हैं। इस रत्नत्रयको धारण करके ही सम्पूर्ण कर्मोंपर विजय प्राप्तकर 'जिन' बना जा सकता है। इस रत्नत्रयकी यह विशिष्टता है कि इसमें 'सत्य' की प्रतिष्ठा की गई है। जीवनमें (सत्यसम्यक्त्व) की प्रतिष्ठा किये बिना आत्माका विकास असम्भव है। रत्नत्रयको प्राप्त करनेमें देव शास्त्र और गुरु ये तीनों मुख्य कारण हैं। ये तीनों रत्नत्रयके प्रतीक हैं। किन्तु ये तीनोंका सम्यक् (सत्य) होना नितान्त आवश्यक है। यदि ये तीनों सम्यक् नही हैं तो आत्मविकासके पथपर कभी गति नही हो सकती है प्रत्युत उपलनावकी तरह संसार समुद्रमे ही गोते लगाना पड़ता है। जैनधर्म किसी एक नामके सम्प्रदायके ईश्वरको, शास्त्रकी या गुरुकी उपासनाको महत्त्व नही देता। व्यक्तिकी महत्ताकी अपेक्षा वह गुणोंकी महत्ताको अधिक श्रेयस्कर मानता है। अत जैनधर्मकी दृष्टिमें सच्चे देवत्वमें वीतरागता, सर्वज्ञता और प्राणि हितैषिताकी भावनाका होना अनिवार्य है। कर्मविजेता 'जिनों' में ये गुण उपलब्ध होते है अत जैनधर्ममें वे सभी जिन (परमात्मा) वन्द्य और उपास्य माने गये हैं—चाहे फिर उन्हें हम राम, शिव, ब्रह्मा, विष्णु, महावीर आदि किसी भी नामसे मानें। इन सर्वज्ञ, वीतराग जिनोंकी उपदेशित वाणी सच्चे शास्त्र और उनके बताये वीतराग मार्गपर चलनेवाले वीतराग निष्परिग्रही गुरु ही सच्चे गुरु माने गये हैं। इस प्रकार सम्यक् (सत्य) वीतराग मार्गके आराधक सच्चे देव, सच्चे शास्त्र और सच्चे शास्त्र ही वास्तवमें वन्दनीय, उपास्य और कल्याणकारी हैं। यह व्यक्ति विशेषकी उपासना नही वरन् सत्यकी उपासना है। इस सत्यकी उपासनासे ही आत्मलब्धि, आत्मज्ञान और आत्मस्थिरतारूप रत्नत्रयकी प्राप्ति होकर परम सुखस्वरूप परमात्मपदकी उपलब्धि होती है। गरज यह कि सत्यकी प्रतिष्ठा जैनधर्मकी मौलिकता है। यही सम्यक्दर्शन है।

अनेकान्त (स्याद्वाद)

ज्ञान जीवको प्रकाश देना है, आत्मबोध कराना है। ज्ञानके बिना मनुष्य अंधेके समान है। ज्ञानके प्रकाशमें जीव अपने आत्मस्वभाव रूप स्थिरताकी ओर बेखटके गमन कर सकता है। किन्तु ज्ञानका सम्यक् (सत्य) होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि ज्ञान सम्यक् नहीं है तो मिथ्याज्ञान मनुष्यको अपने आत्मस्वरूपका बोध नहीं होने देता। अनन्त संसारके गर्तमें पड़े-पड़े अनन्त काल तक दुःखी बन कराहता रहता है। उसे सुख-शान्तिकी अनुभूति कभी नही होने पाती। ज्ञानमें सम्यक्पना अनेकान्त (स्याद्वाद) से आता है। अनेकान्तका अर्थ है अनेक गुण संयुक्त वस्तु और स्याद्वादका अर्थ है उस अनेक गुणवाली वस्तुके एक गुणका सापेक्षतासे कथन करना। वस्तु अनेक धर्मात्मक होती है। जैसे जीवमें नित्यत्व और अनित्यत्व आदि धर्मों-का होना किन्तु वस्तुएँ अनेक धर्मोके एक साथ रहते हुए उनका वाणीसे एक साथ कथन नहीं किया जा सकता है। एक समयमें एक धर्मका ही कथन किया जा सकता है। उस समय वस्तुके एक धर्मका कथन यदि

स्यात्—कथंचित् दृष्टिसे वस्तुके अन्य धर्मको दृष्टिमें सापेक्ष रखते हुए किया जाता है तो उसे स्याद्वाद कहते हैं । अनेकान्तरूप यह स्याद्वाद सम्यक्ज्ञान है । इसीसे तत्त्वका यथार्थ बोध होता है । यदि वस्तुके अन्य धर्मोंका दृष्टिमें सापेक्ष न रखते हुए केवल वस्तुको एक धर्मरूप मानकर ही कथन किया जाता है तो वह एकान्त दुराग्रहपूर्ण ज्ञान होनेसे मिथ्याज्ञान है । इस मिथ्याज्ञानसे पदार्थका यथार्थ बोध न होनेसे मनुष्य अपने आत्म-स्वरूपको जाननेमें और उसके प्राप्त करनेमें सर्वथा असमर्थ रहता है ।

जीवमें नित्यत्वका बोध जहाँ द्रव्यकी अपेक्षासे होता है वहाँ अनित्यत्वका बोध पर्याय दृष्टिसे होता है । यदि एकान्ततः जीवको नित्य ही मान लिया जावे तो वह संसारके दुःखोंसे उन्मुक्त होनेका प्रयत्न क्यों करेगी और यदि सर्वथा जीवको अनित्य ही मान लिया जावे तो उसका समारसे मुक्ति पानेका पुरुषार्थ व्यर्थ होगा ।

अनेकान्तमें दुराग्रहको स्थान नही रहता जब कि एकान्तमें दुराग्रह और दृढ रहता है । इस एकान्त दुराग्रहपूर्ण ज्ञान रखनेवालोंमें अंधोंके हाथीके एक-एक अवयवको ही हाथी मान लेने वालोंकी तरह परस्परमें अविवेकपूर्ण कलह और संघर्ष होता है । हाथीके एक-एक अवयवको ही हाथी मान लेनेके दुराग्रहके कारण जैसे उन अधोंमेंसे किसीको भी हाथोका यथार्थ बोध नही होने पाता वैसे हीं जीव अजीवादि तत्त्वोंमे रहने-वाले नित्य अनित्यादि अनेक गुणोंका विवेक यदि स्याद्वाद दृष्टिसे नही किया जाता है तो तत्त्वका यथार्थ बोध नही होता और मनुष्य अज्ञानाधकारमें निरन्तर भटकते रहता है । आत्मस्वरूप (धर्म) की प्राप्ति उसे कभी भी नही होने पाती ।

जैन धर्ममे प्रतिपादित अनेकांत दृष्टि, जहाँ रा , समाज और व्यक्तिके बीच होनेवाले संघर्षोंको दूर-कर उनमें समन्वयता और स्नेहकी भावना उदित करती है वहाँ तत्त्वनिर्णयमें वह समस्त एकात मिथ्या दोषों-का एव विरोधोका परिहार कर दार्शनिक जगत्में सत्यका उद्घाटन करती है एवं विवेकके प्रकाशमें आत्माको समुज्ज्वल पथका निर्देशन कराती है ।

अनेकान्तवाद दार्शनिक जगत्में जैन धर्मको विश्वको अमूल्य देन है । यह सम्यक् ज्ञानका प्रकाश पुंज है । परमागमका बीज है । विवेक बुद्धिको बल प्रदाता है । धर्मकी आधार शिला है ।

अहिंसा और अपरिग्रह

आत्मविकासके मार्गमें जैसे सम्यक् श्रद्धा और सम्यक्ज्ञानका होना अनिवार्य है वैसे ही जीवनमें सम्यक् आचरणका होना भी उतना ही आवश्यक है जैसे दीपकमें तेल । वास्तवमें आत्मस्वरूपमें लीनता ही सम्यक् आचरण है । इस आत्मलीनतामें अहिंसा और अपरिग्रह मूल कारण है ।

राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि कषायों और दुर्गुणोंसे आत्मामें मलिनता आती है । जीव अपने आत्मस्वरूपको प्राप्त करनेमें असमर्थ रहता है । अतः इस असमर्थताको आत्मामें उत्पन्न न होने देना ही अहिंसाका वास्तविक स्वरूप है । राग-द्वेषादि कषायोंके अभावमें आत्मामें अहिंसाकी दिव्यज्योतिका प्रकाश फैलता है । इस दिव्यज्योतिके प्रकाशके फैलते ही आत्मामें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का समत्व या मैत्रीभाव जागृत होता है । संसारमें सभी छोटे बडे प्राणियोंमें आत्मा है । अतः जीवत्वकी दृष्टिसे सभी समान है । सभी अपनी-अपनी स्थितिमें सुखपूर्वक जीना चाहते है । दुःख, संक्लेश और मरण किसीको कभी अभीष्ट नही है । जब आत्मामें अहिंसाकी प्रतिष्ठा होती है तब उसकी दृष्टिमें सभी जीव अपने समान दीखने लगते है । ऐसी स्थितिमें किसी भी अन्य प्राणीको किसी भी कारणसे मन वचनके द्वारा दुःख, संक्लेश या सन्ताप पहुँचानेका भाव ही मनमें उदित नही होता । सभी प्राणियोंके प्रति उसका मैत्रीभाव होता है । रागद्वेषके

सद्भावमें ऐसी समत्वदृष्टि, मैत्रीभाव या अहिंसाका उद्गम आत्मामें नहीं होता। रागद्वेषमय हिंसक परिणतिके कारण जब जीव अन्य प्राणियोंके लिए दुःखरूप बनता है तब स्वभावतः अन्य प्राणियोंमें भी रागद्वेषकी उत्पत्ति होती है, अतः वे भी इसके सुखमें बाधक होते हैं। अतः आत्मामें सुखकी अभिलाषा रखनेवालोंको जीवनमें रागद्वेषकी निवृत्तिपूर्वक अहिंसा भगवतीकी समाराधना करना चाहिए। यह अहिंसा परमात्माका प्रतिरूप है अतः जैनधर्ममें इसको 'परमब्रह्म' माना है। यह अमृतत्वको प्राप्त करानेवाला परम रसायन है। इसके विना जीवनमें सम्यक् स्थिति उत्पन्न नही होती। आत्माका सुन्दर सत्य, शिवरूप विकसित नहीं होता।

किन्तु अहिंसाकी प्रतिष्ठापना जीवनमें परिग्रहके सद्भावमें कभी सम्भावित नहीं होती है। शरीर, धन, सम्पत्ति, परिवार आदि मोहके कारण हैं। मोहके कारण आत्मामें रागद्वेषकी उत्पत्ति हुए विना कभी नहीं रहती। अतः रागद्वेषादि अन्तरंग परिग्रहके साथ-साथ धन, सम्पत्ति, परिवार आदि बाह्य परिग्रहका त्याग भी अत्यन्त आवश्यक है। परिग्रहसे मूर्च्छा उत्पन्न होती है और मूर्च्छासे पुनः परिग्रहकी संग्रहवृत्ति बढ़ती है। इस संग्रहवृत्तिके परिणामस्वरूप विषमता बढ़ती है और विषमतासे हिंसा। अतः जैसे आत्म-स्वरूपकी प्राप्तिमें हिंसा बाधक है वैसे परिग्रह भी। परिग्रहका लोभ सभी पापोंका जनक है। जैनधर्ममें एक तिलतुषमात्र परिग्रह भी पाप, दुःख और अशान्तिका कारण माना गया है। यह समत्वका बाधक है। अतः जैनधर्ममें अहिंसा और समत्वकी पूर्ण साधनाके लिए साधकके लिए पूर्ण निष्परिग्रही दिगम्बररूपमें होना आवश्यक बताया गया है। अहिंसा और अपरिग्रहके विना सम्यक् आचरण और आत्मलीनता नही बन पाती। अतः अहिंसा और अपरिग्रह ये जैनधर्मके ऐसे मौलिक रत्न हैं जो मानों जीवन परमात्मत्वका सतत प्रकाश देते है।

कर्मवाद

जैन धर्मका एक मौलिक तत्त्व उसका कर्मवाद भी है। संसारके उत्थान पतन और जीवोंके सुख दुःखमें वह अन्य मतोंकी तरह एक ईश्वरको कारण नहीं मानता। वस्तुतः ससारके समस्त प्राणियोंके प्रति वीतराग और समत्व दृष्टि रखनेवाले ईश्वरमें एक जीवको दुःख और दूसरेको सुख देनेकी कल्पना ही बालिश है। अनेक प्रकारकी विचित्र विविधताओं और विषमताओंसे भरा हुआ संसार एक भद्र और सर्व शक्तिमान सर्वज्ञ ईश्वरको कृति कैसे मानी जा सकती है। रागद्वेषके अभावमें संसारका उत्थान पतन या उसका सृजन विनाश भी ईश्वरकी कृति कदापि संभव नहीं है। जैनधर्मने इस संबंधमें कर्मवादके अमौलिक तर्क संगत सिद्धान्तके द्वारा एक निःसंदिग्ध दृष्टि संसारको दी है। कर्म सिद्धान्तके अनुसार प्राणीके उत्थान पतन और सुख दुःखके कारण उसके अपने निजी भले बुरे कार्य हैं। कोई ईश्वर या अदृष्ट शक्ति नहीं। शुभ कामोंके फल शुभ रूपसे भोगनेको मिलते हैं और अशुभ कामोंके फल अशुभ रूपसे। इस कर्म सिद्धान्तने ही प्रत्येक मनुष्यको अपने आत्म पुरुषार्थसे पूर्ण विकासकी संधि प्रदानकी है। हर मनुष्य यदि चाहे तो स्व पुरुषार्थसे स्वयं भी ईश्वर (परमात्मा) बन सकता है। अन्य धर्मोंकी तरह इसके भाग्यकी डोर ईश्वरके हाथ देकर इसे पंगु नहीं बनाया गया है। जैनधर्मकी कर्म सिद्धान्तकी ऐसी युक्तियुक्त वैज्ञानिक मौलिकताके दर्शन अन्यत्र नहीं होते।

आत्म धर्म

जैनधर्म व्यक्तिके आत्म विकासको अधिक महत्त्वपूर्ण मानता है। क्योंकि आत्मविकास ही सच्चा सुख है। व्यक्तिके विकाससे ही समाज और राष्ट्रका विकास भी संभव है। जिस राष्ट्र और समाजके लोग

नैतिक दृष्टिसे जितने अधिक विकसित होंगे वह राष्ट्र और समाज भी उतना ही अधिक उन्नत, समृद्ध और विकसित होगा। अतः जैनधर्मको 'आत्मधर्म' भी कह सकते हैं।

इस प्रकार जैनधर्मकी मौलिकता उसके आत्मस्वभाव धर्ममें, सम्यक्त्वमें, स्याद्वाद (अनेकान्त) में, अहिंसामें, अपरिग्रहमें, स्व पुरुषार्थमें, सार्वभौमिकतामें एवं सर्वकालिकतामें है। जैनधर्मके अनुयायी वर्तमान-में अल्प संख्यामें होनेपर भी जैनधर्मकी मौलिकता एवं गरिमा संसारमें सर्वमान्य है।

वास्तवमें सुखाभिलाषी मनुष्योंको यह धर्म ही एकमात्र मंगल स्वरूप, श्रेय और शरण प्राप्त करने योग्य है।

स्याद्वाद् या अनेकांत : एक चिन्तन

वि० वा० पंडितरत्न वर्धमान पा० शास्त्री सिद्धान्ताचार्य
(सम्पादक—जैनबोधक, जैनगजट व रत्नत्रय)

परमागमस्य बीजं निषिद्धगत्यंश सिंदुरविधानम् ।
सकलनयविलसिताना विरोधमथनं नमाम्यनेकांतम् ॥—अमृतचन्द्र

अनेक अंधोंने हाथी कभी नही देखा था। हाथी देखने चले गये। किसी अन्धेने कहा कि हाथी खम्भेके समान है। किसी अन्धेने कहा कि हाथी पखेके समान है। किसीने कहा कि हाथी केलेके खूंटके समान है। किसीने कहा कि ढोलके समान है। किसीने डंडेके समान बताया। साथ ही इन अन्धोंने अपनी-अपनी बातका समर्थन करते हुए दूसरोंके विरोधी कथनको अस्वीकार करते हुए आपसमें झगडा भी किया। झगड़ा बढ़ता ही जा रहा था। कोई आंखोंवाला बुद्धिमान् जा रहा था। उसने देखा कि ये आपसमें लड रहे हैं, वास्तवमें झगड़ा क्या है? सो उसके समझमें आया। उसने सोचा कि इन्होंने हाथीके एक-एक अंगको हाथ लगाया है, अपनी-अपनी अपेक्षासे हाथीका वर्णन करते है। यह हाथीका सम्पूर्ण वर्णन नही है। हाथी तो सभी अवयवोंका पिण्डरूप है। अस्तु इनका आपसका झगड़ा मिटाना चाहिये, किसी नयकी अपेक्षा एक-एकका कथन भी सत्य है। अतः कहा कि तुम्हारा कहना भी सत्य है, तुम्हारा कहना भी सत्य है। सभी अन्धोंको आनन्द हुवा। झगड़ा मिट गया, 'भी' से झगडा मिटा, 'ही' से विरोध नही मिटता। इस 'ही' और 'भी' का अन्तर अनेकांत है। इसे ही स्याद्वाद कहते हैं।

मैं कहता हूँ सो सत्य ही है, ऐसा कहनेवाला सत्यसे बहुत दूर है। आप जो कहते हैं वह भी सत्य हो सकता है, यह कहनेसे विरोध हो ही नहीं सकता है।

इसलिए यह अनेकांत या स्याद्वाद नयोंके द्वारा उत्पन्न विरोधको मिटाता है। वस्तुस्थितिके साध्य में कोई प्रकारका यह स्याद्वाद कोई विघ्न उपस्थित नही करता।

अनेकांत—अनेके अंता धर्म जिसमें हो उसे अनेकांत कहते है। स्याद्वादका भी वही अर्थ है। किसीने पूछा कि क्या पदार्थ नित्य है? अनेकांतवादी यह नही कहेगा कि पदार्थ नित्य ही है। वह कहेगा कि स्यात्, होगा, अर्थात् नित्य होगा। इसमें यह भी अर्थ गर्भित है कि अनित्य भी होगा।

फिर तो लोग कहेंगे कि यह संशय है, किसी विषयका निर्णीत रूपसे कथन नही करता है। तो यह संशय नहीं है।

विरुद्धानेककोटिस्पर्शि ज्ञानं संशयः।

विरुद्ध अनेक कोटिको स्पर्श करनेवाला ज्ञान संशय है। यह साँप होगा? या रस्सी होगी? क्या और कुछ है? इस प्रकार विचार करनेवाला संशय है, संशयमें किसी भी विषयका निर्णय नहीं हो पाता है, परन्तु इस स्यात् अथवा अपेक्षावादके ज्ञानमें निश्चितता है, अमुक अपेक्षासे पदार्थ नित्य है, अमुक अपेक्षासे पदार्थ अनित्य है, अमुक अपेक्षासे उसमें वस्तुत्व है, अमुक अपेक्षासे उसमें प्रमेयत्व है। इत्यादि अनन्त धर्म होने

पर भी अपेक्षावादसे वह निश्चित है। सो यह संशय, विपरीत व अनध्यवसाय आदिक ज्ञानाभास नहीं हो सकता है। अतः स्याद्वाद सम्यग्ज्ञान है।

दूसरी बात इसका कथन वस्तु स्वरूपके अनुसार है। कोई भी कृत्रिमता या बनावटी बात यहाँ नही है। क्योंकि पदार्थ उसी प्रकार मौजूद है। उसका कथन उसी प्रकार किया जा रहा है। इसमें कृत्रिमता क्या है ? पदार्थोंमें अनन्त धर्म विद्यमान है उसे अपेक्षावादसे ही हम समझ सकते हैं। अपेक्षावादको छोड दिया जाय तो उसका कथन हम नहीं कर सकते है। अतः अपेक्षावादकी अत्यन्त आवश्यकता है। अपेक्षावादके बिना एक पत्ता भी हिल नही सकता है, जीभ तो कैसे हिले ?

पदार्थ जिस प्रकार अस्तित्वमें हो उसका उसी प्रकार कथन करना चाहिए, उस प्रकार कथन न करें तो उसका कथन ही यथार्थ होगा, अर्थात् वह ज्ञान सत्य ज्ञान नहीं है।

अनेकात या स्याद्वाद हमें अपेक्षावादको सिखाता है यह भी कहता है कि पदार्थ उसी प्रकार है, उसे उसी प्रकार कथन करनेका अभ्यास करो।

जहाँ अनेकांत है वहाँ पर कोई विवाद उत्पन्न नही होता है। अनेक समस्यायें इस अनेकातके कारण अपने आप सुलझ जाती है। अतः प्रत्येक पदार्थको समझनेके लिए इस अपेक्षावादका उपयोग आवश्यक है, इसमें परस्पर कोई विरोध भी नहीं है।

प्रकाश-अन्धकार, शत्रु-मित्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी, बैठना-उठना, सोना-जागना, गेहूँ-चावल, घी-तेल, नमक-मिर्च आदि सर्व व्यवहार अपेक्षावादसे युक्त हैं, अपेक्षावादको छोड़कर हम इन शब्द प्रयोगोंको नही कर सकते हैं।

एक ही व्यक्तिमें पितृत्व, पुत्रत्व, भ्रातृत्व, कनिष्ठ भ्रातृत्व, ज्येष्ठ भ्रातृत्व, मामापना, भानजापना, आदि सम्बन्ध विद्यमान है। इन सबको अपेक्षावादसे जानना चाहिये। अपेक्षावादके बिना हम पदार्थोंको समझनेमें असमर्थ रहेंगे, अज्ञानी बने रहेंगे।

पदार्थोंको जैसा है वैसा समझना ही सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञानके बिना वस्तुके निश्चित स्वरूपका ज्ञान नही हो सकता है। वस्तुके निश्चित स्वरूपके बिना अपना भी ज्ञान नहीं हो सकता है। अतः वह निरपेक्षवादी सर्व ज्ञानोंसे वंचित रहता है। स्याद्वाद समन्वयवाद है, पदार्थको सर्वथा स्वीकार नही करना है, उसमें कथंचित् अर्थ अभिप्रेत है। कथंचित् अर्थ जहाँ अभिप्रेत हो वहाँ पर कोई विवाद उत्पन्न नहीं हो सकता है।

जहाँ पक्षपात है वही विवाद उत्पन्न होता है, पक्षपात रहित स्वाभाविक कथनमें विवाद ही उत्पन्न नही हो सकता है। इसीलिए कहा गया है कि—

स्याद्वादो विद्यते यत्र, पक्षपातो न विद्यते।

जहाँ स्याद्वाद है वहाँ पक्षपात नही। आचार्य हेमचन्द्र इससे भी आगे बढ़कर कहने लगे कि—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

मुझे भगवान् महावीरमें भी पक्षपात नही है, और कपिलवादिकोंमें प्रति द्वेष भी नहीं है, जिनका कथन युक्तियुक्त है उसे स्वीकार मैं करता हूँ।

स्याद्वादकी उत्पत्ति क्यों ?

नय दो प्रकारके हैं, नय दो प्रकारके कहनेकी अपेक्षा अपेक्षावाद दो प्रकारका है यह कहनेसे काम

चल सकता है। अपेक्षावाद दो प्रकारका है यह कहनेकी अपेक्षा पदार्थ उसी प्रकारसे है यह कह दिया जाय तो अधिक सर्मजस दिख सकेगा।

नय विवक्षा दो प्रकारसे है—द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक।

द्रव्यकी अपेक्षा रखनेवाला, द्रव्य ही जिसका प्रयोजन हो, द्रव्यकी दृष्टिको रखकर कथन करनेवाला नय द्रव्यार्थिक है। पर्यायकी दृष्टिको रखकर पदार्थका विचार करनेवाला, पर्यायकी अपेक्षा रखकर विचार करनेवाला, पर्याय ही जिसका प्रयोजन हो वह पर्यायार्थिक नय है। नयोंका समुदाय ही प्रमाण है। अतः यह नय भी प्रमाणका एक देश होनेसे प्रमाण स्वरूप है।

इसे महर्षि पूज्यपादने 'क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव', क्षीरसमुद्रके पाससे एक घड़ेमें जैसा लेवें तो वह क्षीर समुद्र है क्या—नहीं, क्षीरसमुद्रका जल है क्या? है, इस प्रकार प्रमाण एक देश प्रमाणात्मक उत्तर मिलेगा, इसी प्रकार नयमें प्रमाणका एकदेशत्व है।

फिर द्रव्य-पर्याय दृष्टि क्या है?

आचार्य उमास्वामीने द्रव्यका लक्षण करते हुए कहा कि 'सत् द्रव्यलक्षणम्' सत् द्रव्यका लक्षण है सत् क्या है। इसका उत्तर देते हुए आचार्यने कहा है कि 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्' उत्पत्ति, विनाश और ध्रुवता सत् कहलाता है। अर्थात् ये तीनों बातें उस द्रव्यमें हैं। पूर्व पर्यायका विनाश, वर्तमान पर्यायकी उत्पत्ति, यह जिस प्रकार पर्यायमें होती है उसी प्रकार ध्रुवता द्रव्यत्वमें रहती है। उदाहरणके लिए एक मनुष्य जीवको लीजिये, वह पहले तिर्यञ्च योनिमें था। अब पर्यायकी दृष्टिसे मनुष्य योनिमें उसकी उत्पत्ति हुई, तिर्यञ्च योनिका विनाश हुआ, अर्थात् तिर्यञ्च भी उसका पर्याय था, मनुष्य गति भी एक पर्याय है। अतः पर्यायकी दृष्टिसे उसकी उत्पत्ति व विनाश हुआ। परन्तु द्रव्य दृष्टिसे वह जीव था, अभी भी जीव है, आगे भी जीव रहेगा। जीवत्वका विनाश कभी नहीं होगा, उसमें ध्रुवता है। इस दृष्टिसे उसका नाश कभी नहीं होगा। अतः नित्य है, पर्याय अनित्य है।

इन दोनों नयोंका विचार करने पर स्याद्वादकी उत्पत्ति होती है। इन दोनों नयोंकी अपेक्षा पदार्थको सर्वथा नित्य सर्वथा अनित्य नहीं कह सकते हैं। स्यात् नित्य, स्यात् अनित्य कह सकते हैं।

मानवीय प्राणीकी शक्ति, बुद्धि आदि सीमित होनेके कारण अनन्त धर्मोंसे युक्त पदार्थका अनन्त धर्मोंसे उल्लेख नहीं किया जा सकता है, इसलिए सात विवक्षाओंमें उन सभी धर्मोंका अन्तर्भाव कर कह दिया जाता है उसे सप्तभंगी कहते हैं, इस प्रकारका अर्थ भंग है, सात प्रकारोंसे युक्त है अतः वह स्याद्वाद सप्तभंगी कहलाता है।

सप्तभंगी क्या है?

पदार्थका स्वचतुष्टय-परचतुष्टयकी दृष्टिसे विचार किया जाता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ये चतुष्टय हैं, अपने द्रव्य क्षेत्र काल, भाव स्वचतुष्टय हैं, दूसरोंके द्रव्य क्षेत्र काल भाव परचतुष्टय हैं।

स्यादस्ति—अपने (स्वचतुष्टय) चतुष्टयकी अपेक्षा पदार्थ मौजूद है।

स्यान्नास्ति—परचतुष्टयकी अपेक्षासे पदार्थ नहीं है, अर्थात् पदार्थमें अस्तित्व नास्तित्व दोनों धर्म आये।

स्यादस्ति नास्ति—कथंचित् वह पदार्थ उभयरूप है, क्योंकि क्रमसे दोनोंकी अपेक्षा है।

स्यादवक्तव्य—कथंचित् वह अवक्तव्य है क्योंकि दोनोंकी एक साथ विवक्षा होनेसे कथन नहीं किया जा सकता है। अतः अवक्तव्य है।

अवक्तव्य होनेपर उसका अस्तित्व कैसे माना जावे ? तब ५वां भंग उदयमें आया।

स्यादस्ति अवक्तव्य—पदार्थ मौजूद है परन्तु अवक्तव्य है। अपने स्वचतुष्टयकी अपेक्षासे वह अस्तित्वमें है तथापि हम उसका कथन नहीं कर सकते हैं।

स्यान्नास्ति अवक्तव्य—परचतुष्टयका उसमें अभाव है। अतः कथंचित् नास्तिअवक्तव्य है। यहाँ परचतुष्टयकी अपेक्षा नही होने पर भी अवक्तव्य है।

स्यादस्तिनास्ति अवक्तव्य—दोनों विवक्षासे अस्तित्व नास्तित्व धर्मके एक कालमें होनेपर भी अवक्तव्य है।

इन सब भंगोंमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अपेक्षा कर लेनी चाहिये, इसे स्वामी समन्तभद्रने एक सुन्दर उदाहरण देकर समझाया है—

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम् ॥—आप्तमीमांसा ५९

एक मनुष्यको सोनेके घड़ेकी जरूरत थी, दूसरेको सोनेके मुकुटकी जरूरत थी, तीसरेको सोनेकी जरूरत थी। तीनों सराफके दुकानमें गये। जिसको घड़ेकी जरूरत थी वह निराश हुआ, क्योंकि सराफने कहा कि मेरे पास सोनेका घड़ा था, परन्तु उसके लिए कोई ग्राहक न होनेसे उसे तुड़वाया एवं सोनेका मुकुट बनवाया, मुकुटको लेनेवालेको हर्ष हुआ, क्योंकि वह मुकुट चाहता था, परन्तु जो केवल सोना चाहता था उसे न हर्ष न विषाद, मध्यस्थ भाव है, क्योंकि घडेमें भी सोना है, मुकुटमें भी सोना है, इसलिए उसे तोड़नेका न विषाद और न बननेका हर्ष।

यहाँपर आचार्यने द्रव्य और भाव दोनोंमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यका निरूपण किया है। घड़ेका विनाश व मुकुटकी उत्पत्ति, यह सोनेमें दो पर्याय दृष्टिगोचर होते हैं। उसके साथ ही एकमें शोककी उत्पत्ति और हर्षका नाश दीख रहा है, तो दूसरेमें विषादका नाश व हर्षकी उत्पत्ति दीख रही है, तीसरे उदाहरणमें जिस प्रकार सोनेमें सर्वत्र ध्रुवता है उसी प्रकार परिणाममें भी माध्यस्थ या ध्रुवता है। न हर्ष है और न विषाद है। परिणाममें ध्रुवता है।

इस प्रकार सर्व तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाले स्याद्वादको आचार्यने केवलज्ञानके रूपमें वर्णन किया है—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्व प्रकाशके।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्।—आप्तमीमांसा १०५

सर्व तत्त्वको प्रकाशित करनेवाला स्याद्वाद भी केवलज्ञानके समान ही है। भेद सिर्फ इतना ही है कि केवलज्ञान प्रत्यक्ष रूपसे जानता है। स्याद्वाद परोक्षरूपसे जानता है। दोनोंमें ज्ञानकी दृष्टिसे कोई भेद नहीं है। एक केवल है, दूसरा श्रुतकेवल है। एक प्रत्यक्ष है, दूसरा परोक्ष है। इस बातका समर्थन नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्तीने भी किया है।

सुदकेवलं च णाणं दोण्णिवि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणम्।—गोम्मटसार जीवकांड

अर्थात् श्रुतज्ञानमें और केवलज्ञानमें ज्ञानकी अपेक्षासे कोई भेद नही है। श्रुतज्ञान परोक्ष है, केवलज्ञान प्रत्यक्ष है, इतना ही अन्तर है।

इस प्रकार समझकर स्याद्वादरूपी श्रुतकेवलज्ञानसे जो पदार्थोंका ज्ञान करता है वह न भूलता है, वस्तु स्वरूपके समझनेमें न धोका खाता है, और न वहाँ पर विवाद उत्पन्न होता है। परस्पर वैमनस्यको

वह अनेकांत दूर कर हर एकमें समन्वय दृष्टिको निर्माण करता है। यही कारण है कि स्याद्वाद लोकमें शांतिको उत्पन्न करनेके लिये कारण है।

नयचक्र पारंगत आचार्य अमृतचन्द्र स्पष्टतः निर्देश करते हैं कि—

इति विविधभंगगहने सुदुस्तरे मार्गमूढदृष्टीनाम्।
गुरवो भवन्ति शरणं प्रबुद्धनयचक्रसंचाराः ।।—पुरुषार्थ सिध्युपाय ५८

इस प्रकार विभिन्न नयके प्रयोगमें अनेक भंग हैं, और कठिन हैं। मिथ्यादृष्टि जीव इस भवकाननमें चलते हुए कभी-कभी मार्ग भूल जाता है, इधर-उधर भटकता रहता है। भटकना भी चाहिये, संसारमें भटकना या परिभ्रमण करना ही संसारका वास्तविक लक्षण है। जो इस नयचक्रका ठीक-ठीक प्रकारसे प्रयोग नहीं कर सकें और नयचक्रमें चक्कर खाकर भटकते रहें, वे इसे समझनेके लिए इस नयचक्रमें संचार करनेमें प्रवीण, सदा निश्शंक विचरण करनेवाले सद्‌गुरुओंका शरण जावें। अपने आप उसका परिज्ञान हो जायगा।

मध्य युगमें जैनधर्म

विद्यावारिधि डा० ज्योतिप्रसाद जैन,

१२ वीं शती ई० के अन्तसे लेकर १८ वी शती ई० के प्रारम्भ पर्यन्त, साधिक लगभग पाँच सौ वर्षका काल भारतीय इतिहासका प्राय. मध्ययुग कहलाता है।

इस युगके धार्मिक इतिहासकी प्रमुख विशेषता यह थी कि एक ओर तो ब्राह्मण अथवा तथाकथित हिन्दू धर्मका पुनरुत्थान हुआ और इसके शैव-वैष्णवादि सम्प्रदायोंका प्रभाव उत्तरोत्तर वृद्धिगत एवं व्यापक हुआ, तथा दूसरी ओर भारतवर्षके बहुभागसे बौद्धधर्मका प्राय· सर्वथा नाम शेष हो गया जब कि जैनधर्मका भी संख्या और प्रभावमें उत्तरोत्तर ह्रास तो हुआ किन्तु देशके कई प्रदेशोंमें वह अपनी स्थिति बहुत कुछ पूर्ववत् बनाये रखनेमें भी सफल रहा।

क्रमश चावडा, सोलङ्की और बघेलोंके शासनकालमें गुजरात जैनधर्मका सुदृढ़ केन्द्र रहा, जहाँ वनराज चावडा, कुमारपाल सोलङ्की, लवणप्रसाद बघेला जैसे प्रतापी जैन नरेश, विमल, मुञ्जाल, उदयन, वस्तुपाल, तेजपाल, सज्जन मेहता जैसे विचक्षण राज्यमन्त्री, दुर्द्धरवीर सेनानी, और महान् निर्माता तथा आचार्य हेमचन्द्र जैसे दिग्गज विद्वान् एवं साहित्यकार हुए। गुजरातके पश्चात्, उत्तर भारतमें मालवा और राजस्थानका जैनधर्मके गढ़के रूपमें द्वितीय स्थान था। ग्वालियरके तोमर और चन्द्रवाडके चौहान राजे भी इस धर्मके भारी प्रश्रयदाता रहे। दक्षिण भारतमें उत्तरवर्ती चालुक्यों, कलचुरियों, होयसलों, शिलाहारों आदि राज्यवंशोंके शासनमें जैन धर्मने दीर्घकालतक अपनी स्थिति बनाये रक्खी। विजयनगर साम्राज्यकालके पूर्वार्धमें भी उसमें विशेष अन्तर नही आया। परन्तु, शैव और वैष्णव सम्प्रदायोंके वृद्धिगत प्रभावके परिणामस्वरूप उक्त दाक्षिणात्य प्रदेशोमें उसकी सख्या एवं महत्त्व शनैः शनैः घटते गये। तंजौरके चोलों और मदुराके पांड्योंने, जो कट्टर शैव थे, जैनोंपर भरसक अत्याचार किये। तमिल पुराणोंके अनुसार उन प्रदेशोंमें शैव धर्मकी स्थापना ही जैनोंपर किये गये निर्मय अत्याचारों द्वारा हुई थी। इस संदर्भमें पूर्वकालमें घटित एक घटनाका स्पष्ट उल्लेख किया जाता है जिसमें आठ हज़ार जैन मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया गया था। जैन धर्मानुयायी विज्जल कलचुरिके विरुद्ध नवव्यापित लिंगायत (वीर शैव) सम्प्रदायकी सफल राजनैतिक क्रान्ति ऊपरी दक्षिणापथमें जैन धर्मके ह्रासका प्रमुख कारण बनी।

१३वी शतीके प्रारंभके लगभग युद्धप्रिय इस्लामके भारत प्रवेश और दिल्लीमें मुस्लिम शासनकी स्थापनासे उत्पन्न राजनैतिक परिस्थितियोंमें जैनोंकी सख्या और उनके धार्मिक प्रभावमें प्रत्यक्ष ह्रास हुआ। उसके पूर्वकी दो शताब्दियोंमें गजनवी और ग़ोरी सुल्तानोंके नेतृत्वमें हुए अनेक तुर्क आक्रमणोंने न केवल अभूतपूर्व रक्तपात, लूटपाट तथा धर्मायतनों, तीर्थों और मूर्त्तियोंके विध्वंसका मार्ग उन्मुक्त कर दिया था, वरन् राजपूत राजाओंकी प्रतिरोध शक्तिको भी क्षीण कर दिया। इन आपत्ति-विपत्तियों, बाधाओं और अवरोधोंके बावजूद १३वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जैनोंका एक चिरप्रतिष्ठित एवं सुसङ्गठित धार्मिक समाज था,

जिसकी पृष्ठभूमिमें एक अत्यन्त विकसित तत्त्वज्ञान एवं दार्शनिक चिन्तन था और जो एक प्रत्यक्ष समृद्ध सांस्कृतिक बपौतीका धनी था, जिसके अन्तर्गत भाषयिक, विविधविपुल साहित्य भण्डार, अनगिनत कलापूर्ण एवं दर्शनीय देवमन्दिर और तीर्थस्थान, तथा एक सुव्यवस्थित अतिनैतिक आचार परम्परा थीं। यह धर्म चिरकालसे दिगम्बर एव श्वेताम्बर नामक दो सम्प्रदायोंमें विभक्त रहता आया था। देशके प्रायः प्रत्येक भागमें जैनीजन अत्यधिक संख्यामें पाये जाते थे और उनमें प्रायः सभी वर्णों एवं जातियोंके व्यक्ति सम्मिलित थे। महाजनों, साहूकारों, व्यापारियों, व्यवसायियों, मंत्रियों और राज्यकर्मचारियोंके रूपमें तो प्रायः प्रत्येक राजधानी, बड़े नगर और व्यापार केन्द्रमें वे विद्यमान थे।

मुसलमानोंके आक्रमणों और मुस्लिम राज्यसत्ताओंकी स्थापनाके परिणामस्वरूप प्रारम्भमें अनेक प्रतिष्ठित जैन विस्थापित हुए और सहिष्णु देशी नरेशोंके राज्योंमें जा बसे। किन्तु जब मुसल्मान यहाँ जम ही गये और उन्होंने शासनको सुव्यवस्थित करनेकी चेष्टा की तो उन्होंने भारतीयोंमें जो प्रशासन कुशल थे उनका सहयोग प्राप्त करनेका भी प्रयत्न किया और अनेक जैन भी प्रशासनमें नियुक्त हुए। मुसलमान शासक अर्थतन्त्रकी भी उपेक्षा करके नही रह सकते थे, जैन साहूकार एवं व्यापारी उस तन्त्रके महत्त्वपूर्ण अंग थे, अतएव इस रूपमें भी वे मुसलमान राजधानियोंमें पुनः जमने लगे।

सुल्तान अलाउद्दीन खिल्जीके समयमें दिल्लीके नगरसेठ पूर्णचन्द्र नामके जैन अग्रवाल थे, गुजरातमें जैन धनकुबेर पेथडशाह, समराशाह आदि थे। ये योग राज्यमान्य हुए, शाही फ़र्मान प्राप्त करके उन्होंने तीर्थयात्रा संघ भी चलाये और अपने तीर्थोंके जीर्णोद्धार भी किये। कई जैन गुरु सुल्तान तथा उसके सूबेदारों द्वारा सम्मानित भी हुए और दिल्ली आदि प्रमुख नगरोंमें जैन गुरुओंकी भट्टारकीय गद्दियाँ भी स्थापित हुईं। सुल्तान जलालुद्दीन खिलजी, मुबारक खिलजी और गाज़ी तुग़लुक भी अपेक्षाकृत नरम एवं सहिष्णु प्रकृतिके थे। सुल्तान मुहम्मद तुग़लक तो बडा विद्वान्, विद्यारसिक और विविध धर्मोंके विद्वानोंका सत्सेवी भी था। अनेक जैन गुरुओंका उसे संसर्ग प्राप्त हुआ। आचार्य जिनप्रभसूरि और भट्टारक प्रभाचन्द्र-का उसने प्रभूत सम्मान किया—उनसे वह बड़ा प्रभावित था। राजधानी तुग़लकाबाद (दिल्ली)के क़िलेमें ही एक 'दर्बार चैत्यालय' नामका जिनमन्दिर था, जिसके आसपास जैनोंकी अच्छी बस्ती थी और वे वहाँ अपने धर्मोत्सव भी करते थे। उस कालकी तवारीखोंमें जैनोंका 'सयूरगान' नामसे उल्लेख हुआ है, जो 'सरावगान' (श्रावका.) का अपभ्रंश है। सैयद सुल्तान मुबारकशाहका एक प्रतिष्ठित कर्मचारी हिसार निवासी हेमराज जैन था और बहलोल लोदीके एक राज्यकर्मचारी, पुष्पावती (मध्यप्रदेश) निवासी गढ़ासाव-के पुत्र प्रसिद्ध सुधारक सन्त तारणस्वामी थे। प्रायः उसी कालमें गुजरातमें लौंकाशाह नामके सुधारक हुए जिनसे लौंकागच्छ चला, जिसने कालान्तरमें स्थानकवासी सम्प्रदायका रूप लिया। जौनपुरके महमूदसाह शर्कीके दरबारमें कर्णाटकके जैनगुरु सिंहकीर्ति और सिकन्दर लोदीके दर्बारमें विशालकीर्ति पधारे थे। शेरशाह-सूरीने रणथंभौरके जैन वैद्य रेखापण्डितको सम्मानित किया था। मालवा और गुजरातके सुल्तान भी जैनोंके प्रति अपेक्षाकृत सहिष्णु रहे और उन्होंने प्रतिष्ठित राजकीय पदोंपर कई जैनोंको नियुक्त किया। उस कालमें उक्त प्रदेशोंमें जैनसाहित्य भी पर्याप्त रचा गया। राजपूत राज्योंमें तो जैनोंकी स्थिति पर्याप्त सन्तोषजनक थी—अनेकोंको राज्यसम्मान, मन्त्री, दीवान, भण्डारी आदि पद, धनवैभव और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। मुनियों-का स्वच्छन्द विहार था और जैनोंको धार्मिक स्वतन्त्रता थी।

मध्यकालके मुसलमान शासकोंमें धार्मिक दृष्टिसे मुग़ल सम्राट् सर्वाधिक सहिष्णु थे। शाहन्शाह अकबर तो ऐसा गुणग्राही एवं सर्वधर्मसमभावी था कि कट्टर मुल्ला-मौलवी उसे काफ़िर कहते थे। आचार्य

हीरविजयसूरि आदि अनेक जैन गुरुओंको उसने सम्मानित किया, उनका सत्सङ्ग किया और अनेक आचार-विचारोंसे भी प्रभावित हुआ। कोई विदेशी पर्यटकोंने तो यहाँ तक कह दिया कि वह जैनधर्मका अनुयायी हो गया था। वस्तुत: उसने मांसाहारका भी परित्याग कर दिया था और वर्षके अनेक दिनोंमें राजाज्ञासे जीवहिंसा बन्द करा दी थी। उसके राज्यमें जैनीजन सम्पन्न और प्रतिष्ठित थे और स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धर्मोत्सव मनाते थे। उस कालमें जैन साहित्य भी पर्याप्त रचा गया। उसके उत्तराधिकारी जहाँगीरने भी अपने पिताकी धार्मिक सहिष्णुताकी नीतिका प्रायः अनुसरण किया। शाहजहाँके समय नीतिमें परिवर्तन होने लगा और औरंगजेबका शासन तो धार्मिक कट्टरता और मुसल्मानियतके लिए इतिहास प्रसिद्ध है। किन्तु, इन शासनकालोंसे भी जैनधर्म और जैनोंकी स्थितिमें कोई बहुत विशेष अन्तर नहीं पड़ा। सामान्यतया जिन प्रदेशों पर मुगल बादशाहोंका प्रत्यक्ष शासन था उनमें जैनधर्मकी स्थिति हिन्दू धर्म जैसी ही थी, उससे अच्छी नहीं तो बुरी भी नहीं थी। इसमें भी सन्देह नहीं है कि मुग़ल शासित प्रदेशोंकी अपेक्षा तत्कालीन राजपूत राज्योंमें जैनोंकी स्थिति और दशा कहीं अधिक अच्छी थी।

अस्तु प्रायः कहीं कोई उल्लेखनीय राज्याश्रय प्राप्त न होते हुए भी, मध्ययुगमें जैनधर्म पनपता ही रहा, संख्या अवश्य कम होती गई। उस युगमें जैनधर्मके संरक्षणका प्रधान श्रेय दिगम्बर भट्टारकों, श्वेताम्बर यतियों, गृहस्थ जैन विद्वान् पण्डितों एवं साहित्यकारों, धर्मोत्साही जैन श्रीमानों और धर्मप्राण जैन स्त्री-पुरुषोंको है।

कबीर-वाणीमें वीर-वाणीकी गूँज

श्रीमती कुसुम जैन सोंरया एम० ए०, बी० एड०

●

क्रान्तद्रष्टा कबीर

मध्ययुगीन काव्य जगत्में जिन कवियोंने जीवनको बड़ी सूक्ष्मता और गहरे उतरकर देखा, उनमें सन्त कबीरका नाम प्रमुख है। इन्होंने रूपकों और जीवनके व्यावहारिक प्रतीकोंके माध्यमसे अध्यात्मकी अभिव्यक्ति बडी कुशलतासे की हैं। गूढ़ रहस्यों और तत्त्वोंको बोलचालकी भाषामें रखकर साहित्य जगत्को एक उपलब्धि प्रदान की हैं। प्रस्तुत लेखमें कबीरके ऐसे विचार-प्रसून प्रस्तुत किये जा रहे है, जिनमें जैनदर्शनके सिद्धान्तोंके पराग पूर्णरूपेण परिलक्षित हैं। ऐसा लगता है कि महात्मा कबीर उस धर्मसे ज्यादा प्रभावित रहे, जो बाह्य क्रियाकाण्डों, अन्धविश्वासों और रूढ मान्यताओंके पक्षमें अपनी अस्वीकृतिका हाथ उठाये रहा। इसके साथ उसे ही सच्चा धर्म माना, जिसमें आत्मा या जीव तत्त्वकी परमात्मा तक पहुँचानेकी घोषणा है। जो सत्यदृष्टि, सद्ज्ञान और सदाचरणके ऐक्यपर जोर देता है। जनकल्याणसे अभिभूत कबीर न तो किसी सम्प्रदायके दलदलमें ही पडे और न ही पाखण्डोंके पोषणमें अपनी जीवन साधना गंवाई। इसलिए वे निष्पक्ष रूपसे एक समाज सुधारक और आध्यात्मिक भावनाओंके समर्थक कहे जा सकते हैं।

श्रीमती कुसुम जैन सोंरया

जन्म—२५ नवम्बर १९४७ ललितपुर (उ०प्र०)

शिक्षा—एम० ए० (अर्थशास्त्र) १९७२, बी० एड० १९७३, जैनदर्शनकी जिज्ञासु। नारीके स्वावलम्बन एवं सुशिक्षाकी समर्थिका।

अभिरुचि—लेखन एवं वक्तृत्व-कला।

कृति—'विविध प्रान्तोंके व्यंजन'।

सम्प्रति—नौगाँव (म०प्र०) में अकलंक शिशु विद्यालयकी संचालिका। एवं साहित्यिक विद्वान् श्री प्रो० निहालचन्द्र जैन एम० एस-सी० व्याख्याताकी पत्नी हैं।

वीर-वाणीके अनुगूंज-स्वर

१. स्वयं बोध

म० महावीरकी वाणी वीतराग-वाणी है, जिसमें जीवके परमकल्याण और आत्मपुरुषार्थकी जीवन्तता

है। भ० महावीर स्वामीने किसी बातपर प्रमुख और अन्तिम रूपसे जोर दिया तो वह है—'स्वयं बोध।' स्वयंसे अपरिचयके कारण ही यह जीव दुःखमूलक सम्पदाओंको एकत्र कर उनसे तादात्म्य स्थापित कर रहा है, जीवतत्त्व या चैतन्य शक्ति ही इस दृश्यमान जगत्में वह पारस-निधि है, जिसके बिना संसारकी अनन्त वस्तुएं निरर्थक और अनुपयोगी हैं। इस सन्दर्भमें कबीरकी यह साखी कितनी युक्तियुक्त है :

पारस रूपी जीव है, लौह रूप संसार।
पारस से पारस भया, परख भया टकसार॥

यह जीव पारसके समान अमूल्य है। इस जीवकी व्यापकताका ज्ञान कर लेनेपर ही यह संसारी प्राणी (लौह) पारस की तरह अमूल्य बन जाता है। यहाँ 'परख'से तात्पर्य अपनी पहिचान करनेसे है क्योंकि बिना पहिचानके यह अपनी अनन्त शक्तियोंको भूला हुआ है।

२. जीवत्वमें सिद्धत्व

प्रत्येक जीव अपनेमें अनन्त सम्भावनायें समेटे हुए है। भ० महावीरने कहा : शक्तिरूप तूं सिद्ध बुद्ध है निरंजन है। परन्तु इसकी अभिव्यक्ति प्रसुप्त है। जागृति बिना सच्ची दृष्टि कैसे प्राप्त की जा सकती है? कबीरदासजीने एक मार्मिक साखीके द्वारा इस तथ्यको उजागर करनेका प्रयास किया है—

बूद जो परा समुद्र में, सो जानत सब कोय।
समुद्र समाना बूंद में, सो जाने बिरला कोय॥

इस बातको सभी जानते हैं कि यह जीवात्मा शरीर धारणकर ससारमें जन्म और मरणकी प्रक्रिया कर रही हैं, लेकिन इसकी अनन्त शक्ति और योग्यताको बिरला ही कोई जान पाता है। जिसमें इस सृष्टिको जाननेकी योग्यता है, वह बूंद हमारी आत्मा, अपनेमें समुद्र अर्थात् संसारको ही सोख लेती है। अर्थात् जीवके सहज स्वरूपमें ससार विसर्जित हो जाता है। जीवकी इस विलक्षणताको सब नही जान पाते हैं। जैनदर्शनकी कितनी गहरी अनुभूति कबीरमें उतनी होगी, इस साखीको लिखते समय। एक दूसरी साखीमें कबीर कहते हैं—

हंसा तू तो सबल था, हलुकी अपनी चाल।
रग कुरगे रगिया, तै किया और लगवार॥

हे मानव ! तूं तो शक्तिमान ईश्वर जैसा धवल स्वच्छ है अर्थात् कर्म-कालिमासे रहित है। फिर भी तूने अपनी उस शक्तिपर एक दृष्टि नही दी और निकृष्ट आचरणोमें गिरकर तथा स्वयको कर्म-कालिमासे लिप्त कर अपनेको रंग-विरंगा बना लिया है। इस प्रकार स्वयंके अज्ञानने तुझे स्वामीसे दास बना दिया है।

३ कर्म-वेड़ियोंका विनाश

भ० महावीरने इस कर्म-कालिमाका कारण जीवकी बहिर्दृष्टि बताया है। जीवकी आसक्तिपूर्ण या मूर्च्छासहित क्रियायें ही कर्मरूप सूक्ष्म शरीरमें परिणत होकर नये कर्मोसे गठबन्धन करती रहती हैं। कबीरने इसे उस सचित बीजका रूप दिया जो योग्य भूमि और कालमें पडकर कईगुनी फसल प्राप्त करके बढ़ता जाता है। परन्तु यदि यही जीव अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके अपने चैतन्य स्वभावको मूर्च्छासे तोडकर एक तटस्थ भावमें आ जाये तो वह अपने कर्मोंको जर्जरित कर सकता है। जैसे भुजे हुए बीजमें उसकी मौलिकता समाप्त हो जाती है और वह नये अंकुरण नही कर सकता। कबीरने इसे इस प्रकार कहा—

एक कर्म है बावना, उपजै बीज बहूत ।
एक कर्म है भुंजना, उदय न अंकुर सूत ।।

इस प्रकार जीवकी बहिर्बुद्धि उसके संसार-भ्रमणका कारण बनी हुई है। एक ओर जहाँ वह पुण्यके फलको आत्मविस्मृतिके मूल्यपर भोगकर उन्हें अपना स्वरूप ही समझ बैठता है, वहाँ दूसरी ओर दुखमूलक पापरूप संततियोंसे वह विपन्न होता है और उनसे उपरत भी होना चाहता है। परन्तु शिवत्वकी प्राप्तिमें कर्मोंकी गुरुतासे निर्भार होनेके लिए ये दोनों जीवकी अदृश्य बेडियाँ हैं, जो जीवको कालचक्रके नीचे घसीटे ले जाती हैं। इन्ही भावोंको कबीरने कितने सरस रूपमें कहा ·

तीन लोक भौ पींजरा, पाप पुण्य भौ जाल ।
सकल जीव सावज भये, एक अहेरी काल ।।

अर्थात् संसारकी चौरासी लाख योनियोंके कारागृहमें पाप और पुण्य बेडियाँ है। सजा देने वाला कालचक्र अथवा मृत्यु इस जीवके पीछे प्रत्येक समय लगा रहता है।

४. शरणागत—एक स्वानुभूति

भ० महावीरने ससारी जीवोंको सम्बोधते हुए कहा है—'ससारमें जरा और मरणके तीव्र प्रवाहमें डूबते प्राणियोको धर्म ही एक शरण है, प्रतिष्ठा है, गति है। तुम स्वयं अपने दीपन हो। अपनी ही ज्योतिमें अपनेको देखो। स्वके प्रति जागो। स्वानुभूतिके अलावा और कोई शरण नही। संसारमें ऐसा कोई प्रभु नहीं है जो तुम्हारी अगुँली पकडकर तुम्हें भवसागर पार करा दे।' इन्हीं भावोंको कबीरने बड़े सहज ढंगसे कहा—

जो तू चाहे मुझको, छाँड सकलकी आस ।
मुझ ही ऐसा होय रहो, सब सुख तेरे पास ।।

पराश्रय बुद्धिसे जीव अज्ञानके गहन अंधकारमें डूबा है। इस अज्ञानके घूंघटको ऊपर उठानेके लिए एक जगह महात्मा कबीर लिखते हैं—

तोहि पीय मिलेंगे, घूंघटका पट खोल री ।
घट घटमें वहि स्वामी रमता, कटुक बचन मत बोल री ।
बाहर आप भूल गई सजनी पियो विषय रम घोल री ।
धन यौवनको गर्व न कीजै झूठो पचरंग चोल री ।

वस्तुतः अज्ञान पर्देको हटानेसे ही सम्यक् दृष्टि प्राप्त होती है। और घट-घटमें व्याप्त आत्माके सहज दर्शन हो सकते हैं। भ० महावीरने विषय वासनाओंको मीठा जहर कहा है जिसे पीकर जीव अपने त्रैकालिक स्वभावको भूला बैठा है और धन, यौवन जैसे बीचके क्षणिक संयोगोंमें ही अपनत्व बुद्धिकर अपने ऊपर झूठे मुखौटे ओढ़े हुए है। महावीर स्वामीका सदेश इस विषय रागके रंगमें रगे चोलेसे उन्मुक्त होनेका संदेश था जिसे कबीरने—'संतो! जागत नींद न कीजै' कहा।

वैसे कबीरके प्रत्येक पद, दोहे और साखियोंमें आध्यात्मिक पुट है। माया, मोह, भ्रम, अज्ञान, इच्छाओं आदिके बारेमें प्रतीकात्मक शैलीमें पद और साखियाँ हैं। परन्तु यहाँ एक दृष्टिमें उनकी अन्तस्को छूती हुई उन भावनाओंकी झलक दिखाई गई है, जो लगती है कि वह प्रभुवीरकी ही वाणी है। सच है—एक सच्चे संतका हृदय खुले आकाशकी भाँति होता है।

●

दि० जैन शास्त्रि परिषद् और जैन समाज

पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, शोलापुर

उन दिनों हम मोरेना सिद्धांत महाविद्यालयमें पढ़ते थे, विशारद खण्डमें थे, शायद सन् १९२५ या २६ की बात होगी, शास्त्री परिषद्के अध्यक्ष डॉ० लालबहादुरजी शास्त्री भी हमारे ही साथ थे, कुछ धुंधलीसी स्मृति है।

हम सब प्रौढ छात्र जयपुर गये थे, जयपुरमें शास्त्रि-परिषद्का अधिवेशन था, अधिवेशन कितनेवाँ था यह ध्यानमें नहीं है। परन्तु आजसे करीब ४७ वर्ष पहिले जयपुरमें यह अधिवेशन था, तदनंतर हमें और भी कई अधिवेशनोमें उपस्थित होनेका प्रसंग आया, परन्तु शास्त्रि-परिषद्का वह जयपुर अधिवेशन आज भी हमारे सामने है। श्री प० नानूलालजी शास्त्री, पं० जवाहरलालजी शास्त्री, पं० श्रीशंकरदासजी शास्त्री, और विद्यालंकार पं० इन्द्रलालजी शास्त्री उस समयके जयपुरके ही नही समस्त भारतके माने हुए विद्वान् थे, श्रीन्यायालंकार प० मक्खनलालजीको व श्री पं० खूबचन्दजीको इसी अधिवेशनमें विद्यावारिधि उपाधिसे परिषद्ने अलंकृत किया था, इसके अलावा उस अधिवेशनमें और भी बहुत उपयोगी प्रस्ताव पास हुए थे।

जिन दिनोंकी बात हम यह लिख रहे हैं, उन दिनोंमें समाजमें संस्कृतज्ञ विद्वानोंका बड़ा आदर था, विद्यार्थियोंका भी इस ओर आकर्षण था। इसीलिए अ० भा० दि० जैन शास्त्रि-परिषद्ने समाजमें अनेक उपयोगी कार्य किये। विद्वानोंके कर्तव्यका अच्छी तरह निर्वाह किया।

समाजमें शास्त्रीय विषयोंमें अनेक मतभेद निर्माण होते थे, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, स्पृश्यास्पृश्य भेदलोप, वर्णव्यवस्था आदि विषयोंमें अनेक प्रकारके अनुकूल-प्रतिकूल विचार सामने आये, श्री धर्मरत्न स्व० रघुनाथदासजी सरनौ, धर्मरत्न स्व० प० लालारामजी शास्त्री आदिने इन विषयोंकी वास्तविकता प्रदिपादनकर अनेक पुस्तकें लिखीं, धर्मरत्न पं० लालारामजीने अनेक आचार्य निर्मित ग्रन्थोंका भी अनुवादकर प्रकाशन कराया, जिनसे इन विषयोंपर अच्छा प्रकाश पडा, जैनागम चार अनुयोगोंमें विभक्त है, उन अनुयोगोंको ठीक तरहसे समझकर उन-उन अनुयोगोंकी अपेक्षा विषय प्रतिपादन किया जाय अथवा आचार्य प्रणीत अर्थोंका प्रतिपादन किया जाय तो कोई विरोध नही आता है। परन्तु एकांतग्रस्त भाई उसे एकान्तमें ले जाते है, अत विरोध प्रतिभासित होता है। इस विरोधको परिहार करनेके लिए शास्त्रि-परिषद्के विद्वानोंने बहुत प्रयत्न किया, उसके लिए अनेक आधारोंसे युक्त साहित्योंका निर्माण किया।

श्री धर्मवीर पं० श्रीलालजी पाटनी अलीगढ, श्री विद्वद्वर पं० नन्दलालजी (बम्बई) (पश्चात् पूज्य मुनिराज सुधर्मसागरजी) न्यायालङ्कार पं० मक्खनलालजी शास्त्री मोरेना आदिने इस दिशामें बहुमूल्य कार्य किये, कुछ वर्ष तक श्री विद्यालङ्कार प० इन्द्रलालजी शास्त्री जयपुर शास्त्रि-परिषद्के मन्त्री रहे। उनके कार्यकालमें भी शास्त्रि-परिषद्ने बहुत उपयोगी व धर्मदृढताके कार्य किये, शास्त्रीजीने इस संस्थाको बहुत प्रभावक पद्धतिसे चलाया, उन दिनों हम अजमेर रहते थे, अतः हमारा सहयोग भी उन्हें प्राप्त था।

जैन सिद्धान्तका प्रकाशन

शास्त्रि-परिषद्की ओरसे जैनसिद्धान्त नामक मासिक पत्र प्रकाशित हो रहा था, श्री पं० इन्द्रलालजी-के मन्त्रित्व कालमें श्री व्याख्यानवाचस्पति पं० देवकीनन्दनजी इस पत्र के सम्पादक थे, हम सहसम्पादक व प्रकाशक थे। अजमेरसे यह निकलता था, इसमें सैद्धान्तिक विचारोंपर ऊहापोहात्मक लेख विद्वानोंके निकलते थे। समाज बहुत आतुर होकर इसके लेखोंकी प्रतीक्षा करता था। समाजको इस पत्रसे बहुत सैद्धान्तिक बल मिला।

उन दिनों इस शास्त्रीय अखाडेके एक प्रसिद्ध मल्ल बहुत बडे विद्वान् श्री वंशीधरजी शास्त्री सोलापुर वाले थे। वे सिद्धान्तके कट्टर समर्थक थे, जैन सिद्धातके सूक्ष्मतलस्पर्शी विद्वान् थे। उन्होंने अपने सम्पादकत्व-में जैन सिद्धान्तको कुछ वर्ष चलाया, उस समय भी जैन सिद्धान्तने बहुत-सी शास्त्रीय चर्चाओंका आहार जैन समाजको दिया। जैनसिद्धान्तमें उस समय अनेक उत्तम ग्रन्थोंका अनुवाद, आर्षमार्गका विचार, शास्त्रीय शंकासमाधान आदि प्रकाशित होते थे। जैनसमाजको उस समय खूब सैद्धान्तिक लाभ हुआ।

तदनन्तर जैन सिद्धातका स्वतन्त्र चलना कठिन हो गया, क्योंकि शास्त्रिपरिषद् शास्त्रियोंकी सभा है। सरस्वती और श्रीका एकत्र रहना कठिन होनेके कारण अ० भा० शास्त्रि-परिषद्ने अपनी ध्रुवनिधि बढानेका कभी सोचा ही नही, अत: पत्र प्रकाशनके लिए जो अर्थव्यवस्थाकी आवश्यकता थी उसे शास्त्रि-परिषद् नही कर सकी। स्व० आचार्य चारित्रचक्रवर्ती परमपूज्य शान्तिसागरजी महाराजके विशाल सघका चातुर्मास ब्यावरमें हुआ। उस समय उत्तर भारतके सन्त स्व० आचार्य शान्तिसागरजी (छाणी) सघका भी चातुर्मास ब्यावरमें हुआ था। दोनो विशाल सघोंका चातुर्मास क्या था, चतुर्थ कालीन अपूर्व दृश्य था। ऐसे मुनिसमागमका दृश्य कभी देखनेमें नही आ सकता है। स्व० दानवीर सेठ चपालालजी रानीवालोंने सघसेवाकी सुन्दर व्यवस्था की थी। ब्यावरका वह दृश्य आंखोसे ओझल नही हो सकता है।

ब्यावर चातुर्मासके समय अ० भा० दि० जैनशास्त्रि-परिषद्का अधिवेशन ब्यावर समाजने एवं रानी-वाले सेठजीने बुलाया। श्री उभय सन्त आचार्य शान्तिसागर महाराज व उनके संघोंका आशीर्वाद सस्थाके साथ था ही। बहुत ठाटबाटके साथ यहाँपर शास्त्रि-परिषद्का अधिवेशन हुआ। श्री धर्मवीर स्व० रावजी सखाराम दोशी अध्यक्ष स्थानमें थे, हम भी इस अधिवेशनमें पहुँचे थे, दक्षिण भारतसे श्री पं० जिनदास शास्त्री फडकुले, पं० वासुदेव नेमिनाथ शास्त्री हमारे साथ अधिवेशनमें पहुँचे थे, उत्तर भारतके प्राय सर्वमान्य विद्वान् अधिवेशनमें उपस्थित थे। श्री धर्मवीर पं० श्रीलालजी पाटनी, पं० इन्द्रमणि वैद्य, ला० हुलासराय-जी, पं० लालारामजी न्यायालंकार, प० मक्खनलालजी शास्त्री, श्री पं० नानूलालजी शास्त्री आदि सभी विद्वान् उपस्थित थे, उन दिनों समाजमें चर्चा सागरकी बडी चर्चा थी, शास्त्रीपरिषद्के विद्वानोंने आर्षग्रन्थों-की अवहेलना न हो इसका उन दिनोंमें प्रयत्न किया, खूब आर्षग्रन्थोंके प्रमाण उपस्थित हुए, सैद्धान्तिक आदान प्रदान हुआ, हमें पुन: उस चर्चाको उपस्थित नहीं करना है। परन्तु समाजमें शास्त्रि-परिषद्के विद्वानों-के द्वारा बहुत बडा सामाजिक स्थितीकरण हुआ, इस प्रसङ्गमें हम स्व० पं० रामप्रसादजी शास्त्री बम्बई, पं० कुंजबिहारीलालजी शास्त्री, स्व० पूज्य सुधर्मसागरजी, स्व० प० लोकनाथजी शास्त्री आदि विद्वानोंको नहीं भुला सकते हैं।

ब्यावरमें धर्मवीर दानवीर जिनवाणीभूषण स्व० रावजी सखाराम दोशी सोलापुरकी अध्यक्षतामें शास्त्रि-परिषद्का अधिवेशन बहुत शानदार हुआ। हमें श्री धर्मवीर सेठ रावजी सखाराम दोशीने जैनबोधक-

का सम्पादन, बम्बई परीक्षालयकी देखरेख व इतर मामाजिक प्रवृत्तियोंमें सहयोग देनेके लिए उसी समय अजमेरसे सोलापुर बुलाया था। यह सन् १९३२-३३की बात होगी। हम उस समय अजमेरसे सोलापुर आये, कुछ दिनोंके लिए स्वस्ति श्री पूज्य नेमिसागरजी वर्णीसे हमें सेठ रावजी सखाराम दोशीने उधार लिया था परन्तु योगायोगकी बात, हम ४० वर्षोंसे सोलापुर रहकर यहीं स्थायी हुए, हमसे धर्मवीर स्व० रावजी सखाराम दोशी, ब्र० स्व० जीवराज गौतमचन्द दोशी अध्ययन करते थे। श्री ब्र० जीवराज भाईको हमने राजवार्तिक, गोम्मटसार जीवकाड, समयसार सदृश ग्रन्थोंका अध्ययन कराया। ब्यावर अधिवेशनके अध्यक्षीय भाषणकी सिद्धतामें भी हमने योग दिया। ब्यावरका अधिवेशन शास्त्रि-परिषद्के अनुरूप ही सुन्दर रहा।

ब्यावर अधिवेशनके बाद शास्त्रि-परिषद्का मुखपत्र जैन सिद्धान्तका चलना कठिन दिखनेपर धर्मवीर रावजी सखाराम दोशीने उसे स्वत: चलानेके लिए लिया, उसे जैन बोधकके साथ अलग विभागकर स्वतन्त्र जैन सिद्धान्तके नामसे चलाया, इसे हम और श्री पं० मक्खनलालजी शास्त्री सम्पादन करते रहे, जैन बोधकका सम्पादन तो हम करते ही थे, साथमें जैन सिद्धान्त, शास्त्रि-परिषद्का मुखपत्र भी उसका एक विभाग रहा, इस प्रकार शास्त्रि-परिषद्के मुखपत्र जैन सिद्धान्त प्रकाशनकी ऐसी व्यवस्था हुई, यह व्यवस्था करीब १९३३ से ४० तक करीब ७ वर्ष तक रही, इस बीचमें शास्त्रि-परिषद्का कार्य भी शिथिल हुआ, सो जैन सिद्धान्त भी हमेशाके लिए बन्द हुआ, जिन दिनों जैन सिद्धान्त चालू था उसमें समाजके प्रौढ विद्वानोंके खोजपूर्ण लेख उसमें निकलते थे।

शास्त्रि-परिषद्का एक अधिवेशन मोरेनामें भी हुआ था, वहाँपर भी उस समय परमपूज्य आचार्य शातिसागर महाराजका सघ पहुँचा था, श्री रा० ब० सेठ टीकमचन्दजी अजमेर, धर्मवीर सेठ रावजी सखाराम दोशी आदि गण्य मान्य श्रीमान् धीमान् उसमें पहुँचे थे।

शास्त्री परिषद्के अध्यक्ष कुछ समय श्री पं० इन्द्रलालजी शास्त्री व मन्त्री हम रहे, उस समय भी संस्थाके द्वारा यथाशक्ति सेवा हमने की।

पुनरुज्जीवन

समाजमें एकान्त विचारका प्रचार होने लगा, आचार धर्मकी ओर उपेक्षा उत्पन्नकर निश्चयैकान्त-वादका बोलबाला होने लगा। समाजके कुछ विद्वान् भी सुधाराभासियोंके मोहमें पड़कर आगमके अर्थको मनमानी मरोडने लगे, अपनी इच्छानुसार ग्रन्थोंके अभिप्रायको व्यक्त करने लगे, आर्ष मार्गकी अवहेलना होने लगी, स्वच्छंद विचारोंका प्रचार जोरसे होने लगा, इससे धर्मके प्रति लोगोंकी उपेक्षा होने लगी, तब समाजके धर्मनेताओंने शास्त्रि-परिषद्की आवश्यकताको महसूस किया, अतः इस प्राचीन संस्थाका पुनरुज्जीवन करना पडा, श्री प० अजितकुमारजी शास्त्री मन्त्री नियत हुए, श्री पं० इन्द्रलालजी शास्त्री अध्यक्ष नियत हुए, श्री प० अजितकुमारजीके कार्यभावमें भी शास्त्रि-परिषद्ने समाजमें धर्म जागृतिका अच्छा कार्य किया। अनेक ऐकान्तिक विषयोका उन्होंने डटकर विरोध किया। तदनन्तर इस मन्त्रित्वके भारको श्री पं० बाबूलालजी जमादारने लिया, जो अभी तक बराबर सम्भाले हुए है। बीचमें एक अधिवेशनमें हम भी अध्यक्ष हुए थे, आज श्री डॉ० लालबहादुरजी शास्त्री अध्यक्ष हैं, जिनकी अध्यक्षतामें परिषद् कार्य कर रही है।

श्री डॉ० पं० लालबहादुरजी शास्त्री व पं० बाबूलालजी जमादार ये दोनों ही तडफदार, उत्साही, ज्ञानी, विवेकी जोडी हैं, शास्त्रि-परिषद्की ओरसे अनेक उपयोगी छोटी मोटी पुस्तकोंकी हजारों प्रतियाँ प्रकाशित कर समाजमें नव चेतना उत्पन्न करनेका श्रेय जमादारजीको है। उनके कार्य कालमें पुनः समाज इस

संस्थाके प्रति आकर्षित हुआ, समाजमें धर्मका स्थितिकरण हुआ, शास्त्रि-परिषद्ने आर्ष मार्ग विरोधी घटकों का डटकर विरोध किया इसलिए शास्त्रि-परिषद्के विद्वानोंको एवं शास्त्रि-परिषद्को अनेक स्थानोंके लोग आत्मीयताके साथ निमन्त्रित करने लगे, आगम विरोध करने वाले एवं जैन मुनियोंका विरोध करने वाले लोग बचककर चलने लगे, उनको स्वच्छंद विचारको प्रकट करनेके लिए, भी खूब सोच विचार करना पड़ा, उसके लिए शास्त्रि-परिषद्को भी उनके विरोधका शिकार होना पडा।

समाजमें आर्ष मार्ग विरोधी कुछ विद्वान् हैं, वे मुनियोंकी भी निंदा करते रहते हैं, मुनियोंके शिथिलाचारकी समालोचना उनके पत्रोंमें भरी रहती है, इससे अपने धर्मकी ही निन्दा होती है इसका वे विचार भी नही करते। उनको अच्छे मुनि तो दिखते ही नही हैं, उनकी प्रशंसा करनेके लिए दो शब्द भी उनकी लेखनीसे नहीं निकलते है ऐसी स्थितिमें शास्त्रि-परिषद्की ओरसे विद्वानोंने प्रचार कर लुप्त होते हुए चारित्र मार्गका पुनरुत्थान किया, विरोधियोका मनसूबा यह था कि अगर आर्ष मार्गका प्रचार करने वाले ये मुनि ही नही रहेंगे तो आर्ष मार्ग कहाँ रहेगा ? इसलिए इस मुनिमार्गको ही दूषित घोषित करो, परन्तु शास्त्रि-परिषद्के कारण वे सफल मनोरथ नही हो सके, शास्त्रि-परिषद्का दीर्घ जीवन है, दीर्घ सेवा है। पार्टी भेदके जमानेमें संस्थाओंका दीर्घ समय तक जीवित रहना कठिन कार्य है, परन्तु लोकोपयोगी कार्य करनेवाली संस्थायें ही दीर्घ जीवन प्राप्त करती है अथवा समाज व राष्ट्र जिस संस्थाको जीवित रखना आवश्यक समझते हों वही दीर्घ जीवनको प्राप्त करती है, परिषद्के जीवनमें सुवर्ण मध्य है, इसलिए देहली दीपक न्यायसे जैसे भूत पूर्वमें संस्थाने धर्म जागृतिके कार्य किये उसी प्रकार भविष्यके लिए भी समाजको प्रकाश प्रदान करे, यह हमारी भावना हैं।

परिशिष्ट १

विद्वत् अभिनन्दन ग्रन्थके जोवन वृत्तोंके लेखनमें—निम्न लिखित ग्रन्थोंसे वर्तमानमें स्थित एवम् दिवंगत विद्वानों तथा महाव्रती जनोंके जीवन-संदर्भ प्राप्त करनेमें सहायता प्राप्त की अतः संदर्भित ग्रन्थोंके लेखकों-सम्पादकोंके हम आभारी हैं।

१. वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ—सं० खुशालचंदजी गोरावाला
२. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ—प० बनारसीदासजी चतुर्वेदी
३. ब्र० प० चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ—श्रीमती सुशीला देवी
४. आ० शिवसागर स्मृति ग्रन्थ—प० पन्नालालजी सा० आ०
५. डॉ० नेमिचंद अभिनन्दन ग्रन्थ—श्री प्रकाश अमेय जी
६. चिदानन्द स्मृति ग्रन्थ—श्री पं० गोरेलाल शास्त्री
७. तनसुखराय स्मृति ग्रन्थ—श्री जैनेन्द्रकुमारजी
८ छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ—श्री प० चैनसुखदासजी न्या० ती०
९ गोपालदास बरैया स्मृति ग्रन्थ—श्री पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्त शा०
१० दानवीर माणिकचन्द—श्री ब्र० शीतलप्रसादजी
११ समाज गौरव—श्री चिरंजीलालजी बडजाते
१२ भंवरीलाल बाकलीवाल स्मृति—श्री प० इन्द्रलाल शास्त्री
१३. हिन्दी सेवी ससार भाग १—सेठ श्री प्रेमनारायण टंडन
१४. हिन्दी सेवी ससार भाग २—सेठ श्री प्रेमनारायण टंडन
१५. भगवत अभिनन्दन ग्रन्थ—सेठ प्रकाश अमेय
१६. बैरिस्टर चम्पतराय—श्री कामताप्रसादजी
१७ राष्ट्रीय एकताके प्रतीक—डॉ० बूलचन्दजी
१८. लाला राजकृष्णजी जैन—प० राजेन्द्रकुमारजो न्या०
१९. के० भुजबली शास्त्री कृतित्व-व्यक्तित्व-प्रो० डॉ० गदाधर सिंह
२०. ब्र० शीतलप्रसाद—पं० सुरेशचन्दजी एडवोकेट
२१ परिचयमाला—श्री विमलकुमार जैन सोंरया
२२. तीर्थराज अयोध्या—श्री विमल कुमार जैन सोंरया
२३. समाजकी विभूतियाँ—श्री रतनेशकुमारजी जैन
२४ आधुनिक जैन कवि—श्रीमती रमा जैन
२५. दिल्ली जैन डायरैक्टरी—श्री सतीशकुमारजी जैन
२६. रुहेलखण्ड कुमायूं जैन डाएरैक्टरी—डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन
२७. पद्मावतीपुरवाल जैन डायरैक्टरी—श्री जुगमन्दरदासजी

२८. शान्ति भक्तिका प्रत्यक्ष फल—श्री मोतीचन्दजी सर्राफ
२९. परवार जैन डायरैक्टरी—संकलन
३०. श्री उग्रसेन जैन जीवन झाँकी—श्री विष्णुकान्तजी
३१. श्री हरिप्रसाद 'हरि'—श्री शीलचन्दजी जैन
३२. श्री सुपार्श्वसागरजी (दक्षिण)—श्री पन्नालाल धनराज अगवाल
३३. व्यक्तित्व एवं कृतित्व—श्री सुकदेव तिवारी
३४. पं० पतासी बाईजी—श्रीमती कपूरी देवी जैन
३५ श्री श्रुतसागरजी महाराज—श्री नीरजजी
३६. आ० शिवसागर एवं सुपार्श्वसागर—श्री सूरजमलजी
३७. श्री वृषभसागर मुनि—सौ० मंजरी जैन
३८. स्वात्म परिचय—श्री पं० माणिकचन्दजी कौन्देय
३९. आचार्य विमलसागर संघ दर्शन—संकलन
४० वन्दना—श्री लक्ष्मीचन्द जी सरोज
४१. आचार्य महावीरकीर्ति—संकलन
४२. डॉ० कामताप्रसादजी जैन : व्यक्तित्व-कृतित्व
४३. श्रेयोमार्ग मासिक हिन्दी—सं० ब्र० श्रीलालजी काव्यतीर्थ
४४. वीरवाणी हिन्दी पाक्षिक—सं० पं० भंवरलालजी न्यायतीर्थ
४५. अहिंसावाणी मासिक हिन्दी—श्री वीरेन्द्रप्रसादजी जैन
४६. सन्मति सन्देश मासिक हिन्दी—श्री प्रकाश हितैषी शास्त्री
४७. जैन मित्र साप्ताहिक हिन्दी—श्री एम० के० कापडियाजी
४८. जैनदर्शन साप्ताहिक हिन्दी—डॉ० लालबहादुरजी शास्त्री दिल्ली
४९. जैन गजट साप्ताहिक हिन्दी—डॉ० लालबहादुरजी शास्त्री दिल्ली
५०. जैन संस्कृति हिन्दी मासिक—श्री विमलकुमार जैन सोरया एवं श्री प० राजेन्द्रकुमारजी जैन
५१. जैन सन्देश हिन्दी साप्ता०—श्री प० कैलाशचन्दजी शास्त्री
५२. श्री महावीर स्मारिका—श्री पोल्याकाजी
५३ दिव्यध्वनि—हिन्दी मासिक—श्री प० बलभद्रजी

●